आर्य प्रतिनिधि सभा राजस्थान का मुख-पत्र

रजि० नं० १४ जे०

पाक्षिक

# आर्यमार्तण्ड

दयानन्द आदित्य से पाकर ज्योति प्रचण्ड। ध्वंस दम्भ पाखण्ड का करे आर्यमार्तण्ड॥

वर्ष ४६ | वार्षिक मूल्य ५) रुपया | सम्पादक—श्री ओम्भक्त वानप्रस्थ (रामसहाय शर्मा) | अजमेर पौष शुक्ला १३ सं. २०२५ वि., दि. १ जनवरी ६९ दयानन्दाब्द १४४ | एक प्रति का २० पै० | अङ्क २१

## ईश्वर प्रार्थना

### प्रभुविनय

अग्निमीळे पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम्।
होतारं रत्नधातमम्॥ ऋग्वेद॥ १।१।१।

पदार्थ :- (अग्निम्) ज्ञानस्वरूप, व्यापक सबसे अग्रणीयनेता और पूज्य परमात्मा की मैं (ईळे) स्तुति करता हूँ, कैसा है वह परमेश्वर? (पुरोहितम्) जो सबके सामने स्थित उत्पत्ति से पूर्व परमाणु आदि जगत् का धारण करने वाला (यज्ञस्य देवम्) यज्ञादि उत्तम कर्मों का प्रकाशक (ऋत्विजम्) वसन्त आदि सब ऋतुओं का उत्पादक और सबमें पूजनीय। (होतारम्) सूर्य, चन्द्रमा, आदि रमणीय पदार्थों का धारण और सुन्दर मोती हीरा, सुवर्ण, रजत आदि अपने भक्तों को देने वाला है।

पद्यानुवाद :-

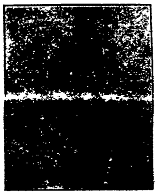
ज्ञान स्वरूप प्रभू सुख राशी,
श्रेष्ठ कर्म का सदा प्रकाशी।
सब ऋतु रचियत देव दयालू,
आदि पूज्यवर परम कृपालु॥

सर्व सुखों के प्रभू सुख दाता,
जग नियंता आप विधाता।
प्रलय काल सब धारण करते,
रवि शशि में निज ज्योतिः भरते॥

कंचन, मुक्ता रजत सुहीरा,
निज जन को दे हरते पीरा।
सब जन [illegible] निज सुख पावें,
[illegible] सुयश नित विनय सुनावें॥

कवि कस्तूरचन्द "[illegible]"

### अमर हुतात्मा स्वामी श्रद्धानन्दजी



राष्ट्र-वंदनीय अमर हुतात्मा स्वामी श्रद्धानंदजी महाराज समस्त आर्य जगत की अद्वितीय निधि थे। उनका बलिदान दिवस दि० २३ दिसम्बर ६८ को बड़े उत्साह से मनाकर अपनी हार्दिक श्रद्धाञ्जलि उनकी पुण्य स्मृति में श्रद्धावनत होकर अर्पित की है। मार्तण्ड परिवार भी अपनी भावाञ्जलि सादर समर्पित कर रहा है।

### सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा के प्रधान श्रीमान् सेठ प्रताप सिंग शूरजी वल्लभदासजी का अजमेर में शुभागमन तथा भव्य स्वागत

दि० २६ दिसम्बर ६८ को श्रीमान् सेठ प्रतापसिंह शूर जी वल्लभ दास जी प्रधान सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा अजमेर पधारे। अजमेर की समस्त आर्य समाजों तथा वैदिक संस्थाओं की ओर से दयानन्द आश्रम केसर गंज में आपका सामूहिक स्वागताभिनंदन किया गया। दयानन्द विद्यालय के स्काउटों ने गार्ड आफ आनर दिया तथा विद्यालय की ओर से उन्हें अभिनंदन पत्र भेंट किया गया। परोपकारिणी सभा के मंत्री श्री करणजी शारदा तथा आर्य प्रतिनिधि सभा राजस्थान के प्रधान श्रीमान् पं० भगवान स्वरूप जी न्याय भूषण ने आपका परिचय कराते हुए वैदिक धर्म के प्रति की गई उनकी सेवाओं की भूरि २ प्रशंसा की।

श्री सेठ प्रताप सिंह जी ने स्वागताभिनंदन के प्रति हार्दिक आभार प्रदर्शित करते हुए आर्यों को अधिक संगठित होकर कर्त्तव्य परायण होने का संदेश दिया। उन्होंने कहा जीवन वही है, जिसमें संघर्ष और समस्यायें हों आज धर्म निरपेक्षता ने राष्ट्र को नष्ट भ्रष्ट कर दिया है। अराष्ट्रीय तत्व इसका अनुचित लाभ उठाकर देश तथा धर्म को अपार क्षति पहुंचा रहे हैं। अतः आज समालोचना और छिद्रान्वेषण की प्रवृत्ति त्याग कर आर्य जनों को आत्म निरीक्षण कर स्वावलम्बी बनना है। आज कर्मठ कार्यकर्त्ता ही देश धर्म की रक्षा अपनी सुदृढ़ संगठन शक्ति से कर सकते हैं। अतः आर्य समाज को अपने संगठन को सुदृढ़ और सक्रिय बनाना है।

सेठ प्रताप जी ने पुष्कर वैदिक पाठशाला पर्वतपुरा तथा डी० ए० वी० कालेज का भी अवलोकन किया।



इस प्रकार :—

| | |
|---|---|
| १—'९६७ में प्राप्त स्थान | ९९ |
| २—जहां द्वितीय रहे— माध्यावधि चुनाव में सफलता प्राप्त हो सकेगी | ८१ |
| ३—तृतीय स्थान जहां सफलता प्राप्त हो सकेगी | २० |
| ४—ऐसे नये स्थान जहां सफलता प्राप्त होगी | २८ |
| ५—हरिजन सुरक्षित क्षेत्र | ३७ |
| कुल विजय पाने लायक स्थान. | |

ऊपर की तालिका से स्पष्ट होता है कि मत प्राप्ति की तुलना में स्थान प्राप्ति का हिसाब ठीक नहीं बैठता। कारण जिन क्षेत्रों में बराबरी की लड़ाई हुई, वहां मतों का अन्तर तो बहुत कम है, किन्तु प्राप्त स्थानों का अन्तर अधिक हो जाता है। इसी कारण कांग्रेस को जहां हमसे डेढ़ गुने मत प्राप्त हुए, वहां उस दुगने से अधिक स्थान प्राप्त हुए। जनसंघ के पास यदि कांग्रेस के बराबरी के साधन १९६७ में ही होते तो विधान सभा में स्थान प्राप्ति की स्थिति इससे बहुत भिन्न होती।

आगामी फरवरी से होने वाले मध्यावधि चुनाव में कांग्रेस, जनसंघ क्रान्तिदल, ससोपा तथा कम्युनिष्ट पार्टी प्रमुख रूप से संघर्षरत होंगें।

चौ० चरण सिंहजी के नेतृत्व में गठित भारतीय क्रान्तिदल अलग से संगठित दल नहीं है। यह कांग्रेस का ही एक असन्तुष्ट या विद्रोही अंग है हर विधान सभा क्षेत्र में कांग्रेस के टिकट के उत्सुक अनेक हैं, किन्तु टिकट एक ही को प्राप्त होगा। चौ० चरण सिंहजी की यही चुनाव व्यूह रचना है अतएव भारतीय क्रान्तिदल कांग्रेस के ही मतों का पर्याप्त विभाजन करेगा। इससे कांग्रेस को ही नुकसान होगा। उसके २० से २५ प्रतिशत मत बंट जायगें। यह स्थिति जनसंघ की विजय के लिये सहायक होगी।

चौ० चरण सिंहजी को कांग्रेस के कुछ केन्द्रीय नेताओं का अन्दरूनी समर्थन भी प्राप्त है। इस कारण भी श्री गुप्ताजी की कांग्रेस को पर्याप्त धक्का लगने वाला है।

श्री सी.बी. गुप्ताजी की एवम् पंडित कमलापतिजी में एक होने की चर्चा चलाई गई है। किन्तु टिकट देते समय हर जिले व निर्वाचन क्षेत्र की गुटबाजी पूर्ववत उभरेगी। इस पर काबू पाना कांग्रेस के लिये असम्भव है। अतः कांग्रेस की स्थिति मध्यावधि चुनाव में १९६७ के चुनाव से बहुत खराब रहेगी। अर्थात् १९६७ में उसे ३२.२ प्रतिशत मत प्राप्त हुए थे, वे कम से कम दस प्रतिशत तो अवश्य घटेंगें।

१९६७ के चुनाव के बाद भी जनसंघ अपने संगठन के विस्तार में सतत जुटा रहा। इस काल में उसने कार्य भी बहुत किये हैं। माध्यमिक एवम् प्राथमिक अध्यापक वर्ग का समर्थन उसे अधिकाधिक प्राप्त होता आ रहा है। किसानों में वह अधिक लोकप्रिय हुआ है। अतः उसके मतों में कम से कम दस से पन्द्रह प्रतिशत वृद्धि होगी। यह वृद्धि उसे बहुमत प्राप्त करने में सहायक होगी।

१९६७ के चुनाव के बाद ससोपा, कम्युनिष्ट पार्टी एवम् प्रसोपा आदि ने लोकप्रियता खोई है। आपस में उनके गुट बने हैं। प्रभावी लोग दल छोड़कर अन्य दलों में प्रविष्ट हुए हैं। अतः उनकी स्थिति बिगड़ती ही आ रही है।

उर्दू को प्रदेश की द्वितीय भाषा बनाने के उनके आन्दोलन से सर्वसाधारण की नजर में उनका स्थान गिरता आ रहा है। कांग्रेस द्वारा रिपब्लिकन पार्टी के साथ चुनाव समझौता करने का प्रयास उसकी आत्मविश्वासहीनता का परिचायक है। जनता उसे समझ रही है। कांग्रेस ने उत्तर प्रदेश के अल्पसंख्यकों के नाम से लखनऊ में जो मुस्लिम सम्मेलन किया था वह विफल रहा। उसमें केवल ३०-३५ मुसलमान ही सम्मिलित हुए। उससे भी उस में निराशा आई है। संयुक्त विधायक दल की सरकार टूट गई थी तब कांग्रेस ने बड़ी खुशी मनाई थी। उसे अपेक्षा थी कि वह अब जनमानस में फिर से स्थान प्राप्त कर सकेगी, किन्तु वह उत्साह एवम् विश्वास क्षणिक सिद्ध हुआ है। टिकटों के बटवारे का समय निकट आने के कारण उनकी आपसी कटुता भयंकर रूप धारण कर रही है। ऐसी स्थिति में जनसंघ अपने ध्येयनिष्ठ कार्यकर्ताओं के अथक परिश्रम व व्यापक संगठन के आधार पर स्वयं के बलबूते पर बहुमत प्राप्त करने के प्रयास में संलग्न है। आवश्यक साधन जुटाने को कार्य उसके लिये कठिन अवश्य है। कारण वह राष्ट्रवादी ध्येयनिष्ठ नवयुवकों का आदर्शवादी संगठन है। विदेशियों से सहायता पाना वह राष्ट्रद्रोह मानता है। अतः वह देशवासियों से सहायता पाने के लिये ही प्रयत्नशील है। उसे विश्वास है कि परिस्थिति को पहचान कर समाज उसकी तन, मन, धन से सहायता करेगा तथा देश में बढ़ती हुई अराजकता और अनुशासन हीनता पर काबू पाकर शांति व व्यवस्था बनाए रखकर राष्ट्र को शक्तिशाली एवम् उन्नत बनाने में पूरा योगदान करेगा।

## श्री गंगानगर में वेद प्रचार—

आर्य समाज श्री गंगानगर में दिनांक १३ दिसम्बर १९६८ से २० दिसम्बर १९६८ तक वेद प्रचार का कार्यक्रम आर्य समाज के सुप्रसिद्ध वीतराग संन्यासी श्री १०८ श्री स्वामी शिवानन्दजी महाराज आयुर्वेदालंकार (गुजरात वाले) द्वारा सम्पन्न किया गया। जिसे नगर की जनता ने बड़े प्रेम से सुना व लाभ उठाया। इसके साथ साथ स्वामीजी के उच्च कोटि के अनुभवी वैद्य होने के नाते से जनता को रोग मुक्त करने के लिए मुफ्त मशवरा भी दिया, जिस से स्थानीय नागरिकों ने पूरा पूरा लाभ उठाया।

किशनसिंह
मन्त्री आर्य समाज श्रीगंगानगर
(राजस्थान)

श्री रामगोपाल शालवाले संसद सदस्य मन्त्री सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा ने एक विज्ञप्ति द्वारा दिल्ली की सभी समाजों, आर्य संस्थाओं एवं आर्य नर नारियों से अपील की थी कि वे २५ दिसम्बर को अमर हुतात्मा श्रद्धानन्द बलिदान दिवस के अवसर पर निकलने वाले जुलुस में अपने सदस्यों और कार्यकर्ताओं के साथ बड़ी से बड़ी संख्या में भाग लें और इस जुलूस को पूर्ण रूपेण सफल बनाये। इस कार्यक्रम में सभी समाजों ने साथ भाग लिया। इसी दिन चांदनी चौक में घण्टाघर के सामने बनने वाले स्वामी श्रद्धानन्दजी के स्मारक के चबूतरे का भी शिलान्यास किया गया।

जुलूस श्रद्धानन्द बाजार स्थित बलिदान भवन से दोपहर को १२ बजे शुरू हुआ।

जुलुस में आर्य नेताओं के अतिरिक्त अनेक राष्ट्रवादी नेता एवं गण्यमान्य व्यक्तियों ने भाग लिया।

# आर्य मार्तण्ड

अजमेर पौष शु० १३ सं० २०२५ वि० दिनांक १ जनवरी सन् १९६९


सम्पादकीय—

## अमर हुतात्मा स्वामी श्रद्धानन्दजी !

समस्त आर्य जगत ने दि० २३ दिसम्बर ६८ को राष्ट्र वंदनीय अमर हुतात्मा स्वामी श्रद्धानन्दजी का बलिदान दिवस मनाकर उनकी पावन स्मृति में अपनी श्रद्धाञ्जलि समर्पित की है और उनके जीवन से नवीन प्रेरणा, उत्साह और स्फूर्ति प्राप्त करने का भी प्रयास किया है, किन्तु क्या कभी हमने अन्तरंग होकर यह भी सोचने का प्रयास किया है कि स्वामीजी ने कौनसा महान कार्य किया ? और उन्होंने अपने प्राणों की आहुति किस उद्देश्य हेतु क्यों दी ?

आज सामाजिक तथा राजनैतिक सभी क्षेत्रों में यह एक परम्परा सी स्थापित हो गई है कि हम जयन्ती, उत्सव वर्ष में एक बार मनाकर अपने कर्त्तव्य की इति श्री मान लेते है और उस कर्त्तव्य को भूल जाते है, जिसके लिए यह समस्त कार्य क्रम आयोजित करते हैं। यही कारण है कि हमारा सार्वजनिक, सामाजिक जीवन शिथिल, निराश एवं निष्क्रिय, होता जा रहा है।

स्वामी श्रद्धानन्दजी ने आर्य जाति के संरक्षण और उद्धार का जो महान व्रत लिया था, मृत्युपर्यन्त उसके पूर्ण करने में सदैव सक्रिय सजग रहे। यही नहीं, उन्होंने निर्भय होकर अपना बलिदान देकर आर्यों का पथ प्रशस्त किया और प्रेरणा दी कि आर्यों ! यदि जीवन चाहते हो, तो त्याग और तप के मर्म को अपनाओ। जिस समाज जाति अथवा राष्ट्र में त्याग, तप का क्षय हो जाता है। भोग वाद चरम सीमा पर पहुंच जाता है, वही पतन के गहरे गर्त में सदा के लिए गिर कर अपना अस्तित्व समाप्त कर लेता है। महर्षि दयानन्द के पश्चात् यदि कोई आर्य जाति को नव जीवन, चेतना और प्रकाश देने वाला आया, तो वह था वह अमर हुतात्मा। जिसने अपने पार्थिव शरीर की वैदिक धर्म एवं आर्य जाति के संरक्षण यज्ञ में सहर्ष आहुति दे दी। परन्तु खेद है कि स्वामी श्रद्धानन्दजी के प्रति श्रद्धा और उनके कार्य के प्रति आस्था विश्वास रखने वाली आर्य जाति स्वयं आज उनके पावन पथ को भूलती जा रही है।

भारत के स्वतन्त्र होने से पूर्व जो ओज, शक्ति, उत्साह और आदर्श आर्य जाति में था, वह अब शनैः शनैः क्षीण होता जा रहा है। स्वामीजी ने शुद्धि की संजीवनी से आर्य जाति को जो नव जीवन प्रदान किया, वास्तव में वह अविस्मरणीय ही नहीं, समयानुकूल अत्यंत महत्व पूर्ण है।

अतः आर्य पुरुषों ! उठो ! स्वामी श्रद्धानन्दजी के बलिदान और जीवन से शिक्षा लो। आज वैदिक धर्म तथा आर्य जाति अराष्ट्रीय आक्रमणों से संत्रस्त है। आज ग्राम-ग्राम, घर-घर, नगर-नगर, वन-पर्वतों और विश्व के कोने-कोने में शुद्धि का शंखनाद गुंजाकर देश को उत्साह, शक्ति और आशा प्रदान करो। त्याग और तप से देश, धर्म तथा आर्य जाति में उत्साह, बल और नव जीवन भर दो, ताकि प्रत्येक आर्य श्रद्धानन्द बनकर राष्ट्र धर्म की रक्षा में अपने प्राणों की आहुति देने के लिये सदैव तत्पर रहे। इस बात को सदा स्मरण रखो—त्याग-तप ही जीवन है और भोग ही मृत्यु है। अतः यदि आर्य जाति को जीवित जागृत, समुन्नत देखने के अभिलाषी हैं, तो अराष्ट्रीय तत्वों के षडयन्त्रों एवं आघातों से भारत राष्ट्र एवं वैदिक धर्म की रक्षा में प्राणों की आहुति भी देनी पड़े, तो हमें सदैव सहर्ष तैयार रहना चाहिए। तभी श्रद्धानन्दजी का बलिदान दिवस मनाना और उनके प्रति श्रद्धाञ्जलि अर्पित करना सार्थक एवं हित कर होगा।

### कोटा राज्य में वैदिक धर्म प्रचार

मैंने ता० १७.९.६८ को अजमेर से बून्दी के लिये प्रस्थान किया और लगभग ४ बजे वहां पहुँच और मदन मोहन जी जाजलिया एम. ए. के गृह पर पहुंचा। आपके और रतन लालजी पुरोहित और श्रीपंविद्याधरजी आदि सज्जनों के प्रयत्न से यहां कुछ मास से अर्थ समाज की स्थापना हो गई है पुरोहितजी के वहां न होने से प्रचार की व्यवस्था न हो पाई। १८ता:कोमैंने कोटे के लिये प्रस्थान किया और ता: १९ को प्रातः समाज मन्दिर में नित्य के यज्ञ के पश्चात् वेदोपदेश किया और २१ तारीख को बारां पहुँचा और २२ तारीख को समाज के साप्ताहिक अधिवेशन वेदोपदेश किया और रात्रि को समाज मन्दिर में मेरा सार्वजनिक व्याख्यान हुआ, और सोमवार को श्रीमतीमाता लज्जावती जी की सुव्यवस्था से यहां की महिला आर्यसमाज में मेरा नारी केकर्त्तव्य पर उपदेश हुआ यहां से प्रस्थान कर आटौन पहुंचाया और यहां तीन दिन तक प्रातः श्रीमान् राजवैद्य रघुनाथदास जी से० राधा किशन जी विजय की सुव्यवस्था में विशेष यज्ञ किया। जिसमें वर्षा के लिये भी आहुतियां दी गई और दूसरे ही दिन वर्षा हुई। मेरे उपदेश से पूर्व यहां के लड़के लड़कियों के भजन हुए और यहां के प्रसिद्ध कवि श्री जगदीश जी के उपदेश हुये। यहां से प्रस्थान कर अटरू होता हुआ छीपा बड़ौद पहुंचा और श्री सेठ नन्दलालजी अग्रवाल की सुव्यवस्था से सार्वजनिक सभा का आयोजन किया गया। व्याख्यान के पूर्व ही वर्षा हो जाने के कारण यहां के लक्ष्मीनाथ जी के मन्दिर में उपदेश हुआ और दूसरे दिन यहां की होली केचुकड के मैदान में सार्वजनिक सभा हुई उपस्थिति बहुत अच्छी थी। प्रचार का प्रभाव जनता पर उत्तम रहा। समाज की ओर से ४०) सभा को प्रदान किये यहां से चलकर कोटे आगया

### कोटे में दशहरे के मैले में प्रचार

कोटे का दशहरा का मैला राजस्थान में बहुत प्रसिद्ध है। यहां आर्यसमाज की ओर से ता:-१-१०-६८ से ४ ता: तक बड़े ही समारोह पूर्वक वैदिक धर्म के प्रचार की व्यवस्था की गई समाज के प्रचार मंत्री श्री गोपीवल्लभ जी की सुव्यवस्था से चार दिन तक सहस्त्रों नर नारियों के कान पर वैदिक धर्म का शुभ सन्देश पहुँचा चार दिन मेंतीन बार प्रचार होता था। जिसमें यहां स्थानीक श्री सुखदेव जी वानप्रस्थ और श्री स्वामी परमानन्द जी के भजन व्याख्यान होते थे। और मथुरा के प्रसिद्ध भजनोपदेशक श्री पं० किशोरीलाल जी के और सुप्रसिद्ध भजनोपदेशक पं० ओम प्रकाश जी वर्मा के बड़े ही मनोहर भजन और मेरे व्याख्यान ग्रामीण भाषा में होते रहे। प्रचार का प्रभाव जनता पर बहुत ही अच्छा रहा और ग्रामीण जनता जान सकी कि आर्यसमाज वास्तव में सच्चा वैदिक धर्म है और मानव जाति का कल्याण करने वाला है आर्यग्राम अर्जुनपुरा के आर्यभाई मुझे और श्री सुखदेव जी को अपने ग्रामता.५-१०-६८को ले गये और रात्रि को हम दोनोंने प्रचार किया स्त्री पुरुषों की संख्या बहुत अधिक थी यहाँ के आर्य बड़े ही उत्साही है।

ओम् भक्त वानप्रस्थ

# आर्य-समाज की 'भारी-भूल

( श्री पं० रणवीर चन्द्र कहोल सिकन्दराबाद आ० प्र० )

देश को स्वतन्त्र हुए आज २१ वर्ष से अधिक बीत चुके, परन्तु स्वतन्त्रता के फल सुख-समृद्धि तथा शान्ति आदि की किंचित् भी लब्धि, सिद्धि यहां नहीं दीखती, इसके विपरीत, महान् अशान्ति तथा अवनति सर्वत्र दृष्टिगोचर होती है। ओह ! कितना उत्तम इससे तो पराधीनता का वह काल था, जबकि देशवासियों के हृदय में देश-भक्ति तथा गो भक्ति आदि अनेक शुभ विचारों एवं भावनाओं की धारायें बह रही थीं और जिनकी सिद्धि के लिये व्याकुल हुये वे अपना सर्वस्व, अपने जीवन, अपनी जवानियाँ और अपने प्राणों तक की बलियां, उस सुख-रूपा स्वतन्त्रता देवी के निमित्त भेंट करने को सदा तत्पर थे। अन्ततः अनेक वेदनाओं बलिदानों आदि के पश्चात् स्वतन्त्रता देवी के दर्शन तो हुए, परन्तु हुए खण्डित, अपूर्ण, भयकर-रूप में। ऐसी दशा में भी यह भारत यदि दयानन्द के सपनों का भारत न भी बन पाता तो कम से कम एक स्वतन्त्र, स्वाभिमानित राष्ट्र तो बन ही जाता ! परन्तु देश का दुर्भाग्य था कि इस प्राप्त शासनीय सत्ता पर एक रावण के समान बलवान, अभिमानी, अनार्य पुरुष का प्रभुत्व छाया हुआ था और जिसके कारण देश कुमार्ग पर चलकर स्वतन्त्रता के वास्तविक सुख से वञ्चित हो गया और फिर भी उसी आधार रहित धारा पर बहता हुआ दुख-सागर में गोते खाता जा रहा है। किसी को स्वप्न में भी यह भान नहीं था कि इस प्रकार का कुराज्य यहां कभी आयेगा।

देशभक्ति, गो-भक्ति तथा सुराज्य-सुख के भद्र विचारों, भावों से प्रेरित तथा प्रभावित आर्य : समाज एवं आर्य-जनों ने कांग्रेस को सब प्रकार का सहयोग, समर्थन तथा सहाय प्रदान कर, करा कर स्वतन्त्रता-संग्राम को सफल कराया था। यह सब कुछ तो ठीक हुआ परन्तु स्वतन्त्रता प्राप्ति की घोषणा के साथ ही इन असह्य गोवध बन्दी तथा राष्ट्रभाषा सम्बन्धी अत्यावश्यक घोषणाओं को न सुन कर शिरोमणी आर्य-प्रतिनिधि सभा को अपना असन्तोष तथा रोष प्रकट करना चाहिये था और इसका अनुकूल एवं उचित उत्तर अथवा प्रतिकार न पाकर इस पर तत्काल ही विचार करना चाहिये था। यदि स्वतन्त्रता प्राप्ति के पूर्व किसी कारण वश आर्यसमाज द्वारा "राजार्य-सभा" की स्थापना न हो सकती थी। तो अब इस समय अवश्य कर देनी चाहिये थी, अब "धमार्य-सभा ' की स्थापना आवश्यक थी। तो "राजार्य सभा" की स्थापना भी कुछ कम आवश्यक नहीं थी। ब्राह्मशक्ति तथा क्षात्र शक्ति का मिलाप ही सदा सुखकारी होता है। शासकीय शक्ति का बहुत बड़ा महत्व होता है। पदों (नौंकरियों) आदि के लोभ तथा पुलीस और सैन्य आदि शक्ति के भय से ही प्रायः जनसाधारण प्रलोभित, प्रभावित हुआ अनुकूल होकर चलता है। कोरे धर्म के आलाप को कभी कोई नहीं सुनता मानता। आज इस "भारी भूल" के कारण आर्यसमाज की विमल-कीर्ति पर धुन्ध सी छा गई है और जनसाधारण का आकर्षण आर्यसमाज की ओर से घटतासा आ रहा है। आर्यसमाज से मैं प्रगल्भ-वक्ताओं, मूर्धन्य-विद्वानों, सन्यासियों, शास्त्रार्थ-महारथियों और कर्मठ तपस्वीजनों के स्थान पर स्वार्थी "गंगा-यमुना दासी', जनों की प्रधानता सर्वत्र दृष्टिगोचर हो रही है। आर्य-राज्य एवं राष्ट्र की सुन्दर रुप-रेखा, नियम तथा विधि-विधान आदि को केवल पुस्तकों में पढ़कर ही बेचारे आर्यजन सन्तोष कर रहे हैं। और ये सब इस भूल के ही शूल और त्रिशूल हैं। "राजार्य सभा" की स्थापना अर्थात चुनाव आदि द्वारा आर्यजनों के शासन एवं विधान-सभा आदि में न आने के कारण आज इस अनार्य कांग्रेसी शासन द्वारा इन निम्न प्रकार की घातक घटनाओं और योजनाओं आदि की कृतियों द्वारा राष्ट्रीय पतन एवं विनाश हो रहा है:—

(१) सारे पूर्वी-देशों से बाहर धकेले गये घातक ईसाई मिशनरियों को इस अभागे देश में, काले अंग्रेजों (कांग्रेसियों) के कुशासन काल में यहां स्थान ही नहीं मिला वरन् स्वागत तथा सन्मान भी मिला। लार्ड मैकाले का जो स्वप्न अंग्रेजी शासन काल में यहां पूरा न हो सका, उसे इन काले अंग्रेजों (काग्रेसियों) ने ईसायत तथा अंग्रेजियत का भरपूर प्रचार तथा प्रसार कर कराकर पूर्ण ही नहीं अपितु परिपूर्ण कर दिखलाया। और वीर प्रसूता भारत माता की गोद को विषयी, लम्पट, दास भावना युक्त, उद्देश्यहीन भारत में ही अभारतीय सदृश्य, देशभक्ति तथा गोभक्ति आदि से नितान्त शून्य, नपुंसकों से भर दिया। नागों जैसे भोले भाले पहाड़ी देशभक्तों को घातक देशद्रोही बनवा दिया। औरंगजेब की तेज-तलवार हिन्दुओं ( आर्यों ) की जिस ऋजु-चोटी को न काट सकी, उसे अंग्रेज अथवा अंग्रेजियत की क्रूर-कलम द्वारा सुगमता से आज कटवाकर रख दिया।

(२) देश की बृहद् अखण्डित सीमाओं तथा राष्ट्रीय एकता की भावनाओं को इन स्वार्थी कांग्रेसियों ने विभाजन और फिर प्रान्त तथा भाषा सम्बन्धी बखेड़ों में उलझा-कर स्वयं खण्डित, संकुचित एवं छिन्नभिन्न कर दिया।

(३) गोरे अंग्रेजों की जिस गोवध योजना को यहां नामधारी सिखों आदि शूरवीरों ने अपने श्रद्धा-भरे बलिदानों द्वारा असफल बना दिया था, उस योजना से सहस्रों गुण बृहद् गोवध योजना को आज यहां वह काले अंग्रेज (कांग्रेसी) बड़ी निर्भयता से चला रहे हैं। सारे यवन तथा अंग्रेजी शासन काल में इतना गोवध यहां नहीं हुआ होगा जितना कि आज एक दिन में हो रहा है। भोर होते ही तीस पैन्तीस हजार अघ्न्या, पूजनीया गोओं की गर्दन पर कोमल हार के स्थान पर कठोर कटार चल जाती है। जहां हजारों मन गोघृत की आहुतियों से यहां सूर्य भगवान का स्वागत होता था, वहां आज हजारों मन गो-रक्त से वहां हो रहा है। चन्द चान्दी के टुकड़ों (डालरों) के लिये "अघ्न्या" गो माता के टुकड़े टुकड़े कर यहां आज बेचा जा रहा है। भारत आज गोमांस की विश्व-व्यापी प्रथम मार्किट बना हुआ है, आज इस "राष्ट्रीय-धन" गोधन से हीन हुआ जाता यह सारा राष्ट्र सब प्रकार दीन, हीन पराधीन हुआ, महा दुख-सागर में गोते खा रहा है। इस प्रकार अन्य अनेक कुशासनीय बातें यहां सर्वत्र हो रही हैं। गोमांस विक्रय कर कमाये धन से खरीदे अन्न ने आज सब को बुद्धिभ्रष्ट, भीरु तथा नपुंसक बना दिया है।

ये भ्रमः

(१) कुछ लोग कहते हैं कि आर्यों का यदि राज्य हो तो वे सिग्रेट तथा शराब आदि के पान को बन्द कर देंगे और इस दिशा में से कितने वोट आर्यसमाजियों को मिलेंगे ? वाह ! यह भी क्या बुद्धि की बात कही। अरे भाई ! आर्यसमाज सब से यथायोग्य समयानुसार सबसे वर्तना जानता है। इस विषय में वह ऐसी युक्तियां तथा भावनायें पैदा कर देगा कि वे अपने दोषों तथा दुर्व्यसनों से स्वयं घृणा करने लग जायेंगे और उनका त्याग कर देंगे।

(२) एक और भ्रम यह पाया जाता है कि कांग्रेस ने आर्यसमाज की बहुत सी बातों को अपना लिया है और आर्यसमाज की विशेष आवश्यकता अब नहीं रही। इसका उत्तर यह है कि यदि कांग्रेस ने आर्यसमाज के "अछूतोद्धार" आदि किसी कार्य को अपनाया भी है, तो उसके विकृत, भद्दे तथा असुन्दर रूप में ही। चाहे आज कांग्रेस आदि संस्थाओं की आवश्यकता यहां न भी रही हो परन्तु आर्यसमाज की आवश्यकता तथा अनिवार्यता तो त्रिकालिक तथा सार्वभौम है। आर्यसमाज की स्थापना बड़े प्रतापी हाथों द्वारा हुई है। जब तक सूर्य चन्द्र चमकते रहेंगे तब तक आर्यसमाज की विमल कीर्ति भी चमकती रहेगी, और आर्यसमाज सदा अमर रहेगी।

(शेष पृष्ठ ६ पर)

वैदिक-सत्र—

( सत्संग-प्रसंगों के लिये )

# नर–नारायण

लेखक—श्री पं० जगत कुमार शास्त्री "साधु सोमतीर्थ" देहली

·क पून्नर ः ।

ऋ० १० । १०१ । १२

जो सुख की वृद्धि करता है, वही नर है ।

## प्रवचन

जो स्वयं सुखी है, और अपने कार्यों के द्वारा संसार के सुख-समुदाय में वृद्धि करता है, वेद की भाषा में उस श्रेष्ठ मनुष्य को नर कहते हैं । मनुष्य पुरुष, मानव, मर्त्य, नर आदि मनुष्य वाचक सभी शब्द अपने-अपने यौगिक ( धातुज ) अर्थों को रखते हुए भी सामान्यतया एक ही "मनुष्य" अर्थ को बतलाने वाले हैं । वेद के उपदेशानुसार सुख की प्राप्ति एवं वृद्धि प्रत्येक मनुष्य का एक आवश्यक कर्त्तव्य है । मनुष्य का स्वयं सुखी हो जाना ही पर्याप्त नहीं है । संसार में सुख की वृद्धि करना, अर्थात् दूसरे प्राणियों को सुखी बनाना भी आवश्यक है । दूसरों को दुःखी बनाकर स्वयं सुखी होना तो भारी पाप, अपराध और निन्दित कर्म है । कोई सच्चा नर तो संसार में दुख की वृद्धि कभी करता ही नहीं । और जो दुख की वृद्धि करे स्वयं भी दुखी बना रहे, वह चाहे और कुछ भी हो, नर नहीं ।

सुख-क्या है, और दुख क्या ? अपने-अनुभव के आधार पर हम सभी इस विषय में कुछ न कुछ तो जानते ही हैं । दुख से सभी बचना चाहते हैं । सुख की कामना भी सभी किया करते हैं । एक बड़ी विचित्र बात यह है कि कामना करने पर भी सुख सब किसी को नहीं मिलता । संसार में पूर्ण सुखी प्राणी तो कोई कोई ही होंगे । दूसरी ओर न चाहने पर भी दुख तो सभी को भोगने पड़ते हैं नाना प्रकार के दुःखों की संसार में भर-मार हो रही है । किसी का स्वास्थ्य बिगड़ गया । किसी को मृत्यु ने सताया, किसी को अभाव ने आया । गिनती बढ़ाने से क्या लाभ ? हम सब प्रति दिन अपने अपने दुखों के साथ संघर्ष किया ही करते हैं । शास्त्री भाषा में स्वतन्त्रता सुख है, परतन्त्रता दुख । अनुकूल वेदना सुख है, प्रतिकूल वेदना दुख, एवमेव इन्द्रियों की उत्तमता सुख है, अनुत्तमता दुख ।

फिर, सुख की प्राप्ति और सुख-समुदाय की वृद्धि का उपाय क्या है ? गम्भीरता पूर्वक विचार करने से उस उपाय को बोध भी यहां प्राप्त होता है । "क" यह नाम सुखस्वरूप, प्रजापति परमात्मा का है । परमात्मा तो सुख का भण्डार और सब सुखों का प्रदाता प्रसिद्ध ही है । अतः यहां सुस्पष्ट अर्थ व्यंजना होती है कि जो मनुष्य ईश्वर स्तुति, प्रार्थना और उपासना आदि शुभ कर्मों के द्वारा ईश्वर को प्रसन्न करता है, और ईश्वर भाव अर्थात् आस्तिकता का प्रसार करता है, वही सच्चा नर है । ईश्वर परायणता ही संसार में सुख की वृद्धि का सर्व श्रेष्ठ उपाय है ।

संसार के सम्पूर्ण सज्जन पुरुषो ! तुम सुखी बनो और संसार के सुख-समुदाय में वृद्धि करो । संसार में सुख की वृद्धि करने का एक सुनहरी नियम यह है कि प्रत्येक को अपनी ही उन्नति से सन्तुष्ट न रहना चाहिये, अपितु सबकी उन्नति में अपनी उन्नति समझनी चाहिये । संसार के विषय भोगो में भी कुछ सुख मिलता तो है, परन्तु वह तो क्षण भंगुर और विकार-ग्रस्त होता है । विषय-भोग जन्य सुख शीघ्र ही नष्ट भी हो जाता है, और अधिक उपभोग करने से रुचता भी नहीं है । न मिलने पर विषय-भोगजन्य दुख देता ही है, सुलभ होने पर वह नीरस भी प्रतीत होने लगता है । सुख का सच्चा साधन तो ईश्वरवाद ही है ।

वैदिक-यज्ञवाद भी संसार में सुख की वृद्धि और ईश्वरवाद के प्रसार का ही एक मुख्य-साधन है । यज्ञवाद के तीन प्रसिद्ध अंग हैं—देवपूजा, संगति-करण और दान । देव-पूजा तो सुख प्राप्ति का सर्व श्रेष्ठ साधन है ही । संगति-करण से मिलकर रहने, बांट कर खाने और सहयोग पूर्ण जीवन-यापन से मानव-समाज में सहज में ही सुख का प्रसार हो जाता है । दान से दाता और आदाता दोनों को ही सुख मिलता है । सुख की वृद्धि का एक अन्य उपाय "त्यागवाद" भी है । उसका विचार भी "यज्ञवाद" के अन्तर्गत ही करना चाहिये ।

( शेष पृष्ठ ४ का )

ऋषिवर, मान-अपमान तथा हानि लाभ आदि का किंचित् भी विचार न करते हुये तुमने वेदज्ञान रूपी अमृत को उसके विशुद्ध तथा यथार्थ रूप में अन्ततः सुरक्षित रखा असत्य तथा अन्याय से तुमने कभी समझौता नहीं किया । हजारों वर्षों से अन्ध-कार में भटकती मानवता को तूने वेद-ज्ञान का प्रकाश दिखाया, चिरकाल से सोई हुई मृतप्राय दासभाव युक्त हो गई हिन्दू (आर्य) जाति को तूने उसके गौरव-भरे अतीत तथा उसके स्वरूप का दर्पण दिखाकर उसके जातिय स्वाभिमान को जाग्रत किया और उसमें स्वतन्त्रता तथा स्वराज्य के प्राणों को फूंक दिया । महर्षे ! आज के आसुरी-विज्ञान की चका-चौंध से प्रभावित हो रहे जन साधारण की भांति आप उससे किंचित् भी विचलित एवं प्रभावित न हुए । कारण, कि आप इसकी यथार्थता अर्थात निःसारता आदि को भली प्रकार जानते थे । जब अभी विमान नहीं बना था, केवल बैलून ही उड़ाये जा रहे थे, उस समय आपने विमान के निर्माण की घोषणा सुनाई थी । आपने बताया एक समय ऐसा था कि दरिद्रों के पास भी घर घर में विमान होते थे । आपके अद्भुत ज्ञान विज्ञान तथा राजनीति आदि के बखान को सुनकर बड़े बड़े अंग्रेज़ अधिकारी, विद्वान, वैज्ञानिक तथा नीतिज्ञ दांतों तले उंगली दबाते थे । पण्डित वर ! "वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है" यह ऐसा निर्भ्रान्त निर्णय देना आपकी महति विद्वत्ता, अपार पाण्डित्य तथा असीम स्वाध्याय का द्योतक है । स्वामिन ! आपके अखण्डित ब्रह्मचर्य-बल, अतुलित आत्मबल एवं सिंह समान निर्भीकता तथा स्पष्टवादिता आदि गुणों का प्रदर्शन आपके जीवन में सर्वत्र होता ही है, परन्तु तत्कालीन वायसराय-हिन्द लार्ड नार्थ ब्रूक के समक्ष हुये वार्तालाप में तो यह असाधारण और अद्भुत ही था । महात्मन् ! एक योग्य वैद्य की भांति आपने रोगी दुखी देश की नाड़ी को जांच लिया था और "गोधन" के विनाश को रोग का मूल कारण जान, बड़ा सफल गोवध बन्दी आन्दोलन चलाया था और सम्भवतः इसी कार्यवश आप राजस्थान गये थे, परन्तु देशका दुर्भाग्य था कि आपके तत्काल देहावसान के कारण वह आन्दोलन अधूरा रह गया और जिसे हम आज तक भी पूरा न कर सके । भगवन् ! आर्यों के सुखकारी चक्रवर्ती राज्य का वर्णन एवं विवरण बताकर आपने "राजार्य सभा" के स्थापना-विषय को निर्विवाद तथा निर्भ्रान्त बना दिया था । परमहंस ! जिस प्रकार अपने, अपने से योग्य शिष्य को देखकर गुरुवर हर्षाता है, उस प्रकार ब्रह्मा से लेकर जैमिनी तक ऋषियों ने आपके आगमन पर पुष्प-वर्षा की, गद्‌ गद्‌ वाणी आपकी विचित्र कृति की प्रशंसा की । गुरुवर ! भावी विश्व-की सन्तानें आपको परमहंस, परिव्राजकाचार्य, परमोद्धारक आदि न जाने किन किन सुन्दर संज्ञाओं से सम्बोधित कर अपना आभार प्रकट करेंगी एवं कृतज्ञता और प्रेम के आंसु बहायेंगी । एक हम हैं कि आपके अनुयायी 'आर्य' कहा कर भ अपने अनुरूप कार्य को नहीं कर रहे हैं ।

शेष पृष्ठ ८ पर

# माध्यामिक चुनाव १९६९ का

राजनैतिक विलेश्षण

श्री नाना जी देशमुख

गत २० वर्ष के कांग्रेसी शासन से जनता ऊब चुकी थी। यह नहीं चाहती थी कि कांग्रेस फिर से सत्तारूढ़ हो। जनता के सामने विकल्प के रूप में कोई निश्चित दल नहीं था। सभी गैर कांग्रेसी दलों का न्यूनतम कार्यक्रम के आधार पर चुनाव के पूर्व कोई संयुक्त मोर्चा भी नहीं बना था। जनता की यह नकारात्मक भावना साकार हुई और अनेक प्रदेशों में १९६७ के आम चुनाव में कांग्रेस का २० वर्षीय शासन समाप्त हुआ।

जिन प्रदेशों में कांग्रेस अपनी सरकारें बना पाई थी, उनमें से भी हरियाणा, उत्तर प्रदेश तथा मध्यप्रदेश में मुख्य मन्त्री और मन्त्री बनने के लोभ में अनेक विधायकों ने कांग्रेस को त्याग दिया। परिणाम स्वरूप इन प्रदेशों में भी मन्त्रिमडलों का पतन हुआ।

सत्ता के सहारे जीने वाली कांग्रेस को इन प्रदेशों में सत्ता के बिना जीना असम्भव सा प्रतीत होने लगा। आदर्शहीन दल की यही स्वाभाविक अवस्था है। अतः केन्द्रीय शासन हाथ में होने का उसने लाभ उठाया। राज्यपालों के विशेष अधिकारों का दुरुपयोग किया गया। लोकतांत्रिक परम्परा की अवहेलना की और बंगाल, बिहार एवम् पंजाब में अल्पमत सरकारों की सृष्टि कर उसने अपरोक्ष रूप से सत्ता हस्तगत की। किन्तु सत्ता प्राप्ति के भूखे कांग्रेसी विधायकों ने ही अपने नेताओं के प्रयासों को पूर्णरूप से विफल कर डाला।

हरियाणा में मध्यावधि चुनाव हुए। कांग्रेस ने पूरी शक्ति लगाकर वहां बहुमत प्राप्त किया, किन्तु वहां भी खींचतान चल रही है। मुख्यमन्त्री श्री बंशीलाल को विधान सभा की बैठक बुलाने का साहस नहीं हो पा रहा है। इससे स्पष्ट हो जाता है कि बहुमत पाने पर भी कांग्रेस अब स्थाई एवम् जनहितैषी सरकार नहीं दे सकती।

चौथे आम चुनाव के बाद अनेक प्रदेशों में संयुक्त दलों की मिली जुली सरकारें बनी। यह असाधारण प्रयोग संतोषजनक सिद्ध नहीं हुआ। वे अल्पजीवी रहीं। अनेक गुटों में विभक्त एक दल या अनेक दलों का संयुक्त मोर्चा स्थाई व लोक कल्याणकारी सरकार नहीं दे सकता।

ऐसी स्थिति में देश का भविष्य बनाने के लिये आवश्यकता है शासन सूत्र संभालने के लिये आदर्शवादी व अनुशासित, योग्य व सक्षम, जनहित व राष्ट्रहित के लिये समर्पण की भावना से प्रेरित कार्यकर्त्ताओं के सुसंगठित दल को विकल्प के रूप में समर्थ बनाने की आवश्यकता है, यही समय की मांग है और राष्ट्र की आवश्यकता। वर्तमान स्थिति में प्रत्येक नागरिक का यह कर्त्तव्य है कि वह इसके लिए प्रयत्नशील हो।

जनसंघ इसी एकमेव पुनीत लक्ष्य से प्रेरित होकर गत १७ वर्ष से कार्यरत है। अपने लघु जीवन में उसने अनेक आघात सहे। उसके विरुद्ध आम प्रचार होता रहा। उपेक्षा का वह शिकार बना। किन्तु कार्यकर्त्ताओं की ध्येय, निष्ठा, कर्त्तव्य-तत्परता और परिश्रम की पराकाष्ठा संगठन को व्यापक, प्रभावशाली व सफल बनाती गई। सन् १९५२ में २ विधायकों से प्रारम्भ कर उसने १९६७ में उत्तर प्रदेश विधान सभा में ९९ स्थान प्राप्त किये। इस मध्यावधि चुनाव मे वह बहुमत प्राप्ति की आंकांक्षा लिये अग्रसर हो रहा है। जनसंघ का व्यापक संगठन, जनता के मन में उसके प्रति विश्वास एवम् अन्य राजनैतिक दलों की अस्तव्यस्तता उसे अपने लक्ष्य सिद्धि में सहायक है।

### १९६७ के आम चुनाव के परिणामों का विश्लेषण

| दल का नाम | उम्मीदवार संख्या | प्राप्त स्थान | प्रतिशत प्राप्ति स्थान | प्राप्त मत | प्रतिशत प्राप्त मत |
|---|---|---|---|---|---|
| कांग्रेस | ४२५ | १९९ | ४६.८ | ६९२१४१८ | ३२.२ |
| जनसंघ | ४०१ | ९९ | २४.२ | ४६४१८७१ | २२.० |
| स्वतन्त्र पार्टी | २११ | १३ | २.७ | १०४२५५३ | ४.९ |
| संसोपा | २५४ | ४२ | ९.८ | २१२७७३९ | ९.९ |
| कम्यूनिस्ट | ९६ | १३ | ३.० | ९५१७६७ | ३.८ |
| प्रसोपा | १६७ | ११ | २.५ | ८८०४७९ | ४.१ |
| रिपब्लिकन पार्टी | १६८ | १० | २.३ | ८४२४०१ | ३.९ |
| निर्दलीय | १२३६ | ३७ | ८.७ | ४०७६९९८ | १९.५ |

### १९६७ के आम चुनाव में जनसंघ की स्थिति

४२५ सदस्यों की विधान सभा में (उत्तर प्रदेश) जनसंघ को ९९ स्थान प्राप्त हुए थे। ११४ स्थानों पर जनसंघ द्वितीय स्थान पर रहा था। इसी प्रकार ९० स्थानों पर वह तृतीय स्थान पर रहा।

जिन ११४ स्थानों पर वह द्वितीय था उनमें से ८४ स्थान ऐसे रहे हैं जहां बहुत कम अन्तर से उसने ये स्थान खोये। इन क्षेत्रों में संगठन अच्छा है किन्तु साधन एवम् धन के अभाव मात्र से ही ये स्थान प्राप्त नहीं हो पाये थे।

जिन ९० स्थानों पर जनसंघ तृतीय रहा- उनमें से २० स्थान ऐसे हैं जहां प्रथम, द्वितीय एवम् तृतीय उम्मीदवारों में मतों का अन्तर बहुत कम रहा है। इन क्षेत्रों में जनसंघ का कार्य अच्छा है। केवल धन व साधन की की कमी ही विजय में बाधक रही। साधन जुटाने से स्थान सहज में हस्तगत किये जा सकते हैं।

इनके अतिरिक्त २८ क्षेत्र ऐसे हैं, जिनमें १९६७ के चुनाव में प्रथम तीन में जनसंघ नहीं रहा किन्तु बाद में इन क्षेत्रों में स्थिति क अनुकूलता देखकर व्यापक रूप से संगठन खड़ा किया गया है। साधनों की ही केवल व्यवस्था होनी शेष है। इसमें विजय प्राप्त हो सकती है।

इनके अतिरिक्त ३७ निर्वाचन क्षेत्र जो हरिजनों के लिए सुरक्षित हैं। सब दृष्टि से अनुकूल हैं। उनमें साधनों की व्यवस्था आवश्यक है। इनमें विजय पाना सहज संभव हो सकती है।

(शेष पृष्ठ ७ पर)

एक उलझन

# केश-लुंचन वे और हम

श्री पं० जगत्कुमारजी शास्त्री "साधु सोमतीर्थ" देहली

श्री जिनदत्तसूरी के श्लोकों के आधार पर स्वामी दयानन्द सरस्वती जी सत्यार्थ प्रकाश के बारहवें समुल्लास में जैन साधुओं के विषय में लिखते हैं:—

"चमरी रखना और भिक्षा मांग के खाना, शिर के बाल लुंचित कर देना, श्वेत वस्त्र धारण करना, क्षमायुक्त रहना, किसी का संग न करना, ऐसे लक्षणयुक्त जैनियों के श्वेताम्बर (हैं) जिनको यति कहते हैं ॥१॥ दूसरे दिगम्बर अर्थात् वस्त्र धारण न करना शिर के बाल उखाड़ डालना, पिच्छिका (एक ऊन के सूतों का झाडू लगाने का साधन) बगल में रखना, जो कोई भिक्षा दे तो हाथ में लेके खा लेना, ये दिगम्बर दूसरे प्रकार के साधु होते हैं ॥२॥ और भिक्षा देने वाला गृहस्थ जब भोजन कर चुके उसके पश्चात् भोजन करें। वे जिनर्षि अर्थात् तीसरे प्रकार के साधु होते हैं। दिगम्बरों का श्वेताम्बरों के साथ इतना ही भेद है कि दिगम्बर लोग स्त्री का अपवर्ग नहीं कहते और श्वेताम्बर कहते हैं। इत्यादि बातों से मोक्ष को प्राप्त होते हैं ॥३। यह इनके साधुओं का भेद है। इससे जैन लोगों का केश-लुञ्चन सर्वत्र प्रसिद्ध है। और पांच मुष्टि लुञ्चन करना इत्यादि भी लिखा है। विवेक सार भा० पृष्ठ २१६ में लिखा है कि पांच मुष्टि लुञ्चन कर चारित्र ग्रहण किया अर्थात् पांच मूठी शिर के बाल उखाड के साधु हुआ। (कल्प सूत्र भाष्य पृष्ठ १०८) केश-लुञ्चन को गौ के बालों के तुल्य रखे।"

केश-लुञ्चन के विषय में स्वामीजी की विशेष समीक्षा इस प्रकार है:—

"समी०—अब कहिये, जैन लोगों! तुम्हारा दया धर्म कहां रहा? क्या यह हिंसा अर्थात् चाहे अपने हाथ से लुञ्चन करे, चाहे उसका गुरु करे, वा अन्य कोई परन्तु कितना बड़ा कष्ट उस जीव को होता होगा! जीव को कष्ट देना ही हिंसा कहाती है।"

निसन्देह यह केश-लुञ्चन एक महा क्रूर और घोर असभ्यता पूर्ण कर्म है। इसके विषय में सत्यार्थ प्रकाश के बारहवें समुल्लास में ही स्वामी दयानन्दजी जैनियों के सामने प्रश्न प्रस्तुत करते हैं:—

"जब तुम चेला-चेली करते हो, तब केश-लुञ्चन और बहुत दिवस भूखे रहने में पराये वा अपने आत्मा को पीड़ा दे और पीड़ा को प्राप्त हो के दूसरों को दुःख देते और आत्म-हत्या अर्थात् आत्मा को दुःख देने वाले होकर हिंसक क्यों बनते हो?"

स्वामी दयानन्दजी का मन्तव्य सुस्पष्ट है। वे केश-लुञ्चन को हिंसा पूर्ण और निन्दित-कर्म समझते हैं। ऐसी अवस्था में एक उलझन वा असंगति हमारे सामने है, जिसका समाधान होना चाहिये। संस्कार-विधि के संन्यास प्रकरण में स्वामीजी लिखते हैं:—

"तदनन्तर जो संन्यास लेने वाला है वह पांच वा छः केशों को छोड़कर, पृष्ठ ६७-६६ में लिखे डाढ़ी मूंछ केश लोमों का छेदन अर्थात् क्षौर कराके, यथावत् स्नान करे।"

फिर आगे चलकर लिखते हैं:—

"इसके पश्चात् मौन करके शिखा के लिये जो पांच वा सात केश रक्खे थे, उनको एक-एक उखाड़ और यज्ञोपवीत उतार कर हाथ में ले जल की अञ्जलि भर:—ओमापो वै सर्वा देवता: स्वाहा:॥ ओं भू: स्वाहा॥ इन मन्त्रों से शिखा के बाल और यज्ञोपवीत सहित जलांजलि को जल में होम कर देवे।"

ऊपर से लेख में "पांच वा छः" अथवा "पांच वा सात" बालों को उखाड़ने और यज्ञोपवीत के साथ जल में होमने का उल्लेख है। मेरी उलझन यह है कि संस्कार-विधि में यह उल्लेख क्यों हो? क्या यह श्री स्वामी दयानन्दजी का ही लेख है? क्या यह हिंसा पूर्ण क्रूर कर्म नहीं है? इसका औचित्य क्या है? क्या यह लेख किसी ने संस्कार-विधि में मिला दिया है? आर्य विद्वान् इस उलझन को सुलझाने की कृपा करें।

उलझन और बढ़ गई

## एक महाभ्रष्ट चेष्टा

सत्य—प्रकाशन मथुरा की ओर से अभिनव संस्कार-चन्द्रिका नामक एक बड़ा ग्रन्थ अभी हाल में ही छपा है। यह पुरानी संस्कार-चन्द्रिका का ही किंचित बदला हुआ नया रूप है। हमें यह देखकर अत्यन्त आश्चर्य हो रहा है कि इस में सम्पादकजी ने या अनुवादकजी ने संस्कार-विधि के केश-उखाड़ने विषयक लेख की जड़ ही उखाड़ दी है। कितना बड़ा दुस्साहस है? इसमें संस्कार-विधि के लेख को यूं बदला है:—

"इसके पश्चात् मौन करके शिखा के लिये जो पांच वा सात केश रक्खे थे, उनको एक-एक करके काटे और........."

यहां "उखाड़" शब्द को निकाला और "करके काटे" इन शब्दों को जोड़ा गया है। क्यों इसका कोई कारण नहीं लिखा। संपादक वा अनुवादक को उखाड़ने की बात बुरी लगी होगी। अतः यह हेर-फेर कर दिया गया। ऐसा जान-बूझ कर ही किया गया है। अभिनव संस्कार चन्द्रिका के ४४३ पृष्ठ पर सम्पादक जी लिखते

"फिर विधान है कि मौन होकर पांच-सात जो बाल शिखा के रखे थे, वह भी काट डाले.........और यज्ञोपवीत सहित जल में डाल देवे।"

जिन लोगों ने बालों के उखाड़ने का लेख ही संस्कार-विधि में से निकाल दिया और उसके स्थान पर नया लेख रख दिया उनसे समाधान की आशा क्या हो सकती है? न जाने "संस्कार-चन्द्रिका" और "अभिनव संस्कार-चन्द्रिका" के सम्पादकों ने कितने लेख संस्कार-विधि में से निकाले हैं और कितने नये लेख उसमें डाले हैं। स्वामी दयानन्द सरस्वती जी के ग्रन्थों में हेर-फेर और मिलावट की यह प्रवृत्ति अत्यन्त निन्दनीय है। ऐसे भ्रष्टाचारों की रोक-थाम कौन करेगा!

### शोक महाशोक

आर्य जगत को यह दुःख दायी समाचार देते हुये हमें महान् वेदना होती है कि भारत माता के सच्चे सपूत, पवित्र वैदिक धर्म और आर्य इतिहास के मर्मज्ञ वैदिक विद्वान् श्री पं० भगवद्दत्तजी रिसर्च स्कालर का दुखद देहान्त २३ नवम्बर ६८ को देहली में हो गया। आप गत एक मास से रुग्ण चले आ रहे थे अन्ततोगत्वा निष्ठुर कराल काल ने आप को सदैव के लिए हमसे छीन लिया। ऐसे वैदिक विद्वान के उठ जाने से केवल आर्य समाज की ही क्षति नहीं हुई किन्तु भारत के सच्चे इतिहास का एक महान् विद्वान हमारे बीच में से चल बसा। अंग्रेजों द्वारा मनमाने ढंग से लिखे गये इतिहास की भूल भरी बातों का यदि किसी ने परदा फ़ाश किया है, तो वे श्री पण्डितजी थे। भारत के विकृत इतिहास की यदि किसी ने वास्तविकता बताई है तो वह आप ही ने। आप ने भारत का सच्चा इतिहास लिखकर पश्चिम के पद चिन्हों पर चलने वाले अंग्रेजों के क्रीत दासों की आँखे खोल दीं। वेदों पर पश्चिमी विद्वानों ने जो भ्रान्त पूर्ण भाव संसार के सामने रखे थे, उनका परिहार भी आपने अपनी लेखनी से भले प्रकार किया। देश विदेशी वेद भाष्यकारों में आपने सबसे महर्षि श्री स्वामी दयानन्दजी महाराज के वेदभाष्य को बड़े ही महत्त्वपूर्ण शब्दों में प्रतिपादन किया और उनके बिखरे हुये मन्त्रों का संकलन कर उनको पुस्तकाकार छपा दिया। आप जहाँ उच्च कोटि के लेखक थे, वहां श्रेष्ठ वक्ता भी थे। ऐसे वैदिक विद्वान के उठ जाने से देश की भारी क्षति हुई है उसकी पूर्ति होना कठिन है। ईश्वर आपकी आत्मा को सद्गति दे और परिवार को शान्ति। आर्तहृदय

ओम् भक्त वानप्रस्थ सम्पादक

श्री अधिष्ठाताजी
गुरुकुल कांगड़ी
सहारनपुर



## आर्य मार्तण्ड को स्वावलम्बी बनाने में १०१) के आजीवन सदस्य बनकर तन-मन-धन से सहायता कीजिये !!

निम्नांकित महानुभावों ने मार्तण्ड को १०१) प्रदान कर आजीवन सदस्यता स्वीकार करने की कृपा की है, एतदर्थ हार्दिक धन्यवाद। आशा है, सभी आर्य बन्धुओं एवं आर्यसमाजों का इस कार्य में सक्रिय सहयोग प्राप्त होगा। जिन महानुभावों ने १०१) अभी तक नहीं भेजे हैं, कृपया शीघ्र भिजवाने का कष्ट करें, ताकि आगामी अंक में उन महानुभावों के नाम सधन्यवाद प्रकाशित किये जा सकें। —व्यवस्थापक

### आजीवन सदस्य

(प्राप्त राशि)

१०१) रु० श्रीमान् पं० भगवानस्वरूपजी न्यायभूषण प्रधान सभा
१०१) " " छोटूसिंहजी एडवोकेट अलवर
१०१) " " भीमसिंहजी माउन्ट आबू
१०१) " " रामस्वरूपजी वेला शाहपुरा
१०१) " " श्रीकरणजी शारदा अजमेर
१०१) " " जेठमलजी आर्य आबूरोड
१०१) " " माधोसिंहजी शाहपुरा
१०१) " " डा० राजबहादुरजी कोटा
१०१) " " वैद्य धर्मसिंहजी कोठारी अजमेर
१०१) " " ओम्भक्तजी वानप्रस्थ जोधपुर
१०१) " " चुन्नीलाल जी नथूलल जी शिवगंज
१०१) " " घासीरामजी वेदी श्रीगंगानगर
५०) " " संतोषसिंहजी कछवाहा जोधपुर
१०१) " " रामचन्द्रजी मूलजी जामनगर
१०१) " " देवरामजी शिवगंज
२५) " " सत्यवती देवी कन्हैयालालजी कलयंत्री जोधपुर
३१) " " श्री जतनचन्दजी एडवोकेट अजमेर
५१) रु० श्री किशन सिंहजी गंगानगर

### वचन प्राप्त

१०१) रु० श्रीमान् गोपीवल्लभजी कोटा
१०१) " " मदनमोहनजी शर्मा बीकानेर
१०१) " " चौधरी नारायणरामजी गंगानगर
१०१) " " रमेशचन्द्रजी शारदा अजमेर
७०) " " जतनचन्दजी एडवोकेट अजमेर
१०१) " " [illegible] सुजानगढ़
१०१) " [illegible]० सरोजनी [illegible] अजमेर
५१) " " संतोषसिंहजी कछवाहा जोधपुर
५०) " " किशनसिंहजी [illegible]गंगानगर
१००) " सुश्री मोहनी देवीजी अलवर
७६) " " श्री सत्यवती कन्हैयालालजी कलयंत्री जोधपुर

शेष पृष्ठ २ का

आज हम प्रायश्चित्तपूर्वक जागृत हो उठे हैं, और आपकी प्रेरणा से परले-पार पहुंच जायेंगे। अर्थात् राजार्य सभा की स्थापना अविलंब करा देंगे।

परमात्मन्! आपकी करुणा का कोई वारापार नहीं है। आपकी न्याय व्यवस्था से हमें मनुष्य जन्म मिला और वह भी ऐसे उत्तम आर्यावर्त देश में कि जिसे ऋषि-मुनियों ने गौरवान्वित किया, राम और कृष्ण ने अलंकृत किया और जिसे देव दयानन्द ने विषके प्याले पी पी कर सदा वांच्छित किया। जगदीश्वर! इस आर्यवर्त देश के प्रति हमारा शुभ चिन्तन, अगाध प्रेम श्रद्धा तथा भक्ति आदि सम्बन्ध सदा बनाय रखना और पुनः पुनः यहां जन्म देना। हे परमेश्वर! तेरा क्रोध भी तेरी दया ही तो है, मां की मार और प्यार दोनों में ही बच्चे का हित-साधन होता है, हे सौम्य स्वरूप! आप इस संसार को स्वर्ग समान सुन्दर एवं सुखी बनायें और इसके लिये हम आपसे आपकी वेदवाणी में ही प्रार्थना करते हैं:—

॥ सर्वेभवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामय. सर्वे भद्राणि पश्यन्तु, माकश्चिद्दुःख भाग्भवेत ॥

(आशा है

"आर्य-गण" इस घोर राष्ट्रीय-पतन की बेला में सावधान होकर, इस आवश्यक, मौलिक एवं निर्विवाद "राजार्य-सभा" के मार्मिक विषय का उचित रूप में निश्चय एवं निराकरण, कर कराकर लोक तथा परलोक का हित साधन करते हुये आज के इस "परम-कर्त्तव्य" का आवश्य पालन करें करायेंगे)

### इसे भी पढ़िये

१—क्या बिड़ला भवन को अधिग्रहण करने का कर्तुनिष्ठ स्टण्ट मात्र है?

२—रोमन सम्राट कांस्टैंटाइन तथा समस्त रोम सूर्यादि देवताओं की पूजा करते थे लगभग तीसरी शताब्दी में रोम ने ईसाई धर्म स्वीकार किया।

३—२५ दिसम्बर ईसा का जन्म दिन नहीं। यह सूर्य के अयन परिवर्तन के संक्रांति पर्व का रूपान्तर है। जिसे ईसाइयों ने ईसा जन्मोत्सव दिवस घोषित कर दिया।

४—परिवार नियोजन हिन्दुओं के लिए भयंकर अभिशाप है। इससे मुसलमान ईसाइयों की संख्या निरन्तर बढ़ रही है और हिन्दू अल्पमत में होते जा रहे हैं।

५—भारत में सरकारी कर्मचारियों की संख्या लगभग ९७ लाख है।

६—२० वर्ष में भारत का चरित्र और शिक्षा का स्तर जितना गिरा है। सम्भवतः इतिहास के पृष्ठों में इतना पतन कभी भी नहीं हुआ।

७—शर्मिला टैगोर बेगम आयशा सुल्ताना बन गई। उन्होंने नवाब पटौदी से विवाह कर लिया।

## शोक !

आर्य मार्तण्ड के आजीवन सदस्य एवं आर्य समाज शाहपुरा के मन्त्री श्री रामस्वरूपजी देवी जो कि दानी एवं आर्य परिवार के हैं। उनकी, माताजी का देहावसान दिनांक ११ दिसम्बर ६८ को ७८ वर्ष की आयु में हुआ। अन्त्येष्टि संस्कार वैदिक पद्धति के अनुसार कराया गया। आर्य संस्थाओं की ओर से शोक प्रस्ताव भेजे गये। शोक निवृत्यर्थ एवं वैदिक धर्म के प्रचार हेतु रात्रि के समय आचार्य श्री हरिश्चन्द्रजी महाचार्य द्वारा वेद कथा व अन्त्येष्टि संस्कार के मन्त्रों की व्याख्या आदि का कार्यक्रम रखा गया।

### आर्य जनता को सुखद सूचना

श्री डा० भवानीलालजी भारतीय एम० ए० का जिस अनुसन्धान पूर्ण ग्रन्थ पर पी० एच० डी० की उपाधि राजस्थान विश्वविद्यालय ने दी है, वह महत्वपूर्ण ग्रन्थ छप रहा है। यह १८ X २२ अठपेजी आकार में लगभग ४०० पृष्ठ का होगा। कागज छपाई जिल्द सभी मनोहर होंगे। मूल्य लगभग मात्र ६-०० रखा गया है। जो आर्य जन या समाज अग्रिम ग्राहक बनेंगे उन्हें डाक व्यय सहित ६) रु० में दिया जायेगा। प्रचारार्थ १० प्रतियाँ मंगवाने पर २० प्रतिशत कमीशन दिया जायगा।

अग्रिम ग्राहक बनने के लिये निम्न पते पर रुपया भेजें—

२३२. राम लाल माडल टाउन सोनीपत हरियाणा

श्री प० भगवानस्वरूपजी "न्यायभूषण" के प्रबन्ध से वैदिक यन्त्रालय अजमेर में मुद्रित और ओम्भक्त वानप्रस्थ, सम्पादक प्रकाशक द्वारा दयानन्द आश्रम, केसरगंज अजमेर से प्रकाशित। अधिष्ठाता। श्रीमान् डा० भवानीलालजी भारतीय एम. ए. पी. एच. डी. पाली।

२०५
आर्य प्रतिनिधि सभा राजस्थान का मुख-पत्र
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय हरिद्वार
जि० न० १४ जे०
पाक्षिक

# आर्य मार्तण्ड

दयानन्द आदित्य से पाकर ज्योति प्रचण्ड। ध्वंस दम्भ पाखण्ड का करे आर्यमार्तण्ड ॥

वर्ष ४६ | वार्षिक मूल्य ५) रुपया | सम्पादक—श्री ओम्प्रकाश वानप्रस्थ (रामसहाय शर्मा) अजमेर माघ कृष्णा १२ सं. २०२५वि., दि. १५ जनवरी ६६ दयानन्दाब्द १४४ | एक प्रति का २० पै० | अङ्क २२

## ईश्वर प्रार्थना

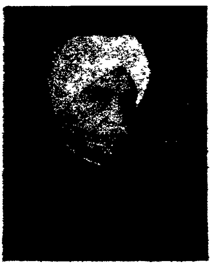
ओ३म् उद्वयं तमसस्परि स्वः पश्यन्त उत्तरम्।
देवं देवत्रा सूर्यमगन्म ज्योतिरुत्तमम् ॥

हे प्रभो! हम उत्कृष्ट प्रकृति के स्वरूप को देखते हुये, अंधकार से परे प्रकृति से भी उत्कृष्ट परम ज्योति परमात्मा को प्राप्त करें।

पद्यानुवाद

रवि रश्मि के रचैया! पावन प्रभा दिखादो।
अज्ञान की तमिस्त्रा, भूलोक से मिटा दो।
देवों के देव! दिन-दिन हो दिव्य दृष्टि प्यारी।
श्रुति-गान को न भूले, रसना कभी हमारी ॥

स्व० दीवान बहादुर हरविलासजी शारदा



आप आर्य जगत के महान वैदिक इतिहास वेत्ता, विद्वान तथा ऋषि के अनन्य भक्त थे। शारदा एक्ट के द्वारा आपने बाल विवाह की सामाजिक कुरीति का क्रियात्मक विरोध करके निवारण किया। अंग्रेजी में स्वामी दयानन्दजी का वृहद् जीवन चरित्र लिखकर वैदिक साहित्य के एक बड़े अभाव की पूर्ति की। आर्य मार्तण्ड के आप यावज्जीवन संरक्षक रहे।

## जोधपुर में महर्षि स्मृति भवन की स्थापना का निश्चय

मियां फैज्जुल्ला खां के जिस बाग में ऋषि ने निवास किया तथा जहाँ उन्हें विष दिया गया, उस उद्यान एवं भवन को आर्यसमाज को दिये जाने का सरकार का संकल्प।

जोधपुर की विशाल सभा में राज्य के वित्तमन्त्री श्री मथुरादास माथुर की घोषणा। जोधपुर दिनांक ४.१-६९ आर्य जगत में यह समाचार सर्वत्र हर्ष और उल्लास के साथ सुना जायगा, कि राजस्थान सरकार उस भवन को आर्यसमाज के सुपुर्द करने पर कृत संकल्प है, जिसमें ऋषि दयानन्द ने अपने जोधपुर प्रवास काल में लगभग चार मास तक निवास किया था तथा जहाँ उन्हें विष दिया गया था। यहीं उनकी रुग्णता प्रारम्भ हुई थी। सरकार के इस विचार की सूचना देते हुये राज्य के वित्तमंत्री श्री माथुर ने घोषणा की कि एक महर्षि स्मारक ट्रस्ट का शीघ्र ही गठन किया जाना चाहिये और सरकार उपर्युक्त ट्रस्ट को विधिवत् यह भवन हस्तान्तरित कर देगी। उन्होंने आशा व्यक्त की कि इस भवन में वैदिक अनुसंधान, तथा महर्षि के जीवन और व्यक्तित्व पर महत्वपूर्ण शोध कार्य संचालित होगा और भवन की ऐतिहासिक महत्ता तथा पवित्रता की पूर्ण रक्षा की जायगी। साथ ही इसमें ऋषि कृत ग्रन्थों तथा अन्य महत्वपूर्ण पुस्तकों का विशाल पुस्तकालय भी बनाया जायगा।

जोधपुर की सभी आर्यसमाजों द्वारा आयोजित इस विशाल सभा की अध्यक्षता प्रान्तीय सभा के प्रधान पं० भगवान् स्वरूप जी न्यायभूषण ने की। सभा प्रधान, सभा उपप्रधान श्री संतोष सिंह जी सभा उपमन्त्री तथा आर्य मार्तण्ड के अधिष्ठाता डा० भवानी लालजी भारतीय द्वारा पुष्प हार अर्पित किये जाने के पश्चात् जोधपुर की विभिन्न समाजों तथा आर्य संस्थाओं की ओर से वित्तमन्त्री जी का स्वागत किया गया।

वित्तमन्त्रीजी की घोषणा से पूर्व डा०भवानी लाल भारतीय ने अपने ओजस्वी भाषण में ऋषि दयानन्द की राष्ट्रभावना का मार्मिक विवेचन करते हुये बताया कि ऋषि ही स्वराज्य की घोषणा करने वाले प्रथम महापुरुष थे। स्वामी जी से प्रेरणा पाकर लाला लाजपतराय और स्वामी श्रद्धानन्द जैसे राष्ट्र नेताओं ने कांग्रेस के द्वारा देश सेवा का कार्य किया। सरदार भगत सिंह और रामप्रसाद बिस्मिल जैसे क्रान्तिकारी शहीदों ने फांसी के तख्ते का स्वागत किया। यहाँ तक कि महात्मा गाँधी को भी स्वीकार करना पड़ा कि जहां जहां आर्य समाजें हैं, वहां उन्हें अपने आन्दोलन का क्षेत्र तैयार मिला। ऋषि की प्रेरणा ने ही जोधपुर के अद्वितीय प्रशासक सर प्रतापसिंह को जोधपुर की राजभाषा हिन्दी घोषित करने के लिय उद्यत किया तथा उन्हीं की प्रेरणा से मारवाड़ राज्य की सेना की वर्दी अनिवार्यतः खादी से तैयार की जाती थी।

वित्तमन्त्री जी की आकांक्षा के अनुसार ही ऋषि दयानन्द स्मृति भवन ट्रस्ट का गठन किया जा रहा है। डा० भारतीय ने इस स्थान पर खोले जाने वाले अनुसंधान कार्य के लिये अपना निजी पुस्तकालय प्रदान किये जाने तथा शोध कार्यों का अवैतनिक रूप से निर्देशन करने का संकल्प व्यक्त किया है। विस्तृत समाचार आगामी अंक में।

—संवाददाता

आर्यसमाज के साहित्य महारथी—

# स्व० पं० कालीचरण शर्मा, अरबी फाजिल मुंशी फाजिल।

( लेखक—श्री डा० भवानीलालजी भारतीय, एम. ए. पी. एच. डी. )

१३ सितम्बर १९६८ को आर्यसमाज के सुप्रसिद्ध साहित्य महारथी, इस्लाम के मर्मज्ञ समालोचक, अरबी फारसी के अप्रतिम विद्वान् शास्त्रार्थ महारथी पं० कालीचरणजी शर्मा का ९० वर्ष की परिपक्व आयु में देहावसान हो गया। उनका कार्यक्षेत्र तथा जन्मस्थान यद्यपि मुख्यतः उत्तर प्रदेश था, तथापि अपने जीवन के अन्तिम भाग को उन्होंने राजस्थान में व्यतीत किया। यह हमारे लिये अत्यन्त गौरव का विषय है। उनके सुपुत्र पश्चिमी रेलवे के एक उच्च पदाधिकारी हैं। पं० कालीचरण जन्मना ब्राह्मण, कर्मणा आर्य प्रचारक तथा विद्या की दृष्टि से मौलाना या मौलवी थे। वे आर्यसमाजी दुनियाँ में मौलवी कालीचरण के नाम से ही विख्यात थे। आज जब हम स्वतंत्र भारत के तथाकथित विचार स्वातन्त्र्य एवं धर्म निरपेक्ष वातावरण में रह कर भी अन्य मतों की युक्ति सिद्ध समालोचना और समीक्षा नहीं कर सकते स्व० पं० कालीचरणजी ने परतन्त्र भारत में अपनी फारसी अरबी की योग्यता तथा ईसाईयत एवं इस्लाम के विशेषज्ञान के बल पर इन सैमेटिक मतों का जो विशद आलोचनात्मक अध्ययन और समीक्षण किया, वह हमारे लिये गौरव की वस्तु है।

इन पंक्तियों के लेखक ने लगभग २५ वर्ष पूर्व आर्यसमाज सरदारपुरा, जोधपुर के वार्षिकोत्सव पर मौलाना कालीचरण का मांसाहार त्याग विषयक प्रसिद्ध भाषण सुना था। पं० कालीचरणजी की व्याख्यान शैली अत्यन्त रोचक, प्रभावोत्पादक तथा तर्कपूर्ण होती थी। वे अपने व्याख्यानों में युक्तियों का ऐसा समां बांध देते थे, कि श्रोता मंत्र मुग्ध हुए बिना नहीं रहते। पुनः १९५३ और उसके पश्चात् राजस्थान को अपना स्थायी निवास स्थान बना लेने पर मुझे पण्डितजी के संपर्क में आने का अनेक बार अवसर मिला। वे डीडवाने के उस प्रसिद्ध शास्त्रार्थ में भी सम्मिलित थे, जो पं० बुद्धदेव विद्यालंकार, पं० लोकनाथ तर्क वाचस्पति आदि आर्य विद्वानों और सनातनी पं० माधवाचार्य तथा अखिलानन्द के बीच हुआ था। पं० कालीचरणजी ने इस्लाम और ईसाईयत के अतिरिक्त जैन और बौद्ध मतों की समीक्षा में भी पर्याप्त काम किया था। अजमेर जिले के कतिपय नव बौद्धों (जो दलित वर्ग के हिन्दू ही थे, परन्तु जिन्होंने स्वधर्म का त्याग कर डा० अम्बेडकर की भांति बौद्ध धर्म अपना लिया था) ने उन पर एक भाषण के कारण मुकद्दमा भी चलाया था, जिसमें वे ससम्मान बरी हो गये थे। आर्य प्रतिनिधि सभा राजस्थान के तत्त्वावधान में उन्होंने प्रांत व्यापी प्रचार किया था। इन पंक्तियों के लेखक ने तेरापंथी जैन सम्प्रदाय के सम्बन्ध में एक आलोचनात्मक पुस्तक की पाण्डु लिपि तैयार कर पं० कालीचरणजी को प्रकाशनार्थ समर्पित की थी, परन्तु इस आशंका के कारण कि कहीं उक्त सम्प्रदाय के अनुयायी राज्याश्रय से इस खण्डनात्मक पुस्तक को जब्त न करा दें, वह पुस्तक प्रकाश में नहीं आ सकी।

सम्भवतः नई पीढ़ी के आर्यसमाजी मौलाना कालीचरण की साहित्य सेवा से परिचित न हों, यहाँ उनके द्वारा रचित ग्रंथों का स्वल्प परिचय दिया जा रहा है। पं० कालीचरण की शिक्षा दीक्षा आगरे के उस सुप्रसिद्ध आर्य मुसाफिर विद्यालय में हुई थी जिसकी स्थापना प्रसिद्ध आर्य मिशनरी पं० भोजदत्त आर्य मुसाफिर ने की थी। इसी विद्यालय में स्व० पं० महेशप्रसादजी, मौलवी कुंवर सुखलालजी आर्य मुसाफिर, ठाकुर अमरसिंहजी (वर्तमान में स्वामी अमर भारती) पं० रामचन्द्र शर्मा आर्य मुसाफिर, अजमेर तथा पं० रामसहायजी शर्मा (पं० ओमप्रकाश वानप्रस्थ) आदि ने शिक्षा पाई थी। यह भी बहुत कम लोगों की जानकारी में होगा कि स्व. महापण्डित राहुल सांकृत्यायन भी इसी विद्यालय में रह कर विद्याभ्यास करते रहे थे। मुसाफिर विद्यालय के द्वारा 'आर्य मुसाफिर' नामक सुप्रसिद्ध पत्र उर्दू में प्रकाशित होता था तथा आर्य मुसाफिर बुकडिपो के अन्तर्गत मतमतान्तरों के खण्डन में महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों का प्रकाशन होता था। पं०कालीचरणजी ने हिन्दी उर्दू अरबी तथा संस्कृत-इन चारों भाषाओं में साहित्य रचना की है। उनके निम्न ग्रन्थों की सूची मैं अपनी जानकारी के आधारपर प्रस्तुत कर रहा हूँ।

इस्लाम के खण्डन में पं० जी ने निम्न ट्रैक्ट लिखे। ये उर्दू और हिन्दी दोनों भाषाओं में प्रकाशित होते थे। (१) अल्लामियाँ का हुलिया (२) अल्लामियाँ की सुन्नत (तृतीय संस्करण १९८२ वि०) (३) अल्लामियाँ का फोटो (अर्थात् इस्लाम और मूर्तिपूजा) (४) इस्लामी गप्पें (अर्थात् मुहम्मदी हदीसों की बेतुकी बातें) (५) काठ का उल्लू (६) मुसलमानी बुर्का (७) कुरान और उसकी शिक्षा (८) अल्लामियाँ की चालों का नमूना। इन मूलतः उर्दू में लिखे ट्रैक्टों का हिन्दी अनुवाद मुसाफिर विद्यालय आगरा के विद्यार्थी कुंवर राममनोहर सिंह जलीमपुरी ने किया था।

आगरा के बाद पं० कालीचरण जी का कार्य क्षेत्र कानपुर रहा। यहाँ सम्भवतः डी० ए० वी० कालेज, कानपुर में उन्होंने कुछ काल तक अध्यापन कार्य भी किया। आर्य मुसाफिर बुकडिपो, नारियल बाजार, कानपुर के तत्त्वावधान में उन्होंने तिमिर नाशक ग्रन्थमाला प्रकाशित की। इसके अन्तर्गत निम्न पुस्तकें छपीं ईसाई मत दर्पण, बाइबिल मत परीक्षा, जैन बौद्ध एक ही है। अन्य लेखकों (पं० जी के शिष्यों) की जो पुस्तकें भी इस ग्रन्थमाला के अन्तर्गत छपीं वे हैं—मौलवी साहब और पादरी की बहस पर हरिजनों का दो टूक निर्णय। लेखक ब्र० वेदरत्न विद्यार्थी सुपुत्र प० भद्रसेन जी (आचार्य अजमेर), जैन मत दिग्दर्शन (लेखक-वीरेन्द्र बहादुर सिंह) मैं ईसाई क्यों नहीं? (लेखक रामसेवक आर्य) इसी दौरान पं० जी ने अन्य विषयों पर भी रोचक पुस्तकें लिखीं यथा हास्य रत्न माला (सर्व मतों की आलोचना दृष्टान्त पद्धति से) ईश्वर धर्म ज्ञान (नास्तिकों का खण्डन) वैदिक रूसी साम्यवाद (अर्थात् कम्युनिज्म मत दर्पण) वेद, स्वाध्याय (वेद मन्त्रों की व्याख्या), पशु वध निषेध (मांस खाना पाप है)

उपर्युक्त लघु पुस्तकों के अतिरिक्त मौलाना साहब की कतिपय पुस्तकें तो Classi-cal Books (कालजयी ग्रन्थ) की श्रेणी में आती हैं। ये सम्प्रति अनुपलब्ध हैं तथापि उनके विशाल स्वाध्याय एवं विद्वता की परिचायक हैं। उन्होंने कुरान शरीफ का हिन्दी अनुवाद किया था। इसका प्रथम भाग मेरे व्यक्तिगत पुस्तकालय में है। हजरत मुहम्मद का जीवन चरित भी उन्होंने लिखा था, जो विचित्र जीवन के नाम से विख्यात है। उन्होंने सत्यार्थप्रकाश का अरबी में अनुवाद किया। ईशोपनिषद् का भी उर्दू और अरबी भाषा में अनुवाद किया। महर्षि दयानन्द की स्वकथित और स्वलिखित जीवनी (थियोसोफिस्ट में धारा वाही रूप से प्रकाशित तथा पूना के एक व्याख्यान में कथित) का उन्होंने 'सवानह ऊमरी आरिफ दयानन्द सरस्वती' शीर्षक से फारसी में अनुवाद किया था। पं० कालीचरण जी के ये ग्रन्थ वर्षों से अनुपलब्ध हैं, इन्हें पुनः प्रकाशित किया जाना चाहिये। आगामी अंक में आर्यसमाज के अन्य साहित्य महारथी जी हमारे द्वारा भुलाये जा रहे हैं— मास्टर लक्ष्मण (आर्योपदेशक) के विषय में लिखूंगा।

### सभा की कार्यकारिणी

विदित हो कि आर्य प्रतिनिधि सभा राजस्थान की अन्तरंग सभा की बैठक दि. ९-फरवरी ६९ आर्य समाज भवन ब्यावर में समय मध्याह्नोत्तर २ बजे आमन्त्रित की गई है। समस्त सभा के अधिकारियों तथा कार्यकारिणी के सदस्य महानुभावों की उपस्थिति इस अवसर पर सादर प्रार्थनीय है।

श्री करण शारदा
मंत्री-सभा

# आर्य मार्तण्ड

अजमेर माघ कृष्णा १२ सं० २०२५ वि० दिनांक १५ जनवरी सन् १९६९

सम्पादकीय—

## स्व० डा० सम्पूर्णानन्द जी !

स्व० डा० सम्पूर्णानन्द जी भारत माता के उन सुपुत्रों में से थे, जिन्होने साहित्य, समाज और राष्ट्र की यावज्जीवन सेवा की। वेदों में उनकी अगाध श्रद्धा थी और उसी उद्देश्य की पूर्ति के निमित्त उन्होने वेद-संसद की स्थापना कर वैदिक साहित्य एवं वेदों के प्रचार के एक बड़े अभाव की पूर्ति की।

मन, वचन और कर्म से वह मूर्तमान भारत थे। संस्कृत भाषा के विकास के लिये उन्होने सफल प्रयास किया। राष्ट्र भाषा हिन्दी की उन्नति में वह आजीवन तत्पर रहे।

पर्याप्त समय तक वह उत्तर प्रदेश के मुख्य मंत्री रहे। राजस्थान के राज्य पाल पद पर रह कर उन्होने राजस्थान की भी सेवा की। मानव जीवन गुण दोषों का स्वरूप है। भूल स्वभावज है। इसी आधार पर राजस्थान में जब कांग्रेस मंत्रि मण्डल नहीं बन पाया था, उस समय उनसे राजनैतिक भूल अवश्य हुई। इसका पश्चाताप उन्हें मृत्यु पर्यन्त रहा।

ऋषि दयानन्द के महान उपकारों के प्रति उन्होने एक बार अपने हार्दिक उद्गार प्रकट करते हुए कहा था। भारत का यदि कोई सच्चा संरक्षक, आर्य संस्कृति का पुनरुद्धारक और वेदों के ज्ञान का प्रकाशक था तो वह युग पुरुषोत्तम महर्षि दयानन्द था,। उनके निधन से एक सच्चा राष्ट्र भक्त हमारे मध्य से उठ गया दि० १० जनवरी ६९ को प्रातः १०-४० बजे वाराणसी में उनका देहावसान उनके निवास स्थान पर हो गया। मृत्यु के समय उनके परिवार के समस्त सदस्य वहां उपस्थित थे।

इस दुख के अवसर पर आर्य प्रतिनिधि सभा राजस्थान, राजस्थान की समस्त आर्य जनता तथा आर्य संस्थाओं की ओर से हार्दिक शोक संवेदना प्रगट करते हुए परम पिता परमात्मा से प्रार्थना करती है कि वह दिवंगत आत्मा को सद्गति तथा उनके परिवार एवं परिजनों को धैर्य एवं शांति प्रदान करें।

——

### अजमेर आर्य प्रतिनिधि सभा ध्यान दे

राजस्थान का आदिवासी क्षेत्र जिला बांसवाडा जिसमें ८० प्रतिशत आदिवासियों की आबादी है। ये लोग वर्षों से हिन्दू समाज द्वारा उपेक्षित होकर भयंकर गरीबी एवं दीन हीन दशा में अपना जीवन निर्वाह करते है। हमारी सामाजिक अव्यवस्थाओं एवं शासन की उपेक्षा के कारण इस जिले में १० प्रतिशत गरीब आदिवासियों को ईसाई मिशनरियों द्वारा धर्म भ्रष्ट किया गया है। आज भी उसी गति से ईसाई मिशनरी (बांसवाडा जिला अन्तर्गत कुशलगढ़ तहसील के पंचास हजार आबादी वाले क्षेत्र में) इन्होने आमली-पाडा, मसका मकडी भीलकुआ, मोकमपुरा, इन चार जगह इनके बड़े २ चर्च हैं और १५० प्रचारक है। जिनके पास जीपकार, साईकलमोटर, और उसी मोटर में लाउडस्पीकर कसा हुआ, जो रात दिन प्रचार कार्य में लगे रहते हैं। और इन भोले भाले आदिवासियों को लालच देकर याने दूधपाउडर, अनाज, कपडा, पैसा और भी कई प्रकार का लालच भय दिखा कर उनके धार्मिक स्वतन्त्रता का खुले आम अपहरण किया जा रहा है। इन मिशनरीयों को कुलशगढ़ में (१५०००) रू० माहवार पोस्ट आफिस द्वारा आता है। बाकी का अलग, जिसका कोई हिसाब नहीं यह रुपया ईसाई मिशनरी द्वारा आदिवासियोंको ईसाई बनाने में खर्च किया जा रहा है। कुशलगढ़ तहसील में १० पाठशालायें है जिनमें १००० बच्चों को उनके कोमल दिमाग पर ईसाईमत की मोहर लगा कर और राष्ट्र विरोधी बनाकर उन्हे मंचपर लाकर खडा कर देगें। इनका मुकाबला करने के लिये स्थानीय आर्य समाज के पास कुछ भी साधन नहीं है। इन ईसाईयों ने जब यह देखा कि हमारा विरोध करने वाली संस्था लंगड़ी है तो डंके की चोट से आदिवासियों को ईसाई बनाया जा रहा है। और विदेशी धर्म प्रचारकों के गन्दे षडयन्त्र एवं धर्म परिवर्तन के कुचक्र का शिकार होना पड रहा है। धर्म निरपेक्षता की आड़ में ईसाई मिशनरियां हिन्दू धर्म पर कीचड़ उछालकर उस धर्म के महापुरुषों को दैत्य। शैतान आदि २ बताकर खुले आम लोगों के धर्म को खरीद रहे हैं। आर्य प्रतिनिधि सभा ध्यान नहीं शीघ्र दे शासक की तो उपेक्षा वृति रहती ही है जिसका पादरी लोग फायदा उठाते हैं। मिशनरीयों द्वारा आदिवासियों के घरों में लगे राम, एवं कृष्ण के चित्रों को उतारा जाकर उनके स्थान पर जबरन ईसा व मरीयम की तस्वीरें लगाने की हीन हरकतें आये दिन होती रहती है। इतना ही नहीं उन्हे भयभीत करके धर्म परिवर्तन के लिये बाध्य किया जाता है। स्थानीय आर्य समाज को अगर बढ़ती हुई ईसाईयत की ज्वाला को रोकने में सहयोग नहीं दिया, तो यह नागालैंड बनकर रहेगा। फिर इसे कोई भी समाज बचा नहीं सकेगा। इसलिये मैं प्रतिनिधि सभा को सावधान कर देना फर्ज समझता हूं।

मै (दयानन्द साल्वेशन मिशन) होशियारपुर तर्फ पं० देवप्रकाश जी के अन्तर्गत कुशलगढ़ क्षेत्र में तीन महीने से कार्य्य कर रहा हुँ मुझे निरीक्षण करने के बाद यह अनुभव होने लगा कि क्या आर्य प्रतिनिधि सभा की लिस्ट में (बांसवाडा की कुशलगढ़ तहसील जिसमें ४० हजार की आबादी में ५००० ईसाई बन चुके हैं) उसका नाम है या नहीं है। या उपेक्षा की जा रही है। हमारा कार्य गांव २ प्रचार करना है। हम पहाडों में दौरा लगाते है। लेकिन न तो हमारे पास साहित्य है न और साधन न, छात्रावास न स्कूल। आज हमें छात्रावास की बहुत जरूरत है, हम छात्रावास कायम करके एक बहुत बड़ा आदिवासियों में कार्य कर सकते है. हम जहां जाते है, तो आदिवासी कहते हैं कि तुमने क्या किया? हमारे बच्चों के लिये जब की तुम्हारे पास एक छात्रावास भी नहीं है। इससे तो ईसाई अच्छे है जो हमारे बच्चों को पढ़ाते है, मे आर्य प्रतिनिधि सभा के प्रधान जी से अर्ज करना चाहता हूँ कि जल्दी से जल्दी छात्रावास और हर प्रकार का सहयोग देकर वैदिक धर्म की रक्षा करें।

भवदीय

पं० मोहनलाल आर्य

कुशलगढ़

### मार्मिक पत्र

अविकल रूप में आर्य बंधुओं की सेवा में प्रेषित है। आज राजस्थान में अराष्ट्रीय ईसाई प्रचार की भयंकर बाढ़ आई हुई है। जिसकी रोक थाम के लिये तन मनधन से तत्पर होने की आवश्यकता है। कुशलगढ़ में वैदिक प्रचार केन्द्र तथा, छात्रावास के संस्थापन की अत्यधिक आवश्यकता है। प्रांत की आर्य जनता इस सम्बंध में सहायता सहयोग की सूचना मंत्री आर्य प्रतिनिधि सभा राजस्थान अजमेर के पास शीघ्र भेजकर अनुगृहीत करें।

सम्पादक

# टंकारा में ऋषि शिक्षण शिविर

मकर संक्रान्ति १४ जनवरी से गणतन्त्र दिवस २६ जनवरी तक टंकारा में "ऋषि-शिक्षण शिविर" का आयोजन होगा। जिसमें परिव्राजकाचार्य वेद स्वामी मेधार्थीसरस्वती एम० ए० सामवाचस्पति, स्वामी विशुद्धानन्द शास्त्री (बम्बई) और स्वामी रामानन्द सरस्वती (पटना) विशेषरूप से शिक्षण देंगे।

शिवरात्रि से एक मासपूर्व टंकारा में पधारने वाले ही विशेष रूप से लाभान्वित होंगे। टंकारा में ठहरने की ठीक व्यवस्था होगी। भोजन व्यय का प्रबन्ध सब स्वयं करेंगे। लगभग ३०) एक मास में होगा। दूध चाय इसमें सम्मिलित नहीं है। जो आर्य सज्जन सन्ध्या, हवन, स्वस्तिवाचन आदि को शुद्धरूप से सीखना चाहते हैं। उनको अलभ्यलाभ होगा। गायत्रीमंत्र के जप की विशुद्ध-विधि और गायत्रीमंत्र द्वारा प्राणायाम-पद्धति जानने के पश्चात् ही अभिलषित लाभ सन्ध्या और हवन से हो सकता है। अन्यथा सब बेकार होता है। टंकारा का महत्व सच्चे अर्थों में तभी होगा, जब आर्य जनता टंकारा में कुछ दिन टिक कर ऋषि दयानन्द की स्पिरिट को समझेगी। विशेष जानने के लिये इस पते पर जवाबी पोस्टकार्ड भेजिये।

कान्हजी वानप्रस्थ<br>
c/o पं० सत्यदेव जी विद्यालंकार<br>
P. O. टंकारा<br>
(सौराष्ट्र)

## " सावर में वैदिक विवाह की धूम "

ग्राम सावर में पुराने कर्मठ आर्यवीर श्री भूरालालजी आर्य की सुपौत्री सुश्री प्रेमलता का विवाह गत २४ नवम्बर को श्री कमलेशकुमारजी आर्य सिद्धान्त शास्त्री ने वैदिक रीति से कराया इस अवसर पर गत २१ ता. से ही एक यज्ञ का आयोजन किया गया जो सदैव प्रातः ८ से १० बजे तक चलता रहा और जिसकी पूर्णाहुति २५ नवम्बर को हुई। वर पक्ष भी एक आदर्श आर्य सरदारपुरा जोधपुर निवासी के श्री देवेन्द्र प्रकाशजी जिनकी आयु २२ वर्ष और वधु की आयु १६ वर्ष थी, नित्य प्रति यज्ञ और सायंकाल धूमधाम से प्रचार होता रहा जिसमें ग्राम के और अतिथि गणों ने वैदिक सिद्धान्त को समझा तथा लोगों पर बहुत अच्छा प्रभाव पड़ा। कन्या पक्ष की ओर से ११ रू आर्य प्रतिनिधि सभा को भेंट स्वरूप दिये गये। इसी अवसर पर ता: २५ को लक्ष्मण कुमार के सुपुत्र श्री ओम प्रकाश का चूड़ा कर्म संस्कार भी हुआ लोगों पर बहुत अच्छा प्रभाव पड़ा। और पंडित जी से लोग इतने प्रभावित हुये कि अब दुबारा उन्हें बुलाने की मांग कर रहे हैं।

## आर्य समाज अकाल पीड़ित गौ रक्षा समिति बीकानेर द्वारा अपील

बीकानेर की आर्य समाजों द्वारा निर्मित उपरोक्त समिति के तत्वावधान में यहां गौरक्षा शिविर चल रहा है। इस शिविर का अनुमानित मासिक व्यय ३०००) रुपये वर्तमान में है और कालान्तर में कम से कम ५००००) हो जायेगा। अकाल की भीषण स्थिति को देखते हुए शिविर में गायों की संख्या और बढ़ाना एवं अकाल पीड़ित व्यक्तियों की भी सेवा अनिवार्य है, किन्तु आर्थिक कठिनाई इस पुण्य कार्य की वृद्धि में मुख्य बाधा है। आर्य समाज केवल बीकानेर नगर के सहारे यह केम्प चलाने में बड़ी कठिनाई अनुभव कर रहा है।

अतः हम सम्पूर्ण आर्य जगत से सानुरोध निवेदन करते हैं कि आप हमें अधिक से अधिक आर्थिक एवं चारा, अन्न, गुवार, वस्त्रादि के रूप में सहयोग प्रदान कर हमें इस अकाल निरोध यज्ञ का उत्तम रूप से संचालन एवं विकास करने में हमारा उत्साहवर्धन करें। कृपया सहयोग निम्न पते पर भेजें—

| पता— | निवेदक— |
|---|---|
| जयकृष्ण | रामचन्द्र भंडारी |
| कोषाध्यक्ष | (एडवोकेट) |
| आर्य समाज | संयोजक |
| महर्षि दयानन्द मार्ग | |
| बीकानेर | |

## आर्य समाज गुमान पुरा कोटा का द्वितीय महोत्सव

इस वर्ष दि० २७-१-६१ से ता: ३० तक यह महोत्सव बड़े ही समारोह से मनाया गया। इस शुभ अवसर पर आचार्य श्री पंडित वाचस्पतिजी शास्त्री आगरा, श्री प्रो० रत्नसिंह जी एम० ए० गाजियाबाद, श्री पं० ओमप्रकाश जी शास्त्री महोपदेशक खतौली, श्री ओमप्रकाश जी वर्मा यमुनानगर श्री भजनोपदेशक, श्री कमलेश कुमार जी आर्य किशनगढ़ इत्यादि। उक्त विद्वानों के गम्भीर और विद्वत्ता पूर्ण भाषणों का जनता पर बहुत ही उत्तम प्रभाव पड़ा और उक्त भजनोपदेशकों के भजनों का भी, चारों दिन विशेष यज्ञ के ब्रह्मा श्री पं० बद्रीनारायण के तत्वावधान में सम्पन्न हुआ। ध्वजारोहण डा० श्री राज बहादुर जी उपप्रधान आर्य प्रतिनिधि सभा राजस्थान द्वारा सम्पन्न हुआ आपने वैदिक ध्वजा के महत्व पर अपना सारगर्भित भाषण भी दिया।

सम्वाददाता

## आर्यसमाज सुजान गढ़ द्वारा

बृहद् यज्ञ सानन्द सम्पन्न। दिनांक १२ जनवरी ६९ को सुजान गढ़ आर्यसमाज द्वारा आयोजित यज्ञ की पूर्णाहुति सभा प्रधान श्रीमान पंडित भगवान स्वरूप जी न्याय भूषण जी के कर कमलों द्वारा सानन्द सम्पन्न हुई। इस अवसर पर श्री पं० सत्यानन्द जी वेद-वागीश एम. ए. का वेदों तथा वैदिक धर्म की महत्ता पर प्रभाव शाली व्याख्यान हुए। श्रीमान हरदत्त जी लाहोटी ने एक प्रीति भोज दिया तथा सभा प्रधान जी को ०१) सादर भेंट किये।

## सरपंच की सराहनीय सतर्कता

सूचना प्राप्त हुई है कि ग्राम दौलतपुरा तहसील डीडवाना ज़िला नागौर में जोधपुर राज घराने का एक पुराना किला है वह खाली और बन्द है। गत २२ दिसम्बर से २४ दिसम्बर तक कुछ आस पास के असामाजिक तत्वों ने इस पर अनधिकृत अधिकार करने की तैयारी की और पीरजी आदि स्थापित करना चाहा, जिससे जनता में बड़ी उत्तेजना फैल गई। सरपंच श्री देवारामजी को जब इसकी सूचना मिली तो उन्होंने स्थानीय नागरिकों के साथ एस. डी. ओ. डीडवाना तथा ज़िलाधीश नागौर को वस्तु स्थिति से अवगत कराया। प्रसन्नता की बात है कि ज़िलाधीश नागौर ने इस सम्बन्ध में अविलम्ब सुरक्षात्मक कार्यवाही कर किले की सुरक्षार्थ पुलिस तैनात कर दी और तनाव तथा एक बड़े झगड़े से जनता की रक्षा की। आशा है सरकार तथा जनता भविष्य में इसी प्रकार की सतर्कता और सावधानी रखेंगे ताकि किसी प्रकार जनता में अशांति, उत्तेजना और विक्षोभ न फैले।

—

## आवश्यकता है प्रचारक की

उच्च कोटि के विद्वान्, वेदविद्या विषय ज्ञाता शास्त्रार्थ महारथी, मर्यादा पुरुष, स्वस्थ, प्रचार के उत्साही, पंडित की, दक्षिणा योग्यतानुसार, अर्जी में उम्र व प्रचार कार्य का विवरण लिखें।

पत्र व्यवहारका पता:-आर्यसमाज मन्दिर, महर्षि दयानन्द मार्ग, (कांकरिया रोड) अहमदाबाद—२२।

धर्मेन्द्र सिंह<br>
उपमंत्री

वैदिक-पत्र—

# शान्तिमय शान्तिः

लेखक—श्री पं० जगत कुमार शास्त्री "साधु सोमतीर्थ" देहली

शान्तिरेव शान्तिः ।

ऋ० १६ । १७

१—शान्ति वास्तव में शान्ति ही हो ।

२—शान्ति तो बस शान्ति ही है ।

## प्रवचन

प्रगति की सन्तोषजनक, आनन्दवर्धक और सन्तुलित अवस्था को वेद की भाषा में शान्ति कहते हैं। शान्ति शब्द का पर्यायवाची कोई दूसरा शब्द हमें ज्ञात नहीं है। शिव, भद्र, कल्याण, स्वस्ति आदि शब्द भिन्न-भिन्न रूपों के प्रति बोधक हैं, वे-वे सब अर्थ भी इस एक ही "शब्द में विद्यमान हैं, परन्तु शान्तिः का जो अपना स्वतन्त्र अर्थ है। वह तो बहुत गम्भीर और विस्तृत है। अंग्रेजी भाषा का एक शब्द "हारमोनी" ऐसा अवश्य है, जो शान्तिः शब्द के अर्थ को कुछ-कुछ प्रगट करता है। "हारमोनी" के आधार पर ही "हारमोनियम" बना है।

वैदिक—धर्म शान्ति का प्रवर्त्तक, प्रचारक एवं संस्थापक है। शान्ति का विचार और विवेचन जितना अधिक वेदों में किया गया है, उतना तो संसार के सम्पूर्ण साहित्य में भी नहीं। शान्ति का वास्तविक शान्ति होना आवश्यक है। शान्ति को केवल शान्ति से ही उपमा दी जा सकती है। सन्तुलित और सापेक्षिक दृष्टि से समझने-समझाने के लिये कोई दूसरा शब्द हमारे शब्द-भण्डार में नहीं है। "अशान्ति" शब्द शान्ति के प्रतिपक्षी विरोधी अर्थ को प्रगट करता है। "क्रान्ति" तो बात ही और है। 'क्रान्ति' शब्द शान्ति का विरोधी या प्रति पक्षी नहीं है।

नाम मात्र की शान्ति तो किसी के कुछ भी काम की नहीं। मरघट जैसी शान्ति को हमारा दूरसे ही प्रणाम। शान्ति के नाम पर जब-जब होने वाले पाप, अपराध और उत्पात या उपद्रव तो शान्ति हो ही नहीं सकते। बलात्कार या धमकी के आधार, डरा-धमका कर, दबाव डालकर या प्रलोभनों के जाल फैलाकर जो शान्ति स्थापित की जायेगी, वह तो शीघ्र ही नष्ट हो जायेगी। और, वह तो घोर-अशान्ति को ही उत्पन्न करेगी। ऐसी स्थिति के लिये शान्ति शब्द का प्रयोग करना तो भाषा के साथ बलात्कार ही माना जायेगा।

आत्मा में शान्ति हो। मन में शान्ति हो। तन में शान्ति हो। घर में शान्ति हो। राष्ट्र में शान्ति हो। विश्व में शान्ति हो। तभी तो शान्ति कुछ चिरस्थायी हो सकेगी और सन्तप्त मानवता शान्ति का उपभोग भी कर सकेगी। विचार के लिये शान्ति के स्थूल और सूक्ष्म एवं श्रेष्ठ, श्रेष्ठतर और श्रेष्ठतम भेद किये जा सकते हैं। शान्ति का सूक्ष्म, बुद्धिगम्य और अनुभूति जन्य रूप ही अधिक श्रेष्ठ है।

संसार में तीन प्रकार के दुःख पाये जाते हैं। यथा (१) रोगों से उत्पन्न होने वाले दुःख। (२) हिंसक पशुओं से होने वाले दुःख, और (३) अति वृष्टि, अनावृष्टि, अति शीत, अति ताप आदि से होने वाले दुःख। शान्ति की संस्थापना और सुरक्षा के लिये इन तीन प्रकार के दुःखों का निवारण और पूर्णतया प्रशमन अत्यन्त आवश्यक है। दुःखों की इस अति-निवृत्ति को ही मुक्ति या मोक्ष कहते हैं।

शान्ति के उपासकों, प्रचारकों, संस्थापकों, और संरक्षकों को कभी-कभी शान्ति के बाधक कारणों को दूर करने के लिये बड़े-बड़े संघर्ष भी करने पड़ जाते हैं। ऐसा होने पर वातावरण में दूर-दूर तक अशांति, विक्षोभ और हा-हाकार व्याप जाते हैं। ऐसे धर्म-संकट के अवसर संसार में जहां-तहां प्रायः आते ही रहते हैं। कभी एक कारण से, कभी दूसरे कारण से, कभी काम, क्रोध, मद, मोह, लोभ या अहंकार वश शान्ति भंग हो जाती है। कभी किसी की कायरता, दुर्बलता या द्वेष-बुद्धि वश अशान्ति के बादल उमड़ने लगते हैं। अतः शान्ति के उपासकों और संरक्षकों को सदैव जागरूक बने रहना चाहिये। अन्यथा कोई एक छोटी-सी भूल भी बड़ी भयानक होगी। कभी-कभी तो छोटी-सी भूल-चूक के परिणाम भी घोरतम अशान्ति के रूप में ही प्रगट होते हैं।

कभी-कभी ऐसा भी होता है— दुष्ट, अनाचारी और ढोंगी-दल शान्ति के साज सजाकर उठ खड़े होते हैं। वे नाम तो लेते हैं शान्ति का, और काम करते हैं। अशान्ति वर्धक। अपने व्यक्तिगत या दल-गत स्वार्थ ही उनको अभिप्राय होते हैं। अपने स्वार्थों की सिद्धि के लिये वे संसार में निरन्तर अशान्ति फैलाया करते हैं। स्वार्थ सिद्धि के लिये ही वे शान्ति के ढोंग रचाया करते हैं। मानव-जाति तो स्वभाव से ही शान्ति प्रिय है। अतः बहुत-से लोग सरलता से ही, सहज विश्वासवश उन तथाकथित शान्तिवादियों के माया-जाल में फंस जाते हैं।

संसार में शान्ति के संवर्धन के लिये प्रत्येक मनुष्य को अपने-अपने कर्त्तव्य का पालन करना चाहिये। दूसरों के अधिकार-क्षेत्र में अनुचित हस्तक्षेप नहीं करना चाहिये। इस विषय में एक अच्छी नीति यह भी है कि अपनी शान्ति की रक्षा के लिये कोई किसी दूसरे की शान्ति को नष्ट न करे, दूसरों के हितों की हत्या न करे और शुभकर्मी जनों के उत्थान में बाधक भी न बने। सबको पारस्परिक सहयोग के साथ ही संसार में उत्तम नियमों का प्रचलन करना चाहिये। आपद्काल की बात दूसरी है। हर वक्त धमकी और डण्डे की नीति से काम निकालना ठीक नहीं, क्योंकि ऐसा करने से तो कभी न कभी सेर को सवासेर भी मिल ही जाता है। शांति का प्रत्येक काम शांति से किया जाये। शांति का आन्दोलन भी शांति से ही चलाया जाये। शांति स्थापना के सभी उपाय और साधन भी उन्नत, उत्तम, अनुभूत और शिष्ट-समाज द्वारा अनुमोदित हों।

### नागौर में अराष्ट्रीय ईसाई प्रचार निरोध सप्ताह

सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा द्वारा प्रकाशित सूचनानुसार आर्यसमाज नागौर (राजस्थान) की ओर से "अराष्ट्रीय ईसाई प्रचार निरोध सप्ताह एवं स्वामी श्रद्धानन्द बलिदान दिवस दि० २३-१२-६८ से २९-१२-६८ तक मनाया गया।

इस अवसर पर दिल्ली से पूज्य स्वामी श्री ब्रह्मानन्द जी सरस्वती एवं आर्य प्र० नि० सभा अजमेर के भजनोपदेशक श्रीमान पं० भगवती प्रसादजी अभय पधारे थे। नगर के भिन्न भिन्न मोहल्लों एवं नगर से दो-दो मील दूर चेनार बड़ली ग्राम की रेगर (चर्मकार) बस्तियों में सांयकाल सर्वजनिक समारोह दोपहर आर्य समाज में सभा हुई। जिनमें भिन्न २ विषयों पर पूज्य स्वामी जी महाराज का प्रवचन एवं अभयजी के भजनोपदेश हुये। सप्ताह भर नगर में प्रभात फेरी का भी सफल कार्यक्रम रहा।

सप्ताह समाप्ति समारोह हरिजन बस्ती में मनाया गया। सर्दी की इस भयंकर समय में भी पूज्य स्वामीजी के प्रवचन एवं अभयजी के भजन सुनने के लिये बहुत संख्या में नर-नारी उपस्थित होती थीं।

इस प्रचार कार्य के लिये श्री जगदीश सिंह जी मैनेजर काला टेवाहा कम्पनी नागौर श्री चरण सिंहजी मास्टर ने मोटर बस का प्रबन्ध किया और माहेश्वरी भवन के प्रबन्धक श्री बलदेव जी अद्वता उत्कृष्ट आदि माहेश्वरी महानुभाव, माहेश्वरी भवन एवं न्याय की पोल में प्रवचन का प्रबन्ध कराया। इस सहयोग के लिये आर्यसमाज इनके प्रति आभार प्रकट करते हुये धन्यवाद देती है।

# उपाध्याय स्मारक निधि

सर्व साधारण को सूचित किया जाता है कि उपाध्याय स्मारक निधि में अब तक निम्नलिखित सज्जनों से निम्नांकित राशि प्राप्त होने का वचन प्राप्त हुआ है। यह निधि आर्य जगत के प्रसिद्ध विद्वान श्री प० गंगाप्रसाद उपाध्याय के देहावसान के पश्चात उनकी स्मृति को चिरस्थायी बनाने के हेतु स्थापित की गई है जिसमें २५०००) रु० एकत्र किया जायगा और किसी बैंक में स्थिर निधि में जमा कर १२००) प्रतिवर्ष सूद प्राप्त करके आर्य सिद्धान्तों पर लिखी गयी सर्व श्रेष्ठ पुस्तक के लेखक को सम्मानित करके उपाध्याय पारितोषिक के रूप में प्रदान किया जायगा। इसके लिये निम्नांकित सदस्यों की एक उपसमिति बना दी गई है। सर्व श्री प्रो० सत्यप्रकाश, दयास्वरूप, सदस्य सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा दिल्ली, अभय कृष्ण जौहरी, प्रधान आर्य समाज चौक, प्रयाग, पं० मूलचन्द अवस्थी, प्रबन्धक आर्य कन्या इन्टर कालेज, प्रयाग, राधेमोहन मन्त्री, आर्य समाज चौक, प्रयाग

सूची

| | | |
|---|---|---|
| १. | श्री प्रो० सत्यप्रकाश, प्रयाग | २५००) |
| २. | ,, महात्मा आनन्द गिरी जी लुधियाना | ५०१) |
| ३. | ,, गंगाप्रसाद जी उमाशंकर आयल मिल, प्रयाग | २५१) |
| ४. | ,, प्रो० राजेन्द्र जिज्ञासु, अबोहर, पंजाब | १०१) |
| ५. | ,, डा० ओमप्रकाश जी, सिविल अस्पताल, लुधियाना | १०१) |
| ६. | ,, महात्मा आनन्द भिक्षु जी, दिल्ली | १०१) |
| ७. | ,, महाशय शिवशरण लाल आर्य प्रयाग | १०१) |
| ८. | ,, हरिश्चन्द्र जी साहु, प्रधान आर्य समाज कृष्णानगर, प्रयाग | १०१) |
| ९. | ,, प्रेम नारायण वार्षिनी, प्रधान, आर्य समाज, रानी मंडी | १०१) |
| १०. | ,, कृष्णप्रसाद जी, प्रयाग | १०१) |
| ११. | ,, श्यामकिशोर सिद्धान्तशास्त्री, प्रयाग | १०१) |
| १२. | ,, विनय कुमार जी, कला प्रेस प्रयाग | १०१) |
| १३. | ,, पं० इन्द्र दत्त शर्मा, प्रयाग | १०१) |
| १४. | ,, दुलारी देवी (धर्मपत्नी श्री सरजू प्रसाद जी गुप्त, प्रयाग) | १०१) |
| १५. | ,, बिहारी लाल बंसल, इलाहाबाद बैंक, प्रयाग | ५१) |
| १६. | ,, बैजनाथप्रसाद गुप्त, प्रयाग | २५) |
| १७. | ,, बालकृष्ण शर्मा, भजनोपदेशक, प्रयाग | २५) |
| १८. | ,, मदन मोहन विद्यासागर, हैदराबाद | ११२-२५ |
| १९. | ,, स्वामी परमहंस जी महाराज, प्रयाग | ५) |
| २०. | ,, बैजनाथ प्रसाद आर्य, प्रयाग | १२५-५० |
| २१. | ,, राधेमोहन, मन्त्री, आर्य समाज, चौक, प्रयाग | १०१) |
| २२. | ,, मूलचन्द अवस्थी, ओंकार प्रेस प्रयाग | १०१) |
| २३. | ,, गजाराम गुप्त, भूतपूर्व प्रधान, जिला आर्य सभा प्रयाग | १०१) |
| २४. | ,, पं० धर्मदेव विद्या मार्तण्ड ज्वालापुर | २५) |
| २५. | ,, विश्वम्भर दयालु वर्मा आर्य समाज सुभाष नगर प्रयाग | १०१) |
| २६. | ,, पं० बुद्धदेव जी शास्त्री प्रयाग | ५१) |
| | | ५१६२॥) |

भवदीय
राधे मोहन (संयोजक)

---

## गड़बड़ रामायण

( व्यंग्य पूर्ण परिहास )

आसु राज प्रिय प्रजा दुलारी।
वह है भारत का अधिकारी।
अस कहि चरण परे अकुलाई।
नाथ निकासहु दियासलाई।
परहित लागि तजै जो देही।
स्वर्ग जाय वह चार बजे ही।
सब की निंदा जे नर करही।
कबहुँ तड़ातड़ निश्चय पड़हीं।
कहइ भुशुण्ड सुनहु खग-नायक।
सो मैंह अब नम्बे नालायक।
आगम निगम पुरान बखाना।
सभा होय तँह शोर मचाना।
विधि केहि भांति धरहुँ उर धीरा।
एक खाट अगणित खटकीरा।
सकल सभा की मति भइ भोरी।
जूता गये अनेकन चोरी।
नर सहस्र मंह सुनहु पुरारी।
कोउ इक सखा खद्दर धारी।
आमन्त्रत मैं पूछहुँ तोही।
का काबुल मंह गधा न होई।

---

## शीघ्र आवश्यकता है।

विद्वान् प्रभावशाली उपदेशकों तथा मृदुभाषी, संगीतज्ञ भजनोपदेशकों की, जो राजस्थान प्रांत के नगरों तथा ग्रामों में वैदिक धर्म के प्रचार की योग्यता तथा क्षमता रखते हों। वेतन योग्यतानुसार दिया जायगा। आवेदन पत्र योग्यता, तथा अनुभव के प्रमाण पत्रों के सहित शीघ्र आमंत्रित किये जाते हैं।

श्री करण शारदा
मंत्री
आर्य प्रतिनिधि सभा राजस्थान अजमेर

---

## राजस्थान प्रान्त में आर्य वीर दल की आवश्यकता:—

यह तो प्रत्येक प्रान्त वासी जानता है कि राजस्थान प्रान्त का बहुत बड़ा भाग पाकिस्तान की सीमाओं से लगा हुआ है। ऐसी अवस्था में प्रत्येक आर्य समाज व आर्य शिक्षण संस्थाओं का कर्त्तव्य है कि वे अपने यहां अनुशासित आर्य वीर दल और आर्य वीरांगना दल की स्थापना करें और उन्हें पूर्ण सहयोग देकर बलशाली बनावें। जब तक प्रत्येक संस्था में प्रत्येक नगर में व प्रत्येक देश में चरित्रवान नवयुवक संगठित नहीं होते, तब तक उन संस्थाओं का काम व्यवस्थित नहीं चलता।

आर्य समाज का मुख्य उद्देश्य है कि शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति करना। देश में दुराचार, कुमार्ग ब्रह्मचर्य हीनता, मादक वस्तुओं का सेवन, अकर्मण्यता आदि अनेक बुराईयों को देश के नवयुवकों में से निकाल फेंकना है। आज प्रत्येक युवक पश्चिमी सभ्यता की ओर बढ़ता जा रहा है। इसलिए हमारा कर्त्तव्य है कि नवयुवकों को संगठित करके उनमें से बढ़ती हुई बुराईयों को निकालें। अतः प्रत्येक आर्य समाज के अन्तर्गत नगर समिति के लिए अन्तरंग सभा में से एक अधिष्ठाता और नगर संचालक नियुक्त करें और उन्हें यह कार्य सौंपे कि वह अपने समाज के अन्तर्गत आर्य वीर दल का संचालन करें और युवकों में भक्ति, धर्म प्रेम और शारीरिक, आत्मिक तथा सामाजिक शक्ति बढ़ाने की भावना जागृत हो सके।

कृपया प्रत्येक आर्य समाज व आर्य शिक्षण संस्था अपने यहाँ आर्य वीर दल की स्थापना करके सूचित करने का कष्ट करें। आर्य वीर दल के संगठन हेतु नगर समिति का संशोधित नियम निम्न प्रकार है:—

सार्वदेशिक आर्य वीर दल नियम १९६३ नियम संख्या ७ नगर समिति:— नगर समिति नगर में आर्य वीर दल की व्यवस्था करेगी। इसका प्रधान नगर संचालक होगा तथा इस समिति में नगर संरक्षक, उप नगर संचालक, मन्त्री, शारीरिक शिक्षक बौद्धिक शिक्षक, अर्थ नायक आर्य समाज अथवा आर्य समाजों द्वारा नियुक्त अधिष्ठाता तथा ५ प्रतिष्ठित सदस्य होंगे। आर्य वीरांगना दल की स्थापना की समिति इसी प्रकार से अलग होगी।

जेठमल आर्य सिद्धान्त शास्त्री
अधिष्ठाता
राजस्थान प्रदेश आर्य वीर दल
आबूरोड

### अन्तर्जातीय विवाह कर देश से जात पाँत समाप्त करो। सार्वदेशिक आर्य वीर दल की आर्य युवकों से अपील--

सार्वदेशिक आर्य वीर दल ने एक विज्ञप्ति में कहा है कि जो युवक अन्तर्जातीय विवाह कर देश में एकता स्थापित करने में योग दान देना चाहते हैं, वह अपने नाम तथा पते सार्वदेशिक आर्य वीर दल, महर्षि दयानन्द भवन, राम लीला मैदान, नयी दिल्ली-१ के पते पर शीघ्र भेजने का कष्ट करें।

विज्ञप्ति में आगे कहा गया है इस समय विदेशी शत्रुओं का तो देश में निरन्तर खतरा बना ही हुआ है, इससे भी अधिक खतरा आन्तरिक शत्रुओं का है, जो इस समय देश के विघटन में बड़े जोर शोर से सक्रिय हो गये हैं। विशेष रूप से यह सब शक्तियां जात पात के नाम पर ही देश को विघटित करने में संलग्न हैं। कार्य के लिए सार्वदेशिक आर्य वीर दल ने यह कार्य अपने हाथ में लिया है कि देश में जात पाँत को समाप्त करने के लिए एक आन्दोलनात्मक पग उठाया जाए। इसके लिए सार्वदेशिक आर्य वीर दल का आर्य युवकों को आह्वान है कि वह अपने आपको अन्तर्जातीय तथा अन्तर्प्रान्तीय विवाह के लिए प्रस्तुत कर जनता का मार्ग प्रशस्त करें।

हमें अपने व्यक्तिगत स्वार्थों में फस कर देश को नहीं भूलना चाहिए। ऐसा कोई कार्य जिससे देश का हित होता हो, आर्य युवकों को उसमें अग्रसर होना चाहिए जिससे कि देश के अन्य नवयुवकों में देशभक्ति की प्रेरणा जागृत हो और वह देश के विघटन को रोकने में अपना योग देसकें।

देश से इस छूतछात तथा जात पांत के अभिशाप को मिटा कर ही आर्य वीरों को दम लेना चाहिए, जिससे कि देश में महर्षि स्वामी दयानन्द के बताए मार्ग का प्रचार तथा प्रसार हो। आज भी महर्षि दयानन्द के उस समय के विचार उतने ही प्रभावशाली तथा देशहित में हैं, जितने कि उस समय थे। इस लिए महर्षि स्वामी दयानन्द के विचारों का प्रचार तथा प्रसार करना प्रत्येक आर्य के लिए बहुत आवश्यक कार्य है।

### अराष्ट्रीय प्रचार निरोध सप्ताह की राष्ट्र व्यापी धूम

सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा के कार्यालय में प्राप्त सैकड़ों पत्रों द्वारा यह ज्ञात हुआ है कि सभा के निर्देश पर सम्पूर्ण देश के ३००० से अधिक आर्य समाजें उत्साह पूर्वक अराष्ट्रीय प्रचार निरोध के सप्ताह मना रहे हैं।

इस सप्ताह में आर्य समाजें प्रचार के सभी संभव साधनों का प्रयोग कर देश के नागरिकों तक अराष्ट्रीय तत्वों के षड्यन्त्र की विभीषिका से परिचित करा रही हैं।

आर्य समाज का अराष्ट्रीय प्रचार निरोध आन्दोलन समस्त अराष्ट्रीय तत्व, विदेशी ईसाई पादरी, चीनी एजेन्ट पाकिस्तानी व राष्ट्र विरोधी तत्वों के विरुद्ध चुनौती है। सभा के मन्त्री लाला श्री रामगोपाल संसद सदस्य ने अपने एक वक्तव्य में राष्ट्र भक्त जनता से एक होकर इस पवित्र कार्य में आर्य समाज को सहयोग देने की अपील की है। आपने बताया कि आर्य समाज देश को विदेशी षड्यन्त्रों से मुक्त कराने में पूरी शक्ति लगा देगा। अतः सभी को चाहिए कि देश की स्वतन्त्रता को बचाने के लिए इस महान कार्य में आर्य समाज के हाथ सुदृढ़ करें।

### स्टेट बेंक द्वारा हिन्दी में हस्ताक्षर स्वीकार न करने की उप-प्रधान मन्त्री श्री मोरारजी देसाई द्वारा भर्त्सना !

भारत के उप-प्रधान मन्त्री श्री मोरारजी देसाई ने संसद-सदस्य श्रीराम गोपाल जी शालवाले को एक पत्र द्वारा सूचित किया है कि भविष्य में स्टेट बैंक के कर्मचारियों द्वारा किसी भी व्यक्ति को हिन्दी में हस्ताक्षर होने के कारण परेशान नहीं होना पड़ेगा।

विदित हो कि पिछले दिनों दिल्ली के वयोवृद्ध विद्वान और वैद्य श्री रामगोपाल शास्त्री को हिन्दी में हस्ताक्षर करने के कारण स्टेट बेंक के एक कर्मचारी ने उन्हें हिन्दी हस्ताक्षर प्रमाणित कराने के लिए कहा था और दो घण्टे तक उन्हें परेशान किया था। जिस पर श्री रामगोपाल जी शालवाले संसद सदस्य ने उप प्रधान व वित मन्त्री श्री मोरार जी देसाई को पत्र लिख कर शिकायत की थी कि हिन्दी के हस्ताक्षर करने पर आपत्ति करना किसी भी दृष्टि से उचित नहीं है। उन्होंने अपने पत्र में यह भी मांग की थी कि भविष्य में हिन्दी के हस्ताक्षरों का भी वही मान होना चाहिए जैसा कि अंग्रेजी हस्ताक्षरों का है।

प्रसन्नता की बात है कि उप प्रधान मन्त्री ने श्री रामगोपाल जी संसद सदस्य को पत्र लिख कर यह आश्वासन दिया है कि भविष्य में हिन्दी के हस्ताक्षर करने के कारण किसी को भी कोई कष्ट न होगा। इसके साथ ही उक्त अप्रिय घटना के लिए बैंक के अधिकारियों ने श्री रामगोपाल जी वैद्य से क्षमा मांगी है।

### आदिवासी, वनवासी तथा पिछड़े बन्धुओं के उत्थान के लिए किये गये कार्य का विवरण--

सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा के अन्तर्गत अराष्ट्रिय प्रचार निरोध समिति द्वारा चालित केन्द्रों पर सुचारु रूप से वनवासी, आदिवासी तथा पिछड़े वर्ग के बन्धुओं के लिए उत्थान के कार्य काफी दिनों से चल रहे हैं। यह केन्द्र कई प्रान्तों में चल रहे हैं। इस समय समिति द्वारा राजस्थान, मध्यप्रदेश, आसाम त्रिपुरा तथा उड़ीसा आदि प्रान्तों में यह केन्द्र चल रहे हैं।

अभी समिति कुछ नये केन्द्र आसाम तथा अण्डमान निकोबार आदि स्थानों पर खोलने का विचार कर रही है, जिससे कि सीमावर्ती पर्वतीय क्षेत्रों में अराष्ट्रिय गतिविधियों में सलग्न विदेशी मिशनों की गतिविधियों को समाप्त किया जा सके। इन केन्द्रों पर विदेशी ईसाई मिशनों की भाँति निःशुल्क शिक्षा, चिकित्सा तथा छात्रावास आदि चल रहे हैं। अब तक के चल रहे केन्द्र के कार्य का संक्षिप्त विवरण निम्न प्रकार है।

उड़ीसा-पालपोष खरिहारी—आदिवासी मुण्डा बच्चों के लिए स्कूल व छात्रावास, पीड़ित बन्धुओं के लिए ४ औषधालय जिन में लगभग १५००० हजारों रोगी प्रति वर्ष निःशुल्क चिकित्सा प्राप्त करते हैं तथा ५ पाठशालाएं चल रही हैं जिनमें १० अध्यापक निःशुल्क शिक्षा दे रहे हैं।

मध्यप्रदेश—थादला (झाबुआ) रायपुरा (उज्जैन)—थादला के केन्द्र पर वनवासी छात्रों के लिए निःशुल्क शिक्षा, वस्त्र तथा भोजन की व्यवस्था की गयी है जिनमें निर्धन वनवासी परिवारों के बच्चों को शिक्षा दी जाती है। इस समय छात्रावास में लगभग ३५ बच्चे निःशुल्क वस्त्र तथा भोजनादि की सुविधायें प्राप्त कर रहे हैं। रायपुर के केन्द्र पर वनवासी बच्चों के लिए निःशुल्क एक पाठशाला चल रही है जिसमें ४० छात्र शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं।

राजस्थान बांसवाड़ा: २ पाठशालाये चल रही हैं, छात्रावास भी है जहां १५ से ३० तक छात्रों को निःशुल्क शिक्षा तथा भोजनादि दिया जाता है।

त्रिपुरा बिलोनियां: निःशुल्क दवाई देने के लिए एक डिस्पेंसरी चल रही है जहां प्रति वर्ष हजारों को दवाई दी जाती है।

आसाम-डीफू तथा शिलांग: एक, सेवाश्रम की व्यवस्था कर दी गयी है और छात्रावास तथा स्कूल को चलाने की योजना है जिस पर लगभग १० लाख रूपये व्यय करने का अनुमान है। शिलांग में भी दयानन्द सेवाश्रम की स्थापना कर दी गयी है जिसके भवन का निर्माण कार्य आरम्भ हो गया है यहां पर भी चिकित्सालय, पाठशाला आदि चलाने की व्यवस्था होगी।

श्री अधिष्ठाताजी
गुरुकुल कांगड़ी
सहारनपुर



## आर्य मार्तण्ड को स्वावलम्बी बनाने में १०१) के आजीवन सदस्य बनकर तन-मन-धन से सहायता कीजिये !!

निम्नांकित महानुभावों ने मार्तण्ड को १०१) प्रदान कर आजीवन सदस्यता स्वीकार करने की कृपा की है, एतदर्थ हार्दिक धन्यवाद। आशा है, सभी आर्य बन्धुओं एवं आर्यसमाजों का इस कार्य में सक्रिय सहयोग प्राप्त होगा। जिन महानुभावों ने १०१) अभी तक नहीं भेजे हैं, कृपया शीघ्र भिजवाने का कष्ट करें, ताकि आगामी अंक में उन महानुभावों के नाम सधन्यवाद प्रकाशित किये जा सके। —व्यवस्थापक

### आजीवन सदस्य

(प्राप्त राशि)

१०१) रु० श्रीमान् पं० भगवानस्वरूप जी न्यायभूषण प्रधान सभा

१०१) „ „ छोटूसिंहजी एडवोकेट अलवर

१०१) „ „ भीमसिंह जी माउन्ट आबू

१०१) „ „ रामस्वरूपजी वेली शाहपुरा

१०१) „ „ श्रीकरणजी शारदा अजमेर

१०१) „ „ जेटमलजी आर्य आबूरोड

१०१) „ „ माधोसिंह शाहपुरा

१०१) „ „ डा० राजबहादुरजी कोटा

१०१) „ „ वैद्य धर्मसिंहजी कोठारी अजमेर

१०१) „ „ ओम्भक्तजी वानप्रस्थ जोधपुर

१०१) „ „ खुशीलाल जी नाथूलाल जी शिवगंज

१०१) „ „ आसीरामजी बेरी श्री गंगानगर

५०) „ „ संतोषसिंह जी कछवाहा जोधपुर

१०१) „ „ रामचन्द्रजी मूलजी जामनगर

१०१) „ „ देवराम जी शिवगंज

२५) „ „ सत्यवती देवी कन्हैयालाल जी कलयंत्री जोधपुर

३१) „ „ श्री जतनचन्द जी एडवोकेट अजमेर

५१) „ „ किशनसिंह जी गंगानगर

### वचन प्राप्त

१०१) रु० श्रीमान् गोपीवल्लभजी कोटा

१०१) „ „ मदनमोहनजी शर्मा बीकानेर

१०१) „ „ चौधरी नारायणराम जी गंगानगर

१०१) „ „ रमेशचन्द्रजी शारदा अजमेर

७०) „ „ जतनचन्द्रजी एडवोकेट अजमेर

१०१) „ „ लक्ष्मीचन्दजी शर्मा सुजानगढ़

१०१) „ „ कु० सरलाजी शारदा अजमेर

५१) „ „ संतोषसिंहजी कछवाहा जोधपुर

५०) „ „ किशनसिंह जी श्रीगंगानगर

१००) „ „ [illegible] देवीजी अलवर

७६) „ „ सत्यवती कन्हैयालाल जी कलयंत्री जोधपुर

### वैदिक विद्यालय पर्वतपुरा का श्रीमान् विद्यालय निरीक्षक अजमेर द्वारा निरीक्षण—

दि० १३ जनवरी ६६ को अजमेर वृत्त के विद्यालय निरीक्षक श्रीमान् भारतभूषणजी गुप्त ने पर्वतपुरा वैदिक विद्यालय का निरीक्षण किया। अध्ययन, व्यवस्था एवं विद्यालय की प्रगति की सराहना करते हुए आपने हार्दिक सहयोग प्रदान करने का आश्वासन दिया। और ग्रामीण क्षेत्र में चल रही इस पाठशाला को जो पाठ्य सामग्री सहित छात्रों को निःशुल्क शिक्षा देती है। उसको प्रगति शील बनाने में सरकार तथा जनता से योग दान की अपील की। विद्यालय के उपमंत्री पं० रामभजनजी मिश्र ने विद्यालय के आर्थिक संकट में अधिक योग दान की अपील करते हुए श्रीमान विद्यालय निरीक्षक को हार्दिक धन्यवाद अर्पित किया।

### [illegible] सभा

आर्य वानप्रस्थाश्रम ऋषि उद्यान अजमेर में दि० ११ जनवरी ६६ को माननीय डा० सम्पूर्णानन्द जी भूतपूर्व राज्यपाल राजस्थान के असमायिक निधन पर श्रीमान प० त्रिलोकी नाथ जी भार्गव की अध्यक्षता में एक शोक सभा आयोजित कर भाव पूर्ण हार्दिक शोकाञ्जलि अर्पित की गई। श्रीमान भार्गव साहब ने उनकी राष्ट्र सेवा की भूरि २ प्रशंसा की अन्य वक्ताओं के उनके जीवन के संबन्ध में व्याख्यान हुए।

### महाशोक !!

### वेदों के प्रकाण्ड पंडित !

आर्य जगत का महान विद्वान, वक्ता, तर्क शास्त्री एवं तपस्वी संत चल बसा! आर्य जगत को यह जानकर महान दुःख होगा कि वैदिक धर्म के मूर्धन्य विद्वान, आर्य संस्कृति एवं महर्षि दयानन्द के अनन्य भक्त, पूज्य स्वामी समर्पणानन्द जी दिल्ली में दि० १५ जनवरी को महान प्रमा[illegible] उनका निधन आर्य समाज की अपूरणीय क्षति है। परमात्मा दिवंगत आत्मा को परम पद प्रदान करें।

( विस्तृत वृत्तांत आगामी अंक में )

### आर्य समाज अकाल पीड़ित-गौ रक्षा-समिति बीकानेर द्वारा आह्वान

आर्य बन्धुओं,!

अनावृष्टि के कारण मरुभूमि राजस्थान का बहुत बड़ा भाग अकाल से पीड़ित है। विशेषतया बीकानेर, जैसलमेर, जालोर, बाड़मेर और जोधपुर क्षेत्रों में अकाल की स्थिति अति भयंकर है। भारत के केवल य ही क्षेत्र ऐसे हैं, जहा लाखों की संख्या में अति उत्तम नसल की गौवें पाई जाती हैं। अकाल के कारण चारा पानी न मिलने से काफी संख्या में गौवें मर चुकी हैं। यदि समुचित सहायता न की गई, तो इस गौधन की बहुत बड़ी संख्या समाप्त हो जायगी। इस के अतिरिक्त अकाल पीड़ित मनुष्यों को भी हर प्रकार की सहायता की अति आवश्यकता है। अन्न जल और काम के अभाव के कारण लोग बचे खुचे पशुओं को लेकर सहायता की खोज में ग्राम छोड़ चुके हैं। स्थिति अति दुखद और दयनीय है।

स्थिति की गम्भीरता को देखते हुये सभी सज्जनों और समाज सेवी संस्थाओं ने अकाल पीड़ित गौवों और मनुष्यों की सहायतार्थ अभिनन्दनीय कार्य आरम्भ कर दिये हैं। किन्तु यह समस्या इतनी विशाल है, जिस का सामना राष्ट्रीय स्तर पर करने की आवश्यकता है। क्योंकि अगले वर्ष वर्षा होने तक हमें अकाल रूपी दानव से जूझना है।

गोमाता की रक्षा और मानवता के दुख निवारण में आर्य समाज ने सदा ही अपना उत्तरदायित्व निभाया है। अपने योग दान के रूप में आर्य समाज बीकानेर द्वारा अकाल पीड़ित गो रक्षा समिति का गठन कर आर्य समाज गो रक्षा शिविर आरम्भ किया जा चुका है जिस को सभी का सराहनीय सहयोग प्राप्त है। शिविर में गौवों के लिये प्रर्याप्त चारा, पानी, छप्पर बीमार गौवों के लिये दवाई आदि की पूरी व्यवस्था है।

देश के सभी आर्य महानुभावों से साग्रह प्रार्थना है कि यथा शक्ति धन, चारा, कपड़े, दवाईयां आदि भेज कर अकाल पीड़ित लाखों तथा गो माता की रक्षा में पूर्ण सहयोग दे पुण्य के भागी बनें। अकाल की गंभीरता को दृष्टि में रख कर इस दिशा में तुरन्त पग उठावें।

प्रार्थी— आर्य समाज भवन
परमानन्द वस्ती
बीकानेर

श्री प० भगवानस्वरूपजी 'न्यायभूषण' के प्रबन्ध से वैदिक यन्त्रालय अजमेर में मुद्रित और ओम्भक्त वानप्रस्थ, सम्पादक प्रकाशक द्वारा दयानन्द आश्रम, केसरगंज अजमेर से प्रकाशित। अधिष्ठाता—श्रीमान् डा० भवानीलालजी भारतीय एम. ए. पी. एच. डी पाक्षी

पाक्षिक 7-2-69

आर्य प्रतिनिधि सभा राजस्थान का मुख्य-पत्र

रजि० नं० १४ जे०

# आर्य मार्तण्ड

दयानन्द आदित्य से पाकर ज्योति प्रचण्ड । ध्वंस दम्भ पाखण्ड का करे आर्यमार्तण्ड ॥

वर्ष ४६ | वार्षिक मूल्य ५) रुपया | सम्पादक—श्री ओम्भक्त वानप्रस्थ ( रामसहाय शर्मा ) अजमेर माघ शुक्ल १४ सं. २०२५वि., दि. १ फरवरी ६६ दयानन्दाब्द १४४ | एक प्रति का २० पै० | अङ्क २२


## ईश्वर प्रार्थना ?

### हमें दीर्घायु दो ।

ओ३म त्वं विश्वेषां वरुणासि राजा ये च देवा असुर ये च मर्ताः । शतं नो रास्व शरदो विचक्षे अश्यामायूंषि सुधितानि पूर्वा ॥

॥ऋग्वेद॥

पदार्थः-हे (वरुण) सर्वोत्तम ! हे (असुर) प्राणदाता ! (त्वं विश्वेषाम) आप सब के राजा (असि) हो (ये च देवाः) और देवता हैं (ये च) और जो (मर्ताः) मनुष्य हैं (नः) हमें (शतं शरदः) सौ वर्ष आयु (विचक्षे) देखने के लिये (रास्व) दो (सुधितानि) अच्छी स्थापन की हुई (पूर्वा) मुख्य (आयूंषि) आयुओं को (अश्याम) प्राप्त होवें ।

भावार्थः— (१)

हे प्रभु ! जीवन के सुख-दायक,
पावन एक तुम्हीं रखवाले ।
है जग में जितने जड़ दिव्य हु,
वायु, वन्ही रवि चन्द्र प्रभाले ।
चेतन देव व विज्ञ जना जिन,
के पितु प्रेरक ! तू प्रतिपाले ।
नाथ सदा तुम से वर मांगत,
दो हम को सद ज्ञान उजाले ॥

(२)

शक्ति बढ़ें शत वर्ष रहें हम,
प्रेम भरे नित ही गुण गावें ।
आयु पवित्र बनें सुख पाकर,
वैदिक ईश्वर ज्ञान बतावें ॥
हे जगनायक । हे जग पालक ।
हे सुख दायक ! देव कहावें ।
बारम्बार पुकार करें जन,
द्वार खड़े मनसार बुलावें ॥

कस्तूरचन्द "मनसार"

### भील क्षेत्र में अराष्ट्रीय ईसाइयों का भयंकर जाल ।

कुशलगढ़ खास (proper) की स्थिति यह है कि यहाँ की ७ हजार की जन संख्या में एक भी ईसाई नहीं होने के उपरांत भी नगरपालिका की सीमा से लगता हुआ भण्डारीया गांव में पादरी द्वारा जमीन काश्तकारी हेतु खरीदी गई व यहां पर एक चर्च की इमारत लगभग ६० हजार रुपये की लागत से बनाई गई । जिसकी मंजूरी पादरी ने तहसील से पशुशाला व खेती के स्टोर की ली । इस कांचदार व जालियों वाली दो मंजिला इमारत को देख कर कोई भी कह सकता है कि यह पशुशाला नहीं । इसकी सूचना यहाँ से पत्र क्र c/६० दि. २३-८-६८ द्वारा दी गई, लेकिन तहसील दार महोदय द्वारा मोके की कोई जांच नहीं की गई ।

कुशलगढ़ से ठीक ५-६ माइल की दूरी पर आलमपुरा नामक गांव में एक सप्ताह हुआ है, एक २५०) रु. में पादरी द्वारा जमीन हड़ीया वारिया नामक आदिवासी की जमीन चर्च व स्कूल के निमित्त खरीदी गई है और तुरन्त उस पर निर्माण कार्य शुरु भी कर दिया है । शीघ्र ही भविष्य में उस क्षेत्र के लोगों को ईसाई बनाने में एक मोर्चा फिर उन्होंने कायम किया है । इस तरह इस क्षेत्र में मोहकमपुरा, भण्डारीया, मसका, आंबापाड़ा आलमपुरा आदि में चर्च इमारतों का जाल बिछाया जा चुका है ।

अभी कुछ समय हुआ गत नवम्बर में एक आदिवासी 'पोस्कल' पादरी की दीक्षा में गया । जिस समारोह की अध्यक्षता हीरजी भाई एम पी. द्वारा की गई । इस तरह स्वयं राज के कितने महत्वपूर्ण पद पर कार्य करने वाले लोग ही इनके सहयोग में हैं, तो क्या इनकी मुश्किलों से, ये ईसा की सूली गलों में नहीं फसावें । संबन्धित विषयों में शीघ्र मार्ग दर्शन एवं सहायता की आवश्यकता है । मंत्री

### दिवंगत विद्वच्छिरोमणि स्वा० समर्पणानन्द जी (पं० बुद्धदेव जी) को श्रद्धाञ्जलि !

विद्या के मार्तण्ड मनस्वी,
बुद्ध देव जी अस्त हुए ।
जग को आलोकित करके वह,
दिव्य दिवाकर अस्त हुए ॥
ओजस्वी वक्ता वे कविवर,
प्रतिभाशालि शिरोमणि थे ।
अज्ञानात्याचार मिटाते,
हाय भानु वे अस्त हुए ॥
नहीं दिखाई देता उनसा,
प्रतिभान्वित वैदिक विद्वान् ।
दूर दूर यात्राओं में कर,
शक्ति अपव्यय अस्त हुए ॥
शतपथ ब्राह्मण व नि आथर्वण
भाष्य अधूरा छोड़ गये ।
जनता का यह दोष अधूरा,
कार्य छोड़ जो अस्त हुए ॥
ये शास्त्रार्थ महारथि अनुपम,
सिंह समान गरजते थे ।
तम अज्ञान मिटाते जग का,
विद्या भास्कर अस्त हुए ॥
केसरि सम उनका जब गर्जन,
नहीं सुनाई देवेगा ।
गर्जन में निज शक्ति खो गये,
कभी न जो कि परास्त हुए ॥
वेद धर्म निष्ठा विद्वत्ता,
निर्भयता का अनुकरणीय ।
प्रस्तुत करके भव्य निर्देशन,
बुद्धदेव रवि अस्त हुए ॥
सरस्वती के पुत्र लाड़ले,
बनकर वे समर्पणानन्द ।
श्रद्धापूर्वक कर हरि कीर्तन,
इसमें ही वे मस्त हुए ॥

विनीत

(धर्मदेव विद्यामार्तण्ड)

# डा० सम्पूर्णानन्द की साहित्य-साधना

(श्री भवानीलालजी भारतीय, एम. ए. पी. एच. डी.)

सुप्रसिद्ध देशभक्त और विद्वान् डा० सम्पूर्णानन्द के निधन से देश के एक विख्यात नेता, प्रशासक और स्वाधीनता संग्राम के सेनानी की ही क्षति नहीं हुई, अपितु एक प्रख्यात साहित्यकार एवं राष्ट्रभाषा के महान लेखक से भी देश वंचित हुआ है। डा० सम्पूर्णानन्द ने जन्मभूमि और सरस्वती का समाराधन साथ ही साथ किया। डेली कालेज इन्दौर तथा डूंगर कालेज, बीकानेर में उन्होंने अपने जीवन का प्रारम्भ एक कुशल शिक्षक के रूप में किया। वे विज्ञान के स्नातक होने के साथ साथ प्रशिक्षित अध्यापक भी थे। सम्पूर्णानन्द जी की ख्याति लोक नेता की अपेक्षा उनके एक अध्ययन शील चिंतक एवं कुशल लेखक होने के कारण हुई। यहाँ हम उनके साहित्यिक कृतित्व का किंचित विवेचन करेंगे।

सम्पूर्णानन्द जी संस्कृत एवं वैदिक साहित्य के अद्वितीय एवं तलस्पर्शी विद्वान् थे। उन्होंने पौरस्त्य भारतीय वाङ्मय का विशद अध्ययन किया था। साथ ही पश्चिमी दर्शन, राजनीति, अर्थनीति एवं समाजशास्त्र का भी उन्होंने गहन और अधिकृत ज्ञानार्जन किया था। समाजवाद शीर्षक उनका ग्रन्थ अपने विषय का अद्वितीय ग्रन्थ है, जिसमें पाश्चात्य संसार में उत्पन्न समाजवाद की विविध धाराओं का आलोचनात्मक किन्तु सहानुभूतिपूर्ण विश्लेषण किया गया है। इस पुस्तक पर उन्हें हिन्दी साहित्य सम्मेलन से मंगलाप्रसाद पारितोषिक प्राप्त हुआ था। 'व्यक्ति और राज' उनका अन्य महत्वपूर्ण ग्रन्थ है, जिसमें मौलिक दृष्टि से व्यक्ति और समाज के पारस्परिक सम्बन्धों तथा अधिकारों एवं कर्त्तव्यों का विवेचन हुआ है। इन ग्रन्थों को लिखकर उन्होंने हिन्दी में इस विषय के मौलिक ग्रन्थों की परम्परा को जन्म दिया।

राजनीति एवं अर्थशास्त्र के साथ साथ सम्पूर्णानन्द जी ने धर्म, दर्शन एवं अध्यात्म विषयक ग्रन्थ भी लिखे। उनका 'चिद्विलास' शाङ्कर अद्वैत का विवेचन करने वाला एक उत्कृष्ट ग्रन्थ है, जिसमें ब्रह्म की एक, अद्वितीय, कूटस्थ सत्ता का विश्लेषण करते हुए विश्व प्रपंच की वेदान्तानुसारिणी व्याख्या की गई है। गणेश' शीर्षक रचना में उन्होंने वैदिक साहित्य में विद्यमान गणपति तत्व का विवेचन करते हुए उसे पौराणिक गणेश से भिन्न सिद्ध किया है। विद्वान् लेखक के अनुसार यजुर्वेद में 'गणानांत्वा गणपति हवामहे' आदि मंत्रों द्वारा जिस गणपति की वन्दना की गई है, उसका देवता ब्रह्मणस्पति है। जो पौराणिक गणेश से भिन्न है। लेखक ने पार्वती पुत्र, लम्बोदर, वक्रतुण्ड गणपति की कल्पना को पर्याप्त अर्वाचीन सिद्ध करते हुये बताया है कि 'विनायक' तत्व वास्तव में एक अनार्य देवता को विघ्नकर्त्ता के रूप में प्रसिद्ध थे, परन्तु कालान्तर में उन्हें वैदिक देव परिवार में प्रतिष्ठित कर लिया गया। उनकी पूजा के लिये यजुर्वेद के अश्वमेधाध्याय का उपर्युक्त मंत्र निश्चय किया गया तथा उनको हिन्दू देवमाला में प्रमुख स्थान देने हेतु उनके नाम पर एक उपनिषद् तथा एक पुराण की ही रचना नहीं हुई अपितु उनकी उपासना के लिये एक पृथक गणेश गायत्री—'वक्रतुण्डाय विद्महे लम्बोदराय धीमहि, तन्नो दन्ति प्रचोदयात्' भी कल्पित की गई।

कहना नहीं होगा कि सम्पूर्णानन्द जी के इन क्रान्तिकारी निष्कर्षों से धार्मिक जगत् में एक भूकम्प सा आ गया। पौराणिक विद्वानों ने उनकी स्थापनाओं का खण्डन किया, परन्तु डाक्टर साहब द्वारा प्रस्तुत निष्कर्ष सुचिन्तित तथा ठोस आधार पर उपस्थित किये गये थे। गणेश के देवत्व को हिन्दू धर्म के अतिरिक्त जैन तथा बौद्ध धर्म में भी स्वीकार किया गया है तथा एक समय उनकी उपासना वाम मार्गी पद्धति से भी की जाती थी, यह भी उक्त पुस्तक का विवेचनीय विषय था। बृहत्तर भारत में गणेश की जो पुरानी प्रतिमायें उपलब्ध होती हैं, उनके आधार पर विद्वान् लेखक ने बताया कि मंगोलिया जैसे बौद्ध देशों में तलवार पहने जो गणेश प्रतिमायें मिलती हैं, वे इस देवता की सार्वजनीनता तथा लोकप्रियता ही सूचित करती हैं। सम्भवतः गणेश तत्व पर यह ग्रन्थ अपने आपमें शोध एवं अनुसंधान का नया आयाम उपस्थित करता है।

डा० सम्पूर्णानन्द का लेखन विवादास्पद भी बना जबकि उन्होंने 'ब्राह्मण सावधान' लिख कर ब्राह्मणों के शोचनीय पतन की ओर उनका ध्यान आकृष्ट किया। यह बात नहीं कि इस लघु किंतु क्रान्तिकारी निबन्ध में लेखक ने वैदिक और परवर्ती भारतीय समाज में ब्राह्मणों की महत्ता एवं उनके वर्चस्व को अस्वीकार किया हो। इसके विपरीत उनकी स्थापना तो यह थी कि मध्यकालीन हिन्दू धर्म एवं सभ्यता के पतन का मूल कारण ब्रह्मजन्मा ब्राह्मणों का अपने कर्त्तव्य से च्युत होकर अवैदिक तथा पौराणिक आचार व्यवहार एवं दर्शन चिंतन को स्वीकार कर लेना था। उन्होंने अत्यन्त विदग्धतापूर्वक यह तथ्य उद्घाटित किया कि मंत्र संहिता काल का उदात्त और जीवन के प्रति अनुराग एवं आशापूर्ण जीवन दर्शन मध्यकाल में छोड़ दिया गया और उसके स्थान पर जिस निराशावादी दर्शन का प्रतिपादन किया गया, वह देश की अस्मिताको ही आघात पहुंचाने वाला नहीं था अपितु उससे जीवन को हेय, त्याज्य और तिरस्कार के योग्य समझने की अस्वस्थ एवं रुग्ण भावना की ही वृद्धि हुई। हिंदू धर्म के इस अधः पतन तथा अवमूल्यन को उन्होंने साम गान के स्थान पर शिव महिम्न जैसे स्तोत्रों के पाठ, वेद प्रामाण्य के स्थान पर गीता एवं हनुमानचालीसा की प्रमाणिकता तथा इन्द्र, वरुण, अग्नि, सोम आदि वैदिक देवताओं के स्थान पर शीतला, भैरव तथा हनुमान जैसे ग्राम्य अथवा पौराणिक देवताओं की प्रति स्थापना जैसे प्रतीकों से स्पष्ट किया है।

सम्पूर्णानन्द जी का यह लघु ग्रन्थ भी विवादास्पद बना दिया गया। काशी की विद्वन्मण्डली ने उन पर यह आरोप लगाया कि स्वयं अब्राह्मण (कायस्थ) होने के कारण उन्होंने ब्राह्मणों पर आक्षेप आक्रमणों की वर्षा कर अपने ब्राह्मणद्वेष का परिचय दिया है। इस पुस्तक के उत्तरदाता अनेक पण्डित मन्यों ने उन्हें बाबू (अब्राह्मण) सम्पूर्णानन्द कह कर संबोधित किया, परन्तु इन कट्टर पंथी ब्राह्मणों के निराधार आक्षेपों का सरल भाव से प्रत्याख्यान करते हुये भी सम्पूर्णानन्द जी ने स्वयं कहीं भी संकीर्णता का परिचय नहीं दिया। उन्होंने व्यक्तिगत आक्षेपों और कटूक्तियों की उपेक्षा करते हुये अपने मत को ही सुदृढ़ रूप से पुनः स्थापित किया।

वैदिक वाङ्मय के प्रति स्वर्गीय डाक्टर साहब की अटूट श्रद्धा रही। उनकी यह निश्चित धारणा थी कि वैदिक साहित्य में आख्यापित नैतिक तथा सामाजिक मूल्यों को स्वीकार किये बिना हम अपनी वर्तमान अवस्था को सुधार नहीं सकेंगे। फलतः उन्होंने गीता और उपनिषद् से भी अधिक और वेदों के संहिता भाग के अध्ययन पर दिया और यह बताया कि भारतीय आर्य जाति के दर्शन चिंतन और विचारधारा का मूल उत्स वैदिक संहितायें हैं जिनमें नितांत महनीय एवं उदात्त जीवन की व्याख्या की गई है। इस संबंध में उनके द्वारा दिये गये 'हिंदू देव परिवार का विकास' शीर्षक लिखित भाषण माला का उल्लेख आवश्यक है। इस ग्रन्थ में उन्होंने वैदिक देवतावाद का विवेचन करते हुये यह भी बताया है कि इन्द्र, अग्नि, वरुण आदि वैदिक देवों का पौराणिक स्वरूप कितना विकृत, लांछना पूर्ण तथा उनके मौलिक स्वरूप से नितांत भिन्न हो गया है। अथर्ववेद के सुप्रसिद्ध व्रात्य-काण्ड की उन्होंने संस्कृत तथा हिंदी में व्याख्या भी लिखी है।

शेष पृष्ठ ४ पर

# आर्य मार्तण्ड

अजमेर माघ शु० १४ सं० २०२५ वि० दिनांक १ फरवरी सन् १९६९

सम्पादकीय—

## पूज्य स्व० स्वामी समर्पणानंद जी !!

प्रकाण्ड वैदिक विद्वान पूज्य स्वामी समर्पणानंद जी का दि० १५ जनवरी ६९ को सरगंगाराम अस्पताल दिल्ली में देहांत हो गया। हिरनीया के आपरेशन के लिये उन्हें अस्पताल में भरती किया गया था। उनके निधन से वेदों का एक प्रकाण्ड पण्डित, महान वैदिक विद्वान, अद्वितीय तर्कशास्त्री आर्य सिद्धान्तों का सुदृढ अनुयायी एवं ऋषि दयानन्द का अनन्य भक्त इस वसुधा तल से सदा के लिये हमसे विदा हो गया। जिसने भी उनके निधन का दुख समाचार सुना, उनकी पुण्य स्मृति में अश्रु पूरित भावाञ्जलि अर्पित किये बिना न रहा। आर्य जगत के तो वह महान प्रकाश स्तम्भ थे। भारत माता को अपने इस सपूत पर महान गर्व था। आर्येतर जनता ने भी उनकी इस क्षति को अपूरणीय अनुभव कर महान दुख प्रकट किया है।



हो भी क्यों न, जिसने वैदिक धर्म तथा आर्य संस्कृति के प्रचार प्रसार एवं संरक्षण में अपने जीवन के सुखैश्वर्य को समर्पित कर दिया हो। जिसने अपने उत्साह तर्क और विद्वत्ता के आलोक से समस्त आर्य जगत को आलोकित कर बड़े २ धुरंधर तर्क शास्त्रियों एवं विपक्षियों का शास्त्रार्थ रणांगण में धराशायी कर वैदिक धर्म तथा महर्षि दयानंद जी की जय को साकार रूप दिया हो। उस ऐसी दिव्य एवं महान आत्मा के वियोग से किसे दुख नहीं होगा ?

गत वर्ष वह ऋषि मेला पर अजमेर पधारे थे। उनकी ओज, प्रसाद, माधुर्य एवं गुण पूर्ण वक्तृता आज भी रह २ कर हृदय को आंदोलित कर रही है। ७४ वर्ष की इस वृद्धावस्था में भी जब वह मंच पर अपनी ओजस्वी वाणी से अमृत वर्षा करते, तो जनता मन्त्र मुग्ध होकर उस शब्द-सुधा का पान कर न केवल फड़क उठती थी, अपितु एक नया जीवन, प्रेरणा और नवीन उत्साह लेकर जाती थी। लगातार श्री पं० रामचन्द्र जी देहलवी श्री पं. भगवद्दत्त जी, श्री पं. कालीचरण जी, श्री पं. गंगा प्रसाद जी उपाध्याय तथा अब पूज्य स्वामी समर्पणानंद जी के चिर वियोग की अपूरणीय रिक्तता आर्य जगत को बहुत खटक रही है। और सहसा प्रश्न उठता है। अब आर्य समाज की शास्त्रार्थ रण स्थली में कौन जगद्गुरू शंकराचार्य अथवा अन्य विपक्षियों को हतप्रभ करेगा ?

स्वामी समर्पणानंद जी का जन्म सन् १८९५ में हुआ। अमर हुतात्मा स्वामी श्रद्धानन्द जी के आप परम सहयोगी थे। लगभग ७ वर्ष पूर्व ऋषि की निर्वाण स्थली अजमेर के ऋषि उद्यान में पूज्य स्वामी व्रतानंद जी महाराज से आपने सन्यास की दीक्षा ग्रहण की थी। इससे पूर्व आप पं० बुद्धदेव विद्यालंकार थे। आप गुरुकुल कांगड़ी विश्व विद्यालय के कुलपति भी रहे। लगभग ३० वर्ष तक आपने गुरुकुल की बड़ी निष्ठा, श्रम तथा लगन से सेवा की। हैदराबाद सत्याग्रह तथा पंजाब हिन्दी आंदोलन में आपने खुलकर भाग लिया। ऋषि की उत्तराधिकारिणी परोपकारिणी सभा की हार्दिक इच्छा स्वामी समर्पणानंद जी के व्याख्यानों को 'टेप रेकार्ड' कराने तथा उनके द्वारा वैदिक इतिहास की पूर्ति की योजना थी। सभा के निमन्त्रण को उन्होंने सहर्ष स्वीकार कर अजमेर ऋषि उद्यान में स्थायी रूप से निवास कर वैदिक धर्म एवं वैदिक साहित्य सेवा की पूर्ति की योजना बना ली थी। किन्तु प्रभु को यह स्वीकार नहीं था और परोपकारिणी सभा की वह योजना यों ही रह गई तथा स्वामी समर्पणानंद जी ने अपने आपको प्रभु चरणों में सदा के लिये सानंद समर्पित कर दिया।

उनके निधन से आज समस्त आर्य जगत शोक-विह्वल है। इसलिए नहीं कि एक आर्य सन्यासी विदा हो गया, अपितु एक महान वैदिक प्रकाश स्तम्भ के ढह जाने से आर्य जगत तमाच्छादित दृष्टि गोचर हो रहा है। और उस अद्वित य दिव्य विभूति के युगोत्तर ज्ञान प्रकाश से हम सदा के लिये वंचित हो गये।

परम पिता परमात्मा उस दिव्य दिवंगत आत्मा को निर्वाण पद तथा शोकाकुल आर्य जगत को धैर्य एवं शांति प्रदान करे। प्रभो! आर्यावर्त में पुनः ऐसी दिव्य ज्योति प्रादुर्भूत हो, जिससे विश्व का अज्ञानांधकार नष्ट हो और परम पवित्र वेदों के प्रकाश और वैदिक ज्ञान ज्योति से विश्व का घर-घर ग्राम-ग्राम और जन-जन आलोकित हो।

---

### वार्षिक उत्सव

आर्य समाज जवाहर सागर बाँध ने बड़ी धूम धाम के साथ वार्षिक उत्सव दिनांक २०-१२-६८ से २२-१२-६८ तक मनाया। जिसमे आर्य जगत के प्रसिद्ध धर्मोपदेशक श्रीमान् पं० बिहारीलाल जी एवं पूज्य विशुद्धानन्द जी एवं श्रीमान वानप्रस्थी सुखदेव जी का धर्म, आदि मार्मिक विषयों पर सरल एवं हृदयग्राही प्रवचन हुये। इसमें धर्म लाभलेने हेतु जवाहर सागर की सभी जनता उत्सुकता से सम्मिलित होती रही।

---

### शुभ सूचना

आपको यह ज्ञात कर बड़ा हर्ष होगा कि स्थानीय आर्य समाज मन्दिर में हमेशा की भांति मकर संक्रान्ति पर्व दिनांक १४ जनवरी माघ कृष्ण ११ मंगलवार को बड़े ही उत्साह के साथ सम्पन्न हुआ।

दिनांक २३-१-६९ बुधवार माघ शुक्ला ५ को महान पर्व वसन्त पञ्चमी महोत्सव बड़े धूम-धाम के साथ मनाया गया, इस शुभ अवसर पर विशाल पैमाने पर यजुर्वेद महापारायण की पवित्र वेदी पर उपरोक्त दोनों ही महापर्वों पर विशेष यज्ञोंका आयोजन हुआ और सत्सङ्ग के आयोजन के साथ-साथ इन महापर्वों के महत्व पर काफी अच्छा प्रकाश डाला गया, जिससे काफी लाभ-प्राप्त हुआ। आर्य जगत में पर्वों का बड़ा ही भारी महत्व-दर्शाया गया। जिसका समस्त आर्यों को इस पर्व के द्वारा तथा इसको माध्यम बना कर आज के युग में आर्य समाज का तथा उसके उद्देश्यों का काफी अच्छा लाभ प्रद प्रचार व प्रसार किया जाना आवश्यक बताया।

वैदिक-सूत्र—

# सच्चाई की शक्ति

लेखक—श्री पण्डित जगत्कुमार शास्त्री "साधु सोमतीर्थ" देहली

ऋतस्य श्लोको बधिरा ततर्द । ऋ० ४।२३।८

सच्चाई की पुकार बहरों के भी कान खोल देती है।

## प्रवचन

सच्चाई को छिपाने और दबाने के निन्दित प्रयत्न भी समय-समय पर संसार में होते ही रहते हैं। स्वार्थी लोग स्वार्थ-सिद्धि के लिये मिथ्यावादों को प्रचारित करते हैं। ढोंगी अपना ढोंग बनाये रखने के लिये असत्य का आश्रय लेते हैं। अपराधी अपना अपराध छिपाने एवं न्याय का मुंह चिढ़ाने के लिये सत्य को छिपाते और दबाते हैं। दम्भी झूठ बोलते हैं। ठग, चोर, शिकार और नाना प्रकार के मायावी लोग अपनी वास्तविकता को छिपाकर, अपना अपना शिकार फांसते हैं। व्यक्ति पाप करते हैं। जातियां पाप करती हैं। समाज और राष्ट्र भी पाप करते हैं। कोई व्यक्ति हो या जाति, पापाचार का व्यवहार जो करते हैं, वे सब तो असत्य का आश्रय अवश्य ही लेते हैं। अपराध-परम्परा के साथ ही साथ उन की असत्य परम्परा का भी आरम्भ होता है। फिर ये दोनों परम्पराएं साथ-साथ ही चलती हैं। अपराधी और मिथ्यावादी लोग अपनी दुष्टताओं पर पर्दा डालने सभ्य संसार की आंखों में धूल झोंकने और आसानी से अपना हलवा-मांडा उड़ाने के लिये झूठी-धार्मिकता के चोले भी पहिन लेते हैं।

गीता पुस्तक हाथ, साथ विधवा,
माला विशाला गले ।
गोपी चन्दन चर्चित मुललितं,
भाले च वक्ष स्थले ।
वैरागी नट, वा कलाल,
पटवा, धोबी, धुना, धीवराः ।
हा, वैराग्य ! कुतो गतः ?
कलियुगे गुण्डाः परम वैष्णवाः ॥

जान-बूझकर या अनजान में मनुष्य एक भूल करता है। उस भूल को छिपाने के लिये दूसरी भूल की जाती है। फिर उसे भी छिपाने के लिए तीसरी भूल की जाती है। फिर चौथी फिर छठी फिर सातवीं भूल होती है। मिथ्यावाद का एक बड़ा तूफान सा खड़ा कर दिया जाता है। एक मनुष्य दूसरे मनुष्य की अल्पज्ञता का अनुचित लाभ उठाता है। खोटा सिक्का चल जाता है। कुछ काल तक वह चलता ही रहता है। फिर एक समय आता है·········सत्य और झूठ अपने-अपने असली रूप में प्रगट हो जाते हैं। मिथ्यावाद की पोल खुल जाती है। विजय भी अन्त में निश्चित् रूप से सत्य को ही प्राप्त होती है। पोल खुलने पर बड़े बड़े पाखण्डियों का नशा हिरण हो जाता है। सच है—

सच्चाई छिप नहीं सकती,
बनावट के असूलों से ।
कि खुशबू आ नहीं सकती,
कभी कागज के फूलों से ॥

सच्चाई में बड़ा बल है। तथापि अविद्या और अन्धकार में फंसे हुए लोग सच्चाई और उस के बल को देखते समझते नहीं। सच्चाई की ओर देखने और उसके प्रखरतेज को सहन करने की क्षमता ही उन में नहीं होती। देखते हुए भी वे नहीं देखते। जैसे उल्लू प्रकाश से घबराता है, ऐसे ही वे भी सत्य से घबराते हैं। सत्य है तो प्रकाश का ही एक पुंज, तथापि जैसे कभी कभी बादल या को हरा सूर्य को आच्छादित कर लेते हैं, वैसे ही मिथ्यावाद के चमकीले-भड़कीले परदे भी कभी-कभी सत्य को तिरोहित सा कर देते हैं। यह सूर्य का आच्छादन और सत्य का तिरोभाव मनुष्य की व्यावहारिकता के अनुसार ही कही-सुनी जाती है। यथार्थ में न कोई सूर्य को ढांप सकता है, न ही सत्य को। अन्त में तो मनुष्य का विभ्रम समाप्त हो ही जाता है।

सत्य का उद्घोष ऐसा अमोघ, गम्भीर और तुमुल होता है कि बहरे भी उसे सुन लेते हैं। सत्य का स्वरूप ऐसा प्रचण्ड, प्रखर और पावक है कि अन्धे भी उसे देख लेते हैं। सत्य की प्रभा ऐसी पुनीत और शुभ्र है कि वह पापियों, अपराधियों और मूढ़ता ग्रस्त व्यक्तियों, जातियों, समाजों एवं राष्ट्रों को भी सरल स्निग्ध, निष्पाप और सत्यशील बना देती है। सच्चाई की पुकार तो पशु-पक्षियों को भी उत्तमतया प्रभावित किया करती है। धन्य हैं, वे, जो सत्य के दर्शन करते हैं। धन्य हैं, वे, जो सत्य से प्यार, और सत्य का ही प्रचार करते हैं। धन्य हैं, वे जो प्रलोभनों में नहीं फंसते और मिथ्यावादों से किसी भी प्रकारका समझौता नही करते। सत्य ही मानव-जीवन का सर्वोपरि लक्ष्य है। सत्य को प्राप्त करके न कोई पापी पापी रहता है, और न कोई अपराधी, अपराधी। सत्य मानव जीवन की चाल को सुधार देता है, कांटा बदल देता है, पतन के मार्ग से बचाकर, उसे सन्मार्ग पर चला देता है। सत्यशील बनो। सत्यवादी बनो। सच्चाई का गला घोटने की व्यर्थ चेष्टा न करो।

### आर्य समाज आबू पर्वत का चुनाव

रविवार १६ जनवरी १९६९ को आबू आर्य समाज मन्दिर में श्रीत्यागी त्रिवेणीदास जी की अध्यक्षता में सर्वसम्मति से आर्य-समाज आबू पर्वत के अन्तरंग सभा का निर्वाचन निम्नप्रकार किया गया:—

| | |
|---|---|
| (१) श्री ओमप्रकाशजी | प्रधान |
| (२) श्री त्यागी त्रिवेणीदासजी | उप प्रधान (प्रथम) |
| (३) श्री रामलुभायाजी दत्ता | उपप्रधान (द्वितीय) |
| (४) श्री दुर्गाप्रशादजी खण्डेलवाल | मन्त्री |
| (५) श्री कन्हैयालालजी आर्य | उप मन्त्री |
| (६) श्री रणवीर सिंह जी | कोषाध्यक्ष |
| (७) श्री मुंशीरामजी | पुस्तकाध्यक्ष |
| (८) श्री मगलसिंहजी | सहायक पुस्तकाध्यक्ष |
| (९) श्री मूलारामजी | अन्तरंग सदस्य |
| (१०) श्री सत्यनारायणजी | " |
| (११) श्री मंगलसिंहजी | " |

### वैदिक विवाह सानंद सम्पन्न

दि० २२ जनवरी ६६ को सांभर निवासी श्री तेज सिंह जी का विवाह श्री शोभादेवी के साथ नगर आर्य समाज अजमेर के तत्वाधान में वैदिक विधि से सानंद सम्पन्न हुआ। इस अवसर पर ११) नगर आर्य समाज अजमेर तथा ११) आर्य प्रतिनिधि सभा राजस्थान को दान दिये। एतदर्थ धन्यवाद।

शेष पृष्ठ २ का

गम्भीर शास्त्रीय साहित्य के साथ साथ उनके द्वारा लिखित ललित साहित्य भी महत्वपूर्ण है। उनके संस्मरण अपने आपमें अतीव रोचक तथा देश के स्वातन्त्र्य संग्राम का वास्तविक चित्र उपस्थित करने वाले हैं। वे हिंदी में वैज्ञानिक साहित्य को प्रोत्साहित करने के इच्छुक थे। उन्होंने वैज्ञानिक तथ्यों पर आधारित एक उपन्यास भी लिखा था। नागरी प्रचारिणी सभा तथा काशी विद्यापीठ से उनका आजन्म संबंध रहा। निश्चय ही उनका निधन एक वैदिक मनीषी एवं राष्ट्रभाषा के पुजारी का निधन है। हिन्दी का सारस्वत समाज उनके वियोग को अपनी एक अपूरणीय क्षति मानेगा।

### आर्य वर की आवश्यकता

श्री लाहोटीजी द्वारा—

# चतुर्वेद पारायण यज्ञ सम्पन्न

सुजानगढ़ निवासी श्री हरिवक्षजी लाहोटी ने लगभग एक वर्ष पूर्व अपने गृह पर चतुर्वेद पारायण यज्ञ प्रारम्भ किया, जिस की पूर्णाहुति अभी दि० १२ जनवरी को समारोहपूर्वक सम्पन्न हुई। उस समय नगर के गण्यमान्य सज्जन नर-नारी भारी संख्या में उपस्थित हुए। पूर्णाहुति का कार्यक्रम वेद वागीश प० सत्यानन्दजीव्याकरणाचार्य एम० ए० द्वारा हुआ, और आर्य प्रतिनिधि सभा राजस्थान के प्रधान श्री पं० भगवानस्वरूप न्याय-भूषण ने वेद की महत्ता पर सारगर्भित उपदेश किया।

लाहोटी परिवार सुजानगढ़ में वैदिक धर्म का प्रेमी और विशुद्ध धार्मिक भावनाओं स नियुक्त श्रद्धालु परिवार है। सुजानगढ़ की आर्यसमाज की गतिविधि, मन्दिर निर्माण आदि कार्यों में इनका सदा से क्रियात्मक सहयोग रहा और उत्तरोत्तर वृद्धि पर है। परिवार के सब ही सदस्य आबाल वृद्ध श्रद्धालु एवं विनम्र हैं।

महायज्ञ की पूर्णाहुति के पश्चात् याज्ञिकों को समुचित दक्षिणा, आगन्तुकों को मिष्टान्न से सत्कार किया। इस प्रकार एक वर्ष से चल रहा यह यज्ञ समारोहपूर्वक उत्साह पूर्ण वातावरण मे सम्पन्न हुआ। श्री सेठ हरिवक्षजी एव उनके ज्येष्ठ पुत्र श्री



श्री हरिवक्षजी लाहोटी

बधाई के पात्र हैं।

शहर के प्रतिष्ठित श्रीमान् डा० वी० वी० व्यास, चौधरी हुशररामजी जिला प्रमुख चुरु, सुश्री शान्ो देवी प्रधान पंचायत समिति सुजानगढ़, श्री कन्हैयालालजी सेठिया, डा० गोपाल कृष्णजी पुजारी, डा० शिवप्रसादजी दाधीच, पं० सुखदेवजी वैद्य, श्री लक्ष्मी चन्दजी शर्मा प्रधान आर्यसमाज सुजानगढ़, सुश्री सत्यवती प्रधान अध्यापिका महात्मा गाँधी बालिका विद्यालय सुजानगढ़, श्री प्रह्लादरायजी माथुर प्रधान अध्यापक श्री जगन्नाथ तापड़िया हायर सैकेण्डरी स्कूल जसवन्तगढ़, व श्री सूरजमल, एम० ए० मन्त्री आर्यसमाज सुजानगढ़ एवं अन्यान्य गण्यमान्य व्यापारी गण ने उपस्थित होकर यज्ञोत्सव की शोभा वृद्धि की। इस विशेष आयोजन से प्रभावित होकर उपस्थित सर्व नागरिक बन्धुओं ने यज्ञ की भूरिभूरि प्रशंसा करते हुए कहा कि वस्तुतः वर्तमान समय में वैदिक यज्ञों की बड़ी आवश्यकता है। इस शुभ अवसर पर श्रीमान् हरिवक्षजी लाहोटी ने एक प्रीति भोज भी दिया, तथा सभा प्रधानजी को रु० १०१) सादर भेंट किये।

---

# दि. १५ फरवरी को बोध दिवस समारोह

श्री श्री करण जी शारदा मंत्री आर्य प्रतिनिधि सभा राजस्थान की प्रान्त की आर्य समाजों से अपील!

प्रांत की समस्त आर्य समाजों से सविनय निवेदन है कि वे दि० १५ फरवरी ६९ को ऋषि बोध दिवस पूर्ण समारोह से मनाने का निम्नांकित रूप से आयोजन करें।

१. नित्य प्रातः प्रभात फेरी, यज्ञ प्रवचन।

२. आर्य समाज भवनों पर आर्यध्वजोत्तोलन तथा सामुहिकध्वजगान

३. मध्याह्न में वेद सम्मेलन अराष्ट्रीय ईसाई प्रचार निरोध सम्मेलन, धर्म सम्मेलन, राष्ट्र रक्षा सम्मेलन, कवि सम्मेलन, महिला सम्मेलन, आदि आदि सम्मेलन, आयोजित करें।

४. खेलकूद; निबंध, वाद-विवाद प्रतियोगितायें आयोजित कर नवयुवकों को पुरस्कृत एवं सम्मानित करें।

५. रात्रि में ऋषि जीवन प्रदर्शनी, तथा सार्वजनिक सभाओं का आयोजन करें।

६. सामुहिक प्रीति भोज आयोजित हों।

७. ऋषि जीवन की झांकी के साथ नगर में शोभा यात्रा द्वारा प्रचार-प्रदर्शन

८. प्रत्येक आर्य समाज न्यूनतम १०-१० नवीन आर्य सभा सद बनाये।

९. वेद प्रचार तथा अराष्ट्रीय ईसाई प्रचार निरोध कार्य हेतु यथा शक्ति धन एकत्रित कर सभा को भेजे।

१०. आर्य मार्तण्ड के ५-५ ग्राहक बनायें।

---

## नगर आर्य समाज अजमेर की ओर से आर्य जगत् के धुरन्धर विद्वान् माननीय श्रीमान् स्वामी समर्पणानन्द जी के लिये शोक प्रस्ताव।

यदि सन्तिगुणाः पुंसां विकसन्त्येवते स्वयम्।
नहि कस्तूरिका मोदः शपथेन विभाव्यते॥
विद्वेषः कस्यपीयूषे चन्दने कस्यवारुचिः।
इन्दौ मन्दादरः कोवा साधुः कस्य न सम्मतः॥

भारतीय विद्वानों में मूर्धन्य, अद्भुत तार्किक, गुरुकुल शिक्षा प्रणाली के गौरव-स्तम्भ पाश्चात्य शिक्षा प्रणाली और उसके दोषों पर भीषण वज्र प्रहार करने वाले, प्राचीन वर्णाश्रमव्यवस्था के प्रबल पोषक, सुयोग्य शिक्षक, वरिष्ठ लेखक और स्पष्ट, वक्ता, प्रत्युत्पन्नमति एवं प्रतिभाशाली व्याख्याता, वैदिक वाङ्मय के प्रकाण्ड पण्डित, साहित्य, संगीत और कला के मर्मज्ञ, वैदिक संस्कृति, आर्य समाज और महर्षि स्वामिदयानंद सरस्वती के अनन्यभक्त, श्रद्धेयस्वामी श्रद्धानन्दजी के सच्चे शिष्य, शास्त्रार्थ समर महारथी श्री स्वामी समर्पणानन्दजी (भूतपूर्व श्री पं० बुद्धदेवजी विद्यालङ्कार) के निधन से यह समाज अत्यन्त विह्वल और मर्माहत हुआ है। यह विशाल शोक सभा इसे आर्य जगत् और विश्व के समस्त बुद्धिजीवी वर्ग की अपूरणीय क्षतिसमझती हुई शोक प्रस्ताव पारित करती है और परमपिता परमात्मा से दिवंगत आत्मा की सद्गति, शांति एवं शोक-संतप्त परिवार और आर्य जगत् को धैर्य प्रदान करने के लिये पुनः पुन. प्रार्थना करती है।

---

## राजस्थान की आर्य समाजों की शुभ सूचना

राजस्थान प्रान्त की आर्य समाजों को यह जानकर अति हर्ष होगा कि गुजरात प्रान्त के प्रसिद्ध श्री पूज्य स्वामी शिवानन्द जी सरस्वती आयुर्वेदालंकार ने आर्य प्रतिनिधि सभा राजस्थान को आगामी शिवरात्रि के शुभ अवसर से लगभग दो मास का समय प्रदान किया है। जो समाजें श्री स्वामी जी महाराज के वेदोपदेश से लाभान्वित होने की इच्छा रखें, वे सभा को सूचित करने की कृपा करें। आप जहां आत्मकल्याण का मार्ग बतावेंगे, वहां शारीरिक उन्नति का मार्ग भी बतावेंगे। आप आयुर्वेद के भीमर्मज्ञ विद्वान् हैं। आशा है कि प्रान्त की समाजें इस अवसर को हाथ से न खोवेंगे।

ओम्भक्त वानप्रस्थ
उपमंत्री सभा

# सांख्य दर्शन पर भौतिक अनुसन्धान

## वैदिक काल की एक लुप्त विद्या का पुनरुद्धार

प्रतिपादक—श्री सूरजभान
द्वारा श्री श्यामसुन्दर व्यास, ६३, धूलेश्वर बाग, समोद हाऊस, सी स्कीम, जयपुर-१

महर्षि व दार्शनिक सांख्य के शिष्य हर प्रकार के जटिल असाध्य रोगों का इलाज सफलता से करते थे। यह बातें आज से १० हजार वर्ष पूर्व की हैं। कुल-परम्परानुसार यह अलिखित विद्या सांख्य के शिष्यों तक ही सीमित रही व अन्य भारतीय विद्याओं की भांति इसका भी लोप हुआ। सौभाग्यवश शृंगी ऋषि के द्वारा इसकी जानकारी १९६० में इगलैंड के Dr. Edward Bach, के अनुसंधान केन्द्र को प्राप्त हुई। आप इस शिष्य कुल-परम्परा के आखिरी चिराग थे व निःसन्तान थे। उक्त ऋषि द्वारा बताए तथ्यों के आधार पर आधुनिक विज्ञानवत् परीक्षण किये गये। परीक्षणों से सिद्ध हुआ कि उक्त विद्या आज भी विज्ञान से आगे है व इसका पुनरुद्धार आवश्यक है। यह हमारे लिये गौरव की भी बात है। इससे सनातन विद्याओं की सार्थकता ही सिद्ध होती है।

### इस नयी विधि का नाम क्या है?

चैतन्य अणु कल्प चिकित्सा विधि Atomic Radiesthesie है इस विधिका आविष्कार मैंने स्वयं किया है। इस विधिको संक्षेप में मान्यताओं सहित निम्न प्रकार से कहा जा सकता है।

(अ) जब कोई रोग चाहे वह साध्य हो या असाध्य शरीर में रहता है तब तक शरीर स्वनियन्त्रित नाड़ी तन्त्र, (Autonomous nervous System reflexes) साधारण स्थिति में नहीं रहते। जब यह सामान्य स्थिति में रहते हैं तब शरीर में कोई रोग नहीं होता। वह स्वस्थ होता है।

(आ) भारतीय सृष्टि प्रक्रिया के अनुसार प्रत्येक पदार्थ मूलतः तन्मात्राके आधार पर निर्मित है। प्रत्येक शरीर और शरीर के बाहर के पदार्थों से तन्मात्रा स्पन्दन (कम्पन) के रूप के निकलती रहती है। तन्मात्रा ऊर्जा (Energy) की लघुतम इकाई का नाम है।

(क) व्यक्त पदार्थों से लहरों के रूप में निकलने वाली इस ऊर्जा को मन ज्ञानेन्द्रियों के माध्यम से परखता है। इस क्रिया को दर्शन में 'आलोचना' कहा गया है।

(ड) आलोचना, 'व्यक्त व अव्यक्त' का मिश्रण यह 'पुरुष' के विषय हैं। इसलिए इस कार्य में कभी भी गलती हो ऐसी सम्भावना नहीं होती।

(इ) तन्मात्रा से ही पंच महाभूत अथवा तमाम व्यक्त जगत बना है। इसलिये तमाम द्रव्य ऊर्जा में व ऊर्जा द्रव्य में परिवर्तित होती रहती है अथवा की जा सकती है।

पदार्थों में 'तन्मात्रा का ऊर्जा रूप में निकलना व 'आलोचना' द्वारा मन एवं ज्ञानेन्द्रियों के माध्यम से इस तन्मात्राका विश्लेषण अचूक ढंग से करना, ये दो तथ्य मेरे अनुसन्धान के मुख्य आधार बने। मेरा विषय था "असाध्य रोग व उनकी सफल चिकित्सा"। इन रोगों में प्रमुख रूप से ये थे, कैन्सर, टी. बी. ब्लडप्रेशर हृदय रोग, दमा,

पक्षाघात, मृगी, स्नायविक विकार, शूगर, व असामयिक वृद्धावस्था।

ऐसे रोगों के निदान तो प्रायः सभी प्रकार के चिकित्सा शास्त्री कर लेते हैं परन्तु इन रोगों का नाश किसी से भी सम्भव न हुआ। मेरे दृष्टि कोण से इस व्यापक असफलता का एक मात्र कारण यह रहा है कि रोग निदान में दक्षताके बावजूद भी औषधी तो केवल मात्र अनुभव के आधार पर ही दी जाती है व मात्र अनुभव के आधार पर दी जाने वाली औषधीकी सफलताकी कोई गारंटी नहीं होती। इसी लिये कई सालों से मैं यह जानने की कोशिश में था "कि यदि किसी प्रकार से प्रत्येक रोगी के व्याधि निदान की भांति औषध निदान भी औषध सेवन से पूर्व ही अचूक विधि से हो सके तो मानव समाज का महान् कल्याण हो सकेगा।

सांख्य दर्शन के तन्मात्रा व आलोचना ने मुझे यह दिशा दी जिस पर मैंने इस भांति प्रयोग किया।

१. यदि तन्मात्रा सर्व व्यक्त पदार्थों के कम्पन के रूप में निकलती हैं, तो तमाम औषधियों से भी निकलनी ही चाहिये, क्यों कि सर्व प्रकार की औषधियाँ तीन महाभण्डारों से प्राप्त होती हैं, (जीव भण्डार, वनस्पति व धातु वर्ग) जो कि 'व्यक्त' श्रेणी में आते हैं।

२. यदि औषधियों के नमूने एक २ करके रोगी के समीप रखे जाएं तो तन्मात्रा की आलोचना मन ज्ञानेन्द्रियों के माध्यम से अचूक रूप से करेगा व जो तन्मात्रा या औषधी एकदम अचूक होगी उसे छांट लेगा। इस प्रकार से छांटी हुई औषधी ही रामबाण होगी जैसी कि अनुभवों के आधार पर तै की हुई कभी कभी ही हो पाती है।

### 'आलोचना' की तीन प्रक्रियायें

मन ज्ञानेन्द्रियों के माध्यम से तीन प्रकार की प्रतिक्रिया दिखाता है।

(१) अनुकूल पदार्थों अथवा तन्मात्राओं पर मन व ज्ञानेन्द्रियां एकाग्र रूप से आकर्षित होती हैं।

(२) प्रतिकूल पदार्थों अथवा तन्मात्राओं से विकर्षित।

(३) और तटस्थ पदार्थों पर कोई प्रतिक्रिया नहीं दिखाती।

इस प्रकार मन व इन्द्रियों की इस प्रवृत्ति का लाभ शरीर के एकदम अनुकूल पदार्थों (औषधियों) की जानकारी लेने हेतु किया जा सकता है।

इस तथ्य को प्राचीन व नवीन वैज्ञानिक मानते आये हैं कि यदि मानव शरीर की तमाम आवश्यकताएँ पूर्ण होती रहें तो वह स्वस्थ रहता है व उत्तरोत्तर प्रगति करता रहता है।

सर्व प्रकार की सांस्कारिक मानसिक व शारीरिक व्याधियां तभी होती हैं जब कि अनुकूल ऊर्जा शरीर अथवा उसके रचना में लगने वाले अणुओं को किसी भी कारण विशेष से प्राप्त न हो सके।

### उपरोक्त तथ्यों का परीक्षण-

मन व ज्ञानेन्द्रियां उन्हीं पदार्थों की ओर एकाग्र रूप से चलायमान होकर आकर्षित होती है; जिनसे कम्पन रूप से ऊर्जा की तन्मात्रा सम्पूर्ण शरीर के अनुकूल निकलती है। इस तथ्य को ध्यान में रख कर कुछ ऐसे लोगों पर परीक्षण किये गये जो पूर्ण रूप से किसी विशेष प्रकार के फल भोजन अथवा स्त्रियों आदि की तरफ एकाग्र रूप से अपने आप पूरी तरह से आकर्षित होते थे। इस आकर्षण के समय निम्न तथ्य देखे गये।

(१) आकर्षित प्राणी की आंखों में विशेष चमक पायी गयी।

(२) आकर्षित प्राणी की आंखों की पुतलियां फैली ही रहीं।

(३) रक्तचाप की गति तीव्र हो गयी।

(४) हृदय का स्पन्दन रेट व ताल बढ़ गयी।

(५) सभी मांसपेशियां विशेष कर पेट की मांस पेशियां सिकुड़ गयीं।

(६) वायु से भरे तमाम संस्थानोंपर बल आवाज मिली।

(७) जीभ से अपूर्व स्वादु रस आने की अनुभूति व अंग विशेष में तनाव पाया गया।

(८) तमाम स्वनियंत्रित प्रणालियां उत्तेजित हुई।

(९) चर्म का तापक्रम बढ़ा।

शेष पृष्ठ ८ पर

# चित्तौड़ में जौहर मेला

समस्त गणमान्य राष्ट्रप्रेमी सज्जनों से अपील है कि वीरभूमि चित्तौड़गढ़ में भारत के समस्त नागरिकों के लिये प्रेरणा स्थली रही है, और इसी स्थली पर तीन बार शाके और जौहर हुए है। अंतिम जौहर चैत्र वदी १२ संवत १६२४ को हुआ। इस महान घटना को सजीव रखने हेतु कतिपय वर्षों से यहाँ जौहर मेला मनाया जा रहा है।

आज जैसी राष्ट्र की विषम परिस्थिति में समस्त राष्ट्र को शौर्य, साहस और बलिदान की आवश्यकता है, उतनी पहले कभी नहीं थी, राष्ट्र में आज राष्ट्रद्रोही और विखण्डकारी प्रवृतिया बढ़ रही हैं, जनमानस त्याग की अपेक्षा भोगविलास की ओर द्रुतगति से अग्रसर हो रहा है, निकटवर्तीय देश आज सैन्य शक्ति बढ़ाकर भारत को पराभूत करने की चेष्टा में है। ऐसी विषम परिस्थिति में चित्तौड़गढ़ का जौहर राष्ट्र का पथ प्रदर्शन करे, इस आशय से चैत्र वदी १०, ११, १२, तदानुसार दिनांक १३, १४, १५ मार्च सन् १९६९ को जौहर मेले का विशाल आयोजन करने का निश्चय किया है, अतः प्रत्येक देश बन्धु से निवेदन है कि तन मन धन से सहयोग देकर इस पर्व को सफल बनावें:—

—बीकानेर में गौ सेवा का महान कार्य आर्य मार्तण्ड के पाठको को यह जान कर प्रसन्नता होगी कि अकाल की भीषण स्थिति में बीकानेर की आर्य समाजों ने गोमाता की रक्षार्थ अकाल पीड़ित गोरक्षा समिति का निर्माण कर एक गो सेवा शिविर आरम्भ किया है। जिसे करीब तीन मास हो गये हैं और उस पर लगभग तीन हजार रुपया मासिक व्यय हो रहा है। कालान्तर में वह ५०००) पांच हजार रुपया या उससे भी अधिक हो जाने की संभावना है। इस महान गौ सेवा यज्ञ में सहयोग देना समस्त आर्य समाजों का परम कर्त्तव्य है। अतः राजस्थान प्रान्त की आर्य समाजों से हमारा साग्रह निवेदन है कि प्रत्येक समाज इस शुभकार्य के लिए अपना आर्थिक एवं चारा या गुवार के रूप में सहयोग भेज कर अपने कर्त्तव्य का पालन करें। आपका थोड़ा सा सहयोग भी न जाने कितनी गायों के प्राणों की रक्षा करेगा। फिर इस पुण्य कार्य में विलम्ब क्यों ?

---

### शोक प्रस्ताव

वेदों के प्रकाण्ड पंडित 'आर्य जगत के महान विद्वान तर्क शास्त्री पूज्य स्वामी समर्पणानन्द जी के निर्वाण पद प्राप्त करने पर प्रांत की समाजों ने हार्दिक शोकाञ्जलि अर्पित कर शोक प्रस्ताव प्रकाशनार्थ भेजे है। शोक प्रस्ताव इतने प्राप्त हो गए हैं, कि उन सब को पत्र में स्थान देना सम्भव नहीं। कृपया क्षमा करें। सम्पादक।

# धन्य हो मेरे हिन्दोस्तान

धन्य हो मेरे हिन्दोस्तान।
जहाँ पर पुजते हैं पाषाण॥

लुट रही माँ बहिनों की लाज।
बिक रहे क्षुधा हेतु सुख साज
डोलती झोली लेकर आज
खोजती क्षुधा पूर्ति को नाज॥
निरखता, निठुर, निर्दयी मौन,
दुर्दशा दुखियों की धनवान॥
धन्य हो मेरे हिन्दोस्तान॥

बज रहे झाँझ मजीरे शंख।
कहीं पर झालर और मृदंग।
बट रहा मोहन भोग निशंक।
हो रहा ठौर ठौर सत संग॥

द्वार पर भिक्षुक बाँधे हाथ,
जलाते जीवन के अरमान॥
धन्य हो मेरे हिन्दोस्तान॥

ठिठुरते नग्न देश के लाल।
शीत ने श्वेत बिखेरे बाल।
कोहरा बना भयंकर व्याल।
राह पर विपदाओं का जाल॥
बदलते कई बार परिधान।
भोर से सन्ध्या तक भगवान॥
धन्य हो मेरे हिन्दोस्तान॥

जी रही प्रजा आज यम बा।
छा रहा शोक बना तम सा।
रूप लगता नर का भ्रम सा।
सभी की क्षीण हुई क्षमता॥

पी रहा आँसू मौन गरीब,
कर रहे शोषक मदिरा पान॥
धन्य हो मेरे हिन्दोस्तान।
जल रहे अन्तर में उद्गार।
मूँद कर निज कुटिया के द्वार।
आश पर बरस रही अंगार।
लुट रहा भावों का संसार॥

बन रहा दुखियों का घर द्वार।
आज बिन लपटों के श्मशान॥
धन्य हो मेरे हिन्दोस्तान॥

दीनदयाल शर्मा
"वियोगी"

---

### सम्वादः—

**आवश्यकता है—**

आर्य समाज श्री गंगानगर को एक योग्य, सुशील एवं उच्चशिक्षा प्राप्त पुरोहित की आवश्यकता है। वेतन योग्यता के अनुसार दिया जायेगा। रहने व बिजली पानी का प्रबन्ध आर्य समाज की ओर से निशुल्क होगा। इच्छुक महानुभाव शीघ्र ही निम्न पते पर आवेदन पत्र भिजवायें।

मन्त्री
आर्य समाज, श्री गंगानगर (राज०)

## आर्य समाज भीमगंज मन्डी कोटा

१ दिनांक १२-१-६९ को साप्ताहिक सत्संग में श्री डा. सम्पूर्णानन्द जी की मृत्यु पर शोक सभा की गई, जिस में दिवंगत की आत्मा के लिये शान्ति की प्रार्थना प्रभु से की गई। डाक्टर साहिब की जीवनी पर श्री लक्ष्मी कान्त जी व श्री रूपसिंह जी द्वारा प्रकाश डाला गया।

२ दि. १८-१-६९ को रात्री में श्री महेश दत्त भार्गव बैरिस्टर हाई कोर्ट जोधपुर जो उसी दिन सायं काल वायुयान द्वारा कोटा पधारे थे। उनकी अध्यक्षता में शोक सभा हुई। जिस में श्री समर्पणानन्दजी के निधन पर अत्यंत शोक प्रकट किया गया। स्वामी जी आर्य समाज के महान वेदों के बड़े विद्वान थे। उनकी जीवनी पर सर्व श्री लक्ष्मीकान्त व आनन्द राव सप्रे ने प्रकाश डाला। उसी रात्री को ही श्री महेश दत्त जी का एक बड़ा ही प्रभाव शाली उत्तम भाषण हुआ। जिस को जनता ने बड़ा पसंद किया।

३ दिनांक १९-१-६९ को साप्ताहिक सत्संग के बाद स्थानीय आर्य समाज में धार्मिक परीक्षा ली गयी। जो कि भारत वर्षीय वैदिक सिद्धान्त परिषद् अलीगढ़ द्वारा ली जाती हैं। उन में सिद्धान्त प्रवेश, सिद्धान्त-विशारद और सिद्धांत भूषण में विद्यार्थी बैठे कन्यायें अधिक संख्या में थीं।

मोहनलाल आर्य मन्त्री आर्य समाज भीममंडी कोटा जं०

---

ओ३म

मध्यभारतीय आर्य प्रतिनिधि सभा तात्या टोपे नगर, भोपाल

### उज्जैन सिंहस्थ मेले में वैदिक धर्म का प्रचार

आगामी चैत्र पूर्णिमा दिनांक २ अप्रेल १९६९ से वैशाख पूर्णिमा २ मई १९६९ तक उज्जैन में आयोजित सिंहस्थ (कुम्भ) में मध्यभारतीय आर्य प्रतिनिधि सभा वैदिक धर्म के प्रचार हेतु दत्त अखाड़ा क्षेत्र में, बड़नगर मार्ग पर ३१ दिन तक प्रातः सायं यज्ञ के अतिरिक्त सुयोग्य आर्य विद्वानों एवं भजनोंपदेशकों द्वारा वैदिक सिद्धान्तों का प्रचार करावेगी। आर्य संन्यासी, महात्माओं एवं अन्य विद्वान उपदेशकों से आशा की जाती है कि इस पुनीत कार्य में अपना बहुमूल्य सहयोग इस सभा को प्रदान करें।

इसके अतिरिक्त प्रान्त तथा बाहर की समस्त आर्यसमाजों से निवेदन है कि सिंहस्थ मेलाके प्रचार कार्य को द्रुति गति से चलाने के लिए प्रत्येक आर्य सभासद एवं आर्य समाज अपना आर्थिक सहयोग भी इस सभा को प्रदान करें। (विश्वमित्र कष्ठान)
मन्त्री सभा



Res. No. J 14

**आर्य मार्तण्ड को स्वावलम्बी बनाने में १०१) के आजीवन सदस्य बनकर तन-मन-धन से सहायता कीजियें !!**

निम्नांकित महानुभावों ने मार्तण्ड को १०१) प्रदान कर आजीवन सदस्यता स्वीकार करने की कृपा की है, एतदर्थ हार्दिक धन्यवाद। आशा है, सभी आर्य बन्धुओं एवं आर्यसमाजों का इस कार्य में सक्रिय सहयोग प्राप्त होगा। जिन महानुभावों ने १०१) अभी तक नहीं भेजे हैं, कृपया शीघ्र भिजवाने का कष्ट करें, ताकि आगामी अंक में उन महानुभावों के नाम सधन्यवाद प्रकाशित किये जा सकें। —व्यवस्थापक

### आजीवन सदस्य

(प्राप्त राशि)

१०१) रु० श्रीमान् पं० भगवानस्वरूप जी न्यायभूषण प्रधान सभा
१०१) ,, ,, छोटूसिंहजी एडवोकेट अलवर
१०१) ,, ,, भीमसिंह जी माउन्ट आबू
१०१) ,, ,, रामस्वरूपजी वेली शाहपुरा
१०१) ,, ,, श्रीकरणजी शारदा अजमेर
१०१) ,, ,, जेठमलजी आर्य आबूरोड
१०१) ,, ,, माधोसिंह शाहपुरा
१०१) ,, ,, डा० राजबहादुरजी कोटा
१०१) ,, ,, वैद्य धर्मसिंहजी कोठारी अजमेर
१०१) ,, ,, ओम्भक्तजी वानप्रस्थ जोधपुर
१०१) ,, ,, चुन्नीलाल जी नाथूलाल जी शिवगंज
१०१) ,, ,, घासीरामजी वेदी श्री गंगानगर
५०) ,, ,, संतोषसिंह जी कछवाहा जोधपुर
१०१) ,, ,, रामचन्द्रजी मूलजी जामनगर
१०१) ,, ,, देवराम जी शिवगंज
२५) ,, ,, सत्यवती देवी कन्हैयालाल जी कलयंत्री जोधपुर
३१) ,, ,, श्री रतनचन्द जी एडवोकेट अजमेर
५१) ,, ,, किशनसिंह जी गंगानगर
१०१) सुश्री कु. सरलाजी शारदा एम. ए. बी. एड अजमेर

### वचन प्राप्त

१०१) रु० श्रीमान् गोपीवल्लभजी कोटा
१०१) ,, ,, मदनमोहनजी शर्मा बीकानेर
१०१) ,, ,, चौधरी नारायणराम जी गंगानगर
१०१) ,, ,, रमेशचन्द्रजी शास्त्री अजमेर
७०) ,, ,, रतनचन्द्रजी एडवोकेट अजमेर
१०१) ,, ,, लक्ष्मीचन्दजी शर्मा सुजानगढ़
५१) ,, ,, संतोषसिंहजी कछवाहा जोधपुर
५०) ,, ,, किशनसिंह जी श्रीगंगानगर
१००) ,, सुश्री मोहिनी [illegible] अलवर
७६) ,, ,, [illegible] कन्हैया[illegible] जी कलयंत्री जोधपुर
१०१) श्रीमान सु[illegible]जी शर्मा एम. ए. बी. [illegible] अजमेर

# चल बसा हा बुद्धदेव

भेरूमल शर्मा आर्य पुरोहित छोटी सादड़ी (राजस्थान)

चल बसा मित्रों हमारा, आज प्यारा बुद्धदेव
ज्ञानियों अज्ञानियों का, था सहारा बुद्धदेव ॥चल॥
था बहादुर मन चला, मैदान का अपने धनी
सिंह जैसी गर्जना करता, करारा बुद्धदेव ॥चल॥
काल सम था वो विरोधी, पोप मंडल का सदा
सैंकड़ों संग्राम जीते, एक न हारा बुद्धदेव ॥चल॥
आर्यों का सूर्य था, वेद का पूरा धनी
ब्रह्मकुल का था वो गौरव, क्या सितारा बुद्धदेव ॥चल॥
आर्य समाज है ऋणी, उऋण न हो सकता कभी
धीर था गम्भीर था खड्ग धारा बुद्धदेव ॥चल॥
शास्त्रार्थ महारथी, पीछे न फिर कर देखता
सामने जो आ गया, उसको ही मारा बुद्धदेव ॥चल॥
पूर्ण में परिपूर्ण होकर, जा विराजे गोद में
शान्ति साम्राज्य का, लेकर सहारा बुद्धदेव ॥चल॥
प्रेम के आंसू टपकते आर्यों के नेत्र से
शर्मा भेरू ने यही, मुख से पुकारा बुद्धदेव ॥चल॥

# घर को संविधान

रचयिता श्री प्रेम मधुर कर
झालावाड़

कह उठी श्रीमती जी, आछो नियम विधान।
अब तो प्रीतम आपणो, रहणो है संविधान।
रहणो छै संविधान बिना विधि काम न चाले।
ताना शाही अब नीं थां पुरषां की चाल।
काम करूँ छूँ घणो म्हस्यां ही घुल जाऊंगी।
कहयो करेगा नहीं जहर खा मर जाऊंगी।
चक्की थें पीस्या करो, म्हूं दूँ झाड़ बुहार।
पाणी थें लाया करो, म्हूं तो गी अब हार।
म्हूं तो गी अबहार अभी रोटी करणो छै।
बरतन भी माजणो सदा म्हारो मरणो छै।
म्हारा धोणो गोवणो कद तक करयां करूँगी।
नौकर राखो नाथ नहीं तो डूब मरूंगी।

शेष पृष्ठ ६ का

(१०) चर्म का विधूनाय अवरोध घटा।
(११) शरीर के रोंगटे खड़े हो गये।

### असाध्य रोगियों पर प्रयोग

तमाम ऐलोपैथिक, आयुर्वेदिक, यूनानी, होम्योपैथिक औषधियों का संग्रह करके इनके अणुन मूने के तौर पर बोतलों में रखे गये व जिस नमूने ने आकर्षण की उपरोक्त ११ शर्तें पूरी की उसके अणुओं की १ या दो खुराक ने असाध्य रोगों पर आश्चर्य प्रभाव दिखा कर रोगियों को पूर्ण स्वस्थ किया।

इससे यह भी तथ्य प्रकट हुआ कि तमाम पदार्थ अणुओं से बने हैं। अणु परमाणुओं से।

'परा' व 'अपरा' शक्ति के सन्तुलन के समय में स्थूल पदार्थों की अपेक्षा सूक्ष्म भाग अणुओं से तन्मात्रा अधिक तेजी से निकलती है।

इसलिये रोगी को स्थूल की बजाए सूक्ष्म औषध अधिक तेजी से ऊर्जा दे सकती है।

---

### वर की आवश्यकता

एक प्रतिष्ठित ब्राह्मण आर्य परिवार की गौरवर्ण सुशील एवं गृह कार्य में पूर्ण दक्ष २५ वर्षीय कन्या जो संस्कृत में एम.ए. एवं बनारस से मध्यमा पास है और हिन्दी की एम. ए. इस मार्च में होने जा रही है, के लिए सुयोग्य शिक्षित आर्य वर की आवश्यकता है। सम्बन्धित व्यक्ति निम्नलिखित पते पर पत्र व्यवहार करने की कृपा करें।

श्री वागीशदत्त जी आयुर्वेदाचार्य
मोहल्ला कुशा,
गाजियाबाद (मेरठ) उ० प्र०

श्री पं० भगवानस्वरूपजी 'न्यायभूषण' के प्रबन्ध से वैदिक यन्त्रालय अजमेर में मुद्रित और ओम्भक्त वानप्रस्थ, सम्पादक प्रकाशक द्वारा दयानन्द आश्रम, केसरगंज अजमेर से प्रकाशित। अधिष्ठाता—श्रीमान् डा० भवानीलालजी भारतीय एम. ए. पी. एच. डी. पाली।

आर्य प्रतिनिधि सभा राजस्थान का मुख-पत्र

पाक्षिक

रजि० नं० १४ जे०

दयानन्द आदित्य से पाकर ज्योति प्रचण्ड । ध्वंस दम्भ पाखण्ड का करे आर्यमार्तण्ड ॥

वर्ष ४७ | वार्षिक मूल्य ५) रुपया | सम्पादक—श्री आत्मभक्त वानप्रस्थ ( रामसहाय शर्मा ) | एक प्रति का २० पै० | अङ्क १

अजमेर फाल्गुण शु. १२ सं. २०२५वि., दि. १ मार्च ६६ दयानन्दाब्द १४५

# प्रभु विनय

**ओ३म् अग्निर्होता कविक्रतुः सत्यश्चित्र**

**श्रवस्तमः।देवो देवो भिरागमत् ॥ ऋग्वेद॥**

**पदार्थ :—**

( अग्निः ) परमेश्वर (होता) दाता (कविः सर्वज्ञ (क्रतुः) सब जगत् का कर्त्ता (सत्यः) अविनाशी और सदाचारी विद्वान् जनोंका हितकारी (चित्रश्रवस्तमः) जिसका अति आश्चर्य रूपी श्रवण है , वही प्रभु (देवः) उतम गुणोंका प्रकाश करने वाला (देवेभिः) महात्मा विद्वानों का सत्सङ्ग करने से (आगमत्) आना जाता तथा प्राप्त होता है ।

**भावार्थ :—**

परमेश्वर व्यापक सुख दाता,
नितसमर्थ नित सृष्टि विधाता ।
अविनाशी सद् अज अविकारी ,
विज्ञ जनों के अति हितकारी ॥१॥
विशद कर्म सुनते बड़ भागी ,
वही भक्त जिनके अनुरागी ।
वह प्रभु विशद गुणों के दाता ,
प्राप्त अनुग्रह हो , जन त्राता ॥२॥
महा पुरुष का करते संगा,
पाते वैदिक-ज्ञान अभंगा ।
हित सत्सङ्ग वही कहलाये
महिमा जिसकी वर्णन आवे ॥३॥

कस्तूरचन्द "घनसार"
पीपाड़

## एक सत्य जिज्ञासु अमरीकन युवक को वैदिक धर्म दीक्षा ।

(महत्व पूर्ण शुद्धि संस्कार)

गत गणतन्त्र दिवस के राष्ट्रीय पर्व पर (२६ जनवरी) प्रातः सवा आठ बजे सार्वदेशिक धर्मार्य सभा के भू० प्रधान श्री पं० धर्मदेव जी विद्यामार्तण्ड ने आर्य वानप्रस्थ आश्रम ज्वालापुर में कैलिफोर्निया (अमरीका) निवासी थौमस लिन नामक एक सत्य जिज्ञासु युवक को उसकी प्रार्थनानुसार शुद्धि संस्कार करा कर वैदिक धर्म की दीक्षा दी, तथा उसे सत्यपाल यह नाम दिया गया । यह अमरीकन युवक (२३ वर्षीय) अमरीका के अतिरिक्त यूरोप के प्रायः सभी देशों, में तथा अफ्रीका, अफगानिस्तान, पाकिस्तान इत्यादि का भ्रमण कर चुका है । और सत्यान्वेषी के रूप में उसने इस्लाम, सिक्ख मत, बौद्ध मत, चीन, जापान के मतों का भी अनुशीलन किया, पर जब गत मास पं० धर्मदेव जी विद्यामार्तण्ड से ऋषिकेश में उसकी भेंट हुई और उन्होंने अपनी Conception of God in Christianity and Vedic Dharma, Some Psalms of Sama Veda Samhita.

आदि अपनी पुस्तकें उसे भेंट कीं तो उनके अध्ययन से वह बहुत प्रभावित हुआ । और वानप्रस्थ आश्रम ज्वालापुर में कुछ दिन रहने और वैदिक धर्म सम्बन्धी पुस्तकें पढ़ने के पश्चात् उसने वैदिक धर्म में दीक्षित होने को लिखित प्रार्थना पत्र दिया । वान प्रस्थ आश्रम ज्वालापुर वासी समस्त नर नारियों तथा अन्य सुशिक्षित सज्जनों की उपस्थिति में पं० धर्म देव जी ने वैदिक धर्म के मुख्य सिद्धान्तों तथा उसकी विशेषताओं गायत्री मन्त्र तथा यज्ञोपवीत आदि की अंग्रेजी में व्याख्या करते हुए उसे यज्ञोपवीत पहनाया और गायत्री मन्त्र का उपदेश दिया । उसने अपना प्रार्थना पत्र और वक्तव्य पढ़ कर सुनाया, जिसमें उसने लिखा था कि—

"I believe strongly in the Vedas as my and the world's basis for law and the way. You are my Guru, Guide me O father in to the light of truth. I wish to take the oath of purification and be entered in to the holy order" इत्यादि

इत्यादि अर्थात् मैं वेदों को विश्व नियम और सत्य मार्ग के आधार के रूप में दृढ़ विश्वास रखता हूं । मुझे गुरु के रूप में आप सत्य के प्रकाश का दर्शन करावें । मैं पवित्रता का व्रत लेकर पवित्र वैदिक धर्म में प्रवेश करना चाहता हूं । जब उसे "अग्ने व्रतपते व्रतं चरिष्यामि" मन्त्र द्वारा व्रत ग्रहण कराया गया, तो उसने उसका अंग्रेजी अर्थ स्वयं पढ़ कर सुनाया, और गुरु मन्त्र का भी शुद्ध उच्चारण करके सुनाया जो उसे सिखाया गया था । वह स्वयं निरामिष भोजी है, और इसका प्रचार करना चाहता है । वानप्रस्थ आश्रम के मान्य प्रधान महात्मा हर प्रकाश जी ने आश्रम वासियों की ओर से माला पहना कर उसको आशीर्वाद दिया ।

एक प्रत्यक्ष दर्शी
चन्द्र भूषण

# मौत की मौत

श्री पं. जगत कुमारजी शास्त्री

हत्या हेतिरसि ।

अथर्व० २ ६६ ६

१—तू तो हत्या की भी हत्या है ।
२—तू तो हत्यारे का भी हत्या है ।
३—तू तो मौत की भी मौत है ।

## प्रवचन

शास्त्र और न्याय-विधान का यह एक आधार भूत सिद्धान्त है कि प्रत्येक मनुष्य को आत्म रक्षा का अधिकार स्वभाव से ही प्राप्त है । यदि कभी कोई मनुष्य विवश होकर, आत्म-रक्षा के लिये किसी की हत्या करता है, तो कानून की दृष्टि में वह अपराधी नहीं है । हां, जो अकारण ही हत्या करता है, वह तो पापी, अपराधी, हत्यारा है । पापियों, अपराधियों और हत्यारों के जो साथी, संगी, सहयोगी, पक्षपाती और संरक्षक होते हैं, वे सब भी पापियों, अपराधियों और हत्यारों में ही गिने जायें और यथोचित रूप में दण्डित किये जायें ।

हत्याका यह प्रसंग केवल मनुष्य-हत्या तक ही सीमित नहीं है । पशु-हत्या करने वाला भी हत्यारा है । किसी उभरती हुई प्रतिभा को कुचलने, मसलने, नष्ट करने वाला भी हत्यारा है । किसी हत्यारे की हत्या तो हत्या नहीं है । शुभकर्मियों को मारना हत्या है । दुष्टों का मारना तो वध है । सामान्य अवस्थाओं में किसी हत्यारे के वध का अधिकार सामान्यजनों को नहीं है । उसे राज्य के न्यायाधिकरण में प्रस्तुत करके यथोचित रूप में दण्डित किया जायेगा । यह काम राजपुरुषों का है । विशेष अवस्थाओं की बात दूसरी है । असाधारण परिस्थितियों में, न्यायसंगत उत्तेजनाओं में और संसार के हित के लिये हत्यारों का मारना क्षम्य माना जाता है ।

शारीरिक रूप में जो स्थूल हत्या है, वह तो है ही । हत्या का एक दूसरा रूप भी है । यह एक विलक्षण-सी बात है । जब उपदेश वा प्रशिक्षण द्वारा किसी दुष्ट को श्रेष्ठ बनाया जाता है, उस का हृदय-परिवर्तन कर दिया जाता है, उसमें विशेष-विशेष, उत्तमोत्तम गुण, कर्म, स्वभाव, संस्कार, त्याग, तप और बलिदान के भाव भरे, वा विकसित किये जाते हैं और उनको पूर्णतया श्रेष्ठ बना दिया जाता है, तब यह भी तो दुष्टों और दुष्टताओं का विनाश ही होता है ।

जब उत्तम उपदेशक और अध्यापक सदाचार की वृद्धि में प्रवृत्त होते हैं, तब बड़े-बड़े पापी, अपराधी और अज्ञानी भी सुधर जाते हैं । न केवल सुधर जाते हैं: अपितु वे निरन्तर साधना करके स्वयं भी सच्चे सन्त, सुधारक, पवित्रात्मा और परोपकारी धर्मात्मा बन जाते हैं । दुष्टों और दुष्टताओं के विनाश का यह दूसरा प्रकार अधिक विलक्षण एवं प्रशस्त है । इस में शारीरिक रूप में तो किसी की मौत नहीं होती परन्तु किसी की किसी दुष्टता को सहन भी नहीं किया जाता । रक्त-हीन क्रान्ति का उपाय भी यही है । इस के अनुसार मनुष्य का हृदय परिवर्तन होता है । अक़लमन्दों के लिये इशारा ही काफी है ।

जहर क्यों ढूंडते हैं, जान के लेने वाले ।
मरने वाले तो फकत बात में मर जाते हैं ॥

वास्तव में तो ये दुर्गुण, दुर्व्यसन और दुष्ट स्वभाव आदि ही मनुष्य को दुष्ट बनाते हैं, और बढ़ते-बढ़ते मनुष्य को, जोकि स्वभाव से सौम्य और शान्तिप्रिय है, हत्या जैसे घोरकर कर्म में प्रवृत्त कर देते हैं । "हत्यारा" कैसा क्रूरतापूर्ण शब्द है ! सुनकर भी झनझनाहटसी होने लगती है । कोई भी हत्यारा कहलाना पसन्द नहीं करता । फिर भी लोग घात-पात करते हैं । हत्या करने के लिये नित्य नये हथियार बनाते और आयोजन करवाते हैं । हत्यारे व्यापारियों ने अपने कारखानों द्वारा निर्मित हत्यारे हथियार बेचने के लिये संसार को राग-द्वेष, भय और फूट की ज्वाला में झोंक रखा है । आतंक के कारण साधारण लोगों का जीना भी कठिन हो गया है । आतंक के प्रसारक भी तो हत्यारे ही हैं ।

हत्यारे पशु-पक्षियों का सुधार सरलता से हो जाता है । हत्यारे मनुष्यों के सुधार के उपाय भी हैं, तो सरल ही: परन्तु हत्यारे वर्गों, हत्यारी जातियों और हत्यारे राष्ट्रों का सुधार सरल नहीं है । जब जातियां अपनी दुष्टताओं को सुरक्षित रखने का दुराग्रह करती हैं, तब व्यक्तियों का सुधार भी कठिन हो जाता है । क्या सेनायें भेजकर और परमाणु बम बरसाकर दुष्ट जातियों एवं दुष्ट राष्ट्रों का विनाश कर दिया जाये ? कोई कह सकता है—हां, हां की यह हुंकार कितनी निष्ठुरता पूर्ण है ? किसी दिन यही हुँकार तुमुल हां ! हाँ !! हां !!! और संसार व्यापीरुदन एवं हा-हाकार का रूप भी धारण कर सकती है । इतिहास हमारे सामने है । ऐसा हो चुका है और फिर भी हो सकता है । दुष्टों के सुधार तथा दुष्टताओं के विनाश के लिये रक्त-हीन क्रान्ति का उपदेशकों-अध्यापकों वाला उपाय ही अधिक श्रेयस्कर है ! हत्यारे की हत्या तो होनी ही चाहिये । उपाय दो हैं—क्षत्रिय वर्ग तलवार का धनी है, ब्राह्मण वर्ग वाणी का प्रयोजक ! मौत की मौत ही अधिक श्रेयसी है ।

# शोक समाचार !

समस्त आर्य जगत् को इन समाचारों को देते हुए बड़ा ही दुख होता है कि आर्य समाज पीपाड़ के मंत्री श्री प्यारेलालजी आर्य की पूज्य दादीजी का दिनाङ्क १० फरवरी को ९७ वर्ष की आयु में देहावसान हो गया है । मंत्रीजी की दादीजी बड़े ही धार्मिक-प्रवृति से ओत प्रोत व श्रद्धावमान् तथा आर्य विचारक सेवा भावी, ईश्वरभक्त व दयालु तथा एक आदर्श गृहणी थी । स्वर्गीय दादीजी ने अपने जीवन में वह आदर्शमय धामिक कर्म किये उसी की बदौलत आज उनका समस्त परिवार एक आदर्श घराने के रूप में है । इतना ही नहीं दादीजी के सुपुत्र बन्शीलालजी के परिवार के बड़े बच्चे-बच्चे आर्य समाज की सेवा में तत्पर रहते हैं, और आर्य विचारों से ओत-प्रोत हैं, स्वर्गीय दादीजी ने अपने जीवन में आर्य समाज पीपाड़ में पधारने वाले विद्वानों, महात्माओं की संलग्न सेवा तन-मन धन से करके अपने सपरिवार को गौरव पूर्ण स्थान प्रदान किया ।

जैसे ही नगर में आपके स्वर्गवास का समाचार सुनातो नगर के सैंकड़ों लोग समय पर आपके निवास स्थान पर पहुँचने लग गये, और आपकी शवयात्रा में बड़ी भारी संख्या में नगर के सभी वर्गों के लोग सम्मलित होकर अपनी श्रद्धांजलि अर्पित की ।

इसके साथ-साथ विशेष बात यह रही की शवयात्रा में नगर के धार्मिक सज्जनगण भी भारी संख्या में सम्मलित हुए और व सभी बड़े ही भावपूर्ण ईश्वर-भजन कीर्त्तन, सत्सङ्ग करते हुए शवयात्रा के आगे चल रहे थे । सारे ही रास्ते में ये क्रम बड़े ही अपूर्व ढंग से चल रहा था । जब शवयात्रा श्मशान घाट पर पहुँची, तो वहाँ भी संस्कार के दो घन्टे के समय तक भजन-कीर्त्तन का अपूर्व आयोजन रहा । पश्चात् पूर्ण वैदिक रीति के साथ ये सारा ही संस्कार पं० श्री मदनलालजी (पुष्करणा) श्री कवि कस्तूरचन्दजी घनसार श्री हीरालालजी आर्य मदनलालजी वैष्णव, मांगीलालजी कुलदीप अध्यापकों के प्रयत्नों के द्वारा सफलता के साथ सम्पन्न हुआ । इसके साथ-साथ आर्यसमाज पीपाड़ के सदस्यों ने भारी संख्या में सम्मिलित होकर संस्कार में हाथ बटाया ।

पीपाड़ नगर में यह संस्कार अपने ढंग का बड़ा ही अपूर्वथा और जन साधारण को आर्यसमाज की प्रचलित वैदिक रीति का भान हुआ नगर में अच्छा प्रभाव पड़ा ।

भवदीय

कवि कस्तूरचन्द घनसार

# आर्य मार्तण्ड

अजमेर फाल्गुण शुक्ला १२ सं० २०२५ वि० दिनांक १ मार्च सन् १९६९


सम्पादकीय—

## आर्य समाज और राजनीति

आर्य जगत में यह प्रश्न अत्यावश्यक रूप से चर्चा का विषय बना हुआ है कि आर्य समाज को राजनीति में भाग लेना चाहिए अथवा नहीं ? यद्यपि सार्वदेशिक सभा की स्पष्ट इस सम्बन्ध में घोषणा है कि आर्य समाज को सामूहिक रूप से राजनीति में भाग नहीं लेना चाहिए। व्यक्तिगत रूप से आर्य पुरुषों को पूर्ण स्वतंत्रता है, वे चाहे जिस राजनैतिक संगठन में भाग ले सकते हैं।

मैं समझता हूँ, यह नीति आर्यसमाज की स्वस्थ नीति नहीं है। यही कारण है कि आज आर्य समाज में दूषित विघटनात्मक राजनैतिक तत्व अत्यधिक घुस गये हैं। वे शनैः २ अपने अर्थ, पद के प्रभाव से जहां अपना राजनैतिक वर्चस्व बढ़ाते जा रहे हैं। आर्य समाज की चल-अचल सम्पति के मठाधीश बनते जा रहे है। वहां उनका आर्य समाज की प्रगति, संगठन एवं प्रचार की ओर लेश-मात्र भी ध्यान नहीं। आज सच पूछा जाय तो आर्य समाज की शिथिलता एवं विघटन के उत्तरदायी ऐसे ही निष्क्रिय अधिकारी हैं, जो अजगर के समान आर्य समाज को निगलने में तन, मन, धन से सक्रिय तत्पर हैं।

कुछ ऐसे व्यक्ति भी है, जो आर्य समाज को राजनैतिक शिक्षण विद्यालय मानते है, और यहां से योग्यता शिक्षा-प्राप्त कर राजनैतिक क्षेत्र में प्रविष्ट होकर मन्त्री तथा नेता बनकर आर्य समाज को विस्मृति-सागर में डुबो देते हैं।

मेरा ऐसे व्यक्तियों से भी परिचय है, जो आर्य समाज की विशाल हृदयता एवं सहयोग से राजनैतिक गगनांगन में उदय होकर उसके महत्व पूर्ण देदीप्यमान नक्षत्र बन गये। और यदि आर्य समाज के किसी कार्य के निमित्त उनके पास जाय जावें, तो सर्वथा अपरिचित अथवा अनभिज्ञ बन जाते हैं। यदि अधिक शिष्टता प्रदर्शित की तो धर्म निरपेक्षता का मान चिन्ह दिखा कर अपने आपको निष्कलंक प्रमाणित कर अपने राजनैतिक रंग-मंच को बिगड़ने न देना चाहने का दम्भ करते हैं। ऐसे भी उदाहरण है कि एक ही आर्य समाज में कांग्रेस तथा जन-संघ दोनों ही राजनैतिक दलों के अधिकारी आर्य समाज में नित्य अपनी शक्ति परीक्षा करते रहते हैं। किसी दल ने विद्यालय या शिक्षण केन्द्र के नाम से तथा किसी ने व्यायाम शाला या संघ की शाखा के संचालन से आर्य समाज को राजनैतिक मल्ल-युद्ध का अखाडा बना रखा है और सार्वदेशिक अथवा प्रतिनिधि सभायें इस दिशा में सर्वथा असहाय एवं असमर्थ हैं ? स्थान २ पर यह संघर्ष अपनी चरम सीमा पर पहुंचते जा रहे हैं। लोगों ने सदाचार और नैतिकता को सर्वथा भूमिगत कर दिया है। कोई समाज अपने शीर्षस्थ केन्द्रीय संगठन के अनुशासन एवं नियंत्रण में नहीं। आपा धापी, भ्रष्टाचार, अनैतिकता की संक्रामक व्याधियां आर्य समाज के जीवन में दीमक के समान लगे हुए है। अतः अब आर्य समाज का क्या कर्तव्य है ? यह है, मूल प्रश्न, जिस पर आर्य जगत को गम्भीरता से शीघ्र विचार कर उचित निर्णय एवं निश्चय करना चाहिए। हैदराबाद आर्य सम्मेलन से इस सम्बन्ध में आशा थी, किन्तु उक्त सम्मेलन एक उत्सव के रूप में समाप्त हो गया। आर्य जगत या आर्य समाजों को उससे कोई प्रेरणा, प्रोत्साहन या मार्ग प्रदर्शन नहीं मिला। आज आर्य समाज को यदि राजनैतिक खिलौना ही बनाकर खेलना है, तो खेलिये अपना शौक पूरा करिये, परन्तु यदि ऋषि दयानन्द की वसीयत को आपने खिलौना मानकर ज्ञात—अज्ञात किसी भी व्यक्ति को सौंप दिया, तो निश्चय मानिये दूषित राजनैतिक अराष्ट्रीय प्रवृत्तियों के भीषण प्रहार से यह शीघ्र ही नष्ट हो जायगा। महर्षि की आत्मा अपने अनुयायियों पर आँसू बहाती हुई, यह अभिशाप देगी कि फिर आर्य जाति, आर्य संस्कृति एवं आर्यावर्त कभी भी सुखी, समृद्ध, उन्नत, सुदृढ़ संगठित, सुरक्षित एवं सशक्त नहीं बन सकता। हमारी शिथिल निष्क्रिय, अस्पष्ट नीति ही आर्य समाज के विनाश का कारण बनेगी। यह एक ध्रुव सत्य एवं अत्यावश्यक चेतावनी है।

अतः आर्य पुरुषो ! अब भी चेतो !
महर्षि की आत्मा को धोखा मत दो।

यदि कृण्वन्तो विश्वमार्यम्, उद्घोष को सत्यचरितार्थ करना है। यदि आर्य संस्कृति वैदिक धर्म, तथा भारत की राष्ट्रीयता की रक्षा के प्रति कुछ भी आस्था तथा निष्ठा है। यदि राष्ट्र में भावात्मक एकता के द्वारा एक जीवन प्रद क्रांति लाना चाहते है, यदि विदेशी अराष्ट्रीय तत्वों के वाह्याभ्यान्तरिक षडयन्त्रों एवं आघातों से राष्ट्र तथा जनता की रक्षा करना चाहते हैं, तो स्वस्थ यथा-योग्य नीति अपनानी ही होगी। भगवान भी उसी की सहायता करता है, जो स्वयं अपनी सहायता एवं शक्ति वर्धन में समर्थ है। अतः शीर्षस्थ आर्य नेताओं को केन्द्रीय स्थल पर एकत्रित होकर आर्य समाज के हित एवं स्वस्थ प्रगति की दृष्टि से अवश्य इस विषय में गम्भीरता पूर्वक विचार एवं निश्चय कर तदनुसार आर्य जगत का पथ-प्रदर्शन करना चाहिए। आज भारत, राष्ट्रीयता, भारतीय संस्कृति इतिहास, वैदिक धर्म साहित्य की रक्षा यदि कोई कर सकता है तो वह आर्य समाज ही है। वही महर्षि दयानन्द का सत्य, शिव और सुन्दर स्वरूप है, जिसकी रक्षा करना हमारा आपका परम कर्तव्य है। कांग्रेस और जनसंघ से आर्य समाज का उत्थान असम्भव है।

### प्रांत की समाजों को सूचना

श्रीमान आचार्य मित्र सेन जी एम ए सिद्धांतालंकार आर्य जगत के उदीयमान-ओजस्वी विद्वान वक्ता एवं प्रभावशाली उपदेशक है। उन्होंने सभा की प्रार्थना पर जून मास, सभा के अन्तर्गत प्रांत में प्रचारार्थ समय प्रदान करने की स्वीकृति दी है। जो समाजें इस अवसर पर उत्सव अथवा प्रचार की योजना बनाकर उक्त पंडित जी के उपदेशों से लाभ उठाना चाहें, कृपया कार्यालय को शीघ्र सूचित करने का कष्ट करें, ताकि समुचित व्यवस्था की जा सके।

मन्त्री सभा

# साहित्य समालोचना

—डा. भवानीलाल भारतीय

१ राजधर्म का बिस्मिल आत्मकथांक— सम्पादक प्रो० श्यामराव एम–कॉम आर्यसमाज मंदिर मार्ग नई दिल्ली। आर्यसमाज के नवयुवक विद्वान प्रो श्यामराव ने दिल्ली से राजधर्म नामक एक पाक्षिक पत्र का प्रकाशन प्रारम्भ किया है। अमर शहीद राम प्रसाद बिस्मिल की आत्म–कथा इस विशेषांक के रूप में प्रकाशित की गई है। बिस्मिल आर्यसमाज के सभासद थे तथा उन्हें देशभक्ति की प्रेरणा महर्षि दयानन्द से ही प्राप्त हुई थी। फांसी के तख्त पर चढ़ने के पूर्व उन्होंने 'विश्वानिदेव' आदि प्रार्थना मन्त्रों का पाठ कर अपने आपको परमपिता प्रभु की पावन गोद में समर्पित कर दिया था। दुख है कि ऐसे अमरशहीद की माता और बहिन को स्वतन्त्र भारत में आर्थिक कष्टों से मुक्ति नहीं मिली। ऐसे प्रेरणादायक आत्म चरित को विशेषांक के रूप में प्रकाशित करने के लिये भाई श्यामरावजी बधाई के पात्र है।

२ क्या वैदिक काल में गोमांस खायाजाता था? लेखक श्री राधेमोहन प्रकाशन ट्रैक्ट विभाग आर्यसमाज चौक प्रयाग। मूल्य २० पैसे।

वैदिक साहित्य के अभिप्राय को न समझने वाले लोग अकसर यह लाञ्छन लगाते हैं कि वैदिक काल के आर्यों में गोमांस भक्षण की प्रथा प्रचलित थी। आर्यसमाज ने इस मिथ्या विचार का सदा ही खण्डन किया है। अभी हाल ही में भारत के खाद्यमन्त्री ने लोकसभा में एक विवादास्पद बात कह कर इस पुराने प्रश्न को पुनः सजीव बना दिया। वस्तुतः वैदिक वाङमय के वास्तविक अभिप्राय को न समझ कर ही इस प्रकार की बाते कही जाती हैं। यह सत्य है कि पाश्चात्य और कतिपय भारतीय (इनमें मनीषियों स्वामी विवेकानन्द और कन्हैयालाल मुन्शी जैसे उत्तरदायी व्यक्ति भी) हैं, ने भी वैदिक साहित्य पर गोमांस भक्षण को विधेय मानने का आरोप लगाया है तथापि यह प्रश्न अभीतक उचित परिप्रेक्ष्य में नहीं देखागया। विद्वान् लेखक ने अपनी इस लघु पुस्तिका में इस विवादास्पद समस्या के शास्त्रीय पहलू पर विचार किया है तथा प्रमाण पूर्वक सिद्ध किया है कि वैदिक काल पर यह आरोप लगाना मिथ्या है कि उस काल के लोग गौमांस भक्षण को औचित्यपूर्ण समझते थे अभी हाल में बम्बई के प्रो शाह की एक पुस्तक cow Slaughter भी प्रकाशित हुई है। इसमें भी प्राचीन भारतीय साहित्य से गोमांस भक्षण का विधान सिद्ध किया गया है। ऐसी पुस्तकों के तीव्र खण्डन की आवश्यकता है। श्री राधेमोहन इस पुस्तक को लिख कर हमारे साधुवाद के पात्र बने हैं।

३ हजामत का पोलखाता तथा गुरुडम के पाखण्ड–दोनों पुस्तकों के लेखक –डा राम आर्य प्रकाशक वैदिक साहित्य प्रकाशन कासगंज (उ प्र) मू क्रमश १५ तथा ४० पैसे। ज्यों ज्यों संसार में विज्ञान और बुद्धिवाद की उन्नति होती है, त्यों त्यों भारत में साम्प्रदायिक पाखण्ड और मिथ्या मतमतान्तर बढ़ते जाते है। ऐसे पाखण्डपूर्ण सम्प्रदायों में हंसा मत ब्रह्मकुमारी सम्प्रदाय, आनन्दमार्ग बहाई मेहर बाबा के अनुयायी (अभी हाल ही में मेहर बाबा का देहान्त हो गया) आदि उल्लेखनीय है। आर्यसमाज में खण्डनात्मक साहित्य के यशस्वी लेखक डा श्रीराम आर्य ने इन पाखण्डों का भण्डाफोड़ कर जनता को इन सम्प्रदायों की दूषित प्रवृत्तियों से जागरूक करने का प्रशंसनीय प्रयास किया है।

४ संस्कारविधि का मराठी अनुवाद अनुवादक स्नातक सत्यव्रत वेदविशारद तथा सौ० सुमित्रादेवी सत्यव्रत कामदार। प्रकाशक प सत्यव्रत कामदार प्लाट न २६५ भीमाजी स्ट्रीट, माटुंगा बम्बई–१९ मूल्य २ रुपये।

महर्षि दयानन्द रचित संस्कारविधि आर्य मात्र का एक महत्त्वपूर्ण धर्मग्रन्थ तथा कर्मकाण्ड विषयक एक मात्र संहिता है। इसका विविध देश भाषाओं में अनूदित होना अत्यन्त वाञ्छनीय है। यद्यपि यह ग्रन्थ गुजराती तथा उर्दू मे तो अनूदित हो चुका था, परन्तु अब तक मराठी भाषा में इसका अनुवाद उपलब्ध नहीं हुआ है। आर्यसमाज के पुराने साहित्यकार एवं विद्वान् प सत्यव्रतजी ने इस अभाव को पूरा करने का प्रशंसनीय प्रयास किया है। भारत की सभी प्रमुख भाषाओं में ऋषि दयानन्द के महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों के अनुवाद होने आवश्यक हैं। तभी तो १९७५ में हमारा आर्यसमाज शताब्दी उत्सव मनाना वास्तविक होगा। बिना व्यवस्थित योजना को अपनाये आर्यसमाज की साहित्यिक प्रगति असम्भव है। इस [illegible] कार्य निरन्तर ही अभिनंदनीय है।

ऋषि बोध दिवस

उत्साह पूर्ण वातावरण में सानंद सम्पन्न। इसी वर्ष प्रान्त की प्रायः समस्त समाजों ने महर्षि का बोध दिवस बड़े समारोह के साथ उत्साह पूर्ण वातावरण में सानंद मनाकर महर्षि के प्रति अपनी हार्दिक श्रद्धांजलि सादर समर्पित की।

दि० १४ फर्वरी को दयानन्द विद्यालय अजमेर में बोध दिवस श्रीमान भवभूति सेन प्रधानाध्यापक की अध्यक्षता में मनायागया। इस अवसर पर आर्यजगत के प्रसिद्ध विद्वान वेदवागीश श्रीमान प. सत्यानन्द जी व्याकरणाचार्य एम ए. की ऋषि जीवन पर ओजस्वी प्रेरणास्पद वक्तृता बड़ी ही प्रभावशालिनी रही। प रमाशंकरजी शास्त्री तथा पं० रामभजन जी मिश्र ने भी ऋषि जीवन पर प्रकाश डालते हुये छात्रों को उससे शिक्षा ग्रहण करने के लिये प्रेरणा दी। दि० १६ फर्वरी को इसी प्रकार अजमेर की समस्त आर्य समाजों की ओर से केसरगंज आर्यसमाज में राजस्थान सेवा आयोग के सुयोग्य अध्यक्ष श्रीमान रामचन्द्रसिंह जी चौधरी की अध्यक्षता में बोध दिवस मनाया गया। जिसमें डा० सूर्यदेव जी शर्मा मन्त्री आर्य समाज केसरगंज, श्रीमान श्री करण जी शारदा मन्त्री परोपकारिणी सभा तथा आर्य प्रतिनिधि सभा राजस्थान दयानंद शिक्षक प्रशिक्षणालय अजमेर के सुयोग्य प्राध्यापक श्री प भूपेन्द्रजी शास्त्री, आचार्य दत्तात्रय जी वब्ले आदि विद्वानो के ऋषि जीवन पर व्याख्यान हुये। तथा आर्य जनता को आत्म निरीक्षण कर आगे प्रगति पथ पर बढ़ने की प्रेरणा दी। श्रीमान अध्यक्ष जी ने अपनी ओजस्वी वक्तृता द्वारा महर्षि दयानन्द जी को हार्दिक श्रद्धाञ्जलि समर्पित करते हुये आर्य समाज एवं ऋषि के उपकारों की महत्ता पर प्रकाश डालते हुये कृतज्ञता प्रकट की।

संवाददाता

वैदिक लाईट अंग्रेजी
वैदिक साहित्य का प्रमुख सार्वदेशिक मासिक पत्र। मूल्य १०) वार्षिक
सम्पादक सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधिसभा
महर्षि दयानन्द भवन,
रामलीला मैदान
नई दिल्ली १

सुन्दर आकर्षक रंगीन आर्टपेपर के मुख पृष्ठ सहित ३२ पृष्ठ का यह अत्यन्त उत्तम वैदिक धर्म की उच्च कोटि की साहित्यिक सामग्री से समन्वित पठनीय एवं संग्रहणीय मासिक पत्र है। आर्य संस्कृति एवं वैदिक धर्म के विषय में उच्च कोटि के वैदिक विद्वानों के लेख विचार माला, समाधान एवं सदुपदेश वास्तव में आकर्षक वैदिक सामग्री देने में सभी में पूर्ण समर्थ है। अंग्रेजी भाषा में वैदिक साहित्य का प्रकाशन कर सभा ने एक बहुत बड़े अभाव की पूर्ति की है। समाजें, आर्यबन्धु तथा आर्य संस्थाएँ अवश्य इससे लाभ उठायें। —सम्पादक

# राजस्थान प्रदेश आर्य वीर दल के नियम

### आवश्यक सूचना

प्रांत की समस्त आर्य समाजों तथा आर्य वीर दल की शाखाओं के अधिकारियों की सेवा में निवेदन है कि— प्रस्तावित आर्यवीर दल के नियम प्रकाशित किये जारहे हैं। यदि इन नियमों में संशोधन, परिवर्तन करना आवश्यक हो, तो कृपया अपनी सम्मति सहित नियमों में संशोधन अथवा परिवर्तन कर शीघ्रातिशीघ्र सभा कार्यालय मे भेजने का कष्ट करें। ताकि प्रस्तावित नियमों की स्वीकृति सभा के आगामी अधिवेशन में प्राप्त की जा सके।

— मन्त्री सभा

१. नामः- यह नियम राजस्थान प्रदेश आर्य वीर दल नियम कहलाएँगे।

२. उद्देश्यः- (क) सार्वभौम सुख एवं शान्ति के लक्ष्य को ध्यान में रखकर देश में वैदिक धर्म, वैदिक संस्कृति तथा वैदिक सभ्यता के आधार पर साधारणतया सर्व साधारण में और विशेषतया नवयुवकों में समस्त उपायों द्वारा स्फूर्ति, चरित्र एवं नैतिकता के भाव उत्पन्न करना।

(ख) नवयुवकों में शारीरिक उन्नति की योग्यता उत्पन्न करने के साथ-साथ आत्म रक्षा, मानसिक एव आत्मिक विकास, प्रेम, सेवा, त्याग तथा पुरुषार्थ की प्रवृति का पोषण करना।

(ग) आर्य समाज के १० नियमों का पालन करना और उनके अनुसार आचरण करना।

३. सदस्यताः—

जो नवयुवक उपरोक्त उद्देश्यों में आस्था रखकर उनके अनुसार आचरण स्वीकार करें तथा सदस्यता के लिए प्रतिज्ञा पत्र भरें वह आर्य वीर कहलाएगा।

४. चन्दाः—

प्रत्येक आर्य वीर को सदस्यता के लिए कम से कम ४ आने मासिक चन्दा देना अनिवार्य होगा।

५. आर्य वीर दल समितियाँ—

प्रत्येक आर्य समाज के अन्तर्गत एक आर्य वीर दल समिति होगी, जिसके पदाधिकारी निम्न प्रकार होंगे।

(१) प्रधानः- आर्य समाज का मन्त्री अथवा अन्तरंग सभा द्वारा नियुक्त अधिष्ठाता होगा।

(२) आर्य समाज का कोषाध्यक्ष पदेन कोषाध्यक्ष होगा।

(३ मन्त्री व शाखा संचालकः- मन्त्री व शाखा संचालक की नियुक्ति दल का प्रधान आर्य वीरों में स करेगा।

अन्य पाँच सदस्यः- जिन की नियुक्ति उपरोक्त चारों अधिकारी मिलकर करेंगे।

६. प्रान्तीय आर्य वीर दल समितिः—

समिति का गठन निम्न प्रकार से होगाः-

१ प्रधानः- आर्य प्रतिनिधि सभाका मन्त्री अथवा आर्य प्रतिनिधि सभा द्वारा निर्वाचित अधिष्ठाता इस समिति का प्रधान होगा।

२ कोषाध्यक्ष - प्रतिनिधि सभा का कोषाध्यक्ष पदेन कोषाध्यक्ष होगा।

३. मन्त्रीः- प्रान्त के आर्य वीरों में से एक मन्त्री का चुनाव प्रान्तीय समिति करेगी।

४. प्रान्तीय संचालकः- सार्वदेशिक आर्य वीर दल समिति द्वारा नियुक्त होगा।

५ प्रान्तीय संचालिकाः- सार्वदेशिक आर्य वीर दल समिति द्वारा नियुक्त होगी।

६ प्रतिष्ठित सदस्यः- उपरोक्त समिति द्वारानियुक्त ५ प्रतिष्ठित सदस्य होंगें।

## विविध

१ प्रत्येक आर्य वीर दल सम्बन्धित आर्य समाज अथवा प्रान्त की दशा में प्रतिनिधि सभा के अन्तर्गत होगा और उन सभाओं के निर्णयानुसार कार्य करेगा।

२. प्रत्येक आर्य समाज अथवा प्रतिनिधि सभा प्रतिवर्ष आर्य वीर दल के लिए कम से कम अपने कुल खर्चे का १०% आर्य वीर दल की प्रगति में लगाएगा।

३. प्रत्येक आर्य वीर अपनी साप्ताहिक सभा में भाग लेगा, जिस सभा में सामूहिक प्रार्थना व धार्मिक ग्रन्थों का पठन-पाठन होगा। इस सभा में भाग नहीं लेने वाला आर्य वीर नहीं कहलाएगा।

४. दल के प्रत्येक अधिकारी को निष्ठित आर्य वीर होना परम आवश्यक है।

५. आर्य वीर दल यदि अनुशासन भंग करेगा और आर्य समाज की नीति वैदिक सिद्धान्तों के अनुसार कार्य नहीं करेगा तो प्रान्तीय अधिष्ठाता को अधिकार होगा कि आर्य वीर दल के उस अधिकारी को या आर्य वीर दल प्रबन्ध समिति को निरस्त करदे। सम्बन्धित आर्य समाज की अन्तरंग सभा के निर्णयानुसार नई समिति अथवा दूसरा अधिकारी नियुक्त कर सकेगा।

६. प्रत्येक आर्य वीर दल को सार्वदेशिक सभाव सार्वदेशिक आर्य वीर दल के समय-समय पर निकलने वाले समस्त आदेशों को मानना होगा।

७. इन नियमों में संशोधन करने का अधिकारी राजस्थान प्रान्तीय आर्य प्रतिनिधि सभा के साधारण सभा को होगा।

जेठमल आर्य
अधिष्ठाता
राजस्थान प्रदेश आर्य वीर दल
आबू रोड (राजस्थान०)

## सूचना

सभा का वार्षिक अधिवेशन

दि० १८, १९ मई ६९ को आबूरोड में

दि० २ फरवरी ६९ की सभा की अन्तरग के निश्चयानुसार सभा का वृहद् अधिवेशन दि० १८, १९ मई ६९ तदनुसार ज्येष्ठ कृष्णा २, ३स०२०२६ दिन रविवार, सोमवार को आबू-रोड में होना निश्चित हुआ है। प्रात की सभी समाजें अपनी सम्पूर्ण आय का दशांश, निश्चित कोटि राशि, आर्य मार्तण्ड का वार्षिक मूल्य, तथा वार्षिक चित्र शीघ्र भेजने का कष्ट करे। साथ ही साधारण अधिवेशन में विचारार्थ प्रस्ताव प्रस्तुत करना चाहे, तो वह भी १ मई तक अवश्य भिजवा दें। समाजों से भाग लेने के लिए आने वाले प्रतिनिधियों की संख्या भी सूचित करें, ताकि निवास भोजनादि की व्यवस्था में सुविधा रहे। गतांक में भूल से मई की अपेक्षा फरवरी मास छप गया था। कृपया नोट करलें।

—मंत्री सभा

# श्री लाला हंसराज जी गुप्त महापौर देहली निगम, अध्यक्ष परोपकारिणी सभा का स्वागत समारोह।

अलवर रविवार दिनांक २० फरवरी, १९६९ आर्य कन्या विद्यालय भवन, स्वामी दयानन्द मार्ग, अलवर में अलवर की समस्त आर्यसंस्थाओं की ओर से लाला हंसराज गुप्त, अध्यक्ष परोपकारिणी सभा के स्वागतार्थ प्रातः १० बजे विशाल समारोह का आयोजन किया गया जिसमें लगभग ८०० स्त्री पुरुष उपस्थित थे। इस समारोह की अध्यक्षता राजस्थान के भूतपूर्व स्वास्थ्य मंत्री श्री बद्री प्रसाद जी गुप्त सदस्य विधान सभा राजस्थान ने की

आर्य समाज के साप्ताहिक यज्ञ, संध्या व प्रार्थना आदि होने के पश्चात जिला आर्य सभा अलवर की ओर से श्री रोशनलाल जी आर्य स्वामी दयानन्द मार्ग आर्य समाज की ओर से शान्ता आर्य, शिक्षा समिति की ओर से श्रीमान ठाकुर दास जी, आर्य समाज बजाजा बाजार की ओर से श्री मोहिनी देवी एवं आर्य कन्याविद्यालय समिति के अन्तर्गत चला रही समस्त संस्थाओं की ओर से श्री छोटसिंह जी एडवोकेट अध्यक्ष नगर विकास न्यास, ने पुष्प मालाओं द्वारा स्वागत किया।

इस अवसर पर श्री गोकुल चन्द सदस्य विधान सभा राजस्थान, श्री शान्ता आर्य, प्रधानाध्यापक, गुलजारी लाल जी ने अपने विचार रखे तथा श्री बलबीर जी एवं प्रो० पाराशर जी ने अपनी रस व देश प्रेम की कविताओं से उपस्थित लोगों में राष्ट्रीय भावनाओं को भरा। श्रीमती शीला जी एवं विद्यालय की बालिकाओं द्वारा भजन व ऋषि महिमा पर गायन द्वारा श्रोताओं का समधुर संगीत से आनन्दित किया।

श्री छोट सिंह जी प्रधान आर्य समाज स्वामी दयानन्द मार्ग अलवर ने गुप्त जी का अभिनन्दन करते हुए बताया कि पिछले दस वर्षों में आर्य कन्या विद्यालय की विभिन्न संस्थाओं पर दस लाख रुपये व्यय किये जा चुके हैं और आगामी ५ वर्षों में विद्यालय भी दस लाख रुपये और व्यय करने की योजना है। उन्होंने बताया कि अलवर जिले में कोई छात्राओं का छात्रावास नहीं है।

विद्यालय समिति ने इस अभाव को करीब दो लाख रुपये व्यय करके छात्रावास बनाकर पूरा कर दिया है। अगले सत्र में छात्रावास चालू हो जायेगा। छात्राओं के लिये तरण कुण्ड का निर्माण, गौशाला की योजना, विद्यालय को महाविद्यालय के रूप में परिवर्तित करना, शिक्षिकाओं के लिये निवास व्यवस्था करना आदि विद्यालय समिति के भावी कार्य क्रम के कुछ पहलु। उन्होंने बताया अब तक जो कार्य हुआ है। उसके सहयोग के लिये दान दाताओं एवं अन्य प्रकार से सहयोग करने वाले लोगों की हृदय से प्रशंसा की और उपस्थित लोगों से मार्मिक अपील की कि वे विद्यालय के भावी कार्य क्रम में पूरा पूरा योग दें।

श्री हंसराज जी गुप्त ने आर्य समाज एवं इस के अन्तर्गत संस्थाओं की चल रही गति विधियो पर सन्तोष प्रकट करते हुए अलवर के कार्य कर्त्ताओं की प्रशंसा की। उनके किये गये स्वागत का आभार प्रदर्शित किया और आशा व्यक्त की कि भविष्य में भी अलवर में आर्य समाज इसी प्रकार से दिन प्रतिदिन अपनी गति तीव्र करेगी।

श्री बद्री प्रसाद जी गुप्त मुख्य अतिथि महोदय एवं समस्त आगन्तुक लोगों का हृदय से स्वागत करते हुए शान्ति पाठ के बाद सभा विसर्जित की।

## नागौर में ऋषि बोधोत्सव पर्व

आर्य प्रतिनिधि सभा राजस्थान के आदेशानुसार आर्य समाज नागौर की ओर से दि० १५-२-१९६९ को ऋषि बोध दिवस के उपलक्ष्य में निम्न कार्य क्रम सम्पन्न हुये।

(१) प्रातः ५.३० बजे प्रभात फेरी समाज भवन से रवाना होकर नगर के भिन्न २ मोहल्लों में वैदिक धर्म के नारे गुँजाती हुई प्रातः ७ बजे वापस समाज भवन पहुंची। प्रभात फेरी में निम्न सदस्यों ने एवं आर्य जनों ने भाग लिया। सर्व श्री शिवकरण जी चौधरी, वकील कानसिंह जी मगनी राम जी सोलंकी, रामलाल जी स्वर्णकार रामचन्द्र जी वैद्य, धनराज जी व्यास, लक्ष्मी नारायण जी शारदा, एवं विष्णु शर्मा, आर्य जनों में सर्व श्री भैरूँलाल जी पाण्डे चौधरी हीरारामजी भजनोपदेशक, अमरनाथ जी जोशी सत्यनारायण उपाध्याय थे।

उपरोक्त सज्जनो की उपस्थितिमें ओ३मध्वज श्री वकील लक्ष्मण सिंह जी के कर कमलो द्वारा चढ़ाया जाकर सामुहिक ध्वज गान हुआ। उपस्थित आर्य जनों ने ५-५ नये सदस्य एवं आर्यमार्तण्ड के ग्राहक बनाने का आश्वासन प्रदान किया लगभग ८-३० बजे कार्यक्रम समाप्त हुआ।

(२) प्रातः ९-३० बजे सामुहिक सन्ध्या, ईश प्रार्थना विशेष यज्ञ हुआ। यज्ञ के आचार्य पद पर श्री मदन गोपाल जी मिश्र थे। चौ. हीरासिंह जी के भजनोपदेश हुवे। उसके अतिरिक्त निम्न सज्जन उपस्थित थे। सर्व श्री राधावल्लभ जी पारीक, शिवकरण जी चौधरी कानसिंह जी आला वकील, धनराज जी व्यास, मूलचन्द जी चौधरी, शंकर लाल जी स्वर्णकार एवं अमर नाथ जी जोशी, मदनसिंह जी राठौड़ आदि महानुभावों ने भाग लिया।

(३) सायंकाल समाज भवन के प्रवेश द्वार पर विशेष तौर पर विद्युत (प्रकाश) रोशनी की गई, एवं ८-३० बजे सार्वजनिक सभा श्री शिवकरण जी चौधरी के सभापतित्व में हुई, जिसमें श्री शिवनारायण जी चौधरी धनराज जी व्यास मा. प्रेमराज जी एम. ए के प्रभावशाली भाषण एवं चौधरी हीरा सिंह जी के भजनोपदेश हुवे। सभा का कार्य रात्रि के १०-३० बजे शान्ति पाठ के पश्चात समाप्त हुवा।

विष्णु शर्मा
मन्त्री—

## "स्वामी दयानन्द बोधोत्सव दिवस"

दिनाङ्क १४.२.६९ को आर्य पुत्री उ० मा० विद्यालय में सरस्वती सभा के अन्तर्गत" स्वामी दयानन्द बोधोत्सव दिवस" मनाया गया। जिसकी अध्यक्षता श्रीमती मायारानी भार्गव ने की। इस उत्सव पर। छात्राओं ने स्वामीजी के जीवन चरित्र संबंधी सुन्दर भाषण, कवितायें गाने और विनोदी संस्मरण सुनाये। इस उत्सव के शुभ अवसर पर विविध प्रतियोगिताओं में प्रथम, द्वितीय व तृतीय रहने वालीछात्राओं को माननीय श्री त्रिलोकी नाथ जी भार्गव के कर कमलों द्वारा प्रमाण पत्रों का वितरण किया गया।

पश्चात् माननीय श्री त्रिलोकी नाथ जी भार्गव ने भाषण देते हुए कहा कि यदि स्वामीजी न होते तो आज हमारा हिन्दू धर्म बचा न रहता। स्वामीजी ने ही वह भूमि तैयार की जिस में बीज डालकर गांधीजी ने हिन्दू धर्म की रक्षा की। अध्यक्षा श्रीमती मायारानी भार्गव ने भी भाषण देते हुए"धर्म" पर ज़ोर दिया। अन्त में माननीय श्री त्रिलोकी नाथ जी भार्गव ने विद्यालय को २०१ रु माइक के लिए देने की घोषणा की। तत्पश्चात् धन्यवाद व शांतिपाठ के साथ सभा विसर्जित हुई।

कन्या महर्षि
सरस्वती संघ की
प्रधानाध्या

# कचारा और लखारा

( श्री हरिश्चन्द्र विद्यार्थी वैदिक मिशनरी )

राजस्थान और उत्तर प्रदेश के कुछ भागों में कचारों और लखारों की काफी संख्या है। कांच की चूड़ियों का काम करने वाले कचारे और लाख की चूड़ियों का काम करने वाले लखारे कहलाते हैं। इनका सारा काम हिन्दू महिलाओं के इन उपकरणों पर ही आश्रित है। हिन्दू महिलाएँ इनके सम्पर्क में आती हैं, क्योंकि इस प्रकार की चूड़ियां भारत के हिन्दू समाज में सौभाग्य का प्रतीक मानी जाती हैं प्रायः प्रत्येक स्त्री इन्हें पहनती है। राजस्थान में तो इसका अपवाद मुश्किल से मिलता है इस सम्पर्क के परिणाम कभी कभी सामाजिक कार्य कर्ताओं के सामने समस्या के रूप में आते रहते हैं।

यह कचारे और लखारे प्रायः मुसलमान हैं। मगर हैं सब के सब राजपूत। इन में भाटी, चौहाण आदि १२ खेपे हैं। इन में अब तक भी बहुत से हिन्दू रस्म रिवाज पाए जाते हैं। मुरदे जलाते थे। अब भी कुछ स्थानों में यह प्रथा प्रचलित है। अपने गोत में शादी-विवाह नहीं करते। लड़के लड़कियों की मंगनी की प्रथा भी हिन्दुओं जैसी है। गुड़ और नारयल भेजा जाता है।

इनमें जो गाथा या लोक कथा प्रचलित है, तदनुसार इन लोगों ने परशुराम के क्षत्रियों के विरुद्ध अभियान से डर कर यह पेशा अपना लिया था। उस समय इस प्रकार अपने क्षत्रियत्व की रक्षा की। मगर मुसलमानी समय में यह इस प्रकार का कोई ढंग न निकाल सके और प्रायः मुसलमान हो गये। इनके मुसलमान बनने या बनाने में कौन सी परिस्थितियों ने काम किया-यह अभी सामाजिक अनुसन्धान का विषय है। समाजशास्त्रियों को इस ओर ध्यान देना चाहिए।

जो प्रश्न आर्यसमाज के सन्मुख है, वह इनकी इस समय की परिस्थिति है: यह "नव-मुसलिम" हैं। राजपूत हैं। राजपूत-परम्पराओं और प्रथाओं के लिये इनमें आदर बुद्धि ही राजपूती-इतिहास और इनके अपने पूर्वजों के कारनामों से इनमें जातीय गौरव के भाव जागृत किये जा सकते हैं। इस प्रकार इनको हिन्दू-समाज के अधिक निकट लाया जा सकता है। भारत में और बाहर भी मत-परिवर्तन प्रायः जाति-गत रूप में ही हुआ है अब भी इसी प्रकार हो सकता है। आर्यसमाज के उपदेशक विद्यालयों में कुछ व्यक्ति इस प्रकार के समाज में काम करने के लिये तैयार करने चाहिये यदि इन्हीं में से कुछ व्यक्ति तैयार किये जासकें, तो और भी अच्छा हो

समय है कि आर्य समाज इस तरफ ध्यान दे। राजस्थान और उत्तर प्रदेश की सभाओं का यह क्षेत्र है। उनका कर्तव्य साफ ही है, स्थानीय आर्य समाजें या आर्य समाजी भी इस समस्या के हल में सहायक हो सकते हैं।

असल बात तो काम को विधि पूर्वक और योजना बद्ध हाथ में लेने की है। उसमें जो कठिनाइयां आवेंगी, उसका निदान उस समय हो जायगा। इन लोगों की संख्या राजस्थान में अधिक है। इनके शुद्धि करण से दुगना लाभ होगा, यह लोग जातीय गौरव अनुभव करके उन्नत होंगे और हिन्दू महिलाओं का यह मुसलमानी सम्पर्क भी दूर होगा।

आशा करनी चाहिये कि आर्यसमाज इस ओर ध्यान देगा?

## शुभ विवाह

आर्यसमाज शाहपुरा के सभा सद् श्री जयसिंह जी बडगूजर की सुपुत्री "लाड कँवर" T.D.C. II year का विवाह संस्कार श्री लालसिंह जी पँवार B. S. C. फाइनल डूँगर पुर निवासी के साथ वैदिक रीत्यानुसार सम्पन्न हुआ। पं० वेद व्रत जी शास्त्री ने संस्कार कराया दक्षिणा में (१०१) रु० जयसिंह जी ने प्रदान किये। आर्य समाज शाहपुरा द्वारा वरवधू को वैदिक साहित्य भेंट किया गया। वर पक्ष की ओर से आर्य समाज शाहपुरा को ११) एवं श्री जयसिंह जी ने आर्य समाज को ५) आर्य प्रतिनिधि सभा राजस्थान प्रान्त को ५) रु० भेट किये।

—संवाद दाता

## जयपुर में बोधोत्सव

दिनांक १५-२-१९६९ को प्रातः १० बजे श्री पं. सुरेन्द्र जी शर्मा द्वारा इसाई कुमारी मरयम के. वी. आत्मजा की के. ई. का शुद्धि संस्कार सम्पन्न हुआ। उसका नाम कृष्णा कुमारी रखा गया। इस अवसर पर समाज के प्रधान श्री यू० एन खेबी तथा अन्य महानुभाव भी उपस्थित थे।

सांयकाल कुमारी कृष्णा का विवाह संस्कार वैदिक रीति के अनुसार श्री टी० सी. ग्रोवर आत्मज श्री टी० आर ग्रोवर के साथ सम्पन्न हुआ तथा १६-२-१९६९ को इस उपलक्ष में एक प्रीति भोज भी हुआ।

प्रोग्रामनुसार इस अवसर पर महिला समाज का भी प्रोग्राम सप्ताह भर चला पारिवारिक यज्ञ तथा प्रभात फेरी निकलती रही।

यज्ञ के ब्रह्मा श्री स्वामी विरक्त देवजी साभर वाले थे। झण्डारोहण श्री उग्रसेन जीखेबी प्रधान आर्य समाज द्वारा हुआ। इस अवसर पर आर्य प्रतिनिधि सभा राजस्थान अजमेर के प्रधान श्री श्री पं० भगवान स्वरुप जी न्यायभूषण भी उपस्थित थे। उनका ओजस्वी व्याख्यान हुआ।

वैद्यराज श्री मुनिदेवजी तथा मन्त्री दामोदर दास जी तथा अन्य महानुभावों का कार्य सराहनीय रहा।

# कौन अन्धेरी रात्रि कहे!

भ्रम-भूतल भ्रमित मानव, विवश रहे थे भारत में।
दुःख से जीवन यापन करते, दलित दीन थे भारत में॥
वेद-विधान भूल कर बैठे, मन मुख पोथा पोप लिखे।
वेद,गायत्री पर था बन्धन, शूद्र न पढ़ते कोऽपि, लिखे॥
उच्च वर्ण अपने को समझा, जन्म जाति से मान रहे।
गुण कर्म वेद विधान छोड़ कर, उच्च कुल श्रेय जान रहे।
परतन्त्रता में बन्धे हुए थे, व्यक्तिगत मन भाव रहे।
इस कारण इस आर्य देशका, पतन हुआ दुःख ताप सहे॥
ऐसी जटिल परिस्थिति अन्दर, आये मेधा देव महा।
आर्य मूर्ति आर्य भावना, आर्य वैदिक संत महा॥
घोरतमा निशितम छाई हुई थी, ऐसा जान निराश हुए।
जिसमें शिवका दर्शन दुर्लभ, उसमें एक प्रकाश हुए।
भूल रहे थे भ्रम भावसे, वैदिक धर्म विसार गये।
पोल देख पोपोंने भ्रमित हो, पाखण्ड जाल पसार गये।
मानव को मानव ठुकराते, अपने स्वारथ बान लिये।
भारत को गारत कर डाला, दम्भी निज अरमान लिये॥
बोधरात्रि अन्धेरी थी, कौन? अँधेरी कह सकते।
बोध हुआ था इसी रातको,छुपे हुए कब रह सकते॥
आर्योदय रवि हुआतभी से, सच्चे शिव का ज्ञान हुआ।
"घमसार" पोल प्रस्थान किया तब, अविरल वैदिक गान हुआ॥

घमसार

# घोषणा

| | | |
|---|---|---|
| (१) प्रकाशन स्थान | – | दयानन्द आश्रम केसर गंज अजमेर |
| (२) प्रकाशन समय | – | पाक्षिक |
| (३) मुद्रक का नाम | – | पं० भगवान स्वरूप "न्यायभूषण" |
| राष्ट्रीयता | | भारतीय |
| (यदि विदेशी है तो कोन से देश के) | – | × |
| पता | – | वैदिक यंत्रालय केसरगंज, अजमेर |
| (४) प्रकाशक का नाम | – | स्वामी ओम् भक्त बानप्रस्थ |
| राष्ट्रीयता | – | भारतीय |
| (यदि विदेशी है तो कोन से देश के) | – | × |
| पता | – | दयानन्द आश्रम केसरगंज अजमेर |
| (५) सम्पादक का नाम | – | स्वामी ओम् भक्त बानप्रस्थ |
| राष्ट्रीयता | – | भारतीय |
| (यदि विदेशी है तो कोन से देश के) | – | × |
| पता | – | दयानन्द आश्रम केसरगंज अजमेर |
| (६) समाचार पत्र के स्वामी का नाम और पता— | – | आर्य प्रतिनिधि सभा राजस्थान, दयानन्द आश्रम केसरगंज अजमेर (धार्मिक रजिस्टर्ड संस्था) |

मैं ओम् भक्त बानप्रस्थ घोषित करता हूं कि मेरी मान्यता और विश्वास के अनुसार उपर्युक्त विवरण सत्य है।

ओम् भक्त बानप्रस्थ
सम्पादक "आर्यमार्तण्ड

दिनांक १. ३. १९६९

# शोक

आर्य समाज बाराँ (कोटा) के प्रतिष्ठित सभासद-श्रीमान सेठ ताराचंद जी आलान का गत मास में आकस्मिक देहावसान हो गया। इसी प्रकार आर्य समाज पीपाड के मन्त्री श्री प्यारे लाल जी की दादी जी का गत सप्ताह में देहावसान हो गया।

सभा इस अवसर पर अपनी हार्दिक शोक समवेदना प्रकट करते हुये परम पिता परमात्मा से प्रार्थना करती है कि वह दिवंगत आत्मा को सद्गति तथा शोक संतप्त परिवारों एवं आत्मीय जनों को धैर्य तथा शांति प्रदान करे।

मंत्री सभा

## शाहपुरा में बोध-दिवस

आर्यसमाज शाहपुरा की ओर से महर्षि को बोधोत्सव सानंद सम्पन्न हुआ प्रातः ५ बजे प्रभात फेरी ८ बजे ध्वजारोहण ९। बजे वेद पाठ एवं साधारण यज्ञ ९॥ बजे स्वामी आत्मानंद जी सरस्वती की अध्यक्षता में सभा हुई जिसमें महर्षि जीवन पर विद्वानो के भाषण हुए-महिलाओं द्वारा बीच बीच में महर्षि महिला एवं आर्यसमाज महिमा के प्रभाव शाली भजन हुए जयसिंह जी बडगूजर की ओर से प्रसाद वितरण हुआ रात्रि को आर्य समाज भवन पर दीपमाला द्वारा प्रकाश हुआ।
सम्पूर्ण कार्य क्रम में श्री महृयानन्द महिला शिक्षण केन्द्र की बहनों का प्रशसनीय सहयोग रहा।

भवदीय रामस्वरूप बेली
मंत्री आर्य समाज शाहपुरा

श्री महृयानन्द महिला शिक्षण केन्द्र [illegible] मन्त्री श्री भंवरलाल जी ने अपनी पुत्रियों [illegible] विवाह संस्कार के उपलक्ष में आर्यसमाज शाहपुरा को ११) श्री महृयानन्द महिला शिक्षण केन्द्र को ११) एवं आर्य प्रतिनिधि सभा राजस्थान प्रान्त को ५) भेट स्वरूप दिये वर पक्ष की ओर से श्री महृयानन्द महिला शिक्षण केन्द्र को ११) भेट स्वरूप प्रदान किये।

भवदिय रामस्वरूप बेली
मंत्री आर्य समाज शाहपुरा

# सूचना

आर्य प्रतिनिधि सभा राजस्थान का आगामी वार्षिक अधिवेशन दि० १८, १९ मई १९६९ को आर्यसमाज आबूरोड के निमंत्रण पर आबूरोड में होना निश्चित हुआ है। इस अवसर पर प्रान्त में आर्यसमाज द्वारा संचालित शिक्षण संस्थाओं की व्यवस्था और प्रबन्ध में एक रूपता लाने के प्रान्त में आर्यवीर दल के कार्य को संगठित करने तथा प्रान्त में बढ़ते हुये ईसाई अराष्ट्रीय प्रचार का निरोध करने जैसे महत्त्वपूर्ण विषयों पर गम्भीरता पूर्वक विचार किया जाकर आवश्यक निर्णय लिये जायेंगे। आबूरोड के आर्यबन्धु उत्साहपूर्वक प्रान्त के प्रतिनिधियों के स्वागत सत्कार में की तैयारी कर रहे हैं।

—भवानीलाल भारतीय,
उपमन्त्री, आर्यप्रतिनिधि सभा,
राजस्थान।

## आर्य संन्यासी मण्डल का अधिवेशन

शिवरात्रि पर रजिष्ट्री के नियमानुसार ऋषिग्राम (टंकारा) में अ० भा० आर्य संन्यासी मण्डल का अधिवेशन हुआ। जिसमें "ऋषि शिक्षण शिविर" में प्राप्त सर्व प्रथम पुरस्कार श्री भानु शंकर मेहता को प्रदान किया गया। निश्चय यह भी हुआ कि भविष्य में शिवरात्रि पर शिविर का आयोजन टंकारा के पास पडधरी (सौराष्ट्र) में किया जाय, क्यों कि सर्वशास्त्र निष्णात, वयो वृद्ध पूज्य पं० रेवा शंकर जी शास्त्री, साम सर्वस्व के ज्ञान का अलभ्य लाभ भी जिज्ञासुओं को प्राप्त हो सके। शिविर में सर्वतोभावने परिव्राजकाचार्य पूज्य वेद स्वामी मेधार्थी सरस्वती एम० ए० साम वाचस्पति ने सहयोग दिया। अतः हार्दिक साधुवाद सर्व उपस्थित सज्जनों ने प्रदान किया।

कान्ह जी वानप्रस्थ
संयोजक
ऋषि शिक्षण शिविर (टंकारा)

## डा० गोकुल चन्दजी नारंग चल बसे !

[illegible] को बड़े खेद के साथ सूचित करना पड़ रहा है, कि आर्यसमाज के एक प्रमुख महान नेता, [illegible] पूर्व मन्त्री, वित्त विशेषज्ञ तथा ख्यात [illegible] श्री डा० गोकुल चंदजी नारंग [illegible] ११ को ९० वर्ष की आयु में देहावसान हो गया। माननीय नारंगजी लाला लाजपत राय के निकटतम सहयोगी एवं भारत केसरी स्व० चांद करणजी शारदा के अभिन्न मित्र थे। समस्त जीवन हिन्दू तथा हिन्दुस्थान की सेवा में बीता। कई बार आपको कृष्ण मन्दिर में भी रहना पड़ा। वास्तव में ऐसे महान पुरुष का निधन पंजाब ही नहीं सम्पूर्ण देश की क्षति है। इस महान दुख के अवसर पर हार्दिक शोक समवेदना प्रकट करते हुए परमपिता परमात्मा से प्रार्थना करते हैं कि वह दिवंगत आत्मा को सद्गति तथा शोकाकुल प्रिय परिजनों को धैर्य तथा शांति प्रदान करें।

श्री करण शारदा मन्त्री
परोपकारिणी सभा
तथा आर्यप्रतिनिधि सभा
राजस्थान अजमेर

श्री पं० भगवानस्वरूपजी "न्यायभूषण" के प्रबन्ध से वैदिक यन्त्रालय अजमेर में मुद्रित और ओम्भक्त वानप्रस्थ, सम्पादक प्रकाशक द्वारा दयानन्द आश्रम, केसरगंज अजमेर से प्रकाशित। अधिष्ठाता—श्रीमान् डा० भवानीलालजी भारतीय एम. ए. पी. एच. डी. पाक्षी।

आर्य प्रतिनिधि सभा राजस्थान का मुख पत्र

पाक्षिक

रजि० नं० १४ जे०

दयानन्द आदित्य से पाकर ज्योति प्रचण्ड। ध्वंस दम्भ पाखण्ड का करे आर्यमार्तण्ड॥

वर्ष ४७ | वार्षिक मूल्य ५) रुपया | सम्पादक—श्री ओम्भक्त वानप्रस्थ (रामसहाय शर्मा) | अजमेर चैत्र कृष्णा १२ सं. २०२५वि., दि. १५ मार्च ६९ दयानन्दाब्द १४५ | एक प्रति का २० पै० | अङ्क २

## प्रभु-विनय

ओ३म ध्रुवा दिग्विष्णुरधिपतिः कल्माषग्रीवो रक्षिता वीरुध इषवः। तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नमो इषुभ्यो, नम एभ्यो अस्तु। योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः॥

नीचे की दिशा का सर्वव्यापक सर्वान्तर्यामी परमेश्वर स्वामी है। कण्ठ से चिकनी चुपड़ी बातें कर दूसरों को ठगने वाले छली लोगों से तथा विषैली गैसों से हमारी रक्षा करने वाला है। नाना प्रकार के वृक्ष तथा वनस्पतियां उसके बाण अर्थात् रक्षा के साधन हैं। उस प्रकाश रूपी प्रभु को हमारा नमस्कार हो। उस उत्तर दिशा के स्वामी के लिये हमारा नमस्कार हो। उस सर्वरक्षक, दिव्य शक्तियों को नमस्कार है। जो हमारा द्वेष करता है और जिसका हम द्वेष करते हैं। उसको आपके न्याय रूपी जबड़े में देते हैं।

## पद्यानुवाद

हे विष्णु सर्वव्यापी, दृढ़ता हमें सिखाओ।
कर्त्तव्य में निरत रह, सहना हमें बताओ।
रक्षक तू कर रहा है, सन्तान वत हमारा।
दुख सुख सभी समय में, साथी सदा हमारा।
हम बार २ वन्दन करते, तुझे नमस्ते।
यदि द्वेष भावना हो, तो न्याय तेरे हस्ते॥

---

राजस्थान के वयोवृद्ध विद्वान् आर्य नेता
पं० भगवानस्वरूप जी न्यायभूषण
प्रधान, आर्य प्रतिनिधि सभा राजस्थान



आपका जन्म दिवस नगर आर्य समाज अजमेर के तत्वावधान में दि० ३ मार्च ६९ को बड़े समारोह से अजमेर की आर्य जनता तथा संस्थाओं ने मनाकर भावपूर्ण श्रद्धाञ्जलि अर्पित की। इसी अवसर पर नव शस्येष्टि यज्ञ भी आपके यजमानत्व में सम्पन्न हुआ। इस अवसर पर आपने ७१६, आर्य संस्थाओं को दान दिये।

---

डा० भवानीलाल भारतीय लिखितशोधग्रन्थ
**'ऋषि दयानन्द और आर्यसमाज की संस्कृत साहित्य को देन' का ग्रन्थ विमोचन समारोह—**

दि० १६-३-६९ रविवार प्रातः १० बजे आर्यसमाज दयानन्द मार्ग, रातानाडा जोधपुर में आयोजित किया जा रहा है। सुप्रसिद्ध वैदिक विद्वान् डा० फतहसिंहजी एम० ए० डी० लिट, निर्देशक राजस्थान पुरातत्व मन्दिर, जोधपुर समारोह की अध्यक्षता करेंगे। इस अवसर पर प्रसिद्ध आर्य विद्वान् तथा वेद वाणी के सम्पादक पं० युधिष्ठिर जी मीमांसक भी उपस्थित रहेंगे।

### प्रांत की समाजों को आवश्यक सूचना

प्रांत की समाजों की सेवा में सूचनार्थ निवेदन है कि—

१– सभा का वार्षिक अधिवेशन दि० १८,१९–मई ६९ को आबूरोड में आमन्त्रित किया गया है। अतः समाजें अपनी सम्पूर्ण आय का दशांश, निश्चित कोटि राशि तथा वार्षिक चित्र अविलम्ब सभा कार्यालय में भेजने की कृपा करें। उन्हीं समाजों के प्रतिनिधि वैधानिक दृष्टि से अधिवेशन में मतदान के अधिकारी होंगे, जिनका दशांश तथा वार्षिक चित्र सभा कार्यालय में निश्चित समय तक पहुँच जायेगा।

२– प्रतिनिधियों के आगमन की संख्या सहित सूचना मन्त्री आर्यसमाज आबूरोड तथा इस सभा कार्यालय को शीघ्र ही भेजने का कष्ट करें।

३– आगन्तुक प्रतिनिधि महानुभाव यह भी ध्यान रखें कि आबूरोड रेल द्वारा आने जाने का वापसी टिकट ड्योढ़े मूल्य पर प्रत्येक रेल्वे स्टेशन से प्राप्त हो सकेगा। अतः ड्योढ़े मूल्य में वापसी (Return) टिकट लेकर अवश्य लाभ उठावें।

—मन्त्री सभा

### शीघ्र आवश्यकता है।

राजस्थान प्रांत में वैदिक धर्म के प्रचारार्थ योग्य, अनुभवी, संगीतज्ञ भजनोपदेशकों की शीघ्र आवश्यकता है, जो अपनी योग्यता तथा अनुभव से ग्रामों तथा नगरों में प्रभावशाली प्रचार कर सकें। अनुभव योग्यता के प्रमाण पत्रों सहित आवेदन पत्र शीघ्र आमन्त्रित किये जाते हैं।

श्री करण शारदा
मंत्री
आर्य प्रतिनिधि सभा राजस्थान
केसर गंज, अजमेर

# स्व. स्वामी समर्पणानन्द जी के संस्मरण

( ले० डा० भवानीलाल जी भारतीय एम. ए., पी. एच. डी. )

आर्य समाज के सुप्रसिद्ध वैदिक विद्वान् स्वामी समर्पणानन्द जी का स्वर्गवास एक महती एवं अपूरणीय क्षति है। मैंने अनेक बार स्वामी जी के दर्शन करने तथा महत्वपूर्ण विषयों पर वार्तालाप करने का अलभ्य अवसर प्राप्त किया था। मुझे स्मरण है जब मैं नवीं कक्षा का विद्यार्थी था, मैंने आर्य समाज के कट्टर विरोधी सनातनी पण्डित माधवाचार्य की एक पुस्तक देखी 'बुद्धदेव का जूता-दयानन्द के सिर पर' उत्सुकतावश मैं वह पुस्तक पूरी पढ़ गया। उसमें हैदराबाद दक्षिण में हुये उस प्रसिद्ध शास्त्रार्थ का एकांगी-विवरण दिया गया था, जिसमें माधवाचार्य ने आर्यसमाजी विद्वान् पं० बुद्धदेव विद्यालंकार को कहा था कि यदि आप मूर्तिपूजा नहीं मानते तो स्वामी दयानन्द की तसवीर पर जूता मार दीजिये और पं० बुद्धदेव विद्यालंकार ने बिना किसी हिचकिचाहट के यह कार्य कर दिखाया, यह बताने के लिये कि कागज के चित्र का कुछ भी मानापमान नहीं होता। किसी भी व्यक्ति के प्रति अपना सम्मानास्पद भाव हमारे हृदय की वस्तु है, उसका चित्र या प्रतिकृति से कुछ सम्बन्ध नहीं। वस्तुतः यह कार्य मूर्तिभंजक रूप का अत्यन्त साहसपूर्ण प्रदर्शन था, जिसे पं० बुद्धदेवजी ने कर दिखाया। पुराने लोगों को स्मरण होगा कि पं० जी द्वारा महर्षि के चित्र पर जूता रखना, आर्यसमाज में अत्यन्त विवादास्पद विषय बन गया था।

शास्त्रार्थ समर के इसी अद्वितीय महारथी को मैंने अपने चर्म चक्षुओं से तब देखा जब वे एक बार जोधपुर पधारे थे। सम्भवतः वे दिन स्वतन्त्रता पूर्व के थे। मारवाड़ में सामन्तवाद का संध्याकाल था और ऐसा प्रतीत हो रहा था कि आने वाली देश की आजादी जमींदारी प्रथा को समाप्त करके ही दम लेगी। अपने आसन्न विनाश को देख कर सामन्त वर्ग के लोग अपने को संगठित कर रहे थे। जनता के समक्ष अपना दृष्टिकोण उपस्थित करना तथा अपनी स्थिति और अस्तित्व के औचित्य को प्रमाणित करना भी चाहते थे। उन्हें आवश्यकता थी ऐसे स्वामी विद्वानों की, जो उनकी विचारधारा को प्रमाण पुरस्सर जनता के समक्ष प्रस्तुत कर सकें। फलतः जोधपुर के गिरदीकोट मैदान में इन सामन्त तत्वों ने एक जन सभा का आयोजन किया। इसमें वक्ता के रूप में पं० बुद्धदेव विद्यालंकार तथा आर्यसमाज के एक विद्वान् पं० सुरेन्द्र शर्मा गौर को आमन्त्रित किया गया था। मुझे स्मरण है कि सामन्तवाद के विरुद्ध जनता का आक्रोश इतना प्रबल था कि उसने न तो विद्यालंकारजी को ही बोलने दिया और न गौर जी को ही। श्रोताओं का कहना था कि हम आपका व्यक्तिगत रूप में आदर एवं सम्मान करते हैं, हम यह भी जानते हैं कि आपने कांग्रेस के नेतृत्व में देश के स्वाधीनता आन्दोलन में भाग लिया था तथा आप कारावास भी गये परन्तु जिस वेदी से आप सम्प्रति बोलना चाहते हैं वह प्रतिक्रियावादी सामन्ती तत्वों की वेदी है जिन्होंने आपको यहाँ बुला कर गुमराह किया है। आप यदि आर्यसमाज के मंच से या स्वतंत्र रूप से बोलें तो हम प्रसन्नता पूर्वक आपकी बात सुनेंगे, परन्तु इस जागीरदारों के मञ्च से आपको सुनने के लिये तैयार नहीं हैं।

सभा भंग हो गई। पण्डित बुद्धदेवजी आर्यसमाज गुलाबसागर जोधपुर में विश्राम हेतु आ गये और दूसरे दिन प्रातःकालीन सत्संग में उनका प्रभावशाली प्रवचन हुआ। पश्चात् तो अनेक बार उनके व्याख्यान सुनने, विचार विमर्श करने तथा उनके निकट सम्पर्क में आने का अवसर मिला। १९५३ के नवम्बर मास में डीडवाना आर्यसमाज के तत्वावधान में उन्होंने सनातनी पण्डित ध्रुव-अखिलानन्द और माधवाचार्य से शास्त्रार्थ किया था। मैं उस शास्त्रार्थ का प्रत्यक्षदर्शी प्रेक्षक था। उस शास्त्रार्थ में पं० बुद्धदेवजी ने जिस प्रकार पुराणों के बखिये उधाड़े थे और शिवपुराण की अश्लील कथाओं के आधार पर सनातन धर्म का पर्दाफाश किया था, वह सब अत्यन्त रोमाञ्चक और प्रभावपूर्ण था। उसके पश्चात् जोधपुर आर्यसमाज के ही एक उत्सव में उन्होंने शिव लिंग की प्रतीकात्मक व्याख्या करते हुये उसे दीपक का प्रतीक बताया था। मैंने उनके प्रवचन के पश्चात् जिज्ञासा करते हुये उनसे पूछा—आपने शास्त्रार्थ के समय तो पुराण वर्णित देवताओं की जो छीछालेदर की थी, उसे देखते हुये आज आप द्वारा शिवलिंग पूजन की आलंकारिक व्याख्या क्या वद तो व्याघात दोष से दूषित नहीं है? क्या यह परस्पर विरुद्ध कथन उचित है? पण्डितजी ने कहा कि युद्ध नीति और शान्ति काल की नीति में अन्तर होता है। शास्त्रार्थों में प्रतिपक्षी विद्वान् को पराजित करने के लिये जो नीति और शैली अपनाई जाती है वह सामान्य काल में अपनाई जाने वाली व्याख्यान शैली से नितान्त भिन्न होती है। यद्यपि उनके इस उत्तर से मेरा और अन्य भी कई व्यक्तियों का समाधान नहीं हुआ था, तथापि अपनी ऊहात्मक शैली द्वारा पौराणिक देव परिवार की वैज्ञानिक और मनोरम व्याख्या करनी स्व. पण्डितजी की अपूर्व मेधा शक्ति का द्योतक था। कई वर्ष पश्चात् सतरोली के सिद्धान्त निष्ठ विद्वान् पं० बुद्धदेव जी को उस बात पर चैलेंज भी किया था, कि वे पुराण वर्णित शिवलिंग को दीपक का रूपक सिद्ध करें। अस्तु।

मैंने पं० बुद्धदेव जी का शास्त्रार्थ में रौद्र रूप भी देखा है और सौम्य रूप भी। १९५५ के मई मास की घटना है। उस समय पं० जी पाली के साधु श्री रूपाराम जी के अतिथि बन कर उनके आश्रम के उत्सव पर आये हुए थे। अजमेर मार्ग पर स्थित उनके आश्रम के देहाती स्त्री पुरुषों का प्रबल समागम था। नित्य प्रति पण्डित जी के प्रातः सायं प्रवचन होते। एक दोपहर को एक गरीबदासी सम्प्रदाय का साधु जो अपने आपको वेदान्ती घोषित करता था, पं० जी से शास्त्रार्थ करने उपस्थित हुआ। पं० बुद्धदेवजी उस समय भोजनान्तर विश्राम कर रहे थे। प्रतिद्वन्द्वी साधु ने उनके विश्राम के क्षणों की भी चिंता न कर उनसे विचार विमर्श करने का आग्रह किया। पहले तो पण्डितजी अपनी शय्या पर लेटे लेटे ही उसके प्रश्नों का उत्तर देते रहे, परन्तु उक्त साधु विवाद में अपनी सभ्यता को तिलाञ्जलि देकर आवेश में आ गया तथा उच्च स्वर से बोलने लगा। पण्डित जी ने पहले तो कहा कि एक छोटे से हाल में उच्च स्वर से बोलने की आवश्यकता नहीं है। मैं तुम्हारी बात को समझ रहा हूँ तथा उसका युक्ति युक्त उत्तर भी दे रहा हूँ। पण्डितजी के इस सौम्य उत्तर से भी साधु को संतोष नहीं हुआ। वह अपने स्वर में तेजी लाकर बोलने लगा। अब तो पण्डितजी शास्त्रार्थ समर के उत्साह और आवेश से अभिभूत हो गये। उन्होंने सिंह गर्जना करते हुये कहा कि यदि तुम अपने स्वर को ऊंचा करके ही अपनी बात को मनवाना चाहते हो तो मैं तुमसे भी ऊंचे स्वर में बोल सकता हूँ। परन्तु केवल तार स्वर में बोलने से ही किसी का मत सत्य सिद्ध नहीं हो सकता। इसी प्रसंग में उन्होंने शंकराचार्य कृत ब्रह्मसूत्र भाष्य के अपशूद्राधिकरण के कतिपय उद्धरणों को पढ़ कर शूद्रों के प्रति प्रदर्शित इन तथाकथित आचार्यों के अमानवीय अत्याचारों का पर्दाफाश किया।

मुझे मई १९६६ के उस दिन की घटना का भी स्मरण होता है, जिस दिन गुरुकुल चित्तौड़ गढ़ द्वारा आयोजित वेद सम्मेलन की समाप्ति के पश्चात् मैं और स्वामी समर्पणानन्दजी श्री केशवसिंह जी सांखला की कार द्वारा चित्तौड़ से पाली आये थे। सारे रास्ते मैं स्वामीजी से उनके शास्त्रार्थों के संस्मरण पूछता रहा। उन्होंने अपने द्वारा किये गये विभिन्न धर्मावलम्बियों से शास्त्रार्थों का मनोरञ्जक विवरण प्रस्तुत करते हुये अनेक

शेष पृष्ठ ७ पर

# आर्य मार्तण्ड

अजमेर चैत्र कृष्ण १२ सं० २०२५ वि० दिनांक १५ मार्च सन् १९६९


सम्पादकीय—

## पंडित जी दीर्घायु हों !

श्री पं० भगवानस्वरूप जी न्याय भूषण राजस्थान ही नहीं, भारत के उन आर्य रत्नों में से श्रेष्ठ माने जाते हैं, जिन्होंने यावज्जीवन महर्षि दयानंद के उद्देश्य की पूर्ति में अहर्निशि सक्रिय तन, मन से तपस्या की और अनेक आघात प्रत्याघात आरोह-अवरोह की उत्ताल तरंगों और झंझा वातों से संघर्ष करते हुए आर्य समाज की तरणी को कुशल कर्णधार बन कर खे रहे हैं। जीवन का ऐसा कोई क्षण नहीं, जिसमें वेद, वैदिक धर्म आर्य समाज और भारत की राष्ट्रीयता की अक्षुण्णता का मंगल चिन्तन न हो। आप पर विद्यार्थी जीवन में ही ऋषि दयानन्द के सत्य ज्ञान के प्रकाश की दिव्य किरणों का हृदय व्यापी प्रभाव पड़ा, वह युवावस्था में अपने पूर्ण यौवन के साथ निखरा। उत्तर प्रदेश तो जन्म भूमि ही है। पंजाब, महाराष्ट्र बंगाल, मद्रास, गुजरात भारत का कोई ऐसा स्थान नहीं, जहां ऋषि का संदेश न पहुँचाया हो।

आपने काशी तथा गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर में पर्याप्त समय तक अध्ययन एवं अध्यापन कार्य से अपनी शिक्षा की विशिष्ट योग्यता का परिचय दिया। सन् १९२४ से १९३२ तक आप शाहपुराधीश के निमन्त्रण पर राजकुमारों तथा राजकुमारियों के अध्यापन एवं शिक्षणार्थ शाहपुरा रहे। कुछ समय तक आप वहां के पी० डब्ल्यु० डी० आफीसर भी रहे। ७ वर्ष धारूर (दक्षिण) में रहकर आपने सक्षम वैदिक धर्म की सेवा की। सन् १९३२ से आप ऋषि की निर्वाण स्थली अजमेर में आगये और इन ४५ वर्षों में राजस्थान तथा आर्य जगत की जो सेवा की है, उससे प्रत्येक आर्य नरनारी भली भांति परिचित है। वैदिक यन्त्रालय के व्यवस्थापक के पद पर रहकर ऋषि कृत ग्रंथों के शुद्ध सुन्दर प्रकाशन एवं सम्पादन का श्रेय आपको ही है। आप ८० वर्ष की अवस्था में भी नव युवकों से अधिक सक्रिय, साधक एवं उत्साही हैं। प्रातः काल से लेकर शयन काल तक आप निरन्तर कार्य रत रहते हैं। एक क्षण भी व्यर्थ नहीं खोते। अपने समस्त कार्य स्वयं अपने हाथों ही करने के अभ्यस्त हैं। अजमेर के सम्भ्रान्त प्रतिष्ठित एवं ख्यातनामा श्रीमान दीवान बहादुर हर बिलास जी शारदा तथा देशभक्त स्व० चाँद करण जी शारदा के तो आप परम आत्मीय, मित्र एवं सहयोगी रहे। जहाँ तक मुझे स्मरण है शारदा जी पंडित जी को केवल मित्र ही नहीं, अपना प्रिय ज्येष्ठ बंधु भी मानते थे।

वैदिक धर्म एवं आर्य समाज पर जब कभी कोई संकट आया, आपने सर्व प्रथम अपनी सेवायें अर्पित कर अपना कर्तव्य पालन किया। हैदराबाद सत्याग्रह में आप राजस्थान से शारदा जी के बाद द्वितीय सर्वाधिकारी चुने गये। आर्य प्रतिनिधि सभा के तो आप प्राण स्वरूप हैं। वर्षों तक आपने मन्त्री पद पर कार्य किया। सभा की स्वर्ण जयन्ती आपके मन्त्रित्व काल में ससमारोह सानन्द सम्पन्न हुई। इस समय भी आप आर्य प्रतिनिधि सभा राजस्थान के प्रधान, परोपकारिणी सभा के सदस्य एवं पुस्तकाध्यक्ष, दयानन्द विद्यालय, आर्य पुत्री विद्यालय, म० गु० आर्य कन्या विद्यालय, गट्टू बाई ट्रस्ट महात्मा कन्हैया लाल शिक्षा ट्रस्ट, केशव देव कपूरिया ट्रस्ट, आदि अनेक आर्य संस्थाओं के सहायक एवं सम्माननीय सक्रिय सदस्य हैं। आर्य समाज की सेवा ही आपका जीवनोद्देश्य है। कर्मकाण्ड एवं नियम में इतने दृढ़ हैं कि बिना सन्ध्या यज्ञ किये भोजन नहीं करते।

आजकल आप इस वृद्धावस्था में भी राजस्थान की आर्य समाजों में भ्रमण, प्रचार कर समाजों के सुदृढ़ संगठन में निरन्तर तत्पर हैं।

दि० ३ मार्च ६९ को अजमेर नगर की जनता एवं आर्य संस्थाओं ने पूज्य पंडित जी का जन्म दिवस नव शताब्दि यज्ञ के अवसर पर सानन्द मनाकर अपनी शुभ कामना पूर्ण श्रद्धाञ्जलि अर्पित की है, जो वास्तव में सराहनीय है।

आर्य मार्तण्ड परिवार भी अपनी हार्दिक श्रद्धांजलि समर्पित करता हुआ परम पिता परमात्मा से प्रार्थना करता है कि पूज्य पं० जी स्वस्थ, सानन्द दीर्घायु प्राप्त कर वैदिक धर्मप्रचार एवं आर्य संस्कृति की सेवार्थ आर्य जनता का पथ प्रदर्शन करते रहें।

गुण-कर्म स्वभाव से, जिनका
जीवन धन्य।

श्री भगवान स्वरूप जी, भूषण न्यायालंकृत
राजस्थान प्रदेश के आर्य धार सिर मौर।
विद्वद्वर कर्मठ युत, तुम सा रत्न न और
जीवन आर्य समाज है,
प्राण वैदिक धर्म
आर्य जगत पथ प्रदर्शक,
पंडित जी का कर्म।
यश गौरव की चन्द्रिका
कभी न होवे मंद।
युग - तक जीवन रहे
स्वस्थ सदा सानन्द।

### प्रचार कार्य

सभा प्रधान श्रीमान पं० भगवान स्वरूप जी न्याय भूषण आर्यसमाज कृष्णगंज बाजार आदर्शनगर उदयपुर नगर आर्य समाज अजमेर

श्री ओम्प्रकाश जी वानप्रस्थ फुलेरा, गंगापुर, पीलीबंगा, गंगा नगर जैतसर रायसिंह नगर, बीकानेर क्षेत्र रतन गढ़, छापर सुजान गढ़, चूरू आदि।

श्री पं० भगवती प्रसाद जी अभय। जयपुर, अलवर क्षेत्र में प्रचार किया। आर्य समाज बांदी कुई का वार्षिकोत्सव सम्पन्न कराया।

### प्रान्त की आर्य समाजों से निवेदन

आपको यह जानकर प्रसन्नता होगी कि स्थानिय आर्य समाज अपना भवन बना रहा है। इस निर्माण कार्य में अब तक ५०००) पांच हजार से ऊपर रकम लग चुकी है। अब इसे सम्पूर्ण करवाने के लिए करीब ३०००) तीन हजार से भी अधिक रकम की आवश्यकता होगी।

प्रान्त की समस्त आर्य समाजों से निवेदन है कि इस निर्माण कार्य को शीघ्र ही पूर्ण करवाने के लिए यथा शक्ति अपना योग-दान निम्न पत्ते पर भिजावें-आपके योगदान द्वारा ही यह कार्य शीघ्र ही सम्पूर्ण हो सकता है-अतः सभी समाजों से निवेदन है कि शीघ्र ही अपना योग निम्न पत्ते पर भिजावें"

आपका
शंकर गुप्त 'प्रेमी'
मंत्री
आर्य समाज फतहनगर
उदयपुर

# श्री शालवाले, संसद सदस्य का वक्तव्य

लोक सभा में राष्ट्रपति के उद्घाटन अभिभाषण पर बोलते हुए संसद सदस्य श्री रामगोपाल शालवाले ने कहा कि राष्ट्रपति के अभिभाषण में देश की वर्तमान स्थिति पर पूरा प्रकाश नहीं डाला गया है। खाद्य समस्या पर अपने विचार प्रकट करते हुये उन्होंने दूध उत्पादन की तनिक भी चर्चा नहीं की। मंहगाई कम करने, मूल्य स्थिर रखने तथा खाद्यान्नों की समस्या को सही ढंग से सुलझाने के लिए गोहत्या पर पूर्ण प्रतिबन्ध लगाना आवश्यक है। गत ७ नवम्बर ६६ को १० लाख लोगों ने गोहत्या बन्दी के समर्थन में विराट प्रदर्शन किया और इसके उपरान्त ८ मास तक लगातार सत्याग्रह चलता रहा। सरकार ने ३ मास में गोहत्या बन्द करने का आश्वासन दिया था, जिसके आधार पर सत्याग्रह स्थगित हुआ था और तदुपरान्त सरकार ने गोरक्षा कमेटी का गठन किया था। उस कमेटी के ३ गैर सरकारी सदस्यों ने उक्त कमेटी की कार्य प्रणाली के विरुद्ध त्यागपत्र दे दिया तथा २६ गवाहों ने गवाही देने से इन्कार कर दिया। ऐसी स्थिति में उस कमेटी की रिपोर्ट एकांगी होगी, जिसे जनता कदापि स्वीकार नहीं करेगी। श्री शालवाले ने गांधी जन्म शताब्दि पर देश में पूर्ण गोहत्या बन्द करने की मांग की। इसी सन्दर्भ में श्री शालवाले ने प्रसिद्ध शासक बाबर द्वारा हुमायूं के नाम लिखी गई वसीयत की भी चर्चा की जिसमें बाबर ने शान्त तथा निष्कंटक राज के लिए देश में पूर्ण गोहत्या बन्दी की हुमायूं को सलाह दी था।

अपने भाषण में श्री शालवाले ने सरकार द्वारा साम्प्रदायिक तथा विघटनकारी तत्वों को दबाने में असमर्थ-रहने पर खेद प्रकट किया। उन्होंने केरल के मोपलापुरम तथा बिजनोर के मुसलमानों द्वारा नए पाकिस्तान बनाए जाने की चर्चा करते हुए ऐसे कृत्यों को देश की राष्ट्रीय एकता तथा भौगोलिक अखण्डता के लिए खतरा बताया। आसाम में ७ लाख पाकिस्तानियों का प्रवेश और प्रति मास एक हजार से अधिक पाकिस्तानी घुसपैठियों का बिना रोक टोक आना और उन्हें एक केन्द्रीय मन्त्री के सहयोग से भारत की नागरिकता दिलाए जाने की चर्चा करते हुए श्री शालवाले ने इसे देश के लिए दुर्भाग्यपूर्ण बताया। उन्होंने इलाहाबाद के ५१ वकीलों के मुस्लिम मजलिस पर पाबन्दी लगाने के प्रतिवेदन को उचित ठहराया और

शेष पृष्ठ ५ पर

# होली का हुड़दंग

( रचयिता श्री हरजीतलाल जी आर्य "हरि" कवि भूषण अजमेर )

होली के हुड़दंग का खींच रहा हूँ माप, जिसने भारत वर्ष में खूब बढ़ाया पाप,
खूब बढ़ाया पाप धर्म की तोड़ी टांगे, लाज मान मर्याद सभी से हो गए नांगे,
भग्नी, भावज सुता मात सब ही के आगे, कुटिल, कुचाली कुवद कुकर्म की भिक्षा मांगे,
पी सुरा भंग अपशब्द बकें बुद्धि हो गई गुम है, आज सारे देश मे हुड़दंगियों की धूम है ॥१

कोई मदिरा कोई भंग में सभी नशे में चूर, सराबोर मल मूत्र में उड़ा रहे हैं धूर,
उड़ा रहे है धूर फाग में चल रहे जूते, छेड़ रहे पर नार कहे जा दूर निपूते,
धाक् शूर बन रहा कोई तलवारें सूंते, कोई पड़ा निहंग पड़ा धोती में मूते, । -धूम है।
ऐसे ही हुड़दंग से कलुषित यह भारत भूमि है, गौरव नहिं निज देश का धिक्कार ऐसी —२

सुधबुध तज उन्मत्त हो करें सभ्यता दूर, नाना रूप धरने लगें बन बन्दर लंगूर,
बन बन्दर लगूर कोई है भालु बनता, मुख पर कालिख पोत कोई कीचड़ में सनता,
कहिं पर बनकर नारि नाचती हिन्दू जनता, भीख मांगता फिरे दिखाकर दीन हीनता,
हिन्दू ही अति दीन हैं और सब धनवान हैं, कर नष्ट हिन्दू सभ्यता की क्षय लाज और मान है—३
फाल्गुण कृष्णा प्रतिपदा को बुद्धि होती कुण्ठ, गीले सूखे वृक्ष से लाकर मोटा ठुंठ,
लाकर मोटा ठुण्ठ ग्राम बिच डांड़ा गाड़ें, कूड़ा सकल बटोर लाय डांडे पर डाड़ें,
छप्पर खाट किवाड़ चोर दिन ही में ताड़ें, फिर उन्हें जलाने विप्र देवता मुहूर्त काढ़े.
क्या हि सुगन्धित द्रव्य जलाकर शुद्ध करते व्योम हैं, विज्ञान वादी भी थके हैं देख इनका होम है ४
सन्मुख विधर्मी जनो के करते हैं अति गर्व, अनुपम सारे जगत् में है यह हमारा पर्व,
है यह हमारा पर्वध्येय ऊंचा बतलावें, कृत्य करें निरलज्ज लाज को लज्जा आवे,
देख देख दुष्कृत्य विधर्मी हंसी उड़ावें, मदर इण्डिया लिखने को फोटो ले जावें,
होली के हुड़दंग से गिर भूषा भाषा वेष में, सम्मानित हिन्दू रहे नहिं देश प्रदेश, में। ५
हिन्दूमत से पर्व पर जो हम करें विचार, यह होली के पर्व का कौन सूत्राधार,
कौन सूत्राधार हिरण्यकश्यप प्रह्लाद बतावे, होली और प्रह्लाद बिठा कर चिता जलावें
चिता में हो नरमेध समझ में यह नहिं आवें, चिता लेक नरशस्य सभी मिलकर के खावें,
कहां गए सूतक व पातक कहता हिन्दू धर्म है, क्या ये ही होली दहन का समझा अनूठा मर्म है ॥६
होमावली होली बनी "मा," 'व' दिया हटाय, आगे पीछे दो रखे मध्य रखे दो मांय,
मध्य रखे दो मांय होली अपभ्रंश नाम है, दीपावली से दीवाली प्रचलित आम है,
रक्षा बन्धन से राखी भोंडा कलाम है, मितव्ययी का समय बचाना एक काम है,
धन व्यय करना है नहीं फिर भी बनता सूम है, अर्थ का अनर्थ कर वृथा लगाना धूम है। ७
होमों की बाहुल्यता होम अवली से जान, ग्रीष्म ऋतु के आगमन का होता है भान,
का होता है भान भविष्य वर्षा पर निर्भर, सीधी किरणें डाल उष्णता देवें दिनकर,
जल से वाष्प बनाया मेघ नभ गढ़ें पयोधर, यही समय सब सतापता वृक्ष होए [illegible]
सकल राष्ट्र आयोजन विधिवित रचत होम हैं। वर्षा में अनुकूलता जल वायु बनाते भौम हैं। ८

दोही ऐसे पर्व हैं जो हैं सार्वभौम, मोटे छोटे अन्न को करते हैं उत्पन्न,
करते हैं उत्पन्न कृषक वर्षा में बोते, ग्रीष्म ताप से तपी भूमि बैलों से जोतें,
दीपावली को काट घरों को लीपें पोतें, प्रभु का कर गुणगान नहीं रजनी में सोते,
पोषण भरण चर अचर का ये ही जीवन प्राण हैं, मानव कृमि कीट कण [illegible] पशु का जान है।

होमावली का आज यह सुन्दर रहा प्रसंग, शीत-ऋतु पर्व का अंग-अंग लगा उमंग,
अंग अंग लगा उमंग भरें सब कोठी कोठा, कणक, चणक तन्दुल सभी आए हैं पोटा,
सोना-चाँदी सभी धातु हो जावें खोटा; प्रभु का अनुपम दान उन्हीं को अर्पण होता,
जग प्रधान मातृ भूमि की जो सुखद श्यामला शस्य है, इन्हीं दोनो पर्व का छिपा हुआ रहस्य है। १०

# प्रान्त की आर्य समाजों का निरीक्षण और प्रचार

मैंने १८-१-६९ को अजमेर से प्रस्थान किया और मदनगंज किशनगढ़ पहुँचा। आ०स० की स्थिति के विषय में श्रीमान् सेठ मोतीलालजी अजोटिया से भेंट की। आपसे ज्ञात हुआ कि कुछ मास से समाज का कार्य शिथिल है। केवल दशांश मध्ये कुछ प्राप्त कर मैंने रेल द्वारा फुलेरा के लिये प्रस्थान किया। आर्यसमाज के उत्साही मंत्री श्री पं भँवरलाल जी शर्मा से मार्ग में ही भेंट हो गई। सायंकाल के नित्यकर्म से निवृत्त हो, श्री मन्त्री जी ने समाज के आय व्यय का निरीक्षण करवाया सब ठीक पाया जबसे आपने समाज का कार्य संभाला है, उत्तम प्रकार से चल रहा है। प्रत्येक रविवार को कुछ युवकों को लेकर सन्ध्या हवन भी किया करते हैं। यहां से दशांश आदि का धन प्राप्त कर उसी समय रात्रि को साँभर के लिये प्रस्थान किया। बस से उतरते ही श्री पूज्य स्वामी विरक्त देवजी महाराज से भेंट हो गई। प्रातः रविवार होने से समाज के साप्ताहिक अधिवेशन में हम दोनों के भजन उपदेश हुए। पश्चात् समाज के आय व्यय के विषय में जानकारी प्राप्त की। दशांश आदि धन प्राप्त किया। मध्याह्न में स्त्री आर्य समाज के अधिवेशन में हम दोनों के उपदेश हुए। यहाँ से चलकर कुचामन नगर पहुँचा और यहाँ की समाज के स्तम्भ श्री सेठ मदनलाल जी पोद्दार से भेंट की। यह जानकर हर्ष हुआ कि श्रीमान्‌जी ने आ० स० के कार्यों में नियमानुसार पुनः भाग लेना आरम्भ कर दिया है। और समाज के साप्ताहिक अधिवेशन में वेद कथा किया करते हैं। रात्रि में समाज के आय व्यय का निरीक्षण किया। दशांश आदि धन प्राप्त कर प्रातः श्री सेठ सेवारामजी भँवर के परिवार में संध्या यज्ञ और वेदोपदेश किया। आपके छोटे २ बालक भी संध्या हवन के मंत्र सीखने का प्रयत्न करते हैं। यहां से चल कर मकराने आया। समाज के मंत्री श्री पं हरिप्रसादजी शर्मा से भेंट की। यहाँ का समाज कुछ उन्नत नहीं हो पाया। श्री शर्मा जी ने स्वयं सभा को आर्थिक सहायता प्रदान की और अपने प्रेमियों से भी ५०) रु० प्राप्त किये। यहाँ से मेड़ता आया और आ० स० के मंत्री श्री पं चतुर भुज जी आर्य से भेंट की। प्रातः श्री कु० राधा कृष्ण जी मंत्री के गृह पर एक विशेष यज्ञ किया और वहां वेदोपदेश किया। आप से समाज के दशांश आदि का धन प्राप्त कर २५ ता: को जोधपुर रात्रि में पहुँचा और प्रातः आ० स० रातानाडा के साप्ताहिक अधिवेशन में वेदोपदेश किया। उसी समय नगर आ०। स० गुलाबसागर के लिये प्रस्थान किया। वहां के अधिवेशन में भी उपदेश किया। इन दोनों समाजों के आय व्यय का निरीक्षण नहीं कर पाया। वह आगामी मास में देखूंगा। यहाँ से सूरसागर आ० स० में गया और समाज के मन्त्री श्री गंगासिंह जी आर्य से भेंट की। आपने १-२-६९ को दशांश आदि देने को कहा। २७ ता: को भावी पहुँचा और समाज के मंत्री श्री भँवरलालजी से भेंट की। यहाँ समाज–कार्य पनप नहीं पाया। दशांशमध्ये धन प्राप्त कर आ० स० पीपाड़ पहुँचा। यहां आ०स० का कार्य नियमानुसार भले प्रकार चल रहा है। आ० स० के उत्साही और लगन के श्री प्यारेलालजी आर्य और समाज के उपप्रधान कविवर श्री घमसारजी बड़ी ही लगन और उत्साह सहित कार्य कर रहे हैं। रविवार समाज के साप्ताहिक अधिवेशन भी बड़े समारोह पूर्वक होते हैं। और सायंकाल को नगर के भिन्न २ स्थानों में पारिवारिक सत्संग होते हैं। दोनों में उपस्थिति बहुत संख्या में होती है। नवयुवक और पिछड़े भ्राताओं में अच्छा प्रभाव पड़ रहा है। यहां से दशांश चित्र आदि प्राप्त कर पाली के लिये प्रस्थान किया। क्योंकि २।२ रविवार को प्रान्त की शिरोमणि आ० प्र० सभा की अंतरंग सभा थी। प्रान्त की समाजें वेद प्रचार की शिथिलता को अनुभव करती हैं। इसके लिये सभा प्रयत्नशील है। ओम् भक्त वानप्रस्थ उपमन्त्री सभा।

## दयानंद सेवाश्रम बांसवाड़ा द्वारा भील क्षेत्र में अराष्ट्रीय प्रचार निरोध कार्य

श्री स्वामी स्वतंत्रानन्द जी बांसवाड़ा क्षेत्र में सोत्साह प्रचार कार्य कर रहे हैं। उन्होंने गांव केवड़िया, कोटाग, सुरवानियां बीजल पुर, अगोरिया, बेडडू, परतापुर बड़वारा में प्रचार किया। बड़वारा में ७ व्यक्तियों के एक परिवार को वैदिक धर्म में दीक्षित किया। स्थान २ पंचायतों तथा सम्मेलन के द्वारा प्रचार किया जा रहा है।

## स्वामी काव्यानंद का प्रचार कार्य

स्वामी काव्यानंद जी सरस्वती आजकल अहमदाबाद तथा गुजरात प्रांत में वैदिक धर्म का प्रचार बड़ी धूम धाम से कर रहे है। संवाद दाता

## दयानंद विद्यालय अजमेर में विदाई समारोह

दि० ८ मार्च ६९ को दयानंद विद्यालय अजमेर के नवम् कक्षा के छात्रों ने दशम कक्षा के छात्रों की विदाई का समारोह आर्य प्रतिनिधि सभा राजस्थान के प्रधान श्रीमान पं० भगवान स्वरूप जी न्याय भूषण की अध्यक्षता में मनाया। इस अवसर पर को मान मोती लाल जी एडवोकेट उपप्रधान श्री पं० रमाशंकर जी शास्त्री, प० रामभजनजी मिश्र, लक्ष्मण सिंह जी पारख ने अपने उद्बोधन से छात्रों को प्रोत्साहन दिया। मुख्याध्यापकजी ने आशीर्वाद एवं धन्यवाद दिया। तथा कक्षा के श्रेष्ठ छात्रों को प्रमाण पत्र दिए गये। —संवाददाता

---

शेष पृष्ठ ४ का

इस पर तुरन्त कार्यवाही करने की सरकार से माग का।

कश्मीर की वर्तमान सादिक सरकार की साम्प्रदायिक नीति पर बोलते हुए उन्होंने कहा कि यह कितने दुःख की बात है कि हिन्दू कन्या परमेश्वरी हांडू के बलात् अपहरण का केस गत ५ अगस्त ६७ से चल रहा है, पर अभी तक एक बार भी परमेश्वरी हांडू का बयान अदालत में नहीं हुआ जो कानून की सर्वथा अवहेलना है। कश्मीरी पण्डितों के व्यापक आन्दोलन को कठोरता से दबा दिया गया। गजेन्द्र गड़कर की रिपोर्ट पर सरकार ने कोई कार्यवाही नहीं की। जम्मू तथा श्रीनगर में सरकार द्वारा दिए जा रहे राशन के भाव तथा मात्रा में जो भारी असमानता है, वह वास्तव में सरकार की मुस्लिम तुष्टिकरण की नीति का द्योतक है। यह भेदभाव का व्यवहार साम्प्रदायिकता को बढ़ावा दे रहा है।

उन्होंने दुःख के साथ सरकार का ध्यान आकर्षित किया कि जो कोहली कमीशन कश्मीर की अल्पसंख्यकों पर सरकार द्वारा किए गए अत्याचारों की जांच के लिए बिठाया गया था और जिसने अपनी रिपोर्ट सरकार को दे दी है, उसे सरकार ने अब तक प्रकाशित नहीं किया और नहीं उसे लोक सभा के पटल पर रखा गया। उन्होंने उस रिपोर्ट को तुरन्त प्रकाशित करने की मांग की जिससे सादिक सरकार की साम्प्रदायिक नीति और हिन्दूओं के प्रति किए गए अत्याचारों का पर्दा फाश हो सके।

सम्पूर्ण देश के लिए एक कोड बिल बनाए जाने की मांग करते हुए श्री शालवाले ने श्री नूरहसाही तथा भूतपूर्व विदेश मन्त्री श्री छागला द्वारा मुस्लिम बहुपत्नी प्रथा की आलोचना की चर्चा की। उन्होंने कहा कि टर्की, मिश्र, पाकिस्तान आदि मुस्लिम देशों में बहुपत्नी प्रथा बन्द है। ऐसा ही प्रस्ताव अलीगढ़ के मुस्लिम महिला सम्मेलन ने भी पारित कर सरकार से मुसलमान कानून में आवश्यक संशोधन करने की मांग की है। पर खेद है भारत सरकार मुस्लिम पक्षपातिता की शिकार होकर साम्प्रदायिक भावनाओं को बढ़ावा दे रही है।

# चहचाता बुलबुल उड़ गया !

(श्री उत्तम चन्द्र शर्मा)

"आर्य समाज का उद्यान सूना हो गया, इस में चहकने वाला बुलबुल उड़ गया।" इकबाल ने जीवन के पक्षी का वर्णन इस प्रकार किया था 'शाख पर बैठा कोई दम चहचहाया, उड़ गया।" यह दशा स्व. पं बुद्ध देव विद्यालङ्कार की रही। अन्तर इतना है कि इस बुलबुल के उड़ जाने पर भी उन के गीत कानों में गूंज रहे हैं, सारे उद्यान में गूंज रहे हैं. सच मुच उस ने अपने गीतों से कलियों को फूलों को खिलने पर विवश कर दिया था. उस के माधुर्य ने कलियों के हृदय में अरमान जगा दिये थे, और फिर यह बुलबुल फूलों और कलियों को ही नहीं, शूलों को भी तो प्यारा था, कितना मोहक था, उस का अंदाज और कितने रसीले थे उसके गीत !

पं० बुद्ध देव से मेरा परिचय बहुत पहले अपने गाव के आर्यसमाज के उत्सव पर हुआ, शास्त्रार्थों का युग था, उत्सव का वातावरण काफी गर्म होता था, कोई उत्सव शास्त्रार्थ के बिना सम्पन्न ही नहीं हो पाता था, इधर पौराणिक पंडितों को अपने संस्कृतज्ञ होने का घमंड मर्यादा से अधिक था। उत्सव में पं. जी के आने के साथ ही आर्यों के हृदय कमल खिल उठे। मेरा बचपन था पर आर्य समाज का प्यार पिछले संस्कार से खूब था। मुझे याद है, शास्त्रार्थ में पं. बुद्ध देव के धारा प्रवाह संस्कृत भाषण ने पौराणिक स्वयम्भू के अभिमान को चूर कर दिया और जब पंडित जी ने तर्क की बाण वर्षा की तो विरोधी को मैदान छोड़ने के सिवा चारा न रहा। बस उसी दिन से मेरे हृदय में पंडित जी के प्रति श्रद्धा का अङ्कुर फूटा, जो समय के साथ बढ़ता ही गया।

पं. बुद्ध देव जी की प्रतिभा का व्यक्ति तो भारत में ढूंढने पर शायद मिल पाये। वेद के मन्त्रों को अपनी मौलिक प्रतिभा के आधार पर जनता के सामने उपस्थित करना केवल और केवल उनका ही कार्य था, विरोधी तक उनकी प्रतिभा के सम्मुख नत-मस्तक होने में गौरव मानते थे। शिव, ब्रह्मा, विष्णु अलङ्कृत रूप में जिस योग्यता से वह उपस्थित करते थे, उसका उदाहरण कहीं मिल सकेगा। उनकी बात बात में मार्मिकता टपकती थी, उनकी सूझ निराली थी, जिसका कोई जवाब नहीं था !

गत वर्ष पानीपत में उत्सव पर आप पधारे. सौभाग्य से उस दिन कवि सम्मेलन था। हरयाणा के हिन्दी के राज कवि श्री हंस जी तथा अन्य अनेक ख्यातनामा कवि महानुभाव पधारे हुवे थे। ऐसे अवसर पर मेरी इच्छा हुई कि आज पं० जी को सम्मेलन का प्रधान पद प्रस्तुत कर उचित सम्मान भी किया जावे और उनके कवित्व से आनन्द भी उठाया जावे। मेरी प्रार्थना उन्होंने स्वीकार कर ली, और सच तो यह है कि उनके प्रधान बनने के साथ ही सम्मेलन सफल हो गया। समय समय पर कवियों की कविता की प्रशंसा वह इस अंदाज से करते थे कि स्वयं कवि की कविता से बढ़ कर आनन्द आता था श्रोता गण झूम झूम जाते थे। अन्त में उन्हें अपने काव्य प्रस्तुत करने की प्रार्थना की गई और फिर पं. जी ने स्वर से अपने गीत प्रारम्भ किये। हमारे राज कवि झूम के कह उठे, "सूर की आत्मा पं. जी में आगई है" और फिर बोले "मैं समझा था, आर्य समाज नीरस लोगों का समूह है पर यहा तो स्वयं रस का अवतार रस सिद्ध कवि विद्यमान् है। सचमुच उस दिन के आनन्द को कोई श्रोता भूल नहीं सकता।

संस्कृत के उद्भट विद्वान कवि हृदय पं बुद्ध देव शायद मेरे जैसे व्यक्तियों के हृदय में उतना शीघ्र स्थान न पाते, यदि उनमें एक और गुण विशेष न होता, और वह था उन का ऋषि भक्त होना। सचमुच गुरुकुल का सम्मान का कारण उन जैसे इने गिने व्यक्ति ही रहे हैं और पं जी उन में शिर मौर थे। उनको उक्ति थी "लाइला इल अल्ला दयानन्द रसूल अल्ला" ऋषि दयानन्द में उनकी अटूट श्रद्धा थी या कह लीजिये वे दयानन्दी थे। ऋषि दयानन्द के सिद्धान्त पर किसी बड़े से बड़े दिग्गज को वह शास्त्रार्थ की चुनौती साहस पूर्वक दे देते थे। महात्मा गांधी ने हरिजन उद्धार का कार्य आरम्भ किया, तो कुछ आर्य विद्वान, हरिजन शब्द पर आपत्ति लेकर गांधी जी के पास गये। मान्य पं. जी भी उनमें सम्मिलित थे। अन्य महानुभाव गान्धी जी से वार्तालाप करते रहे पं. जी मौन रहे। परन्तु पं. जी कुछ देर के पश्चात् विह्वल होकर गान्धी जी से बोले ? महात्माजी, मेरे साथी आप से बात-चीत इस प्रकार कर रहे हैं जैसे वह आपसे सम्मति लेने आये हैं, परन्तु मैं आप को सम्मति देने आया हूँ" इस एक ही वाक्य ने गांधीजी को चौंका दिया। और फिर पं० जी ने नये शब्द हरिजन के प्रयोग पर वह आपत्तियाँ उठाई कि गांधीजी निरुत्तर हो कर उठे। कितना बड़ा साहस था इस विद्वान् में और कितनी गहरी श्रद्धा थी ऋषि दयानन्द के प्रति जिसने पं० बुद्धदेव को पूर्ण रूपेण निर्भीक बना दिया था।

इसमें कोई सन्देह नहीं कि हर व्यक्ति जाने के लिये ही आता है, परन्तु पं० बुद्धदेव विद्यालङ्कार का निधन मां आर्यसमाज की गोदी सूनी कर गया है। यह वर्ष आर्य समाज के लिये कितना क्रूर रहा, निर्दयी काल ने हमसे प० रामचन्द्र देहलवी को छीना. उपाध्याय जी को जुदा किया, प० भगवत् दत्त को ले लिया और फिर आखरी करारी चोट पं० बुद्ध देव को लेकर की।

परमेश्वर आर्यसमाज को ऐसे सुयोग्य सपूत प्रदान करें और हम सदा सदा पूज्य प० जी के चरणचिन्हों पर चलते हुये आर्यसमाज की सेवा के लिये कृत सङ्कल्प हों यही स्वर्गीय की आत्मा की आकांक्षा थी, और इसी में ही हमारा तथा आर्यसमाज का कल्याण है।

### आर्य मार्तण्ड के नवीन आजीवन सदस्य

श्रीमान गोपी वल्लभ जी कोटा ने १०१) आर्य मार्तण्ड की आजीवन सदस्यता के प्रदान कर दिये हैं। एतदर्थ धन्यवाद। आशा है अन्य महानुभाव भी वचन प्रदत्त राशि शीघ्र भिजवाकर सभा को सक्रिय सहयोग प्रदान करने की कृपा करेंगे।

सम्पादक

## शोक !

पूज्य आप्तस्वामी सरस्वती (श्री लाड़ली-प्रसाद एडवोकेट अम्बाह)

का निधन

आर्य समाज अम्बाह जिला मुरैना के संस्थापक एवं डी. ए. वी. कनिष्ठ विद्यालय अम्बाह के जन्मदाता पूज्य आप्तस्वामी सरस्वती (श्री लाड़लीप्रसाद एडवोकेट) का दिनांक ११-२-६९ को उनके पुत्र श्री विश्वामित्र कम्ठान, मंत्री आर्य प्रतिनिधि सभा के निवास स्थान भोपाल में स्वर्गवास हो गया। स्वामी जी एक सफल वकील के रूप में जाने जाते थे। उनके न रहने से आर्य जगत को विशेष कर इस प्रान्त को विशेष क्षति हुई है। वे आर्य प्रतिनिधि सभा के प्रतिष्ठित अतरंग सदस्य भी थे।

उनके निर्देशानुसार उनकी अर्थी का संस्कार, उनके ही खेतों पर अम्बाह में, दि-२८-२ ६९ को पूर्ण वैदिक रीति से किया गया। जिसमें नगर की शोकातुर जनता ने अपने पूज्य स्वामी जी को जो 'दद्दाजी' के रूप में जाने जातेथे, अपनी श्रद्धाञ्जली अर्पित की। इस अवसर पर उनके परिवार के सभी सदस्य, पांचों पुत्र तथा दोनों पुत्रियों उपस्थिति थी। रु. ५०१) दान उनकी स्मृति में आर्यसमाज अम्बाह को दिया गया।

मंत्री आर्यप्रतिनिधि सभा, भोपाल

# अपने द्वारा अपना उद्धार करो

(श्री अनंतराव जी, अजमेर)

गंगा जमुनाजी के तट पर।
गोकुल मथुरा बंसी वट पर॥
नाहक होता क्यों हैरान !!
मिटाले मैल अरे ! नादान॥

संसार में धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष को प्राप्त करने के लिए सर्व प्रथम मनुष्य को स्वयं अपना उद्धार करना चाहिए। अपना उद्धार केवल मात्र दृढ़ संकल्प, श्रद्धा, विश्वास, पवित्र आचार व्यवहार से ही हो सकता है। आचरण को उज्ज्वल एवं पवित्र बनाकर दंभ, पाखण्ड से बचकर चलना ही एकमात्र मानव जीवन का कर्तव्य है। पैसा, भाई, चाकर, ठाट-बाट, हवेली इहलोक को सुखमय बना सकते हैं, किंतु पारलौकिक आनन्द को नहीं प्राप्त करा सकते। मानव जीवन का अन्तिम उद्देश्य परमानन्द एवं आत्मानन्द को प्राप्त करके अपना उद्धार तथा संसार का उद्धार करना है।

मन को मत भटका रे।
सकल मोह छिटका रे॥
प्रभु ही धीर बँधाये।
प्रभु ही हृदय लगायें॥

ज्ञानी भक्ति द्वारा अपने परमगुरु परमात्मदेव से यही प्रार्थना करता है कि हे भगवन्? संसार के भोग-लालसायें मुझ से कोसों दूर रहें। भोग की तीव्र अग्नी आन्तरिक शक्तियों को बाहर की ओर उँडेल देती है तथा बुद्धि बाधक वृत्ति हो जाती है। नाना प्रकार की कामनाएँ सात्विक वृत्तियों को नष्ट करके तामसिक वृत्तियों को जन्म दे देती हैं।

किसी को क्यों सताता है।
किसी को क्यों रुलाता है॥

गीता ने आत्मिक कल्याणों के लिए मनुष्य-मात्र को केवल मात्र अभ्यास एवं वैराग्य की ओर संकेत करते हुए कहा भी है

"अनेक जन्मसंसिद्धस्ततो यांति परांगतिम्" अर्थात् अनेक जन्मों के अभ्यास से उत्तम सिद्धि प्राप्त करके परमगति प्राप्त करते हैं। कहा है कि वर्षा ऋतु से पहले आमों में मिठास नहीं आती है। तो बस ! यही क्रम इस जीवन की साधना पर भी लागू होता है जीवन में अभ्यास के द्वारा ही सरसता एवं ऋद्धि-सिद्धि रूपी मिठास आती है। शास्त्र का कथन है कि वाणी और कर्म का एक होना ही महात्मा बनना है। मन, वचन, कर्म द्वारा मानव जीवन सरल, मधुर एवं पवित्र बनकर इस लायक हो जाता है कि वह अपने उद्धार हेतु परमात्मदेव के द्वार को खटखटा सकता है और परमात्म देव को भी शुद्धता एवं पवित्रता से बड़ा प्यार व स्नेह है। पवित्रता में भगवान् की बिना-तपस्या किये ही विराट् दर्शन हो जाते हैं। ऐसा क्यों ? क्या आपने कभी सोचा है? क्योंकि भगवान् स्वयं शुद्ध बुद्ध, मुक्त हैं। पवित्रता के निकट आने के लिए दुष्कर्मों एवं दुर्व्यसनों से अलग हटना पड़ेगा।

मानव-जीवन-सम्पत सारी।
खो विषयों में बना भिखारी॥
बाहर तूने ज्योति जलाई।
अन्दर घोर अँधेरा भाई॥

जैसे दो ईंटों के बीच में गारे और चूने की आवश्यकता पड़ती है, ठीक उसी प्रकार मानव जीवन में दृढ़ विश्वास और आशा की आवश्यकता पड़ती है, तभी मानव जीवन रूपी भवन का निर्माण हो पाता है। जहाँ आशा है, वहाँ निराशा कहाँ ? जहाँ चाह है, वहाँ राह है। जहाँ साधन है, वहाँ प्राप्ति भी अवश्य है। संगीत में गायन का आनन्द भी वहीं है, जहाँ साज-सामान तैयार हैं। जहाँ प्रेम, प्रीति है, वहाँ कुरीति नहीं है। स्वान्ताय सुख और आत्मोद्धार के लिए प्रेमी बनकर संसार के हर गुणों को अपने में धारण करने की अतुल साहस की आवश्यकता है। ऋग्वेद का कथन है कि

यजध्वानधमपवृक्ते चरित्रैः॥

अर्थात् चलने वाला पगों से मार्ग को समाप्त कर देता है। यात्रा में अनेक कष्ट भले ही आजायें किन्तु गन्तव्य स्थान की प्राप्ति तो मनुष्य को हो जाती है। उस मंजिल पर पहुँचकर अपने अनन्त दुखों को सुख में परिणित कर लेता है। प्रसन्नता उस लक्ष्य का स्वागत करती है तथा यात्री की यात्रा अन्त में खुशी में बदल जाती है।

संसार के अनेक मनुष्य मुसीबतों के कारण अपनी यात्रा को शुरू भी नहीं करना चाहते हैं, किंतु मानव को अपने लक्ष्य पर पहुंचने के लिए कुछ न कुछ तो प्रयास अवश्य करना ही पड़ता है। राह में अनेक प्रलोभन, आकर्षण, चिन्ता दुख भले ही आये, किंतु मनुष्य को हिम्मत नहीं हारना चाहिए कहा है :—

हिम्मते मर्दाँ।
मददे प्रभु॥

अथर्व वेद में अभय की कामना करते हुए कहा है कि

अभयं नो अस्तु॥ अथर्व० १६/१४/१

अर्थात् हमारे लिए अभय हो।

दुनियाँ वालों। मेरी बात ध्यान एवं प्रेम से सुनो। मैं दृढ़ता पूर्वक इस बात को कहता हूँ कि मनुष्य अपने द्वारा ही अपना उद्धार कर सकता है। कोई किसी के गठरी उतारने में सहायक अवश्य हो जाये किंतु गठरी तो राही को ही लेकर चलना है। मैं तो प्रेम व श्रद्धा का पुजारी हूँ तथा मैं विचारक और प्रचारक भी हूं। इस नाते अन्त में मैं यही कहना चाहता हूं कि संसार में धन ऐश्वर्य प्राप्त करो किंतु कैसे ? अग्निना करके धन रयिमश्नवत् ऋ० १। १। ३। अर्थात् पुरुषार्थकमाओ। हठ, दंभ, दुराचार, पापाचार को छोड़कर हम सब आत्मोद्धार हेतु:-ओ३म् क्रतो स्मर अर्थात् हे कर्मयोगिन्, ओ३म् का स्मरण कर। इस दिव्य मानव देह की सुन्दरता अपने को पहचानकर अपना उद्धार करने में ही है।

---

शेष पृष्ठ २ का

रोचक घटनाओं का वर्णन किया। किस प्रकार चतुर शास्त्रार्थकर्त्ता प्रतिपक्षी विद्वान् को उसी के द्वारा प्रस्तुत युक्तियों से परास्त करता है, यह हमारे लिये अत्यन्त मनोरञ्जक विषय था। खेद है कि उक्त घटनायें मैं लिपि बद्ध नहीं कर सका। अन्यथा वह शास्त्रार्थ नीति का एक अद्वितीय अध्याय होता।

वक्तृत्व कला

स्वामी समर्पणानन्द जी की अद्भुत कहा उनकी प्रचण्ड मेधा तथा अकल्पनीय तर्क शक्ति वस्तुतः स्पृहणीय थी। खेद है उन्होंने जितना मौखिक प्रचार किया, उसका शतांश भी वे लेख द्वारा कार्य नहीं कर सके। यदि वे एक स्थान पर बैठ कर शास्त्रों का भाष्य करने अथवा मौलिक ग्रन्थ रचना करते तो निश्चय ही आर्यसमाज का अधिक हित होता। यह और भी खेद की बात है कि आर्यसमाजों ने भी उनको अकसर अपने उत्सवों और सभा सम्मेलनों में आमंत्रित कर उन्हें लिखने के कार्य से वंचित रक्खा। इस कान से सुन कर उस कान से निकाल देने वाले आर्यों के लिये ऐसा करना स्वाभाविक ही था। परन्तु उससे आर्यसामाजिक साहित्य की कितनी क्षति हुई है, इसका अनुमान भी नहीं लगाया जा सकता। अब उनके निधन के पश्चात् उनके लिखित और प्रकाशित साहित्य को पुनः एकत्र कर उसे व्यवस्थित रूप में पुनः प्रकाशित करने की योजनायें तैयार हो रही है। इस महत्वपूर्ण कार्य में उनके सुयोग्य शिष्य आचार्य कृष्ण भी महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर रहे हैं। आशा है स्वामी समर्पणानन्द का अशेष मेधा सम्पन्न साहित्य ही उनके यशःशरीर का स्थायी स्मारक होगा।

चित्तौड़ गढ़ में—

# जौहर मेला यज्ञ पर्व

समस्त गणमान्य राष्ट्रप्रेमी सज्जनों से अपील है कि वीरभूमि चित्तौड़गढ़ में भारत के समस्त नागरिकों के लिये प्रेरणा स्थली रही है और इसी स्थली पर तीन बार शाके और जौहर हुए हैं अंतिम जौहर चैत्र वदी १२ संवत १६२४ को हुआ। इस महान् घटना को सजीव रखने हेतु कतिपय वर्षों से जौहर मेला मनाया जारहा है

आज जैसी राष्ट्र की विषम परिस्थिति में समस्त राष्ट्र को शौर्य साहस और बलिदान की आवश्यकता है, उतनी पहले कभी नहीं थी। राष्ट्र में आज राष्ट्रद्रोही और विघटनकारी प्रवृत्तियां बढ़ रही हैं जनमानस त्याग की अपेक्षा भोग विलास की ओर द्रुत गति से अग्रसर हो रहा है, निकटवर्तीय देश आज भी सैन्यशक्ति बढ़ाकर भारत को पराभूत करने की चेष्टा में है। ऐसी विषम परिस्थिति में चित्तौड़गढ़ का जौहर राष्ट्र का पथ प्रदर्शन करे इस आशय से वैशाख शुक्ला ७ तदनुसार दिनांक २४ २५, २६ अप्रेल सन् १६६६ को जौहर मेले का विशाल आयोजन करने का निश्चय किया है।

अतः प्रत्येक देश बन्धु से निवेदन है कि तन मन, धन से सहयोग देकर इस पर्व को सफल बनावें।

| अध्यक्ष | उपाध्यक्ष | संयोजक |
|---|---|---|
| सुदर्शनदेव | हेमेन्द्रसिंह | रघुनाथसिंह |
| श्रीमन्त महाराजाधिराज | श्रीमहाराजाधिराज | ठाकुर |
| शाहपुरा | बनेड़ा | बोहेड़ा |

## ॥ होनी थी सो होली ॥

( ले० प० भगवती प्रसादजी 'अभय' )

होनी थी सो कब की होली।
कोरी कर रहे आज ठठोली ॥
संध्या होली पूजा हो ली ईश्वर भक्ति होली।
मात पिता और गुरुजनों की सेवा पूरी होली ॥
भ्रष्ट बुद्धि सब होली ॥१॥
श्रद्धा होली सेवा होली, राति प्रीति की होली।
कलह कुसंग से आज देश की सूनी अटारी होली ॥
द्वेष की जल रही होली। २॥
दिन दूनी और रात चौगुनी महगाई हद होली।
भ्रष्टाचारी लोग कर रहे सदाचार की होली ॥
खेल रिश्वत से होली ॥३॥
पाप कर्म से बुद्धि होली भ्रष्ट भावना होली।
चिकने घड़े बूंद नहीं ठहरे 'अभय' की कविता होली ॥
हद कुकर्म की होली ॥४॥

### सामवेदी आर्य पाठशाला—जीवापुर

जीवापुर (टंकारा) में सामवेदी आर्य पाठशाला का रम्य भवन बन चुका है। वैशाख-पूर्णिमा से पाठ प्रारम्भ होगा।

'सत्यार्थप्रकाश'

पढ़ाने के लिये एक सुयोग्य वानप्रस्थ आर्य की अति आवश्यकता है। भोजन, निवास और प्रचार का सुप्रबन्ध होगा। विशेष जानने के लिये इस पते पर पत्र व्यवहार कीजिये।

वेदस्वामी मेधार्थीसरस्वती एम ए.
आचार्यसामवेदी आर्य पाठशाला-जीवापुर

(सौराष्ट्र)

### वार्षिक निर्वाचन

आर्य समाज गजनेर रोड, बीकानेर का वार्षिक निर्वाचन दि० १६/२ ६६ को श्री मदन मोहन शर्मा संगठन मन्त्री आर्य प्रतिनिधि सभा की अध्यक्षता में निम्न प्रकार सम्पन्न हुआ —

अध्यक्ष—श्री कन्हैयालालजी मिश्रा
उपाध्यक्ष—श्री बिट्ठल दासजी शर्मा
उपाध्यक्ष—श्री हेमराजजी माली
मन्त्री—रामलाल प्रजापति
कोषाध्यक्ष—श्री मानसिंह जी
पुस्तकाध्यक्ष—श्री नारायणजी

अंतरंग सदस्य —
श्री सेठ रामप्रतापजी
,, रामदेवजी वकील
,, गोपाल जी
परमानन्द जी
घूड़ारामजी

भवदीय
रामलाल
मन्त्री
आर्य समाज गजनेर रोड बीकानेर

### वार्षिकोत्सव

"आर्य समाज टमकोर का ५७ वां वार्षिकोत्सव मिती चैत्र शुक्ला ७, ८ ६, दिनांक २५ २६, २७ मार्च को हो रहा है, जिसमें ऋग्वेद पारायण महायज्ञ होगा। यज्ञ के यज्ञाध्यक्ष महात्मा विरक्त देवजी होंगे। यज्ञ का कार्य दिनांक २१ मार्च से प्रारम्भ होगा। इसलिए इष्ट मित्रों सहित आर्य जनता की उपस्थिति सादर प्रार्थनीय है।"
—मन्त्री

श्री पं० भगवानस्वरूपजी 'न्यायभूषण' के प्रबन्ध से वैदिक यन्त्रालय अजमेर में मुद्रित और ओम्प्रकाश वानप्रस्थ, सम्पादक प्रकाशक द्वारा दयानन्द आश्रम, केसरगंज अजमेर से प्रकाशित। अधिष्ठाता—श्रीमान् डा० भवानीलालजी भारतीय एम ए पी एच डी पाली।

आर्य प्रतिनिधि सभा राजस्थान का मुख-पत्र

पाक्षिक

रजि० नं० १४ जे

दयानन्द आदित्य से पाकर ज्योति प्रचण्ड। ध्वंस दम्भ पाखण्ड का करे आर्य्यमार्तण्ड ॥

वर्ष ४७ | वार्षिक मूल्य ५) रुपया | सम्पादक—श्री ओम्भक्त वानप्रस्थ ( रामसहाय शर्मा ) | अजमेर चैत्र शु० १४ सं. २०२६ वि., दि. १ अप्रैल ६६ दयानन्दाब्द १४५ | एक प्रति का २० पै० | अङ्क ३

# ईश्वर-प्रार्थना

अग्ने व्रतपते व्रतं चरिष्यामि,
तच्छकेयं तन्मे राध्यताम् !
इदमहमनृतात्सत्यमुपैमि ॥ य० १।५॥

महर्षिदयानन्द भाष्य,

व्याख्या :—हे सच्चिदानन्द स्व प्रकाशरूप ईश्वराग्ने ! ब्रह्मचर्य गृहस्थ, वानप्रस्थ, सन्यास आदि सत्य व्रतों का आचरण मैं करूँगा। सो इस व्रत को आप कृपा से सम्यक् सिद्ध करें। तथा मैं अनृत अनित्य देहादि पदार्थों से पृथक् हो के इस यथार्थ सत्य जिसका कभी व्यभिचार विनाश नहीं होता। उस विद्यादि लक्षण धर्म को प्राप्त होता हूँ। इस मेरी इच्छा को आप पूरी करें। जिससे मैं सभ्य विद्वान् सत्याचारणी हो आपकी भक्ति युक्त धर्मात्मा होऊँ !

## पद्यानुवाद

हे प्रभु अग्ने व्रतपते !
कृपा इतनी कीजिये।
चारु आश्रम सद् व्रतादि,
सिद्ध हो बल दीजिये ॥
जो अनित्य है मरण धर्मा;
सर्व देहादि पदार्थ।
पृथक हो इन से निरन्तर,
समझ फिर सत्य पदार्थ ॥
आपकी अनुपम कृपा से,
होऊँ मैं सद् धर्म-धारी।
सत्य भक्ति युक्त इच्छा,
कीजिए पूरण हमारी ॥

अम्बादान आर्य्य
कविकुटीर-कुरड़ायाँ (राज.)

वेदों तथा वैदिक धर्म के पुनरुद्धारक महर्षि दयानन्द सरस्वती



स्वामी जी के द्वारा स्थापित विश्व कल्याणी आर्यसमाज का स्थापना दिवस विश्व भर की आर्य समाजों ने चैत्र शु०१ सं. २०२६ वि० दि. १६ मार्च ६६ को बड़े समारोह तथा उल्लास से मनाकर कृण्वन्तो विश्वमार्यम् की प्रेरणा प्राप्त की।

## दिल्ली के महापौर वैदिक यन्त्रालय अजमेरमें

दिनांक २३ मार्च को दिल्ली नगर निगम के महापौर तथा परोपकारिणी सभा के प्रधान श्रीमान् डा० हंसराज गुप्त प्रातः काल अजमेर पधारे। आपने परोपकारिणी सभा के अधिवेशन में भाग लिया।

उसी दिन सायंकाल ५ बजे आपने वैदिक यंत्रालय अजमेर में नवस्थापित ब्लाक विभाग का उद्घाटन करते हुये यंत्रालय की उन्नति एवं समृद्धि की शुभ कामना की तथा यंत्रालय के सुयोग्य व्यवस्थापक श्री पं० सुरेन्द्र जी शर्मा के कार्य की सराहना की। साथ ही जनता से ऋषि की इस संस्था को सहयोग प्रदान करने की अपील की।

## प्रांत की समाजों को आवश्यक सूचना

प्रांत की समाजों की सेवा में सूचनार्थ निवेदन है कि—

१—सभा का वार्षिक अधिवेशन दि० १८, १६—मई ६६ को आबूरोड में आमंत्रित किया गया है। अतः समाजें अपनी सम्पूर्ण आय का दशांश, निश्चित कोटि राशि तथा वार्षिक चित्र अविलम्ब सभा कार्यालय में भेजने की कृपा करें। उन्हीं समाजों के प्रतिनिधि वैधानिक दृष्टि से अधिवेशन में मतदान के अधिकारी होंगे, जिनका दशांश तथा वार्षिक चित्र सभा कार्यालय में निश्चित समय तक पहुँच जायेगा।

२—प्रतिनिधियों के आगमन की संख्या सहित सूचना मन्त्री आर्यसमाज आबूरोड तथा इस सभा कार्यालय को शीघ्र ही भेजने का कष्ट करें।

३—आगन्तुक प्रतिनिधि महानुभाव यह भी ध्यान रखें कि आबूरोड रेल द्वारा आने जाने का वापसी टिकट ड्योढ़े मूल्य पर प्रत्येक रेल्वे स्टेशन से प्राप्त हो सकेगा अतः ड्योढ़े मूल्य में वापसी ( Return ) टिकट लेकर अवश्य लाभ उठावें।

—मन्त्री सभा

# भारत का इतिहास

## महर्षि दयानन्द की कसौटी पर

लेखक—श्री प० अमरकुमार जी शास्त्री, "साधु सोमतीर्थ" देहली

इस्लामी और अंग्रेजी शासन काल में भारत के इतिहास को बहुत अधिक तोड़ा मरोड़ा और बिगाड़ा गया था। भारतवासियों में पारस्परिक विद्वेष और हीन-भावनाओं के प्रसार के प्रयास भी इतिहास निर्माण या इतिहास-सुधार की आड़ में ही आरम्भ किये गये थे। महर्षि दयानन्द सरस्वती जी ने धार्मिक क्रान्त के कार्यक्रमों के साथ ही साथ, विदेशी कूट-नीतिज्ञों द्वारा इतिहास के नाम पर फैलाये गये विष के निवारण के उपाय भी बड़े विस्तार के साथ अपने ग्रन्थों में हमें बतला दिये हैं। महर्षि के मन्तव्य सम्बन्धित ऐतिहासिक तथ्यों के अनुसार और पुष्ट प्रमाणों द्वारा अनुमोदित हैं। उनके विचार से महर्षि के सुविस्तृत अध्ययन और अनुसन्धान का भी परिचय मिलता है। महर्षि जी ने जिन ऐतिहासिक व्यक्तियों का उल्लेख किया है, उनकी लौकिक स्थिति और मान-मर्यादा का भी उन्होंने पूरा-पूरा ध्यान रखा है। न तो उन्होंने किसी के महत्व को घटाया है और न ही किसी को अनुचित महत्व प्रदान किया है।

यह कैसे परिताप का विषय है कि स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद आज भी भारत में मिथ्या, कपोल-कल्पित, विद्वेष-वर्धक, अपमानजनक, हानिकारक और सर्वथाही निराधार बातों की शिक्षा इतिहास रूप में दी जा रही है। विदेशी वादों के माया जाल में उलझे हुए भारत के तथा कथित विद्वान् और सत्ता के भूखे प्रपंची राजनेता विदेशियों के फैलाये हुए ऐतिहासिक असत्यों के निराकरण की ओर यथोचित ध्यान न देकर, अपने-अपने दलगत स्वार्थों की सिद्धि में ही अधिक व्यस्त दिखाई दे रहे हैं। वे तो भाषावादों और प्रान्तीयता एवं साम्प्रदायिकता के भेदभाव को भड़का कर एवं ऐतिहासिक भ्रान्तियों को सत्य मान कर भी स्वार्थ-साधन में तत्पर हो रहे हैं शोक! महा शोक!! "सत्यार्थ-प्रकाश" के ऐतिहासिक तथ्यों को प्रकाशित करने एवं भारत की ऐतिहासिक धारा को नया मोड़ देने वाले कुछ उद्धरण आगे उपस्थित किये जा रहे हैं। जो अधिक जानकारी प्राप्त करना चाहें, वे मनोयोग पूर्वक महर्षि दयानन्द जी के ग्रन्थों का अवलोकन करें। अनुसन्धायकों को चाहिए कि वे अपने-अपने ग्रन्थों में ऐतिहासिक पक्षों का निरूपण और मूल्यांकन करते समय महर्षि द्वारा प्रतिपादित तथ्यों को भी अपने सामने रखें और सुयश प्राप्त करें।

### आर्यावर्त्त और आर्य

प्रश्न—मनुष्यों की आदि सृष्टि किस स्थल में हुई?

उत्तर—त्रिविष्टप अर्थात् जिसको "तिब्बत कहते हैं।

प्रश्न—आदि सृष्टि में एक जाति थी वा अनेक?

उत्तर—एक मनुष्य जाति थी पश्चात्—

विजानीह्यार्यान्ये च दस्यवः।

[ऋ० १। ५१। ८]

यह ऋग्वेद का वचन है। श्रेष्ठों का नाम आर्य्य, विद्वान्, देव और दुष्टों के दस्यु अर्थात् डाकू, मूर्ख नाम होने से आर्य्य और दस्यु दो नाम हुए।

उत शूद्रे उत आर्ये।

अथर्ववेद वचन। [१९।६२]

आर्यों में पूर्वोक्त प्रकार से ब्राह्मण क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र चार भेद हुए। द्विज विद्वानों का नाम आर्य्य और मूर्खों का नाम शूद्र और अनार्य्य अर्थात् अनाड़ी नाम हुआ।

प्रश्न—फिर वे यहाँ कैसे आये?

उत्तर—जब आर्य्य और दस्युओं में अर्थात् विद्वान् जो देव, अविद्वान् जो असुर, उनमें सदा लड़ाई बखेड़ा हुआ किया, जब बहुत उपद्रव होने लगा तब आर्य्य लोग भूगोल में उत्तम भूमि के खण्ड को जानकार, यहीं आकर बसे इसी से इस देश का नाम "आर्य्यावर्त" हुआ।

प्रश्न—आर्य्यावर्त की अवधि कहां तक है?

उत्तर में मनुस्मृति के दूसरे अध्याय के २२ वें और १७ वें श्लोकों को उद्धृत करके वे लिखते हैं—

उत्तर में हिमालय, दक्षिण में विन्ध्याचल, पूर्व और पश्चिम में समुद्र ॥१॥ तथा सरस्वती, पश्चिम में अटक नदी, पूर्व में दृषद्वती जो नेपाल के पूर्व भाग पहाड़ से निकल के बंगाल के आसाम के पूर्व और ब्रह्मा के पश्चिम होकर दक्षिण के समुद्र में मिली है जिसको ब्रह्मपुत्रा कहते हैं और जो उत्तर के पहाड़ों से निकल के दक्षिण की खाड़ी में अटक मिली है। हिमालय की मध्य रेखा से दक्षिण और पहाड़ों के भीतर और रामेश्वर पर्यन्त विन्ध्याचल के भीतर जितने देश हैं, उन सब को आर्य्या इस लिये कहते हैं कि यह आर्य्यावर्त देव अर्थात् विद्वानों ने बसाया और आर्यजनों के निवास करने से आर्य्यावर्त कहा या है।

प्रश्न—प्रथम इस देश का नाम क्या था और इसमें कौन बसते थे?

उत्तर—इसके पूर्व इस देश का नाम कोई भी नहीं था और न कोई आर्य्यों के पूर्व इस देश में बसते थे। क्यों कि आर्य्य लोग सृष्टि की आदि में कुछ काल के पश्चात् तिब्बत से सूधे इसी देश में आकर बसे थे।

प्रश्न—कोई कहते हैं कि यह लोग ईरान से आये और इसी से इन लोगों का नाम आर्य्य हुआ है। इनके पूर्व यहां जंगली लोग बसते थे कि जिनको असुर और राक्षस कहते थे। आर्य लोग अपने को देवता बतलाते थे और उनका जब संग्राम हुआ उस का नाम देवासुर-संग्राम कथाओं में ठहराया।

उत्तर—यह बात सर्वथा झूठ है क्योंकि—

विजनीह्यार्यान्ये च दस्यवो

बर्हिष्मते रन्धया शासदव्रतान्।

[ऋ० १। ५१। ८]

उत शूद्रे उतार्य ॥

[अथर्व० १९। ६२]

यह लिख चुके हैं कि आर्य नाम धार्मिक, विद्वान्, आप्त पुरुषों का और इनसे विपरीत जनों का नाम दस्यु अर्थात् डाकू दुष्ट, अधार्मिक और अविद्वान् है। तथा ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य द्विजों का नाम आर्य और शूद्र का नाम अनार्य्य अर्थात् अनाड़ी है। जब वेद ऐसे कहता है, तो दूसरे विदेशियों के कपोल कल्पित को बुद्धिमान् लोग कभी नहीं मान सकते। और देवासुर संग्राम में आर्य्यावर्त्तीय अर्जुन तथा महाराजा दशरथ आदि, हिमालय पहाड़ में आर्य और म्लेच्छ असुरों का जो युद्ध हुआ था, उसमें देव अर्थात् आर्यों की रक्षा और असुरों के पराजय करने को सहायक हुए थे इससे यही सिद्ध होता है कि आर्य्यावर्त के बाहर चारों ओर जो हिमालय के पूर्व आग्नेय, नैऋत्य, पश्चिम, वायव्य, उत्तर, ईशान देश में मनुष्य रहते हैं, उन्हीं का नाम असुर सिद्ध होता है। क्योंकि जब जब हिमालय प्रदेशस्थ आर्यों पर लड़ने को चढ़ाई करते थे, तब-तब यहां के राजा महाराजा लोग उन्हीं उत्तर आदि देशों में आर्यों के सहायक होते थे। और जो श्री रामचन्द्र जी से दक्षिण में युद्ध हुआ है, उसका नाम देवासुर संग्राम नहीं है। किन्तु उसको रामायण अथवा आर्य और राक्षसों का संग्राम कहते हैं। किसी संस्कृत ग्रन्थ में नहीं लिखा कि आर्य लोग ईरान से आये, और यहां के जंगलियों को लड़कर, जय पाये, निकाल, इस देश के राजा हुए। पुनः विदेशियों का लेख माननीय कैसे हो सकता है? और—

म्लेच्छवाचश्चार्यवाचः सर्वे ते दस्यवः स्मृताः ॥

[मनु० १। ४५]

म्लेच्छदेशस्त्वतः परः।

शेष पृष्ठ ७ पर

# आर्य मार्तण्ड

अजमेर चैत्र शु० १४ सं० २०२६ वि० दिनांक १ अप्रेल सन् १९६९



सम्पादकीय—

## गालिब शताब्दी समारोह का औचित्य

इस वर्ष देश में सर्वत्र उर्दू और फारसी के सुप्रसिद्ध महाकवि असदुल्ला खां गालिब का जन्मशताब्दी समारोह धूमधाम से मनाया जा रहा है। राजधानी में इस सम्बन्ध में मुशायरों, गोष्ठियों तथा अन्य साहित्यिक समारोहों की धूम है। इसमें कोई मतभेद नहीं हो सकता कि महाकवि गालिब उर्दू और फारसी के एक सशक्त एवं प्राणवान् कवि हुये हैं। उनकी कविताओं में काव्योचित गुणों की प्रचुरता है जिस पर किसी भी भाषा को उचित गर्व हो सकता है। परन्तु प्रश्न यह है कि क्या राजकीय स्तर पर एक ऐसे कवि का शताब्दी समारोह इतने विशाल पैमाने पर मनाया जाना उचित है जिसकी कविता का सामान्य देशवासियों के जीवन पर कोई उल्लेखनीय प्रभाव नहीं पड़ा हो! हमें गम्भीरता पूर्वक इस प्रश्न पर विचार करना पड़ेगा।

महाकवियों का जन जीवन और समाज पर अमिट प्रभाव पड़ता है। जिन कवियों ने भारतीय समाज की आशाओं, उमगों, अभिलाषाओं और आकांक्षाओं का चित्रण किया है वे हैं वाल्मीकि और व्यास, सूर और तुलसी, मीरा और कबीर। उत्तरी भारत की जनता के जीवन पर जितना प्रभाव इन संस्कृत तथा हिन्दी कवियों का पड़ा है उतना सम्भवतः अन्य किसी कवि का नहीं पड़ा। फिर यह सोचना होगा कि क्या इस देश की सरकार उपर्युक्त कवियों की स्मृति को अमिट बनाने के लिये भी लाखों रुपयों का बजट स्वीकार कर सकती है अथवा वह केवल गालिब की कविता के प्रचार और प्रसार के लिये ही कृत संकल्प है। गालिब की कविता की विशेषताओं को स्वीकार करते हुये भी इस प्रसंग में निम्न बातें कही जा सकती हैं। गालिब की कविता उर्दू के अतिरिक्त फारसी भाषा में भी लिखी गई है जो भारत के किसी भी भाग की मातृ भाषा नहीं है। यद्यपि गालिब ने उर्दू में भी कविता लिखी है और उर्दू को भारतीय भाषा स्वीकार करने में हमें तनिक भी विप्रतिपत्ति नहीं है, तथापि गालिब के काव्य की उर्दू भी अत्यन्त क्लिष्ट, अरबी, फारसी बहुल तथा प्रसाद गुण से शून्य है। अतः यह कहना नितान्त उचित ही है कि गालिब की कविता कुछ उर्दू फारसी पठित व्यक्तियों में भले ही लोक प्रिय हो तथापि वह देश के करोड़ों निवासियों के लिये लैटिन और ग्रीक की ही भांति दुर्बोध और अपरिचित है।

जिन लोगों ने गालिब काव्य का अध्ययन किया है वे इस बात की साक्षी देंगे कि इस काव्य में शृंगार रस की अतिशयता ने इसे अश्लीलता की सीमा रेखा तक पहुंचा दिया है। वैसे तो सामान्य उर्दू काव्य ही आशिक माशूकों की जुदाई और वस्ल के निर्लज्ज प्रलाप से परिपूर्ण है जिसमें वासनामूलक प्रवृत्तियाँ अपनी चरम सीमा पर पहुंच गई हैं, पुनः गालिब की कविता भी इसका अपवाद नहीं है। निश्चय ही उसमें उदात्त भावनायें भी हैं, वाग विदग्धता और काव्य चातुरी की भी कमी नहीं है, परन्तु उसे ऐसा काव्य तो कदापि नहीं माना जा सकता जो मनुष्य की भावनाओं का परिष्कार कर उसे उन्नत मानसिक स्थिति पर प्रतिष्ठित करने में सक्षम हो। पुनः उस साहित्य के सरकारी स्तरपर प्रचार प्रसार का क्या औचित्य है, यह सामान्य व्यक्तियों के समझ के बाहर की बात है।

फिर एक प्रश्न और है। यदि सरकार गालिब के व्यक्तित्व और कृतित्व को ही इतना महत्व देती है कि उसके प्रचार हेतु उसे २० लाख रुपये व्यय करने में भी कोई संकोच नहीं होता तो उससे भी पहले उसे हिन्दी, संस्कृत अन्य भारतीय भाषाओं के कवियों और साहित्यकारों के संदेश को लोकव्यापी बनाने का प्रयास करना चाहिये जिनकी कविता का संदेश अधिक व्यापक, उदात्त एवं लोक मंगल की भावना युक्त है। परन्तु तथाकथित धर्म निरपेक्षता का दम भरने वाले शासन के पास सूर, तुलसी, मीरा और प्रेमचंद के साहित्य का प्रचार करने के लिये सम्भवतः कोई योजना ही नहीं है। गालिब का दिल्ली स्थित मज़ार दूसरे ताज महल का वैभव और गौरव प्राप्त कर सकता है, परन्तु राजापुर में तुलसी स्मारक, अथवा कनकता ग्राम में सूरकुटी एवं प्रेमचंद के ग्राम में उस भारतीय समाज के अद्भुत चितेरे का कोई स्थायी स्मारक बनाने के लिये कुछ ईंटों का ढेर एकत्रित करने की क्षमता भी न तो हमारे शासकों में ही है और न जनता में ही।

फिर एक प्रश्न और भी है। जन्म शताब्दियाँ तो इन वर्षों में अनेक महापुरुषों की मनाई गई और अधिकांश का आयोजन सरकारी स्तर पर ही किया गया परन्तु जितनी धूमधाम गालिब समारोहों की है, उतनी न तो विश्वकवि रवीन्द्र नाथ की जन्म शताब्दी की रही और न विवेकानन्द, लाजपतराय आदि अन्य भारतीय समाज के प्रबुद्ध नेताओं के शताब्दी समारोहों पर ही धन का इतना निर्मम व्यय हुआ, जितना गालिब सम[illegible] हो रहा है। यह दूसरी बात है कि गांधी [illegible] उत्सवों पर करोड़ों रुपये व्यय किये जायेंगे। परन्तु इन रुपयों का भी सद्व्यय होना है अपना अपव्यय यह देखने की बात है।

खैर कुछ भी हो। सरकार चाहे २० लाख रुपये समर्पित करे, देशी और विदेशी गालिब के लिये गालिब काव्य के मर्मज्ञ विद्वानों की गोष्ठियों और चर्चाओं में चाहे गालिब की कविता की सूक्ष्म विवेचना हो परन्तु उससे भारत के जनमानस पर इस कवि का कोई अमिट प्रभाव पड़ेगा, ऐसा प्रतीत नहीं होता। गालिब की कविता में न तो राष्ट्रीयता का कोई स्वर है और न वह देश की आत्मा की पुकार ही है। ऐसी स्थिति में जिस व्यक्ति ने आजीवन अंग्रेजों की कृपा प्राप्त करने में ही अपना उत्साह प्रदर्शित किया जो स्वयं इस्लाम के नैतिक आदर्शों के प्रतिकूल सुरा सेवन में तत्पर रहा तथा जिसकी कविता हाला, प्याला साकी और शराब की प्रशस्ति में लिखी गई, वह भारतवासियों पर अपना क्या प्रभाव छोड़ सकता है इसका हम सहज ही अनुमान कर सकते हैं।

श्री डा० भवानीलालजी भारतीय

### श्री करण पुर में वेद धर्म प्रचार

आर्य प्रतिनिधि सभा राजस्थान के उपमन्त्री श्री ओम् भक्त जी वानप्रस्थ प्रान्त की समाजों का निरीक्षण और वैदिक धर्म का प्रचार करते हुए १ मार्च से ३ मार्च ६९ तीन दिन आर्य समाज मन्दिर में समाज के सुयोग्य पुरोहित श्री पं० जीवाराम जी शास्त्री के सद प्रयत्न से तीन दिन तक आपके वेदोपदेश हुए जिनका प्रभाव उत्तम रहा। आशा है कि [illegible]शी सभा इसी प्रकार अपने प्रचारकों को भेजकर प्रान्त में वेद प्रचार करवाती रहेगी।

शान्त शास्त्री

# आज हमारी समस्याऐं क्या हैं

( लेखक, पं बाबूलाल शर्मा, 'स्नेही,' अलवर गेट, अजमेर )
( सम्पादक का सहमत होना आवश्यक नहीं। )

हमारे देश में लोकतान्त्रिक पद्धति अपनाई गई है, जो इस पद्धति में, धर्म के नाम पर अल्पसंख्यक अथवा बहुसंख्यक की गणना करना कोई अर्थ नहीं रखती है। धर्म के नाम की आड़ ले आज देश में समता के मार्ग पर भारतवासी प्रगति करने में असमर्थ हो रहे हैं।

उत्तम बात तो यही प्रतीत होती है, कि लोकतान्त्रिक भारत में ऐसे संगठनों को जो धर्म के नाम पर बने हों, उनका राजनीतिक जीवन में प्रविष्ट न होने दिया जाय, चाहे वे हिन्दुओं के हों, मुसलमानों के हों, ईसाईयों के, बौद्ध, सिक्ख जैन आदि किसी के भी हों चूंकि ऐसा न होने से राजनीतिक आदर्शों की प्राप्ति लौकिक साधनों से कभी भी उपलब्ध नहीं हो सकती है।

यदि सोचा जाय तो धर्म तो प्रत्येक व्यक्ति का एक निजी मामला है, जिसका राजनीतिक सत्ता से कोई सरोकार नहीं है, क्योंकि राजनीतिक प्रणाली तो इस प्रकार की अपनाली गई है कि जिसका धर्म में कोई हस्तक्षेप न हो।

पर विडम्बना तो यही है कि जब लोग अलीगढ़ से मुस्लिम शब्द हटा देना चाहते हैं-पर बड़ी भारी आपत्ति खड़ी करते हैं। इन्हीं बातों से आज निरन्तर प्रतिक्रियायें उत्पन्न होती जा रही हैं और विभिन्न धर्मों के लोगों को एक स्थान पर आने से रोकती है।

आखिर इसका उपाय भी तो होना चाहिये, और वह उपाय सरलता से यह हो सकता है, कि शासन की ओर से एक ऐसा आचार संहिता बननी चाहिये जिसके फलस्वरूप कोई भय, आतंक या स्वार्थ राजनैतिक पदाधिकारी, अधिकारी और सत्ताधिकारी की ओर से जनता के समक्ष न आ सके और जिससे किसी प्रकार का कोई उपद्रव न उठ खड़ा हो।

आज हम आजाद होकर भी, लोकतान्त्रिक व्यवस्था के हामी होकर भी, उन्हीं समस्याओं को दुहरा रहे हैं जो समस्यायें साम्प्रदायवाद से उत्पन्न होती थीं। देश में वर्तमान में, राजनीतिक पार्टियां भी इसी दलदल में फंसी हुई हैं जब कि हमें विभाजन के बाद में तो इस से कतई दूर हो जाना चाहिये था।

आज देश में यदि गौर किया जाय तो हमारी वास्तविक समस्यायें धार्मिक नहीं हैं। जो जटिल समस्यायें हैं वे तो आर्थिक और राजनीतिक ही हैं। धर्म और संस्कृति शोर तो केवल इन समस्याओं के समाधान के लिये नहीं बल्कि लोगों को गुमराह करने या इनको ओझल करने के लिये मचाया जाता है।

ज्ञान, संयम और सेवाओं की भावनाओं को विवेक के अंकुश में रखने से ही हमारे आचरण, और नियतें सुधरेंगी और वह तभी संभव होगा जब कि हम चरित्र बल धारण करें बगैर चरित्र बल के तो मनुष्य, मनुष्य कहलाने का ही अधिकारी नहीं है, यही वैदिक शिक्षा है, और जिसका अनुसरण करना ही हमारी प्रधान कसौटी है और इसी से देश का उदय होगा वरना सब मिथ्याचार और आडम्बर ही होगा।

## शीघ्र आवश्यकता है।

राजस्थान प्रांत में वैदिक धर्म के प्रचारार्थ योग्य, अनुभवी, संगीतज्ञ भजनोपदेशकों की शीघ्र आवश्यकता है, जो अपनी योग्यता तथा अनुभव से ग्रामों तथा नगरों में प्रभावशाली प्रचार कर सकें। अनुभव योग्यता के प्रमाण पत्रों सहित आवेदन पत्र शीघ्र आमंत्रित किये जाते हैं।

मन्त्री श्री करण शारदा
आर्य प्रतिनिधि सभा राजस्थान
कैसर गंज, अजमेर

## श्री गंगानगर में वेदोपदेश

श्री पूज्य स्वामी शिवानन्द जी महाराज आयुर्वेदालंकार गुजरात वाले ने और मैंने आर्य समाज श्री गंगानगर में पवित्र वैदिक धर्म का प्रचार २२-२-६९ को समाज के साप्ताहिक अधिवेशन में वेदोपदेश किया। इससे पूर्व आप के विगत मास में बड़े ही हृदयग्राही वेदोपदेश हुए। जनता पर उत्तम प्रभाव पड़ा। साथ ही कई रोगियों ने आपकी चिकित्सा से लाभ उठाया।

ओमभक्त वानप्रस्थ

## आर्यसमाज पीलीबंगा में वेद कथा

दि ५-२-६९ बुधवार से १६-२-६९ तक आर्य समाज मन्दिर में श्रीमान् स्वामी शिवानन्द जी महाराज आयुर्वेदालंकार के बड़े ही महत्वशाली वेदोपदेश हुए जिनको सुन कर लोगों ने वेदों के महत्व को समझ पाया। साथ में कई असाध्यरोगियों ने भी आपकी चिकित्सा से लाभ उठाया। श्री स्वामी जी महाराज को ५१) रु. समाज की ओर से भेंट किये वे आपने समाज को ही भेंट कर दिये।

मन्त्री रामकृष्ण आर्य आर्य समाज

## आर्य्य समाज नागौर की ओर से नगर के मोहल्लों-२ में धर्मोपदेश

आर्य प्रतिनिधि सभा के भजनोपदेशक श्री प० भगवती प्रसादजी "अभय" मिष्ठित कोटिपन एवं दशांश प्राप्त करने यहाँ पधारे। आपके आगमन के सद् उपयोग की दृष्टि से तीन दिन तक मोहल्ला-जैरवाड़ी, भगतवाड़ा में दि.१४-३-६९ से १६-३-६९ तक भिन्न-२ विषयों पर भजनोपदेश हुये उपस्थिति आशा से अधिक थी। आपके भजनोपदेश का प्रभाव इतना अच्छा रहा कि, मोहल्ले-२ से प्रचार निमित्त मांग आती रही।

भगतावाड़ी में आर्य जन कु० भागीरथ जी स्वर्णकार एवं बाजरवाड़ा में आर्य सदस्य श्री रामलालजी स्वर्णकार की ओर से प्रचार व्यवस्था थी इसलिये समाज की ओर से उक्त महानुभावों को धन्यवाद दिया गया।

दि. १६-३-६९ को साप्ताहिक सत्संग के प्रातकालीन यज्ञ में यजमान पद श्री कुन्दन लाल जी पीती प्रधान श्री करणपुर आर्य समाज ने सपत्नि के ग्रहण किया आचार्य पद पर पं० अभय जी थे।

## डा० भवानीलाल भारतीय के शोध ग्रन्थ का विमोचन समारोह

दि १६-३-६९ को प्रात: काल-आर्य समाज सरदारपुरा जोधपुर में सुप्रसिद्ध वैदिक विद्वान् डा फतहसिंह जी के कर कमलों द्वारा डा. भवानीलालजी भारतीय लिखित शोध ग्रन्थ 'ऋषि दयानन्द और आर्यसमाज की संस्कृत साहित्य को देन' का विमोचन समारोह सम्पन्न हुआ। प्रारम्भ में सभा के प्रधान पं. भगवान् स्वरूपजी न्याय भूषण, शोध ग्रन्थ के निर्देशक डा. ब्रह्मानन्दजी शर्मा; अध्यक्ष संस्कृत विभाग गवर्नमेंट कालेज, अजमेर, पं उदयवीरजी शास्त्री, डा. मथुरालालजी शर्मा, पं धर्मदेवजी विद्यामार्तण्ड एवं डा सुधीरकुमार गुप्त आदि के शुभकामना संदेश पढ़े गये जिनमें शोध ग्रन्थ के व्यापक महत्व का संकेत किया गया था। डा फतहसिंह ने अपने विद्वत्तापूर्ण उद्घाटन भाषण में आर्यसमाज के साहित्य की स्थिति पर प्रकाश डालते हुये इस बात पर सन्तोष प्रकट किया कि डा. भारतीय के इस शोध ग्रन्थ द्वारा आर्यसमाज की संस्कृत भाषा एवं साहित्य की सेवाओं का विस्तृत मूल्यांकन हुआ है। इस अवसर पर जोधपुर की आर्यसमाजों की ओर से प्रसिद्ध वैदिक विद्वान पं युधिष्ठिरजी मीमांसक का स्वागत एवं अभिनन्दन किया गया। सभा का संचालन आर्य समाज सरदारपुरा के उत्साही एवं नवयुवक मंत्री श्री हरेन्द्रकुमारजी गुप्त ने किया।

—संवाददाता

# साहित्य समालोचना

पण्डित सातवलेकर जीवन प्रदीप-मू-ले० पुरुषोत्तम पाण्डुरंग गोखले अनु० श्रुतिशीलशर्मा एम० ए० प्रकाशक-उषा प्रकाशन, पारडी मूल्य १० रु०

स्व० पं० श्रीपाद दामोदर सातवलेकर वेदों के मर्मज्ञ विद्वान् थे। शताधिक आयु प्राप्त कर गत वर्ष ही उन्होंने परलोक वास किया है। अपने जीवन के प्रारम्भिक काल में चित्रकार के रूप में उन्होंने ख्याति अर्जित की परन्तु शीघ्र ही वे वेद के ओजस्वी तेजस्वी और क्रान्तदर्शी शिक्षा से प्रभावित हुये और उसके पश्चात् वे जीवन पर्यन्त श्रुति साधना में संलग्न रहे। उन्हीं पण्डित सातवलेकर जी की स्फूर्तिदायक एवं प्रेरणादायी जीवनी मराठी के प्रसिद्ध लेखक श्री गोखले ने लिखी है कि उसी जीवनी का हिन्दी अनुवाद सातवलेकर जी के सहयोगी और वैदिक धर्म के सम्पादक पं० श्रुतिशील शर्मा ने किया है। सातवलेकर जी का कार्य क्षेत्र कितना व्यापक रहा और अपने ग्रन्थों के द्वारा उन्होंने वेदों के राष्ट्र आराधना एवं मानव जीवन को सफल बनाने वाले सूत्रों को निबद्ध करने वाले कार्य किये हैं यह इस जीवनी से ज्ञात होता है। जीवनी में सातवलेकर जी की जीवन घटनाओं का विवरण देने के साथ साथ उनकी विचारधारा का भी विश्लेषण किया गया है। यद्यपि सातवलेकर जी की वैदिक विचारधारा महर्षि दयानन्द के विचारों से ही प्रभावित थी तथापि वे आर्यसमाज के संगठन से कतिपय कारणों से पृथक् हो गये थे। उनका वेद की अपौरुषेयता में विश्वास नहीं रहा था। और वे वेदों को ऋषिकृत मानने लगे थे। आर्यसमाज से पृथक् रह कर भी उन्होंने वेद की विश्व ख्याति के लिये जो महान् कार्य किया यह उनकी कर्मठता तथा वेद विषयक निष्ठा का द्योतक है। उन्हें भारत सरकार ने पदम भूषण जैसी सम्मानास्पद उपाधि से विभूषित किया गया तथा वैदिक साहित्य विषयक उनके कार्य की प्रभूत प्रशंसा हुई। पं० सातवलेकर जी के विभिन्न चित्रों तथा उनके स्वयं निर्मित कतिपय चित्रों ने इस ग्रन्थ की विशेषता में और भी वृद्धि कर दी है। ग्रन्थ पठनीय और संग्रहणीय है।

आत्मानन्द जीवन ज्योति-ले० स्वामी वेदानन्द वेदवागीश। प्रकाशक हरयाणा साहित्य संस्थान, गुरुकुल झज्जर' मूल्य १० रु०

स्वामी आत्मानन्द सरस्वती आर्यसमाज की दिव्य विभूति थे। मुक्तिराम उपाध्याय के नाम से उन्होंने दर्शन शास्त्र के अद्वितीय विद्वान् के रूप में ख्याति अर्जित की। देश विभाजन से पूर्व वे रावलपिंडी के निकट गुरुकुल चोहा भक्तां का संचालन करते थे। देश विभाजन के पश्चात् वैदिक साधन आश्रम यमुना नगर की स्थापना कर उन्होंने उपदेशक विद्यालय की स्थापना की पंजाब के हिन्दी रक्षा आन्दोलन का समर्थ नेतृत्व कर उन्होंने राष्ट्रीय ख्याति अर्जित की। यदि वे अपने जीवन का अन्तिम भाग आन्दोलनात्मक कार्यों में न लगा कर यदि वेदादि शास्त्रों के अध्यापन तथा ग्रन्थ निर्माण में लगाते तो सम्भवतः आर्यसमाज का अधिकहित होता परन्तु राष्ट्रभाषा पर आसन्न संकट को देख कर वे कार्य क्षेत्र में कूद पड़े। उन्हीं पुण्यश्लोक स्वामी आत्मानन्द जी की जीवनी स्वामी वेदानन्द जी वेद वागीश जैसे सफल लेखक की लेखनी से लिखी गई है। लेखक ने इस जीवनी में संस्कृत व्याकरण के कतिपय नियमों को हिन्दी में प्रयुक्त करने का सफल प्रयोग किया है। 'व्यक्ति' शब्द संस्कृत में स्त्रीलिंग है और हिन्दी में पुल्लिंग। आलोच्य ग्रन्थ में यह स्त्रीलिंग में ही प्रयुक्त हुआ है। इसी प्रकार स्टेशन के लिये स्थान. रेलगाड़ी के लिये संदान प्लेटफार्म के लिये मंच आदि शब्द प्रयुक्त हुये हैं। स्वामी आत्मानन्द जी महाराज की यह जीवनी प्रत्येक आर्य तथा हिन्दी प्रेमी के लिये पठनीय है।

सरुचे गुरु और पारखी-ले० स्वामी वेदानन्द वेद वागीश प्र० हरयाणा साहित्य संस्थान गुरुकुल झज्जर मूल्य-३ रुपये।

महर्षि दयानन्द द्वारा प्रतिपादित शिक्षा सिद्धान्तों का अनुसरण करते हुए पुरातन शास्त्रों की शिक्षा आर्ष पद्धति के अनुसार प्रदान करने वाले गुरुकुलों में गुरुकुल झज्जर का अन्यतम स्थान है। उसकी स्थापना अर्द्ध शताब्दी से भी अधिक समय पूर्व की गईथी। त्याग और तपस्या की मूर्ति आचार्य भगवान्देव जी के मार्ग दर्शन में गुरुकुल नेअभूतपूर्व उन्नति की है। आज इस गुरुकुल में वेदादि शास्त्रों के शिक्षण के साथ साथ इतिहास, पुरातत्व आदि विविध विषयों के अनुसंधान और शोध की भी व्यवस्था है। इसी गुरुकुल की स्थापना और उसके विकास की कहानी एक रोचक कथानक के रूप में स्वामी वेदानन्द जी ने लिखी है। हरयाणा की वीर भूमि महर्षि दयानन्द की शिक्षाओं के लिये अत्यन्त उर्वरा सिद्ध हुई है। इसी भूमि में स्थापित गुरुकुल झज्जर अपने बृहत पुस्तकालय, अद्भुतालय, शिक्षण संस्थान, गौशाला, कृषि भूमि आदि के कारण आर्यसमाज की शिक्षण संस्थाओं में अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान रखता है। यह ग्रन्थ गुरुकुल की स्वर्ण जयन्ती के उपलक्ष्य पर प्रकाशित हुआ है। किसी संस्था का इतिहास भी रोचक कथा प्रधान शैली में लिखा जा सकता है यह ग्रन्थ इस बात का उदाहरण है। —डा० भवानीलाल भारतीय

## जोधपुर की आर्य समाजों के संयुक्त तत्त्वावधान में ऋषि बोधोत्सव—

आर्यसमाज सरदारपुरा जोधपुर का वार्षिकोत्सव तथा जोधपुर नगर की आर्यसमाजों के संयुक्त तत्वावधान में आयोजित ऋषि बोधोत्सव दि० १५-२-६९ से २४-२-६९ तक अत्यन्त हर्ष और उल्लास पूर्ण वातावरण में गांधी मैदान सरदारपुरा में निर्मित विशाल पण्डाल में मनाया गया। प्रारम्भ के चार दिन तक पं० सत्यप्रिय शास्त्री तथा डा० भवानीलाल भारतीय के संयुक्त तत्त्वावधान में राष्ट्रभृत यज्ञ होता रहा जिसमें अथर्ववेदीय पुरुषसूक्त के मंत्रों पर आघृत आहुति कर्म होता रहा। पश्चात् यज्ञ का नेतृत्व आर्यसमाज के प्रसिद्ध वाग्मि आचार्य कृष्ण के द्वारा सम्पन्न हुआ। इस अवसर पर आर्य प्रतिनिधि सभा, राजस्थान के भूतपूर्व अध्यक्ष डा० मथुरालाल जी शर्मा, आर्यप्रतिनिधि सभा राजस्थान के उपमंत्री डा० भवानीलाल भारतीय तथा आचार्य कृष्ण एवं पं० सत्यप्रिय जी के व्याख्यान होते रहे। डा० मथुरालाल जी ने भारतीय इतिहास का विवेचन करते हुये महर्षि दयानन्द और आर्यसमाज के देश निर्माण के योगदान पर प्रकाश डाला' डा० भवानीलाल भारतीय ने ऋषि दयानन्द और बोधरात्रि ऋषि दयानन्द और यज्ञ पद्धति भारतीय नवजागरण में आर्यसमाज की स्थिति आदि महत्त्वपूर्ण विषयों पर वक्तृतायें दीं। कार्यक्रम के संयोजक श्री हरेन्द्र कुमार गुप्त तथा उनके सहयोगियों की व्यवस्था प्रशंसनीय रही। दि० १६-३-६९ को नगर कीर्तन आयोजित किया गया। —संवाददाता।

## शाहपुरा में होलिकोत्सव

आर्यपर्व पद्धति के अनुसार आर्य समाज भवन में होलीकोत्सव मनाया गया विशेष यज्ञ के पश्चात स्वामी आत्मानन्द जी ने होली के वैदिक म [illegible] पर प्रकाश डाला श्री सोहनलाल जी शारदा ने इसी संबन्ध में ओज पूर्ण विवेचन किया-शान्ती पाठ के बाद सभा विसर्जन हुई।

रामस्वरूप वैली
मंत्री आर्य समाज शाहपुरा

## भूल सुधार

गत "आर्य मार्तण्ड" में श्रीमद्दयानन्द महिला शिक्षण केन्द्र शाहपुरा के मंत्रीश्री अम्बालाल जी की ओर से अपनी पुत्रियो के विवाह संस्कार के उपलक्ष में आर्य समाज शाहपुरा के ११) महिला शिक्षण केन्द्र के ११) आर्य प्रतिनिधि सभा का ५) एवं वर पक्ष की ओर से महिला शिक्षण केन्द्र को ११) प्रदान किये थे भूल से अम्बालाल जी के स्थान पर भँवर लाल जी प्रकाशित हो गया था।

सम्पादक

# ओ३म्

# मधुबन शहीद स्मारक

के लिये

आजमगढ़ जिले से एक लाख रुपया और दो हजार मन अन्न एकत्र करने का

## शुभ संकल्प

वेद मन्दिर निर्माण समिति मधुबन आजमगढ़ (उत्तर प्रदेश) (भारत) के मन्त्री श्री वेद-पथिक प० धर्मवीर जी आर्य झण्डाधारी ने आर्य समाज आजमगढ़ के उपदेशक में बतलाया है कि मुगल काल से लेकर अब तक की महाक्रांतियों में देश धर्म की रक्षा हित मर मिटने वाले शहीदों के स्मारक के लिये देश और विदेशों के प्रवासी भारतीय भाई बहनों से पांच करोड़ रुपया एकत्र करने का शुभ संकल्प शिवरात्रि के पावन पर्व पर वेद मन्दिर निर्माण समिति ने किया है।

श्री वेद पथिक जी ने यह भी बतलाया है कि दो हजार मन अन्न और एक लाख रुपया इस वर्ष आजमगढ़ जिले के कृषकों और दान वीरों से एकत्र करने का संकल्प किया गया है।

श्री झण्डाधारी जी ने कि शहीदों के स्मारक के लिये शिलान्यास के लिये भारत के प्रधान मन्त्री श्रीमती इन्दिरा गांधी जी को निमन्त्रित किया गया है।

यह ज्ञातव्य है कि शहीदों का स्मारक एक सौ गज वर्ग गोलाकार चार वेद छः शास्त्रों के नाम से दस मंजिलों का संगमरमर से निर्मित होगा।

देश धर्म पर जीवन अर्पित करने वाले भारत माता के सपूतों के संगमरमर पर चित्र और उनके जीवन की अमर गाथायें स्वर्णाक्षरों में अंकित की जायेगी।

वेद मन्दिर और चौरासी खम्भों की संगमरमर की यज्ञशाला और शहीदों का दिव्य दर्शनीय भव्य ऐतिहासिक स्मारक तीन लाख रुपयों से निर्मित तिनलखा सागर के बीच पानी में महर्षि दयानन्द धाम नत्थूपुर मधुबन आजमगढ़ उत्तर प्रदेश (भारत) में बनेगा।

## विचित्र चित्र, चित्रण

१—तिनलखा सागर की पूर्व दिशा में वेदविश्वविद्यालय निर्माण होगा।
२—पश्चिम दिशा में महर्षि दयानन्द आर्य उपदेशक महाविद्यालय का निर्माण होगा
३—उत्तर दिशा में आर्य कन्या महा विद्यालय का भव्य भवन बनेगा।
४—दक्षिण दिशा में सुखसागर धर्मार्थ औषधालय।
५—शारदा पुस्तकालय। ६—महर्षि दयानन्द सेवा आश्रम।
७—मातृ मन्दिर नारी निकेतन आदि भव्य भवनों का दिव्य दर्शनीय निर्माण होगा।

श्री वेद पथिक जी ने अन्त में बतलाया कि धर्मवीर ग्रन्थ माला के सैकड़ोंसाहित्य सुमनों

की बिक्री सेपच्चीस लाख रुपया शहीद स्मारक निधि में देने का निश्चय महर्षि दयानन्द धाम नत्थूपुर मधुबन में शिवरात्रि के पावन पर्व पर किया गया है। कम से कम १०१) दान देने वाले दान वीरों के नाम शहीद स्मारक में संगमरमर पर अंकित करने का निश्चय किया गया है।

यह ज्ञातव्य है कि एक लाख आहुतियों से यज्ञ कराकर श्री वेद पथिक प० धर्मवीर जी आर्य झण्डाधारी मन्त्री वेद मन्दिर निर्माण समिति ने १० जून १९६८ को पचास हजार रुपयों का अपना सुन्दर आम का बाग तिनलखा सागर पर आर्य कन्या महाविद्यालय के लिये दान प्रदान कर चुके हैं। अपने शुभ दान की रकम कोषाध्यक्ष वेद मंदिर निर्माण समिति महर्षि दयानन्द धाम मधुबन जि० आजमगढ़ उत्तर प्रदेश (भारत) के नाम आज ही भेजें।

प्रकाशक—युद्धवीर आर्य, उप मन्त्री—वेद मन्दिर निर्माण समिति

# "भावना के भूत और मूर्खता की पराकाष्ठा"

प्रिय बन्धुओं,

पाखण्ड जाल से स्वयं को बचाओ और दूसरों को सावधान करो, क्योंकि प्रायः देखा जाता है कि भावुक भक्त भगवान का नाम स्मरण करने हेतु कुछ मन्त्र या राम-सीता आदि पोस्टकार्ड पर लिखकर अपने परिचित परिवारों के नाम से ११ या २१ जगह पत्र भेज देते हैं और उन्हें संकेत करते हैं कि तुम भी २१ जगह ऐसा करने को लिखो, तुम्हें यह लाभ होगा अन्यथा घोर पाप में पड़ोगे।

अभी इन्हीं दिनों मेरे पास भी इसी प्रकार का पोस्टकार्ड आया, बिना हस्ताक्षर का, उसमें लिखा था कि मुझे रात्रि में अमुक माता ने दर्शन दिये हैं और कहा है कि माता का सन्देश वह १६ घरों में पहुंचाये। इस पत्र का एक ने पालन नहीं किया। उसको बहुत नुकसान हुआ और उसका पुत्र मर गया। एक सज्जन ने इस पत्र की आज्ञा को माना और उसकी बांझ स्त्री के पुत्र हो गया और ५०००) रुपये घर में एकाएक आ गये। इस मूर्खता की कोई सीमा है ? बिना पुरुषार्थ और पुरुषत्व के सब कुछ मिलने का प्रलोभन ऐसे अनर्गल जनता को भ्रम में डालने वाले झूठे पत्रों के सन्देशों से सावधान रहना चाहिये। कि मालूम पड़ने पर अपने मित्रों को बहनों को इस पाखण्ड से सचेत करेंगे। परमात्मा की सच्ची भक्ति नाम स्मरण अवश्य करें पर झूठे पत्रों द्वारा धन का अपव्यय नहीं करना चाहिये। इसी प्रकार से संतोषी माता के व्रत के नाम से बहाई (मुस्लिम) धर्म के प्रचार से सावधान रहें। वर्तमान में अन्य कई प्रकार के ठग नये नये पंथ चलाकर, भाविक धार्मिक भोली जनता को गुमराह कर गुरुडम फैलाकर सत्य सनातन वैदिक धर्म से विमुख करने का प्रयत्न यह पाखण्डी अपना पाखण्ड फैला रहे हैं इसमें विशेषतया महिलायें व अज्ञानी लोग हैं इनके पाखण्ड जाल में फंसकर अपने भारतीय संस्कृति व वैदिक परम्परा से दूर होते जा रहे हैं यह अत्यन्त दुखदाई दृश्य है।

वास्तविक मानव को सच्चा सुख और शान्ति प्रदान करने वाली वेदमाता गायत्री माता के जप तप आदि का फल धर्म अर्थ काम मोक्ष की प्राप्ति का साधन पीछे पृष्ठ में पढ़कर अपने घरों के पूजा स्थानों में फ्रेम कराकर रखें और प्रतिदिन सायं प्रातः पठन कर अपने परिवार को स्वर्गधाम बनाइये।

# आर्य समाज के सार्वभौमिक दशनियम :--

पद्यानुवाद :—

सत्य विद्या वा पदार्थ विद्या से
जो जाने — जाते है।
आदि मूल उन्ह सब का ईश्वर
सो हो — माने — जाते है॥
अनादि अनुपम सर्वाधार।
"स्वप्न ऋषिका हो यह साकार॥ १॥

अजर अमर सर्वान्तर्यामी,
पावन सृष्टि कर्त्ता।
वही उपासना योग्य एक है,
अभय त्रिलोकी भर्त्ता॥
सर्वव्यापक निभ्रान्ति अपार।
स्वप्न ऋषिका हो यह साकार॥ २॥

वेद सर्व सत्य विद्या के
पुस्तक परम महान।
पढ़े पढ़ावे सुने – सुनावे
किंचित नहीं अलसात॥
आर्यजन परम धर्म उरधार।
स्वप्न ऋषि का हो यह साकार॥ ३॥

सत्य बात ग्रहण करने मे
देर निमिष नही लावे।
और छोड़ ने में असत्य को
उद्यत सदा रहावे॥
अन्ध विश्वास हटा निर्धार।
स्वप्न ऋषिका हो यह साकार॥ ४॥

काम – धर्म्म अनुसार सर्व हो
विधि विपरीत न होवे।
दृढ़ निश्चय कर सत्य झूठका
मूल! विवेक न खोवे॥
तर्क तलवार हाथ में धार।
स्वप्न ऋषि का हो यह साकार॥ ५॥

शारीरिक आत्मिक सामाजिक
करे उन्नति सब कोई।
चाह हृदय में परोपकार की
सकल जगत की होई॥
भेद भावों को हटा विचार।
स्वप्न ऋषिका हो यह साकार॥ ६॥

सब सन पूर्ण प्रीति पूर्वक
धर्म्म परायण वर्तें।
यथा योग-को गल ध्यान में
जीवन यापन करते॥
यहि पाते सुख का आधार।
स्वप्न ऋषिका हो यह साकार॥ ७॥

जगती तल से घोर अविद्या की
आँधी — हट जाये।
उज्वल किरणों सद् विद्या की
सब को राह बताये॥
बढ़े घर-घर में वेद प्रचार।
स्वप्न ऋषिका हो यह साकार॥ ८॥

अपनी ही सुख समृद्धि के हित
जीवन को न बिताये।
सब की उन्नति बीच स्वयं की
उन्नति का पथ पाये॥
विश्व वसुधैव कुटम्ब निहार।
स्वप्न ऋषि का हो यह साकार॥ ९॥

सामाजिक प्रत्येक मनुज को
रह परतंत्र पालने को दृढ़
नियम सर्व हित कारी
हित स्वतंत्रता चारी॥
'अम्ब'-अविकलब नियमदसधार।
स्वप्न ऋषिका हो यह साकार॥ १०॥

कवि अम्बदान आर्य
कुरकावों (राज०)

शेष पृष्ठ २ का

[मनु० २ । २३]

जो आर्यावर्त देश से भिन्न देश हैं, वे दस्यु देश और म्लेच्छ देश कहाते हैं। इससे भी यह सिद्ध होता है कि आर्यावर्त से भिन्न पूर्व देश से लेकर ईशान, उत्तर, वायव्य और पश्चिम देशों में रहने वालों का नाम दस्यु और म्लेच्छ तथा असुर है। और नैऋत्य, दक्षिण तथा आग्नेय दिशाओं में आर्यावर्त देश से भिन्न में रहने वाले मनुष्यों का नाम राक्षस था अब भी देखलो हब्शी लोगों का स्वरूप भयंकर जैसा राक्षसों का वर्णन किया है, वैसा ही दीख पड़ता है।

वे आगे लिखते हैं—

और आर्यावर्त की सूध पर नीचे रहने वालों का नाम नाग और उस देशका नाम पाताल इस लिये कहते हैं कि वहदेश आर्यावर्त्तीय मनुष्यों के पाद अर्थात् पग के तले है। और उनके नागवंशी अर्थात् नाग नाम वाले पुरुषों के वंश के राजा होते थे। उसी का उलोपी राजकन्या से अर्जुन का विवाह हुआ था। अर्थात् इक्ष्वाकु से लेकर कौरव पांडव तक सर्व भूगोल मे आर्यों का राज्य और वेदों का थोड़ा-थोड़ा प्रचार आर्यावर्त से भिन्न देशों में भी रहता था। इसमें यह प्रमाण है कि ब्रह्मा का पुत्र विराट्, विराट् का मनु, मनु के मरीच्यादि दश इनके स्वायंभवादि सात राजा, और सन्तान इक्ष्वाकु आदि राजा, जो आर्यावर्त के प्रथम राजा हुए, जिन्होंने यह आर्यावर्त बसाया है।"

इसके आगे महर्षि जी बहुत खेद के साथ लिखते हैं :–

"अब अभाग्योदय से और आर्यों के आलस्य, प्रमाद, परस्पर के विरोध से अन्य देशों पर राज्य करने की तो कथा ही क्या कहनी, किन्तु आर्यावर्त में भी आर्यों का अखण्ड, स्वतन्त्र, स्वाधीन निर्भय राज्य इस समय नहीं है। जो कुछ है सोभी विदेशियों के पादाक्रान्त हो रहा है। कुछ थोड़े राजा स्वतंत्र हैं। दुर्दिन जब आता है, तब देशवासियों को अनेक प्रकार के दुःख भोगना पड़ता है। कोई कितना ही करे, परन्तु जो स्वदेशीय राज्य होता है, वह सर्वोपरि उत्तम होता है। अथवा मतमतान्तर के आग्रह रहित और पराये का पक्षपात शून्य प्रजा पर पिता-माता के समान कृपा, न्याय और दया के साथ विदेशियों का राज्य भी पूर्ण सुखदायक नहीं है। परन्तु भिन्न-भिन्न भाषा, पृथक् शिक्षा, अलग व्यवहार का विरोध छूटना अति दुष्कर है। बिना इसके छुटे परस्पर का पूरा उपकार और अभिप्राय सिद्ध होना कठिन है। इस लिये जो कुछ वेदादि शास्त्रों में व्यवस्था वा इतिहास लिखे हैं, उसी के मान्य करना भद्र पुरुषों का काम है।"

[सत्यार्थ-प्रकाश, समुल्लास–८]

श्री अधिष्ठाताजी
गुरकुल कांगड़ी
सहारनपुर

## हर्ष समाचार

खूनी अथवा वादी कैसी ही पुरानी बवासीर क्यों न हो दो सप्ताह के कोर्स के सेवन से बवासीर से सदा के लिये मुक्ति। यह अचूक तथा शर्तिया इलाज है। आज ही मंगाकर लाभ उठाइये।

आर्य जनता का सेवक
डा० शंकरलाल ठाकर
नसीराबाद रोड
अजमेर

## सूचना

आर्य समाज बाल मन्दिर शिवगंज के लिये एक अध्यापिका की आवश्यकता है आर्य सिद्धान्तों को मानने वाली, मोन्टेसरी ट्रेन्ड हो तथा अवकाश प्राप्त और कार्य करने की क्षमता रखती हो, तो वह भी स्वीकार की जा सकती है।

पत्र व्यवहार का पता
भीकाराम आर्य बाल मन्दिर
महर्षि दयानन्द मार्ग
शिवगंज (जिला सिरोही)
राज०

विषयः—पंचम नशाबन्दी सम्मेलन की तिथियों में परिवर्तन।

पचम अखिल भारतीय नशाबन्दी सम्मेलन जो कि भरतपुर (राजस्थान) में २२-२३ मार्च १९६९ को आयोजित होने वाला था स्थगित कर दिया गया है और अब यह २२-२३ अप्रैल ६९ को भरतपुर में ही होना निश्चित हुआ है। पूर्व निर्धारित तिथियों में इसलिए परिवर्तन किया गया है ताकि नशाबन्दी की नीति का पालन करने वाले राज्यों के मुख्यमंत्री एवं आबकारी मंत्री आदि भी इस सम्मेलन में सम्मिलित हो सके मंत्रियों के अतिरिक्त विभिन्न सामाजिक संस्थाओं के प्रतिनिधियों एवं नशाबन्दी कार्यकर्ताओं के लिए भी २२-२३ मार्च असुविधा जनक था।

(रूप नारायण)
महामंत्री

## शुभ सूचना

शाखापीपाड़ आर्यमरुधर व्यायाम, शाखा पीपाड़ का नव निर्वाचन बड़े ही प्रेमपूर्वक वातावरण सर्व सम्मति से प्रांगण स्थान पर सम्पन्न हुआ।

पदाधिकारी निम्नानुसार निर्वाचित हुए।

१—दलपति:-श्री राधेश्याम, मोयल,
२—उपदलपति -श्री हिम्मतसिंह राठोड़
३—खजान्ची:-श्री परमेश्वरनाथ, भार्गव,
४—प्रतिनिधि -श्री श्यामलाल-कानसिंह

इसके अलावा इस व्यायामशाला का कुल सदस्य-संख्या नियमित ४५ है।

इस व्यायामशाला के शुभारम्भ की प्रेरणा आर्यसमाज पीपाड़ से प्राप्त हुई और इसमें यहाँ के उपाध्यक्ष महोदय श्री आर्य कस्तूरचाद जी. घनसार, का मुख्य हाथ रहा जिसकी बदौलत आज ये जोधपुर में आर्य समाज का एक सुन्दर व मजबूत संगठन तैयार होने जा रहा है। घनसारजी, समय-समय पर इस व्यायामशाला के प्रांगण में व आम सदस्यों के बीच आते ही रहते है। और इस प्रकार उनकी भावनाएँ भरी सेवाओं का सुफल हुआ।

इस समाचार को पढ़ कर आपको बड़ा हर्ष होगा कि इस व्यायामशाला में नित्यप्रति आर्यवीरों को [illegible] से भाला तलवार. कुस्ती. कटार. [illegible] आदि समस्त व्यायाम क्रियाओं का क्रम, तत्पर-तासे कराया जाता है और इस प्रकार ये व्यायामशाला जोधपुर शहर में बड़ी आकर्षित होती जा रही है

## अपील

जिला नागौर में आर्य समाज डोडियाना चोयला का एक नव स्थापित आर्य समाज है जहा के आर्य पुरुषों ने बड़े परिश्रम से आर्य समाज मंदिर का निर्माण कार्य प्रारम्भ कर दिया है। किन्तु अर्थाभाव से इस कार्य मे कुछ बाधाए आ रही है। अतः समस्त आर्य जनता से प्रार्थना है कि इस निर्माण के पवित्र कार्य में अवश्य आर्थिक सहायता प्रदान कर कार्य कर्ताओं को प्रोत्साहित करने की कृपा करे।

प्रार्थी
गणपत सिंहमंत्री
स्थान डोडियाना चोयला का
द्वारा रीयां बड़ी
जि० नागौर

## उठो!

उठो! शत्रु की सेना देखो
सीमा पर ललकारती।
आया समय जवानों जागो।
भारत—भूमि पुकारती।
वैरी भारत की धरती पर
करता कितनी मन मानी,
आज दिखा दो उन दुष्टों को
कितना है हममें पानी।
समय नहीं है अब झुकने का,
बोलो जय-जय भारती॥
मत भूलो राणा प्रताप को
और झाँसी की महारानी
मत भूलो शमशेर शिवा की,
ताँत्या टोपे सेनानी
बतला दो कैसे भारत की,
सेना है हुँकारती।
शपथ तुम्हें है मातृभूमि की,
अरिदल को आ सहारो।
निश्चय विजय तुम्हारी होगी,
हिम्मत को तुम मत हारो।
अब तो शस्त्र उठाओ वीरो,
दुश्मन का मद झारती।
आया समय जवानो जागो,
भारत भूमि पुकारती॥

(वीर अर्जुन से साभार)

आज दिनांक ४/३/१९६९ चैत्र कृष्ण १ मंगलवार होली कोत्सव, के शुभ अवसर पर श्री० पू० ओमप्रकाशजी वानप्रस्थ उपमन्त्री आर्य प्रतिनिधि सभा राजस्थान अजमेर, के तत्वावधान में आर्यसमाज जैतसर का संगठन निम्न प्रकार सम्पन्न हुआ जिसमें निम्नलिखित पदाधिकारी सर्वसम्मति से निर्वाचित हुए।

| | | |
|---|---|---|
| १ प्रधान :- | श्रीमान् | प्रयागचन्दजी गोरीसरीया |
| २ उ० प्रधान | " | किशनलालजी वर्मा |
| ३ मन्त्री | " | मल्हारराव पंडित |
| ४. उ० मन्त्री | " | भजनदासजी शर्मा |
| ५ कोषाध्यक्ष | " | शिवदयालजी अरोड़ा |
| ६ पुस्तकाध्यक्ष | " | रामेश्वर सिंहजी सिसोदिया |
| ७ निरीक्षक | , | डॉ० वीरेन्द्रसिंह वर्मा |
| १ सदस्य | | |
| " | " | ठाकुर आलूसिंहजी चक १३ बी० बी० |
| २ " | " | राम कुमारजी निर्वाण |
| ३ " | " | पं० हेमराजजी शर्मा |
| ४ " | " | प० सोमनाथजी शर्मा |
| ५ " | " | पं० खेतरामजी शर्मा |
| ६ " | " | सोमनाथजी गोयल |

मन्त्री
मल्हारराव

श्री पं० भगवानस्वरूपजी "न्यायभूषण" के प्रबन्ध से वैदिक यन्त्रालय अजमेर में मुद्रित और ओम्भक्त वानप्रस्थ, सम्पादक प्रकाशक द्वारा दयानन्द आश्रम, केसरगंज अजमेर से प्रकाशित। अधिष्ठाता—श्रीमान् डा० भवानीलालजी भारतीय एम. ए. पी. एच.डी. शास्त्री

आर्य प्रतिनिधि सभा राजस्थान का मुख-पत्र

मासिक

र० न० १४ जे

# आर्यमार्तण्ड

दयानन्द आदित्य से पाकर ज्योति प्रचण्ड। ध्वंस दम्भ पाखण्ड का कर आर्य्यमार्तण्ड ॥

सम्पादक—श्री ओमप्रकाश वानप्रस्थ ( रामसहाय शर्मा )

वर्ष [illegible] | वार्षिक मूल्य ५) रुपया | अजमेर वै० कृ० १५ सं. २०२६ वि., दि. १५ अप्रैल ६९ दयानन्दाब्द १४५ | एक प्रति का २० पै० | अंक ४

## इश्वर-प्रार्थना

[illegible] मित्रस्याहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे [illegible] चक्षुषा समीक्षामहे ॥ यजुर्वेद ॥

### पद्यानुवाद

[१]

सब प्राणियों को रहूँ देखता,
मित्र की दृष्टि प्यारसे !
हम भी इक-दूसरे सबको,
देखें मित्र-विचारसे !!

[२]

हर्षोल्लास भावना ले के,
मिले परस्पर प्रेमसे !
बनें [illegible] विश्वमित्र सब,
[illegible] रहें सुख-क्षेमसे !!

[illegible] "[illegible]"
पीपाड़ शहर (राज०)

## आवश्यकता

इस समाज द्वारा संचालित कन्या पाठशाला के लिए एक योग्य प्रशिक्षित, बी ए या एम. ए. (संस्कृत) आर्य विचार धारा वाली अध्यापिका की आवश्यकता है। जो इस पाठशाला को सुचारु एवं सुव्यवस्थित रूप से चलाने में समर्थ हो। [illegible] प्रशिक्षित को प्राथमिकता दी जावेगी। वेतन राजस्थान राज्य शिक्षा विभाग के नियमानुसार दिया जावेगा। आवेदन पत्र दिनांक ३१। ५ ६९ तक मन्त्री, आर्य समाज, परमानन्द बस्ती, बीकानेर को भेजें।'

प्रतापसिंह
आर्य समाज
परमानन्द [illegible] बीकानेर

# आर्य प्र. सभा राज. का वार्षिक बृहदधिवेशन

दि० १८, १९ मई १९६९

## स्थानः- आर्यसमाज भवन आबूरोड

### दि० १८ मई ६९ रविवार

प्रातःकाल [illegible] बजे सभा की कार्यकारिणी की बैठक
मध्याह्न—भोजन विश्राम
अपराह्न [illegible] बजे से ४॥ बजे तक आर्यप्रतिनिधि सभा राजस्थान का वार्षिक वृहद अधिवेशन ( अधिवेशन में समाजों द्वारा निर्वाचित प्रतिनिधि गण ही भाग ले सकते )

### दि० १९ मई १९६९ सोमवार

प्रातःकाल ९ बजे-आर्यप्रतिनिधि सभा राजस्थान का वार्षिक अधिवेशन—

कार्यकारिणी के समस्त महानुभावों तथा प्रांत की समस्त समाजों के प्रतिनिधि महानुभावों की उपस्थिति इस अवसर पर सादर प्रार्थनीय है।

यदि आपकी समाज ने वार्षिक चिठ्ठा दशांश तथा निश्चित कोटि राशि अभी तक नहीं भेजी हो तो अविलम्ब भेजने की कृपा करें।

अधिवेशन में पधारने वाले प्रतिनिधि महानुभावों को चाहिए कि वे अपने पधारने की सूचना संख्या तिथि सहित सभा कार्यालय तथा मन्त्री आर्य समाज आबूरोड को अवश्य भेजने की कृपा करें।

जो सज्जन रेल द्वारा आवें वे अपने रेलवे स्टेशन से आबूरोड के लिए ड्योढ़े किराये का वापसी टिकट अवश्य लेवें।

यदि आवश्यक हुआ तो अगले दिन भी सभा के अधिवेशन की कार्यवाही यथापूर्व सम्पन्न होगी।

श्रीकरण शारदा
मन्त्री—सभा

आर्यसमाज आबूरोड के वार्षिकोत्सव का कार्यक्रम—

### दि० १८ मई १९६९ रविवार

प्रातःकाल ७½ बजे ध्वजारोहण आर्य ध्वज गीत सामूहिक (विद्यालय के प्रांगण में)
प्रातः ८ बजे यज्ञ भजनोपदेश
सायंकाल ४½ बजे से नगरकीर्तन
रात्रि में ८ बजे से भजनोपदेश तथा आर्य विद्वानों के व्याख्यान

### दि० १९ मई ६९ सोमवार

प्रातःकाल ७½ बजे—यज्ञ भजनोपदेश मध्याह्न काल भोजन विश्राम मध्य होकर ३ बजे से आर्यवीर सम्मेलन रात्रि में ८ बजे से भजनोपदेश तथा व्याख्यान

### दि० २० मई ६९ सोमवार

(प्रातःकाल ७॥ बजे—यज्ञ भजनोपदेश प्रातःकाल १० बजे—प्रांतीय आर्य सम्मेलन प्रांत में वेद प्रचार अराष्ट्रीय प्रचार निरोध आदि समस्याओं एवं योजनाओं पर विचार-विमर्श) प्रान्त की समस्त समाजों के प्रतिनिधियों की उपस्थिति इस अवसर पर सादर प्रार्थनीय है।

जेठमल आर्य मन्त्री आर्यसमाज आबूरोड

# शंकराचार्य और अस्पृश्यता

( ले० श्री डा० भवानीलाल जी भारतीय एम० ए० पी० एच० डी० )

पुरी के शंकराचार्य स्वामी निरञ्जन देव तीर्थ ने पटना में आयोजित हिन्दू सम्मेलन के मञ्च से अस्पृश्यता को शास्त्र प्रतिपादित तथा आचारणीय घोषित कर अत्यन्त अनावश्यकपूर्ण वाद विवाद को जन्म दिया है। वस्तुतः वैदिक शास्त्रों में कहीं भी मानव मानव में भेद की कल्पना नहीं पाई जाती और न जन्मगत असमानता या पार्थक्य का ही प्रतिपादन किया गया फिर यह समझ में में नहीं आता, कि जिस हिन्दू सम्मेलन के मञ्च से विश्व भर के विविध मतों विश्वासों और सम्प्रदायों के अनुयायी हिन्दुओं को संगठन के सूत्र में बांधने का प्रयत्न किया जाना वाञ्छनीय है उस मंच से शंकराचार्य ने अस्पृश्यता के औचित्य को सिद्ध कर हिन्दू जाति का कौनसा हित किया। हिन्दू जाति के विरोधियों और शत्रुओं की तो वैसे ही कमी नहीं है। शंकराचार्य के इस वक्तव्य ने तो मानो मधुमक्खियों के छत्ते को ही छेड़ दिया संसद में तूफान सा आ गया किसी ने शंकराचार्य को संसद में बुलाने की मांग की तो किसी ने उन पर मुकद्दमा चलाने की आवाज उठाई। एक मनचले साहब तो शंकराचार्य को फांसी देने की मांग करने में नहीं हिचकिचाये। अस्तु

समस्या का एक दूसरा पहलू भी है। शंकराचार्य द्वारा अस्पृश्यता के किसी भी प्रकार के समर्थन का पूर्णतया अवैदिक अशास्त्रीय तथा भारतीय संस्कृति की परम्पराओं से विपरीत स्वीकार करते हुये एक सहज प्रश्न उपस्थित होता है। संविधान द्वारा अस्पृश्यता को अवैधानिक और दण्डनीय घोषित किये जाने के बावजूद आज बीस वर्षों में हम अस्पृश्यता को दूर करने में कितने सफल हुये हैं। आज सरकार के जो सूत्र संचालक शंकराचार्य के विरुद्ध कानूनी कार्यवाही करने में इतनी अभिरुचि प्रदर्शित कर रहे हैं, उन्होंने सामान्य हिन्दू समाज से अस्पृश्यता के कलंक को दूर करने के लिये कितने प्रयास किये हैं इसका हमें पता नहीं। वस्तुतः छुआछूत आज भी उतनी ही हमारे समाज में व्याप्त है जितनी आज से अर्ध शताब्दी पूर्व थी। यह सत्य है कि नई पीढ़ी के पठित युवावर्ग के लोग अस्पृश्यता की भावना से पृथक हैं, तथापि पुरानी पीढ़ी के लोगों में आज भी वह ज्यों त्यों विद्यमान है। इससे न तो नेता मुक्त हुये और न राजनीतिज्ञ, न अधिकारी और न सम्पादक। दलित वर्ग के लोगों के साथ बैठकर खाना तो दूर, उनके हाथ का पानी पीने में भी लोग संकोच करते हैं। अस्पृश्यता के कलंक को दूर करने के लिये केवल पुरी के शंकराचार्य पर अभियोग चलाना ही पर्याप्त नहीं है हमें यह देखना होगा कि जिन पुराने रूढ़िवादी हिन्दुओं के दिल और दिमाग में अस्पृश्यता घर कर गई है उससे उन्हें कैसे मुक्त किया जा सकता है?

फिर एक बात और भी है। संविधान की धारा का क्या अकेले शंकराचार्य ने ही उल्लंघन किया है वे तो अपराधी हैं हीं परन्तु यह भी देखना होगा कि देश में कहाँ २ संविधान विरोधी क्या क्या कार्य हो रहे हैं? और उन्हें समाप्त करने में हमारे नेता कहाँ तक रुचिशील रहे हैं। देश के संविधान में हिन्दी को राजभाषा पद पर प्रतिष्ठित किया गया है? क्या तामिलनाडु में उसकी स्पष्ट अवहेलना नहीं हो रही है? क्या केन्द्रीय सरकार की राजभाषा के प्रति शत्रुतापूर्ण रवैया अपनाने वाली कोई प्रान्तीय सरकार असंवैधानिक कार्य नहीं कर रही है। दक्षिण में ही राष्ट्रगीत का अपमान (उसके स्थान पर तमिल भाषा का गीत गाने) तथा संविधान को जलाने जैसी घटनायें भूतकाल में घटित नहीं हुई हैं? क्या काश्मीर में शेख अब्दुल्ला और अन्य उसी कोटि के व्यक्तियों का साम्प्रदायिकता भड़काने वाला विषैला प्रचार राष्ट्र की एकता का घातक फलतः संविधान के विरुद्ध नहीं है? पुनः शंकराचार्य के एक वक्तव्य पर इतना तूल दिये जाने की क्या आवश्यकता?

हम एक बार पुनः स्पष्ट कर देना चाहते हैं कि आर्यसमाज और तथाकथित सनातनधर्म के शंकराचार्य प्रतिपादित दृष्टिकोण में रातदिन का अन्तर है। वर्णाश्रम व्यवस्था को स्वीकार करते हुये भी आर्यसमाज ने कभी जन्मगत वर्ण को नहीं माना। आज जन्मगत जाति पांति के विरोध में आवाज उठाने वाले वर्ण व्यवस्था पर भी प्रहार करते हैं। उन्हें यह पता नहीं कि गुण कर्म पर आधारित वर्ण व्यवस्था का निर्दोष स्वरूप भी हो सकता है और उसकी व्यावहारिकता उपादेयता तथा अपरिहार्यता को ध्यान में रखते हुये उसका विरोध करना नितान्त असम्भव है। आज भी जगजीवन राम जैसे दलित वर्ग के नेता शंकराचार्य के उक्त वक्तव्य से इतने क्षुब्ध दिखाई देते हैं कि वे हरिजन वर्ग के लोगों के हिंदू समाज से पृथक् हो जाने की भी बात करने लगे हैं परन्तु ठंडे दिल से यह कोई नहीं सोचता कि शास्त्रों की व्यवस्था करने का ठेका अकेले पुरी के जगद्गुरु ने तो नहीं ले रक्खा है।

अन्त में हमारा यह विनम्र अनुरोध है कि संकीर्ण विचार वाले जगद्गुरु के वक्तव्य को उछालकर एक आन्दोलन की स्थिति उत्पन्न करना हानिकारक है। जब तक सम्पूर्ण देशवासी अस्पृश्यता के कोढ़ से मुक्त नहीं हो जाते तब तक चाहे बिहार सरकार शंकराचार्य पर मुकद्दमा चलाये या समाजवादी युवजनसभा उन पर मुकद्दमा दायर करे कुछ अधिक लाभ नहीं होगा। एक शंकराचार्य को चाहे संविधान के अपमान करने के आरोप में भले ही दण्ड दिया जा सके, आज भी हिन्दुओं में कट्टरपंथी लोग जो लाखों करोड़ों की संख्या में व्यावहारिक रूप में अस्पृश्यता पर आचरण कर रहे हैं; उन्हें दण्ड देने का बीड़ा कौनसी सरकार या युवजन उठायेंगे, यही देखना है।

## राजा नरेशचन्द्र सिंह का मुख्य मन्त्रित्व और फलित ज्योतिष की निरर्थकता

ग्वालियर की राजमाता के अनुरोध पर ग्वालियर राज घराने के ज्योतिषियों ने शुभ मुहूर्त निकाला और मध्यप्रदेश पर सात दिन शासन करने वाले मुख्यमन्त्री राजा नरेशचन्द्रसिंह गद्दी पर आसीन हुये। फलित ज्योतिष पर आस्था रखने वाले लोग बार बार और दृढ़तापूर्वक कहते हैं कि फलित ज्योतिष है तो सच्चा परन्तु इसके जानकार उच्च कोटि के ज्योतिषी कहाँ मिलते हैं, हमारी समझ में ग्वालियर के राजज्योतिषी कोई छुटे मोटे कुण्डली पाथी ज्योतिषी तो होंगे नहीं वे निश्चय ही अपनी विद्या के पारंगामी, ज्योतिषशास्त्र के उद्भट विद्वान् होंगे। और राजमाता ने भी तो समझ बूझकर ही मुख्यमंत्री पद की शपथ लेने के लिये उनसे मुहूर्त दिखाया होगा। वे तो ऐसे मुहूर्त में राजा साहब को मुख्यमन्त्री के पद पर आसीन कराना चाहती थीं, जिससे उनका पद अखण्डित और अबाध गति से चलता रहे और निश्चय ही विद्वान् ज्योतिषियों ने भी ऐसा ही मुहूर्त निकाला होगा। पर दुनियाँ जानती है कि मुहूर्त दिखाकर गद्दी पर बैठने वाले राजा का पद सात दिन से अधिक उनके अधिकार में नहीं रहा। फलित ज्योतिष का इतना निर्मम और क्रूर उपहास विपत्ति ने सम्भवतः कभी नहीं किया होगा। क्रान्तदर्शी ऋषि दयानन्द का यह कथन सर्वथा सत्य है कि इन ज्योतिषियों के चक्कर में पड़ कर लोग अपने पुरुषार्थ और पराक्रम को तिलाञ्जलि दे बैठते हैं। यदि ज्योतिषियों द्वारा बताया गया मुहूर्त ही मन्त्रीपद को स्थायित्व प्रदान कर सकता है तब तो भारतीय राजनीति की सारी अस्थिरता ज्योतिषियों की कृपा से समाप्त हो जानी चाहिये।

# आर्य मार्तण्ड

अजमेर वै० कृ० १४ सं० २०२६ वि० दिनांक १५ अप्रेल सन १९६९

सम्पादकीय—

## प्रगति कैसे हो ?

आज समस्त आर्य जगत में आर्य समाज की अवरुद्ध गति को अधिक सक्रिय एवं प्रगतिशील बनाने की चर्चा है। कुछ लोगों का मत है कि इसका कायाकल्प करके देश, काल एवं परिस्थितियों के अनुकूल अब नव निर्माण होना चाहिए। ताकि एक नवीन उत्साह और आकर्षण जन मानस को प्रभावित कर स्वस्थ संगठन का रूप आर्य समाज बन सके। ऐसे लोग आमूल चूल परिवर्तन चाहते हैं।

कुछ लोगों का मत है कि आर्य समाज के नियमोपनियम, जो ऋषि प्रणीत हैं, उनमें परिवर्तन करना आर्य समाज के लिए घातक होगा और उसका मूलरूप ही नष्ट हो जायगा। अतः इसके वास्तविक स्वरूप को अक्षुण्ण रखने में ही आर्य समाज का हित है।

इन दोनों ही पक्षों का मूल उद्देश्य आर्य समाज की प्रगति, प्रचार शैली के नवीनीकरण एवं सुदृढ़ संगठन के निर्माण का है अतएव हमें विचार यह करना है कि आर्य जगत में व्याप्त शिथिलता, निष्क्रियता निराशा एवं अकर्मण्यता को कैसे दूर किया जाय? जिससे कि आर्य समाज अपना शौर्य एवं वर्चस्व पुनः स्थापित कर सके।

आज वृहद् भारतीय समाज का एक मलवा हमारे सम्मुख पड़ा हुआ है। आर्य समाज को कुशल शिल्पी के समान उस मलवे से मानवता के संरक्षक सुदृढ़ दुर्ग आर्यसमाज का निर्माण करना है, जहां अभिशप्त, त्रस्त मानवता सुख शांति की सांस लेकर विश्व के सुषुप्त आत्मा को जगा सके और एक नवीन आदर्श प्रस्तुत कर सकें। यदि आर्य समाज जागृत न हुआ तो अन्य लोग इस मलवे का लाभ उठाकर हमें नष्ट करने के लिए तैयार हो सकते हैं, इसमें कोई संदेह नहीं। अतः आर्य पुरुषों को इस विषय में गम्भीरता से विचार करने की आवश्यकता है।

आज सर्व प्रथम आर्यपुरुषों को अपने नैतिक एवं चारित्रिक बल पर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है। आज हम समालोचना तो करते हैं परन्तु स्वयं अपने आपको कर्मनिष्ठ आर्य नहीं बना पाये, अब हम स्वयं त्याग तप का आदर्श उपस्थित करेंगे तो सर्वसाधारण अवश्य हमारे कार्यक्रम का अनुकरण करेगा। चरित्र ही व्यक्ति समाज और राष्ट्र का जीवन है अतः चरित्र निर्माण प्रथम कर्तव्य है। विद्या के क्षेत्र में भी आज हम प्रगति नहीं कर सके है। अनेक विद्यालय और महाविद्यालय स्थापित होने के पश्चात भी आर्यों की प्रगति प्रचार एवं जन-संख्या घटती जा रही है। क्योंकि हम भौतिक उन्नति के लिये ही विद्याध्ययन करने लगे और आध्यात्मिक जीवन की ओर हमारा ध्यान ही नहीं रहा। अतः सर्वांगी जीवन का विकास जिस विद्या और शिक्षा के द्वारा हो, वही हमें अपनानी पड़ेगी। तथा वेद वेदांगों के आदर्शों के आधार पर ही हमें अपने वेद विद्या से वास्तविक लाभ उठाकर जीवन का विकास करना होगा।

आर्य समाज का जन सम्पर्क प्राय सर्वथा शिथिल है। सुख दुख में भी हम एक दूसरे के समीप आकर सहयोग, सहानुभूति नहीं प्रगट कर सकते। फिर हमारी आत्मीयता और संगठन कैसे बढ़े। अत. साप्ताहिक सत्संग को ही सर्वस्व मानकर यदि हम एक सप्ताह तक चुप चाप बैठे रहें तो उद्देश्य सिद्धि नहीं होगी। हमें प्रतिदिन मोहल्ले २ और घर २ में जाकर जन जागरण एवं जन सम्पर्क करना होगा। तभी हम अधिक सबल और सुसंगठित हो सकेंगे। हमारी प्रचार शैली भी अब एक नवीन आकर्षक रूप में जन साधारण के सम्मुख प्रस्तुत करनी होगी। हमारी उपदेशकों तथा प्रचारकों की पीढ़ी भी समाप्त होती जा रही है। अत' उत्तम उपदेशकों प्रचारकों एवं उत्साही कार्यकर्ताओं को यथेष्ठ प्रोत्साहन मिलना चाहिए। आर्यसमाज या आर्य संस्थाओं के पदाधिकारी तपे हुए त्यागी आर्य पुरुष बनने चाहिए।

आर्य समाज को राजनीति में अब अवश्य भाग लेना चाहिए। इसके बिना आर्य समाज आगे बढ़ ही नहीं सकता, क्योंकि विदेशी अराष्ट्रीय शक्तियां भारतीय शासन तन्त्र पर आज हावी हो चुकी है और वे आर्य समाज को पनपने नहीं देना चाहती। आर्य समाज का कोई सदस्य राष्ट्र, राष्ट्रीयता और भारतीय संस्कृति विरोधी किसी समाज अथवा संगठन का सदस्य न बने। आर्य समाज के मंच और भवन संस्थाओं का उपयोग केवल आर्य समाज के लिये हो अन्य राजनैतिक दलों के लिये नहीं। हम स्वयं अपने कर्तव्य का पालन कर और दूसरों के हित तथा परोपकार का भी ध्यान रखें।

प्रचार साहित्य उपदेश और अभिव्यक्ति शैली सामयिक, ओजस्वी एवं प्रभावशाली हो। जब तक हम स्वय कर्तव्य निष्ठ नहीं बनेंगे, केवल उपदेश मात्र से आर्य समाज प्रगति नहीं करेगा।

आर्य समाज एक महान प्रकाश स्तम्भ बनकर जब तक भारतीय आत्माओं के बुझे हुए दीपो को जलाकर उत्साह और आशा का प्रकाश नहीं फैलायेगा। तब तक आर्य समाज प्रगति नहीं करेगा।

अत. आर्यो उठो। प्रकाश दीप बनकर अपने दिव्य प्रकाश से जन-२ मानस को दीप्त करके आर्यों को विश्व गुरु बनाने में अपना तन मन धन से सक्रिय सहयोग प्रदान करो। तभी आर्य समाज पुन. विश्व में प्रगति शील बनकर राष्ट्र के मस्तक को संसार में ऊँचा उठा सकता है।

### सार्वदेशिक सभा का वार्षिक अधिवेशन

सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा का वार्षिक अधिवेशन दि०३१ मई तथा १जून ६९ को दिल्ली में आमन्त्रित किया गया है। आशा है, प्रतिनिधि सदस्य गण अवश्य उक्त अवसर पर पधार कर अधिवेशन में भाग लेंगे।

—मन्त्री

### जैतसर में आर्य वैदिक धर्म का प्रचार और आर्य समाज की स्थापना

श्री श्रद्धानन्द आर्य विद्यालय जैतसर। श्री गंगानगर के संस्थापक श्रीमान् प० मल्हारराव जी पण्डित ने आर्य प्रतिनिधि सभा राजस्थान के उपमन्त्री श्री ओम्भक्त जी वानप्रस्थ को बुलाकर दो दिन तक श्रीमान् डूंगरमल जी सरावगी के स्थान पर पवित्र वैदिक धर्म का प्रचार करवाया और ता० ४-४-६९ को यहाँ के प्रसिद्ध व्योपारी श्रीमान् सेठ प्रयागचन्द्रजी गोरीसरीय के शुभस्थान पर प्रचार करवा कर नियमानुसार आर्यसमाज की स्थापना उक्त श्री ओमभक्तजी से करवाई। श्री प० मल्हाररावजी आन्ध्र देश के होने पर यहाँ अपने तपत्याग से आर्यसमाज को लोक प्रिय बनाने का भरसक प्रयत्न किया। उक्त विद्यालय में इस समय लगभग २५० बालक पढ़ते हैं। इसी प्रकार पीलीबंगा में कर्मवीर श्री म० राम कृष्णजी आर्य के प्रयत्न से आर्य आदर्श विद्यालय चल रहा है, उसमें भी इस समय ४०० छात्र हैं।

# वेद रक्षा निधि-एक योजना.

लेखक– श्री पन्नालालजी परिहार जी
श्री शारदा सदनावटा– प जोधपुर

वर्तमान् काल की विपरीत वायु में वेद का केवल नाम मात्र या पुस्तकस्थ विद्या शेष है। भारत में थोड़े से घरानों को छोड़कर वेदपाठी ब्राह्मण कुलों में वेद का पठन पाठन लुप्त होता आ रहा है। भौतिक विज्ञान के कराल बवंडर में वेद ज्ञान उड़ जाने की गंभीर आशंका है। अभी भी कुछ लोग वेद परम्परा के लकीर के फकीर बने दिखाई देते हैं। परन्तु आने वाली पीढ़ी के लोग इसे भी भूल जावेंगे ऐसा भयंकर अनुमान है। हमारे प्राचीनतम संस्कृति सभ्यता का आधार, ईश्वर प्रदत्त ज्ञान, मानव मस्तिष्क से ओझल होने वाला है और होता आ रहा है। हम चाहे जितनी दुहाई वेद प्रचार, रक्षा की दें, पर यह लोगों के गले नहीं उतरती। अतः यदि इस अनुपम अमूल्य धरोहर वेदनिधि को बचाना है तो निम्न प्रस्ताव पर आर्य बन्धु वेद प्रेमी अवश्य ध्यान देकर कार्य करें। अस्तु। समय रहते चेतें।

### योजना

वेद रक्षा की योजना इस प्रकार है :-

(१) वेद रक्षा निधि (कोष) बनाया जावे। उसमें पांच लाख रुपया एकत्र किया जावे।

(२) यह कोष सार्वदेशिक सभा के संरक्षण में ट्रस्ट रूप में रहे।

(३) इसके संग्रहकर्ता परिश्रमी, लगन वाले विद्वान आर्य सज्जन हों। मेरे विचार में ५ सदस्य भारत में भ्रमण कर इस राशि को एकत्र करें। मेरा प्रस्ताव इन व्यक्तियों का है :-

१. श्री प० वीरसेन वेदश्रमी-संयोजक.
२. श्री प० युधिष्ठिर मीमांसक–
३. श्री पं० भगवान स्वरूप जी न्यायभूषण-
४. श्री धर्मदेव विद्यामार्तण्ड.
५. श्री पं० सत्यानन्द जी वेदवागीश.

(४) इनके भ्रमण का व्यय सार्वदेशिक सभा वहन करे।

(५) एक वर्ष में उक्त राशि एकत्र होनी चाहिये।

अविरत—... (२)

(६) धन का उपयोग :-
एकत्र राशि का उपयोग इस प्रकार सार्वदेशिक सभा के निर्देश अनुसार हो।

( ) उक्त पांच सज्जन अथवा दो तीन ही देश भर में विशेषतः बनारस, महाराष्ट्र, बम्बई, मद्रास और गुजरात के वेदक घरानों के प्रतिष्ठित वेदपाठी पंडितों से सम्पर्क स्थापित करें और

(२) वेद का सस्वर टेप रेकार्ड (Tape Recording) करें।

(३) टेप रिकार्डिंग का विशेषज्ञ इस दल के साथ में रहे।

(४) टेप रिकार्ड फिल्म, मशीन का व्यय पहले से ही अनुमानित हो।

(५) गुजरात में सामवेद, गायन सस्वर अब भी घरानों में होता है।

(६) महाराष्ट्र में ऋग्वेद का सस्वर पाठ, जटा, माला कदण्ड, ध्वजा आदि प्रणाली से होता है।

(७) यजुर्वेद का पाठ बनारस और उत्तर प्रदेश के कई स्थानों में उपलब्ध हो सकता है।

(८) अथर्व वेद का प्रचलन बहुत थोड़ा है वह भी केवल महाराष्ट्र और गुजरात के कुछ अथर्ववेद शौनक, पिप्पलाद घरानों में है।

(९) इन्दौर के श्री पं० वीरसेन वेदश्रमी ने प्राचीन परम्परानुसार बड़े परिश्रम से मंत्रों के उच्चारण का अभ्यास विविध प्रकार से किया है। उनका प्रदर्शन स्थान स्थान पर होता रहता है। साथ ही उन्होंने वृष्टि यज्ञ की योजना भी हाथ में ले रखी है तथा कई परिक्षण भी किये हैं। लोग साथ देवें तो बहुत देश व्यापी उपयोगी कार्य हो सकता है। इसी प्रकार अब भी कई वेद पाठी मिल जावेगें। जल्दी करो वरना यह पीढ़ी भी अन्तर्धान हो जावेगी। तो वेद का सस्वर सुनना सुनाना दुर्लभ या असंभव हो जायगा। स्वर्गीयशास्त्रीय संगीत मार्तण्ड श्री ओंकारनाथ ठाकुर ने कुछ वेद मन्त्रों का साम गान के रूप में अभ्यास व प्रदर्शन किया था परन्तु यह विद्या भी दिवगत विद्वान के साथ चली गई। भगवान न करे ऐसा ही हमारे साथ फिर न हो।

(१०) अतः सामवेद का गायन तथा संभव रेकार्ड करा लिया जावे।

(११) रेकार्डों की बिक्री भी खूब होने की आशा है। व्यवसायी लोग आगे आवेंगे। धर्मप्रेमी वेद ध्वनि सुन कर प्रत्येक घर में अहोभाग्य समझेंगे।

(१२) समस्त वेदमंत्रों (संहिता) का पूर्ण रेकार्ड कोष (सार्वदेशिक सभा) दिल्ली में रहे। जहां से डुप्लीकेट रिकार्डिंग तैयार होते रहेंगे और प्रचारित होंगे। यह भी व्यवसाय रहेगा।

(१३) सर्वप्रथम तो बात यह है कि इस वेदोद्धार पुनीत योजना को आगे बढ़ाने वाले पांच वीर कोई आगे आवें। जैसे गुरु गोविन्दसिंह के सामने पांच प्यारा आये थे। क्या आर्य जगत में है कोई व्यक्ति जो इस बीड़े को उठावे। क्या किसी आर्य प्रेमी वेद प्रेमी में कुछ जोश बाकी है? अथवा केवल कृण्वन्तो विश्वमार्यम् का नारा लगाना ही पर्याप्त समझते हैं? कहने को तो आर्य समाज का नियम पाठ होता है कि वेद का पढ़ना पढ़ाना सुनना सुनाना आर्यों का परम धर्म है। परन्तु अब परीक्षा की घड़ी आई है। कोई माई का लाल आगे आवे तो जानें। अधिक क्या कहें।

(१४) विशेष :-
शास्त्रीय संगीतज्ञों द्वारा वेदमन्त्रों में चुने हुए वेद मन्त्रों को वर्तमान राग रागिनियों में गवाया और रेकार्ड कराया जावे। इससे वेद प्रचार होगा। यह स्थायी साहित्य का काम देगा। अब प्राचीन सामवेदय गान को नारदीय पद्धति से हाहूहाहू करना वृथा है। वो विद्या तो लुप्त हो चुकी है। ऐसा हमारा अनुमान है। खेद का विषय है। धर्म संकट है भगवान रक्षा करे।

### प्रचार कार्य

दिनांक २४-३-६६, २५-३-६६ को आर्यसमाज मूकशा का निरिक्षण पं. ओमप्रकाश वानप्रस्थ ने किया और एक विशाल सभा का आयोजन किया, जिसमें करीब ५०० व्यक्ति उपस्थित रहे। आपने 'हिन्दुओं सावधान' समाजवाद पर विचार प्रकट किये। इस क्षेत्र के तरुण कार्यकर्ता श्री लालचंद आर्य, श्री श्यामसुन्दर जी मंत्री (समाज) श्री सत्यनारायणजी उपमंत्री और श्री बंकटलालजी प्रधान ने देश की अवस्था पर प्रकाश डाला और भजन, कविता द्वारा हिन्दुओं को सावधान किया। जनता ने अपना अहोभाग्य समझा और आग्रह करके एक दिवस रोककर दे व्यवस्था करके महिलाओं का कार्यक्रम रखा। इस प्रकार बड़े उत्साह के साथ नगर में वैदिक धर्म का प्रचार हुआ जो सराहनीय रहा। श्री लालचन्दजी ने पंचवास ग्राम में सत्यनारायण ब्राह्मण का ईसाई हो जाने की सूचना दी और जनता से प्रार्थना की केरल से आई हुई नर्सें सरकारी सेवा करके धर्म परिवर्तन कर रही है।

—श्यामसुन्दर स्वामी मंत्री आर्यसमाज मूकशा

आर्यसमाज ने मेरा कायाकल्प कर दिया—

# मेरे जीवन के संस्मरण

श्री ओऽमभक्तजी वानप्रस्थ भूतपूर्व पं० रामसहाय शर्मा

पतितपावनी आर्यसमाज के शुभ सन्देश ने मेरा जीवन कैसे पवित्र बना दिया। जिस विपरीत समय में मैं वामपंथी पौराणिकों के चक्कर में पड़ कर मानवता से दानवता की ओर जा रहा था भगतमाखू सुलफा, इनको शिव का प्रसाद समझकर ग्रहण करने लगा, कुछ पढ़े लिखे हमें कुसंगियों के साथ ये सार अवगुण मुझ में आ गये। मारपीट धूमधाम ही जीवन का कार्यक्रम बना हुआ था। मेरे पिता घोर पौराणिक थे। मेरी दादी को भागवत के कई स्कन्द याद थे। वह कभी २ सुनाया भी करती थी। पढ़ने लिखने की ओर बहुत कम ध्यान था। सन् १९०८ की बात है। गुलाबसिंह नामक एक मथुरा निवासी छात्र था मेरे पिता ने उसे मेरा अध्यापक नियत किया। सन् ९ में ज्योतिप्रसाद छात्र के द्वारा श्री अमरचन्द्र जी व्यास से परिचय हुआ। ये कुछ छात्रों को पढ़ते हुए भी पढ़ाया करते थे। उनके पास श्री जगन्नाथजी उपाध्याय आदि तीन चार साल हम पढ़ने जाने लगे। इनके पिता आर्य समाजी थे। इन्हीं की कृपा से कुछ ऐसा आर्य समाज का परिचय प्राप्त हुआ। सन् १९१० के आ. स. अजमेर के उत्सव में श्री पूज्य ब्रह्मचारी मुनिश्वरानन्दजी महाराज पधारे थे। उनके ओजस्वी और मार्मिक उपदेशों ने मेरा जीवन ही पलट दिया। उन्ही दिनों अमरचन्द्रजी ने आर्य विद्यार्थी सभा की स्थापना की कुछ ही समय पश्चात् उस समय नामी आर्यसमाजी सेठ चान्दमलजी अस्तार से परिचय हो गया। ये बड़े स्वाध्याय शील और तार्किक आर्य थे। इनकी दूकान मदार दरवाजे पर थी। इनके पास आर्य मित्र और सद्धर्मप्रचारक पत्र आया करते थे। वे सब हम पढ़ने लगे। उन्हीं दिनों श्री चान्दकरणजी शारदा श्रीमान्करणजी शारदा से परिचय हुआ और इनके सहयोग से विद्यार्थी सभा चलने लगी। श्री अस्तारजी के उपदेश और धर्म चर्चा से श्री धीसूलाल जी सरावगी जैन और श्री चान्दमल जी ओसवाल जैन के आर्य विचार बन गये। ये सज्जन भी हमारी सभा में आने लगे। मैं पढ़ने लिखने और नित्य कर्म में तल्लीन हो गया। पढ़ने लिखने के अतिरिक्त आर्य समाज के विषय में चर्चोत्तर दिन होने लगी। मेरी सारी रुचि इन्हीं कार्यों में लगने लगी। मुझे ऐसा प्रतीत होने लगा मानो मैंने कोई खोई हुई अमूल्य वस्तु पुनः प्राप्त करली। इन्हीं दिन श्री ब्रह्मदत्तजी सोढाजी से भी परिचय प्राप्त हुआ। विद्यार्थी सभा के मुनी श्री मांगीलालजी व्यास थे। सन् १९११ में मैं दयानन्द शाला विद्यालय का अध्यापक हो गया। यद्यपि मुझे कारखाने में नम्बर देने की नौकरी १५) मासिक की मिलर ही की, परन्तु मैंने ९) मासिक पर अध्यापन का कार्य आरम्भ किया। उन ८) में भी उस समय ठाट थे। कुछ छात्र पढ़ा लिया करता था। विद्यार्थी सभा में रात्रि पाठशाला चालू करदी। एक ओर दयानन्द वाचनालय चलता था। उन्हीं दिनों बा. जियालालजी को भी मैं आर्य विद्यार्थी सभा में लाया। ये भी पढ़ाया करते थे। मैं और श्री जियालालजी रोगियों की सेवा भी किया करते थे। उसका विवरण सभा के वृतान्त में श्री पं. मांगीलाल जी ने किया। एक बार अजमेर में शिव बाग में सनातन धर्म सभा का उत्सव था। उस समय एक शिवदत्तजी शास्त्री आये और वे खुले शब्दों में स्वामी दयानन्दजी का नाम लेकर अपशब्द कहते थे। उस दिन सभापति श्री पं. चन्द्रिका प्रसाद जी थे। श्री पं. बुलाकी रामजी शास्त्री भी वहां ही बैठे हुए थे। रविदत्तजी के कथन पर हम युवकों ने आपत्ति की और श्री पं. बुलाकीरामजी शास्त्री से निवेदन किया कि स्वामीजी का नाम ले कर ये अपशब्द कहते हैं, यह उचित नहीं इस पर उक्त शास्त्री जी प्रधानजी को लिख कर दिया। उन्होंने रविदत्त को यह कहा कि स्वामी दयानन्द के लिये अपशब्द न कहें। इस पर ये नहीं माने और प्रधानजी अपना आसन त्याग कर नीचे बैठ गये। सभा में खलबली मच गई। एक कट्टर प. पी पौराणिक ने मेरे थप्पड़ मारा। सारी सभा में खलबली मच गई और उसके पश्चात् वहां कभी सभा नहीं हुई। सन् ९१ में श्री पूज्य स्वामी दयानन्द जी महाराज अजमेर पधारे। उन दिनों यहां जैन तत्व प्रकाशनी सभा इटावे श्वेताम्बर उत्सव था। लगभग २५, जैन विद्वान् आये थे। जैनियों में एक पं. दुर्गादत्त शास्त्री भी था। जो अपने आपको पं, दीनदयालजी व्याख्यान वाचस्पति सनातन धर्म के मुख्य नेता का भतीजा कहता था। वह भी जैनी हो गया था उसका एक दिन दयानन्द कृतवेद भाष्य की पोल नाम से व्याख्यान हुआ, वह भी हमने सुना। इधर जैनियों से शास्त्रार्थ होने की चर्चा रात दिन चल रही थी। स्वनाम धन्य श्री राम विलास जी शारदा के

मासिक विज्ञापनों से जैनियों में खलबलि मचा रखी थी। अन्त तो गत्वा कश्च जगतकर्ता ईश्वर है। इस विषय पर शास्त्रार्थ होना प्रचार निश्चय हुआ, शेष पुनः सत्यप्रकाशजी शास्त्री का व्याख्यान और श्री पीयूषजी के मनोहर भजन होने को थे। अचानक वर्षा के आ जाने से आगे का कार्य क्रमबद्ध हो पाया। इस पुनीत पर्व को सफल बनाने में जोधपुर के आर्य भाई बहिनों ने पूर्ण सहयोग प्रदान किया, पुँजला नयापुरा और चौनपुरा के उत्साही आर्य श्री बा. मोहनलालजी आर्य और श्री पूनमसिंह जी आर्य का उद्योग प्रशंसनीय है।

मन्त्री नवनीत आर्य शास्त्री

## चैनपेरा जोधपुर में आर्यसमाज की स्थापना

स्थानीय समस्त आर्यसमाज नगर आर्यसमाज गुलाबनगर रातानाड़ा, सरदारपुरा व स्त्री समाज सरदारपुरा ने पुंजला नयापुरा ने चैनपुरा के प्रांगण में बड़े ही समारोह पूर्वक बड़े ही उत्साह से मिलकर मनाया। ता: १६ से १९-३-६८ तक प्रथम दिवस चैनपुरा के आसपास की बस्तियों में दोपहर के ३ बजे से नगर कीर्तन का कार्य आरंभ हुआ, जिसमें समीपस्थ बस्तियों के आर्य पुरुषों के अतिरिक्त श्री किसान कन्या पाठशाला नागोरी बेरा से प्रस्थान कर फूल बाग आमली वाला बेरा, मोची का बेरा, भीयाली चैनपुरा होता हुआ सायङ्काल ६ बजे चौनपुरा पाण्डाल में पहुंचा। इस कीर्तन आर्यवीर दल, मरूधर, व्यायामशाला, वैदिक कन्या पाठशाला बागर, आर्य कन्या पाठशाला सरदारपुरा व रातानाड़ा व अन्य शालाओं के छात्र छात्राओं ने पूर्ण रूपेण भाग लिया। नगर कीर्तन की समाप्ति के पश्चात यज्ञ और प्रवचन हुए। दिनाँक १७-३-६९ से १९-३-६९ तक सायंकाल के ७ बजे से १० बजे तक भजनोपदेशकों के भजन और विद्वानों के भाषण होते रहे। इस शुभ अवसर पर श्री पं० सत्यमित्रजी शास्त्री एम. ए., विद्याभास्कर श्री पं० हरिदत्तजी भजनीक, श्री पं० सत्य प्रकाशजी शास्त्री एम. ए, पुरोहित आ० स० रातानाड़ा, श्री पं० पन्नालालजी पीयूष, श्री ओमभक्तजी वानप्रस्थ उपमन्त्री आ० प्र० सभा राजस्थान आदि महानुभाव थे तीनों दिवस सरदारपुरा आर्यसमाज से एक बस सायं ७ बजे चलकर सौजति द्वार, नागोरी द्वार होती हुई चैंनपुरा पहुंच जाती थी। नगर के आर्य भाई बहनों ने इस बार इस पुण्य पर्व को सफल बनाने में पूर्ण योग प्रदान किया। बहुत अधिक संख्या में उत्साह पूर्वक आते रहे। तीनों दिवस भजन, व उपदेशकों का जनता पर उत्तम प्रभाव रहा। ता: १८ को मध्याह्न में दो बजे से वृहद

शेष पृष्ठ ७ पर

# क्या, सञ्चार मंत्रीजी विचार करेंगे ?

अनेक विचारक जिनमें मुहफट स्पष्ट-वक्ता कम्युनिस्ट भी है, कहते हुए सुने गये कि प्राय भारत सरकार के मन्त्रियों में चाहे केन्द्रीय हो या प्रादेशिक, ऐसे डरते है, जैसे कव्वा बंदूक की आवाज से या तीर-कमान से, कम्युनिस्टों की आलोचना से। यदि एक ही शब्द में कहे तो उनका नैतिक बल भीरू एवं शिथिल होगया है।

धनिकों के लिए कोई सच्ची और प्रशंसा योग्य बात कह दी या प्रकाशित करदी तो उन्हें कोई धनिकों का पिट्ठू न कह बैठे?

वैसे कृति में यह बात देखते हैं कि धन बटोरने का मौका मिलते ही कोई भी पीछे नहीं रहता। बल्कि कम्युनिस्ट तो देश विरोधी-जन विरोधी कार्य करके भी। ऐसी प्राय: मान्यता है। अस्तु—

बड़ी लम्बी २०-२० वर्ष की प्रतीक्षा के पश्चात् मैंने बड़े दुःख के साथ इन पंक्तियों को लिखने की धृष्टता की है। जनता की आवाज समाचार पत्रों द्वारा, सञ्चार मन्त्री जी का ध्यान आकर्षित करने।

क्या वर्तमान में स्व० दानवीर राजा बलदेव दास जी एवं आधुनिक भामाशाह स्व० जुगल किशोर जी बिरला बन्धुओं के समकक्ष देश के किसी दानवीर का नाम बतलाने की कृपा करेंगे? जिन्होंने पिछली अर्ध सदी याने ४० वर्ष में ५० करोड से अधिक एक अरब रुपये जन हितार्थ विविध कार्यों में दान देने का सद् साहस या उदारता की हो?

आज स्वराज्य प्राप्ति के पश्चात् शासक वर्ग के इशारे पर अनेकों धनिक उद्योगपति नीलाम के दाव लगाने की वृत्ति से अपने तिजोरियों के मुंह खोलने आगे बढ़ सकते है।

किन्तु जब अंग्रेजों की सत्ता बरकरार थी, कितने धनिक हिम्मत कर सकते थे! उस समय बिरला जैसे बिरले ही दलेरी के साथ जोखिम उठाकर कांग्रेस के चक्र को गतिमान रखने के लिए थैलिया उंडेल रहे थे?

अकेले पिलानी की ही मिसाल लीजिये, वहां की शिक्षण संस्थाओं का सालाना बजट १।-१॥ करोड रुपये का का है।

जिसकी पूर्ति बिरला ट्रस्ट की ओर से वर्षों से हो रही है। इतना ही नहीं, दिल्ली, कलकत्ता, बम्बई, बनारस, रांची, वल्लभ विद्यापीठ, सोमनाथ आदि देश के अनेक भागों में ही नहीं दूरस्थ लन्दन तक में विपुल दान राशि से अनेकों लोक कल्याणकारी कार्य निर्मित किये, व चला रहे हैं। अकेले बनारस के ही सन १९२५ से सन् १९६० तक स्वनाम धन्य स्व० राजा बलदेव दास जी बिरला द्वारा १ हजार गरीबों को प्रतिदिन अन्न वस्त्र की सहायता दी जा रही थी। उनके स्वर्गवास पर वाराणसी के गली कूचों में जन जन के मुंह से शब्द निकल रहे थे, "गरीबों का राजा सच्चा सखा बिरला राजा चल बसा।"

शायद यह बात महात्मा गांधी जी के निकटवर्ती लोगों के सिवाय बहुत कम को ज्ञात हो कि, जब विश्व कवि गुरुदेव टेगोर शान्ति निकेतन भारत भारती के लिए ड्रामा खेल कर सहायता प्राप्त करने स्वयं दिल्ली पहुंचे। राष्ट्रपिता गांधी जी ने एक नोट पत्रों में लिखा कि क्या गुरुदेव टैगोर जैसे विश्व विभूति को संस्था चलाने के लिए स्वयं ड्रामा खेलना पड़ेगा। बिरला बन्धुओं के ध्यान में आते ही बिना नाम के बड़ी राशि गुरुदेव के पास भेज दी गई। अस्तु

क्या हम सब लोग आशा कर सकते हैं, जनकसम स्वर्गोपमदानी महापुरुष के नाम का डाक टिकिट हमारी राष्ट्रीय सरकार के कर्णधार खासकर सञ्चार मन्त्री जी छपवा कर धनिकवर्ग को देश सेवार्थ बड़े बड़े ट्रस्ट निर्माण की प्रेरणा देंगे!

हमारे ध्यान से स्व० टाटा के सिवाय और किसी उद्योगपति का टिकिट शायद ही छपा है। या तो भीरुता वश या मनुष्य अल्पज्ञ है। शायद यह सुझाव अब कारगर सिद्ध होगा। धनिको से दो नम्बर का छुपा धन निकालने में सरकार के अनेक विधेयक जहां असफल रहे, वहां यह कार्य अधिक से अधिक प्रेरणादायी रहेगा।

आशा है, विद्वान व जागरूक सञ्चार मन्त्री जी अविलम्ब ध्यान देंगे।

उपयोगी सुझावदाता
कमलकिशोर कल्यंत्री
कमल किशोर कन्हैयालाल जी कलयंत्री
एम० एस० सी० टैक्नालाजी
C/o रेणु सागर पावर कं. पो रेणुसागर
जि मिर्जापुर

## महावीर व्यायाम शाला (केसरगंज) में दीक्षा समारोह

दि० २ मार्च ६९को अजमेर के अतिरिक्त जिलाधीश श्री हरिलाल जी ठाकुर की अध्यक्षता में महावीर व्यायाम शाला का वार्षिक दीक्षा समारोह बड़ी धूमधाम से मनाया गया। श्री पंडित सुरेन्द्र जी शर्मा श्री पं० धर्मदेव जी, श्री छगन लाल जी कश्यप ने सर्व प्रथम यज्ञ करके यज्ञ से बलवान बनने का महत्व बतलाया। तत्पश्चात् व्यायाम शाला के अध्यक्ष श्री प० महादत्त जी भार्गव ने अतिरिक्त जिलाधीश श्री हरिलाल जी ठाकर तथा श्री प० दौलत राम जी चतुर्वेदी संचालक आयुर्वेदी विभाग राजस्थान को शिरो, पाग भेंट कर स्वागत सम्मान किया। श्री अतिरिक्त जिलाधीश महोदय ने अपने कर कमलों से गुरुओं, खलीफाओं तथा नये पहलवानों को पगड़ी बधाकर सम्मानित किया। तथा अपने भाषण में पगड़ी के द्वारा, उत्तरदायित्व को पूरा करने के महत्व पर प्रकाश डाला श्री चतुर्वेदी जी ने गुरुओं तथा पहलवानो को प्रमाण पत्र प्रदान किए तथा मल्ल विद्या को स्वास्थ्य शौर्य प्राप्ति का प्रमुख साधन बतलाते हुए इस कला को अधिक समुन्नत बनाने पर बल दिया। यही नहीं उन्होंने वर्ष के सर्वश्रेष्ठ चुने आने वाले पहलवानों को २१) रुपए भेंट किये। कार्यक्रम उत्तम तथा प्रभाव शाली रहा श्रीकरण शारदा मन्त्री व्यायाम शाला ने इसके पूर्व इतिहास पर प्रकाश डालते हुए अतिथियों का स्वागत किया। तथा अन्त में उन्हे धन्यवाद दिया।

आर्य समाज छोटीखाटू का निर्वाचन श्री स्वामी ओमभक्त जी वानप्रस्थ उपमन्त्री आर्य प्रतिनिधि सभा, के प्रधानत्व में हुआ। दि० १०-३ ६९ को।

प्रधान.—श्री मांगीलाल जी भूरियां
उपप्रधान " किशनलाल जी आर्य
" " " मोटाराम जी गोस्वामी
मन्त्री " गुलाबचन्द
उपमन्त्री " चैतनराम गहलोत
कोषाध्यक्ष " गुलाबचन्द
पुस्तकालयाध्यक्ष पूर्णराम जी दिवराया
मुख्यप्रचारक " पं० धर्मदेव आर्य

मन्त्री
आर्य समाज, छोटीखाटू

शेष पृष्ठ ५ का

समाधान का समय रखा गया था। पूछा विचार श्री महासिंहजी ने ६ प्रश्न किये उनका समाधान श्री ओम्‌भक्तजी वानप्रस्थ ने किया, जिसमें प्रश्न कर्ता संतुष्ट हुआ, शेष समय गृहस्थ धर्म पर आप का प्रवचन और मारवाड़ी भाषा में भजन हुए जिससे भाई बहनों पर उत्तम प्रभाव रहा। आज चैत शुक्ल प्रतिपदा को आर्यसमाज स्थापना दिवस था, जिसमें श्री पं० हरिदत्तजी के भजन और श्री ओमभक्त का आर्यसमाज का महत्व पर भाषण हुआ, भाषण के पश्चात सभा के उपमन्त्री श्री ओम्‌भक्त जी वानप्रस्थजी ने शिलान्यास कार्य संरम्भ किया सूचना वानप्रस्थी को भेजी गई। आप एक दिवस पूर्व ही वहाँ पहुंच गये और बड़े ही समारोह के साथ उत्साह पूर्वक आधार शिला का कार्यक्रम सम्पन्न किया और जन साधारण का आर्यसमाज का महत्व बतलाया और १०१) उस कार्य में प्रदान करने की घोषणा की। इस शुभ अवसर पर डीडवाना निवासी चौ० हरिसिंहजी बड़े ही उत्साह से इस शुभ कार्य में सहयोग देने की घोषणा की और अपने पास से सहायता भी प्रदान की। इसी प्रकार अन्य कोई सज्जन ने भी वचन दिया श्री कुँ० लक्ष्मीनारायणजी मूलका आदि सज्जनों से भी आशा की जाती है।

## डीडवाना में आ० स० मन्दिर की आधार शिला

गत आठ मास पूर्व आ० प्र० सभा राजस्थान के उपमन्त्री श्री ओमभक्तजी वानप्रस्थ और सभा के भजनोपदेशक श्री पं० भगवती प्रसादजी भ्रमण ने तीन दिन ग्राम में प्रचार कर यह आर्यसमाज की स्थापना जिसका कार्य श्री गणपतसिंहजी आर्य के और श्री सोमराजजी आर्य सोनी आदि के सहयोग से समाज का कार्य सुचारु रूप से चलता रहा। आठ मास के पश्चात उक्त दोनों उत्साही सज्जनों ने यहाँ आर्यसमाज मन्दिर बनवाने का संकल्प किया। उक्त दोनों महानुभावों ने ५०१) प्रथम अपने पास से प्रदान किया और श्री सोमराजजी ने अपनी दुकान के लिए जो भूमि ली थी उसे समाज मन्दिर के लिए दे दी। आर्य समाज मन्दिर की आधार शिला रखने के लिए श्री गणपतसिंहजी अजमेर आये और सभा के सुयोग्य प्रधान श्री पं० भगवान स्वरूपजी न्यायभूषण से भेंट की। आधार शिला की तिथि चैत शुक्ल ५ रविवार थी। आपने समाज के अधिकारियों को लिख भेजा

दोपहर में कुँ. गणपसिंह जी के भवन में माता बहनों को ओमभक्त जी. ने भक्तिभाव पूर्ण भजन सुनाये और नारी धर्म पर उपदेश दिया जिसको सुनकर माता बहिनों को आर्य समाज की जानकारी हुई। रात्रि को सार्वजनिक उपदेश की योजना की परन्तु वानप्रस्थी जी का स्वास्थ्य ठीक न होने से सभा न हो सकी। २४.३-६९ को आपने यहां मूण्डवा के लिये प्रस्थान किया और आर्य समाज के उत्साही प्रधान मंवरलाल जी आर्य सोनी को लालचन्द जी आर्य के सद् प्रयत्न से बाजार में वास्तविक समाजवाद क्या है ? इस विषय पर १ घंटा व्याख्यान हुआ जिसका प्रभाव उत्तम रहा। समाज मंत्री श्री पं० बांगी जी आदि की प्रेरणा से दूसरे दिन भी व्याख्यान होता था। परन्तु आज अधिक ज्वर के कारण प्रचार नहीं हो पाया। यहां से नागौर प्रस्थान कर गया।

लालचन्द आर्य

## प्रचार आर्य

आर्य समाज द्वारा ईसाई विरोध सभा का आयोजन किया, जिसमें श्री केशवाचार्य जी महाराज "नागौर मठ" डीडवाना ने अध्यक्षता की, आपने यह विचार प्रकट किया कि आज पौराणिक और आर्य समाज हिन्दू मात्र को संगठित होकर हमारे भाईयों को धर्म विमुखता से बचाना चाहिए मैं आर्य समाज की इस प्रकार की प्रत्येक योजना में सब प्रकार के सहयोग देने की सहर्ष घोषणा करता हूँ। इसके बाद श्री कुञ्जबिहारी जी, श्री सम्पत लाल जी और श्री लालचंद जी आर्य ने अपने विचार प्रकट किया, विशेष रूप से राज्य सरकार से निवेदन किया कि राजकीय सेवा में रत क्रिश्चियन नर्सों पर धर्म प्रसार की रोक लगाई जावे और मजूदा शिक्षा में वैदिक धार्मिक शिक्षा का समावेश किया जावे। श्री सम्पतलाल जी शर्मा उपमंत्री ने "मिशन की नई चाल" कविता से उपस्थित सज्जनों को पूर्णतया सजगता प्रदान की।

२. दिनांक १०.३.६९ को श्री ओमभक्त ने समाज का निश्चय किया और एक सार्वजनिक सभा में "हिन्दुओ सावधान" मुस्लिम, ईसाईयत और कम्युनिस्ट के जाल का भंडाफोड़ किया और हिन्दुओ को सजगता प्रदान की।

३. दिनांक २७-३-६९ को राम नवमी पर्व हवन, भजन प्रतियोगिता और आम सभा का आयोजन किया। जिसमें श्री कुञ्जबिहारी जी, श्री सम्पतलाल जी पर्व की महत्ता, समाज का कर्त्तव्य एवं कार्य पर प्रकाश डाला और प्रत्येक हिन्दू को समाज को सहयोग की महत्ता बताई।

विनीत,
लालचन्द आर्य
प्रचारमंत्री, डीडवाना

आर्यसमाज सरदारपुरा जोधपुर का वार्षिक निर्वाचन दिनांक २३-२-६९ को ऋषि बोधोत्सव के अवसर पर सर्व सम्मति से निम्न प्रकार से सम्पन्न हुआ।

| | |
|---|---|
| प्रधान | श्रीमान् सरदारीलालजी बत्रा |
| उपप्रधान | श्रीमान् डा. सैन लालजी जी |
| " | श्री " कुंवरपालजी आर्य |
| " | श्री " मुकन्ददास जी |
| मंत्री | श्री हरेन्द्र कुमार गुप्त |
| उप मंत्री | श्री देवेन्द्र दत्त मा |
| " | श्री बालकृष्णजी |
| कोषाध्यक्ष | श्री मान मालजी |
| पुस्तकाध्यक्ष | श्री श्यामसुन्दर जी |
| प्रचार मंत्री | श्री रामनारायणजी |

अंतरंग के सदस्य

१. श्रीमहेशदत्तजी भार्गव
२. श्री महेन्द्रसिंहजी चौहान
३. श्री ओ३म् दत्त जी भाटी एम.एल.ए.
४. " सुखदेवजी गोयल
५. डा. मदनमोहनजी शर्मा
६. श्री सुबोधचन्द्रजी
७. श्री मोतीलालजी टाक
८. " किशनलालजी भाटिया
९. " रोशनलालजी मलिक
१०. " छोटेलालजी
११ " शान्ति स्वरूपजी बत्रा
१२. " विश्वम्भर दयाल जी

आडिटर श्री भवरलालजी शर्मा सी. ए.

## आर्यमार्तण्ड के प्रेमी पाठकों तथा लेखक महाशयों से प्रार्थना

प्राय: देखा जाता है कि आर्य मार्तण्ड के लेख आदि मेरे व्यक्ति गत नाम से ऋषि उद्यान के पते पर भेज देते हैं। मैं प्राय: समाजों में बाहर प्रचारार्थ चला जाता हूँ। ऐसी दशा में समय पर लेख वृत्तादि प्रकाशित नहीं हो पाते अत: आर्य मार्तण्ड के लिए वृत्त लेख पत्रादि दयानंद आश्रम केसरगंज अजमेर के पते पर ही भेजें।

ओमभक्त वानप्रस्थ
सम्पादक
आर्य मार्तण्ड, अजमेर

## श्री शंकराचार्य जी के खेद जनक कथन पर श्री श्रीकरण शारदा मन्त्री आर्य प्रतिनिधि सभा राजस्थान का वक्तव्य—

पटना में आयोजित विश्व हिन्दू धर्म सम्मेलन के अवसर पर पुरी के शंकराचार्य श्री निरंजन देवजी तीर्थ ने अस्पृश्यता को शास्त्रोक्त एवं हिन्दू धर्म का अंग कहकर सर्व साधारण जनता में एक खेद जनक वातावरण उत्पन्न कर दिया है। इससे विश्व व्यापी हिन्दू धर्म को तथा उसके अनुयायी करोड़ों हिन्दुओं के हृदयों पर भयंकर आघात पहुंचा है। इस प्रकार की संकीर्ण विचार धारा ने इस पवित्र धर्म को कितना आघात पहुँचाया है। इतिहास इसका साक्षी है। क्या शंकराचार्य जी उसी हिन्दुओं के पतनोन्मुख इतिहास की पुनरावृति चाहते हैं। शंकराचार्य जैसे विद्वान् सन्यासी को अपने पद के उत्तरदायित्व के महत्व को ध्यान में रखकर ही संगठनात्मक वक्तव्य देना चाहिए। व्यर्थ के प्रलाप से जनता में भ्रम उत्पन्न करके विघटनात्मक प्रवृत्ति को प्रोत्साहन नहीं देना चाहिए।

श्री अधिष्ठाताजी
गुरुकुल कांगड़ी
सहारनपुर



## वेद प्रचार

कोटा ज़िला में स्वामी परमानन्द का प्रचार कार्य चलापथा तथा गुलाबपुरा में दिनांक १-३-६१ रविवार को प्रातः काल यज्ञ हुआ। दोपहर को २ बजे श्री सुखदेवजी वानप्रस्थी कोटा तथा स्वामी परमानन्द द्वारा नगर कीर्तन हुआ। सायंकाल श्री प्रकाशमल श्री आर्य गुलाबपुरा वालो के यहाँ सार्वजनिक सभा हुई। वहाँ प्रचार दो रोज़ तक हुआ। प्रचार में आर्यसमाज बौंरा के प्रधान श्री पुरुषोत्तम स्वरूपजी एडवोकेट पंडित श्री मदन मोहनजी व्यास, श्री कीतर लालजी श्री जेठा भाई गुजराती, श्री सुन्दर लालजी आर्य आदि सज्जनों ने भाग लिया।

परमानन्द सरस्वती
आर्यसमाज बौंरा

## प्रचार कार्य

श्री स्वामी ओमूभक्त जी वानप्रस्थ जोधपुर, पूँगला, नवापुरा, साँभर, कुचामन, जोबियाना चोबला

९-श्री पं० भगवती प्रसाद जी भ्रमण बालोतरा, टमकोर, नसीराबाद, बांदीकुई आलावाड़, वार्ता मारवाड़, क्षेत्र.

श्री पं० सत्यानन्द जी वेदवागीश एम. ए व्याकरणाचार्य सुजान गढ़, बांदी कुई

१. श्री कामानंद जी सरस्वती अहमदाबाद, महमदाबाद, नाडियाद, कलोल अचानक हिम्मत नगर, बड़ाली, अम्बाजी खेरा-आदि क्षेत्र में प्रचार किया। स्कूल कालेजों में आपके प्रवचन बड़े प्रभावशाली रहे। १०० यज्ञोपवीत संस्कार तथा विवाह, मुण्डन आदि संस्कार भी सम्पन्न कराये। अब आप मध्य भारत के उज्जैन कुम्भ मेले में प्रचार कर रहे है।

## नये बालकों का प्रवेश

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय के विद्यालय विभाग में नये बालकों का प्रवेश वार्षिकोत्सव पर १० से १३ अप्रेल, १९६१ तक होगा। गुरुकुल की उपाधियां सरकार और विश्वविद्यालयों द्वारा स्वीकृत हैं। आश्रम-प्रणाली, शुद्ध जलवायु, उत्तम आचार-व्यवहार इस संस्था की मुख्य विशेषताएं हैं। प्रवेशार्थ प्रार्थना पत्र तथा नियमावली आचार्य गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय ज़िला सहारपुर से मंगाए जा सकते हैं।

आचार्य

## नागौर में अकाल पीड़ित गायों के सेवार्थ शिविर की स्थापना

नागौर (राजस्थान) में दि. २३ ३.६१ को अकाल पीड़ित गोसेवा समिति का गठन किया जाकर दि. २७-३-६१ श्री रामनवमी के शुभ दिवस से फलौदी क्षेत्र से आई हुई गायों का शिविर खोला गया है। समिति ने इस शिविर में लगभग ४०० गायों को संरक्षण देने की योजना बनाई है। इस समय २२५ गायो को प्रविष्ट करके चारा आदि खिलाया जा रहा है गोपालक इन गायों की सेवा कर रहे हैं: और भी गाये शिविर में शीघ्र ही आजायगी ऐसी सम्भावना है। प्रतिमाह १०००० रुपये का अनुमानित खर्च है। इसके लिये नगर में चंदा अभियान प्रारम्भ कर दिया गया है। राज्य सरकार से भी सहायता प्राप्ति की आशा है। जिलाधीश महोदय की भी पूर्ण सहानुभूति है।

समिति के संयोजक श्री लालचन्द जी पीती मन्त्री वकील श्री वंशीलाल जी सारस्वत कोषाध्यक्ष श्री अचरीलालजी लखी हैं। कार्यालय आर्य समाज भवन नागौर में केन्द्र भोजासर कुवाके पास रखा है।

## ईसाई महिला का शुद्धि

श्री यू० एल० लेखो, च हर्ड एकाउन्टेन्ट प्रधान आर्य समाज, के प्रयत्न से कल दिनांक १७।३।६१ को एक ईसाई महिला की शुद्धि हुई और आज उसका विवाह एक ब्राह्मण नवयुवक के साथ श्री सुरेन्द्र जी शर्मा, के अध्यक्षत्व में वैदिक रीति के अनुसार आर्य समाज कृष्ण पोल बाजार, जयपुर में सम्पन्न हुआ।

आर्य समाज कृष्ण पोल द्वारा एक मास में यह तीसरी शुद्धि है।

प्रचार मन्त्री
आर्य समाज, किशन पोलबाजार,
जयपुर

## गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर हरिद्वार के ६१ वें वार्षिक महोत्सव के उपलक्ष्य में

### नवीन ब्रह्मचारियों का प्रवेश तथा ११ अप्रेल को वेदारम्भ—संस्कार

अपने प्रिय बालकों को गुरुकुल की प्राचीन शिक्षा प्रणाली के आधार पर प्रविष्ट करने वाले सज्जनो को यह सूचना देते हुए हर्ष होता है कि इस वर्ष गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर हरिद्वार में उत्सव के अवसर पर नवीन छात्रों को प्रवेश होगा। की सुव्यवस्था, प्राचीन आश्रम प्रणाली के वातावरण को देखते हुए प्रत्येक के लिए आकर्षक गुरुकुल में अपने बच्चों को प्रविष्ट कराए। नियमावली तत्काल महाविद्यालय के पते पर पत्र भेज कर मगावें। स्थान कम हैं। अतः शीघ्रता करें।

गुरुकुल के उत्सव पर सपरिवार पधार कर धर्म लाभ उठायें

(प्रकाश चन्द्र शास्त्री),
मन्त्री-सभा।

## आर्य मार्तण्ड के नये आजीवन सदस्य

१०१) श्रीमान गार्पीवल्लभ जी कोटा
११) ० वा. अजन चन्द जी एड,ोकेट

जिन महानुभावों ने आजीवन सदस्यता की स्वीकृति तो प्रदान कर दी है। किन्तु १०१) की राशि अभी तक नहीं भेजी, कृपया. शीघ्र भिजवाने का कष्ट करें

—सम्पादक

## हर्ष सूचना—

श्री कुंज बिहारी लाल जी माथुर, आर्य समाज के उत्साही कार्य कर्ता एवं विद्वान उपदेशक हैं। उन्होंने सभा को ६ मास का समय कृपा पूर्वक सभा को प्रचारार्थ प्रदान किया है। जो समाजें उन्हें आमंत्रित करना चाहें। कृपया सभा को अवश्य सूचित करें

—मंत्री

## आर्यसमाज महर्षि दयानन्द मार्ग बीकानेर का वार्षिक चुनाव

रविवार दिनांक ६० मार्च १९६१ को, आदरणीय डाक्टर श्री गोविन्द रामजी की अध्यक्षता में सम्पन्न हुये निम्नलिखित पदाधिकारी सर्व सम्मति से निर्वाचित किये गये।

| | | |
|---|---|---|
| १ | श्री यशपालजी | प्रधान |
| २ | श्री ब्रह्मदत्त जी | उप प्रधान |
| ३. | " रामचन्द्रजी भण्डारी | " " |
| ४. | " अमृतचन्द जी | " " |
| ५ | " रणजीतसिंह यादव | मन्त्री |
| ६. | " सूरतसिंह वाडिया | उप मन्त्री |
| ७ | " बहादुरमलजी | " " |
| ८. | " मुन्शीराम जी | कोषाध्यक्ष |
| ९ | " उदयशंकरजी व्यास | पुस्तकाध्यक्ष |

सर्व श्री असगाज सोनी, मनोहरलाल आर्य, जगमोहन मित्तल, चम्पालाल सोनी, जयकृष्ण पंवार, हरबंशसिंह, बीरबलराम, शम्भूराम यादव काशीराम, इन्द्रजीतसिंह, हनुमानजी तथा श्रीमती गोरा देवी जी को अन्तरग का सभासद चुना गया।

भवदीय
सूरतसिंह वाडिया
मन्त्री

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय स्वच्छ वातावरण, उपयोगी शिक्षा, सहज सहन

श्री प० भगवानस्वरूपजी 'न्यायभूषण'' के प्रबन्ध से वैदिक यन्त्रालय अजमेर में मुद्रित और ओम्प्रकाश वानप्रस्थ, सम्पादक प्रकाशक द्वारा दयानन्द आश्रम, केसरगंज अजमेर से प्रकाशित। अधिष्ठाता—श्रीमान् डा० भवानीलालजी भारतीय एम. ए. पी. एच. डी पाली

पाक्षिक
'आर्य प्रतिनिधि सभा राजस्थान का मुख-पत्र
रजि० नं० १५ जे


# आर्य मार्तण्ड

दयानन्द आदित्य से पाकर ज्योति प्रचण्ड । ध्वस दम्भ पाखण्ड का करे आर्य्यमार्तण्ड ॥

वर्ष ४७ | वार्षिक मूल्य ५) रुपया | सम्पादक—श्री ओम्भक्त वानप्रस्थ ( रामसहाय शर्मा ) | एक प्रति का ९० पै० | अङ्क ६
अजमेर ज्येष्ठ कृष्णा १४ सं २०२६वि., दि. १५ मई ६९ दयानन्दाब्द १४५

## ईश्वर-प्रार्थना

**ओ३म् अग्न आयूंषि पवस आसुवोर्जमिषचनः।**
**आरे बाधस्व दुच्छुनाम् ॥**

ऋग्वेद-९।६६।१९॥

**भावार्थ**—(अग्ने) सर्वप्रकाशक तेजस्विन ! (आयूंसि) जीवन की (पवसे) रक्षा करो। (न) हमको (ऊर्जम्) बल पौरुष (इषम्) और अन्नादि प्राप्त कराइये। हमारे (दुच्छुनाम्) राक्षसो को हमसे (आरे) दूरकर (बाधस्व) पीड़ित करो।

## पद्यानुवाद

सब प्रकाशक तेजस्विन जीवन की रक्षा करो।
अघ हर ! दे सद् अन्नादि हृदय बल पौरुष भरो॥

अर्कादान आर्य
कवि कुटीर—कुरडायाँ (राज०)

### दि० २ जून को शारदा जयन्ती

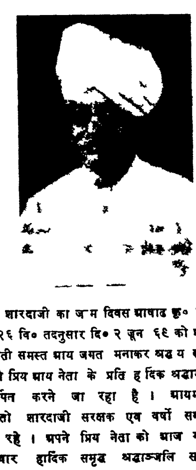
दिनांक २ जून ६९ को दयानन्द आश्रम केसर गज अजमेर मे नगर की समस्त शिक्षण संस्थाओ तथा आर्य जनता की ओर से सायकाल ७ बजे शारदा जयन्ती मनाने का आयोजन किया गया है। सभी नागरिको की उपस्थिति उक्त अवसर पर सादर प्रार्थनीय है। —सयोजक

### पुष्कर में वैदिक विवाह

शुभ मिति जेष्ठ कृष्णा चतुर्थी सोमवार को श्रीमान् बा० चान्दमलजी अरोड़ा की पुत्री शकुन्तला का पाणिग्रहण सस्कार विजयनगर निवासी श्री रामेश्वरलालजी अरोड़ा के पुत्र श्री कजोड़ीमलजी के साथ श्री ओम्भक्तजी वानप्रस्थ और श्री प० भीममनजी वानप्रस्थ ने विधि पूवक सम्पन्न किया। विवाह के मत्रो की व्याख्या श्री ओम्भक्तजी ने सरल भाषा मे की जिसका प्रभाव माता बहिनो और अन्य श्रोताओ पर उत्तम पड़ा इस शुभ अवसर पर श्री अरोड़ा जी ने ५) वेद प्रचारार्थ प्रदान किये।

पन्नालाल शर्मा
राजवैद्य

भारत केसरी स्व० चादकरणजी शारदा



शारदाजी का जन्म दिवस आषाढ कृ० २ स० २०२६ वि० तदनुसार दि० २ जून ६९ को शारदा जयन्ती समस्त आर्य जगत मनाकर श्रद्धेय स्वर्गीय अपने प्रिय आर्य नेता के प्रति हार्दिक श्रद्धाञ्जलि समर्पित करने जा रहा है। आर्यमार्तण्ड के तो शारदाजी सरक्षक एव वर्षो सम्पादक भी रहे। अपने प्रिय नेता को आज मार्तण्ड परिवार हार्दिक समृद्ध श्रद्धाञ्जलि समर्पित करता है।

शारदा जयन्ती मनाइये राजस्थान ही नही अन्तर्भारतीय आर्य नेता स्व० चादकरणजी शारदा की जन्म जयन्ती दि० २ जून ६९ को है इस अवसर पर सार्वजनिक सभाएँ कवि गोष्ठियाँ वाद-विवाद तथा निबन्ध प्रतियोगिताये ससमारोह मनाकर आर्य जनता को अपनी हार्दिक श्रद्धाञ्जलि समर्पित करना चाहिये। प्रात की प्रत्येक आर्य समाज तथा बन्धु इस आयोजन को अवश्य प्राथमिकता देकर प्रभाव शाली कार्यक्रम का आयोजन करे।

ओम् भक्तवानप्रस्थ
उपमन्त्री सभा

## आर्य जनता सावधान !

श्री भगवती प्रसादजी जो गत कई वर्षों से सभा के उपमत्री व कुछ समय मत्री पद पर कार्य करते रहे। परन्तु जब इनके स्थान पर प्रात के आर्य प्रतिनिधियो ने दूसरा मत्री चुन लिया, इन्होने आ० प्र० सभा के हिसाब आदि के रजिस्टर और सभा की मोहर और साइकिल व अन्य सब सामान दबा लिया और अधिकारियो पर झूठा अभियोग चलाकर पीछा किया। आ० स० आदर्श नगर ने भी इन को अपनी समाज का मत्री बनाया। जब दूसरे वर्ष ये इस पद पर नही रहे, तो इन पर भी अभियोग चला दिया। अत ऐसी वृत्ति के लोगो से आर्य भ्राता सावधान रहे। इसी में समाज का हित है।

—ओम् भक्त वानप्रस्थ उपमत्री सभा

## भगवान तू कहां है

**रचयिता—श्री गजानन्द जी त्रिवेदी**

ईमान बेचा जा रहा आजा छिपा कहाँ है।
जो धर्म पर अटल था इन्सान वह कहाँ है॥
तुझको पुकारती है, इज्जत के लिए अबला।
हे द्रौपदी के रक्षक ! भगवान तू कहाँ है॥
दानव के कारनामे काले गजब ढहाते।
ये धर्म को कुचल कर, मद की नदी बनाते॥
तू देख रहा छिपकर ये काले कारनामे।
निर्बल को तू बचाले भगवान तू कहाँ है॥
गज को बचाया तूने, तू स्वर्ग छोड़ दौड़ा।
अब तक रहा है क्यो कर तू शेष शय्या पौढ़ा॥
उस अजामिल से तूने पापी कई उबारे।
इस वक्त शान्त क्यो है भगवान तू कहाँ है॥
इन मन्दिरो गुरुद्वारो मे यह हो रहा क्या देखा।
तव प्रस्तरीय प्रतिमा झूठी बनी है देखा॥
अवलोक कर गरीबी, कहता है यह गजानन्द।
निर्धन तुझे पुकारे भगवान तू कहाँ है।

महर्षि दयानन्द की कसौटी पर

# भारत का इतिहास

लेखक—श्री पं॰ शतकुमारजी शास्त्री, "साधु सोमतीर्थ" देहली

( गतांक से आगे )

भारत की प्राचीन उन्नति के प्रसग मे ही महर्षि लिखते हैं:—

"और मोक्षमूलर साहब के सस्कृत साहित्य और थोडी सी वेद की व्याख्या देखकर मुझ को विदित होता है कि मोक्षमूलर साहब ने इधर उधर आर्यावर्त्तीय लोगो की की हुई टीका देखकर कुछ कुछ यथा तथा लिखा है।"

आगे लिखते हैं —

"यह निश्चय है कि जितनी विद्या और मत भूगोल मे फैले हैं, वे सब आर्यावर्त्त देश से ही प्रचरित हुए हैं। देखो! कि एक 'जैकालियट' साहब [ मूल मे "गोलुष्टकर" था ] अर्थात् फ्रास देश निवासी अपनी "बायबिल इन इण्डिया" [ नाम की पुस्तक ] मे लिखते हैं कि सब विद्या और भलाइयो का भण्डार आर्यावर्त्त देश है। और सब विद्या तथा मत इसी देश से फैले हैं। और परमात्मा से प्रार्थना करते हैं कि हे परमेश्वर! जैसी उन्नति आर्यावर्त्त देश की पूर्वकाल मे थी, वैसी ही हमारे देश की कीजिये।"

शाहजहाँ बादशाह का सब से बडा बेटा और औरंगजेब बादशाह का बडा भाई दाराशिकोह भारतीय संस्कृति और वैदिक ब्रह्म-विद्या का एक प्रसिद्ध प्रेमी था। राज्य के लोभी औरगजेब ने अपने पिता को कैद करके राज्य सिंहासन पर बलात् अपना अधिकार कर लिया था और राज्य के वास्तविक उत्तराधिकारी दारा शिकोह को तथा अपने छोटे भाई मुराद को भी मरवा डाला था। धर्मात्मा दारा शिकोह का उल्लेख महर्षि दयानन्द जी इस प्रकार करते हैं:—

"तथा "दारा शिकोह" बादशाह ने भी यही निश्चय किया था कि जैसी पूरी विद्या सस्कृत मे है, वैसी किसी भाषा में नही। वे ऐसा उपनिषदों के भाषान्तर मे लिखते हैं कि मैंने अर्बी आदि बहुत सी भाषा पढी, परन्तु मेरे मन का सन्देह छूटकर आनन्द न हुआ। जब सस्कृत देखा और सुना तब निःसन्देह मुझ को बडा आनन्द हुआ है।"

आगे "मान-मन्दिर" का उल्लेख करते हैं.—

"देखो, काशी के "मान-मन्दिर मे शिशुमार चक्र को, कि जिस की पूरी रक्षा भी नहीं रही है तो भी कितना उत्तम है कि जिसमे अब तक भी खगोल का बहुत सा वृत्तान्त विदित होता है। जो "सवाई जयपुराधीश" उसकी सम्भाल और फूटे-टूटे को बनवाया करेंगे, तो बहुत अच्छा होगा।"

महाभारत के युद्धकाल की दुर्घटनाओं का विचार आते ही वे रह-रहकर खेद प्रकट करने लगते हैं —

"परन्तु ऐसे शिरोमणि देश को महाभारत के युद्ध ने ऐसा धक्का दिया कि अब तक भी यह अपनी दशा मे नही आया। क्योकि जब भाई को भाई मारने लगे, तो नाश होने मे क्या सन्देह?"

आगे लिखते हैं —

विनाशकाले विपरीत बुद्धि ॥

[ वृद्ध चाणक्य—१६।१७ ]

यह किसी कवि का वचन है। जब नाश होने का समय निकट आता है, तब उल्टी बुद्धि होकर उल्टे काम करते हैं। कोई उनको सूधा समझावे तो उल्टा मानें और उल्टा समझावे, उसको सूधी मानें। जब बडे-बडे विद्वान्, राजा, महाराजा, ऋषि, महर्षि, लोग महाभारत युद्ध मे बहुत से मारे गये और बहुत से मर गये तब विद्या और वेदोक्त धर्म का प्रचार नष्ट हो चला। ईर्ष्या, द्वेष, अभिमान आपस मे करने लगे। जो बलवान् हुआ, वह देश को दबाकर राजा बन बैठा। वैसे ही सर्वत्र आर्यावर्त देश में खण्ड-खण्ड राज्य हो गया। पुन द्वीप-द्वीपान्तर के राज्य व्यवस्था कौन करे। जब ब्राह्मण लोग विद्या हीन हुए, तब क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रो के अविद्वान् होने मे तो कथा ही क्या कहनी? जो परम्परा से वेदादिशास्त्रो का अर्थ सहित पढ़ने का प्रचार था, वह भी छूट गया।"

[सत्यार्थ-प्रकाश, ११वा समुल्लास]

महाभारत के शान्ति पर्व, अध्याय ३२७ का प्रमाण देकर महर्षिजी लिखते हैं —

"एक समय व्यासजी अपने पुत्र शुक और शिष्य सहित पाताल अर्थात् जिसको इस समय "अमेरिका" कहते हैं, उसमे निवास करते थे। शुकाचार्य ने पिता से एक प्रश्न पूछा कि आत्म-विद्या इतनी ही है, वा अधिक? व्यासजी ने जानकर उस बात का प्रत्युत्तर न दिया, क्योकि उस बात का उपदेश कर चुके थे। दूसरे की साक्षी के लिये अपने पुत्र शुक से कहा कि हे पुत्र! तू मिथिलापुरी मे जाकर, यही प्रश्न जनक राजा से कर, वह इस का यथायोग्य उत्तर देगा। पिता का वचन सुनकर शुकाचार्य मिथिलापुरी की ओर चले।"

मार्ग का उल्लेख करते हैं:—

"प्रथम मेरु अर्थात् हिमालय से ईशान उत्तर और वायव्य [कोण] मे जो देश बसते हैं, उनका नाम हरिवर्ष था, अर्थात् हरि कहते हैं बन्दर को। उस देश के मनुष्य अब भी रक्तमुख अर्थात् वानर के समान भूरे नेत्र वाले होते हैं। जिन देशों का नाम इस समय "यूरोप" है, उन्हीं को सस्कृत मे "हरिवर्ष" कहते थे। उन देशों को देखते हुए और जिनको हूण "यहूदी" भी कहते हैं उन देशों को देखकर चीन मे आये। चीन से हिमालय और हिमालय से मिथिलापुरी को आये।

श्रीकृष्ण तथा अर्जुन की अमेरिका यात्रा देखिये:—

"और श्रीकृष्ण तथा अर्जुन पाताल मे अश्वतरी अर्थात् जिसको अग्नियान नौका कहते हैं, उस पर बैठ के पाताल मे जाके महाराजा युधिष्ठिर के यज्ञ मे उद्दालक ऋषि को ले आये थे।"

भारतीय राजाओ के अन्तर्राष्ट्रीय विवाह:—

"धृतराष्ट्र का विवाह गान्धार जिसको "कन्धार" कहते हैं, वहा की राजपुत्री से हुआ। माद्री पाण्डु की स्त्री 'ईरान" के राजा की कन्या थी। और अर्जुन का विवाह पाताल मे जिसको 'अमेरिका" कहते हैं, वहा के राजा की लडकी, उलोपी के साथ हुआ था। जो देशदेशान्तर द्वीप द्वीपान्तर मे न जाते होते तो ये सब बातें क्योकर हो सकतीं? मनुस्मृति मे जो समुद्र मे जानेवाली नौका पर कर लेना लिखा है, वह भी आर्यावर्त से द्वीपान्तर मे जाने के कारण है।"

[सत्यार्थ-प्रकाश, १० वा समुल्लास]

आगे लिखते है —

"जब महाराजा युधिष्ठिर ने राजसूय यज्ञ किया था, उस मे सब भूगोल के राजाओ को बुलाने के निमन्त्रण देने के लिये भीम, अर्जुन, नकुल और सहदेव चारो दिशाओ मे गये थे। जो दोष मानते होते, तो कभी न जाते।"

स्मरण रहे कि भारत के हिन्दू-समुदाय पहिले समुद्र-यात्रा को दोष बताया करते थे। जब कोई समुद्र-यात्रा करके लौटता था, तो उससे प्रायश्चित्त करवाये जाते थे और जात-बिरादरी द्वारा उसे दण्डित भी किया जाता था। जब महर्षि दयानन्द जी ने वेदोद्धार का कार्य आरम्भ किया था, तब यहा समुद्र यात्रा का विरोध बहुत उग्रता से किया जा रहा था। आज तो इस बात पर विश्वास करना भी कठिन है। महर्षि दयानन्दजी युक्ति-प्रमाण पूर्वक समुद्र-यात्रा और विदेश-यात्रा के विरोधियो को करारी फटकार लगाई थी। कहना न होगा कि अपने इस अभियान मे महर्षि ने पूर्ण विजय प्राप्त की थी। वे सत्यार्थ-प्रकाश के १०वें समुल्लास मे लिखते है —

"सो प्रथम आर्यावर्त देशीय लोग व्यापार, राजकार्य और भ्रमण के लिये सब भूगोल मे घूमते थे। और जो आज-कल छूतछात और धर्म नष्ट होने की शका है, वह केवल मूर्खों के बहकाने और अज्ञान के बढने से है। जो मनुष्य देश-देशान्तर और द्वीप द्वीपान्तर मे जाने आने में शका नही करते, वे देशदेशान्तर के अनेकविध मनुष्यो के समागम रीति भांति देखने, अपना राज्य और व्यवहार बढाने से निर्भय शूरवीर होने लगते, और अच्छे व्यवहार का ग्रहण, बुरी बातो को छोडने मे तत्पर होके, बडे ऐश्वर्य को प्राप्त होते हैं। भला जो महाभ्रष्ट म्लेच्छकुलोत्पन्न वेश्या आदि के समागम मे छूत और दोष मानते हैं!!! यह केवल मूर्खता की बात नही तो क्या है?"

(शेष पृष्ठ ७ पर)

# आर्य मार्तण्ड

अजमेर ज्येष्ठ कृष्णा १४ सं० २०२६ वि० दिनांक १५ मई सन् १९६९

सम्पादकीय—

'अधिष्ठाता की कलम से—

## ऋषि दयानन्द विषयक महत्वपूर्ण उल्लेख

लेखक—श्री डा० भवानीलालजी भारतीय, एम० ए० पी० एच० डी०

आज भारत के विभिन्न विश्वविद्यालयों में महर्षि दयानन्द और आर्यसमाज विषयक उच्च-स्तरीय शोध और अनुसधान का कार्य हो रहा है। विदेशी विद्वान् भी इस कार्य मे सलग्न हैं। एक अमेरिकन शोध विद्वान् श्री जा० आर० जुस्वी का गत मई मास से मुझ से निरन्तर पत्रव्यवहार हो रहा है। वे उत्तर प्रदेश मे आर्यसमाज की विगत-कालीन गतिविधियों पर शोध कार्य कर रहे हैं। इसी प्रकार श्री सुरेशचन्द्र भार्गव (पता स्टेट बैंक आफ इण्डिया अजमेर) महर्षि के सामाजिक और राजनैतिक विचारो पर, प्रो० मदनमोहन जावलिया आर्यसमाज की हिन्दी पत्रकारिता को देन विषय पर तथा डी० ए० वी० कालेज, शोलापुर के प्रो० सोनवणे आर्यसमाज की हिन्दी गद्य को देन विषय पर पी० एच० डी० उपाधि हेतु शोध कार्य करने में सलग्न है।

आर्यसमाज और ऋषि दयानन्द विषय पुराने ग्रन्थो और पत्र पत्रिकाओ को पढने के अनन्तर मेरी यह धारणा बनी है कि इस प्रकार की सम्पूर्ण सामग्री को एकत्र किया जाय या कम से कम उसकी एक सूची बना दी जाय। इससे शोधार्थी विद्वानो का हित होगा तथा सामान्य आर्य बन्धु भी यह जान सकेंगे कि ऋषि दयानन्द और आर्यसमाज के विषय मे विभिन्न स्वदेशी और विदेशी विद्वानो की क्या धारणा रही है तथा तत्कालीन पत्र पत्रिकाओं मे एतद् विषयक क्या उल्लेख हुए हैं। नमूने के लिए कुछ उल्लेख यहा दिये जा रहे हैं—

(१) जर्मनी के सुप्रसिद्ध विद्वान् प्रो० मैक्स-मूलर ने अपने ग्रन्थ Physical Religion के पृष्ठ ९९ पर स्वामीजी के लिखे विषय मे था—बुद्ध का उद्देश्य ब्राह्मणो से द्वेष करने का नही था और नहीं वह ब्राह्मणों के मत पर कटाक्ष करने की रुचि रखता था। वह केवल ब्राह्मणो, यज्ञो मे पशु के बलिदान का और विशेष करके ब्राह्मण ग्रन्थो के ईश्वरोक्त होने का खण्डन करता था और यह आश्चर्यमय बात है कि वर्तमान समय का सुधारक दयानन्द सरस्वती भी ऐसा ही करता है अर्थात् दयानन्द सरस्वती वेद मन्त्रों को ईश्वरोक्त मानता है परन्तु ब्राह्मण ग्रन्थो को मनुष्यकृत कहता है।"

(२) सुप्रसिद्ध सस्कृत विद्वान सरमोनियर विलियम्स ने स्वामी जी के विषय में अपने बौद्ध-मत नामक ग्रन्थ के पृष्ठ २२६, २२७ पर एक लम्बा विवरण प्रस्तुत करते हुए बम्बई मे उनसे मिलने का उल्लेख किया। इसी विद्वान् ने Indian Magazine जुलाई १८८७ के अङ्क मे तथा अपनी पुस्तक Brahmanism and Hinduism के पृष्ठ ५२९ पर भी स्वामी जी के विषय में विस्तारपूर्वक लिखा।

(३) महर्षि ने अपने तेजस्वी सस्कृतज्ञ शिष्य प० श्याम जी कृष्ण वर्मा को एक पत्र सस्कृत में लिखकर आक्सफोर्ड भेजा था। पत्र मेरठ मे १३ जुलाई १८८० को लिखा गया इस पत्र का अंग्रेजी अनुवाद सरमोनियर विलियम्स ने किया और उसे लन्दन से प्रकाशित होने वाले The Athenuim नामक पत्र के अक्टूबर १८८० के अङ्क में Sanskrit as a living Language सस्कृत एक जीवित भाषा के शीर्षक से प्रकाशित किया। इसमे मैक्समूलर और मोनियर विलियम्स को श्री महाराज ने 'प्रियवर' कहा है और लन्दन नगर को नन्दनपुरी' कह कर सम्बोधित किया है।

(४) एक प्रत्यक्षदर्शी ने श्री महाराज के विषय मे एक ब्राह्मसमाजी पत्र Unity and Minister मे लिखा था—"हमने उनका दर्शन किया और उनसे बातचीत की, उनके दर्शन से जिसकी कान्ति और तेज राजवत् देदीप्यमान था, हम आकर्षित हो गये थे। सचमुच उनका समाज जिस दिशा मे है उस दशा मे न होता यदि उनकी निजावस्था प्रभावशालिनी न होती। ब्राह्म लोग स्वामी जी की बडी प्रतिष्ठा करते थे।" इस उद्धरण को लाहौर से प्रकाशित हाने वाली आर्य पत्रिका ने अपने १४ दिसम्बर १८९७ के अङ्क मे उद्धृत किया था।

(५) कलकत्ता के सनातनधर्मी पत्र 'धर्म दिवाकर' ने अपने अङ्क मार्गशीष १९४० वि० (भाग १ अङ्क ८ पृ० १२४) मे स्वामी जी को परमयोगी और जडभरत का अवतार लिखा।

(६) अमेरिका के प्रसिद्ध लेखक और अध्या त्मवादी योगी एण्ड्रू जैक्सन डेविस ने ऋषि दयानन्द और आर्यसमाज के विषय मे अपना प्रसिद्ध वक्तव्य Beyond the Velley नामक ग्रन्थ के पृष्ठ ३८३ पर लिखा। आर्यसमाज को उस धधकती अग्नि की उपमा दी है जो ससार के सम्पूर्ण अन्धविश्वास और मत मतान्तरो के कल्मष को नष्ट कर देगी। उसके अनुसार यह अग्नि महर्षि के हृदय से प्रज्वलित हुई है। हिन्दू, मुसलमान और ईसाई सभी इस अग्नि को बुझाने के लिए दौडे, परन्तु वह आग बुझने की अपेक्षा अधिकाधिक बढ रही है।

(७) प्रो० मैक्समूलर ने पालमाल गजट नामक एक पत्र के जनवरी अथवा फरवरी १८८४ के अङ्क में स्वामी जी के विषय मे लेख लिखा था। उन्होने अपने Biographical Essays नामक ग्रन्थ के पृष्ठ १६७–१८० तक स्वामी जी का उल्लेख किया है। मैक्समूलर की हार्दिक इच्छा थी कि व दयानन्द की जीवनी लिखें। इस सम्बन्ध मे उन्होने भारत की आर्यसमाजो से पत्र व्यवहार भी किया था। खेद है कि आर्यसमाजो ने अपने प्रवतक और आचार्य के विषय मे कोई सामग्री मैक्समूलर को नही दी। अत: उक्त प्रोफेसर ने अपनी व्यक्तिगत जानकारी के आधार पर ही स्वामी जी विषयक उल्लेख उक्त पुस्तक मे किये हैं। इसके विपरीत जब मैक्समूलर ने रामकृष्ण परमहस के विषय मे उनके ससार प्रसिद्ध शिष्य स्वामी विवेकानन्द से जानकारी प्राप्त की तो विवेकानन्द ने अपने गुरु के सम्बन्ध मे उन्हे महत्वपूर्ण जानकारी प्रदान की। फलत मैक्समूलर ने रामकृष्ण का विशद जीवन चरित लिखा। काश, मैक्समूलर जैसे ख्यातिप्राप्त पाश्चात्य विद्वान् की लेखनी से श्री महाराज का जीवन चरित लिखा जाता तो वह एक अद्वितीय ग्रन्थ होता। Biographical Essays मे महर्षि विषयक उल्लेख को अब भारत (कलकत्ता सुशील गुप्त एण्ड कम्पनी) मे प्रकाशित 'From Ram Mohan to Ram Krishna' शीर्षक पुस्तक मे पढा जा सकता है।

—शेष फिर

## सूचना

ग्रीष्मावकाश मे आर्यमार्तण्ड के अधिष्ठाता और सभा के उपमन्त्री डा० भवानीलाल जी भार-तीय प्रान्त की समाजो को प्रचारार्थ अपना समय देना चाहते हैं। जो समाजें प्रशसित डा० साहब का प्रचार हेतु उपयोग जून मास मे लेना चाहे वे उनसें गवर्नमेन्ट कालेज पाली के पते से पत्र व्यवहार करे।

विनीत
मन्त्री
आर्यसमाज, पाली।

# मेरे जीवन के संस्मरण

( श्री ओमूभक्त वानप्रस्थ मू० पू० रामसहाय शर्मा )

सन् १२ मे अजमेर श्री पूज्य स्वामी दर्शनानन्द जी महाराज का आगमन हुआ। उन्ही से जैन तत्वप्रकाशनी सभा इटावा की ओर से श्री गोपालदासजी वरैया ( मुरेना ) निवासी के साथ। क्या जगत कर्त्ता ईश्वर है ? इस विषय मे श्री सेठ ताराचन्द जी जैन नसीराबाद के प्रधानत्व मे शास्त्रार्थसुसम्पन्न हुआ। श्री स्वामी जी के युक्ति का उत्तम प्रभाव रहा। परिणाम स्वरूप श्री प० दुर्गादत्त जी शास्त्री ने सूचना भेजा कि मैं पुन पवित्र वैदिक धर्म की शरण में आने का इच्छुक हूँ। मैंने श्री मन्त्री जी आर्यसमाज अजमेर का आज्ञा से शाला से अवकाश लेकर जहाँ लगभग२५जैन विद्वान् पन्डित ठहरे थे। वहाँ गया और शास्त्री जी को श्री स्वामी जी का सेवा में आर्यसमाज मन्दिर मे ले आया। जैन धर्म परित्याग नामक विज्ञापन दुर्गादत्त जी शास्त्री के नाम से सारे अजमेर नगर मे बाँटे गये। मैं उन दिनों सरावगी मोहल्ला मे रहता था। मेरे इस काय से बहुत से जैन भाई नाराज हुए और मुझे मारने मेरे घर पर आ गये। परन्तु मैं सूचना पत्र बाँट रहा था। पण्डित दुर्गादत्त जी शास्त्री को श्री पण्डित जियालाल जी के घर पर ठहराया। इन दिनों आयसमाज और जैनियो में खूब विज्ञापन बाजी रही। आयसमाज का ओर से झलक के धनीश्रद्धेय बा० रामविलास जो शारदा थे। इनके मार्मिक लेखो की चर्चा सारे नगर म थो। श्री सेठ किशनलालजी लड्ढा का भी हमारे साथ पूरा सहयोग था। कुछ समय नगर मे खूब चहल पहल रही। दूसरे पण्डित श्री शम्भूदत्त जी जन शास्त्री का भी लाया और उनका भी जन धम परित्याग सूचना पत्र प्रकाश हुआ। उसक पश्च त् अजमेर का शाखा जैन तत्व प्रकाशनी सभा लम्बी तान कर सो गई। श्री कु वर चादकरण जी शारदा के प्रधानत्व मे आर्य विद्यार्थी सभा भले प्रकार उन्नत हुई। ये उत्साह के पुञ्ज थ और सच्ची लगन के भ य थे। इसी प्रकार पण्डित जियालाल जी निर्भीक और लोहा-पुरुष थे। हम दोनो आयसमाज के विषय पर किसी भी मतवादी से भिड जाया करते। श्री शारदा के साथ हम आय विद्यार्थी सभा क सभासद् अजमेर के आसपास के ग्रामो मे प्रचाराथ जाया करते थे। पुष्कर मेले मे कार्तिक मास क स्नान के दिनो मे कुछ मुसलमान युवक स्नान करती हुई म ता बहिनो क वस्त्र लेकर भाग जाते थे। श्री पण्डित जियालाल जी और उनके सब अन्य साथियों ने इस काय को अपने हाथ मे लिया और प्रातः चार बजे के पूव ही जाकर घाटो पर बठ जाते थे। दो तीन बार मारपीट करने के पश्चात् मुस्लिम युवको ने आना छोड दिया। सन् १९ के अन्त मे अजमेर ही मे श्री पूज्य स्वामी दर्शनानन्द जी महाराज का स्वास्थ्य विकृत हो गया। जब तक व स्वस्थ रहे। मैं उनके से वे वैदिक सिद्धान्तो का अध्ययन करता रहा। उनकी प्रबल इच्छा थी कि मैं आयसमाज का उपदेशक बनकर सेवा करू।

## बौली कस्बे में वैदिक विवाह

श्रीराम रामनिवास जी बोहरा पाटीदार के सुपुत्र श्री विशम्भर दयाल जी पाटीदार के सुपुत्री सौ० का० श्री निर्मला कुमारी का शुभ विवाह ग्राम गुरडिया जिला मन्दसौर निवासी श्री रामप्रसाद जी सुपुत्र श्री भगत राम जी पटेल के साथ वैदिक विधि से श्री ओमूभक्त जी वानप्रस्थ ने विधि विधान से सम्पन्न कराया। विवाह के मन्त्रों का उच्चारण वर वधू दोनों ने किया और उनकी व्याख्या उक्त वानप्रस्थी जी ने बडे ही मार्मिक शब्दो मे देशी भाषा में की जिसका स्त्री पुरुषो पर उत्तम प्रभाव रहा। इस अवसर पर वधू पक्ष की ओर से २१) सभा को प्रदान किये गये।

ईश्वरदयाल आर्य मन्त्री
आयसमाज

## कोटे में मुण्डन संस्कार

आर्यसमाज कोटा के सुयाग्य मन्त्री श्री मागीलाल जी आर्य के पौत्र का मुण्डन सम्कार १७-४-६१ उनके गृह पर श्री पण्डित गोविन्दलाल जी आर्य और श्री मा० गोपी वल्लभ जी ने सम्पन्न किया। इस शुभ अवसर पर आ० प्र० सभा राजस्थान के उपमन्त्री श्री ओमूभक्त जी भी उपस्थित हो गये थे। आपने भी बालक को शुभाशीष दी एव २) रु० सभा को प्रदान किये गये। रत्न आर्य

## श्री कुंवर गणपत सिंह जी आर्य का तूफानी दौरा

आर्यसमाज डोडियाना चौखला में आर्यसमाज मन्दिर का कार्य आरम्भ हो गया। इसकी आधार शिला मैं गत मास मे रख आया हू। इस शुभ काम मे स्वय श्री गणपतसिंह जी वर्मा ने ५०१) रु० प्रदान किये और इसी प्रकार श्री सानराव जी भाव सोनी ने १०१) रु० प्रदान किये और १०१)रु० मैंने स्वय और १०१)रु० श्री पण्डित भगवान स्वरूप न्यायभूषण ने प्रदान किये हैं और भी कई दानदाताओं ने यथा शक्ति इस शुभ काम मे प्रदान किये अब वे अवकाश के दिनो में भिन्न २ स्थ नो मे जाकर इस यज्ञ की पूर्ति के लिये प्रान्त की समाजो मे भ्रमण करेंगे। आर्यसमाजें और दा दाता सज्जन इस शुभ कार्य में सहायता देकर यश क भागी बनें।

ओमूभक्त वानप्रस्थ
उपमन्त्री सभा

## जवाहर सागर आ० स० में वेदोपदेश

यहाँ तारीख १६-४-६१ को पहुचा आज ओम्म के अस्तित्व के सम्बन्ध में उपस्थित आर्य बन्धुओं ने शंका समाधान का सबब रखा और दूसरे वैदिक धम के महत्व पर मेरा भाषण कराया गया। उपस्थिति स्थान को देखते हुये सन्तोषप्रद थी। श्री मनोहरलाल जी वासुदेव, श्री सत्यप्रकाश जी शर्मा, श्री सुखपाल जी वर्मा, श्री प्रेमप्रकाश जी आदि सज्जन लगन से आर्यसमाज का कार्य कर रहे हैं।

ओमूभक्त वानप्रस्थ

## आर्य मार्तण्ड को स्वावलम्बी बनाने में १०१) के आजीवन सदस्य बनकर तन-मन-धन से सहायता कीजिये !!

निम्नांकित महानुभावों ने मार्तण्ड को १०१) प्रदान कर आजीवन सदस्यता स्वीकार करने की कृपा की है, एतदर्थ हार्दिक धन्यवाद। जिन महानुभावों ने १०१)अभी तक नहीं भेजे हैं, कृपया सभा क वार्षिक अधिवेशन दि० १८ मई ६१ से पूर्व उक्त राशि शीघ्र भिजवाने का कष्ट करें, ताकि आगामी अक मे उन महानुभावों क नाम भी सधन्यवाद प्रकाशित किये जा सकें। —व्यवस्थाप

**आजीवन सदस्यः—**

(प्राप्त राशि)

१०१) रु० श्रीमान् पं० भगवानस्वरूप जी न्यायभूषण प्रधान सभा
१०१) ,, ,, छोटूसिंहजी पडवोकट अलवर
१०१) ,, ,, भीमसिंह जी, मा उन्ट आबू
१०१) ,, ,, रामस्वरूपजी वेर्मा, शाहपुरा
१०१) ,, ,, श्रीकरणजी शारदा, अजमेर
१०१) ,, ,, जेठमलजी आर्य, आबूरोड
१०१) ,, ,, माधोसिंहजी शाहपुरा
१०१) ,, ,, डा० रामबहादुरजी कोटा
१०१) ,, ,, वैद्य धर्मसिंहजी कोठारी अजमेर
१०१) ,, ,, जेठमल जीराठी पाली
१०१) ,, ,, ओम्भक्तजी वानप्रस्थ जोधपुर
१०१) ,, ,, सुखीलाल जी मायूलाल जी शिवगंज
१०१) ,, ,, वासीरामजी वेदीश्रीगंगानगर
४०) ,, ,, संतोषसिंह जी कछवाहा जोधपुर
१०१) ,, ,, रामचन्द्रजी मूलजी जामनगर
१०१) ,, ,, देवराम जी शिवगंज
२५) ,, ,, सत्यवती देवी कन्हैयालाल जी कछवाहा जोधपुर
१०१) ,, ,, श्री अतनचन्द जी पडवोकेट अजमेर
५१) ,, ,, किशनसिंह जी गंगानगर
१०१) सु श्री कु० सरलाजी शारदा एम. ए. बी एड अजमेर
१०१) रु० श्रीमान् गोपीवल्लभजी कोटा

**वचन प्राप्त**

१०१) ,, ,, मदनमोहनजी शर्मा बीकानेर
१०१) ,, ,, चौधरी नारायणराम जी गंगानगर
१०१) ,, ,, रमेशचन्द्रजी शारदा अजमेर
१०१) ,, ,, धर्मचन्दजी शर्मा झुंझनू
५१) ,, ,, संतोषसिंहजी कछवाहा महर्षि जोधपुर
५०) ,, ,, किशनसिंह जी श्रीगंगानगर
१००) ,, सुश्री मोहनी देवीजी जयपुर
७६) ,, ,, सत्यवती कन्हैयालाल जी कछवाहा जोधपुर
१०१) श्रीमान डॉ. सूर्यदेवजी शर्मा एम. ए.डी. लिट् अजमेर

# विचारणीय विषय

**पहली बात—**

देश से मानवता, नैतिकता, धर्माचार,, सदाचार, संस्कृति और शिष्टाचार तथा देश प्रेम को नष्ट कर कांग्रेस तो अपनी मौत आप मर रही है। देश को विरासत में छोड़ जायेगी—मतवाद, जातिवाद, भइया-भतीजावाद, प्रान्तवाद, भाषावाद और फूट का विषैला बीज।

अपने को देशभक्त कहलाने वाली पार्टियों में से भी कोई ऐसी पार्टी दिखाई नहीं दे रही है जो उक्त बीमारियों की शिकार न हो चुकी हो।

रह जाती है, कम्यूनिष्ट, ईसाई और मुस्लिम पार्टियां, ये तीनों ही देश-द्रोही पार्टियां हैं। अब तो दिन व दिन इनसे देश को पूरा-पूरा खतरा पैदा होता जा रहा है। उदाहरण के लिए—कम्यूनिष्टों के हाथ में दो प्रांतों, बंगाल, केरल की सत्ता तो आ ही गई है साथ ही ये बड़ी तेजी के साथ समस्त देश में अपना जाल फैला रहे हैं।

ईसाई अप्रत्यक्ष रूप से (निकट भविष्य में प्रत्यक्ष रूप में भी आ सकते हैं) नागालैंड मद्रास, पांडिचेरी और केरल, में अपनी इच्छानुसार शासन चला रहे हैं।

मुस्लिम लीग—यह तो देश के संविधान में ही विश्वास नहीं करती और ना ही इस देश को अपना देश मानती है।

कम्यूनिष्ट चीन और रूस के लिए, ईसाई अमरीका और यूरोप के लिए और मुसलमान पाकिस्तान के लिए भूमि तैयार करने में जुटे हुए हैं। बचते हैं देश-भक्त ये अपना सर्वस्व खोकर दोनों हाथों से धन बटोरने में लगे हुए हैं। इनका तो मां-बाप धर्म-कर्म सब कुछ पैसा हो चुका है। अब प्रश्न है, देश की चिन्ता कौन करे?

इतना ही नहीं—आने वाले तीन वर्ष देश के लिए महानतम संकट के हैं। इन तीन वर्षों में चीन और पाकिस्तान का एक साथ अथवा दोनों में से किसी एक का देश पर आक्रमण अवश्यम्भावी है। यह भी हो सकता है कि चीन समस्त देश पर ही छा जाने का प्रयत्न करे। यदि ऐसा न हुआ तो आसाम, नागालैण्ड, बंगाल, सिक्कम, भूटान को तो निगल जाने का प्रयत्न करेगा ही। पाकिस्तान कश्मीर को हड़पने के लिए घात लगाये बैठा है।

ईसाई बनाम अमरीका का पी० एल० ४८० गेहूं देश को विघटित करने में सक्रिय है। यह बात भी स्पष्ट है कि देश को विकलांग, अशक्त बनाने में ये तीनों देश-द्रोही तत्व सहयोगी बनकर चल रहे हैं।

केन्द्र में सुदृढ़ प्रशासन न हो पाये, इसके लिए सन् १९७२ के होने वाले चुनावों से पूर्व ही कम्यूनिष्टों द्वारा देश में अराजकता का वातावरण उत्पन्न किया जायेगा। केन्द्र में सुदृढ़ प्रशासन न होने का अभिप्राय होगा परस्पर की खींचातानी के कारण देश टुकड़ों में विभक्त हो जायेगा। एक प्रकार से भाषा के नाम पर देश के पहले ही टुकड़े हो चुके हैं।

खेद का विषय है—जब हम अपनी राष्ट्रीय संसद-सभा पर दृष्टि डालते हैं तो वहां भी हमको निराशा ही दिखाई देती है। वहां पर भी देश का पक्षपाती कोई नहीं है। हैं तो कुछ चीन के पक्षपाती हैं तो कुछ पाकिस्तान के कुछ इंग्लैण्ड और अमरीका के पक्षपाती हैं तो कुछ रूस के शेष जो बच जाते हैं वे पूंजीपतियों के खरीदे हुए गुलाम हैं।

इन विकटतम परिस्थितियों को देखते हुए अब आर्यसमाज को कार्यक्षेत्र में उतरना होगा। समय रहते हुए यदि आर्यसमाज ने अपने कर्त्तव्य का पालन न किया तो यह अपनी दृष्टि में देश घातक बनेगी। इसलिये देश-द्रोह के अपराध से बचने के लिये देश की रक्षा में अब आर्यसमाज को कटिबद्ध होकर रचनात्मक प्रोग्रामों के साथ कर्म क्षेत्र में उतरना ही होगा। देश धर्म जाति, सभ्यता और संस्कृति की रक्षा करना आर्यों का परम धर्म है। इस धर्म पालन में योजना क्या हो, इस पर आपका परामर्श चाहिये।

**दूसरी बात—**

ईसाई अपनी योजना के अनुसार बड़ी तेजी के साथ धर्म-परिवर्तन में जुटे हुए हैं। इनका यह अभियान देश में व्यापक रूप से चल रहा है। यदि इनकी गतिविधि इसी प्रकार अबाधगति से चलती रही तो आठ दस वर्ष में ही देश ईसा-भक्त हो जायेगा। फिर पछतावत क्या होवत है जब चिड़िया चुग गई खेत।

इसकी रोकथाम के लिए सबसे पहले सार्वदेशिक सभा को चाहिये कि वे सामूहिक रूप से छल-कपट के आधार पर ईसाई आदि विधर्मियों द्वारा किये जा रहे धर्मपरिवर्तनों के विरुद्ध एक कान्फ्रेंस का आयोजन करे, जिसमें देश की सब प्रान्तों की आर्य प्रतिनिधि सभाओं को तथा उन आर्यसमाज की संस्थाओं को जो स्वतन्त्र रूप से शुद्धि का कार्य कर रही है आमन्त्रित करें। ताकि उक्त समस्या पर विचार विमर्श हो सके। तत्पश्चात् सार्वदेशिक सभा को ही दूसरी कान्फ्रेंस का आयोजन करना चाहिये जिसमें आर्यसमाज के अतिरिक्त उन सब हिन्दू संस्थाओं को भी आमंत्रित किया जाये तो शुद्धि का कार्य कर रही हैं। इनके साथ ही साथ सब सम्प्रदाय के महन्तों को, सभी हिन्दु नेताओं को उन धनिकों को जिनके हृदय में हिन्दू धर्म के लिए तड़प है, आमन्त्रित कर, उक्त समस्याओं को उन सबके सम्मुख प्रस्तुत कर कोई स्वस्थ समाधान प्राप्त करना लाभप्रद रहेगा।

ये दोनों ही बातें आपकी सेवा में प्रस्तुत है। अब आप अपने परामर्श से अविलम्ब अनुगृहीत करें।

## हरिद्वार में दयानन्द कीर्ति-भवन अर्थात् आर्यसमाज मन्दिर का निर्माण आरम्भ हो गया।

सम्वत् १९११ वि० के कुम्भ पर्व पर युग प्रवर्तक महर्षि दयानन्द ने हरिद्वार में पधारकर प्राचीन आर्य जाति की विकृत दशा को देखा था और उदात्त वैदिक संस्कृति के अत्यन्त कलुषित रूप को निहारा था, आर्यजगत आर्य संस्कृति एवं आर्यावर्त्त के उत्थान की साध मन में संजोए हुए और अपने को उपयुक्त पात्र बनाने के संकल्प को धारण किये हुए उस महान् दयानन्द ने योगियों की खोज में सारा उत्तराखण्ड पैदल छान डाला था। अनेक योगियों से नाना यौगिक क्रियाओं का ज्ञान प्राप्त कर वैदिक ज्ञानाग्नि को अपने अन्दर प्रज्वलित करने की कामना से मथुरा में गुरु विरजानन्दजी की शरण ली थी।

संवत् १९२३ वि० में पुनः हरिद्वार कुम्भ पर पधार कर पाखण्ड खण्डिनी पताका फहरा दी और अवैदिक मतवादों तथा पाखण्डों का खण्डन आरम्भ कर दिया। संस्कृतियों की क्रान्ति के इतिहास में जो गौरव सारनाथ को प्राप्त है जहां कि सर्वप्रथम महात्मा बुद्ध ने धर्मचक्र प्रवर्तित किया था और वाममार्गियों और तान्त्रिकों के वेद विरुद्ध कृत्यों का प्रबल खण्डन आरम्भ किया था, गौरव २४०० वर्षों के उपरान्त हरिद्वार को उपलब्ध हुआ है।

युगपुरुष दयानन्द ने इसी पुण्य स्थली हरिद्वार से अवैदिक मतमतान्तरों एवं पाखण्डों का खुला खण्डन सर्वप्रथम आरम्भ किया था।

इस ऐतिहासिकघटना के एक शताब्दी बीत जाने के उपरान्त अब उसी पुण्य स्थली में दयानन्द कीर्ति-भवन के रूप में आर्यसमाज मन्दिर का निर्माण किया जा रहा है।

यह कीर्ति-भवन ललतारौ पुल के निकट गंगा तट पर बनना आरम्भ हो गया है। मन्दिर तिमंजला बनाने का सकल्प है। मन्दिर २१ कमरे, यज्ञशाला सत्संगभवन आदि बनाए जा रहे हैं। मन्दिर में न्यू [illegible] न्यून तीन लाख रुपये की लागत आवेगी। [illegible] के साथ शौचालय, स्नानागार आदि की भी व्यवस्था की गई है। प्रत्येक कमरे पर १०,०००) रु. सत्संग भवन पर ५०,०००) रु० तथा यज्ञशाला पर २५,०००) रु. व्यय का अनुमान है।

७ अप्रैल १९६९ को मन्दिर का विधिवत शिलान्यास हो गया और निर्माण कार्य तेजी से आरम्भ कर दिया है।

अब दानी सज्जनों की परीक्षा का काल उपस्थित हुआ है। देखना है कि कौन कौन कितना धन युग पुरुष के इस कीर्ति-भवन निर्माणार्थ देने का सकल्प करते हैं। जिनकी इच्छा सत्संग भवन, यज्ञशाला, वा कमरे बनाने की हो उनको आर्य मन्दिर निर्माण समिति संचालक पं० धर्मपाल विद्यालंकार सहायक मुख्याधिष्ठाता, गुरुकुल विश्वविद्यालय कांगड़ी, हरिद्वार से अविलम्ब पत्र-

(शेष पृष्ठ ७ पर)

## गायत्री परिवार और आर्यसमाज

आर्य समाज अपने स्थापना काल से मौलिक सिद्धांत पालन में दृढ़ रहा है। इस समाज के संस्थापक स्वनामधन्य महर्षि दयानन्द ने आजीवन सिद्धान्तों में किसी से समझौता नहीं किया। भले ही इसके लिये उन्हें थ्योसोफिकिल सोसायटी जैसी सुदृढ़ संस्था से नाता तोड़ना पड़ा या नरेशों की अतुल सम्पत्ति को ठोकर मारनी पड़ी। खेद है कि आज आर्यसमाज के कुछ नेता व उपदेशक समझौतावादी रुख अपना कर महर्षि के स्वप्नों को तोड़ रहे है।

उत्तरप्रदेश, राजस्थान, मध्य प्रदेश के आपस में मिलने वाले कुछ सीमावर्ती इलाके में पिछले १३–१४ वर्षों से पूज्यपाद श्री श्रीराम शर्मा मथुरा निवासी द्वारा संस्थापित गायत्री परिवार नामक एक संस्था कार्य कर रही है। मेरे ज्ञानानुसार इस परिवार के संस्थापक महोदय ने परिवार के स्थापनावसर पर प्रसिद्ध आर्य नेताओं से आशीर्वाद लेने का असफल प्रयास भी किया था। यह परिवार मुख्यतया गायत्री मंत्र की व इसकी कल्पित मूर्ति के उपासना व प्रचार करते है। इनका सिद्धान्त सम्बंधी कोई प्रामाणिक ग्रन्थ उपलब्ध नहीं है। वैसे ये पौराणिक धर्म (सनातन धर्म) व वैदिक धर्म (आर्य समाज द्वारा प्रचारित) का ऐसा मिश्रण है, जिसका अनुपात समय-श्रोताओं की रुचि व स्थान के अनुसार बदलता रहता है। कही ये छुआछूत-उन्मूलन शुद्धि का (मौखिक) समर्थन आर्य समाज की तरह करते है तो कहीं रूढिवाद–बहुदेवतावाद मूर्तिपूजा- गुरुडम का पौराणिक की तरह प्रबल प्रचार। कहीं ये आर्य समाजी कार्यकर्ताओं को अपना चेला बनाने को विशुद्ध आर्य समाजी बन जाते हैं (शुद्ध आर्य समाज तो दयानन्द के सैनिक है ही) तो कहीं सनातन धर्मी भीड को अपने पीछे चलने के लिये पूरे पौराणिक बन जाते है। आर्य समाजी भजनोपदेशकों को चाँदी के चंद सिक्कों पर फुसलाने का प्रयास भी ये करने से नही चूकते।

मुझे तो ऐसा प्रतीत होता है कि गायत्री परिवार अधकचरे आर्यसमाजियों को पौराणिक धर्म के पाखण्ड-रूढिवाद-गुरुडम की गोलियाँ बनाकर उस पर आर्य समाज के सुधारवादी कार्यक्रम की मीठी चासनी चढाकर खिला रहा है। मीठी चासनी के लोभ में विष सम कटु गोली खाकर आत्महत्या का पाप दयानन्द के सैनिको को न लगे, इसी भावना से प्रेरित होकर मैंने यह अलोकप्रिय कटु परन्तु आवश्यक लेख लिखा है।

आर्य समाज का गायत्री परिवार का वहीं सबंध होना चाहिये जो हमारा पौराणिक धर्म जैन धर्म - बौध धर्म आदि से है। यह आवश्यक है कि हम उनके सिद्धान्तो को नीर क्षीर विवेक की कसौटी पर कसें। उनके वैदिक सिद्धान्तों का समर्थन अवैदिक का प्रबल खण्डन करें।

गायत्री परिवार द्वारा आयोजित गायत्री यज्ञों में कुछ प्रतिष्ठित अनुभवी पूज्य भजनोपदेशक सक्रिय भाग लेते है। उदाहरणत:

१. पूज्य स्वामी दिव्यानन्दजी सरस्वती नागपुर
२. श्री विजय सिंह जी सिंह मथुरा भजनोपदेशक आर्य कई प्रतिनिधि सभाओं में कार्य कर चुके हैं
३. श्री किशोरी लालजी—अलीगढ़ (मैजिक लैन्टर्न वाले)
४. श्री नत्थासिंह जी—हरियाना निवासी
५. प्रेमानन्द जी—मथुरा

अन्य कई आर्यसमाजी विद्वान व नेता भी यदा कदा इनके मंच पर दर्शन दे देते है। उपरोक्त सभी विद्वानों के प्रवचन मुख्यतया निम्न तथा श्रेणी बद्ध किये जा सकते है।

(१) आर्य समाज व ऋषि दयानन्द के द्वारा संचालित सामाजिक-नैतिक राष्ट्रीय आन्दोलनों का आर्य समाज व ऋषि दयानन्द का नाम न लेकर प्रचार (जिससे ऐसा प्रतीत होता है कि शायद इन्हें मंच पर बिठाने से पहले इनका नाम न लेने की शपथ दे दी है)

(२) मूर्ति पूजा खण्डन पर मौन

(३) आर्य समाज के सिद्धान्तों के विरुद्ध गुरुडम-रूढिवाद-पाखण्ड का घुमा फिराकर प्रचार

(४) गोष्ठीयों व व्यक्तिगत वार्तालाप में आर्य समाज–आर्य नेताओं की झूठी असंगत आलोचना

इन आर्य समाजी भजनोपदेशकों के व्यवहार पर यदि कोई यह सोचे कि पैसा इनके लिये प्रमुख, धर्म प्रचार गौण तो उस बेचारे का क्या अपराध।

मेरी आर्य जगत के मूर्धन्य विद्वानों से प्रार्थना है कि इस सम्बन्ध में अपना मत आर्य पत्रों द्वारा आर्य जनता को बताये, जिससे यदि मुझ जैसे दयानन्द सैनिक कुछ गलती पर हों, तो स्वयं सुधार कर लें।

मेरा तो विचार है कि आर्य समाज की पवित्र वेदी इन समझौतावादी उपदेशकों के लिये बन्द हो जानी चाहिये। या फिर ये उपदेशकगण पुनः शुद्ध होजायं–उनकी अर्जित यश–प्रतिष्ठा अभी अक्षुण है, बाद में ईश्वर जाने।

दयानन्द के वीर सैनिक समय से चेतेगें- तथा किसी को भी चाहे वह कोई हो-आर्य समाज रूपी वृक्ष के जड़ में पानी आड़ में मट्ठा (वर्षा कालीन) न डालने देवें।

नोट:—लेख में वर्णित सभी व्यक्ति मेरे श्रद्धापात्र है—पूज्य है लेखक का अभिप्राय केवल आर्य समाज के सिद्धांतों व वेदी की रक्षा है।

ब्रजभूषण गोयल

## प्रचार

(१) श्री स्वामी ओम्भक्तजी वानप्रस्थ कोटा सुनेल, जवाहर सागर बांध, ब्यावर, राजगढ़, पलायथा झालावाड़, झालरापाटन बोली।

(२) प० भगवती प्रसादजी 'अभय' मसूदा, बांदी कुई, नागौर, नसीराबाद, टमकोर, बालोतरा ईडवा, पाल्यास, बदनौर, भीलवाड़ा, शाहपुरा, फूलिया, चित्तौड़

(३) श्री काव्यानन्दजी सरस्वती,
उज्जैन, अहमदाबाद, क्षेत्र में प्रचार

## शुभ कामना !

( १ )

महिलायें सब बनें सुआर्य, धारें वैदिक धर्म।
प्रिय वादिनी, मधुर भाषणी, करें सदा सद् कर्म॥
गायत्री, गुरु मन्त्र संध्यादि, वेद-ऋचायें बोल।
वेदाध्ययन, करें प्रीतियुत, घूंघट के पट खोल॥

( २ )

मन्त्र टोना पाहन पूजादि, प्रमादिक दुःख जाल।
छोड़ सभी भव-बन्धन हैं ये वैदिक पथ पर चाल॥
देव यज्ञ घर-घर के अन्दर, करें सभी नर-नार।
नियमानुकूल करें ब्रह्म यज्ञ, गुरु मुख उचित विचार॥

( ३ )

सद् सन्यासी ब्रह्मविद् हों, विचरें देश-विदेश।
वैदिक-धर्म-प्रचार भाव सद, लक्ष यही निरक्लेश॥
कर्म-कलित, करें, नित अकृत्रिम, सत्य-नीति के साथ।
परोपकार भावना ले कर, सभी बढ़ावें हाथ॥

( ४ )

आर्य नियमानुकूल जीवन हो, सद् सभ्यता आर्य।
मानव हों दानवता तजके, करें सभीसद कार्य॥
गुञ्जे-नाद गगन में अविरल, गौरव के जय घोष।
मिट जायें सब पोप-पाखण्डी, प्राय ठिकाने होष॥

( ५ )

आर्य्य शासन-आर्य व्यवहारिक, आर्य देव समाज।
आर्य्य-ध्वज, विश्व में राजे, आर्य-साधन साज॥
आर्य विद्या-भाषा हों सद्, आर्य्य वैदिक ज्ञान॥
आर्य हों मानव विश्व का, आर्य-कला निधान॥

( ६ )

अन्न से रहें भंडार अपूर्व, गो-अमृत दें दुग्ध।
बढ़ा घृत, से पूर्ति घर-घर में, पावें मानव मुग्ध॥
वर्षे वारिद-नग-नभ सौमित, तृण, औषधि अमृत।
"घनसार"सुखी जब हों ये भारत-मिटे अनीति अनृत॥

कवि कस्तूरचन्द "घनसार"

## खतरनाक

अजमेर। विदित हुआ है कि गत बृहस्पतिवार को यहां से दस मील दूरस्थ केसरपुरा नामक गांव में ईसाई मिशनरीज की शह एवं शरारत से भैरूजी की प्राचीन मूर्ति को तोड़ दिये जाने के कारण लोगों में रोष तथा क्षोभ व्याप्त होते जा रहा है।

उपर्युक्त घटना की रिपोर्ट करते हुए यहां के नागरिकों ने यहां की कैथोलिक नन्स और उसके कथित हस्तकों पर आरोप लगाया है कि वे विदेशी अनाज और शराब के बलबूते पर न केवल गुन्डा-गर्दी को ही प्रोत्साहित करते हैं बल्कि योजनाबद्ध ढंग से यहां के धार्मिक एवं ऐतिहासिक चिन्हों को खण्डित करके शान्ति और व्यवस्था के लिये खतरनाक सिद्ध होते जा रहे हैं।

(शेष पृष्ठ ५ का)

व्यवहार कर मन्दिर के चित्र की प्रतिलिपि प्राप्त करनी चाहिये। धन सचालक के पते पर भेजा जाना चाहिये।

विनीत

महात्मा आनन्द स्वामी जी महाराज
प्रतापसिंह शूरजी वल्लभभाई, प्रधान सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा बम्बई
रामगोपाल शाल वाले, मंत्री सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा देहली
प्रकाशवीर शास्त्री, प्रधान आर्य प्रतिनिधि सभा उत्तर प्रदेश
महेन्द्र प्रताप शास्त्री, एम० ए०, उपप्रधान आर्य प्रतिनिधि सभा उत्तर प्रदेश
मदनमोहन वर्मा, पूर्व प्रधान आर्य प्रतिनिधि सभा उत्तर प्रदेश
प्रेमचन्द शर्मा मन्त्री आर्य प्रतिनिधि सभा उत्तर प्रदेश
स्वामी शिवानन्द जी सचालक शिवाश्रम हरिद्वार
आचार्य भगवानदेव झज्जर रोहतक
ब० जगदेवसिंह सिद्धान्ती भूतपूर्व ससद सदस्य
सेठ नानजी भाई कालिदास पोरबन्दर, मन्दिर निर्माण प्रेरक
रघुवीरसिंह शास्त्री, एम. पी
स्वामी सत्यानन्द, आचार्य साधन आश्रम यमुनानगर [अम्बाला]
स्वामी व्रतानन्द जी चित्तौड
मेहरचन्द धीमान कलकत्ता, उपप्रधान आर्य प्रतिनिधि सभा बगाल
शकुन्तला गोयल
नरेन्द्र, प्रधान आर्य प्रतिनिधि सभा हैदराबाद
डा० दुखनराम पटना, उपप्रधान सार्वदेशिक सभा
आनन्दप्रिय बडोदा
प्रो० रामसिंह एम० ए०
क० नरेन्द्र
क० वीरेन्द्र
शिवदयालु, पूर्व मन्त्री आर्य प्रतिनिधि सभा उत्तर प्रदेश
श्री चन्द्रदत्त जी तिवाडी प्रधान आर्य समाज गणेशगज लखनऊ

देवनदास
प्रधान, आर्यसमाज हरिद्वार

मन्दिर निर्माण इचार्ज
कविराज हरनामदास
पूर्व मन्त्री सार्वदेशिक
आर्यप्रतिनिधि सभा

धर्मपाल विद्यालकार
सचालक मन्दिर
निर्माण समिति

# शोक !

श्री छोगालालजी भूतपूर्व भजनोपदेशक सभा, बम्बा नगर निवासी की धर्म पत्नी का देहावसान दि० २७ अप्रैल को अचानक हो गया।

इस दुःख के अवसर पर हार्दिक शोक सवेदना प्रकट करते हुए परम पिता परमात्मा से प्रार्थना है कि वह दिवगंत आत्मा को सद्गति तथा शोकाकुल परिवार को धैर्य एवं शांति प्रदान करे।

(शेष पृष्ठ २ का)

आगे फिर लिखते हैं —

"यह भी समझ लें कि धर्म हमारे आत्मा और कर्त्तव्य के साथ है। जब हम अच्छे काम करते हैं, तो हमको देशदेशान्तर और द्वीप द्वीपान्तर जाने मे कुछ भी दोष नही लग सकता। दोष तो पाप के काम करने मे लगते हैं। हा, इतना अवश्य चाहिये कि वेदोक्त धर्म का निश्चय, और पाखण्ड मत का खण्डन करना अवश्य सीखलें जिससे कोई हमको झूठा निश्चय न करा सके। क्या बिना देश देशान्तर और द्वीप द्वीपान्तर मे राज्य वा व्यापार किये स्वदेश की उन्नति कभी हो सकती है? जब स्वदेश ही मे स्वदेशी लोग व्यवहार करते और परदेशी स्वदेश मे व्यवहार वा राज्य करें, बिना दारिद्रय और दुःख के दूसरा कुछ भी नही हो सकता।"

खान पान के विषय मे महर्षि सब प्रकार की सफाई पर सर्वाधिक बल देते हैं। जात-पात, छूत-छात और सखरी निखरी अर्थात् कच्ची पक्की रसोई के ढकोसलों को वे कुछ भी महत्त्व नही देते, परन्तु वे मद्य-मासाहारियो से खान पान बढाने के पक्ष मे नही हैं। देखिये —

'हा मुसलमान ईसाई आदि मद्य मासाहारियों के हाथ के खाने मे आर्यों को भी मद्य मासादि खाना पीना अपराध पीछे लग पडता है, परन्तु आपस मे आर्यों का एक भोजन होने मे कोई भी दोष नही दीखता। जब तक एक मत एक हानि-लाभ, एक सुख-दुःख न मान तब तक उन्नति होना बहुत कठिन है। परन्तु केवल खाना पीना ही एक होने से सुधार नही हो सकता। किन्तु जब तक बुरी बातें नही छोडते और अच्छी बातें नही करते तब तक बढती के बदले हानि होती है।'

[सत्यार्थ प्रकाश १० वा समुल्लास]

अत्यन्त शोकातुर होकर वे आगे लिखते है —

"विदेशियो के आर्यावर्त मे राज्य होने के कारण आपस की फूट, मतभेद ब्रह्मचर्य का सेवन न करना, विद्या न पढना पढाना, वा बाल्यावस्था मे अस्वयवर विवाह, विषयासक्ति मिथ्या-भाषणादि कुलक्षण, वेद विद्या का अप्रचार आदि कुकर्म हैं। जब आपस मे भाई-भाई लडते हैं, तभी तीसरा विदेशी आकर पच बन बैठता है। क्या तुम लोग महाभारत की बातें, जो पाच सहस्र वर्ष के पहिले हुई थी, उनको भी भूल गये? देखो! महाभारत युद्ध में सब लोग लडाई मे सवारियो पर खाते पीते थे। आपस की फूट से कौरव पाण्डव और यादवो का सत्यानाश हो गया, सो तो हो गया, परन्तु अब तक भी वही रोग पीछे लगा है। न जाने यह भयकर राक्षस कभी छूटेगा, वा आर्यों को सब सुखों से छुडाकर दुःख सागर मे डुबा मारेगा? उसी दुष्ट दुर्योधन गोत्र हत्यारे, स्वदेश विनाशक, नीच के दुष्ट मार्ग मे आर्य लोग अब तक भी चलकर दुःख बढा रहे हैं। परमेश्वर कृपा करे कि यह राजरोग हम आर्यों मे से नष्ट हो जावे।"

[सत्यार्थ-प्रकाश, १० वा समुल्लास]

## आर्यसमाजों के वार्षिकोत्सव

दि० ७ से मई ६९ तक आर्य समाज बारा का तथा दि० ६ से १३ मई ६९ तक आर्य समाज नया बाजार के वार्षिकोत्सव सानन्द सम्पन्न हुए।

## दयानन्द विद्यालय में भूतपूर्व छात्र सम्मेलन

दि० १० मई ६९ को श्री मदनलालजी भूतपूर्व छात्र की अध्यक्षता मे भूतपूर्व छात्रो का सम्मेलन श्री जतनचन्दजी एडवोकेट मन्त्री दयानद विद्यालय के सयोजकत्व मे सानद सम्पन्न हुआ। जिसमे भूतपूर्व छात्र तथा वर्तमान मे विद्यालय के मन्त्री ने भी सम्मेलन के उद्देश्य पर प्रकाश डालते हुए विद्यालय के विकास का इसे अत्यावश्यक अग कहा तथा एक समिति का भी गठन किया गया जिसके सयोजक श्री हीरालाल साखला चुने गये। तथा जन सम्पर्क वृहद सम्मेलन आमन्त्रित करने का निश्चय किया गया।

अर्जुन पुरा में—

## अराष्ट्रीय ईसाई प्रचार-निरोध गोष्ठी

दि. ४ मई ६९ को ग्राम अर्जुनपुरा मे बनेठासिंह जी की अध्यक्षता मे गोष्ठी का आयोजन किया गया जिसमे श्री प० रामभजनजी मित्र ने सर्व प्रथम महा महिम दिवगत राष्ट्रपति के प्रति शोक श्रद्धाञ्जलि समर्पित की तथा अराष्ट्रीय तत्त्वो की विघटनात्मक प्रवृत्तियो का उल्लेख करते हुए अधिक सगठित एव सुदृढ होने पर बल दिया।

## वार्षिक चुनाव

रविवार दि० २७४६९ का अपराह्न ३॥ बजे श्रद्धेय डा० सा० राज बहादुरजी की अध्यक्षता मे साधारण सभा की बैठक मे सन् १९६९-१९७० के लिए नीचे लिखे अनुसार पदाधिकारी तथा अन्तरग सभासद चुने गए —

१. प्रधान—श्री डॉ० सा० राज बहादुरजी
२. उपप्रधान—१ श्री गोविन्दलालजी,
२ श्री हरिवल्लभजी
३ श्रीमती सुदक्षिणा देवीजी
३ मन्त्री—श्री गोपी वल्लभजी
४. उप मन्त्री—१. श्री प० रूपरामजी
२. श्री पूरनचन्दजी
३ श्री सोमेशकुमारजी
५ प्रचार मन्त्री—श्री हरिश्चन्द्रजी
६. कोषाध्यक्ष—श्री छगनलालजी
७ पुस्तकाध्यक्ष—(१) श्री प्रभुदयालजी
सहायकाध्यक्ष (२) श्री प्यारेलालजी
बिक्री , (३) श्री मूलचन्दजी तिवाडी
८ अकेक्षक—श्री कल्याणमलजी
९ प्रतिष्ठित सभासद—श्री शम्भूनाथजी गजू
१० अतरग सभासद—१ श्रीमती विद्यावतीजी
२. श्री नन्दकिशोरजी
३ श्री गिरधारीलालजी
४ श्री केदारनाथजी
५. श्री कृष्णकुमारजी
६. श्री दरबारीलालजी
७ श्री बन्शीधरजी
८ श्री लक्ष्मणलालजी
९. श्री गणपतिलालजी
१० श्री रामसिंहजी
११ श्री मागीलाल

श्री अधिष्ठाताजी
गुरुकुल कांगड़ी
सहारनपुर

Regd No. J 14

# राजस्थान-राज्य सरकार जरा इस ओर ध्यान दें !

(१) आबू पर्वत पर ब्रह्मकुमारी तथाकथित ईश्वरीय विश्वविद्यालय एक प्रमुख स्थान है जिसकी शाखाऐं सारे भारतवर्ष मे विषवत् फैली हुई है, विभाजन के पश्चात् यह सस्था भरतपुर कोठी आबू पर आकर टिकी थी, उस समय इसमे १५० लडकियाँ ही थी, अब हजारो की तादाद मे हैं, अब प्रश्न यह उठता है कि क्या यह मैरिज/शादी/ करके बढ़ाई गई है या छू मन्त्र द्वारा वृद्धि हुई, कदापि नही ! यह ध्रुव और सत्य सर्व विदित ही है कि इस आश्रममे पूंजीपतियो की लडकियाँ व स्त्रियाँ जो अपने छोटे बच्चे व पति को तिल्लाञ्जली दे सर्व सम्पत्ति के साथ सदा के लिये वह आत्म समर्पण कर देती हैं, इसी तरह दिन प्रतिदिन वृद्धि का मुख्य कारण होता जा रहा है, इस भ्रष्टाचार-करेप्शन को रोकने का प्रयास राज्य सरकार को एक राष्ट्रहित की दृष्टि स करना अनिवाय हो जाता हैं .

(२) जब यह सस्था भरतपुर कोठी मे थी टायम की स्थिनि ऐमी थी कि उनके पास कोठिका किराया देने व खान तक के मोहताज थे यह बात यहाँ के नागरिको से छिपी नही है, जो अब करीबन २।४ लाख रुपये की इमारत खडी हैं। तो यह पैसे कहाँ से आये क्या किसी ने इस ओर ध्यान दिया हैं। इनकम टेक्स का ध्यान इस ओर दिलाना चाहिये।

(३) इस सस्था मे और बाहर फैली हुई शाखा मे कुल मिलाकर-टोटल-कितने व्यक्ति है। दो मास पूर्व दादा लेखराज मर गया । आज तक इन सस्था मे मरने का कोई समाचार नहीं मिला । तो फिर इस सस्था मे सभी अमर शरीरी आत्मा है, यदि नहीं तो फिर इसकी जाँच आवश्यकीय है, तथा एक विशेष बात यह बता दूं कि हरदेवी ओमप्रकाश दिल्ली की स्त्री ने अपनी एक विज्ञप्ति मे यह बताया था कि यदि कोई इन सस्था के विरुद्ध आवाजें ब्रह्मकुमारी कोई उठाती हैं, तो उसे जहर देकर मार दी जाती हैं। कुछ भी हो किन्तु इन आश्रम मे मरने वालो की सख्या किसी पट पर अकित हुआ हो वह सप्रमाण प्रूफ दें यदि कोई है तो अन्यथा यह भी 'एक सन्देह-भ्रमका स्थान बना रहता है।

(४) इस आश्रम मे सिर्फ कुमारीका ही सस्था का सचालित काय करती हैं, तभी इसे ब्रह्म-कुमारी ईश्वरीय विश्वविद्यालय नाम चरितार्थ दिया हैं, किन्तु व्यवहारिक कार्य हेतु पुरुष भी रहते हैं, वैसे तो यह आपस मे भाई बहन का नाता बताते है किन्तु यह मानी हुई बहन को या माँ को गोद मे बिठाते है, तथा उसका चुम्बन करते हैं इत्यादि कार्य मे यहा किसी तरह का एतराज नही समझा जाता बल्कि व प्यार स्नेह भाव ही समझा जाता हैं, यदि इसमे कही पेट चढ गया तो भ्रूण हत्या मे भी एतराज नही। अन्तर्गत एक रहस्यमय खुलासा और कर दू —

चाहे वह स्त्री २० वर्ष की हो या ४० वर्ष की हों यह प्रकृति का स्वभाविक नियम हैं, जिसे सुविज्ञजन/अनुभवी/ ही समझ सकते हैं कि जब स्त्री को मासिक धर्म/एमसी/आने के चौथे दिन के पश्चात यहा तक की वह स्त्री पुरुष मिलन मे व्याकुल हो उठती हैं, वह ख्वाहिश पूरी होने पर शान्त हो जाती हैं, अब सवाल यह उठता है कि क्या इस सस्था मे जब की सभी कुमारीकाऐं हैं क्या वे इस काय से वचित रह सकती हैं, प्राकृतिक नियमानुसार ऋतु धर्म होना ही हैं और यह ऋतु धर्म स्त्री रूपी वृक्ष के फूल समझें जाते हैं, जिसके आने से स्त्री निरोग व सुशोभित-तेजवान रहती हैं, इनसे विपरीत-निस्तेज-रोगिनी आदि । सप्रमाण इन कुमारियो को मालूम होगा।

(५) यह भी सुना गया है कि दादा लेखराज भूतपूव खूबचन्द कृपलानी नाम व्यक्ति का नाम व्यक्ति बडा भारी जवाहरात का व्यापारी था। जब कोई व्यक्ति इसकी औरत को भगा ले गया तो उन्होने यह दृढ प्रतिज्ञा की थी कि मैं खूबचन्द कृपलानी नही, जो तुम्हारी (सिंधी जात) स्त्री एक हजार को न बिगाड दू, तो, और यह भीष्म प्रतिज्ञा उन्होने अक्षरश सत्य व सही सप्रमाण करके दिखा दिया, जो इस आश्रम मे सिंधी जात स्त्रियाँ ही विशेष देखने को मिलती है, एक रहस्य और सुनिये यह कि दादा लेखराज कृत्रिम जवाहरात बनाने का फार्मूला भी शायद जानना होगा जिससे कि फौरन अच्छे पूजीपतियो का सम्पर्क भी अहोनिश बना रहता हैं तथा अमूल्य सामान भी फारेन से आश्रम मे आया जाया करता हो हैं, यह भी एक सन्देहात्मक प्रश्न । खुपिया विभाग जरा ध्यान दें।

अन्तिम निवेदन—इस तरह की यह भ्रष्ट सस्था के प्रति राज्य सरकार को चाहिये कि वह अपने कर्त्तव्य के प्रति जरा जागरूक बनें और इस उपर्युक्त बातो पर शौचें समझें और विचारे तत्पश्चात किसी निर्णयात्मक-सचालित क्रिया-सुचारू रुप से क्रियान्वित कर राष्ट्रहित मे योग दान दें।

—शुभेच्छुक
त्यागी त्रिवेणीदास, आबू

## आवश्यकता

इस समाज द्वारा संचालित कन्या पाठशाला के लिए एक योग्य प्रशिक्षित, बी ए या एम. ए (संस्कृत) आर्य विचार धारा वाली अध्यापिका की आवश्यकता है। जो इस पाठशाला को सुचारु एवं सुव्यवस्थित रूप से चलाने में समर्थ हो, मौंटसरी प्रशिक्षित को प्राथमिकता दी जावेगी। वेतन राजस्थान राज्य शिक्षा विभाग के नियमानुसार दिया जावेगा। आवेदन पत्र दिनांक ३१। ५।६९ तक मन्त्री, आर्य समाज, परमानन्द बस्ती, बीकानेर को भेजें।"

प्रतापसिंह
आर्य समाज परमानंद कालोनी बीकानेर

## कर्मठ आर्य बन्धु काश्मीर का निमन्त्रण स्वीकार करें

कश्मीर की स्वर्ग भूमि पर इस समय बसन्त का साम्राज्य है। दिन प्रतिदिन यात्रियों की संख्या बढती जाती है। कश्मीर के आर्यसमाज विद्वान वक्ताओ को इस सुहावने ऋतु में जब देश के दूसरे भागो मे सूर्य प्रचण्ड के कारण सस्थाए बन्द रहती हैं और कार्य मन्द हो जाता है, काश्मीर आने को सादर आमन्त्रित करते है। जिनके ठहरने तथा भोजन का यथोचित प्रबन्ध किया जाएगा। जो बन्धु हमारे निमन्त्रण को स्वीकार करके यहाँ आने का कष्ट करेंगे, उनसे हमारी प्रार्थना है कि वे अपने समय मे सेथोडा समय निकालकर हमारे प्रचार कार्य मे अपने भाषा के द्वारा सहयोग दें। जिससे एक तो प्रचार होगा और दूसरे आर्य विद्वानो को कश्मीर के भिन्न २ स्थानों का अवलोकन करने का भी अवसर मिलेगा। जो बन्धु इस पुनीत कार्य मे हमें उत्साहित करन चाहे, वे शीघ्र हमसे पत्र व्यवहार करें।

डा० मदनमोहन
मन्त्री, आर्यसमाज हजूरी बाग, काश्मीर

## आर्यसमाज, परमानन्द बस्ती (रथखाना) बीकानेर का चुनाव

वार्षिक निर्वाचन दिनाक ६-४-६९ को साप्ताहिक सत्सग के पश्चात् माननीय सुधीन्द्र कुमार जी, सयुक्त निदेशक राजस्थान शिक्षा विभाग, बीकानेर की अध्यक्षता मे सम्पन्न हुआ तथा निम्न पदाधिकारी एव सदस्य सर्व सम्मति से चुने गये—

१ प्रधान— श्री अमरनाथ जी
२. उपप्रधान ,, सुधीन्द्र कुमार जी
३ ,, ,, बलदेव कृष्ण जी
४ , श्रीमती सुशीला जी वैद्या
५. मन्त्री श्री प्रो. प्रतापसिंह जी
६ उप मन्त्री , जयदेव जी आय
७. ,, ,, ,, हरभगवान जी
८. कोषाध्यक्ष ,, शिवनारायण जी आर्य
९ उप कोषाध्यक्ष—श्री गुलाबसिंह जी
१० पुस्तकाध्यक्ष—श्री रामगोपाल जी आर्य
११ आय व्यय लेखाधिकारी—श्री हरवश जी बक्शी

सदस्य—डा कुलदीपकुमार जी, श्री बृजेन्द्रसिंह जी, श्री प्रेमनाथ जी, श्री धर्मपाल जी गुप्त, श्री मा हीरालाल जी, श्रीमती राधादेवी जी, श्री कान्तिप्रसाद जी श्री हरिनारायण जी गोरिणया, श्रीमती कमला शर्मा।

प्रतिष्ठित सदस्य—श्रीमती कुमार मुखी जी, श्रीमती प्रेमलताजी, श्री पूर्णप्रतापसिंह जी, श्री रामदास जी, श्री बी डी. वर्मा, श्री ठाकुर दास जी।

## आर्य समाज विजय नगर का चुनाव

चुनाव—(१) श्रीमान रामजीलालजी वर्मा —प्रधान
(२) श्रीमान् चतरभुजजी आर्य —उपप्रधान
( ) श्रीमान् मूलचन्दजी गोठर वाल —मन्त्री
(४) श्रीमान् मदनलालजी दरोगा —उपमन्त्री
(५) श्रीमान् रामप्रतापजी बाल्दी —कोषाध्यक्ष

श्री प० भगवानस्वरूपजी "न्यायभूषण" के प्रबन्ध से वैदिक यन्त्रालय अजमेर में मुद्रित और ओम्प्रकाश वानप्रस्थ, सम्पादक प्रकाशक द्वारा दयानन्द आश्रम, केसरगंज अजमेर से प्रकाशित। अधिष्ठाता—श्रीमान् डा० भवानीलालजी भारतीय एम. ए. पी. एच.डी. शास्त्री।

पाक्षिक
आर्य प्रतिनिधि सभा राजस्थान का मुख-पत्र
रजि० नं० १७



# आर्य मार्तण्ड

दयानन्द आदित्य से पाकर ज्योति प्रचण्ड। ध्वंस दम्भ पाखण्ड का करे आर्य्यमार्तण्ड ॥

वर्ष ४७ | वार्षिक मूल्य ५) रुपया | सम्पादक—श्री ओम्भक्त वानप्रस्थ ( रामसहाय शर्मा )
अजमेर प्रथम आषाढ़ कृष्णा १ सं. २०२६वि.,दि.१ जून ६९ दयानन्दाब्द १४५ | एक प्रति का २० पै० | अङ्क ७

## आर्य प्रतिनिधि सभा राजस्थान के नव-निर्वाचित अधिकारी

वयोवृद्ध आर्य नेता पण्डित भगवान स्वरूप जी न्यायभूषण



आप इस वर्ष सर्वसम्मति से प्रधान निर्वाचित हुये हैं

उत्साही नवयुवक डा० भवानीलालजी भारतीय एम० ए० पी० एच० डी०



आप सभा के मन्त्री चुने गये हैं।

## ईश्वर-प्रार्थना

ओ३म्। सहनाववतु सह नौ भुनक्तु।
सह वीर्यं करवावहै ।
तेजस्विनावधीतमस्तु मा
विद्विषावहै ॥

## पद्यानुवाद

हे जगदीश परस्पर सारे, हों हम रक्षक आप।
भोगें साथ पदारथ प्यारे, विक्रम, बड़े प्रताप ॥
हों तेजस्वी, पठन हमारे, [illegible]लाप।
[illegible]

—डा० सुदेव शर्मा

### आर्यसमाज मसूदा में विशेष प्रचारायोजन

आर्यसमाज मसूदा का वार्षिकोत्सव दिनांक २६-६-६९ को बड़े समारोह के साथ मनाया जा रहा है। इस अवसर पर सभा के माननीय प्रधान श्रीमान् पण्डित भगवान स्वरूप जी न्यायभूषण, श्री श्रीकरण जी शारदाश्रीमान् महात्मा आनन्दभिक्षु जी आदि महानुभाव उत्सव की सफलतार्थ पधार रहे हैं। आशा है आर्यजन अधिकाधिक संख्या में उपस्थित होकर लाभ उठायेंगे। —मन्त्री

### २ जून ६९ को अजमेर में शारदा जयंती

दिनांक २ जून १९६९ को स्वर्गीय देशभक्त कुं० चांदकरणजी शारदा की जन्म जयन्ती श्रीमान् मेधार्थी स्वामी जी एम० ए०, की अध्यक्षता में बड़े समारोह से मनाई गई। श्रीमान् पं० भगवान स्वरूप जी न्यायभूषण प्रधान आर्य प्रतिनिधि सभा राजस्थान ने स्वर्गीय शारदा जी के द्वारा केवल आर्यसमाज ही नहीं अपितु समस्त भारतीय राष्ट्र की अद्वितीय सेवाओं की प्रशंसा करते हुए अपनी भावपूर्ण श्रद्धाञ्जलि अर्पित की। इस अवसर पर अजमेर के सुप्रसिद्ध कवि श्री प्रेमजी सक्सेना, श्री श्रीमन्नाम जी वियोगी तथा श्री सुमन गुप्त ने अपनी मधुर कविताओं द्वारा शारदा जी के प्रति हार्दिक श्रद्धाञ्जलि अर्पित की। श्री सक्सेना जी की "चांद करण जी शारदा" कविता बड़ी ही लोक प्रिय रही। इस अवसर पर स्वामी सदानन्द जी महाराज, नाथूलाल अरोड़ा, वैद्य राज पण्डित ब्रह्मानन्द जी त्रिपाठी, पण्डित रामभजन जी मिश्र, पण्डित भूदेव जी शास्त्री ने अपने वक्तृताओं द्वारा शारदाजी के जीवन की प्रेरणारूप घटनाओं पर प्रकाश डाला। तथा उनके जीवन से परोपकार सक्रियता, जन सम्पर्क, आत्मीयता, सेवा भाव तथा कर्तव्य निष्ठा आदि गुणों को ग्रहण करने पर अधिक बल दिया। अध्यक्ष महोदय ने अपने पुराने संस्मरणों को याद दिलाते हुए स्वर्गीय शारदा जी को अपनी भावपूर्ण श्रद्धाञ्जलि भेंट की।

### आर्यवीर दल प्रशिक्षण शिविर

श्री स्वामी काव्यानन्दजी सरस्वती के प्रशिक्षण में प्रांत में आर्य वीर दल के प्रशिक्षण शिविर आयोजित किये जा रहे हैं। जो समाजें एतदर्थ व्यवस्था करना चाहें, कार्यालय को सूचित करने का कष्ट करें।

आयोजित कार्यक्रम निम्नांकित हैं—

दिनाक १ से ८ जून ६९ आर्य समाज ब्यावर
दिनाक ११ से १५ जून ६९ आर्यसमाज गंगापुर सिटी।

आशा है समीपस्थ आर्य समाजें अवश्य लाभान्वित होंगी।

—सभा मन्त्री

# साहित्य समीक्षा

मैंने आर्यजगत् के सुप्रसिद्ध उत्साही, परिश्रमी, युवक विद्वान् श्री भवानीलाल जी भारतीय एम. ए. के उपर्युक्त शोध-ग्रन्थ को लगभग आद्योपान्त पढ़ा जिसके राजस्थान विश्व-विद्यालय द्वारा स्वीकृत होने पर उन्हें पी. एच. डी. की उपाधि-प्रदान की गई है।

इसमें सुयोग्य लेखक ने ऋषि दयानन्द से लेकर इस समय तक के उन सब आर्य विद्वानों के मुख्य तथा संस्कृत में लिखे पर साथ ही वेद, ब्राह्मण, उपनिषद्, गीता, दर्शनशास्त्र, गृह्यसूत्र, स्मृति ग्रन्थ, काव्य, नाटक, उपन्यास, जीवन चरित आदि विषयक संस्कृत ग्रन्थों के अनुवाद तथा ऐसे अन्य साहित्य को अत्यधिक परिश्रम से संगृहीत करके उनका विशद विवेचनात्मक अनुशीलन प्रस्तुत किया है। लेखक महोदय को इसके लिये अत्यधिक परिश्रम करना पड़ा है, क्योंकि इनमें से अनेक ग्रन्थ वर्षों से अप्राप्य हैं और आर्यसमाजों तथा गुरुकुलादि के प्राचीन पुस्तकालयों तथा पुराने विद्या प्रेमियों से ही उनके विषय में ज्ञात हो सका है। आर्यसमाजों तथा आर्य विद्वानों ने गुरुकुल महाविद्यालयादि संस्थाओं के द्वारा संस्कृत भाषा के प्रसार के लिये कितना अद्भुत कार्य किया है। यह इस विद्वतापूर्ण शोध ग्रन्थ के अध्ययन से स्पष्ट ज्ञात हो जायगा। और अनुसंधान में इससे सहायता मिलेगी। इस प्रकार का विवेचनात्मक अद्भुत संग्रह कर के सुयोग्य लेखक ने आर्यसमाज को (जिसे अब तक प्रायः एक मध्यम वर्ग की समाज सुधारक संस्था ही समझा जाता है) विद्वद्वृन्द की दृष्टि में अत्यन्त प्रतिष्ठित बनाने का अत्यन्त अभिनन्दनीय कार्य किया है और इस प्रकार आर्यसमाज की बड़ी प्रशंसनीय सेवा की है, जिसके लिये वे समस्त आर्यजगत् के धन्यवाद और साधुवाद के पात्र हैं।

यह ग्रन्थ आर्यजगत् और उससे सम्बन्धित विद्वानों के संस्कृत साहित्य विषयक समस्त ग्रन्थों की सूची मात्र नहीं है, अपितु इसमें उन ग्रन्थों के मुख्य विषयों और उनकी विशेषताओं का काव्य अलंकार आदि की दृष्टि से भी उत्तम विवेचन उदाहरण सहित प्रस्तुत किया गया है, जिससे इसकी उपयोगिता बहुत बढ़ गई है। सुयोग्य युवक लेखक का इस अत्यन्त परिश्रम और गम्भीर अनुशीलन सूचक शोध-ग्रन्थ के लिये हार्दिक अभिनन्दन करते हुये मैं इसका संस्कृत प्रेमी छात्रों और विद्वानों में अधिकाधिक प्रचार चाहता हूँ। देश विदेश के प्रत्येक पुस्तकालय में इसकी एक प्रति अवश्य ही होनी चाहिये। इससे न केवल विद्यार्थियों अपितु अध्यापकों और उपाध्यायों को भी अत्यधिक लाभ होगा।

## आर्यसमाज आबू पर्वत का सभा मन्त्री द्वारा निरीक्षण

आर्य प्रतिनिधि सभा राजस्थान के नव-निर्वाचित मन्त्री डा० भवानीलाल भारतीय दिनांक २१ मई को आर्यसमाज आबू पर्वत पर पधारे। यहां आर्यसमाज के उत्साही मन्त्री श्री कन्हैयालाल जी से भेंट की तथा आर्यसमाज के कार्यालय का निरीक्षण किया। आबू पर्वत जैसे पर्यटन केन्द्र पर आर्यसमाज का कार्य कितना महत्वपूर्ण है, यह सभी जानते हैं। यहां ब्रह्मकुमारी संस्था ने अपनी प्रदर्शिनी लगाकर पाखण्ड वृद्धि में अभूतपूर्व योगदान किया है। स्वामी काव्यानन्दजी दिलवाड़ा मार्ग पर गुफा में अपना स्थायी निवास बनाकर वैदिक धर्म के प्रचार की योजना बना रहे हैं, जो आर्य बन्धु आबू पर्वत पर भ्रमणार्थ जावें, उन्हें आर्यसमाज में जाकर वहां की प्रवृत्तियों से अवश्य परिचित होना चाहिये।

## यज्ञ

श्री सुखदेव जी गोयल, अधिष्ठाता, आर्य वीर दल की स्वर्गीया मातु श्री श्रीमती शान्तिदेवी के निधन की प्रथम पुण्य तिथि के उपलक्ष में दिनांक २५-५-६९ को बृहद् यज्ञ सभा मन्त्री डा० भवानीलाल जी भारतीय के पौरोहित्य में हुआ। यज्ञान्त में डा० भारतीय का आध्यात्मिक प्रवचन हुआ। इस अवसर पर श्री सुखदेवजी ने आर्यसमाज सरदारपुरा जोधपुर को अतिथि भवन निर्माण मध्य ५००) रु० तथा आर्य प्रतिनिधि सभा राजस्थान को २५) रु० प्रदान किये।

## आर्यसमाज रातानाडा (महर्षि दयानन्द मार्ग) जोधपुर का नव निर्वाचन

दिनांक २५-५-६९ को उक्त समाज की साधारण सभा का अधिवेशन सभा मन्त्री डा० भवानीलाल जी भारतीय की अध्यक्षता में सम्पन्न हुआ था। सभा प्रधान मान्य पण्डित भगवान स्वरूप जी न्यायभूषण अस्वस्थ होने के कारण इस सभा की अध्यक्षता नहीं कर सके। आगामी वर्ष के लिये समाज के अधिकारियों का निर्वाचन इस प्रकार हुआ:—

प्रधान-श्री केसरसिंह जी सोलंकी
उपप्रधान-पण्डित ठाकुर दत्तजी शास्त्री तथा
पण्डित सोहनलाल जी
मन्त्री-श्री धर्मपालजी
उपमन्त्री श्री प्रकाशचन्द जी
कोषाध्यक्ष-श्री योगेशचन्द्रजी
पुस्तकाध्यक्ष-श्री शंकरलाल जी

इनके अतिरिक्त श्री सन्तोषसिंह जी, श्री सुलतान सिंह जी, श्री मुकुन्ददास जी, श्री दीपचन्द जी तथा श्रीमती बाली अन्तरंग सभासद निर्वाचित हुये।

---



## आर्यसमाज सरदारपुरा जोधपुर में राष्ट्रीय प्रदर्शनी का उद्घाटन

राजस्थान उच्च न्यायालय के न्यायाधीश न्यायमूर्ति श्री कानसिंहजी के कर-कमलों द्वारा दिनांक २५-२-६९ को सायंकाल सम्पन्न हुआ। प्रदर्शनी के व्यवस्थापक और निर्माता आर्य वीर दल के पुराने कार्यकर्ता श्री ऋषिनाथ जी ने विविध प्रदर्शनीय वस्तुओं का परिचय दिया। इस अवसर पर प्रदर्शनी का परिचय देते हुए डा० भवानीलाल भारतीय, मन्त्री आर्य प्रतिनिधि सभा, राजस्थान ने आशा प्रगट की कि इस प्रदर्शनी से अधिकाधिक लोग लाभ उठायेंगे। न्यायमूर्ति श्री कानसिंहजी ने प्रदर्शनी में प्रदर्शित कलात्मक वस्तुओं तथा अन्य शिक्षाप्रद योजनाओं की महत्ता पर प्रकाश डालते हुए आशा प्रकट की कि इस प्रदर्शनी के द्वारा नवयुवक वर्ग प्रेरणा ग्रहण करेगा।"

—सम्वाददाता

## प्रचार

दिनांक १७-५-६९ को ग्राम गोयला में श्री जसवन्तसिंह जी रावत के यहां श्री कर्मवीर वानप्रस्थी जी ने वास्तु विधि करवाया। तथा पांच आदमियों को यज्ञोपवित धारण कराई। इसमें आर्यसमाज के प्रतिनिधि श्री दुलहसिंह जी तथा सोहन सिंह जी ने उत्साह से भाग लिया। जसवन्त सिंह जी, हरीसिंह जी, बन्नासिंह जी व गुलाबदेवी ने इस कार्यक्रम में बोलते हुए कहाकि इस प्रकार के कार्यक्रमों से ग्राम सुधार हो सकता है।

दिनांक १८-५-६९ को ग्राम मसूदा के प्रधान शल्य चिकित्सक (श्रीमान् डाक्टर साहब) के भवन में श्री कर्मवीर वानप्रस्थी जी के द्वारा उनके पौत्र का चूड़ा कर्म संस्कार कराया। उनके यज्ञ में यजमान पद जेष्ठ पुत्र तथा उनकी धर्म पत्नी श्रीमती सरोज देवी ने ग्रहण किया। पांच आदमियों ने यज्ञोपवीत धारण किया। आर्यसमाज के सब प्रतिनिधियों ने उत्साह से भाग लिया। प्रसाद के बाद कार्यवाही समाप्त हुई। आर्यसमाज की ओर से डाक्टर साहब को धन्यवाद दिया गया।

मन्त्री
आर्यसमाज मसूदा

## "डान रीडर" पुस्तक पर प्रतिबंध

आर्यसमाज, किशनपोल बाजार, जयपुर ने दिनांक १८-६-६९ के अपने साप्ताहिक अधिवेशन में एक प्रस्ताव पास कर राजस्थान सरकार से यह अनुरोध किया है कि कक्षा ९ के इंग्लिश के पाठ्क्रम में पढ़ाई जाने वाली "डान रीडर" पुस्तक के पृष्ठ संख्या १०३ पर गौमांस के सम्बन्ध में जो अंश छाए गए हैं, वे भारतीय संस्कृति व भारतीय जनमानस पर आघात करने वाले हैं अतः इस पुस्तक से विद्यार्थियों में गलत संस्कार पड़ेंगे, उससे बचने हेतु उस अंश को तुरन्त निकाला जावे और जब तक यह अंश नहीं निकलता है इस पुस्तक की सारी प्रतियां जब्त करली जावे। राजस्थान सरकार ने उक्त पुस्तक पर प्रतिबन्ध लगाकर उक्त अंश को निरस्त कर दिया गया है।

# आर्य मार्तण्ड

अजमेर प्रथम आषाढ़ कृष्णा १ सं० २०२६ वि० दिनांक १ जून सन् १९६९


सम्पादकीय—

## सभा का आबूरोड अधिवेशन !

चिर प्रतीक्षित आर्य प्रतिनिधि सभा राजस्थान का वार्षिक साधारण अधिवेशन दिनांक १८ से १९ मई ६९ तक राजस्थान की ग्रीष्मकाल की चहल-पहल की नगरी आबू रोड में सानन्द सम्पन्न हो गया। भयंकर गर्मी और यातायात की असन्तुलित कठिनाइयों, भीड़-भाड़ के होते हुये भी प्रांत की भिन्न भिन्न समाजों के प्रतिनिधियों ने बहु संख्या में भाग लिया। सभी प्रतिनिधियों में अपूर्व उत्साह और आर्यसमाज के सुदृढ़ संगठन के प्रति अटूट लगन एवं ममत्व था। यह अधिवेशन वयोवृद्ध, अनुभवी अधिकारियों एवं अदम्य उत्साही नवयुवक कार्यकर्ताओं के समन्वय का एक केन्द्र स्थल था, जहाँ सभी मिलकर प्रांत की स्थिति पर तन्मयता से विचार कर तत्परता के साथ कर्तव्य पथ पर अग्रसर होने के लिये सोत्साह एकत्रित हुये थे।

दिनांक १८ मई को १ बजे के लगभग ईश्वर प्रार्थना के साथ अधिवेशन का कार्य प्रारम्भ हुआ। सभा मन्त्री श्री श्रीकरणजी शारदा ने वर्ष के कार्य का विवरण तथा आय-व्यय के जांचे हुये हिसाब का लेखा जोखा प्रस्तुत किया, जो सदस्यों की करतल-ध्वनि के साथ सहर्ष स्वीकार किया गया।

सबसे महत्वपूर्ण और आवश्यक कार्य था सभाधिकारियों के वार्षिक निर्वाचन का विषय; जो सर्व सम्मत, पूर्ण शांति के साथ सानन्द सम्पन्न हुआ। यद्यपि निर्वाचन के समय यदा-कदा उग्रता और आवावेश के दृश्य भी दृष्टिगोचर हुये, किन्तु वह तो नवयुवकों के उत्साह एवं सजगता के प्रतीक थे।

सभा की महत्ता और प्रतिष्ठा के अनुसार आर्य प्रतिनिधियों का कार्य व्यवहार और आचरण जन साधारण का मार्ग प्रदर्शक होता है।

आर्यसमाज नैतिक परम्पराओं, शिष्टाचार, अनुशासन और चरित्र निर्माण में जितना अधिक अग्रणी माना जाता है, अन्य संगठन नहीं। ऐसी सभा में अधिवेशन में सम्मिलित होने वाले आर्य प्रतिनिधियों को अधिकाधिक अनुशासित, संयमित और मर्यादित होना इस संगठन के लिये अधिक प्रतिष्ठा प्रद और प्रभावोत्पादक होगा।

दिनांक १९, मई अधिवेशन का द्वितीय दिवस था। आज अनेक महत्वपूर्ण प्रस्तावों पर गम्भीर विचार विनिमय हुआ। प्रस्तावों के समर्थन के समय वक्ताओं के उत्साह पूर्ण वक्तव्य इस बात के प्रतीक थे, कि आर्यसमाज के संगठन की शिथिलता अपति, प्रचार शैली के नवीनीकरण और देश भर में व्याप्त अराष्ट्रीय ईसाई प्रचार निरोध के प्रति आर्यों में कितनी चिन्ता और आवश्यकता है। कुशलगढ़ में ईसाई पादरियों द्वारा आर्यसमाज के कार्यकर्ताओं पर किये गये हिंसात्मक आक्रमण की घोर निन्दा करते हुये प्रतिनिधियों ने अपना तीव्ररोष प्रकट किया, तथा सरकारी रवैये पर दुख प्रकट किया। और भी अनेकों महत्वपूर्ण प्रस्ताव पारित कर सभा के कार्यकर्ताओं ने अपने कार्य व्यवहार से यह सिद्ध कर दिया कि आर्यसमाज का संगठन आज भी सक्रिय जागरूक है और महर्षि दयानन्द के अनुयायी, वैदिक धर्म तथा आर्य संस्कृति के संरक्षण, संवर्धन में सोत्साह प्रत्येक समय त्याग और बलिदान के लिये तैयार हैं। यद्यपि यह अधिवेशन वर्ष में एक बार ही आयोजित होता है, परन्तु आर्यों का यह सम्मिलित पारस्परिक सम्पर्क, विचार विनिमय, कार्य व्यवहार, और वार्षिक योजनाओं के निर्माण की स्मृतियों की छाप प्रत्येक आर्य के हृदय पटल पर अंकित कर जाता है,

इस अधिवेशनों में जहां हम वर्ष का आय-व्यय का हिसाब, कार्य विवरण एवं आगामी वर्ष का आय-व्यय की अनुमानिक रूप रेखा स्वीकृत करते हैं, उसके साथ ही यदि सभी सदस्य आर्य समाजों और प्रतिनिधि सभा को सशक्त बनाने के लिये कार्य योजना का निर्माण कर तदनुसार कार्य करें, तो अधिक लाभप्रद होगा। यथा-भावी वर्ष में प्रांत में कितनी आर्यसमाजें, कितनी आर्य वीर दल की शाखायें तथा कितने अराष्ट्रीय ईसाई प्रचार निरोध केन्द्र स्थापित करने हैं? वेद प्रचारार्थ कितने उपदेशक और भजनोपदेशकों की नियुक्ति कर महर्षि के संदेश को गांव २ और घर घर में पहुंचाना है। वर्ष भर में कितने आर्यसमाज के प्रचार तथा दीक्षा के शिविर आयोजित करने हैं? तथा भावी वर्ष में कितने आर्य मार्तण्ड के नवीन ग्राहक बनाने हैं? आदि आदि। यदि इस प्रकार एक वर्षीय योजना का निश्चय करके उसके अनुसार कार्यारम्भ कर दें, तो वह विशेष लाभदायक होगा।

आशा है प्रांत की समाजें और आर्य बन्धु इस विषय में गम्भीरता पूर्वक विचार कर सभा को सर्वांगपूर्ण, सशक्त और समर्थ बनाने में तन, मन, धन से अपना सक्रिय सहयोग प्रदान करते हुये महर्षि दयानन्द के अधूरे कार्य को पूर्ण करने में सक्रिय प्रयास करेंगे।

सभा का आबू रोड का अधिवेशन सभी दृष्टियों से सफल कहा जा सकता है। इसके लिये सभा के योग्य अधिकारी तथा आर्यसमाज आबू रोड के उत्साहित मंत्री श्री जेठमलजी आर्य बधाई के पात्र हैं, जिन्होंने अहर्निश सलग्न, सोत्साह श्रम करके इस अधिवेशन को सानन्द सफल बनाया।

### डा० भारतीय रचित शोध ग्रन्थ सभा के वार्षिक अधिवेशन

आबूरोड में उपलब्ध हो सकेगा। यह सूचना देते हुए आर्यसमाज पाली के मन्त्रीजी लिखते हैं कि 'आर्यसमाज और महर्षि दयानन्द की संस्कृत साहित्य की देन' शीर्षक शोध ग्रन्थ श्री रामलाल कपूर ट्रस्ट से दो मास पूर्व प्रकाशित हो गया है। प्रतिनिधि सभा राजस्थान के वार्षिक अधिवेशन में प्रान्त की विभिन्न समाजों से आने वाले प्रतिनिधि बन्धुओं से निवेदन है कि वे इस महत्वपूर्ण शोध ग्रन्थ की एक एक प्रति अपनी आर्यसमाज के पुस्तकालय के लिये अवश्य लेते पधारें। शोध ग्रन्थ का मूल्य लागत मात्र ६ रु० तथा पृष्ठ संख्या ४०० है। डा. मंगलदेव शास्त्री, डा. सुधीर कुमार गुप्त, डा. मथुरालाल शर्मा, प. धर्मदेव जी विद्या-वाचस्पति, पं. उदयवीर शास्त्री तथा स्व. पं. भगवतदत्त जी आदि विद्वानों से प्रशंसित यह ग्रन्थ लेखक की एक अनूठी कृति है।

### आ० भा० आर्यसन्यासी मण्डल के वर्तमान–प्रमुख पदाधिकारी

(१) अध्यक्ष —स्वामी व्रतानन्दजी कुलपति (आर्षगुरुकुल चित्तौड़)

(२) का. वा. उपाध्यक्ष-स्वामी रामानन्दजी शास्त्री ससत् सदस्य (देहली)

(३) संरक्षक —विदुषी विदयोतमायतिजी (ज्वालापुर)

(४) महामन्त्री —वेद स्वामी मेधार्थी स्वामी सरस्वती एम. ए. (जीवापुर गुजरात)

(५) मंत्री —स्वामी आत्मानन्द तीर्थ (खरखोदा-मेरठ)

(६) कोषाध्यक्ष —स्वामी स्वतन्त्रानन्द सरस्वती (बांसवाड़ा राजस्थान)

(७) पुस्तकाध्यक्ष —स्वामी ओमानन्दजी (पुष्कर रोड़ अजमेर)

विशेष जानने के लिये इस पते पर पत्र व्यवहार कीजिये। कन्हैयालाल साहित्यालकार

कार्यालय सचिव
आर्यनगर
अजमेर

### आवश्यकता

आर्यसमाज द्वारा सचालित श्री मद्दयानन्द महिला शिक्षण केन्द्र शाहपुरा में दो अध्यापिकाओं की आवश्यकता है। जिनकी योग्यता निम्न प्रकार हो और जो आर्य विचार वाली हो।

(१) प्रशिक्षित स्नातिका अथवा ६ साल का अध्यापन अनुभव वाली (Arts site)

(२) स्नातिका जो गणित व विज्ञान विषय पढ़ा सके।

नोट:—नियुक्तियां अस्थायी होंगी। वेतन राजस्थान सरकार शिक्षा विभाग के नियमानुसार दिया जावेगा। प्रार्थना पत्र प्रमाण पत्रों सहित २ जून ६९ तक आचार्य महिला केन्द्र के पास प्रस्तुत करें।

## अराष्ट्रीय ईसाई प्रचार निरोध हेतु प्राप्त दानराशि

दिनांक १९-५-६९ को आर्य प्रतिनिधि सभा राजस्थान के साधारण अधिवेशन के अवसर पर प्रांत में बढते हुये अराष्ट्रीय ईसाई प्रचार के निरोधार्थ सभा को एतदर्थ सहायता की अपील पर प्राप्त दान राशि का विवरण निम्नांकित है—

आशा है प्रांत की समस्त समाजें व सभी आर्य सज्जन इस दिशा में अधिक प्रयत्नशील होकर सभा को आर्थिक सहायता प्रदान कराने में सक्रिय सहयोग प्रदान करेंगे। सभा एतदर्थ हार्दिक आभार प्रकट करती है। दान दाताओं के नाम निम्न प्रकार हैं—

५१) „ रामस्वरूप जी वेदी शाहपुरा
२५) „ मीरचन्द मनसुख जयपुर
५) श्री सुन्दरलाल जी भाटिया जयपुर
५) „ श्रीकरण जी शारदा अजमेर
५) „ लालचन्द जी पित्ती नागौर
५) „ सतोषसिंह जी कछवाहा जोधपुर
५) „ भवानीलाल जी भारतीय पाली
५) „ जतनचन्द्र जी एडवोकेट अजमेर
५) „ प्रेमदेव जी भूषण एडवोकेट भरतपुर
५) „ वैद्य धर्मसिंह जी कोठारी अजमेर
११) „ डा. खेतलखानी जी जोधपुर
५) „ सुखदेव जी गोयल जोधपुर
५) „ बाबूराम जी बजाज भरतपुर
५) „ गुमानमल जी चडक एडवोकेट अजमेर
५) „ हरिकृष्ण जी जोधपुर
५) „ चौधरी नारायणराम जी गगानगर
५) „ किशनसिंह गगानगर
५) „ घासीराम गगानगर
५) „ यशपालजी जयपुर
५) „ आचार्य धर्मेन्द्रनाथ जी जयपुर
५) „ सोहनलाल जी कटारिया अजमेर
५) „ प्रो. पृथ्वीराज जी विनीत
५) „ श्याम सुन्दर जी बिहानी आदर्शनगर जयपुर
११) „ माधोसिंह जी शाहपुरा
५) „ हरदत्त जी एडवोकेट भरतपुर
५) „ मोतीलाल जी जोधपुर
५) „ श्रीचन्द जी लाडनूं
५) „ राधावल्लभ जी पारिख नागौर
५) „ रोचीराम जी अजमेर
५) „ ओमप्रकाश जी बजारी ब्यावर
५) „ जीवनलाल जी छोटी सादड़ी
५) „ ब्रह्मदत्त जी शर्मा बीकानेर
२) „ कन्हैयालाल जी बीकानेर
२) „ कृष्णाराम जी डोडियाना
१) „ हरीराम जी गुमाना
१) „ अमृतलाल जी गुमाना
१) „ शकरलाल जी बसेडा
१) „ हरिशचन्द्र जी आर्य लाडनू
१) „ सुलतानसिंह जी

### वचन प्राप्तः—

५) कु॰सरला जी शारदा अजमेर
५) चचलदास जी नया बाजार, अजमेर
५१) वार्षिक आर्यसमाज नागौर
५) मासिक २ वर्ष तक आर्यसमाज बांरा
५) मासिक२वर्ष तक श्री पुरुषोत्तम स्वरूपजी बांरा
१०) मासिक आर्य समाज आदर्श नगर जयपुर
१०) मासिक हरिदत्त जी एडवोकेट भरतपुर
५) मासिक आर्य समाज गजनेर रोड बीकानेर
१०) मासिक आर्य समाज रातानाडा जोधपुर
५) मासिक आर्य समाज महर्षि दयानन्द आर्य बीकानेर
५) मासिक आर्य समाज सरदारपुरा जोधपुर
१०) मासिक लालचन्द जी आर्य डीडवाना
५) मासिक आर्य समाज रानी बाजार बीकानेर

## आर्य समाज कृष्ण पोल द्वारा (दलितोद्धार) दिवस सम्पन्न

दिनांक १८-५-६९ को स्थानीय आर्यसमाज द्वारा एक वृहत् सभा का आयोजन किया गया, जिसमें जयपुर के हरिजन भाई भी आमन्त्रित किए गए। उपरोक्त सभा में सर्व श्री स्वामी नृसिंहदेव जी सरस्वती, स्वामी सोमानन्द, उग्रसेन लेखी, पण्डित सुरेन्द्र शर्मा, श्री गौरीलाल, श्री मिट्ठनलाल, श्री अटलराम शर्मा व श्री रवजी भाई आदि के भाषण हुए। सभी वक्ताओं ने आर्यसमाज द्वारा प्रतिपादित वैदिक वर्ण व्यवस्था पर बल दिया तथा कहा कि हरिजन शब्द को हम कोई महत्वपूर्ण नहीं समझते, क्योंकि इससे एक जाति विशेष की प्रतीति होती है। आर्यसमाज का दृष्टिकोण तो यह रहा है कि सारा मानव समाज गुण कर्म व्यवस्था से गुंथा हुआ है। अन्यथा जात पांत व अछूत छूआछूत को वैदिक वर्ण व्यवस्था प्रश्रय नहीं देती। श्री शंकराचार्य, स्वामी निरंजनदेव के विभिन्न वक्तव्यों को लेकर जो देश में वातावरण फैला है उस भ्रान्ति के निवारणार्थ आर्यसमाज की शिरोमणि संस्था सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा, देहली के द्वारा छूआ छूत विरोधी सप्ताह १८ से २५ मई तक सभी समाजों को मनाने का आदेश दिया था उसके अन्तर्गत भी यह सम्मेलन सम्पन्न हुआ। हरिजन कहलाने वाले भाईयों के द्वारा ही सभा में प्रसाद वितरण करवाया गया।

## उपनयन तथा नामकरण संस्कार

अन्तर्राष्ट्रीय उपदेशक विद्यालय, टंकारा, के तीन विद्यार्थियों के नाम परिवर्तित किए गए। पहले नाम उपयुक्त न थे।

| पूर्व नाम | नवीन नाम |
|---|---|
| १. मनोहर भाई | वेद भिक्षु |
| २. रामजन्म आर्य | सोमदेव आर्य |
| ३. नत्थाराम | वेद प्रकाश |

नाम परिवर्तन के साथ ही इनके उपनयन संस्कार भी किए गए।

श्री सत्यदेव विद्यालंकार तथा श्री सत्यव्रत जी सनातन ने सुसंस्कृत नामों की महत्ता पर प्रकाश डाला।

## प्रान्त में प्रचार

दिनांक २१-४-६९ को श्री मांगीलाल जी पटवारी के पुत्र जन्म दिवस पर हवन, कार्यक्रम हुआ जिसमें शहर के सौ सरकारी कर्मचारी और नगर के गणमान्य व्यक्तियों ने भाग लिया। हवन स्थानीय आर्यसमाज के श्री शंकरलाल कड़ेल और श्री लालचन्द जी आर्य द्वारा सम्पन्न किया गया। भजन, प्रार्थना और आर्यसमाज क्या है? और आज हिन्दुओं की रक्षा कौन करता है पर प्रकाश डाला। नगर में इस कार्यक्रम की सर्वत्र प्रशंसा हुई एवम् नगरवासियों ने तन मन धन से मदद का आश्वासन दिया। श्री मांगीलाल जी पटवारी ने आर्यसमाज को ५) रु० दान स्वरूप भेंट किये। श्री लालचन्द आर्य ने सत्यार्थ प्रकाश और गोकरुणानिधि के कुछ अंश पढ़कर कर्त्तव्य बताया और प्रत्येक हिन्दू भाई को आर्यसमाज को सहयोग देने की आवश्यकता पर प्रकाश डाला। इस पर कई सज्जनों ने सदस्यता ग्रहण की।

## शोक समाचार

सावर (अजमेर) अत्यन्त अवसाद का विषय है कि अनन्य आर्यप्रेमी आर्य समाज के मंत्री अन्यतम अनुयायी एवं सत्याग्रही श्री सूरजमल जी आर्य का दि. ५ मई को ७५ वर्ष की आयु में अकस्मात् स्वर्गवास हो गया। इस निधन से आर्य समाज तथा आर्य प्रेमी प्राणी वर्ग की अपूरणीय क्षति हुई है।

दिवंगतात्मा की पावन स्मृति में उनके सुपुत्र श्री लक्ष्मण कुमार जी आर्य ने स्वर्गारोहण तिथि से शोक निवृति हेतु एक दैनिक यज्ञ का आयोजन रखा और अन्त में ता. १९ से २१ मई तक प्रातः यज्ञ प्रवचन एवं रात्रि में पूज्य श्री पं० कमलेश कुमार जी को सानुरोध निमन्त्रण पर बुलवाकर धार्मिक उपदेशों की व्यवस्था की। जिससे स्थानीय जनता एवं अतिथि गण बड़े प्रभावित हुये।

इतना ही नहीं मौसर जैसी अमान्य एवं अवैदिकी कुप्रथा का बहिष्कार करते हुये श्री लक्ष्मण कुमार जी ने अपने स्वर्गीय पिता श्री की स्मृति को अमर रूप देने के सदुद्देश्य से लगभग १० हजार रु० की लागत का एक दो मंजिला पक्का भवन एवं १००१ रु० की स्थिर निधि आर्य समाज को वैदिक पुस्तकालय तथा वाचनालय को दान दिया जिसकी सभी ने भूरि-भूरि प्रशंसा की। सभी स्थानीय संस्थाओं एवं विद्वत्जनों ने स्वर्गीय आत्मा को सार्वजनिक शोक सभा में अपनी सादर श्रद्धांजलियां समर्पित की।

## शोक सभा

आज ११-२-६९ को श्री महर्षि दयानन्द स्मारक ट्रस्ट की यज्ञशाला में रविवार के सत्सङ्ग के अनन्तर ट्रस्ट के आधीन कार्य करने वाले कार्यकर्त्ताओं तथा उपदेशक विद्यालय के विद्यार्थियों की शोक सभा हुई। इसमें महामहिम, राष्ट्रपति डा० जाकिर हुसैन जी के स्वर्गवास होने पर शोक प्रकट किया गया। डाक्टर साहिब जैसे महान् गांधीवादी तथा व्यवहारिक शिक्षा शास्त्री के निधन से जो राष्ट्र की क्षति हुई है उसके लिए चिन्ता प्रगट की गई तथा डा० साहिब की आत्मा की सद्गति के लिये विशेष प्रार्थना की गई।

## आवश्यकता

गौड़ 'विधुर' उद्योग परायण योग्य ब्राह्मण वर के लिये गरीब ब्राह्मण परिवार की सुशील कन्या अथवा निसतान विधवा की शीघ्र आवश्यकता है।

पता:—
परमानन्द शर्मा
C/o डा० उमादत्त शर्मा
29 E ब्लाक, श्री गंगानगर

# हिन्दू राष्ट्रवाद और कुछ भ्रान्तियां

लेखक—श्री राजेन्द्रप्रसाद जी जैन

कुछ लोगों का कहना है कि 'भारत में हिंदुओं के अतिरिक्त मुसलमान और ईसाई भी रहते हैं, अतः इसको हिन्दूराष्ट्र घोषित नहीं किया जा सकता।' परन्तु इस प्रकार कहने वाले सज्जनों के पास इसका क्या उत्तर है कि पाकिस्तान में हिन्दू और ईसाई रहते हैं, फिर उसे 'मुस्लिमराष्ट्र' कैसे घोषित कर दिया गया ? ईरान में सुन्नी, ईसाई और पारसी भी रहते हैं, फिर वह 'शियाराष्ट्र' क्यों है ? इंग्लैंड में रोमन कैथलिक और यहूदी भी हैं, फिर वह 'एङ्गलिकनराष्ट्र' क्यों है ? इटली स्पेन तथा पुर्तगाल में प्रोटेस्टेन्टों की बड़ी संख्या है, फिर भी वे 'रोमन कैथलिकराष्ट्र' हैं। विश्व में ऐसा कोई भी देश नहीं, जहां केवल एक ही धर्म अथवा एक ही जीवन पद्धति के अनुयायी हों, फिर भी विश्व के ९० प्रतिशत राष्ट्र 'धर्मसापेक्ष' हैं। मुसलमानों और ईसाइयों के आने से पूर्व भारत हिन्दूराष्ट्र था। उनके आक्रमणों के फलस्वरूप भारत का अपनी राष्ट्रीयता को नकार देना, इतिहास में 'जिसकी लाठी उसकी भैंस वाले' सिद्धान्त को मान्यता प्रदान करना, आक्रान्ताओं का उत्साह बढ़ाना तथा सत्रस्त राष्ट्र के मनोबल को तोड़ना है,यदि हिन्दुस्तान को हिन्दूराष्ट्र घोषित कराने में असफल रहते हैं, तो इतिहास उन्हें क्षमा नहीं करेगा। उनका इतिहास न्याय और शौर्य के स्थान पर अन्याय और नपुंसकता का संदेशवाहक होगा।

कुछ लोगों का कहना है कि 'धर्मसापेक्ष राष्ट्र युग धर्म के विरुद्ध है।' प्रथम तो यह बात गलत है। संसार के नब्बे प्रतिशत राष्ट्र धर्मसापेक्ष हैं और जो कम्युनिज्म को भी एक धर्म मान लिया जाय तो ९९ प्रतिशत राष्ट्र धर्मसापेक्ष निकलेंगे। और फिर, यदि धर्मसापेक्षता बुरी है, तो भारत सरकार को उसके विरुद्ध प्रचार के लिये एक अलग विभाग खोल देना चाहिये तथा उन तमाम देशों से सम्बन्ध विच्छेद कर लेना चाहिये, जो धर्मसापेक्ष हैं। पञ्चशील में एक छठा शील यह और जोड़ देना चाहिये कि प्रत्येक राष्ट्र 'धर्मनिरपेक्ष' हो। भारत सरकार की धर्मनिरपेक्षता सच्ची है या केवल हिन्दूधर्म को नष्ट करने का एक बहाना है। इसकी कसौटी यह है कि वह भारत में रहने वाले उन सब लोगों को नागरिकता के अधिकारों से वञ्चित कर दे, जो किसी भी धर्मसापेक्ष राष्ट्र से भावात्मक एकता रखते हैं।

कुछ लोगों ने आपत्ति की है कि 'यदि भारत हिन्दूराष्ट्र घोषित हो गया तो क्या फिर यहां के मुसलमान एवं ईसाइयों को यहां से भागना पड़ेगा?' मैं उनसेपूछता हूं कि 'इङ्गलैंड से रोमनकैथलिक भाये या उन्हें बलात् एङ्गलिकन धर्म का अनुयायी बना लिया गया ?' जब संसार के सभी धर्मसापेक्ष राष्ट्रों में अन्य धर्मावलम्बी आनन्दपूर्वक रह रहें हैं और मुसलमानों के अनुसार तो पाकिस्तान का हिन्दू भी मौजें ले रहा है तो फिर एक हिन्दू राष्ट्र पर ही ऐसी शङ्का क्यों की जाय कि वह मुसलमानों तथा ईसाइयों का उन्मूलन कर देगा, जब कि इतिहास की साक्षी इसके विपरीत है। हिन्दूओं ने तो विधर्मियों को उस समय भी शरण दी, जब धार्मिक अत्याचारों से इतिहास के पृष्ठ भरे जाते थे। जब ईसाइयों का उत्पीडन चल रहा था, तब, अबसे १६०० वर्ष पूर्व वे भागकर दक्षिण भारत में आये थे। जेरुसलमका मन्दिर टूटने पर यहूदी यहाँ भागकर आये। मुसलमानों की ईरान विजय के पश्चात् पारसी यहाँ भागकर आये। शिया मुसलमानों के अनुसार यजीद के अत्याचारों से त्रस्त होकर हजरत इमामहुसैन ने भारत में शरण लेने की इच्छा प्रकट की थी, जो पूरी न हो सकी। मुगल सम्राट हुमायूं की बहिन गुलबदन बेगम ने अपनी पुस्तक 'हुमायूं नामा' में लिखा है कि 'कर्बला की दुःखद घटना के पश्चात् अनेक सैदानियाँ भागकर पटियाला आ गयी थी।' जिस काल को हम मुस्लिमकाल कहते हैं, उसमें भी हिन्दूओं के बड़े बड़े स्वतन्त्र साम्राज्य थे— विजयनगर, मेवाड़, मरहट्टा साम्राज्य—जिसमें बहुत बड़ी संख्या मुसलमानों तथा ईसाइयों की रहती थी, परन्तु एक भी मुसलमान, एक भी ईसाई ने वहां सताये जाने की शिकायत नहीं की। सिखों की अलबत्ता वे शिकायत करते रहे। मौलाना तुफैलमहमद अपनी पुस्तक 'मुसलमानों का रोशन मुस्तकबिल' (छठा संस्करण) में लिखते हैं कि "१७ वीं सदी में भारत के मुल्लाओं का एक संमेलन हुआ। जिसमें घोषणा की कि 'राजपूतों तथा मरहट्टों के शासन में मुसलमानों को हर प्रकार की सुविधा है। अतःयहाँ जिहाद लाजिम नहीं आता जिहाद केवल सिखों के विरुद्ध होना चाहिये।" सहिष्णुताका ही दूसरा नाम 'हिंदुत्व' है। ऐसी कल्पना करना भी घोर मूर्खता है कि भारत के हिन्दूराष्ट्र घोषित होते ही यहाँ मुसलमान एवं ईसाई समाप्त कर दिये जायेंगे। हाँ, उन्हें हिन्दूजीवन पद्धति को नष्ट करने, हिन्दू संस्कारों पर चोट पहुँचाने और अलग भाषा, अलग जिला, अलग प्रान्त, अलग देश के नाम पर राष्ट्र को विखण्डित नहीं करने दिया जायगा। नैपाल एक हिन्दूराष्ट्र है परन्तु नैपाल का मुसलमान सुखपूर्वक रह रहा है। वहाँ वह न दंगा करता है, न उर्दू-आन्दोलन चलाता है। हिन्दूराष्ट्र वादी विधर्मियों के प्रति कितने सहिष्णु हैं, इसके कुछ उदाहरण मैं इतिहास से देता हूं।

कल्याण विजय करने के पश्चात् वहाँ के नये शासक आबाजी सोनदेवने पराजित सूबेदार मुल्ला अहमद की पुत्रवधू को पकड़कर शिवाजी के पास भेजा। पुत्रवधू किसी अज्ञात आशंका से थर-थर कांप रही थी। शिवाजी परिस्थिति को भाँप गये और हँसकर कहने लगे—'भाई ! बच्चा माँ-बाप पर होता है। यदि हमारी मां भी मुल्लाकी इस पुत्रवधू-जैसी सुन्दर होती तो हम भी सुन्दर होते।' शिवाजी ने मेरी उपमा अपनी माँसे दी है। यह सुनकर मुल्ला की पुत्रवधू के जीमें जी आया। शिवाजी ने पाँच सौ अश्वारोहियों की रक्षा में बड़े सम्मान के साथ उसे उसकी ससुराल पहुँचा दिया। खाफी खाँ नामक तत्कालीन इतिहासकारने इस घटना का उल्लेख करते हुए शिवाजी की चारित्रिक उत्कृष्टता की भूरि-भूरि प्रशंसा की है।

—सर यदुनाथ सरकार

'औरंगजेब का लड़का अकबर राजपूतों से मिल गया था। औरंगजेब की कूटनीति ने जब राजपूतों के मन में अकबर के प्रति संदेह उत्पन्न कर दिया तो वह राजपूतों को छोड़कर चला गया, परन्तु शीघ्रता में अपनी लड़की सिफतुन्निसाको ले आना भूल गया। जब यह लड़की औरंगजेब के पास पहुँची तो औरंगजेब उसकी शिक्षा के लिये किसी अच्छी-सी अध्यापिका को खोजने लगा। इस पर सिफतुन्निसा ने कहा—'मेरे कुरआन कण्ठाग्र है, दुर्गादास ने अजमेर से एक मुसलमान अध्यापिका बुलाकर मुझे इस्लामी धर्म की बहुत अच्छी शिक्षा दिलवायी है।'

—सर यदुनाथ सरकार

'एक युद्ध में अब्दुर्रहीम खानखाना की बेगमों को कुंअर अमरसिंह ने पकड़ लिया। महाराणा प्रताप ने जब यह सुना तो उन्होंने बड़े सम्मान के साथ उन्हें खानखाना के पास पहुँचा दिया।'

—ओझाजी

'वास्कोडिगामा आशा अन्तरीप का चक्कर काटकर कालीकट के जमोरिन से मिला और वहाँ उसने पुर्तगालियों की कोठी स्थापित की। जब पुर्तगाली वहाँ के मुसलमानों को सताने लगे तो जमोरिन ने पुर्तगालियों को अपने यहाँ से निकाल दिया। जब पुर्तगालियों ने कोचीन की मस्जिद फूंक दी, तो जमोरिन ने कोचीन पर आक्रमण कर दिया। इस अवसर पर जमोरिन ने जो संदेश प्रसारित किया, उसके कुछ अंश सुनिये—'फिरंगियों ने हमारे पूर्वजों की भूमि पर हाथ बढ़ाया है। यह बात भी कष्टकर और असहनीय न होती, यदि वे लोग इस देश के मुसलमानों को पीड़ा और कष्ट न देते। यह हमें बहुत बुरा लगता है। यद्यपि मैं हिंदू हूं परन्तु फिर भी मैं अपना कर्तव्य समझकर मुसलमानो के लिये अपने धन और जनको होम रहा हूं।'

—तारीख फरिश्ता

हिंदूराष्ट्रवाद का अर्थ अन्य धर्मों का उन्मूलन नहीं है, जैसा कि 'इस्लाम धर्मसापेक्ष' राष्ट्रों का है या मध्ययुग में 'ईसाई धर्मसापेक्ष' राष्ट्रों का रहा है। हिन्दूराष्ट्रवाद तुष्टिकरण, विभाजन और विघटनकारी प्रवृत्तियों तथा हिन्दू धर्म के उन्मूलन के विरुद्ध है, जो 'धर्मनिरपेक्षिता' के नाम पर चल रहे हैं।

( शेष अगले अङ्क में पढ़ें )

## भारत केसरी मा० चन्दगीराम की शानदार विजय

## महरदीन मैदान छोड़ गए

भारत केसरी प्रतियोगिता में मास्टर चन्दगीराम पुनः विजयी हो गए। तथा महरदीन मैदान में नहीं ठहर सके। यह शाकाहारी भारतीय विजय है। मार्तण्ड परिवार की ओर से हार्दिक बधाई।

# गृह मन्त्री राजस्थान सरकार शीघ्र ध्यान दें !

## अराष्ट्रीय ईसाई पादरियों की हिंसात्मक गतिविधियाँ !

राजस्थान प्रांत में ईसाई पादरी अभी तक तो आर्थिक प्रलोभन के द्वारा ही हिन्दुओं को ईसाई बना रहे थे। परन्तु अब वह हिंसात्मक गतिविधियों के द्वारा अपना प्रचार प्रभाव बढ़ाने का प्रयास कर रहे हैं। आर्यसमाज ही ऐसा राष्ट्रीय संगठन है, जो इन अराष्ट्रीय प्रवृतियों और कार्यों से अकेला टक्कर ले रहा है। ऐसा प्रतीत होता है कि आर्यसमाज की प्रचार शैली प्रभाव से ईसाई पादरी खीज उठे हैं और अब अपने हिंसात्मक अस्त्रों से आर्यसमाज के कार्यकर्ताओं को आतंकित करने का निष्फल प्रयास कर रहे हैं। जिसका नवीन उदाहरण कुम्भलगढ़ तहसील के आलिमपुरी के आदिवासियों के गांव में घटी घटना से ज्ञात होता है।

दिनांक २०-४-६९ को आदिवासियों के गांव आलिमपुरी में जिसमें ४० घर आदिवासियों के और १४ घर ईसाईयों आदिवासी के हैं वहां आर्यसमाज के कार्यकर्ता श्री जगदीशजी प्रचारार्थ गये। और उन्होंने आदिवासियों के शिक्षा के लिए पाठशाला प्रारम्भ की। गांव के आदिवासी इनके कार्य से बड़े प्रभावित और प्रसन्न हुये। परन्तु महुड़ी के पादरी को आर्यसमाज के बढ़ते हुये प्रचार से कुछ खीज सी हो गई और उसने दो गुन्डे रामजीत और हरिया को भेजकर गांव वालों को धमकाया। जब उनकी धमकी का कुछ असर नहीं हुआ, तो दिनांक २०-४-६९ को रात को ८ बजे महुड़ी वाला पादरी गुन्डों को लेकर आलिमपुरी आया और वहां श्री जगदीशजी बालकों को पढ़ा रहे थे। गांव के भी कुछ लोग एकत्रित थे। एकदम हमला बोल दिया। इस आकस्मिक आक्रमण से जगदीशजी को काफी चोट आई। यहीं नहीं पादरी ने यह भी धमकी दी कि अगर तुम (जगदीशजी अध्यापक) यहां से नहीं भाग जावोगे तो किसी दिन गोली से उड़ा दूंगा। पादरी की इस आतंक पूर्ण हिंसापूर्ण और अशांति फैलाने वाली घटना से गांव वालों को बड़ा रोष और जनता के सामने यह विषय बड़ा गंभीर रूप धारण किये हुये है।

खेद है कि स्थानीय पुलिस ने अभी तक जो कार्यवाही करनी चाहिये नहीं की। यदि सरकार ने पादरियों के इस प्रकार के गैर कानूनी हिंसात्मक कार्यों की रोक थाम नहीं की, तो जन-जीवन को बहुत अधिक हानि पहुँचने की सम्भावना है। और जनता का बढ़ा हुआ रोष बदले की भावना से कहीं अनुचित हिंसात्मक कार्यवाही पर न उतारू हो जाय। उसके लिये राजस्थान सरकार को शीघ्र ध्यान देना चाहिये।

एक नागरिक
कुम्भलगढ़

### मातृ सेवा सदन कोटा

१५-४-६९ को कोटा आर्यसमाज के दैनिक यज्ञ के पश्चात मातृ सेवा सदन के सुयोग्य मन्त्री श्रीमान् केदारनाथ जी महोदय के साथ उक्त सदन का निरीक्षण किया। इस संस्था में दो भाग हैं। प्रथम में छोटे छोटे बालिकायें अध्ययन करती हैं। पढ़ाई लिखाई के साथ धार्मिक शिक्षा भी दी जाती है और गृहस्थ उपयोगी शिक्षा भी दी जाती है। बालिकाओं से संध्या प्रार्थना के गीत सुनकर चित्त प्रसन्न हुआ। द्वितीय विभाग में गृहस्थ महिलाओं को सीने पिरोना का काम सिखाया जाता था वह कुछ समय से बन्द है। आशा है शीघ्र आरम्भ हो जावेगा।

### एक हजार रु० का दान

गुरुकुल बेड़ा सुर्य देहली राज्य में श्री के० नरेन्द्र जी दैनिक वीर अर्जुन तथा दैनिक प्रताप के सम्पादक १५ जून १९६९ प्रातः दस बजे यकायक पधारे। गुरुकुल आश्रम तथा गौ सेवा सदन का निरीक्षण किया। वहां के शान्त वातावरण से वह बहुत प्रभावित हुए तथा उसी समय गुरुकुल के आचार्य श्री सत्यप्रिय जी को गुरुकुल आश्रम के लिए एक हजार रुपए प्रदान किए और भविष्य के लिए पूर्ण सहयोग का आश्वासन भी दिया।

### क्या शूद्र आर्य नहीं हैं ?

ऋषि दयानन्द ने सत्यार्थ प्रकाश के १० वें समुल्लास में स्पष्ट लिखा है कि "आर्यों में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र यह चार भेद हैं"

अर्थात् शूद्र भी आर्यों में ही हैं। खेद है कि १ अप्रैल के आर्यमार्तण्ड में पृष्ठ २ पर किसी शास्त्री का लेख छपा है। उन्होंने यह सिद्ध करने के लिये कि शूद्र आर्य नहीं हैं—सत्यार्थ प्रकाश के लेख को बदल कर एवं भयंकर दुस्साहस करके अथर्ववेद (१९।६२) के मंत्र को भी बदलकर महान् अन्याय किया है। अथर्ववेद का मंत्र इस प्रकार है:—

प्रियं मा कृणु देवेषु, प्रियं राजसु, मा कृणु।
प्रियं सर्वस्य पश्यत, उत शूद्र—उतार्ये॥

इस मंत्र में ब्राह्मण के लिये देव शब्द का प्रयोग है और क्षत्रिय के लिये राजा शब्द का व्यवहार किया गया है।

इसी प्रकार वैश्य के लिये 'अर्य' शब्द का व्यवहार है आर्य नहीं। पाणिनि मुनि के सूत्र के अनुसार अर्य शब्द के दो अर्थ होते हैं। स्वामी तथा वैश्य। सूत्र इस प्रकार है:—

अर्यः स्वामी वैश्ययोः॥

शास्त्री जी ने आर्य शब्द निकालने के लिये वेदविरुद्ध सन्धिच्छेद कर डाला है, सन्धिच्छेद करने से (आर्य) हो गया। इसका मतलब यह कर दिया गया कि शूद्र हो अथवा आर्य। अर्थात् शूद्रों से अलग आर्य हैं। यह भयंकर षड्यन्त्र है। इसी ने देश के विभाजन करवा डाले हैं। जहां ऋषि दयानन्द ने शूद्र को अनार्य लिखा है, वहां उन्होंने स्वयं अनार्य का अर्थ अनाड़ी (मूर्ख) बता दिया है। ऋषि का मत यह कभी नहीं है कि शूद्र अनार्य अर्थात् आर्य नहीं है। ऐसी ही बातों से ईसाई शूद्रों को बहका ले जाते हैं। आशा है आर्य जगत् ऐसे दुःस्साहस पूर्ण वेद के परिवर्तनों से सदा सावधान रहेगा। आर्यसमाज ही पहिली संस्था है जिसने तथा कथित शूद्रों को आर्य मानकर आज संसार में यश गौरव प्राप्त किया है। "कृण्वन्तो विश्वमार्यम्" तब क्या शूद्र विश्व से बाहर कर दिया जायगा।

### आवश्यकता

वैदिक पाठशाला पर्वतपुरा (मान्यता प्राप्त मिडिल स्कूल) जिला अजमेर के लिये—

(१) प्रशिक्षित स्नातक अनुभवी, प्रशासक सुयोग्य मुख्याध्यापक की।

(२) दो एस० टी० सी० प्रशिक्षित अध्यापकों की। शीघ्र आवश्यकता है। आर्यसमाज के सिद्धांतों के प्रति आस्था रखने वाले व्यक्तियों को प्राथमिकता दी जायेगी।

६० वर्ष से कम की आयु के अवकाश प्राप्त व्यक्तियों को भी अवसर दिया जा सकता है। १५ जून तक आवेदन पत्र आमन्त्रित किये जाते हैं।

मन्त्री
वैदिक विद्यालय पर्वतपुरा
दयानन्द आश्रम, केसरगज, अजमेर

### प्रवेश सूचना

अन्तर्राष्ट्रीय-उपदेशक विद्यालय, टंकारा में इस वर्ष प्रवेश जून मास में होगा।

प्रवेशार्थी विद्यार्थियों की योग्यता:—

(१) मैट्रिक अथवा समकक्ष कोई परीक्षा पास हो।

(२) स्वस्थ रोग रहित शरीर हो तथा सिगरेट पान आदि का व्यसन न हो।

(३) समाज के प्रचार कार्य में ही जीवन लगाने का विचार हो।

(४) ५-६ वर्ष तक अध्ययन के लिए प्रस्तुत हो।

सुविधाएं

भोजन, वस्त्र, पुस्तक, निवासादि का सब प्रबन्ध विद्यालय की ओर से होगा।

प्रवेशार्थी पूर्ण विवरण के साथ सूचना दें।

अध्यक्ष विद्यालङ्कार
व्यवस्थापक

### सूचना

कन्या गुरुकुल महाविद्यालय देहरादून अनिवार्य आश्रम पद्धति पर चलने वाली अखिल भारतीय स्त्री शिक्षण संस्था है। जो कि गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय से सम्बन्धित है। यहां पर प्रथम श्रेणी से बी० ए० तक (विद्यालङ्कार) की शिक्षा का प्रबन्ध है।

उच्च प्रशिक्षित शिक्षिका वर्ग, छात्रावास एवं पुस्तकालय की व्यवस्था है। छात्राओं के लिए पढ़ाई के अलावा चित्रकला, संगीत, विभिन्न प्रकार के खेल, सिलाई, कटाई, गृहविज्ञान एवं कालन्स आदि के शिक्षण की सुन्दर व्यवस्था है। शिक्षण शुल्क नहीं लिया जाता।

१ जुलाई से नवीन कन्याओं का प्रवेश आरम्भ है। संस्कृत लेकर मैट्रिक उत्तीर्ण छात्रायें भी प्रथम वर्ष में प्रविष्ट हो सकेंगी। प्रवेश के इच्छुक महानुभाव ५० नए पैसे भेजकर नियमावली मंगा सकते हैं।

## सावर (अजमेर) में आर्यसमाज का सूर्य अस्त हो गया

आर्य समाज सावर के पुराने वयोवृद्ध नेता श्री भूरालाल जी (स्वर्णकार) आर्य का ७४ वर्ष की उम्र में देहान्त हो गया।

आपने सावर में कई प्रकार की कठिनाइयों का सामना करते हुए आर्य समाज की स्थापना की। यहां तक कि उनके गाँव में सब विरुद्ध हो गये। जाति वालों ने कई प्रकार के कष्ट दिये। इस पर शाहपुरा आर्य नरेश ने उन्हें अपने यहाँ बुला लिया। ३वर्ष शाहपुरा रह कर वापिस सावर वालों ने अपने यहाँ बुलाया। इसके पश्चात् हैदराबाद आर्य सत्याग्रह में ६ माह ३ दिन के कारावास से वापस लौटने पर नगरवासियों ने उनका हार्दिक स्वागत किया और पुराने मैल को धोकर आर्य जगत् में उनका नाम ऊँचा किया इसके पश्चात् पंजाब हिन्दी आन्दोलन में श्री पं. सत्यानन्द जी वेद-वागीश के साथ सत्याग्रह में भाग लिया और लगभग ३ मास कारावास में रहे। आर्य समाज के प्रति उनकी अटूट श्रद्धा थी और वे अपने सिद्धांतो के बड़े पक्के थे। आर्य समाज के प्रति उन्होंने अपने जीवन को लगा दिया। धर्म-परायणता और ईश्वर भक्ति उनके जीवन के आधार थे। उन्होंने रुग्ण अवस्था में भी सन्ध्या करना बन्द नहीं किया। वे अपने पीछे एक पुत्र और चार पुत्रियाँ छोड़कर गये हैं। आर्य प्र.नि.स. राजस्थान से उनका अच्छा सम्पर्क था। अन्तिम संस्कार उनकी इच्छानुकूल ही वेदोक्त रीति से हुआ ईश्वर उनकी आत्मा को शान्ति प्रदान करें।

## निबन्ध प्रतियोगिता

आर्य युवक परिषद् दिल्ली (रजि०) की ओर से १५० पृष्ठों के, केवल चालीस पैसे में प्राप्य सार्वदेशिक साप्ताहिक के विशेषांक—

### "हम क्या खायें"

के विषय पर स्कूलों के छात्र-छात्राओं की निबन्ध प्रतियोगिता का आयोजन किया गया है। छात्र-छात्रायें इस पुस्तक को ग्रीष्म अवकाश में पढ़कर इसका सार सुन्दर अक्षरों में फुलस्केप साइज के चार पृष्ठों में अपने हाथ से स्याही से कागज के एक ओर ही लिखकर १० जुलाई १९६९ तक परिषद् कार्यालय १६५४, कूचा दखिनीराय, दरियागंज दिल्ली—६ के पते पर भेज दें। विजेता प्रथम, द्वितीय और तृतीय छात्र-छात्राओं को अलग अलग पारितोषिक तथा ग्रन्थों को सुन्दर प्रमाण-पत्र दिये जायेंगे। आशा है माता पिता और गुरुजन बच्चों को प्रेरित कर अधिक से अधिक निबन्ध लिखवाकर भेजेंगे।

नोट—(१) इस आयोजन को सफल बनाने के लिए श्री मा० शिवचरणदास जी ने अपनी धर्मपत्नी स्व० सुखदा देवी की स्मृति में परिषद् को १०१) दान दिया है।

(२) यह विशेषांक परिषद् कार्यालय से मिल सकता है।

देवव्रत धर्मेन्दु आर्योपदेशक ओमप्रकाश एम.एस.सी.
प्रधान मन्त्री

## वार्षिक चुनाव

सावर (अजमेर) आर्य समाज का चुनाव निम्न प्रकार सानंद सम्पन्न हुआ—

कार्यकाही में सर्व प्रथम २ मिनट का मौन स्वर्गीय भूरालाल जी आर्य के निधन पर किया गया।

प्रधान— श्री जीवण लाल जी माथुर भूतपूर्व सचिव ठिकाना सावर
मंत्री— श्री गरणपत लाल जी शर्मा वरिष्ठ अध्यापक हिन्दी
उपमंत्री— श्री मोहन लाल जी कहाल्या
पुस्तकाध्यक्ष— श्री पन्ना लाल जी
संरक्षक— श्री लक्ष्मण कुमार जी आर्य
कोषाध्यक्ष— श्री नारायण जी चौहान भूतपूर्व उप सरपंच

इसके साथ ही श्री लक्ष्मण कुमार जी आर्य ने अपना एक दो मंजिला मकान स्थानीय आर्य समाज को दान रूप में दिया जिसमें एक सार्वजनिक वैदिक पुस्तकालय एव वाचनालय रहेगा।

जीवण लाल माथुर
प्रधान आर्य समाज सावर (अजमेर)

## आर्य समाज, छोटी सादड़ी

दिनांक ७-४-६९ रात्रि को ८॥ बजे आर्य समाज छोटी सादड़ी का वार्षिक निर्वाचन सर्व सम्मति से निम्न प्रकार से सम्पन्न हुआ—

| | |
|---|---|
| प्रधान | श्री भेरूलाल जी शर्मा |
| उपप्रधान | ,, मांगीलाल जी शर्मा |
| मंत्री | ,, विनयचंद जी पचोरी |
| उपमंत्री | ,, ओमप्रकाश जी पुरोहित |
| कोषाध्यक्ष | ,, नंदकिशोर जी शर्मा |
| पुस्तकाध्यक्ष | ,, भीमराज जी तेली |
| अन्तरंग सदस्य | श्री जीवनलाल जी अग्रवाल, रामबक्ष जी आर्य, मुथरालाल जी नाई, श्री हरिशंकर जी शर्मा। |

मंत्री—
विनयचद पचोरी,
छोटी सादड़ी (राज.)

## आर्य कुमार सभाओं को सूचना

प्रत्येक आर्य कुमार सभाओं को सूचना दी जाती है कि आर्य कुमार परिषद् जिला मेरठ का वार्षिक अधिवेशन तारीख २१, २२, २३, जून को आर्यसमाज मन्दिर बापर नगर मेरठ में होगा। जिसमें "भारतवर्षीय आर्य कुमार परिषद का निर्माण किया जायेगा। अतः सभी आर्य कुमार सभायें अपने प्रतिनिधियों के नाम शीघ्र भेजने का कष्ट करें। अधिवेशन में श्री स्वामी आत्मानन्द जी तीर्थ, श्री लाला रामगोपाल शालवाले, श्री रघुवीर सिंह शास्त्री, श्री ओमप्रकाश त्यागी, श्री प्रकाशवीर शास्त्री आदि संसद सदस्य, श्री देवव्रत धर्मेन्दु, श्री प्रेमचन्द एम० एल० ए०, श्री भगवत दत्त गोयल, श्री प्रो० रतनसिंह जी आदि पधारेंगे। पत्र व्यवहार मन्त्री, आनन्द प्रकाश आर्य २८ खिड़की बाजार हापुड़ (मेरठ) से करें।

## वार्षिक चुनाव

मध्यभारतीय आर्य प्रतिनिधि सभा के वृहदधिवेशन दिनांक २ मई १९६९ के निश्चयानुसार वर्ष १९६९—७० के लिये निम्न पदाधिकारी एवं अन्तरङ्ग सदस्य सर्व सम्मति से निर्वाचित किये गये :—

१. श्री बाबूलाल जी गुप्त प्रधान सभा
२. ,, विश्वमित्र कम्ठान मंत्री सभा
३. ,, भारतभूषण त्यागी उप प्रधान सभा ग्वालियर (वरिष्ठ)
४. ,, लाला अमरनाथ जी उप प्रधान सभा इन्दौर, उज्जैन
५. ,, देवप्रकाश जी उप प्रधान सभा रतलाम
६. ,, गौरीशंकर कौशल उपप्रधान सभा भोपाल
७. ,, महेन्द्र प्रताप शास्त्री उपमंत्री संभाग ग्वालियर
८. ,, राजगुरू जी उपमंत्री संभाग इन्दौर, उज्जैन
९. ,, कृपा शंकर जी उपमंत्री संभाग रतलाम
१०. ,, बाबूलाल जी आनन्द उपमंत्री संभाग भोपाल एवं अधिष्ठाता आर्य वीर दल।
११. ,, हरवंशलाल जी कोषाध्यक्ष, ग्वालियर
१२. ,, कालिकाप्रसाद सत्संगी भू-सम्पत्ति अधिष्ठाता, भोपाल

प्रतिष्ठित अन्तरंग सदस्य—१. डाक्टर महावीर सिंह जी, ग्वालियर २. श्री गणपतिलाल वर्मा, भोपाल ३. श्री धनीराम मलहोत्रा, भोपाल।
अन्तरंग सदस्यगण .—१. डाक्टर फूलसिंह, ग्वालियर २. श्रीमती पुष्पा चौधरी, ग्वालियर ३. श्री इन्द्रप्रकाश गांधी, शिवपुरी ४. श्री मोतीलाल जी गुना ५. श्री धर्मवीर वाधवा भोपाल ६. श्री महेन्द्रकुमार माथुर भोपाल ७. सुश्री वेदकुमारी खन्ना भोपाल ८. श्री जगदीशप्रसाद वैदिक इन्दौर ९. श्री प्रकाशचन्द्र जी उज्जैन १० श्री ओमप्रकाश जी उज्जैन ११. श्री वंशीलाल जी एडवोकेट मंदसोर १२. श्री ज्वालाप्रसाद नीमच छावनी १३. श्री भगवानदास आर्य सनावद १४. श्री शिवनारायण जी नारायणगढ़ १५. श्री हीरालाल जी पन्थ वरखेडा।
निरीक्षक—श्री इन्द्रसेन जी ग्वालियर।

मंत्री सभा
विश्वमित्र कम्ठान

## आर्यसमाजों से प्रार्थना

समस्त आर्यसमाजों को सूचित किया जाता है कि दिनांक २१, २२, २३ जून को आर्यसमाज बापर नगर मेरठ में "भारतवर्षीय आर्य कुमार परिषद्" का निर्माण किया जायेगा। जिससे आर्य-समाज का कुमारो मे प्रचार हो सके। अतः कृपया सभी आर्य समाजें अपने नगर एवम् जिले की आर्य कुमार सभाओ की सूचि भेजने का कष्ट करें। जिससे की प्रत्येक आर्य कुमार सभाओं के प्रतिनिधियों को निमन्त्रित किया जा सके। पत्र व्यवहार मन्त्री, आनन्द प्रकाश आर्य, २८, खिड़की बाजार, हापुड़ (मेरठ) से करें।

## आर्य प्रतिनिधि सभा राजस्थान का वार्षिक अधिवेशन तथा चुनाव सानन्द सम्पन्न

दिनांक १८ मई १९६९ को राजस्थान की ग्रीष्मकालीन रम्यस्थली आबूरोड़ में आर्य प्रतिनिधि सभा का वार्षिक अधिवेशन तथा पदाधिकारियों का वार्षिक निर्वाचन सानन्द सम्पन्न हो गया। इस अवसर पर प्रांत की भिन्न२ समाजों के प्रतिनिधियों ने भाग लिया। आर्यसमाज के सुदृढ़ संगठन, प्रचार शैली में तीव्र गति लाने के सम्बन्ध में अनेकों महत्वपूर्ण प्रस्ताव पारित किये गये। नवनिर्वाचित पदाधिकारियों की नामावली निम्न प्रकार है :—

१ प्रधान १. श्रीमान् पं. भगवानस्वरूप जी न्यायभूषण
२ उप प्रधान—श्री डा. राजबहादुर जी कोटा
३ „ „ श्री हरिदत्त जी एडवोकेट भरतपुर
४ „ „ चौधरी नारायणराम जी गंगानगर
५ „ „ कुन्दरलाल जी भाटिया जयपुर
६ „ „ वैद्य धर्मसिंह जी कोठारी अजमेर
७ „ „ माधोसिंह जी शाहपुरा
८ „ „ संतोषसिंह जी कछवाहा जोधपुर
९ मंत्री—श्री डा. भवानीलाल जी भारतीय एम. ए. पी. एच. डी. पाली
१० उप मंत्री—श्री भुमानमल जी चंडक एडवोकेट अजमेर
११ „ „ जेठमल जी आर्य आबूरोड
१२ „ „ सरला जी शारदा अजमेर
१३ „ „ सोहनलाल जी कटारिया अजमेर
१४ संगठन मंत्री—श्री मदनमोहन जी शर्मा बीकानेर
१५ „ „ मुकन्ददास जी जोधपुर
१६ कोषाध्यक्ष—श्री रतनचन्द्र जी एडवोकेट अजमेर
१७ अधिष्ठाता आर्य मार्तण्ड—डा. भवानीलाल जी भारतीय एम. ए. पी. एच. डी. पाली
१८ अधिष्ठाता आर्य वीर दल—श्री सुखदेव जी गोयल जोधपुर

### अन्तरंग सदस्य

१ श्री श्रीकरण जी शारदा अजमेर
२ „ ओम भक्त जी वानप्रस्थ अजमेर
३ „ प्रेमदेव जी भूषण एडवोकेट भरतपुर
४ „ बाबूराम जी बजाज भरतपुर
५ „ ओमप्रकाश जी बजारी ब्यावर
६ „ मोतीलाल जी टांक जोधपुर
७ „ आचार्य धर्मेन्द्रनाथ जी आदर्शनगर जयपुर
८ „ श्यामसुन्दर जी विद्यार्थी आदर्शनगर जयपुर
९ „ जयनारायण जी गोपालिया आबूरोड़
१० „ किशनसिंह जी गंगानगर
११ „ देवमित्र जी आर्य लाडनू
१२ „ केशवसिंह जी सांखला जोधपुर
१३ „ डा. सेतलानी जी सरदारपुरा जोधपुर
१४ „ चंचलदास जी आर्य समाज नला बाजार अजमेर
१५ „ लालचन्द जी पित्ती नागौर
१६ „ ब्रह्मदत्त जी शर्मा बीकानेर
१७ „ रामस्वरूप जी बेली शाहपुरा
१८ „ जीवनलाल जी छोटी सादड़ी
१९ „ पुरुषोत्तमस्वरूप जी भटनागर एडवोकेट बारां
२० „ भीखारामजी आर्य शिवगंज
२१ „ छोटूसिंह जी एडवोकेट अलवर
२२ „ श्यामलाल जी चतुर्वेदी कोटा
२३ „ घासीराम जी गंगानगर

## सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा दिल्ली का बृहद् अधिवेशन सानन्द सम्पन्न

आर्यसमाज दीवान हाल दिल्ली के प्रधान श्री बालमुकुन्द आहूजा, श्री श्रीकरण शारदा निर्वाचित उपप्रधान सार्वदेशिक सभा का स्वागत करते हुए



दिनांक ३१ मई तथा १ जून १९६९ को विश्व की आर्यसमाजों की शिरोमणि संस्था सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा का बृहद् वार्षिक अधिवेशन सानन्द सम्पन्न हो गया। इस अवसर पर अनेकों महत्वपूर्ण प्रस्ताव पारित हुए, जिनमें से आर्यसमाज द्वारा गो रक्षा आन्दोलन पुनः चालू करने का प्रस्ताव विशेष महत्वपूर्ण था। आगामी वर्ष के लिए सार्वदेशिक सभा के निम्नांकित पदाधिकारी चुने गये:—

(१) प्रधान—श्रीमान् सेठ प्रतापसिंह शूर जी वाई वल्लभ दास जी बम्बई।

(२) उपप्रधान—श्री मिहिरचन्द जी, धीमान् कलकत्ता।

(३) श्री श्रीकरण जी शारदा, अजमेर।

(४) उपप्रधान—मदनभूषण श्रीमान् डाक्टर दुखनराम जी, पटना।

(५) उपप्रधान—श्री वीरेन्द्र जी, जालन्धर।

(६) मन्त्री—लाला रामगोपाल जी शालवाले संसद सदस्य, दिल्ली।

(७) उपमन्त्री—श्री छोटूसिंह जी एडवोकेट, अलवर।

(८) उपमन्त्री—श्री शिवचन्द जी, दिल्ली।

(९) उपमन्त्री—श्री ओमप्रकाश जी त्यागी संसद सदस्य, दिल्ली।

(१०) कोषाध्यक्ष—श्री बालमुकुन्द जी आहूजा

(११) पुस्तकाध्यक्ष—श्री वाचस्पति जी शास्त्री, दिल्ली।

इसके अतिरिक्त २५ अन्तरंग सदस्य निर्वाचित हुए।

## आर्य समाज आबूरोड़ का वार्षिकोत्सव सानन्द सम्पन्न

आर्य समाज आबूरोड़ का वार्षिक उत्सव दिनांक १८ मई से दिनांक २० मई तक आर्य कन्या विद्यालय आबूरोड़ के भव्य भवन में सानन्द सम्पन्न हुआ। इसी अवसर पर आर्य प्रतिनिधि सभा राजस्थान का वार्षिक साधारण अधिवेशन भी सम्पन्न हुआ, जिसमें राजस्थान प्रांत की आर्य समाजों के प्रतिनिधियों ने बड़ी संख्या में सोत्साह भाग लिया।

दिनांक १८-५-६९ को प्रातःकाल ७॥ बजे उत्सव का उद्घाटन राजस्थान के मुख्य मंत्री श्री मोहनलालजी सुखाड़िया के कर-कमलों द्वारा हुआ। इस अवसर पर मुख्य मंत्री सुखाड़िया जी ने आर्य समाज के कार्यों की प्रेरणाप्रद शब्दों में प्रशंसा करते हुये महर्षि दयानन्द को राष्ट्रीय एकता एवं स्वराज्य का श्रेष्ठतम प्रथम मंत्र दाता बतलाया।

आर्य कन्या विद्यालय की कन्याओं के मधुर गान एवं प्रदर्शन बड़े आकर्षक रहे। विशाल शोभा यात्रा में नगर निवासियों, प्रतिनिधियों, छात्राओं तथा अध्यापिकाओं ने बहुत बड़ी संख्या में भाग लेकर जनता पर आर्य समाज की एक बड़ी अद्भुत छाप जमा दी। इस अवसर पर कई सम्मेलन भी आयोजित हुये जिनमें विद्वान् वक्ताओं ने अपनी वक्तृता से आर्य समाज के कार्य कर्त्ताओं को वेद प्रचार, राष्ट्र रक्षा, अराष्ट्रीय ईसाई प्रचार निरोध, आर्य समाज के सुदृढ़ संगठन, प्रगति और प्रचार शैली की नवीनीकरण पर विशेष प्रकाश डाला। यह उत्सव २० मई तक निरन्तर चलता रहा। सभा प्रधान श्रीमान् पं० भगवानस्वरूपजी न्यायभूषण, श्री श्रीकरणजी शारदा डा० राजबहादुर जी, श्री हरिदत्तजी एडवोकेट भरतपुर, श्री प्रेमदेवजी भूषण भरतपुर, श्री डा० भवानीलाल जी भारतीय पाली. ओम्भक्त जी वानप्रस्थ के भाषण तथा पं० भगवतीप्रसाद जी प्रभव के ओजस्वी भजन बड़े ही प्रभावोत्पादक थे।

उत्सव में भाग लेने वाले व्यक्तियों एवम् सभा के प्रतिनिधियों के आवास तथा भोजनादि की बहुत ही उत्तम व्यवस्था थी। आर्य समाज एवं कन्या विद्यालय के उत्साही मंत्री श्री जेठमल जी आर्य, कार्यकर्त्ता एवम् विद्यालय के मुख्याध्यापक श्री ओमप्रकाश जी गहलोत का उत्साह, श्रम और लगन वास्तव में सराहनीय है। उत्सव की सफलता के लिये उन्होंने रात-दिन परिश्रम किया। विद्यालय की कन्याओं व अध्यापिकाओं ने भोजनादि की उत्तम व्यवस्था से बहुत ही प्रभावित किया।

एतदर्थ श्री जेठमल जी आर्य, श्री ओमप्रकाश जी गहलोत, विद्यालय की अध्यापिकायें, छात्रायें तथा सभी सहयोगी कार्यकर्त्ता उत्सव की सानंद सफलता के लिये बधाई एवं धन्यवाद के पात्र हैं।

संवाददाता

श्री पं० भगवानस्वरूपजी "न्यायभूषण" के प्रबन्ध से वैदिक यन्त्रालय अजमेर में मुद्रित और ओम्भक्त वानप्रस्थ, सम्पादक प्रकाशक द्वारा दयानन्द आश्रम, केसरगंज अजमेर से प्रकाशित। अधिष्ठाता—श्रीमान् डा० भवानीलालजी भारतीय एम. ए. पी. एच. डी. पाली

आर्य प्रतिनिधि सभा राजस्थान का मुख-पत्र

रजि० नं० १५

पाक्षिक

# आर्य मार्तण्ड

दयानन्द आदित्य से पाकर ज्योति प्रचण्ड । ध्वंस दम्भ पाखण्ड का करे आर्य्यमार्तण्ड ॥

वर्ष [illegible] | वार्षिक मूल्य ५) रुपया | सम्पादक—श्री ओम्प्रकाश वानप्रस्थ ( रामसहाय शर्मा ) अजमेर प्रथम आषाढ़ शु० १ सं. २०२६ वि., दि. १५ जून ६९ दयानन्दाब्द १४५ | एक प्रति का २० पै० | अङ्क ८

## ईश्वर-प्रार्थना

ओ३म् स नो बन्धुर्जनिता स विधाता
धामानि वेद भुवनानि विश्वा
यत्र देवा अमृतमानशाना-
स्तृतीये धामन्नध्यैरयन्त ॥
यजु० ३२।१०॥

वह परमेश्वर हमारा बन्धु दुःखनाशक और सहायक है तथा 'जनिता' सब जगत् तथा हम लोगों का भी पालन करने वाला पिता तथा हम लोगों के भी कामों की सिद्धि करने वाला वही है। सब जगत् का विधाता रचने वाला और धारण करने वाला एक परमात्मा ही है अन्य कोई नही। सब धाम अर्थात् अनेक लोक लोकान्तरों को रचके अनंत सर्वज्ञता से यथार्थ जानता है, वह कौन परमेश्वर है? जिससे देव अर्थात विद्वान् लोग अमृत, मरणादि दुःख रहित मोक्ष पद में सब दुःखों से छूट कर सब व्यापी पूर्णानन्दस्वरूप परमात्मा को प्राप्त होके परमानन्द में रहते हैं। एक स्थूल दूसरा सूक्ष्म सर्व दोष रहित अनन्तानन्दस्वरूप परब्रह्म उस धाम में धर्मात्मा विद्वान् लोग स्वच्छन्द से वर्तते हैं। सब बाधाओं से छूटकर विज्ञानवान् शुद्ध होकर देश काल वस्तु परिच्छेद रहित सर्वगत आधार स्वरूप परमात्मा में रहते हैं उससे दुःख सागर में नहीं गिरते।

—महर्षि दयानन्द

## पद्यानुवाद

वही हमारा पिता जन्म दाता माता है।
सकल विश्व का वही पूर्णता से ज्ञाता है।
रक्षक पालक बन्धु विधाता वर भ्राता है।
सदा सहायक प्रेम पूर्ण सब का त्राता है।
सुख भोग तीसरे में सदा, पर ब्रह्म की गोद में।
हैं अमृत भोगते मुक्त जन देव दिव्य-आमोद में।
—डा० सूर्यदेवी शर्मा एम० ए० डी० लिट०

## उपकार और दया

जानवर है आदमी जो बुद्धि मे बढ़ कर न हो।
बुद्धि भी क्या बुद्धि है जो धर्म्म में तत्पर न हो॥
धर्म्म भी क्या धर्म्म है जिस में नही है सत्य कुछ।
सत्य वह किस काम का उपकार जो तिल भर न हो॥
कर सके उपकार केवल है वही बस आदमी।
यों तो कहने के लिये हो आदमी बन्दर न हो॥
देख कर दुखिया द्रवे दुख से न जिस का दग्ध दिल।
है वो पत्थर के बराबर मान लो पत्थर न हो॥
बुद्धि में बल में विभव मे लाख बढ़कर हो मनुष्य।
जानवर समझो दया का जो असर दिलपर न हो॥

—स्व० कवि 'सनेही

## बधाई !

आर्य प्रतिनिधि सभा राजस्थान के भूतपूर्व प्रधान स्व० जालिम सिंह जी कोठारी के पौत्र तथा श्री लक्ष्मण सिंह जी कोठारी के पुत्र चि० कुंवर महेन्द्र का शुभ विवाह सौ० कां० विमला के साथ दिनांक ३१ ५ ६९ को कोटा में सानन्द सम्पन्न हो गया।

आर्य मार्तण्ड परिवार तथा आर्य प्रतिनिधि सभा राजस्थान इस अवसर पर अपनी हार्दिक शुभ कामनाएं अर्पित करती हुई परमपिता परमात्मा से प्रार्थना करती है कि नव दम्पत्ति को स्वस्थ सुखी समृद्ध यश श्री सम्पन्न रखते हुए दीर्घायु प्रदान करे। वर वधू कोठारी परिवार के उज्ज्वल रत्न बनें।

## आवश्यकता

लगभग ४० वर्षीय आयु की साधारण पढ़ी लिखी गृह कार्य में निपुण, सुशील विधवा की शीघ्र आवश्यकता है।

मन्त्री
आर्यसमाज कुशलगढ़
जिला बांसवाड़ा

## राजनीतिक तत्वों की अनुचित हरकतों से जनता में क्षोभ !

अभी गत दिनांक १ जून को गांव केसरपुरा जिला अजमेर मे कुछ राष्ट्र विरोधी तत्वों ने गांव की भैरू जी की मूर्ति तोड़ दी तथा मारपीट व दंगा किया। पुलिस ने इस सम्बन्ध मे उचित कानूनी कार्यवाही कर मुकदमा दायर किया। इस पर कुछ राजनैतिक तत्वों ने अपने स्वार्थ वश पुलिस पर नाजायज दबाव डालकर उन्हें प्रभावित कर पुलिस कार्यवाही को निरस्त कराने का दुःप्रयास किया है और गांव को आतंकित कर रखा है। डराया धमकाया जा रहा है। इस अनुचित आतंकपूर्ण कार्यवाही से गांव की जनता में बड़ा क्षोभ है। आशा है जिलाधिकारी न्याय की रक्षा करते हुए इस सम्बन्ध मे उचित शीघ्र कार्यवाही कर गांव की जनता मे सरकार के प्रति न्याय एवं विश्वास उत्पन्न कर सुरक्षा एवं शान्ति की रक्षा करेंगे।

## आवश्यकता

आर्य समाज आबूरोड द्वारा संचालित श्री वैदिक कन्या उच्च विद्यालय आबूरोड के लिये—

(१) एक प्रधानाध्यापिका एम० ए० बी० एड० और ५ वर्ष का हाई स्कूल को पढ़ाने का अनुभव हो। वेतन 980/– व महंगाई 137/–1

(२) दो सहायक अध्यापिकाएं जो एम० ए० बी० एड० अथवा बी० ए० ट्रेंड हो अथवा बी० एस० सी०। वेतन 140/ महंगाई 91/–।

(३) आर्य सिद्धांतों को मानने वालों को प्राथमिकता दी जायगी।

अपने प्रार्थना पत्र २५ जून १९६९ तक मंत्री श्री वैदिक कन्या उच्च विद्यालय आबूरोड के पते पर भेजें।

मंत्री
श्री वैदिक कन्या उच्च विद्यालय,
आबूरोड (राज०)

महर्षि दयानन्द की कसौटी पर

# भारत का इतिहास

लेखक—श्री पण्डित जगतकुमारजी शास्त्री, साधु सोम, तीर्थ" देहली

( गतांक से आगे )

श्री व्यासजी के विषय में महर्षि दयानन्द का निर्णय इस प्रकार है:—

"जब व्यासजी ने वेद पढ़े और पढ़कर वेदार्थ फैलाया। इस लिये उनका नाम "वेदव्यास" हुआ। क्योंकि व्यास कहते हैं। वार पार की मध्य-रेखा को। अर्थात् ऋग्वेद के आरम्भ से लेकर अथर्ववेद के पार पर्यन्त चारों वेद पढे थे और शुकदेव तथा जैमिनि आदि शिष्यों को पढ़ाये भी थे। नहीं तो उनका नाम "कृष्णद्वैपायन" था। जो कोई यह कहते हैं कि वेदों को व्यासजी ने इकट्ठे किये। यह बात झूठी है। क्योंकि व्यासजी के पिता, पितामह, प्रपितामह, पराशर, शक्ति, वशिष्ठ और ब्रह्मा आदि ने भी चारों वेद पढ़े थे।"

[ सत्यार्थ-प्रकाश ११ वां समुल्लास ]

महर्षि दयानन्दजी का यह सुस्पष्ट मत था कि श्रीमद्भागवत् आदि अष्टादश पुराणों के रचयिता श्री व्यासजी न थे:—

"जो अट्ठारह पुराणों के कर्त्ता व्यासजी होते, तो उनमें इतने गपोड़े न होते। क्योंकि शारीरिक-सूत्र, योग-शास्त्र के भाष्य आदि व्यासोक्त ग्रन्थों के देखने से विदित होता है कि व्यासजी बड़े विद्वान्, सत्यवादी, धार्मिक योगी थे। वे ऐसी मिथ्या कथा कभी न लिखते। और इससे सिद्ध होता है कि जिन सम्प्रदायी, परस्पर विरोधी लोगों ने भागवतादि नवीन कपोल-कल्पित ग्रंथ बनाये हैं, उनमें व्यासजी के गुणों का लेश भी नहीं था। और वेदशास्त्र विरुद्ध असत्यवाद लिखना व्यास सदृश विद्वानो का काम नही, किन्तु यह काम विरोधी, स्वार्थी, अविद्वान्, पामरो का है। इतिहास और पुराण शिवपुराणादि का नाम नहीं।"

[सत्यार्थ-प्रकाश, ११ वां समुल्लास]

महर्षि दयानन्दजी का मत है कि भारत में सर्व प्रथम जैन मतानुयायियों ने ही मूर्त्ति पूजा का प्रचार किया था और उन्होंने ही असम्बद्ध और असम्भव बातो से युक्त अपने पुराण ग्रन्थ रचे थे। फिर उनकी देखा देखी ही धर्म की आड में शिकार खेलने वाले अन्य लोग भी उनका अनुकरण करने लगे—

"जैनियो के पोप इन पुराणियो के पोपों के चेलो को बहकाने लगे। तब पुराणियों ने विचारा कि इसका कोई उपाय करना चाहिये, नहीं तो अपने चेले जैनी हो जायेंगे। पश्चात् पोपों ने यही सम्मति की कि जैनियो के सदृश अपने भी अवतार, मन्दिर, मूर्ति और कथा की पुस्तकें बनाईं। और जैसे जैनियो के आदि और उत्तर पुराणादि हैं, वैसे अट्ठारह पुराण बनाने लगे। राजा भोज के डेढ सौ वर्ष के पश्चात् वैष्णव मत का आरम्भ हुआ। एक शठकोप नामक कञ्जर वर्ण में उत्पन्न हुआ था। उससे थोड़ा सा चला। उसके पश्चात् मुनिवाहन भंगी कुलोत्पन्न और तीसरा यावनाचार्य यवन कुलोत्पन्न आचार्य हुआ। तत्पश्चात् ब्राह्मण कुलज चौथा रामानुज हुआ। उसने अपना मत फैलाया। शैवों ने शिव पुराणादि, शाक्तों ने देवी भागवतादि, वैष्णवों ने विष्णु पुराणादि बनाये। उनमें अपना नाम इसलिये नहीं धरा कि हमारे नाम से बनेंगे, तो कोई प्रमाण न करेगा। इस लिये व्यास आदि ऋषि मुनियों के नाम धरके पुराण बनाये।"

[सत्यार्थ-प्रकाश, ११ वां समुल्लास]

पुराण ग्रन्थों के निर्माण और वर्तमान महाभारत ग्रन्थ का पोथा फूलने की लीला भी देखिये:—

"राजा भोज के राज्य में व्यासजी के नाम से मार्कण्डेय और शिवपुराण किसी ने बनाकर खड़ा किया था। उसका समाचार राजा भोज को विदित होने से उन पण्डितों को हस्तच्छेदनादि दण्ड दिया। और उनसे कहा कि जो कोई काव्यादि ग्रन्थ बनाये, तो अपने नाम से बनावे, ऋषि मुनियों के नाम से नहीं। यह बात राजा भोज के बनाये "संजीवनी" नामक इतिहास में लिखी है कि जो ग्वालियर के राज्य "भिण्ड" नामक नगर के तिवाड़ी ब्राह्मणों के घर में है। जिस को लखुना के रावसाहब और उनके गुमास्ते रामदयाल चौबेजी ने अपनी आंख से देखा है। उसमें स्पष्ट लिखा है कि व्यासजी ने चार सहस्र चार सौ, और उनके शिष्यों ने पांच सहस्र छः सौ श्लोकयुक्त अर्थात् सब दश सहस्र श्लोकों के प्रमाण भारत बनाया था। वह महाराजा विक्रमादित्य के समय में बीस सहस्र, वह महाराजा भोज कहते हैं कि मेरे पिताजी के समय में पच्चीस और अब मेरी आधी उमर में तीस सहस्र श्लोकयुक्त, महाभारत का पुस्तक मिलता है। जो ऐसा ही बढ़ता चला, तो महाभारत का पुस्तक एक ऊंट का बोझा हो जायेगा। और ऋषि मुनियों के नाम से पुराणादि ग्रन्थ बनावेंगे तो आर्यावर्त्तीय लोग भ्रमजाल में पड़के वैदिकधर्म विहीन होके भ्रष्ट हो जायेंगे। इससे विदित होता है कि राजा भोज को कुछ कुछ वेदों का संस्कार था।"

[सत्यार्थ-प्रकाश, ११ वां समुल्लास]

राजा भोज के समय जो कला-कौशल और विज्ञान की विशेष उन्नति भारत में हुई थी, उसका दिग्दर्शन कराते हैं:—

"राजा भोज के राज्य में और समीप ऐसे-ऐसे शिल्पी लोग थे कि जिन्होंने घोड़े के आकार का एक यान-यन्त्रकला-युक्त बनाया था कि जो एक कच्ची घड़ी मे ग्यारह कोश और एक घण्टे में साढ़े सत्ताईस कोश जाता था। वह भूमि और अन्तरिक्ष में भी चलता था। और दूसरा पंखा ऐसा बनाया था कि बिना मनुष्य के चलाये कलायन्त्र के बल से नित्य चला करता और पुष्कल वायु देता था। जो ये दोनों पदार्थ आज तक बने रहते, तो यूरोपियन इतने अभिमान में न चढ़ जाते।"

[सत्यार्थ-प्रकाश ११ वां समुल्लास]

राजा विक्रमादित्य, भर्तृहरि भोज और महाकवि कालिदास का उल्लेख महर्षि ने इस प्रकार किया है:—

"शंकराचार्य के तीन सौ वर्ष के पश्चात् उज्जैन नगरी में विक्रमादित्य राजा कुछ प्रतापी हुआ जिसने सब राजाओं के मध्य प्रवृत्त हुई लड़ाई को मिटाकर शान्ति स्थापन की। तत्पश्चात् भर्तृहरि राजा काव्यादि शास्त्र और अन्य में भी कुछ-कुछ विद्वान् हुआ। उसने वैराग्यवान् होकर राज्य को छोड़ दिया। विक्रमादित्य के पांच सौ वर्ष के पश्चात् राजा भोज हुआ। उसने थोड़ा सा व्याकरण और काव्यालंकारादि का इतना प्रचार किया कि जिसके राज्य में कालिदास बकरी चराने वाला भी रघुवंश काव्य का कर्त्ता हुआ। राजा भोज के पास जो कोई अच्छा श्लोक बनाकर ले जाता था, उस को बहुत सा धन देते थे और प्रतिष्ठा होती थी। उसके पश्चात् राजाओं और श्रीमानों ने पढ़ना ही छोड़ दिया। यद्यपि शंकराचार्य के पूर्व वाममार्गियों के पश्चात् शैवादि सम्प्रदायस्थ मतवादी भी हुए थे, परन्तु उनका बहुत बल नहीं हुआ था। महाराजा विक्रमादित्य से लेके शैवों का बल बढ़ता आया।"

[सत्यार्थ-प्रकाश, ११ वां समुल्लास]

इस समय जैन-मत और बौद्ध-मत दो पृथक्-पृथक् मत माने जाते हैं और महात्मा बुद्ध एवं भगवान् महावीर नाम के दो ऐतिहासिक महापुरुष भी पृथक् पृथक् स्वीकारे जा रहे हैं। जैन-मत में दिगम्बर सम्प्रदायवादियों का कथन है कि भगवान् महावीर आजन्म अविवाहित रहे थे। इसके विपरीत श्वेताम्बर सम्प्रदाय वालों का सिद्धान्त है कि भगवान् महावीर ने विवाह किया था और वे सन्तानवान् भी बने थे। महात्मा बुद्ध और भगवान् महावीर को अब समकालीन भी माना जाता है, दोनों का कभी परस्पर मिलाप हुआ होगा, य संम्भावना भी आजकल मान्य है। भगवान् महावीर का जो जीवन वृत्त श्वेताम्बर सम्प्रदाय में प्रचलित है, उसमें और महात्मा बुद्ध के पारिवारिक नामों में भी बहुत अधिक समानता है और घटनाक्रमों में भी। यह दो पृथक्-पृथक् मत और पृथक्-पृथक् आचार्य मानने की परिपाटी कुछ नई-नई ही चली है। पहिले तो जिसको जैन-मत कहते थे, उसको ही बौद्ध मत भी कहते थे और जिसको महात्मा बुद्ध कहते थे, उस को ही भगवान् महावीर भी मानते थे।

महर्षि दयानन्द जी ने व्यवहारिक रूप में जैन और बौद्धमतों को पृथक्-पृथक् ही माना है; परन्तु इन दोनों में अभेदवाद का प्रतिपादन करने में भी वे चूके नहीं। काशी में जैन-मत को मानने वाले, महर्षि दयानन्दजी के एक प्रसिद्ध विपक्ष और विरोधी थे। वे स्कूलों के निरीक्षक थे, कतिपय पुस्तकों के लेखक थे, और अरबी-फारसी मिश्रित

( शेष पृष्ठ ७ पर )

# आर्य मार्तण्ड

अजमेर प्रथम आषाढ़ शु० १ सं० २०२६ वि० दिनांक १५ जून सन् १९६९


सम्पादकीय—

## स्वर्गीय सेठ बद्रीप्रसाद जी मोरूका !

भारत की पावन भूमि रत्नगर्भा है। इसमें अनेकों ऐसे अद्वितीय नर-रत्नो ने जन्म लिया है, जिन्होंने अपने त्याग, बलिदान और दान से न केवल वैदिक धर्म एवं आर्य संस्कृति का ही संरक्षण, संवर्धन किया है, अपितु अपने कार्य, उदारता और दान वीरता से विश्व में भारत का कीर्ति-गौरव बढ़ाया है। वैदिक धर्म और आर्य संस्कृति के लिये स्व० श्री सेठ जुगलकिशोर जी बिरला का नाम उस समय तक अमर रहेगा, जब तक भारत वसुन्धरा का अस्तित्व स्थिर है।

ऐसे ही महान् दानवीरो मे श्रीमान् स्व० सेठ बद्रीप्रसाद जी मोरूका का नाम भी सादर स्मरणीय है। उन्होने सेकड़ो हाथो से धन कमाया और सहस्रों हाथों से दान कर मोरूका परिवार को सदैव गौरवान्वित किया। मोरूका जी बड़े विनयी, स्वाभिमानी मातृभूमि भारत तथा महर्षि दयानन्द के अनन्य भक्त और वैदिक धर्म के सच्चे अनुयायी थे। उनके मन, वचन कर्म मे निरन्तर वैदिक धर्म के पुनरुत्थान की उत्कट अभिलाषा थी। देश में व्याप्त अराष्ट्रीयता के प्रचार प्रसार को देखकर उनका हृदय पीड़ा से तड़प उठता था। वह "कृण्वन्तो विश्वमार्यम्" को साकार देखने के बड़े ही लालायित थे। राष्ट्र तथा राष्ट्रीयता के संरक्षणार्थ उन्होने लाखों रुपये की सहायता सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा तथा भिन्न २ प्रान्तीय सभाओ को मुक्त-हस्त से दी।

राजस्थान आर्य प्रतिनिधि सभा को भी अराष्ट्रीय ईसाई प्रचार के निरोधार्थ वर्षों तक २५०) रु० मासिक की सहायता प्रदान करते रहे। जिसके लिये सभा सदा आभारी रहेगी। जोधपुर के जिस भवन में स्वामी जी को विष दिया गया था, उस स्थान पर दयानन्द कीर्ति मन्दिर के निर्माण का जब प्रश्न आया, तो सर्व प्रथम आपने अपना सक्रिय हार्दिक मुक्त हस्त से सहयोग देने का वचन दिया। ज्ञात अज्ञात जब कभी किसी ने भी आपसे आर्थिक सहायता चाही, आपने निस्संकोच भाव से उसे आर्थिक सहायता प्रदान कर उपकृत किया।

ऐसा वैदिक धर्म का अनन्य भक्त, महर्षि दया-नन्द का सच्चा अनुयायी आज भी आज में समस्त आर्य जगत् को वियोग [illegible] कर इस संसार से सदा के लिये विदा हो गया। [illegible] तक [illegible] के अस्पताल में रोग [illegible] पर [illegible] मृत्यु से [illegible] रहे, किन्तु [illegible] की [illegible] [illegible] प्रभावी [illegible] रहे और वह आर्य दानवीर असमय में ही स्वर्गा-रोहण कर गया।

उनके निधन से आर्य जगत् को अपूरणीय महान् क्षति पहुँची है। इस महान् दुःख के अवसर पर राजस्थान की समस्त आर्य जनता की ओर से हार्दिक शोक संवेदना प्रकट करते हुए परमपिता परमात्मा से हम प्रार्थना करते हैं कि वह उस दिवंगत पुण्यात्मा को सद्गति तथा शोकाकुल मोरूका परिवार एवम् आत्मीय जनो को धैर्य प्रदान करे।

आशा है स्वर्गीय मोरूका जी के उत्तराधिकारी भी उन्हीं के पथ का अनुसरण करते हुए उनके अधूरे कार्य को पूर्ण करने मे अपनी सक्रिय तत्परता प्रदर्शित करेंगे। यही उनके प्रति हार्दिक श्रद्धा-ञ्जलि होगी।

---

## आर्यों की भूल और उसका सुधार

महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती के गुरु दण्डी स्वामी विरजानन्द जी प्रज्ञाचक्षु थे। उन्होंने दयानन्द को महर्षि बनाया। अपने समस्त श्रेष्ठ भावों की ज्योति दयानन्द के विशाल हृदय में जगा दी और उनसे वैदिक धर्म के प्रचार के लिए जीवन की बाजी लगा देने की दक्षिणा मांगी जो सच्चे शिष्य ने सहर्ष देनी स्वीकार की। महर्षि ने अपने तप, त्याग और परिश्रम से भारत के कोने-कोने मे जाकर वेद का प्रचार और झूठ कुपथ पर ले चलने वाले मत मतान्तर और कुरीतियो का खण्डन कर वेद रूपी सत्य विद्या का मण्डन किया, आर्य-समाज ने भी महर्षि का धन्यवाद वर्ष मे दो बार विशेष पर्व 'ऋषि बोधोत्सव' तथा 'निर्वाण दिवस' के रूप में मनाकर अपनी बुद्धिमता, साहित्य और जाति प्रेम का परिचय दिया। इतना ही नही अपितु ऋषि के परवानो पण्डित लेखराम, स्वामी श्रद्धानन्द, आदि-आदि महानुभावों के बलिदान भी मनाता चला आया, ६ लाख वर्ष पूर्व के भगवान राम की राम नवमी, सीता अष्टमी, पांच हजार वर्ष पूर्व के भगवान् कृष्ण की जन्माष्टमी आदि आदि अनेको पर्व जाति के उत्थान के लिये मनाए। परन्तु नहीं मनाया तो महर्षि विरजानन्द का जन्म अथवा निर्वाण दिवस, क्यों? यह आर्यसमाज के कर्णधार जाने, हम तो इतना जानते है कि महात्मा प्रभु आश्रित ने पहली बार फरवरी १९६६ मे करतार-पुर स्मारक के प्रांगण में चारों वेदों का यज्ञ करा-कर विरजानन्द का निर्वाण दिवस समारोह पूर्वक मनाया, लेखक भी उसमें शामिल था आर्यसमाज के प्रसिद्ध वेद भाष्य कर्ता श्री पण्डित धर्मदेव जी विद्यामार्तण्ड भी शामिल थे, तब स्वामी जी की कार्य शैली को पूरा करने के लिए ट्रस्ट की नींव रखी जो नियमानुसार रजिस्ट्री हो चुका है। कारणवश महात्मा जी फिर करतारपुर नही आ सके और मार्च १९६७ मे उनका शरीर छूट गया। उनके उत्तराधिकारी के रूप मे यह सारी जिम्मेवारी लेखक पर डाली गई। महात्मा आनन्द भिक्षु जी भी हमारे साथ है। सार्वदेशिक सभा ने लम्बी चौड़ी पत्र व्यवहार और अपील के बाद भी हमारा साथ देना स्वीकार न किया। अपने दशम सम्मेलन हैदराबाद में हमारी प्रार्थना पर प्रधान महोदय आनन्द स्वामी जी महाराज की कृपा से विरजानन्द निर्वाण शताब्दी ९ अक्टूबर १९६९ को करतारपुर और जालन्धर म मनानी स्वीकार की। परन्तु अब तक हमारे किसी भी पत्र का न उत्तर दिया न समाचार पत्रो मे इस सम्बन्ध में क्या प्रगति हुई, लिखा। महाशय! यह भयकर भूल है, जिसको समाज को स्वीकार कर सुधार करना चाहिए। अत मेरा समस्त आर्य जगत् नर नारी से सानुरोध प्रार्थना है कि करतारपुर में २८ ९ ६९ से १-१०-६९ तक महर्षि विरजानन्द निर्वाण शताब्दी मनाई जायेगी, जिसमे सर्व प्रथम सामवेद का अर्थ सहित यज्ञ होगा और कई आवश्यक सम्मेलन होंगे, विरजानन्द की कार्य शैली को कैसे शीघ्र से शीघ्र क्रियान्वित किया जाय, इस पर आर्य जगत् का निर्णय होगा। इस महान् कार्य के लिए कम से कम ५ लाख रुपये की आवश्यकता है। आप भाई तन मन धन से सहयोग दे और शताब्दी महोत्सव को प्रभावशाली बनाए। यह विदित रहे कि गांधी और गुरु नानक शताब्दी भी इन्ही दिनो मनाई जा रही है, धन और पत्र व्यवहार मन्त्री ट्रस्ट के पास भेजें।

---

## आर्य समाज बारां (कोटा) के वार्षिक चुनाव

प्रधान—श्रीमती शकुन्तला देवी जी, उपप्रधान—श्री डा० दीपचन्द जी मन्त्री—श्री लक्ष्मण दास जी, उप मन्त्री—श्री त्रिभुवन दास जी, कोषाध्यक्ष—श्री हरिश्चन्द्र जी, पुस्तकाध्यक्ष—श्री योगेश्वर स्वरूप जी, भण्डारी—श्री जेठा भाई, पुरोहित व निरीक्षक—श्री मदन मोहन जी तथा ७ सदस्य अंतरंग के चुने गये हैं। —लक्ष्मण दास मन्त्री

—साधारण सभा आर्यसमाज शाहपुरा की मीटिंग दि ११-५-६९ को रात्रि के ८॥ बजे आर्य समाज भवन मे हुई, जिसकी अध्यक्षता श्रीमान् राजाधिराज साहब श्री सुदर्शन देव जी ने की। आगामी वर्ष के लिए नव निर्वाचन सर्व सम्मति से निम्न प्रकार हुआ—

प्रधान—श्रीमान् राजाधिराज साहब श्री सुदर्शन देव जी, उप प्रधान—श्रीमती महारानी जी साहिबा हर्षवन्त कुमारी जी, श्रीमान् युवराज महोदय श्री इन्द्रजीत देव जी, मन्त्री—श्री रामस्वरूप जी बेली, प्रचार मंत्री—श्री रामनिवास जी जोशी, पुस्तकाध्यक्ष—श्री मदन लाल जी लाखोटिया, कोषाध्यक्ष—श्री रामदयाल जी छीपा, आडीटर—श्री मनोहर सिंह जी, अन्तरङ्ग सदस्य—श्री माधोसिंह जी, श्री बद्री लाल जी छीपा श्री अम्बा लाल जी, श्री दीप चन्द जी, मन्त्री महिला शिक्षण केन्द्र (पदेन) प्रतिनिधि महिला समाज।

श्रीमद्दयानन्द महिला शिक्षण केन्द्र की प्रबन्ध कारिणी समिति का निर्वाचन निम्न प्रकार हुआ—श्रीमान् राजाधिराज साहब श्री सुदर्शन देव जी (आजीवन सरक्षक), श्रीमती महारानी जी साहिबा हर्षवन्त कुमारी जी (आजीवन अध्यक्षा)।

श्रीमती युवरानी जी महोदया राजेश्वरी देवी जी, श्रीमान् बंशीलाल जी छीपा, रामस्वरूप जी बेली, अम्बालाल जी, आचार्य श्री हरिश्चन्द्र जी, सोहनलाल जी शारदा, बंशालाल जी सोनी, रामदयाल जी छीपा, लाला केशरीलाल जी माधोसिंह जी न्याती ब्रह्मदत्त जी शर्मा, गुलाबचन्द जी मालू, लक्ष्मीलाल जी त्रलीया, बाबूलाल जी जोशी, लक्ष्मीदत्त जी काटोया, मदनमोहन जी जोशी, प० भगवान स्वरूप जी न्याय भूषण (अजमेर), प० प्रकाशवीर जी शास्त्री, (ससद सदस्य देहली), श्रीमती सरला जी माथुर (सदस्या राजस्थान समाज कल्याण बोर्ड जयपुर) भँवरी देवी जी।

## आवश्यकता है

एक शासनानुभवी प्रधानाध्यापक, एक अंग्रेजी साहित्य, हिन्दी, भूगोल प्रशिक्षित स्नातक, एक प्रशिक्षित अनुभवी पी०टी०आई०, एक एस०टी०सी० प्रशिक्षित अध्यापक की। वतन क्रम राज्य सरकार द्वारा स्वीकृत। दो रुपये के पास्टल आर्डर के साथ २१ जून १९६९ तक आवदन पत्र भेजिये।

मत्री

दयानन्द विद्यालय संकेण्ड्री स्कूल

चन्द्रा स्टार भवन अजमेर

## वार्षिक चुनाव

आर्यसमाज श्रीमर्यादमण्डी कोटा का वार्षिक चुनाव दिनाक २७-४-६९ को सम्पन्न हुआ जिसमें निम्नलिखित व्यक्ति सन् ६९-७० के लिए पदाधिकारी चुने गए —

सर्वश्री डा० रघुनाथ प्रसाद मौबेराय-प्रधान, श्री जियालाल वर्मा-उपप्रधान, श्री विश्वम्भरनाथ कौशल मन्त्री, श्री ओमप्रकाश वासुदेव-उपमन्त्री, आनन्दराव सर्वे-उपमन्त्री, श्री देवीदयाल-कोषाध्यक्ष, श्री लक्ष्मणदास गुलाटी-पुस्तकाध्यक्ष, श्री रतनलाल नायक-निरीक्षक।

दिनाक ८-५-६९ को आर्यसमाज बोयाने का चुनाव सर्वसम्मति से निम्न प्रकार से हुआ:—

प्रधान—श्री हरिराम जी आंजणा, उपप्रधान—श्री मोहनलाल जी आंजणा, मन्त्री—श्री रामेश्वर जी कुलथी उपमन्त्री—श्री अमृतलाल जी तेली, कोषाध्यक्ष—श्री अमृतलाल जी आंजणा, पुस्तकाध्यक्ष—श्री जगन्नाथ जी नाई अन्तरग सदस्य—श्री घीसालाल जी कुलथी, श्री राधेश्याम जी शर्मा, श्री भवरलाल जी रोहीवाल, श्री रामबक्ष जी कुम्भकार।

आज दिनाक २७-४-६९ को आर्य समाज किशन पोल बाजार, जयपुर का वार्षिक निर्वाचन सम्पन्न हुआ जिसमे निम्नलिखित पदाधिकारी निर्विरोध चुने गये—

प्रधान—श्री विद्यारत्न जी भटनागर, उपप्रधान—श्री प्यारे लाल जी चोपड़ा, श्री उग्रसेन जी सभी, मन्त्री—श्री दामोदर लाल जी गुप्त, उप मन्त्री—श्री रामपाल जी, श्री इन्द्र लाल जी, श्री वैद्य मुनिदेव जी, श्री रामू लाल जी, कोषाध्यक्ष—श्री सूरज नारायण जी गुप्ता, पुस्तकाध्यक्ष—श्री रखमो भाई, सहायक पुस्तकाध्यक्ष—श्री रामसुख जी तवर, वस्तु भण्डार अध्यक्ष—श्री गैंदालाल जी मित्तल, आय व्यय लेखा निरीक्षक—श्री ब्रज कुमार जी।

मन्त्री

वैद्य मुनिदेव उपाध्याय

## आवश्यकता

आर्यसमाज द्वारा सचालित श्रीमद्दयानन्द महिला शिक्षण केन्द्र शाहपुरा में दो अध्यापिकाओं की आवश्यकता है। जिनकी योग्यता निम्न प्रकार हो और जो आर्य विचार वाली हो।

(१) प्रशिक्षित स्नातिका अथवा ६ साल का अध्यापन अनुभव वाली (Arts site)

(२) स्नातिका जो गणित व विज्ञान विषय पढ़ा सके।

नोट—नियुक्तियां अस्थायी होगी। वेतन राजस्थान सरकार शिक्षा विभाग के नियमानुसार दिया जावेगा। प्रार्थना पत्र प्रमाण पत्रो सहित १० जून ६९ तक आचार्य महिला केन्द्र के पास प्रस्तुत करें।

## आर्य समाज उदयपुर के चुनाव

आर्यसमाज उदयपुर के चुनाव दि. २५-५-६९ को सम्पन्न हुवे जिसमें वर्ष १९६९-७० के लिये निम्न पदाधिकारी एवं कार्यकारिणी के सदस्य चुने गये:—

प्रधान—श्री बलवंतसिंहजी उपप्रधान—श्री कपिल कुमारजी एवं श्री गोविन्दसिंहजी, मंत्री—श्री रामस्वरूपजी, उपमंत्री—श्री ओमप्रकाशजी एवं श्री हरिनारायणजी, प्रचार मंत्री—श्री जवरीलचन्द जी एव श्री अम्बालालजी, पुस्तकाध्यक्ष—श्री किशनलालजी एवं श्री देवीलालजी, कोषाध्यक्ष—श्री प्रेमचन्दजी, लेखा निरीक्षक—श्री भीमशंकरजी, अन्तरग सदस्य—श्री अमृतलालजी तापड़िया, श्री अमृतलालजी सोनी, श्री सुरेन्द्रसिंह जी, श्री मांगीलालजी, श्री नाथूलालजी, श्री गणेशलालजी, श्री भैरूलालजी।

सभी चुनाव सर्वसम्मति से हुआ।

दिनाक २५-५-६९ को सायकाल ६ बजे से ठक्कर बापा कोलोनी में अस्पृश्यता दिवस मनाया गया।

श्री प्रेमचन्दजी

कोषाध्यक्ष

आर्य समाज उदयपुर

राजस्थान

## आर्य संन्यासी मण्डल की बैठक

रविवार दिनाक २२ जून को प्रातः ११ बजे रजिस्टर्ड अ० भा० आर्य संन्यासी मण्डल की बैठक आर्यसमाज केसर गज (अजमेर) में होगी। जिसमें गोरक्षा-अस्पृश्यता और वेद प्रचार आदि सामयिक समस्याओ पर सुचारु रूप से विचार होगा। सर्वश्री स्वामी व्रतानन्दजी कुलपति (गुरुकुल चित्तौड़) के अतिरिक्त स्वामी श्री रामानन्दजी शास्त्री ससद् सदस्य, स्वामी स्वतन्त्रानन्दजी (बांसवाड़ा) स्वामी सदानन्दजी (रोहतक) स्वामी आत्मानन्दजी तीर्थ (मेरठ) स्वामी ओमानन्दजी (अजमेर) और वेद स्वामी मेधारथी सरस्वती (गुजरात) विशेष रूप से भाग लेंगे। सभी स्नेही सज्जनो को सन्यासियो का स्वागत करना चाहिये।

## सूचना

कन्या गुरुकुल महाविद्यालय देहरादून अनिवार्य आश्रम पद्धति पर चलने वाली अखिल भारतीय स्त्री शिक्षण सस्था है। जो कि गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय से सम्बन्धित है। यहां पर प्रथम श्रेणी से बी० ए० तक (विद्यालङ्कार) की शिक्षा का प्रबन्ध है।

उच्च प्रशिक्षित शिक्षिका वर्ग, छात्रावास एव पुस्तकालय की व्यवस्था है। छात्राओं के लिए पढ़ाई के अलावा चित्रकला, सगीत, विभिन्न प्रकार के खेल, सिलाई, कटाई, गृहविज्ञान एव साइन्स आदि के शिक्षण की सुन्दर व्यवस्था है। शिक्षण शुल्क नहीं लिया जाता।

१ जुलाई से नवीन कन्याओ का प्रवेश प्रारम्भ है। सस्कृत लेकर मैट्रिक उत्तीर्ण कन्यायें भी प्रथम वर्ष में प्रविष्ट हो सकेंगी। प्रवेश के इच्छुक महानुभाव ५० नए पैसे भेजकर नियमावली मंगा सकते हैं।

# हिन्दू राष्ट्रवाद और कुछ भ्रान्तियां

लेखक—श्री राजेन्द्रप्रसाद जी जैन

( पिछले अङ्क का शेष )

सिख जो मर्यादा के विरुद्ध गये, उसका भी कारण है। मुस्लिम सम्राटों ने सिख गुरु अर्जुन, गुरु तेगबहादुर एवं गुरु गोविन्दसिंह के बच्चों का बड़ी ही निर्दयता पूर्वक वध करा दिया था। इससे स्वाभाविक ही सिख उत्तेजित हो उठे थे। खान बहादुर शम्सुलउलेमा मौलवी जकाउल्ला अपनी पुस्तक तारीखे हिन्द में लिखते हैं—"ये सिख ऐसे जोशे मजहबी से भरे हुए थे, कि हर कैदी जल्लाद के तई कहता कि पहले मुझे कत्ल कर। गर्ज बर्दा मर्दी से भरे पीर मजहब से न फिरे...जब इन सबका कत्ल हो चुका तो बाबा बन्दा की बारी आयी, उसको ताश का लिबास (नोकरों के वस्त्र) पहनाया गया और लाल पगड़ी बंधवायी गयी। लोहे के पिंजरे में बन्द किया गया और उसके रफ़ीकों (साथियों) के सर नेजों पर खड़े किये गये। एक बिल्ली उसकी पाली हुई थी, उसको भी एक नेजे पर लटकाया गया, ताकि बन्दा को यह मालूम हो जाय कि कोई चीज दुनियां में उसकी बाकी नहीं रही। जल्लाद नंगी तलवार लेकर सामने खड़ा होगया। बाबा बन्दा के लड़के को उसकी गोदमें लिटाया गया और तेग़ उसके हाथ में देकर कहा गया कि 'बेटे को जिबह कर (हत्या कर)।' कोई कहता है कि उसने जिबह कर डाला। कोई लिखता है कि जब उसने इनकार किया तो जल्लाद ने उसके बेटे को मारकर उसके लख्तेजिगर का कलेजा उसके मुंह पर मारा, फिर गर्म दस्त निपाहों से उसकी बोटियां नोच-नोच कर फेंक दी, मगर बाबा का इस्तकलाल (धीरज) यह था कि उसने उफ नहीं की।"

इन्हीं भयानक अत्यन्त क्रूर अमानुषिक अत्याचारों से विचलित होकर सिखों ने कुछ उग्रता की। कालान्तर मे जब उनका क्रोध शांत हो गया तो उन्होंने मुसलमानों के प्रति कोई क्रूरता नहीं दिखलायी, जिसका जीता-जागता प्रमाण महाराजा रणजीतसिंह का शासन है।

कहा जाता है कि 'यदि भारत हिंदूराष्ट्र हो गया तो पहले तो हिन्दू मुसलमानों और ईसाइयो को निकालेंगे और फिर सिख, सनातनी, जैन, बौद्ध, आर्यसमाजी, शैव, वैष्णव आपसमें एक दूसरेका रहना कठिन कर देंगे।' हमारा कहना यह है कि न तो हिंदूराष्ट्र मुसलमानों एव ईसाइयों को निकालेगा और न हिन्दुओंके विभिन्न मतमतान्तर आपस में एक दूसरे का रहना दूभर करेंगे। हिंदूराष्ट्रवाद को मुस्लिम-राष्ट्रवाद तथा मध्य-युगीन ईसाई राष्ट्रों की तुला में नापना ही भ्रम उत्पन्न करता है। यह सत्य है कि इस्लाम अमुस्लिमों के प्रति असहिष्णु है और उसके शिया-सुन्नी एवं क़ादयानी सम्प्रदाय एक दूसरे को फूटी आंखों नहीं देख सकते और यह भी सत्य है कि मध्ययुगीन ईसाइयों ने भी यहूदियों एव मुसलमानों पर अमानुषिक अत्याचार किये हैं तथा रोमनकैथ-लिक तथा प्रोटेस्टेन्ट उसी प्रकार एक दूसरे के रक्त के प्यासे रहते थे, जैसे शिया-सुन्नी; परन्तु हिंदुओंने तो कभी ऐसा नहीं किया। फिर हिन्दू राष्ट्र-वाद से भय क्यों? जैन सम्राट् चन्द्रगुप्त के पीछे वैदिक धर्मावलम्बी चाणक्य की शक्ति काम करती थी। जैन सम्राट् सम्प्रति, खारवेल, अमोघवर्ष तथा कुमारपालने कब वैदिकों पर अत्याचार किये? बौद्धसम्राट् अशोक ने पशुबलि बन्द करा दी थी, इसे यदि आप धार्मिक अत्याचार कह सकते हैं तो इसे छोड़कर अशोक, कनिष्क एवं हर्ष-जैसे बौद्ध सम्राटों ने किसी दूसरे धर्म के अनुयायियों को कब सताया? वैदिकों ने कब जैनियों और बौद्धों को सताया? मेवाड़ के शैव सम्राटों के यहां कई जैन प्रधान मन्त्री हो गये हैं। विमलशाह, आसाशाह, भामाशाह के नाम वहां के इतिहास में अमर हैं। सिख नरेश रणजीतसिंह ने काशी के विश्वनाथ-मन्दिर पर सोने का कलश चढ़वाया था। हिंदूमत-मतान्तर एक-दूसरे के प्रति अत्यन्त सहिष्णु हैं। उन सबका इतिहास एक है, उनकी राष्ट्रीयता एक है। इसका सबसे बड़ा प्रमाण यही है कि राष्ट्रीय गीत 'वन्दे मातरम्' की, दुर्गा और कमला का जैनधर्म, बौद्धधर्म एवं आर्यसमाज में कोई स्थान नहीं, फिर भी यह गीत क्योंकि राष्ट्रीय गीत बन चुका था, उन्होने उसके लिये मरने-मिटने में गर्व का अनुभव किया जब कि मुसलमानों ने इसी आधार पर उसका विरोध किया। सिखों में मूर्त्ति पूजा नहीं है, फिर भी वे 'वन्दे मातरम्' के विरोधी नही बने। न ईसाइयों ने विरोध किया न पारसियों ने, न यहूदियों ने। विरोध किया, केवल मुसलमानों ने। प्रश्न धर्म का नही, राष्ट्रीयताका है। भारत हिन्दू राष्ट्रवादियो का है, न कि हिन्दूधर्म के अनुयायियो का। हिन्दुओं की अपनी सस्कृति तथा परम्पराएं हैं, जिनमें इस्लामी एव मध्ययुगीन ईसाइयो की धार्मिक असहिष्णुतावाली बातों के लिये कोई स्थान नहीं।

मुझसे बहुत-से लोग कहते हैं कि 'आप जैनी होते हुए भी जैन उपकरणों का प्रयोग न करके हिन्दूराष्ट्रवाद जगानेके लिए सनातनी, आर्यसमाजी, सिख तथा बौद्ध उपकरणों का क्यों प्रयोग करते हैं?' उत्तर है कि 'हमें बिना किसी भेद-भाव के उन सब उपकरणों एवं प्रतीकों का प्रयोग करना है, जिनसे हम अधिक से अधिक व्यक्तियों तक पहुंचा सकें। सनातनी, जैन, सिख, आर्यसमाज एवं बौद्ध सभी के प्रतीक और उपकरण हमारे हैं। हम केवल मूल को सींचने के लिये जिसकी जितनी आवश्यकता समझते हैं, उतना उसका प्रयोग करते हैं। संस्कृत, प्राकृत, पाली, अपभ्रंश, हिन्दी, गुजराती, मराठी, बंगला, असमिया, उड़िया, पंजाबी सिन्धी, कश्मीरी, तमिल, तेलुगु, कन्नड़, मलयालम इत्यादि सभी भाषाएं हिन्दूराष्ट्र की हैं। इसी न्याय से स्वामी दयानन्द और महात्मा गांधी ने गुजराती भाषाभाषी होते हुए भी हिन्दी का सहारा लिया था, जिससे कि वे अपना संदेश अधिक से अधिक जनता तक पहुंचा सकें। समस्त आर्य विद्वानों तक अपनी वाणी पहुंचा सकें तथा उसे स्थायित्व प्रदान कर सकें, इस न्याय से जैन पण्डितों ने अपनी धर्म-भाषा प्राकृत होते हुए भी संस्कृत का आश्रय लिया था। जब राष्ट्र का जागरण करना होता है तो राष्ट्रीय चेतना को देखा जाता है। जैनियों की संख्या बहुत थोड़ी है, जैन प्रतीकों से कुछ थोड़े ही लोगों में चेतना उत्पन्न की जा सकती है। अतः उन प्रतीकों तक सीमित नहीं रहा जा सकता। भारतवर्ष में मुजफ्फरनगर जनपद जैनियों का गढ़ माना जाता है। यहां भी यह दृश्य है कि इस जनपद के गोरखा-विकास खण्ड में, जिसमें कि मैं रहता हूं। ६० गांवों में कुल ४ गांवों में थोड़े बहुत जैनी रहते हैं—तिस्सा, ककरौली, भोपा, बेहड़ा सय्यदोंवाला। पहले चौकी में भी जैनी थे, अब वहां से उजड़ गये हैं।

एक यह भी दोषारोपण किया जाता है कि हिन्दूराष्ट्रवाद कूपमण्डूकता तथा सङ्कीर्णता की ओर ले जाता है। हिंदूराष्ट्र कब कूपमण्डूक रहा? जिन लोगों ने भारत जैसे महादेश को, जिसमें प्राचीन काल में काबुल और कन्धार भी थे, सांस्कृतिक दृष्टि से एक कर दिया, उन्हें कैसे कूप-मण्डूक कहा जा सकता है? जिन्होंने जावा, सुमात्रा बोर्नियो, चम्पा और मलेयशिया में उपनिवेश स्थापित किये; चीन, जापान, कोरिया, लङ्का में अपना धर्म फैलाया, वे कैसे कूपमण्डूक हो सकते हैं? मंगोलिया में आज भी संस्कृत ग्रंथ निकलते हैं। प्राचीन काल में भारत का व्यापार रोम, मिस्र, यूनान के साथ चलता था। सर अलफ्रेड लायलने लिखा है कि रोमन युग से अब तक भारतीय व्यापार निरन्तर यूरोप का सोना-चांदी खींचता रहा है। राबर्टसन महोदय लिखते हैं—'प्राचीन काल से अब तक (१७९१ ई०) भारतीय वस्त्र अपनी बारीकी, बरदाजी, कशीदाकारी और उन पर छपे हुए बेल-बूटों के सुन्दर रंगों के कारण प्रसिद्ध रहा है। रोमनों में सबसे अधिक लोकप्रिय गहरा नीला रंग इण्डिकम—इण्डिया (भारत) से कहलाता था। भारत से ही लाल रंग यूरोप आता था।' ईसा से पूर्व पहली शती के लेखक स्ट्रैबोने भारतीय रंगों की प्रशंसा की है। फरिश्ता लिखता है कि 'इस्लाम से पूर्व भारत के ब्राह्मण मक्के की यात्रा को जाया करते थे। (मक्का-स्थित काबा वास्तव में एक शिव-मन्दिर है। यहां की उपासना अब भी हिंदू-पद्धति के अनुसार होती है।) आज से २५,००० वर्ष पूर्व भारतीय ही अमेरिका में आकर बसे थे। इंगलैंड के अन्तर्गत वेल्स प्रदेश के निवासी आज से ६,००० वर्ष पूर्व वहां जाकर बस जाने वाले भारतीय आर्यों की सन्तान हैं। कूपमण्डूक हिंदूराष्ट्रवादी नहीं, धर्मनिरपेक्ष हैं, जिन्होंने समझ लिया है कि यूरोप, अमेरिका एव चीन के बड़े नगरों के अतिरिक्त न कहीं सत्य है, न सौन्दर्य, जो वर्तमान के बाहर भूत की ओर झांककर देखना भी पाप समझते हैं!

हिंदूराष्ट्रवाद मानव को सङ्कीर्णता की ओर न ले जाकर उदारता की ओर ले जाता है। जहां मध्ययुगीन ईसाइयो ने गैलीलियों के यह कहने पर कि 'सूर्य स्थिर है और पृथ्वी घूमती है।'—उन्हें

( शेष पृष्ठ ७ पर )

## विचारणीय पत्र

(प्रस्तुत पत्र श्री बाबूलालजी गुप्त एम एस सी. भूतपूर्व संचालक शिक्षा विभाग मध्यभारत ने लिखा है। श्री गुप्तजी वैदिक धर्म एवं आर्य संस्कृति के अनन्य भक्त हैं। वह एक सम्पन्न सुदृढ आर्य परिवार के सगठन के चिराभिलाषी हैं पत्र हृदय स्पर्शी एवं वास्तव में विचारणीय है।)

सम्पादक

माननीय सम्पादक महोदय,
आर्य मार्तण्ड, अजमेर।

सादर नमस्ते।

आपके प्रकाशित पत्र के दिनाङ्क १५ मई सन् १९६१ ई० के अंक के पृष्ठ ५ पर प्रकाशित 'विचारणीय विषय' नामक लेख पढ कर लगभग पचास वर्ष पूर्व का एक चिकित्सक का कथन स्मरण हो आया। उन दिनों वर्षा ऋतु की समाप्ति पर प्रति वर्ष प्रायः सर्वत्र मलेरिया ज्वर का प्रकोप हो जाया करता था। मलेरिया ज्वर में ग्रस्त एक रोगी उक्त चिकित्सक के पास पहुंचा और औषधि देने हेतु निवेदन किया। चिकित्सक ने उसे कुनीन मिक्स्चर पीने को कहा। प्रत्युत्तर मे रोगी ने चिकित्सक को उपालम्भ देते हुए पूछा कि "क्या कारण है जब जब मैं आपके पास अपने रोग की चिकित्सा कराने हेतु आया आपने मुझे कुनीन मिक्स्चर ही पीने को दिया ?" चिकित्सक ने उत्तर दिया "भद्र पुरुष ! जब आपका रोग वही एक मलेरिया ज्वर रहा है तब मेरी औषधि मे क्यों अन्तर होने लगा।"

जिन समस्याओं के समाधान की ओर उपर्युक्त लेख द्वारा आपने आर्य जगत् का ध्यान आकर्षित किया है तदर्थ मेरा विनम्र निवेदन इस प्रकार है। वैदिक धर्म का प्रचार प्रारम्भ करते समय ही आर्य समाज के संस्थापक महर्षि दयानन्द ने हिन्दुओं में प्रचलित जन्म मूलक जाति भेद की निःसारता और विनाशक की ओर हमारा ध्यान आकर्षित करते हुए आर्यों को उपदेश दिया था कि जन्ममूलक जाति बिरादरी के बन्धनों से मुक्त होकर वे गुण, कर्म, स्वभाव पर आधारित वर्ण व्यवस्था का पालन करें। जब तक आर्य लोग अपने को हिन्दुओं का ही एक वर्ग मानते रहेंगे और अपनी सन्तानों के विवाह भिन्न भिन्न जन्म मूलक जाति बिरादरी की सीमाओं के अन्तर्गत ही करते कराते रहेंगे, वे विधर्मियों की शुद्धि में कदापि स्थायी सफलता प्राप्त नहीं कर सकते। अतः आर्यों का प्रथम कर्तव्य यह है कि जन्म मूलक जाति, बिरादरी की कुत्सित प्रथा का तुरन्त परित्याग कर निज सन्तानों के वैवाहिक सम्बन्ध गुण कर्म स्वभाव के आधार पर आर्य मात्र के साथ करने हेतु उद्यत हो जावें।

आर्यों को अन्यों की शुद्धि करने से पूर्व अपनी शुद्धि की ओर पहिले ध्यान देना आवश्यक है। उनको अपना जीवन आर्य समाज के नियमों एवं सिद्धान्तों के अनुकूल बनाते हुए वैदिक धर्म महर्षियों एवं षोडश संस्कारों का आचरण अपने परिवारों में आरम्भ करना चाहिये। उपनियम कलाप ४ के अन्तर्गत जिन प्रतिबन्धों का उल्लेख एक आर्य सभासद् के लिये किया गया है, आर्य समाजों की कार्यवाहियाँ करते समय उनका ध्यान रखा जावे जिससे अनार्य लोगों को आर्य समाजों पर अधिकार जमाने का अवसर प्राप्त न हो सके।

आजकल ससद विधान सभाओं एवं पञ्चायतो में प्रायः सिद्धान्त विहीन स्वार्थान्ध लोगों का जमघट है। परिणामतः देश की स्थिति दिन प्रतिदिन बिगडती चली जा रही है। आर्यों में जिन जिन महानुभावों की स्थिति ऐसी है कि वे निज कुटुम्ब परिवार के पालन पोषण की चिन्ता से मुक्त हो गए हैं और निःस्वार्थ भाव से लोकोपकार हेतु वे कुछ समय प्रदान कर सकते हैं वे अपनी अपनी सामर्थ्यानुसार उपर्युक्त विधान निर्मातृ सभाओं के सदस्य बनने हेतु उद्यत हों और शेष आर्यों का कर्तव्य है कि जनता जनार्दन अपेक्षा ऐसे महानुभावों को सदस्य बनवाने में पूर्णतया सहायक सिद्ध होवें।

भवदीय
बाबूलाल गुप्त

## वेद भाष्यकार के रूप में महर्षि दयानन्द का महत्व तथा विशेषताएं

इस महत्वपूर्ण विषय पर एक अखिल भारतीय निबन्ध प्रतियोगिता के आयोजन का निश्चय किया गया है। जिसके निम्न नियम निर्धारित किए गए हैं।

(१) इस निबन्ध प्रतियोगिता मे कोई भी विद्वान् सज्जन व विदुषी देवी भाग ले सकती है। जिन्होने तुलनात्मक दृष्टि से वेद भाष्यो का अनुशीलन किया हो।

(२) निबन्ध की भाषा हिन्दी होगी और लिपि देवनागरी होगी। किन्तु तुलनात्मक अनुशीलन होने के कारण अन्य भाषाओं के उद्धरण भी दिए जा सकेंगे।

(३) निबन्ध की पृष्ठ संख्या फुलस्केप आकार के पृष्ठों की कम से कम १५० और अधिक से अधिक ५०० होनी चाहिए। जिससे प्रेस मे छपा हुआ मैटर अधिकतम २५० पृष्ठ मे आ सके। निबन्ध की तीन प्रतियां स्पष्टतया टाइप की हुई होनी चाहिए ताकि पढने में सुगमता हो।

(४) निबन्ध भेजने की अन्तिम तिथि ३० जून १९६१ ई० है। इसके पश्चात् प्राप्त कोई निबन्ध प्रतियोगिता के लिए स्वीकृत न किया जावेगा।

(५) परीक्षक विद्वन्मण्डल द्वारा स्वीकृत सर्वोत्तम निबन्ध के लेखक महानुभाव को ट्रस्ट की ओर से सम्मानार्थ एक हजार रुपये का पुरस्कार समर्पित किया जायेगा।

(६) परीक्षक विद्वन्मण्डल का निर्णय अन्तिम होगा।

## आर्यवर की आवश्यकता

श्रेष्ठ, सुसस्कृत, शिक्षित, एवम् सम्पन्न आर्य परिवार की बी. ए. १९ वर्षीय सुन्दर गौरवर्ण कन्या के लिये सुयोग्यवर की आवश्यकता है। कन्या माहेश्वरी (मूंदडा) परिवार की है, सम्बन्ध वैश्य मात्र में हो सकता है, सुयोग्यवर होने पर जाति पांति का विशेष बन्धन नहीं है।

डा. माहेश्वरी
C/o आर्य मार्तण्ड
केसरगंज, अजमेर

## पीपाड़ शहर में छूआछूत निवारण दिवस की धूम

आर्य जगत की शिरोमणी सार्वदेशिक सभा के विशेष आदेशानुसार यहां पर २५ मई को छूआछूत निवारण दिवस बडे ही उत्साह से मनाया गया। यहां पर इस दिवस को मनाने के लिये आर्य सदस्यों मे बडा ही उत्साह था।

दिवस का कार्यक्रम निम्न अनुसार सम्पन्न हुआ—

प्रातःकाल ४॥ बजे से ६ बजे तक प्रभात फेरी
„ ६॥ बजे से ८॥ „ „ विशेष यज्ञ
(समाज मन्दिर में)

सायकाल ४॥ बजे से ७ बजे तक जाटों के मोहल्लो मे श्री भँवरलाल जी सोनी के यहां पर विशाल यज्ञ व प्रचार।

रात्रि को ८॥ बजे से ११॥ बजे तक कावरों की पोल के पास जटियों की बास मे विशाल आम सभा (श्री बंशीलाल जी आर्य की अध्यक्षता में)

उपरोक्त अनुसार कार्यक्रम यहां पर २५ मई को छूआछूत निवारण दिवस के उपलक्ष में बड़ी सफलता से सम्पन्न हुआ।

आज की यह विराट सभा एक बार पुन यह घोषित करती है कि वेदादि सच्छास्त्रों मे जन्मना अस्पृश्यता का समर्थन नहीं किया गया है। यह सभा अस्पृश्यता को आर्य (हिन्दू) जाति के मस्तक पर कलक समझती हुई प्रत्येक हिन्दू को आह्वान करती है कि वह इस कलक को दूर करने का कोई प्रयत्न उठा न रखे।

अछूत एवम् दलित कहे जाने वाले भाइयों के साथ भेद-भाव और असमानता की भावना दूर की जाय। उनमें व्याप्त हीन-भावना दूर की जाय। उनके साथ गुण, कर्मानुसार, खान-पान और विवाहादि के सम्बन्ध स्थापित करके उन्हें समानता का दर्जा दिया जाय।

इस प्रकार सवर्ण और अवर्ण की गहरी खाई पाट कर समस्त हिन्दू समाज सगठित रूप से देश, धर्म और समाज की सेवा के लिये सन्नद्ध रहे।

## प्रवेश सूचना

अन्तर्राष्ट्रीय-उपदेशक विद्यालय, टंकारा मे इस वर्ष प्रवेश जून मास में होगा।

प्रवेशार्थी विद्यार्थियों की योग्यता:—

(१) मैट्रिक अथवा समकक्ष कोई परीक्षा पास हो।

(२) स्वस्थ रोग रहित शरीर हो तथा सिगरेट पान आदि का व्यसन न हो।

(३) समाज के प्रचार कार्य में ही जीवन लगाने का विचार हो।

(४) ५-६ वर्ष तक अध्ययन के लिए प्रस्तुत हो।

सुविधाएं

भोजन, वस्त्र, पुस्तक, निवासादि का सर्व प्रबन्ध विद्यालय की ओर से होगा।

प्रवेशार्थी पूर्ण विवरण के साथ सूचना दें।

आचार्य विद्यानन्दिशोर
व्यवस्थापक

( शेष पृष्ठ ५ का )

अमानवीय यन्त्रणाएँ दीं और जहाँ यही कहने पर इस बीसवीं सदी में भी अरब में वैज्ञानिकों को दण्डित किया जा सकता है। वहाँ हिंदू पृथ्वी को अचल तथा घूमने वाली मानने वाले दोनों ही प्रकार के ज्योतिषियों को समुचित प्रतिष्ठा देते आये हैं। अफगानिस्तान में एक कादयानी को इसलिये ढेले मार-मारकर मार दिया गया कि वह मुहम्मद साहब को अन्तिम पैगम्बर नहीं मानता था, वहाँ भारत में वेदों को स्वीकार न करने वालों को भी अपने विचार के प्रचार की सदैव पूर्ण स्वतन्त्रता रही है। वास्तव में सङ्कीर्ण तो धर्मनिरपेक्ष हैं, जो रामनवमी और कृष्णाष्टमी से चिढ़ते हैं। हिंदूराष्ट्रवादी तो गांधी या नेहरू के जन्म-दिवस से नहीं चिढ़ते, वे तो ईसा और मुहम्मद के जन्म-दिवस को भी स्वीकार करने के लिए तैयार हैं। सङ्कीर्ण कौन जो दशहरा और दीवाली के साथ ईद और मुहर्रम को भी स्वीकार करता हो या वह जो रक्षा-बन्धन और होली तक को मिटाना चाहता हो? आर्य जीवन की समस्त उपलब्धियाँ, जिन्हे स्वयं अज्ञेय ने मानव की सर्वोच्च उपलब्धियाँ स्वीकार किया है, धर्मनिरपेक्षिता के नाम पर उन्हीं वेद, उपनिषद्, रामायण, महाभारत, गीता, संस्कृत, देवनागरी, हिंदी, आयुर्वेद, ज्योतिष, योग, भारतीय सङ्गीत और भारतीय प्रतीकों की जड़ काटी जा रही है। उत्तरप्रदेश के हाईस्कूल पाठ्यक्रम में नैतिक शिक्षा के अन्तर्गत पहले रामायण, महाभारत एवं गीता का उल्लेख था। अब १९७० वाले पाठ्यक्रम में इन्हें हटा दिया गया है। फिर बतलाइये सङ्कीर्ण कौन है। जो मुहम्मदगोरी की दिल्ली-विजय से पहले के सारे भारतीय इतिहास को नकारते हैं वे या जो अग्निमीले जातवेदा से लेकर अब तक के सारे भारत को अपना समझते हैं। हजरत अमीर खुसरो और फैजी को भी, जो लोग मुहम्मद बिनकासिम, महमूद गजनवी, मुहम्मद गोरी, तैमूर, बाबर से एकात्मता अनुभव करते हैं और राष्ट्र की रक्षा के लिए अपने प्राणों को होमने वाले राजा दाहिर, पृथ्वीराज, हम्मीर, कुम्भ, साङ्गा, प्रताप, शिवाजी, गुरु गोविंदसिंह, हरिहर बुक्क, राजा हेमचन्द्र का नाम लेना भी पाप समझते हैं। वे कैसे उदारमना हैं। क्या राष्ट्रद्रोह और धर्मनिरपेक्षिता एक ही अर्थ के वाचक हैं? बख्शी गुलाम मुहम्मद ने धर्मनिरपेक्षिता के हित में राणा प्रताप, शिवाजी और गुरु गोविंद सिंह को भुला देने के लिए कहा है। जिस समय तिहाड़ जेल में गोसत्याग्रहियों पर जो डंडे बरसाये गये थे, उससे घायल होने वाले तपःपूत सन्यासियों को देखने श्री चह्वाण जेल में गये थे तो कांग्रेस की नाक की बाल जमइयतुलउलमाए हिंद के मुखपत्र 'अलजमईयत' ने श्री चह्वाण के इस काम को धर्मनिरपेक्षिता के विरुद्ध बतलाया था। इससे सिद्ध हुआ कि धर्मनिरपेक्षिता न केवल असहिष्णुता, कूपमण्डूकता, सङ्कीर्णता, राष्ट्रद्रोह का ही पर्यायवाची है, अपितु वह निष्ठुरता एवं अमानवीय क्रूरता के लिए भी प्रयुक्त होता है। धर्मनिरपेक्षिता के और चमत्कार सुनिये। मुस्लिम काल में ऐसा नियम था कि अमुस्लिम तो मुसलमान बनाया जा सकता था, अपितु राज्य उसे प्रोत्साहन देता था, परंतु एक बार मुसलमान बन जाने के पश्चात् फिर वह व्यक्ति इस्लाम धर्म को छोड़कर कोई अन्य धर्म स्वीकार नहीं कर सकता था, यहाँ तक कि अपना पूर्व धर्म भी नहीं। अंग्रेज ने आकर इस अन्यायपूर्ण कानून को हटा दिया, परन्तु मुसलमान इसे क्रियात्मक रूप नहीं लेने देते थे। स्वामी श्रद्धानन्द इस अन्याय के विरुद्ध लड़े और एक मुसलमान ने उनकी हत्या कर दी। अब हमारी धर्मनिरपेक्ष सरकार स्वामी श्रद्धानन्द की झाँकी दिखाये जाने का भी विरोध करती है; क्योंकि उन्होंने इस्लामी शरअ का उल्लङ्घन किया था और जो व्यक्ति इस्लामी शरअ का उल्लङ्घन करे, भले ही वह ऐसा करते हुए अपने कानून सम्मत अधिकार का उपयोग कर रहा है, धर्मनिरपेक्ष नहीं कहला सकता। इस्लाम में उसकी 'हत्या' उचित है, तो हमारी धर्मनिरपेक्ष सरकार उसका नाम मिटा देना भी उचित समझती है। वास्तव में धर्मनिरपेक्ष की रट भारत में वे समुदाय लगा रहे हैं, जिन्हें धर्मनिरपेक्षता में किंचित भी विश्वास नहीं। ये तत्व भारत को कम्युनिष्ट राष्ट्र अथवा इस्लामी राष्ट्र बनाने के लिए प्रयत्नशील हैं और अपने मार्ग में हिंदूराष्ट्रवाद को सबसे बड़ा बाधक समझते हैं। ये लोग जहाँ हिंदी-संस्कृत में भूषण और सरस्वती के पाठ हटवाना चाहते हैं, वहाँ उर्दू-फारसी से इकबाल और बिसमिल्लाह अलरहमान अलरहीम व कलमात को हटाने की उनके पास कोई योजना नहीं, अलजमईयतने दिल्ली प्रशासन की इसलिए आलोचना की थी कि हाईस्कूल परीक्षा के प्रश्न-पत्र में खलीफाओं की जीवनी पर कोई प्रश्न क्यों नहीं था। १३–१२–६८ के शुक्रवार साप्ताहिक संस्करण में एक पाठक ने अलजमईयत के सम्पादक से प्रश्न किया था कि 'यदि भारत में इस्लामी राज्य स्थापित हो गया तो क्या यहाँ पर शरई शासन लागू होगा।' सम्पादक ने उत्तर दिया 'यदि ऐसा हुआ तो मुसलमानों पर शरई अहकाम लागू किये जायेंगे।' इस प्रश्न के उत्तर में क्या ऐसी स्थिति में अमुस्लिमों पर फिर जजिया लगाया जायगा और दास-प्रथा फिर पुनर्जीवित की जायगी? सम्पादक ने कोई उत्तर नहीं दिया, अब धर्मनिरपेक्ष सोचें—यह धर्मनिरपेक्षिता देश को कहाँ ले जाकर पटकेगी। 'वयं राष्ट्रे जागृयाम पुरोहिताः।'

( क० से साभार )

---

( शेष पृष्ठ २ का )

हिन्दी-भाषा के प्रचारक एवं अंग्रेजी सरकार के भक्त थे। उन का शुभ नाम था—राजा शिवप्रसाद "सितारये-हिन्द" इस सितारे की चमक को मन्द करने के लिये ही संस्कृत निष्ठ हिन्दी-भाषा के प्रबल समर्थक राजा लक्ष्मणप्रसाद सिंह प्रभृति विद्वानों ने भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र को आगे बढ़ाया था। ये भारतेन्दुजी ही "काशी-शास्त्रार्थ" नामक पुस्तिका के लेखक थे और महर्षि दयानन्द के एक सत्संगी भक्त थे। जैन और बौद्ध मतों की एकता का मुख्याधार संस्कृत-भाषा के सुप्रसिद्ध कोष—'अमर-कोष' में भी सुरक्षित है और राजा शिवप्रसाद द्वारा विरचित "इतिहास तिमिर नाशक" के तीसरे भाग में भी। "अमर-कोष" का रचयिता अमरसिंह एक जैन विद्वान् ही था। महर्षिजी सत्यार्थ-प्रकाश के बारहवें समुल्लास में लिखते हैं:—

"जीव के बिना दूसरा चेतन तत्व ईश्वर को नहीं मानते कोई भी अनादि सिद्ध ईश्वर नहीं, ऐसा बौद्ध-जैन लोग मानते हैं। इसमें राजा शिवप्रसाद जी "इतिहास तिमिर-नाशक" में लिखते हैं कि इनके दो नाम हैं, एक जैन और दूसरा बौद्ध, ये पर्यायवाची शब्द हैं। परन्तु बौद्धों में वाममार्गी मद्यमांसाहारी बौद्ध हैं उनके साथ जैनियों का विरोध है। परन्तु जो महावीर और गौतम गणधर हैं, उनका नाम बौद्धों ने बुद्ध रखा है। और जो जैनियों ने गणधर और जिनवर। इसमें जिन की परम्परा जैनमत है उन राजा शिवप्रसादजी ने अपने "इतिहास तिमिर नाशक" ग्रन्थ के तीसरे खण्ड में लिखा है कि "स्वामी शंकराचार्य" से पहले जिनको हुए कुछ हजार वर्ष के लगभग गुजरे हैं सारे भारत खण्ड में बौद्ध अथवा जैन धर्म फैला हुआ था। इस पर नोट—

"बौद्ध कहने से हमारा आशय उस मत से है, जो महावीर के गणधर गौतम स्वामी के समय से शंकर स्वामी के समय तक वेद विरुद्ध सारे भारतवर्ष में फैला रहा। और जिस को अशोक और सम्प्रति महाराज ने माना। उससे जैन बाहर किसी प्रकार नहीं निकल सकते। जिन जिससे जैन निकला और बुद्ध जिससे बौद्ध निकला, दोनों पर्यायवाची शब्द हैं। कोश में दोनों का अर्थ एक ही लिखा है। और गौतम को दोनों मानते हैं। वरन् दीपवंश इत्यादि पुराने बौद्ध ग्रन्थों में शाक्य मुनि गौतमबुद्ध को अकसर महावीर ही के नाम से लिखा है। बस उसके समय में एक ही उनका मत रहा होगा। हमने जो जैन न लिखकर गौतम के मतवालों को बौद्ध लिखा इसका प्रयोजन केवल इतना ही है कि उसको दूसरे देशवालों ने बौद्ध ही के नाम से लिखा है।"

ऐसा ही अमर कोश में भी लिखा है:—

सर्वज्ञः सुगतो बुद्धो, धर्मराजस्तथागतः ।
समन्तभद्रो भगवान् मारजिल्लोकजिज्जिनः ॥१॥
षडभिज्ञो दशबलो द्वयवादी विनायकः ।
मुनीन्द्रः श्रीघनः शास्ता मुनिः शाक्यमुनिस्तु यः ॥२॥
स शाक्यसिंहः सर्वार्थ. सिद्धशौद्धोदनिश्च सः ।
गौतमश्चार्कबन्धुश्च मायादेवी सुतश्च सः ॥३॥

[अमर-कोश १।१।८-१०]

अब देखो! बुद्ध, जिन और बौद्ध तथा जैन एक के नाम हैं, या नहीं? क्या अमरसिंह भी बुद्ध जिनके एक लिखने में भूल गया है? जो अविद्वान् जन हैं, वे तो न अपना जानते हैं, और न दूसरे का, केवल हठ मात्र से बर्राया करते हैं। परन्तु जो जैनों मे विद्वान् हैं, वे सब जानते हैं कि "बुद्ध" और "जिन" तथा "बौद्ध" और "जैन" पर्यायवाची हैं, इसमें कुछ सन्देह नही। जैन लोग कहते हैं कि जीव ही परमेश्वर हो जाता है। वे जो अपने तीर्थंकरों को ही केवली, मुक्तिप्राप्त और तीर्थंकृत, जिन मानते हैं, अनादि परमेश्वर कोई नहीं, सर्वज्ञ, वीतराग, अर्हन, केवली, तीर्थंकृत, जिन ये छः नास्तिकों के देवताओं के नाम हैं।

[सत्यार्थ-प्रकाश, १२ वां, समुल्लास]

# चाँद करण जी शारदा !

शारदा जयन्ती पर श्री प्रेम सक्सेना द्वारा
रचित एवम् पठित



धन्य-धन्य युग पुरुष आर्य श्री चांदकरण जी शारदा ।
चिर स्मरणीय, चिर अनुकरणीय अमर रहो तुम सर्वदा ।।

आर्य संस्कृति हित निज जीवन भेंट कर दिया जन-समाज को।
लोक हितार्थ देश सेवा हित त्याग दिया था सुख व साज को ।।
नोआखाली में हिंदू संस्कृति पर अत्याचार बढ़ े ।
तभी वीर सेनानी बे तुम दुश्मन को ललकार बढ़ ।।
लाज बचाई, जब भी बहनों पर घिर आई आपदा ।। १ ।।

निजाम और रजाकारों ने आर्य सभ्यता को कुचला ।
तब अन्यायाचारी शासन के प्रति रक्त तेरा उबला ।।
दक्षिण हैदराबाद पहुँच कर निज संस्कृति को मान दिया ।
"करो जब्त सत्यार्थप्रकाश" समस्या को निष्प्राण किया ।।
जबकि सिंध में थी खतरे में दयानन्द की सम्पदा ।। ।।

लेखक, वक्ता, लेखक [illegible] के [illegible] आप थे ।
सम्पादक, दलितोद्धारक, और ज्योति प्रज्वलित आप थे ।।
वैदिक धर्म प्रचारक, निर्धन विधवाओं के तारणहार ।
दयानन्द के पूर्ण भक्त थे, धर्म कर्म के पालनहार ।।
तुमसा अतुल साहसी, सेनानी होता है यदा कदा ।। ३ ।।
प्रथम अखिल भारत वर्षीय प्रजा परिषद के महा सचिव ।
स्वतन्त्रता संग्राम तुम्हारा त्याग भूल सकता है कब ।।
तुम्हारे पद चिन्हों पर चल जीवन का आदर्श निभाए ।
सकल विश्व में अजित जगद्गुरु अपना भारत वर्ष बनाए ।।
"प्रेम" पूर्ण श्रद्धांजलि तब हो प्रसरित तेरी प्रतिपदा ।। ४ ।।

## प्रेमी पाठकों तथा ग्राहकों से नम्र निवेदन

प्राय देखा जाता है बहुत सी समाजें तथा ग्राहक महानुभाव अपनी वार्षिक चन्दे की राशि समय पर नहीं भेजते, इससे सभा को बड़ी हानि पहुंच रही है । अत नम्र निवेदन है कि वार्षिक चन्दा समाप्त होते ही ५) रु० अविलम्ब भेजने की कृपा करें । जिन समाजो तथा महानुभावो पर वार्षिक चन्दे की राशि शेष है । कृपया शीघ्र भेजकर अपना सक्रिय सहयोग प्रदान करे ।

—व्यवस्थापक

## आर्य मार्तण्ड के नवीन आजीवन सदस्यों से प्राप्त धन राशि

१०१) श्रीमान् चौधरी नारायण रामजी [illegible]
१०१) „ [illegible]
१०१) „ किशनसिंह जी, [illegible]

आशा है जिन महानुभावों ने वचन [illegible] भी अभी तक शेष राशि नही भेजी, शीघ्र, भेजकर अपना सक्रिय सहयोग प्रदान करने की [illegible] करेंगे ।

—व्यवस्थापक
आर्य मार्तण्ड

# इन निर्बल हाथों से राष्ट्र की कैसी रक्षा होगी

लेखक—श्री ओमप्रकाश जी वानप्रस्थ

वैसे तो पथभ्रष्ट देशद्रोही कुछ [illegible] श्री जवाहरलालजी नेहरू के मन्त्रित्व काल में अपनी विचारधारा का प्रसार और प्रचार कर रहे थे । परन्तु श्री लालबहादुरजी शास्त्री के शासन-काल में कुछ आगे न बढ़ पाये [illegible] श्रीमती इन्दिरादेवीजी के हाथ मे राष्ट्र [illegible] आया है तो केवल राजस्थान को छोड़कर देश के समस्त प्रान्त मे अराजकता का विस्तार हो रहा है और इन देश के गद्दार राष्ट्रद्रोही कम्युनिष्टो के घोरतम अत्याचार और उपद्रव विशेष कर बगाल, आसाम, केरल आदि प्रान्तो में अतिक्रम कर गये हैं । इनके घोरतम अन्याय और उपद्रव से ऐसा प्रतीत होने लगता है कि मानो इन प्रान्तो में किसी का शासन ही नहीं है । गरीब प्रजा की रक्षा करने वाला कोई है ही नहीं । अभी कुछ मास पूर्व गोहाटी में इन गुण्डो ने किस प्रकार दिन दहाड़े हत्या लूट खसोट और माता बहिनो का अपमान उनकी बेइज्जती. सरकारी कार्यालयो को आग लगा देना और सारे कारखानो मे लूटपाट कर उनको नष्ट कर देना इनको कोई रोकने वाला है ही नहीं । मानो देश एक प्रकार से शासन हीन प्रतीत होता है । अभी गत १० अप्रैल से पश्चिमी बगाल में २४ घटे तक रेल तार विमान डाक आदि सारे सरकारी कार्य ठप्प हो गये । सारे प्रान्त का सम्पूर्ण जनजीवन अस्त व्यस्त हो गया । सारे उद्योग धन्धे बन्द हो गये । करोड़ों रुपयों की भारी क्षति हुई और इन सब कुकृत्यो का आयोजन स्वय बगाल सरकार की देख रेख में होता रहा । यह बगाल सरकार तो प्रारम्भ ही मे केन्द्रीय सरकार के विरुद्ध संघर्ष के लिये कमर कसे तैयार बैठी है । इधर केन्द्र की सरकार कानो मे तेल डालकर यह सब कुछ अपनी आंखो से देख रही है और कुछ नही कर पा रही । यह कैसी विचित्र विडम्बना है । वास्तव मे देखा जाय तो इस समय पश्चिमी बगाल मे चीन समर्थक कम्युनिस्टो का बोलबाला है । गत ६ अप्रैल को कलकत्ता मे रवीन्द्र सरोवर स्टैडियम मे जो कुछ हुआ उससे सारे देश मे हाहाकार मच गया वहाँ जो भी भयकर घटनाये घटी, उनको सुनकर रोमाञ्च हो जाता है । हमारी मा बहनो के साथ जो अभद्र व्यवहार और अमानुषिक व्यवहार इन राक्षस कम्युनिस्टों ने किया है, उसे सुनकर तो लज्जा को भी लज्जा [illegible] है । इधर बगाल की [illegible] रविन्द्र सरोवर जैसे घृणित और घिनौने काण्ड को कुछ भी नही समझती और उस काण्ड पर परदा डालने का प्रयत्न करती है, यह कितन आश्चर्य की बात है । इधर केरल और आन्ध्र देश मे जो कुछ भी घटनायें घट रही हैं । उन सब से देश मे अशान्ति और अराजकता का विस्तार हो रहा है । यदि हमारी केन्द्रीय सरकार की यही कुम्भकरणी निद्रा रही, तो वहा भी भारी लूटपाट और अशान्ति फैल जाने की सम्भावना है । ऐसी परिस्थिति मे देश को बचाने के लिये केन्द्रिय सरकार को दृढ़ हाथ होने की भारी आवश्यकता है । इन निर्बल और निस्तेज हाथो से सरकार नहीं चल पायेगी । अतः देश का भला चाहती हैं तो श्री इन्दिराजी को अपना शासन सबल हाथो में सौंप देना ही अच्छा होगा अन्यथा इसका परिणाम भविष्य मे भारी भयकर होगा । ऐसी सम्भावना है ।

## आवश्यकता

गौड़ विधुर' उद्योग परायण योग्य ब्राह्मण वर के लिये गरीब ब्राह्मण परिवार की सुशील कन्या अथवा नि संतान विधवा की शीघ्र आवश्यकता है ।

[illegible]
C/o [illegible]
29 E ब्लाक श्री [illegible]नगर

## आवश्यकता

[illegible]
के लिए निम्न अध्यापिकाओं की आवश्यकता है —

(१) ट्रन्ड (Trained) एम ए, एम. एस. सी रसायन शास्त्र, गणित, संस्कृत तथा भौतिक शास्त्र पढ़ाने हेतु ।

वेतन क्रम 225, 485

(२) प्रशिक्षित ग्रेजुएट अध्यापिकाए —

हिन्दी, इतिहास, जनरल साइंस तथा इंगलिश पढाने हेतु ।

वेतन क्रम 140, 300 भत्ता राजस्थान सरकार के नियमानुसार होगा ।

आवेदन पत्र दिनांक १९-६-६९ तक मन्त्री जी के नाम भेजे । तथा इन्टरव्यू के लिए दिनांक २८-६-६९ को साय चार बजे विद्यालय भवन में प्रमाण-पत्र सहित उपस्थित होना अनिवार्य है ।

श्री प० भगवानस्वरूपजी "न्यायभूषण" के प्रबन्ध से वैदिक यन्त्रालय अजमेर में मुद्रित और ओम्प्रकाश वानप्रस्थ, सम्पादक प्रकाशक द्वारा दयानन्द आश्रम, केसरगंज अजमेर से प्रकाशित । अधिष्ठाता—श्रीमान् डा० भवानीलालजी भारतीय एम. ए. पी. एच. डी. शास्त्री

आर्य प्रतिनिधि सभा राजस्थान का मुख-प

पाक्षिक

रजि० नं० १४ ने

# आर्य मार्तण्ड

दयानन्द आदित्य से पाकर ज्योति प्रचण्ड। ध्वस दम्भ पाखण्ड का करे आर्यमार्तण्ड॥

वर्ष ७७ } वार्षिक मूल्य ५) रुपया | सम्पादक—श्री ओम्भक्त वानप्रस्थ (रामसहाय शर्मा) | अजमेर द्वि०आषाढ़ कृ० २ सं. २०२६वि.,दि. १ जुलाई ६६ दयानन्दाब्द१४५ | एक प्रति का २० पै० { अङ्क १

## ईश्वर-प्रार्थना

ओ३म् ! वय जयेम त्वया युजा,
वृतमस्माकमशमुदवा भरे भरे।
अस्मभ्यमिन्द्र वरिवः सुग कृधि,
प्र शत्रूणां मघवन्वृष्ण्या रुज॥

[illegible] युक्त होकर हम [illegible] को जीतें, विजय प्राप्त करें। यह [illegible] युद्ध में हमारे सुभाव को चारों ओर से आक्रान्त करलें, तब उद्धार करने की शक्ति हमें प्रदान कीजिए।

हम विजयी हों साथ तुम्हारे
मुक्त करा अपहृत धन को।
सुगम सम्पदा हो हम सब को
नष्ट करो हरि। प्ररिदल को॥

—मुन्शीराम शर्मा

### आर्यसमाज राजानाडा जोधपुर में देशभक्त कुंवर चांदकरण शारदा जयन्ती

दिनाक ८-६-६६ को प्रातःकालीन साप्ताहिक अधिवेशन में कु० चांदकरणजी शारदा की जयन्ती का समारोह पूर्वक आयोजन किया गया। स्वर्गीय देशभक्त के पावन चरित्र पर प्रकाश डालते हुए आर्य मार्तण्ड के सम्पादक श्री स्वामी ओम्भक्तजी वानप्रस्थी ने अपने संस्मरण प्रस्तुत किये। उनके पश्चात् सभा मन्त्री डा० भवानीलाल जी भारतीय ने स्व० शारदा जी की राष्ट्र धर्म और समाज के प्रति सेवाओं का विस्तृत उल्लेख करते हुए उन्हें आर्यसमाज का अद्वितीय नेता और मार्ग दर्शक बताया। प० ठाकुरदत्त जी वाली ने भी अपनी भावभीनी श्रद्धाञ्जलि अर्पित की।

## उठो ! उठो !!

(श्री कुलदीप)

उठो कि सो चुके बहुत
उठो कि खो चुके बहुत।
उठो कि रो चुके बहुत।

उठो ! धरा वसुन्धरा नितांत शोक ग्रस्त है।
तिमिर निशक व्याप्त आज ज्ञान सूर्य अस्त है॥
न न्याय दीखता कहीं विभव लुटा लुटा पड़ा।
कि देश का सुपुत्र लख अभाव सुख त्रस्त है॥

कराहती पुकारती धरा कि सो चुके बहुत।
उठो कि सो चुके बहुत।
उठो कि रो चुके बहुत॥

कहाँ सुविश भाल वह कहा भुजा महाबली।
कहाँ सुवर्ण-पर्ण विटप वाटिका वनस्थली॥
कहा गयी-सुदेह जो कि साज स्वेद से करे।
दिशा दिशा निहार भक्षिका निराश ही चली॥

निमाह को सचेत कर उठो कि सो चुके बहुत,
उठो कि रो चुके बहुत।
उठो कि सो चुके बहुत॥

उठो! उठो!! कि वेद की ऋचा २ पुकारती।
कि देव दयानन्द की गिरा गिरा पुकारती॥
समाधिया सजीव बन पुकारती उठो उठो।
प्रभात रश्मियां सभी उतारने को आरती॥

सुयोग को टटोलते सुमित्र। रो चुके बहुत।
उठो कि खो चुके बहुत।
उठो कि सो चुके बहुत॥

### आर्य समाज महर्षि दयानन्द मार्ग बीकानेर द्वारा वेद प्रचार

आर्य समाज महर्षि दयानन्द मार्ग बीकानेर द्वारा दिनांक १२ ६ ६६ से १५ ६ ६६ तक वेद कथा का आयोजन किया गया। इस अवसर पर आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के वेद प्रचार अधिष्ठाता आचार्य निरञ्जन देव जी शास्त्री के ओजस्वी एव प्रेरणा प्रद उपदेशो से नगर की जनता अत्यन्त प्रभावित रही। आर्य भजनोपदेशक प० कुलभूषण जी मेंढोली (हरियाणा) निवासी के भजनो से भी जनता आह्लादित होती रही। बीकानेर की जनता पर इस कथा का अच्छा प्रभाव पडा। मन्त्री

### गुम शुदा



श्री आनन्द कुमार शर्मा

प्रिय आनन्द कुमार! तुम जहा कहीं हो तुरन्त यहा सूचना दो। तुम्हारे माता पिता सब चिंतित हैं। तुम जसी और जहा के लिए भी अपनी शिक्षा प्राप्त करना चाहोगे समुचित व्यवस्था करदी जायेगी। जिस किसी आर्य भाई को इनका पता मिले तो कृपया निम्न पते पर सूचित करें।

किसी आर्य शिक्षण सस्थान मे होने की सम्भावना है क्योकि इनकी तीव्र इच्छा ऋषि ग्रन्थो के पढने की है।

हरविलास शर्मा
आदर्श नगर अजमेर

# संस्कृत-साहित्य परिचय

श्री डा० सूर्यदेव जी शर्मा एम ए. डी. लिट

ससार के विचार शील विद्वानो ने अब इस तथ्य को प्राय सब सम्मत्या स्वीकार कर लिया है कि विश्व मे सस्कृत साहित्य से अधिक पुरातन कोई अन्य साहित्य नही है। प्रोफेसर मोक्षमूलर के शब्दो में "ससार के पुस्तकालय मे प्राचीनतम ग्रन्थ ऋग्वेद हो है।' वास्तव मे जिस प्रकार आर्य जाति ससार की प्राचीनतम जाति है, उसी प्रकार सस्कृत वाङ्मय आर्य जाति की सहचारिणी बनकर देश और काल की सीमाओ का उल्लघन करती हुई आदिम मानव युग से अद्यावधि भूमण्डल के विभिन्न भागों मे प्रसार पाती रही है। सस्कृत भाषा का इतिहास वस्तुत. आर्य जाति का इतिहास है। अत सस्कृत साहित्य न केवल प्राचीनतम है, किन्तु विशालतम भी है। जिस प्रकार आर्य जाति की शाखायें प्रशाखायें विश्व के विविध विभागो मे फैली हुई हैं उसी प्रकार सस्कृत वाङ्मय की शाखायें प्रशाखायें भी अनन्त अक्षयवट के समान भूमण्डल के कोने २ मे विस्तृत हुई हैं, जिनकी शान्तिमय शीतल छाया में बैठकर ज्ञान रूप मधुर फलो का आस्वादन करती हुई मानव जाति दीर्घकाल से परितृप्त होती रही है। भू-मण्डल पर यत्र-यत्र आर्य जन बढ़ते गए तत्र-तत्र अपनी सस्कृति, सभ्यता, भाषा और ज्ञान का भी बीज वपन करते गए। उन्होंने अन्य जातियों पर विजय प्राप्त की, तो असि धारा द्वारा नहीं, सस्कृति और धर्म के द्वारा की, शस्त्र के द्वारा नहीं, शास्त्र के द्वारा की जिसका विशेष स्पष्टीकरण कण्व ऋषि, भगवान् बुद्ध तथा सम्राट अशोक आदि के द्वारा सम्पन्न हुआ। विजित जातियो मे उनके आक्रमण से कराह और आह नही उत्पन्न हुई, किन्तु जयघोष की वाह-वाह और सस्कृति का शखनाद ही हुआ। सस्कृत साहित्य का विशाल मन्दिर अन्य जातीय भाषाओ के इस मसान पर खड़ा नही किया गया किन्तु उनके सहयोग से उन्हीं के प्राङ्गण म एक मण्डन मूर्ति बनकर ससार का समादर प्राप्त करता रहा और सस्कृत की आदि जन्मस्थली भारत भूमि मे आकर ही विदेशी जन-ज्ञान गगा में सदा अवगाहन करत रहे जैसा कि भारत की आर्य जाति अपनी सस्कृति तथा सस्कृत के माध्यम स ससार की गुरु बनी और अनेक विद्याओ तथा कलाओ की आदि जननी भारत-भूमि ही रही, जैसा कि मनु महाराज जी ने लिखा है—

एतद्देश प्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मन ।
स्व स्व चरित्र शिक्षरेन् पृथिव्यां सवमानवा ॥

अर्थात्—

'इस देश के द्विज अग्रजन्मा ब्रह्मवित् विद्वान् थे।
विज्ञान दर्शन, शास्त्र मे वे अद्वितीय महान् थे॥
ससार के गुरु थे, इन्हीं के पास सब आते रहे।
सुचरित्र-शिक्षा विश्व के मानव यहीं पाते रहे॥"

इस प्रकार आर्य जाति का इतिहास ही सस्कृत का इतिहास है। अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से विद्वज्जनो ने इस साहित्य के इतिहास को निम्नलिखित ८ युगों मे विभाजित किया है:—

(१) वैदिक युग अथवा सहिता काल (२) उपनिषद् युग (३) दर्शन युग अथवा सूत्र ग्रन्थों का काल (४) महाकाव्य युग (५) प्राक्कालिदास युग (६) कालिदास युग (७) कालिदासोत्तर युग (८) आधुनिक युग।

वैदिक युग —जैसा कि ऊपर कहा गया है ससार की प्राचीनतम पुस्तक वेद है और आर्य लोग वेद को ईश्वरीय ज्ञान की श्रेणी में रखते हैं। वेद सब सत्य विद्याओ की पुस्तक है। ससार की समस्त विद्यायें वेद से ही समुद्भूत हुई हैं'—

"भव्य भूत भविष्यं च, सर्व वेदात् प्रसिद्धयति"

वेद चार हैं, ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद।

इनमें कहीं संस्कृत गद्य को स्थान मिला है परन्तु अधिकतर ये पद्य और मन्त्र रूप में ही लिखे गये हैं। संस्कृत भाषा की प्राचीनता में कुछ पाश्चात्य विद्वानो ने सदेह किया है तथा डुगल्ड स्टुवार्ड, जैसे महानुभाव तो यहा तक लिखने का दुस्साहस कर बैठे हैं कि "सस्कृत साहित्य तथा सस्कृत भाषा एक चोरी बात है, जिसे चालाक ब्राह्मणों ने सिकन्दर के आक्रमण के पश्चात् ग्रीक भाषा के अनुरूप गढ डाला ." इस विचारधारा का मिथ्यात्व तो साधारण इतिहास का विद्यार्थी भी सिद्ध कर सकता है क्योंकि सिकन्दर महान् के भारत आने से पूर्व यह वैदिक युग तथा ब्राह्मण उपनिषद् काल और वाल्मीकि रामायण जैसे महान् संस्कृत ग्रन्थो के सम्बन्ध मे पढ चुका होता है। एक विद्वान् के शब्दो में शत-सहस्रों वर्षों तक आर्य जाति की विचक्षण मेधा का एक मात्र कलेवर सस्कृत भाषा ही रही है। इसी में अद्भुत अध्यात्म ज्ञान का जन्म हुआ। उसी में वे ज्ञान रत्न प्रसूत हुवे जिनकी अमिताभा की ससार ने सराहना की और जिनकी सीमायें अन्य जातियां अथक परिश्रम करके भी आज तक नहीं छू सकीं। इसी हेतु आर्यों ने इस सर्वतोमुखी सस्कृत भाषा को "देव वाणी" की सज्ञा प्रदान की। यह देववाणी समूचे आर्यावर्त मे सहस्रो वर्षों तक साधारण बोल चाल की भाषा रही। इस लम्बी अवधि के बीच आर्यों में एक से एक उत्कट मेधावी हुये, एक से एक प्रकाण्ड मनीषी विद्वानो ने जन्म लिया। सबने अपनी प्रखर प्रज्ञा की अद्भुत उर्वरता से इस सस्कृत सदन को सजाया।

वैदिक युग की ४ संहिताओं (ऋग्वेद, यजुर्वेद सामवेद, अथर्ववेद) के पश्चात् ब्राह्मण ग्रन्थो की रचना हुई, जिनमें शतपथ, गोपथ, ऐतरेय, तैत्तिरीय प्रमुख हैं। इनकी भाषा प्राय गद्यात्मक ही रही। उनके पश्चात् आरण्यक और उपनिषद् ग्रन्थ लिखे गए। उपनिषदों में परा विद्या, पराकाष्ठा को पहुची हुई है। विश्व साहित्य में इनके जोड़ का कोई ग्रन्थ अध्यात्म क्षेत्र में उपलब्ध नहीं होता। इसीलिये जर्मनी के प्रसिद्ध दार्शनिक विद्वान् शोपनहार ने लिखा है—The Upanishads have been the solace of my life and they will be the solace after my death"

अर्थात्—"उपनिषदों ने मुझे जीवन में शान्ति प्रदान की है तथा वे ही मृत्यु के पश्चात् भी मुझे शान्ति तथा सान्त्वना प्रदान करेंगी।" वास्तव में उपनिषदों मे वर्णित नचिकेता आदि की अध्यात्म कथायें मानव मस्तिष्क के उच्चतम क्षितिज को छूती हुई हृदय के गहनतम तल को स्पर्श करके आत्मा में चिर शान्ति की धारा प्रवाहित कर देती हैं।

उपनिषदो के पश्चात् सूत्र ग्रन्थों का प्रणयन हुआ। भारतीय दर्शन, न्याय, योग, सांख्य वैशेषिक, मीमासा तथा वेदान्त सूत्र साहित्य में ही लिखे गये हैं, जिनकी टक्कर का दर्शन अन्य संसार के साहित्य में उपलब्ध नहीं होता। सूत्र ग्रन्थो के साथ वेदांगो की रचना हुई। शिक्षा, कल्प, ज्योतिष व्याकरण, निरुक्त, छन्द, गणित, ज्यामिति, आयुर्वेद, काव्य, नाटक, चम्पू, तथा आचार व्यवहार परे अनेक ग्रन्थों की रचना सस्कृत में होती रही। इस प्रकार सस्कृत भाषा-रत्न-भडार से वेद, छन्द शास्त्र, श्रुति, स्मृति, धर्म, आचार, कथा, जीवन चरित्र, इतिहास, पुराण, राजनीति, अर्थशास्त्र, सगीत, काव्य, नृत्य, वाद्य, अलकार आदि अनगिनत विषयो पर एक से एक बढ़कर रत्न समुद्भूत हुये।

सस्कृत साहित्य की एक प्रमुख विशेषता सदा से यह रही है कि इसके लेखकों ने अपने अधिकांश ग्रन्थों की रचना प्राय पद्यात्मक ही की है। यहां तक कि अध्यात्म विद्या जैसे गम्भीर विषयों को, वाल्मीकि जैसे सूक्ष्म विषय को, गणित तथा ज्योतिष जैसे गणनात्मक विषयों को, आयुर्वेद तथा वास्तु-शिक्षा जैसे व्यावहारिक विषयों को, यहां तक कि व्याकरण और शब्द कोषो तक को पद्य के ही सांचे में ढाला गया है, अत: यह निःसंकोच कहा जा सकता है कि संस्कृत साहित्य की वाग्धारा प्राय पद्य के सरस प्रवाहों में होकर ही अधिकतर प्रवाहित हुई है, और गद्य का गौरव प्रदेश तो गद्य तथ भाग में विविधता लाने के हेतु ही उपयुक्त समझा गया है।

सस्कृत साहित्य की विशालता का अनुमान तो इसी से लगाया जा सकता है कि ससार की किसी भाषा का साहित्य भी इतना विस्तृत तथा विविध विषय समन्वित नहीं है जितना संस्कृत का। ईश्वरीय ज्ञान के रूप मे समादृत चारो वेदों के २०००० से अधिक मन्त्रो के पश्चात् जिन ब्राह्मण ग्रन्थो की रचना हुई, उनमें ऐतरेय ब्राह्मण में ४० अध्याय हैं तथा शतपथ ब्राह्मण मे १०० अध्याय सग्रहीत किये गये हैं। ताण्ड्य महा ब्राह्मण २५ भागों मे समाप्त हुआ है। इसी प्रकार अन्य ब्राह्मणों तथा आरण्यकों के वृहत् विस्तार के अतिरिक्त अनेक उपनिषदों की रचना की गई है जिनकी सख्या १०८ तक पहुचती है। लेकिन इनमें ईश, केन, कठ, प्रश्न, मुण्डक, माण्डूक्य आदि ११ उपनिषदें ऋषि प्रणीत अधिक प्रामाणिक मानी जाती हैं। उपनिषदो का विषय ब्रह्म, आत्मा और ब्रह्माण्ड है। वैदिक साहित्य के पश्चात् जिसमें संहिताए, ब्राह्मणे, आरण्यक, उपनिषदें और दर्शन शास्त्र सम्मिलित किए जाते हैं, सस्कृत साहित्य में इतिहास पुराणों की सृष्टि हुई है, जिनमें गाथा, नाराशंसी, आख्यान इत्यादि सम्मिलित हैं आर्यों में देवताओं और वीरों के आख्यान का बड़ा ही प्रचलन रहा है। वीर काव्यो मे रामायण और महाभारत का प्रमुख स्थान है।

(शेष अगले अक में पढ़े)

# आर्य मार्तण्ड

अजमेर द्वितीय आषाढ़ कृ० २ सं० २०२६ वि० दिनांक १ जुलाई सन् १९६९


सम्पादकीय—

## राष्ट्र को बचाओ !

भारतीय जनता को अराष्ट्रीय विदेशी तत्वों के भीषण षडयन्त्रों का ज्ञान उसी समय हो गया था, जब अंग्रेजों की कूटनीति सफल हुई, भारत का दुखद विभाजन हुआ और साम्प्रदायिकता के प्रोत्साहन से राष्ट्रीयता के विनाश का अभियान आरम्भ हुआ। किन्तु सत्ता एवं स्वार्थ लोलुप नेताओं को तो सत्ता की भूख थी। अतः सब कुछ जानते हुए भी उन्होंने मातृभूमि को अङ्ग भङ्ग, क्षत-विक्षत और अपमानित ही नहीं किया, अपितु अपनी दूषित साम्प्रदायिक मनो-वृत्ति को सत्याथ में चरितार्थ कर राष्ट्र में विभाजन विद्रोह, पृथकतावाद एवं राष्ट्रीयता के विनाश की भयंकर अग्नि प्रज्वलित की जो आज समस्त राष्ट्र को जला रही है।

धर्म निरपेक्षता बनाम धर्महीनता ने तो मानव को दानव बना दिया। आज पारिवारिक, सामाजिक तथा राष्ट्र की सभी परम्पराओं संस्कृति, नैतिकता को तिलाञ्जलि दे दी गई है वासना प्रधान भोगवाद ने मनुष्य को उच्छृंखल, निरंकुश, अनुशासनहीन एवं अमर्यादित बनाकर पतन के गहरे गर्त में ढकेल दिया है। इस धर्म निरपेक्षता के विष ने राष्ट्र की जो दुर्दशा की है, उसके भयंकर राष्ट्रघाती परिणाम आज हमारे सामने हैं, जिन्हें देखकर प्रत्येक सहृदय भारतीय अत्यन्त चिन्तित निराश एवं किंकर्तव्य विमूढ़ है और चारों ओर यही प्रतिध्वनि गूंज रही है कि इस देश का क्या होगा?

आज हमारे राष्ट्र की राष्ट्रीयता, इतिहास, संस्कृति, नैतिकता, सदाचार, धर्म, का महाविनाश जिस द्रुतगति से अराष्ट्रीय विदेशी तत्व अपनी चाटी की तलवार से कर रहे हैं, वह राष्ट्र के सर्वनाश का एक स्पष्ट संकेत है। जिसे देखते और सुनते हुए भी आज हम चक्षु तथा कर्ण हीन हो रहे हैं। आज जनता का जीवन, सम्पत्ति साहित्य, संस्कृति विदेशियों की षडयन्त्र की अग्नि में भस्म हो रहे हैं और एक हम हैं जो निष्क्रिय निर्जीव बनकर घर में आग लगाने वाले अराष्ट्रीय तत्वों को प्रोत्साहन और संरक्षण देकर अपना सर्वस्व स्वाहा कर रहे हैं। सेवा और सहायता के नाम पर ढोंग रचकर यह तत्व भारत के घर घर और जन-जन में अराष्ट्रीयता और अराजकता का प्रचार-प्रसार कर रहे हैं। जिसका वास्तविक रूप और घातक परिणाम आज हमारे सामने हैं। यदि मातृभूमि, पुण्य भूमि भारत का राष्ट्र-पुरुष आज भी सचेत नहीं हुआ तो वह अपनी और राष्ट्र की सत्ता तथा अस्तित्व सदा के लिये खो देगा।

आसाम से कश्मीर और हिमालय से कन्या कुमारी तक कोई ऐसा स्थान नहीं, जहाँ अराजकता विभाजन विद्रोह, तोड़फोड़ और दंगों की आग न भड़की हो। राष्ट्र भक्ति का दम भरने वाली कांग्रेस अपने इतिहास के साथ ही साथ राष्ट्र के गौरव, इतिहास अस्तित्व और संस्कृति को अपने व्यक्तिगत स्वार्थ की रक्षार्थ कम्युनिष्टों तथा अराष्ट्रीय विदेशी तत्वों से देश द्रोहात्मक दूषित गठबन्धन कर नष्ट कर रही है। और इस प्रकार राष्ट्र तथा जनता को भयंकर धोखा देकर उन्हें सर्वनाश की ओर ढकेल दिया है।

केरल, मद्रास, आन्ध्र, बंगाल में अराष्ट्रीय कम्युनिस्टों ने जो भीषण काण्ड किये हैं, वह क्या कम लोम हर्षक हैं। भारत में कांग्रेस की छाती पर 'मल्लापुरम्' का इस्लामी पृथक लीगी गढ़ बन गया और वहाँ सबसे पहले शिव मन्दिर को भस्मीभूत करके उक्त साम्प्रदायिक जिले का उद्घाटन किया गया।

आये दिन इन्हीं षडयन्त्रों के प्रोत्साहन और प्रेरणा से राजनैतिक हत्याओं, साम्प्रदायिक दंगों, तोड़फोड़, आन्दोलनों रेल वायुयान दुर्घटनाओं ने जन जीवन सर्वथा असुरक्षित क्षत-विक्षत, अस्त-व्यस्त और निराश कर दिया है। पारिवारिक, सामाजिक और राष्ट्रीय सभी मर्यादायें और अनुशासन भंग हो चुके हैं। आगजनी, हड़ताल, डकैती, अराजकता, बलात्कार और कत्ल आदि की दैनिक दुर्घटनायें अपनी चरम सीमा पर पहुंच चुकी हैं। आज चरित्र, व्यक्तित्व सम्पन्न और कर्तव्यनिष्ठ कोई भी देश भक्त राष्ट्रीय नेता नहीं दिखाई देता, जिसके पद चिन्हों और आदर्शों पर चलकर जनता अपने आपको सुखी, निरापद और सुरक्षित अनुभव कर सके। प्रशासनिक ढांचा सर्वथा अस्त व्यस्त हो चुका है। ऐसी विकट परिस्थिति में भी यदि हमारे राष्ट्र के कर्णधार कुम्भ कर्णीय निद्रा से नहीं जगे, तो भारत पुनः विदेशियों की दासता की बेड़ियों में जकड़ जाय और सदा के लिये अपना अस्तित्व खो दे, तो कोई आश्चर्य नहीं है।

आज इस भारत-भूमि को जो अपनी मातृभूमि, पुण्यभूमि और पवित्र भूमि मानते हैं, उन्हीं पर देश की संस्कृति, राष्ट्रीयता और सत्ता की सुरक्षा का उत्तरदायित्व है। अतः आज प्रत्येक भारतीय को अराष्ट्रीयता और विघटन पर विजय प्राप्त करने के लिये अपनी सम्पूर्ण शक्ति, अदम्य उत्साह और साहस के साथ कर्त्तव्य क्षेत्र में कूदना है। हम अपने सुदृढ संगठन, एकता, कर्त्तव्य निष्ठा और त्याग तप से ही अराष्ट्रीयता और विदेशियों के षडयन्त्र को चकनाचूर करने में समर्थ हो सकते हैं।

मातृभूमि का प्रत्येक सच्चा सपूत, चाहे वह जैन बौद्ध, सिक्ख, सनातनी, आर्यसमाजी हो, ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य, शूद्र साधु-महन्त, उपदेशक, गुरु-शिष्य पूंजीपति अथवा श्रम जीवी हो, सबको आज मिल कर मातृभूमि की रक्षा के निमित्त त्याग और तप के साथ अपने व्यक्तिगत स्वार्थ और व्यक्तित्व को समर्पित करना होगा। यदि वीर भारतीय एकता के सुदृढ संगठन से राष्ट्र उद्यान के इन बिखरे सुमनों को गूंथ कर त्याग तप एवं श्रद्धा समन्वित राष्ट्र की अर्चना करें, अपने सच्चे ज्ञान, बुद्धि का कर्म क्षेत्र में सदुपयोग करें, तो अब भी देश सुरक्षित सम्पन्न एवम् सुदृढ बन सकता है।

इन अराष्ट्रीय तत्वों ने सातवीं शताब्दी से लेकर आज तक भारत और भारतीय जनता के साथ जो व्यवहार किया है, इतिहास और आज के भयानक दृश्य उसकी साक्षी दे रहे हैं।

अतः आर्य पुरुषो उठो। मातृभूमि की पुकार पर अपने त्याग और तप, व्यक्तित्व, सुख ऐश्वर्य और अपना सर्वस्व बलिदान करने को तत्पर हो जाओ। वेदों के अद्वितीय ईश्वरीय ज्ञान का दिव्य प्रकाश आप के प्रशस्त पथ को प्रकाशित कर रहा है। महर्षि दयानन्द जी का पावन संदेश, चरित्र और प्रेरणा तुम्हें आगे बढ़ने के लिये संबल और प्रोत्साहन प्रदान कर रही है। यदि आर्य-जन वैदिक धर्म की रक्षा और आर्य समाज के सुदृढ संगठन में अपनी सम्पूर्ण शक्ति लगावें, तो निश्चय ही 'कृण्वन्तो-विश्वमार्यम' का उद्घोष सत्य सिद्ध होगा।

अतः प्रत्येक आर्य बन्धु को अब राष्ट्र के मंगल चिंतन और एतदर्थ सशक्त सक्रिय होने की परम आवश्यकता है। तभी देश तथा जनता का हित तथा सुरक्षा सम्भव है अन्यथा नहीं।

### प्रचार कार्य

श्री आर्यभक्त जी वानप्रस्थ—डोडियाना, जोधपुर सरदारपुरा कोजत, पाली पीपाड़, कोसाना, डेगाना डांगावास, मेड़ता आदि।

श्री पं० भगवती प्रसाद जी भ्रमण मसूदा क्षेत्र।

### अजमेर में वेद शिक्षण कक्षा

दिनांक १ जून से २१ जून तक वेद स्वामी मेधारथी सरस्वती एम ए एल टी सामवाचस्पति ने अजमेर की आर्यसमाज केसर गंज में प्रतिदिन २ घन्टा प्रातःकाल 'वेद शिक्षण कक्षा' का संचालन किया। अनेकों ने आकर आशातीत लाभ उठाया। आर्याभिविनय के मन्त्रों को शुद्ध उच्चारण और अद्भुत अर्थों का आभास सभी को अत्यन्त आनन्दजनक रहा। भविष्य में स्वाध्याय का सुभाष्य सिखाया जायगा। जिज्ञासु जन मुझसे सम्पर्क स्थापित करें।

कन्हैयालाल साहित्यालंकार
आर्यनगर अजमेर

# समस्त आर्यसमाजों एवं आर्यों को चेतावनी !

**पाठ्य पुस्तकों में प्रचार किया जा रहा है कि आर्य लोग प्राचीन काल में मांस खाते थे! यह असत्य है, पाठ्यपुस्तकों में से ऐसे गन्दे प्रचार को निकलवाया जाय, आर्यसमाजों एवम् आर्य पुरुषों को इसका घोर विरोध करना चाहिए।**

राजस्थान के शिक्षा विभाग मे स्वीकृत पुस्तको में से जिसमे से एक पुस्तक "सामाजिक ज्ञान प्रदीप" है, जिसको ९ वीं और १० वीं कक्षा में बालको को पढ़ाया जाता है, इस पुस्तक के लेखक हैं श्री नगेन्द्रकुमार सक्सेना, प्रधान अध्यापक उच्चतर माध्यमिक विद्यालय कोटा, एवं नरेशचन्द्र शर्मा, वरिष्ठ अध्यापक राजकीय बहुद्देशीय उ०मा० विद्यालय गुमानपुरा कोटा, इस पुस्तक का प्रकाशन कृष्णा ब्रदस अजमेर से हुआ है, इस पुस्तक के पेज ५५ पर १९ वी पंक्ति मे अंकित है कि "विवाह आदि उत्सवो मे (आर्य लोग) मास भी खाते थे, तथा यज्ञों के समय वे सोमरस का पान करते थे।"

जहा सोमरस के पीने का सम्बन्ध है, वह बात सत्य है, क्यो कि सोमरस एक प्रकार के फल का रस है, जो अक्सर पहाडो पर सघन वनो मे पैदा होता था, जिससे मनुष्य की आयु बढता थी, व कायाकल्प का काम करता था, उस का पान करके ऋषि लोग कई महीनो तक बिना भोजन रह सकते थे, जिस सोमरस का वर्णन आज से ६-७ वर्ष पूर्व झालरापाटन के विद्वान वैद्य श्री कृष्णलाल जी ने किया था। उस समय के कई अंको मे क्रमश: चला था, किन्तु इन लेखको की भावना मे सोमरस शराब को समझ कर लिखा गया प्रतीत होता है। और लेखक स्वय मास भोजी होने चाहिए।

ऐसा शक होता है। इसीलिए उन्होंने ऐसी असत्य बात पाठ्य पुस्तको मे लिखी, जिनका असर हमारी भावी सन्तान पर बहुत बुरा पड़ रहा है।

मनुस्मृति मे मास भक्षण का प्रसग तीसरे अध्याय मे आया है। किन्तु नौवें अध्याय मे मास का खडन मनुस्मृति मे जोरदार शब्दो मे किया गया है। एक ही ग्रन्थ मे दो बात परस्पर विरोधी कैसे हो सकती है। इसका स्पष्टीकरण टीकाकार स्वर्गीय तुलसीराम स्वामी ने किया है और स्पष्ट लिखा है कि बीच मे ऐसा समय देश मे आया था कि 'वाम मार्गियो का भारत मे अधिक बाहुल्य हो गया था, उन्होंने अपने स्वार्थ के लिए धर्म ग्रन्थों में ऐसी गन्दी बातें घुसेड दी थी। अत यह अटल सत्य है कि आर्य लोग प्राचीनकाल में मास भक्षण नहीं करते थे, दस्यु लोग मांस भक्षण करते थे।

अत: ऐसी पुस्तको को पाठ्यक्रमो में से निकलवाना चाहिए और इसके लिए व्यापक आन्दोलन चलाना चाहिए। इस प्रकार से स्वार्थी लोग आर्यों के पवित्र इतिहास को कलंकित करने का प्रयास कर रहे हैं।

## नाम संस्करण

भीलवाडा, दिनाक ६ जून ६९ को प्रोफेसर राघवेन्द्र शरण भटनागर के नवजात पुत्र का नामकरण सस्कार शाहपुरा आर्यसमाज के श्री जगदीश्वर के पौरोहित्य मे सम्पन्न हुआ। इस उत्सव मे उच्चस्थ जिला अधिकारियो के अतिरिक्त काफी सख्या मे इष्ट-मित्रो ने भी भाग लिया। सस्कार के अन्त में श्री जगदीश्वर ने सुन्दर नाम के महत्व तथा वैदिक सस्कार पद्धति पर एक सारगर्भित भाषण दिया। बालक का नाम सोमेन्द्र रखा गया। इस अवसर पर श्री भटनागर ने भीलवाडा व शाहपुरा आर्यसमाज को चार चार रुपये भेंट स्वरूप प्रदान किये।

श्री भटनागर, अजमेर के प्रमुख शिक्षा-शास्त्री तथा आर्यसमाज के कार्यकर्ता स्व श्री जवाहर लाल, रिटायर्ड जेलर के पौत्र हैं।

## सभा मन्त्री का फलोदी-पोकरन तथा जैसलमेर भ्रमण एवं प्रचार

सभा के मन्त्री डा० भवानीलाल जी भारतीय दिनाक ११-६-६९ को फलोदी आये। यहां आर्यसमाज का एक प्लाट है। उसके सम्बन्ध में स्थानीय व्यक्तियो से परामर्श किया। पुन: सभा मन्त्री जी पोकरण और जैसलमेर के सुदूरवर्ती क्षेत्र में प्रचारार्थ पधारे। पोकरण में आर्यसमाज के हितैषी श्री कन्हैयालाल जी माथुर वरिष्ठ अध्यापक हैं जिनके प्रयत्नों से यहां आर्यसमाज की स्थापना की सम्भावना दृढ हो गई है। पाकिस्तानी से लगी सीमा का जिला जैसलमेर वैदिक धर्म के प्रचार के दृष्टि से अब तक उपेक्षित रहा है। सभा मन्त्री जी ने अपने इस दौरे के द्वारा इस क्षेत्र में आर्यसमाज के प्रचार की गतिविधियों को तीव्र करने पर जोर दिया।

—सम्वाददाता

## खुद ही आर्य ना बने

रह गयी हसरत अधूरी, कुछ भी हम से न बने ॥
जग को आर्य क्या बनेंगे, खुद ही आर्य न बने।
मानते थे हीगें हम भी, वेद, मन्त्र गुंजायेंगे।
अपने घर में अपने बच्चे, वेदपाठी ना बने ॥
बढ गयी हैं संस्थाएं, आज आर्यसमाज की।
लेखराम, लाजपत कोई भी उनसे ना बने ॥
नाम के बनते सिपाही, फौज दयानन्द की।
फिक्र हर एक को चौधरी, की कोई भी आर्यवीर ना बने ॥
कब तलक सोचेंगे तूने, वैतनाकी ऐसा तरह ॥
कुमक भर जाए नहीं, कोई भी आर्य ना बने ॥

ब्र. कृ. [illegible]

## जीवन ?

श्री पं० [illegible] जी [illegible], अजमेर

पल पल विकसित होता जावे,
जीवन उसको कहते हैं।
तूफानों से जो टकरावे,
जीवन उसको कहते हैं।
द्वेष-भाव, छल स्वार्थ घृणा से,
जो है दूर, परमस्नेही।
सदा एकता को अपनावे,
जीवन उसको कहते हैं।
स्वस्थ, शांत, शालीन, संयमी,
सागर के सदृश सबको।
जो अपने अनुरूप बनावे,
जीवन उसको कहते हैं।
दुख हो या सुख, हानि-लाभ हो,
जीवन हो, या आवे मरण।
सत्पथ से जो पग न हटावे,
जीवन उसको कहते हैं।
निपट, निशंक अकेला ही जो,
दम्भी, दुष्ट, दैत्य- दल में।
अंगद के सम धाक जमाये,
जीवन उसको कहते हैं।
हथकड़ियां कुपड़ा, बेड़ी क्या ?
फांसी के तख्ते पर भी।
जिसका वजन और बढ़ जावे,
जीवन उसको कहते हैं।
सच्चा सैनिक बन के जो निज,
राष्ट्र भवन की रक्षा हित।
छाती की दीवार बनाये,
जीवन उसको कहते हैं।
आह तलक न "प्रकाश" करे जो,
विष के प्याले स्वय पिये।
औरों को जो अमृत पिलावे,
जीवन उसको कहते हैं।

## आर्यसमाज पद्मपुर (आर.बी. चक नं.२) का चुनाव

श्री नारायणराम जी वर्मा प्रधान, कुंवर रिछपालसिंह जी उपप्रधान, [illegible] जी मन्त्री, प्रेमसिंह जी उपमन्त्री, [illegible] सिंह जी कोषाध्यक्ष, तथा ठा. [illegible] जी आदि अन्तरंग सदस्य चुने गये।

मन्त्री

## शोक प्रस्ताव !

आर्य समाज [illegible] समाज के [illegible] [illegible] जी के आकस्मिक निधन पर शोक प्रकट करती है और ईश्वर से प्रार्थना करती है कि दिवंगत आत्मा को सद्गति एवं शोकातुर परिवार को [illegible] प्रदान करें। [illegible] इस निधन से आर्य समाज को भारी क्षति पहुंची है जिसकी पूर्ति शीघ्र होनी कठिन है। दिनांक २४ जून ६९ को देहान्त हुआ था।

मन्त्री

# रिक्त राजनीति : विरक्त आर्य देश का दुर्भाग्य !

श्री प्रो० उमाकान्तजी उपाध्याय, एम० ए०, कलकत्ता

१९४७ मे स्वतन्त्रता प्राप्ति के साथ पाकिस्तान के निर्माण के कारण देश पर जो सङ्कट पड़ा, उसने अही दिशा में सोचने का अवसर न दिया। जो हो सका, सो हो गया। आर्य समाज तो विशेष रूप से विभाजन का शिकार बना और जिस कार्य की आकांक्षा देश निर्माण मे आर्य नेताओ से की जाती थी, वह पूर्ण न हुई। परिस्थिति ही कुछ ऐसी थी। संस्थाओ की दृष्टि से देखा जाय तो विभाजन का सबसे बड़ा क्रूर प्रहार आर्य समाज पर ही हुआ था। यह भी सच है कि अन्य कोई संस्था, स्यात्, जीवन सङ्कट का सामना करती, पर आर्यसमाज किसी न किसी रूप मे बच गया और अब फिर पुराने घाव भरने लगे हैं। इस परिस्थिति का यह दुष्परिणाम तो हुआ ही कि देश के राजनीतिक दायित्व में आर्य समाज को जो कार्य करना था, वह न कर सका।

आर्यों का एक दल बने—इस समय तक कई लोग यह भी सोचने लगे थे कि आर्यसमाज को राजनीतिक संस्था के रूप में काम नहीं करना चाहिए। इसमे जो भी तर्क थे, किन्तु इतना तो सत्य अवश्य है कि राजनीति से आर्यसमाज अलग नहीं रह सका। चाहे हिन्दी के नाम पर, चाहे हिन्दुत्व के नाम पर, चाहे सभ्यता और संस्कृति तथा देश और जाति के नाम पर, किन्तु राजनीतिक लेख, राजनीतिक व्याख्यान आर्यसमाज के पत्रों में एवं आर्यसमाज की सभाओ मे सदा स्थान पाते रहे हैं। बल्कि बड़ी बड़ी सभाओ की एक विशेष स्थिति यह थी कि मंच पर रोब सदा राजनीतिक वक्ताओ का ही रहता था। यही स्थिति चल रही है। जिस समाज के अधिकारी अब सतर्क नहीं हैं। उनके जलसो पर राजनीतिक व्याख्यान धड़ल्ले से हो रहे हैं। कांग्रेस की आलोचना करने मे सभी प्रायः समान हैं, निर्माणात्मक बात करने मे सभी लगभग-लगभग समान रूप से असमर्थ हैं। बात भी ठीक ही है, असन्तोष व्यक्त करने मे समानता स्वाभाविक है, पर क्या कर्तव्य है कि वैदिक शिक्षा का प्रचार हो विदेशी प्रभाव शिक्षा सभ्यता संस्कृति के क्षेत्र से दूर हो, भ्रष्टाचार समाप्त हो, बेईमानो से छुट्टी मिले। ये सारे काम होने चाहिएं, पर करे कौन ?

जो आर्य राजनीति मे काम कर रहे हैं वे अलग-अलग दलों मे विभक्त पड़े हैं। चोटी के नेता हैं, आर्यसमाज के प्रतिनिष्ठावान् हैं। पर वाम ही किसी और राजनीतिक दल का सदस्य होने के कारण सारे आर्यसमाजी राजनीति मे काम करके भी एकत्र नहीं हो पा रहे हैं। अब तक आर्यसमाजी इकट्ठे अपना राजनीतिक दल नहीं बना सके, जो इसका फल हम भोग चुके हैं और भोगेंगे भी। अब भी यदि हमारी शक्ति अलग-अलग राजनीतिक दलों का समर्थन करती रही तो भविष्य भी हमारे हाथ से निकल जायगा।

कांग्रेस ने स्थान रिक्त किया—इस समय यह स्थिति स्पष्ट दिखाई पड़ रही है कि राजनीति के क्षेत्र में कांग्रेस का पतन हो गया है। जो कुछ कमी रह गई थी वे भर गई हैं, वह अभी शीघ्रता से पूर्ण हो जाने वाली है। आज जो अन्य कार्य भी देश की कांग्रेस के अतिरिक्त शक्तियों की महत्ता से उठ पाने के लिए सक्रिय हो रही हैं। कई बार तो यह भी सरलता से बुद्धि गम्य हो जाता है कि कांग्रेस के केन्द्रीय नेता भी समझने लगे हैं कि १९७२ के आगामी निर्वाचन मे केन्द्र में भी कांग्रेस की सरकार नहीं बनेगी। एतदर्थ अन्य पार्टियो के साथ तालमेलजोड़ का चक्र उच्चतम स्तर पर अभी से परिलक्षित हो रहा है। लगता है कि १९८५ मे अपनी शत वार्षिकी मनाने से पूर्व ही कांग्रेस कार्य क्षेत्र से हटकर निष्प्राण होकर रोग पर्यंकित अवस्था में समाप्ति के दिन गिनने लगेगी।

सच बात तो यह है कि यह १८८५ मे स्थापित कांग्रेस का अन्त नहीं होगा, उसका अन्त तो १९४७ मे स्वतन्त्रता दिवस के साथ ही हो गया। यह मरण तो १९४७ में सत्ताधारी कांग्रेस का हो रहा है। इतने अल्प समय में, २५-३० वर्षों मे ही कांग्रेस जैसी संस्था का अन्त इसके पतन के कारणो पर विचार करने के लिए बाधित करता है। न जवाहरलाल नेहरू की जनप्रियता, न गांधीजी का आशीर्वाद, न लालबहादुर शास्त्री की बहादुरी, कुछ भी तो कांग्रेस का पतन रोकने में समर्थ सिद्ध न हुए।

कांग्रेस के पतन के कारणों पर विचार आवश्यक है। और भविष्य में जो भी दल सत्तारूढ होंगे, उन्हें उन भूलों का ध्यान रखना होगा। कांग्रेस के पतन के अनेक कारण हैं। यहां हम एक दो पर ही विचार करते हैं। एक बड़ा कारण है—कांग्रेस के भीतर दलबन्दी और इसी दलबन्दी पर न्याय और औचित्य का बलिदान।

दूसरा इससे भी बड़ा कारण है—भ्रष्टाचार को प्रश्रय। यदि कांग्रेस भ्रष्टाचार को दबा पाती तो इतना शीघ्र इसका पतन न होता।

तीसरा पतन का कारण है—विदेशी विचार-धारा को पोषण देना। इस पर थोड़ा विचार अपेक्षित है।

श्री नेहरू जी अपने को समाजवादी कहते थे। आरम्भ से ही उन्होंने समाजवादी नारे लगाने आरम्भ कर दिये थे। कहने को तो इन नारो में निर्धन मानव का कल्याण छिपा था। पर वस्तुतः नारे तो नारे ही रह गये और पूंजीवादी चक्कर मे कांग्रेस और स्वयं नेहरूजी भी गोते खाने लगे। पूंजीवाद समाप्त नहीं हुआ—कांग्रेस समाप्त हो गई।

भारत में स्वतन्त्र भारत मे अर्थ नीति बनी, पर विदेशी माडल पर, शिक्षा नीति बनी, वह भी विदेशी माडल पर, राजनीति भी विदेशी माडल पर। राजनीति अर्थ नीति, समाज नीति, शिक्षा, व्यवस्था, शासन, न्याय, सब कुछ सर्वथा विदेशी माडल पर, चूडान्त विदेशी हो गया। ज्ञानदाता विदेशी, परामर्शदाता विदेशी, अर्थदाता विदेशी, योजना विदेशी, सब कुछ विदेशी के मध्य सहस्राब्दियो से अपनी परम्परा को सञ्चित किये भारत की जनता चकरा गई। नेता भी चकराये। रूस अपनी परम्परा का आदर करता है, चीन अपनी परम्परा का गर्व करता हैं। हम अपनी परम्परा का त्याग करने लगे।

फलतः हमारी योजनाओं की जड़ हमारी धरती से जाकर न लेकर विदेशों की धरती के साथ से अनुप्राणित होती रही। कांग्रेस की यह विदेशी भक्ति उनकी जड़ें गहरी न कर सकी और फल-फूल लगने से पहले कांग्रेस सूख गई। अब राजनीति का मंच तीव्रता से रिक्तता की ओर अग्रसर हो रहा है। इस रिक्तता की पूर्ति कौन करे ?

(१) जनसंघ—कहने को जनसंघ की विचार-धारा भारतीय है। आरम्भ में बहुत सारे आर्यजन इसकी ओर आकृष्ट हुए थे। आज भी बहुत से आर्य जन जनसंघ मे हैं। किन्तु भविष्य की आशा इससे भी नहीं है। प्रशासनिक स्वच्छता और प्रबन्ध की दक्षता का अभाव सर्वत्र खटकता है, यह एक बात हुई। इससे भी अधिक है इसका पूंजीवादी रूप और पूंजीपतियो द्वारा इनका समर्थन। एक दिन एक नवयुवक ने जनसंघ के सम्बन्ध में एक कड़ी सुना दी—

> "यह भी पूंजीवादी चक्कर,
> हम क्यों न सोच कर लें टक्कर !
> जब डूब रहा है शत्रु—
> इसे धक्का दें ? या कि बचायें ?"

कुछ राष्ट्रीयता वादी (सम्भवतः संकीर्ण) विचार ही तो पर्याप्त नहीं हैं। दरिद्र मानव के शोषण के विरुद्ध इनकी कोई योजना बनती नहीं लगती। कभी-कभी पूंजीपति विरोधी बातें सुनने में तो आती हैं, किन्तु यह स्वदेशी कम तथा विदेशी विचारों का स्वदेशी संस्करण अधिक होता है। जो भी हो—जनसंघ से एक आशा थी। पिछले साधारण निर्वाचन ने जनसंघ के भविष्य के सम्बन्ध में जो कुछ व्यक्त किया, उससे यह निष्कर्ष निकालना कठिन नहीं कि जनसंघ के दिन लद गये। इसके उत्थान पतन की समालोचना इतिहास करेगा। यद्यपि हाथ पांव मारने की चेष्टाएं चल रही हैं, पर आशा उत्साह जनक नहीं हैं।

(२) कम्यूनिज्म—कांग्रेस ने स्थान रिक्त किया है। उसकी पूर्ति करने के लिए कम्यूनिस्ट आगे बढ़ रहे हैं बड़ी आशा से, बड़ी योजना से ? आप कलकत्ता की दीवारो पर आज कई जगह भिन्न प्रकार के नारे पढ़ सकते हैं।

(१) साम्राज्यवादी भारत ने चीन पर हमला किया और चीन की भूमि हड़प ली, चीन ने भारत पर कभी आक्रमण नहीं किया।

(२) नागालैण्ड मे भारत की साम्राज्यवादी नीति नहीं चलेगी।

(३) नक्सलबाड़ी की कृषि क्रान्ति एकमात्र उपाय है। इत्यादि।

इधर ये नारे, उधर का पुख्ता की चरम-स्थिति। कम्युनिस्ट न भारत की परम्परा को मानते हैं, न प्रजातन्त्र को। पर इन्हें विदेशों से सहायता मिलती है और ये दरिद्र मानव के शोषण के विरुद्ध संघर्षरत रहने की बात करते हैं। ये प्रचण्ड भौतिकवादी वेदशास्त्र, दर्शन उपनिषद सबके विरोधी हैं। आज कम्युनिस्ट विद्यार्थी तुलसी जयन्ती और रवीन्द्र वार्षिकी से पराङ्मुख हो गये हैं। गोर्की की कीर्ति के गीत गाये जा रहे हैं। एक कालेज की पत्रिका पर एक प्राध्यापक ने "सहनाववतु सहनौभुनक्तु··· ······" का उपनिषद् मन्त्र देना चाहा। कम्युनिस्ट विद्यार्थियों ने उसे

(शेष पृष्ठ ७ पर)

# आनन्द मार्ग पर रोक

श्री ओमभक्त जी वानप्रस्थ

कुछ समय से बिहार बंगाल में एक रेलवे के लेखक अनार्यवृत्ति के भावों को लेकर एक राजनैतिक संस्था आनन्द मार्ग नाम रख कर देश के भोले भाले लोगों को ही नहीं, किन्तु ईश्वर के साक्षात् करने के प्रलोभन में आकर पढ़े लिखे और आर्य नाम धारी भी इस जाल में आ फँसे। अपनी शिखा और सूत्र को भी त्याग बैठे। इस दम्भी दल के प्रचारक संन्यासी का बाना पहन कर घर २ में जाकर ईश्वर के ध्यान करने का मार्ग बताने के बहाने घुस जाते हैं और लोगों को अपने जाल में फँसाते हैं। अजमेर के एक कवि महोदय भी भी इन की चालाकी के चक्कर में जा फँसे थे परन्तु इन के दम्भ और पाखण्ड को देख कर अपने ठिकाने आ गये। अभी गत २३ मई को भारत सरकार ने भी इन की गतिविधियों को देख कर अपने सरकारी कर्मचारियों को सावधान किया है कि कोई कर्मचारी इस मार्ग में न जावे। अतः जन-साधारण से हमारा निवेदन है कि इस नास्तिक मार्ग में न फँसे इसी में भला है।

## आबूरोड आर्यसमाज का उत्सव

प्रान्त की आर्य प्रतिनिधि सभा के वार्षिक अधिवेशन के साथ स्थानीय आर्यसमाज का उत्सव भी बहुत थोड़े व्यय में अच्छा सम्पन्न हो गया। तीनों दिनों यज्ञ का कार्य श्री ओमभक्त जी वानप्रस्थ के आचार्यत्व में सम्पन्न हुआ। प्रातः यज्ञ के पश्चात् सभा के सुयोग्य भजनोपदेशक श्री प० भगवती प्रसाद जी अमय के मनोहर भजन और श्री ओमभक्त जी वानप्रस्थ की वेद कथा होती रही, इसी प्रकार रात्रि को श्री डा० भवानी लाल जी भारतीय एम. ए. डी. लिट के और वानप्रस्थ जी के उपदेश होते रहे। महिला आर्य समाज का अधिवेशन श्रीमती बहन सुमित्रा आर्य एम. ए. के प्रधानत्व में सम्पन्न हुआ। समाज के सुयोग्य प्रधान से. जयनारायण जी गोपालिया और उत्साही मंत्री श्री जेठमल जी ने अतिथि सत्कार की उत्तम व्यवस्था की जिसकी प्रशंसा सब ही आगन्तुक भाई बहिन करते थे। वैदिक कन्या पाठशाला की अध्यापिकाओं ने और छात्रों ने योग्य सेवा की। आशा है समाज इसी प्रकार प्रति वर्ष अपना उत्सव मनाया करेगी।

—शान्त शास्त्री

## मेरे जीवन के संस्मरण

श्री पूज्य स्वामी दर्शनानन्दजी सरस्वती को अपनी जीवन लीला समाप्त होने का भान एक वर्ष पूर्व ही हो गया था। उन्होंने सन् १२ में भारत के समस्त जैनी ईसाई और मुसलमानों को घोषणा (चेलेंज) कर दिया था कि अजमेर, आगरा, देहली जिस भी शहर में इच्छा हो मुझ से शास्त्रार्थ कर लें, अब मेरा शरीर समाप्त होने वाला है। अतः शीघ्रता करें, यह सूचना देकर आपने हाथरस के लिये प्रस्थान किया और वहां ही सन् १३ में उनका शरीरान्त होगया। इस लगन और धुन के धनी न आज सन्यासी देखने में आते है और न उपदेशक। सन् १३ में मैंने श्री बा० जियालाल जी के साथ ग्रीष्मावकाश के समय आर्यसमाज अलवर के लिये प्रस्थान किया। उस समय समाज का वार्षिकोत्सव था। उसमें बम्बई से श्री पूज्य स्वामी नित्यानन्दजी तथा श्री स्वामी विश्वेश्वरानंद जी महाराज पधारे थे। उत्सव की शोभा-यात्रा में उक्त दोनों महात्मा एक घोड़ा गाड़ी पर विराजमान थे। इन दोनों तेजस्वी और दिव्य मूर्तियों के दर्शन कर लोग श्रद्धान्वित होते थे। श्री स्वामी नित्यानन्दजी सरस्वती के विद्वत्तापूर्ण उपदेशों का जनता पर भारी प्रभाव रहा। वहाँ से हम दोनों बुलन्द-शहर गये। वहां भी आर्यसमाज का उत्सव हो रहा था। वहां भी सत्संग से लाभ उठाया, कुछ समय वहां ठहर देहली होकर अजमेर आ गये। सन् १४ में आर्य प्रतिनिधि सभा राजस्थान व मालवा के लेखक श्री पं० रघुनाथप्रसादजी शर्मा के भ्राता श्री मुकुन्दलालजी ने सहारनपुर में शारदा कन्या विद्यालय की स्थापना की थी। उन्होंने मुझे और श्री प० यज्ञदत्तजी शास्त्री को विद्यालय के धन संग्रहार्थ बुलवाया था। हम दोनों वहाँ पहुंचे और वहां से लखनऊ आये और हमारा श्रेष्ठ मण्डल अमीनाबाद पार्क में श्री चिमनलालजी की धर्मशाला में ठहरा था। मैं और शास्त्रीजी धन संग्रह का कार्य कर आरहे थे। वह समय सायंकाल था। अमीनाबाद पार्क में एक काषाय वस्त्रधारी सुडौल शरीर खड़ा हुआ उपदेश कर रहा था और उसने अपने भाषण में आर्य हिन्दुओं को ललकारा कि चारों वेदों में ससार की सारी विद्या कैसे आ सकती हैं और वह ईश्वर का आदि ज्ञान कैसे कहा जा सकता है। यह बात सुन कर मेरा मन मचल गया और मैंने शास्त्रीजी से कहा कि यह साधु होकर वेद-विषय में हमें ललकार रहा है। मैं तो इनसे शंका समाधान करूंगा। ये धर्मशाला चले गये और मैंने इनसे कुछ समय तक तत्सम्बन्धी बातचीत की, समय अधिक हो जाने से आगे की बात कल ए० पी० मिशन स्कूल गणेशगज में होने का निश्चय हुआ, मुझे गणेशगज की आर्यसमाज के सुयोग्य प्रधान श्री पं०रासबिहारी तिवारी और कई आर्य भ्राताओं ने कहा कि वह सुप्रसिद्ध ईसाई पादरी ज्वालासिहजी है। आप स्कूल में मत जाना। सायंकाल के समय मैं अपना प्रचार कार्य कर कहीं से आ रहा था और मार्ग में एक स्थान विशेष प्रकाश देखकर मैं चला गया था वहां पादरी साहब उनके साथ अहमदगसी और कुछ मौलवी बैठे देखे और मुझे वहां बैठने को कहा दो तीन हिन्दू भ्राताओं ने मुझे आकर कान में कहा कि मैं यहां से चला जाऊँ परन्तु मैंने उचित नहीं समझा। मैंने सभा में कहाकि मैं एक संस्कृत का छात्र हूं मुझे उर्दू का एक शब्द भी नहीं आता अतः मेरी भाषा संस्कृतनिष्ठ है, उसे ही आप लोग समझ लें। तीन चार बार हमारे प्रश्नोत्तर होते रहे। मैंने कहा जैसे वट वृक्ष का बीज बहुत छोटा है, परन्तु उसमें विशाल वटवृक्ष विराजमान है। इसी प्रकार कारण रूप से वेद भगवान् में भी संसार की विद्या हो सकती है इत्यादि। समय अधिक होने से सभा का कार्य आगे न चल सका। सन् १५ में श्री स्वामी सत्यानन्दजी महाराज, श्री मद्दयानन्द प्रकाश का कार्य करते अजमेर आये और उनके कार्य में मैंने सहयोग किया और अपने लेख आदि बतायें। वे बहुत प्रसन्न हुये और मुझे शाला की नौकरी त्याग कर श्री स्वामी वेदानन्दजी व्यास काशी चले जाने का आदेश दिया और उसे मैंने स्वीकार किया। उक्त सन् में शिक्षा विभाग के अध्यक्ष बड़े हैरीस साहब हमारी शाला शाला के निरीक्षण को पधारने वाले थे, परन्तु उनसे पूर्व श्री रामचन्द्रजी माहेश्वरी शाला में आ धमके और कक्षा के बच्चों के सामने ही मुझे छोटा अध्यापक समझ कर कहने लगे मास्टर तू कहां तक पढा हैं? यह मुझे सहन न हुई और मैंने कहाकि आपको किसने इन्सपेक्टर बनाया है?

### प्रान्त की शिरोमणि सभा का वार्षिक अधिवेशन

मैं सन् ११ से आर्य प्रतिनिधि सभा के वार्षिक अधिवेशनों में प्रथम दर्शकों के रूप में और पीछे प्रतिनिधि के रूप में आता रहा हूं, ये अधिवेशन नितान्त शान्त और गम्भीर वायुमण्डल में चलते रहे। पदों पर कभी खेंचा-तानी या दुराग्रह नहीं होते थे। मुझे भले प्रकार स्मरण है कि एक बार एक नवयुवक किसी समाज से प्रतिनिधि होकर आया। उस वर्ष सभा के प्रधान स्वनामधन्य प्रतिभाशाली श्री प्रो० घीसूलालजी थे, किसी बात पर वह युवक आवश्यकता से अधिक बोलने लगा और थोड़ा सा आवेश में आ गया। श्री प्रधानजी ने उसे बाहर जाने की आज्ञा दी और इसी प्रकार श्री आलिमसिंहजी कोठारी प्रधान थे और एक आर्य भाई हठ और दुराग्रह से अड़ गया, उसे भी उन्होंने सभा से चले जाने का आदेश दिया। इसी प्रकार सभा का वार्षिक अधिवेशन उदयपुर में विकृत वायु मण्डल में हो रहा था, सभा के प्रधान श्रीमान् प० मथुरालालजी शर्मा थे। श्री प० जियालालजी के आपे से बाहर होने के कारण उक्त प्रधानजी ने उस अधिवेशन को ही बन्द कर दिया। आर्य भ्राताओं को अपनी सभा, समाजों में ऐसे दुर्व्यवहार और साधारण सी बात पर उत्तेजित नहीं होना चाहिये। जिससे आर्य शब्द कलंकित हो। मेरा पुत्र देवप्रकाश आर्य मेरे कहने से एक समाज का सभासद् बन गया और साप्ताहिक अधिवेशनों में जाने लगा, परन्तु आत्म-शान्ति के स्थान में कभी २ अधिवेशनों ही में तू तू मैं मैं और खेंचा-तानी हो जाती है। तो इसका नव-आगन्तुक पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ता है और वह व्यक्ति सदैव के लिये आर्यसमाज के क्षेत्र से चला जाता है। ये अड़ंगट वे ही नामधारी आर्य होते हैं जो न तो कभी संध्या हवन और स्वाध्याय करते हैं और सभा के निर्वाचन के समय धक्का-बाजी करने के लिये पधारते हैं। अभी आबूरोड के अधिवेशन को जो स्थानीय या बाहर के दर्शक आये थे, वे कहते सुने कि क्या प्रान्त के आर्यों का यह अधिवेशन आर्य भ्राताओं को अपनी सभासमाजों में धीर वीर गम्भीर होकर बातचीत करना शोभा देता है? यदि इस विकृत मनोवृत्ति में परिवर्तन नहीं किया तो सभा समाजों की गति एक जावगी और इसका नाम शेष रह जायगा। अतः सावधान हो

एक अत्यन्त महत्वपूर्ण योजना को सफल बनाइये

# उपाध्याय पुरस्कार निधि

श्री आचार्य धर्मदेव विद्या मार्तण्ड (वेदमुनि वानप्रस्थ) आनन्द कुटीर, ज्वालापुर

आर्य जगत् के सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि के अनेक वर्षों तक उप-प्रधान और मन्त्री, उत्तर प्रदेशीय आर्य प्रतिनिधि सभा के अनेक वर्षों तक प्रधानादि रूपो में मान्य नेता और लब्ध-प्रतिष्ठ उत्कृष्ट साहित्यकार दिवंगत मान्य श्री प० गंगा प्रसाद जी उपाध्याय का नाम लेते ही मेरी अनेक सुखप्रद स्मृतियां जाग उठती हैं। मैं अपना बड़ा सौभाग्य समझता हूं कि उन जैसे एक अत्यन्त उच्च कोटि के मनीषी अत्यधिक परिश्रमी गुणग्राहक सहृदय निश्छल विद्वान् के साथ मेरा गत लगभग ३० वर्षों से घनिष्ठ सम्पर्क रहा। जिसमे सार्वदेशिक सभा के उनके मान्य मन्त्री और मेरे प्र० मन्त्री के सम्बन्ध मे सहवास के कारण अत्यन्त आत्मीयता आ गई। अपने आर्योदय काव्यम्-शांकर भाष्यालोचन (जिसकी भूमिका उनके सप्रेम अनुरोध पर मैंने लिखी) Vedic culture तथा जीवन चक्र इत्यादि उत्कृष्ट ग्रन्थों में उन्होंने मेरा सप्रेम स्मरण भूमिकादि मे एक सहयोगी परामर्शदाता के रूप में किया है। इस छोटे से लेख को लिखते हुए उनके अनेक बहुमूल्य पत्र मेरे सम्मुख हैं, जिनसे अपने प्रति उनके आत्मीयता, पूर्ण प्रेम और विश्वास को देखकर मैं गद्गद हो जाता हूं। २६-८-६५ के पत्र में उन्होंने यह लिखने की कृपा की "कि आप ही एक आपको छोड़कर कोई ऐसा दिखाई नहीं पड़ता जो मेरे लिये कष्ट कर के परामर्श दें। इसीलिए कष्ट देता रहता हूं। आपके सभी सुझाव समीचीन उपयोगी और कार्य हैं।" अपने २१-१०-६८ के पत्र में स्वर्गीय उपाध्याय जी ने लिखने की कृपा की "ऋक् सूक्त विवृति तैयार है, परन्तु छपेगी तभी जब आप अच्छी तरह देखकर पास कर देंगे, चाहे जितना ही विलम्ब हो जाये।" मैं उनके विषय में अन्य संस्मरण फिर कभी लिखूंगा। अभी तो मैं यह निवेदन करना चाहता हूं कि—आस्तिकवाद, अद्वैतवाद, शांकर-भाष्यालोचन (Vedic culture, Philosophy of Dayanand) जीवात्मा, आर्योदय काव्यम् (२ भाग) आर्यस्मृति इत्यादि उत्तम ग्रन्थो के निर्माण द्वारा आर्य जगत् के धार्मिक सामाजिक सांस्कृतिक साहित्य में अत्यन्त प्रशसनीय श्रीवृद्धि करने वाले मान्य उपाध्याय जी की स्मृति को चिरस्थायी बनाने के लिये आर्य समाज चौक, प्रयाग ने जो गंगा प्रसाद उपाध्याय पुरस्कार निधि की योजना प्रस्तुत की है, मैं उसका प्रबल अनुमोदन करते हुए समस्त धर्म तथा उत्कृष्ट साहित्य प्रेमी नर नारियो से उसमे योगदान की अभ्यर्थना करता हूं। इस योजना में अभी २५०००) की राशि एकत्र करने का निश्चय किया गया है जो स्थिर निधि मे रखा की जायगी। इसके सूद से लगभग १५००) की वर्ष मे आय होगी। इससे १२००) वर्ष के प्रमुख साहित्य निर्माता को पुरस्कार रूप मे भेंट किया जायगा और शेष ३००) अन्य प्रबन्धादि में व्यय होगा।

वैदिक धर्म और संस्कृति के देश-विदेश में प्रचार के लिये मान्य उपाध्याय जी द्वारा निर्मित साहित्य के समान उत्कृष्ट साहित्य की आज सबसे अधिक आवश्यकता है। उसके बिना शिक्षित वर्ग में प्रचार असम्भव है। ऐसे उत्तम साहित्य के सुयोग्य लेखकों को प्रोत्साहित करने के लिये प्रस्तुत इस योजना को सफल बनाने के लिये सभी धर्म और साहित्य प्रेमियों का क्रियात्मक सहयोग अपेक्षित है। भारत और विदेशों में आर्यसमाजों की संख्या ५००० से कम न होगी, ऐसा मेरा अनुमान है। इनमें से अनेक आर्थिक दृष्टि से पर्याप्त सम्पन्न हैं, जिनके लिये इतनी महत्वपूर्ण योजना की सफलता के लिये १००)–२००) देना कुछ भी कठिन नहीं है। धनीमानी सदस्यों और सहायकों द्वारा सैकड़ों रुपये सुगमता से दिलाये जा सकते हैं। यदि इस ओर कुछ भी ध्यान दिया जाए तो अधिक से अधिक मान्य उपाध्याय जी की प्रथम निधन तिथि (२९ अगस्त, १९६९) तक यह २५०००) की राशि सुगमता से इकट्ठी की जा सकती है जिससे इस महत्वपूर्ण साहित्यिक योजना को निकट भविष्य में क्रियात्मक रूप दिया जा सके। मैं आशा करता हूं कि मेरा यह निवेदन व्यर्थ न जायेगा और उपाध्याय जी तथा आर्य धर्म और संस्कृति का प्रत्येक प्रेमी इस निधि के लिये अपना दान इस निधि के संयोजक श्री रामेश्वर जी, संयोजक—उपाध्याय स्मारक निधि—चौक, प्रयाग उत्तर प्रदेश के नाम पर भेजना अपना कर्तव्य समझेगा।

निवेदक
धर्मदेव विद्यामार्तण्ड
आनन्द कुटीर, ज्वालापुर,
उत्तर प्रदेश।

## अरड़का (अजमेर) में श्री शारदा जी

दिनांक १०-६-६९ को अजमेर जिले के अरड़का ग्राम मे अजमेर जिला जनसंघ के अध्यक्ष श्री श्रीकरण जी शारदा की अध्यक्षता में एक सार्वजनिक सभा हुई, जिसमें राष्ट्र की एकता और समृद्धि के लिये जनसंघ को अधिक सशक्त और संगठित बनाने पर बल दिया गया, श्री चिरंजीलाल जी एडवोकेट मन्त्री जिला जनसंघ ने राष्ट्र द्रोहियो से सतर्क रहते हुए अपनी एकता को बनाये रखने पर विशेष जोर दिया। इस अवसर पर जनसंघ समिति का गठन किया गया, जिसके प्रधान ठाकुर भंवरसिंह जी और मन्त्री श्री आत्माराम जी चुने गए।

## शुभ विवाह

आर्यसमाज गुलाब सागर जोधपुर के पुराने सभासद् और भूतपूर्व मन्त्री श्री बालूलाल जी टाक एम० ए० की सुपुत्रियों कु० सविता तथा कु० पुष्पा का शुभ पाणिग्रहण संस्कार दिनांक १-६-६९ को सम्पन्न हुआ। संस्कार का कार्य सभा मन्त्री डा० भवानीलाल जी भारतीय द्वारा सम्पन्न हुआ। इस अवसर पर विभिन्न संस्थाओं को दान आदि से सत्कृत किया गया। —सम्वाददाता

(शेष पृष्ठ ५ का)

हटा दिया। और कुछ कह कर हटा दिया कि कम्युनिस्टो या उग्रपंथियों की विचारधारा से विरोध है। ऐसे सभ्यता संस्कृति भारतीयता विरोधी दल का प्रचार बंगाल और केरल में हो रहा है। दोनो जगह कांग्रेस मच से उतर चुकी है और उसकी जगह ये भारतीयता विरोधी बढ रहे हैं। यदि जनसम्पर्क किया जाय तो इनका उपाय हो सकता है, नहीं तो अवश्य सब कुछ चालू है और साम्राज्यवादी योरुप तो चाहे कुछ नीति अनीति सोचता भी था, किन्तु कम्युनिस्टों की नीति में सब कुछ उचित है।

यद्यपि अभी इनका प्रचार नगण्य जैसा ही है पर एक तो केन्द्रिय कांग्रेस का एक प्रधान दल इनकी सहायता से केन्द्र में १९७२ में सत्तारूढ होने के लिए अभी से प्रयत्नशील है। इसीलिए इनका मन बढ गया है। दूसरे इन्हें विदेशों से बड़ी सहायता मिलती है। और विदेशी शक्तियां इनके लिए यहां सचेष्ट रहती हैं। अतः इसमें तो कोई सन्देह नही कि अभी रिक्त स्थान की पूर्ति करने की इनमे शक्ति नही आई, पर इनके मनसूबे, इन की योजना, इनकी व्यवस्थित कार्य-प्रणाली इत्यादि को आंखों से ओझल भी नहीं किया जा सकता।

(३) सोशलिस्ट, प्रजा सोशलिस्ट पार्टी—ये सब तो आरम्भ से ही कांग्रेस के ही असन्तुष्ट संस्करण हैं। इनसे न कोई आशा है और न इनकी कोई योजना। ये व्यक्तियों के पीछे जीती हैं और मरती हैं।

(४) स्वतन्त्र दल—ये लोग बहुत दूर तक वामपंथी राजनीति के विरोधी और दक्षिणपंथी नीति के समर्थक हैं। पर इनको तो पूंजीपतियों का समर्थक कह कर ही उड़ा दिया जाता है। भारतीय राजनीति में इनका भी कोई स्थान बनता नहीं लगता।

(५) भारतीय क्रान्ति दल—है तो यह भी कांग्रेस का "असन्तुष्ट संस्करण" ही। किन्तु इसके नेता चौधरी चरणसिंह से, कम से कम उत्तर प्रदेश की जनता, भ्रष्टाचार रहित स्वच्छ शासन की आकांक्षा रखती है। भारतीय क्रान्ति दल की रीति-नीति सिद्धान्त अभी सुस्पष्ट नही हुए। नहीं ही इसका अखिल भारतीय रूप। अतः रिक्त स्थान की पूर्ति इससे भी सम्भव नहीं लगती।

आर्यों का कर्तव्य—इस सन्दर्भ में आर्य जनों की उदासीनता घातक सिद्ध होगी। देश चूर-चूर होने जा रहा है। आवश्यकता है सदाचारी स्वच्छ शासन की। आर्य जन इसे कर सकते हैं। अराष्ट्रिय एवं भौतिकतावादी कम्युनिस्टो को सैद्धान्तिक उत्तर भी आर्य समाज दे सकता है। भारतीय विचारधारा से ओत-प्रोत शासन प्रणाली भी दे सकता है। आवश्यकता है कि सभी बिखरे आर्यसमाजी विभिन्न दलो से एकत्र हो जावें। आर्यसमाज के पास नेता भी हैं, सिद्धान्त भी हैं। हमारे सामाजिक और आर्थिक विचारों के सामने पूंजीपति भी पराजित होंगे और कम्युनिस्ट भी पराजित होंगे। कम्युनिस्टो का वैज्ञानिक भौतिकवाद अवैज्ञानिक सिद्ध हो जाएगा। किन्तु आर्यों को अपना राजनीतिक रूप लेकर सामने आना होगा। बहुत विलम्ब आगे से ही हो गया है, यह देश का दुर्भाग्य रहा है। अब यदि आर्य पुनरपि विरक्त रहे तो देश का दुर्भाग्य होगा और महर्षि दयानन्द के सपने भी अपूर्ण रह जायेंगे।

## उपाध्याय-अग्निहोत्री कुल में सम्बन्ध विमा-विज्ञान का विवाह संस्कार

दिनांक १-६-६१ को सामवेद भाष्यकार आचार्य वीरेन्द्र अग्निहोत्री शास्त्री एम.ए. प्रिंसिपल, गवर्नमेंट कामर्स स्कूल बलरामपुर, अन्तरंग सदस्य आ० प्र० सभा के पुत्र श्री विज्ञानशंकर, एम.एस.सी. बी० ई० आनर्स, इन्जीनियर, असिस्टेन्ट मैनेजर आर्डनेंस फैक्टरी कानपुर का विवाह स्वर्गीय श्री गंगाप्रसाद उपाध्याय की पौत्री, श्री विश्वप्रकाशजी अध्यक्ष कला प्रेस, पूर्व प्रधान आ० स० चौक, इलाहाबाद की पुत्री, आयु० विमारानी के साथ सम्पन्न हुआ। श्री प० बुद्धदेव शास्त्री ने संस्कार कराया। बरात की बस मार्ग में दुर्घटनाग्रस्त होते होते परमात्मा की कृपा से सुरक्षित रही। इस अवसर पर आचार्य जी ने अथर्ववेद भाष्य प्रकाशनार्थ एक सहस्र रु० के दान की घोषणा की।

विवाह संस्कार पर दक्षिणादि के अतिरिक्त वर पक्ष की ओर से आ० प्र० सभा को ५१) रु०, विद्या सभा को ३५) रु०, आ. स. चौक को १५) रु०

विद्यानन्द विदेह, सर्व श्री गिरधारीलालजी, प्रकाशवीर शास्त्री गोकुलप्रसाद शास्त्री आदि की ओर से शुभकामनाओं की वर्षा।

(१) स्वामी विद्यानन्द 'विदेह' की शुभ कामना—

अभिवर्द्धताम् पयसाभि राष्ट्रेण वर्द्धताम्।

विद्या और विज्ञान धरा पर
उन्नति के सोपान चढ़े।
करते हुए पान अमृत का,
राष्ट्र बनाये आप बढ़ें।
दोनों अक्षय ऐश्वर्यों से,
प्रभो सदा भरपूर रहें।
आत्म विजय और ब्रह्मतेज से।
पूरित और भरपूर रहें।

(२) प० बिहारीलालजी की शुभ कामना—

वन्यक्षुतद् विमेलतां ऋषीणां ब्रह्मवर्चसाम्।
पतिव्रता-पुरन्ध्रीणां तद् वो भवतु मङ्गलम्॥
उपाध्यायस्य पौत्रीयं पौत्रोऽग्निहोत्रिणः।
वैदिको भवकुलयोः सम्बन्धोऽस्तु सुखावहः॥
विज्ञान शङ्करो भूयात् सपत्नीक सदा सुखी।
जायताम् भवताम् नित्य दम्पती हर्षकरी॥

## पुण्य स्मृति

श्री श्रीकृष्ण नारद राजपुर बनेड़ा निवासी ने "हुलासदेवी वैदिक पुस्तकालय एवं वाचनालय" और "उमा प्याऊ" जिनकी पर्वत शिखर पर स्थित अजमेर द्वार (घाटी दरवाजा) में बस पिछले वर्ष व ग्रामीण पथिकों के लिये वर्षों से अत्यावश्यकता अनुभव की जा रही थी, क्रमशः अपनी विद्या प्रेमी स्व० माता श्रीमती हुलासदेवीजी और धर्मपत्नी स्व० उमादेवी जी की स्मृति में गत वर्ष एक सहस्र रु० की लागत से सर्वजन हितार्थ नव निर्माण करा ज्येष्ठ शु० १२ स० २०२६ वि० दिनांक २८-५-६९ ई० को वैदिक संध्या यज्ञोपरान्त उद्घाटन कराया। धन्यवाद

मन्त्री श्रीकृष्ण नारद

## आर्यसमाज सूर सागर का चुनाव

आर्यसमाज सूर सागर, जोधपुर का [illegible] के बाद वार्षिक निर्वाचन दिनांक [illegible]-६९ रविवार को सायंकाल ८ बजे आदरणीय श्री सन्तोषसिंह जी कछवाहा आर्य सिद्धान्त भूषण की अध्यक्षता में निम्नलिखित पदाधिकारी सर्व सम्मति से निर्वाचित हुए। निर्वाचन अधिवेशन सभी सदस्यों ने अति प्रसन्नता पूर्वक सम्पन्न किया। अध्यक्ष जी ने सबको धन्यवाद दिया।

सर्वश्री सेठ जी श्री शंकरलाल जी प्रधान, श्री मोहनलाल जी कछवाहा उपप्रधान, सेठ श्री जय-नारायण जी गेहलोत उपप्रधान, श्री गंगासिंह आर्य मन्त्री, श्री प्रमोद कुमार जी वर्मा उपमन्त्री, श्री ओमदत्त जी गेहलोत कोषाध्यक्ष, श्री माधोसिंह जी कछवाहा पुस्तकाध्यक्ष।

### अन्तरंग सदस्य

श्री हरिकिशन जी सोलंकी, श्री रामनारायणजी कछवाहा, श्री नेनूसिंहजी गेहलोत, श्री भैरोंसिंह जी कछवाहा, श्री ताराचन्द जी कछवाहा, श्री माणक-लाल जी सोलंकी, श्री गोपालसिंह जी सोलंकी, श्री भालूसिंह जी परिहार।

आर्य प्रतिनिधि सभा, राजस्थान में भेजे जाने वाले सदस्यों के चुनाव का अधिकार साधारण सभा अन्तरंग सभा को देती है। अन्तरंग सभा आवश्यक समय पर सदस्यों का चुनाव करेगी।

### शोक

वैदिक विद्यालय पर्वतपुरा के परम [illegible], तथा ग्राम के सुयोग्य मुखिया श्री शार्दूलसिंह जी पटेल का दिनांक [illegible] हृदय की गति के रुक जाने से [illegible] गया। परमात्मा दिवंगत [illegible] को सद्गति, तथा शोकाकुल परिवार को धैर्य प्रदान करे।

### आवश्यकता है

परोपकारिणी सभा के प्रकाशन विभाग के लिए एक योग्य संस्कृत के विद्वान् की आवश्यकता है, जो संस्कृत व्याकरण, निघण्टु, [illegible] आदि पर पूर्ण अधिकार रखता हो तथा महर्षि कृत ग्रन्थों वेदभाष्य आदि का ज्ञाता और उन पर पूर्ण आस्था रखता हो।

महर्षि कृत ग्रन्थों के शुद्ध प्रकाशन की दृष्टि से आवश्यकतानुसार हस्तलेख का मिलान कर प्रेस कापी तैयार करना तथा तदनुसार मुद्रण हो, इसकी देखरेख रखना होगा। प्रूफ संशोधन का अभ्यास होना आवश्यक होगा।

आवेदन पत्र अपने पूर्व कार्य के अनुभव के विवरण तथा प्रमाण पत्रों की अधिकृत प्रतिलिपि सहित १५ जुलाई तक आना चाहिये। आवेदन पत्र में यह भी लिखें कि न्यूनतम वेतन क्या स्वीकार करेंगे।

श्री श्रीकरण शारदा
मन्त्री
परोपकारिणी सभा, अजमेर

## आर्य मार्तण्ड प्रेमियों से

आर्य मार्तण्ड आर्य प्रतिनिधि राजस्थान का मुख पत्र है। वैदिक धर्म तथा महर्षि दयानन्द का पावन सन्देश जन-जन तक पहुंचाने में यह निरन्तर प्रयत्नशील है। हम चाहते हैं कि आपके हार्दिक सहयोग से इस पत्र को शीघ्र ही साप्ताहिक रूप देकर इसे अधिक आकर्षक, ज्ञानप्रद एवम् जन-प्रिय बनाया जाय, इसमें आपका योगदान परमावश्यक है। आशा है कि आप निम्न प्रकार से सहायता प्रदान कर इस पत्र की उपयोगिता के प्रचार प्रसार में यथेष्ठ सहयोग देकर हमें अवश्य प्रोत्साहित करेंगे।

१०१) के आजीवन सदस्य अधिकाधिक संख्या में बनाकर।

वार्षिक ग्राहक बनाकर, वार्षिक चन्दा भिजवाकर

अधिकाधिक विज्ञापन देकर।

उत्तम रचनायें भेजकर।

तथा अपने उत्तम प्रस्ताव, सुझाव एवम् तन-मन धन से सहयोग प्रदान करें।

सम्पादक—आर्य मार्तण्ड

## एकान्तवास योग साधना

सन्तोषी सन्यासी वानप्रस्थ ब्रह्मचारी महात्माओं? भगवान् को गुरु मानो। भगवान् के भण्डार में भोजन करो। दिन रात योग में लगे, या चाहो तो अपना व्यय करो। आत्मज्ञान योग मार्ग पढ़ो। व्यास भाष्य और ऋषि दयानन्द की व्याख्याओं का मनन करो। इनको अभ्यास में लाओ।

१५ वर्ष से हिमालय में योग साधना करने वाले महात्मा सच्चिदानन्द स्वामी योगी जी महाराज से पूर्ण सहयोग एवं पथ प्रदर्शन प्राप्त करें।

व्यवस्थापक
बाबा अर्जुनदेव
श्री नारायण स्वामी आश्रम
रामगढ़ तल्ला जिला नैनीताल

## !! खुल गया !!

श्री गुरुकुल चित्तौड़गढ़ महर्षि दयानन्द जी की प्रकट की हुई इच्छा के अनुसार चित्तौड़गढ़ दुर्ग से दो मील दूर व चित्तौड़गढ़ रेलवे स्टेशन के निकट पूर्व दिशा में स्थापित किया गया है। यहां पर आर्ष पद्धति से शिक्षा दी जाती है।

गुरुकुल चित्तौड़गढ़ ग्रीष्मावकाश के पश्चात् १ जुलाई को पुनः खुल रहा है, नवीन छात्रों का प्रवेश १ जुलाई से १५ जुलाई तक होगा। इच्छुक जन प्रवेश के लिये आवेदन पत्र गुरुकुल से प्राप्त कर सकते हैं।

मुख्याधिष्ठाता,
श्री गुरुकुल चित्तौड़गढ़,
राजस्थान।

श्री पं० भगवानस्वरूपजी "न्यायभूषण" के प्रबन्ध से वैदिक यन्त्रालय अजमेर में मुद्रित और ओम्प्रकाश वानप्रस्थ, सम्पादक प्रकाशक द्वारा दयानन्द आश्रम, केसरगंज अजमेर से प्रकाशित। अधिष्ठाता—श्रीमान् डा० भवानीलालजी भारतीय एम. ए. पी. एच. डी. शास्त्री

आर्य प्रतिनिधि सभा राजस्थान का मुख-पत्र

पाक्षिक

# आर्य मार्तण्ड

दयानन्द आदित्य से पाकर ज्योति प्रचण्ड । ध्वंस दम्भ पाखण्ड का करे आर्यमार्तण्ड ॥

वर्ष ७७ } वार्षिक मूल्य ५) रुपया | सम्पादक—श्री आत्मभक्त वानप्रस्थ ( रामसहाय शर्मा ) | अजमेर श्रावण कृ० ४ सं. २०२६ वि., दि. १ अगस्त ६६ दयानन्दाब्द १४५ | एक प्रति का २० पै० { अङ्क ११

## ईश्वर-प्रार्थना

ओ३म् मृळा नो रुद्रोत नो मयस्कृधि
क्षयद्वीराय नमसा विधेम ते ।
यच्छं च योश्च मनुरायेजे पिता
तदश्याम तव रुद्र प्रणीतिषु ॥

ऋ० १ ८।५।२।

हे रुद्रों को रुलाने हारे रुद्रेश्वर ! हमको सुखी कर, और हमें अत्यधिक सुख सम्पन्न कर । शत्रुओं के वीरों का क्षय करने वाले अत्यन्त नमस्कारादि से आपकी परिचर्या करने वाले हम लोगों का यथावत् संरक्षण कर । हे रुद्र ! आप हमारे पिता हो, प्रजा के सब रोगों का नाश कर उन्हें सुखी कर । जैसे पिता अपने पुत्र का लालन-पालन करता है, वैसे ही आप पालन करें । आपकी आज्ञा और उत्तम न्याय युक्त नीतियों में प्रवृत्त होके आपके अनुग्रह से वीरों के चक्रवर्ती राज्य को प्राप्त हूँ ।

—महर्षि दयानन्द

## पद्यानुवाद

हे रुद्र हम सुखी हों, अरिवीर नाश कारी ।
भगवन् ! नमो नमस्ते, रक्षा करो हमारी ।
हे पूज्यवर पिता जी ! सुखधाम नीति प्यारी ।
दो राज्य विश्व वैभव, कर श्रेय की तयारी ॥

—डा० सूर्यदेव शर्मा एम. ए डी. लिट्

## दि. २७ अगस्त ६६ को श्रावणी पर्व तथा वेद सप्ताह पूर्ण समारोह से मनायें

प्रान्त की समस्त समाजों तथा आर्य जनता से निवेदन है कि वे दिनांक २१ अगस्त से २७ अगस्त ६६ तक 'वेद सप्ताह' तथा दिनांक २७ अगस्त ६६ को 'श्रावणी पर्व' पूर्ण उत्साह एवं समारोह से सामूहिक रूप से मनायें ।

१ नित्य प्रातः प्रभात फेरी का, सस्वर वेद मन्त्र पाठ सुमधुर भजनों एवं जय घोषों के साथ आयोजन करें ।

२ वेद कथा, प्रवचन एवं भजनोपदेशों की सामूहिक व्यवस्था करें ।

३ सायंकाल नित्य सार्वजनिक सभाओं के द्वारा वैदिक धर्म एवं ऋषि के जीवन के महत्व पर प्रकाश डाला जाय ।

४ वाद-विवाद, खेल कूद निबन्ध, कविता प्रतियोगिताओं तथा वैदिक धर्म के ज्ञान सम्बन्धी परीक्षाओं का आयोजन करें ।

५. प्रीतिभोज तथा शोभा यात्रा के द्वारा जन-जागरण की ओर प्रयास करें ।

६ आर्यवीर दल का विशेष दीक्षा शिविर तथा सामूहिक यज्ञोपवीत-दान-यज्ञ का आयोजन करें । उत्तम वेद पाठी विद्यार्थी तथा प्रतियोगिता में विजेता प्रत्याशियों को सम्मानित एवं पुरस्कृत करें ।

७ दिनांक २७ अगस्त ६६ को विशेष आकर्षण कार्यक्रम आयोजित करें । यथा यज्ञ सामूहिक शुद्धि, ध्वजारोहण, यज्ञोपवीत परिवर्तन सार्वजनिक सभा वेद पाठ आदि ।

इस अवसर पर प्रत्येक सभासद ऋषि ऋण मध्ये न्यूनतम ५० पैसे तथा अधिकाधिक श्रद्धानुसार धन राशि एकत्रित कर सभा कार्यालय को भेजने की कृपा करें । —सभा मन्त्री

### ५००) का सात्विक दान ।

आर्य प्रतिनिधि सभा राजस्थान द्वारा हो रहे अराष्ट्रीय ईसाई प्रचार निरोध कार्य हेतु पीलवा (मारवाड़) के एक उदार आर्य सज्जन ने ५००) कुशलगढ़ केन्द्र की सहायतार्थ ५०) मासिक के हिसाब से सभा को गुप्त दान के रूप में प्रदान करने की कृपा की है । हार्दिक धन्यवाद । —मन्त्री

### सुयोग्य उपदेशकों तथा आर्य प्रचारकों की आवश्यकता

राजस्थान प्रान्त में वैदिक धर्म प्रचारार्थ योग्य, अनुभवी विद्वान् प्रचारकों तथा संगीतज्ञ भजनोपदेशकों की शीघ्र आवश्यकता है, जो संस्कार आदि कराने में भी निपुण हो । दक्षिणा २००) से ४००) तक मासिक, योग्यता अनुभव तथा कार्य क्षमता के आधार पर । आवेदन पत्र शीघ्र आमन्त्रित किए जाते हैं ।

भवानीलाल भारतीय
एम ए पी एच डी
मन्त्री
आर्य प्रतिनिधि सभा राजस्थान, अजमेर

### आवश्यकता

एक विद्वान्, सन्यासी अथवा वानप्रस्थ की जो वैदिक धर्म तथा आर्य संस्कृति के प्रचार प्रसार में अभिरुचि रखते हों, ग्रामों में घूम घूमकर अराष्ट्रीय प्रचार का निरोध करने की क्षमता रखते हों, तथा छात्रावास की व्यवस्था के उत्तरदायित्व को सम्भाल सकते हो, शीघ्र आवश्यकता है ।

भोजन वस्त्रादि छात्रावास से दिया जा सकेगा ।

श्री श्यामलाल जी आर्य
प्रधान आर्यसमाज
थांदला जिला झाबुआ (म प्र)

# संस्कृत-साहित्य परिचय

श्री डा० सूर्यदेव जी शर्मा एम ए. डी. लिट.

(गतांक से आगे)

इसी काल मे हलायुध, क्षेमेन्द्र मख, रत्नाकर, जयरथ, लोलिम्बराज महाकवि माघ भारवि आदि अनेक कवियो ने अपनी अमर वाणी से सस्कृत साहित्य को विभूषित किया है। श्री हर्ष ने "नैषध चरित्र" जैसे महाकाव्य की रचना की। बिल्हण की 'चौर पञ्चाशिका" तथा कल्हण की "राजतरगिणी" तो जगत् प्रसिद्ध है।

सस्कृत काव्य साहित्य मे जयदेव का नाम सदा अमर रहेगा। वह सस्कृत साहित्य गगन का सुन्दर सुधाकर है। उसका सा मधुर कवि सस्कृत मे दूसरा नही उत्पन्न हुआ। ध्वनि माधुर्य और पदलालित्य मे जयदेव स्वय कालिदास मे बढ गया है। सस्कृत काव्य भवन मे जयदेव, पडितराज जगन्नाथ को छोडकर अन्तिम सोपान है उत्तर-कालीन कवियो की शृङ्खला मे सबसे बडा है। जब भारत के सिहद्वार पर मुसलमान विजेताओ के भयकर आघात हो रहे थे तब जयदेव अपनी मधुर भारती से कृष्ण का स्तवन कर रहा था और सस्कृत साहित्य मे अद्वितीय अपने "गीत गोविन्द' का प्रणयन कर रहा था।

सस्कृत मे नाटक साहित्य की भी भारी प्रचुरता है। प्राचीन सस्कृत नाटको की खोज करने वाले श्री ह्वीलर के अनुमानानुसार सस्कृत में ५०० से अधिक नाटक लिखे गये है। नाटककारो के शिरोमणि तो महाकवि कालिदास हैं ही। उनके पूर्व भी प्रसिद्ध नाटककार भास ने १३ नाटको की रचना की। जिनमे स्वप्नवासवदत्ता' सर्व प्रसिद्ध है। शूद्रक न अपने न टक 'मृच्छकटिक' की रचना भी उसी के आधार पर की थी। कालिदास के नाटको का वर्णन हो चुका है। उसके पश्चात विशाखदत्त का 'मुद्राराक्षस' राजनीति का एक अद्भुत नाटक है। राजनीतिक षडयन्त्रो और दाव पचो का जितना अनोखा यथार्थ और पेचीदा चित्रण इसमे है उतना ससार की और किसी कृति मे नही। कन्नौज क राजा हर्षवर्धन ने भी ३ नाटको की रचना की। भवभूति सस्कृत साहित्य के सर्वोत्तम नाटककारो मे से एक है। कालिदास के बाद उन्ही का स्थान है और वर्णन तथा शैली के गाम्भीर्य मे तो वह कालिदास से भी ऊचे उठ जाते हैं। उनके ३ नाटको मे "उत्तररामचरित' उनकी सूक्ष्म लेखनी से प्रसून सर्वोत्तम रत्न है। करुण रस से ओत प्रोत इस नाटक के जोड का अन्य कोई नाटक सस्कृत मे नही है। महेन्द्र विक्रम, भट्ट-नारायण, मुरारी, क्षमेश्वर, दामोदर, कृष्ण मिश्र आदि अनेक उत्तम नाटककार सस्कृत नाटय मणि-माला के देदीप्यमान रत्न है जिनमे से कई तो ससार के सर्वोत्तम माने जाने वाले नाटककार शेक्सपीयर से भी कई अशो में आगे बढे हुये हैं।

सस्कृत पद्य के साथ साथ सस्कृत गद्य का भी सम्यक् विकास हुआ है। वेद और ब्राह्मण ग्रन्थो के पश्चात सूत्र साहित्य गद्य मे ही लिखा गया। उपनिषदो का अधिकाश भाग भी गद्य में है। सहस्रो वर्ष पूर्व लिखित प्रशस्तियाँ भी गद्य में ही उपलब्ध होती हैं। मध्यकालीन गद्य लेखको मे तीन नाम विशेष रूप से हमारे सम्मुख आते हैं (१) सुबन्धु ने 'वासवदत्ता' ग्रन्थ में राज-कुमार कन्दर्पकेतु की अति सुन्दर कथा लिखी है जिसमे सामासिक, अलंकारमयी, शब्दावली का प्रयोग किया गया है 'सुबन्धु की शैली गौडीय है (२) बाण सस्कृत गद्य साहित्य मे विशेष सम्मानित हैं। पडित लोग "बाणोच्छिष्ट जगत् सर्वम्" (अर्थात् सब ससार बाण का जूठा है) तक कह देते हैं। बाण मे सूक्ष्म निरीक्षण, प्रतिभा पाण्डित्य सब कुछ विद्यमान है। बाण रचित 'कादम्बरी' सस्कृत गद्य साहित्य का एक अद्भुत ग्रन्थ माना जाता है। (३) महाकवि दण्डी ने भी सुबन्धु और बाण के समान ही सामासिक अलकारपूर्ण गौडीय शैली मे ही 'दशकुमार चरित' की रचना की है। दण्डी के 'काव्य दर्श" मे—"ओज समासभूयस्त्व-मेतद् गद्यस्य जीवितम' गद्य का जीवन ही ओज और समासबहुलता को माना है और फिर दण्डी का पदलालित्य तो ( 'दडिन पदलालित्य" ) प्रसिद्ध ही हैं।

सस्कृत के सरल साहित्य में राजनीति का शिक्षक "पचतत्र" तथा उसी का समकक्ष "हितो-पदेश" ग्रन्थ प्रसिद्ध हैं। जिनके अनुवाद ससार की अनेक भाषाओ मे हो चुके हैं। पशु पक्षियो की लघु कथाओ और उपकथाओं का आश्रय लेकर गद्यपद्य मय सरल सस्कृत में राजनीति के सिद्धान्तो का सुन्दर विवेचन इन ग्रन्थो मे मिलता है। इनके अतिरिक्त 'शुक्रनीति" "विदुरनीति" "चाणक्य-नीति' आदि अनेक नीति ग्रन्थ सरल भाषा मे लोगो को सदुपदेश देने के लिये सस्कृत साहित्य मे भरे पडे हैं उनकी भाषा इतनी सरल है कि सस्कृत व्याकरण से अनभिज्ञ साधारण हिन्दी पाठक भी उन श्लोको को समझ सकता है। उदाहरणार्थ, चाणक्य-नीति के श्लोक देखिये —

(१) माता शत्रु पिता वैरी, येन बालो न पाठित।
न शोभते सभामध्ये, हस मध्ये बको यथा।

(२) विद्वत्व च नृपत्व च, नैव तुल्य कदाचन।
स्वदेशे पूज्यते राजा, विद्वान् सर्वत्र पूज्यते ॥

(३) शैले शैलेन माणिक्य मौक्तिक न गजे गजे।
साधवो न हि सर्वत्र, चन्दन न वने वने।

इस प्रकार सस्कृत साहित्य एक अपार और अथाह सागर है जिसमें अनेको ग्रन्थरत्न विविध विषय आभा समन्वित सर्वत्र बिखरे पडे हैं, लेकिन खोज कर्ताओ की कमी से उनमें से अनेक अभी ससार के सम्मुख भी नहीं आ सके हैं। इन रत्नों की प्राप्ति के लिये तो देव दानवो सहित समस्त मानव जाति के द्वारा इस साहित्य सिन्धु का मनो-योग से मन्थन करना पडेगा, तभी ये रत्न समुपलब्ध हो सकेंगे। अनन्तकाल से सस्कृत वाङ्मय की विमल भागीरथी युग युगो के उर्वरक्षेत्र में प्रबल-वेग से प्रवाहित होती हुई तथा अनेकानेक जनपदों को परिप्लावित करती हुई, मुस्लिम कालीन मरुस्थली में कुछ विलुप्तसी हो गई, तथापि उसकी क्षीण धारा अब भी यत्र तत्र झलकती हुई मन्थर गति से प्रवाहित हो रही है। सस्कृत के पाश्चात्य विद्वानों के शिरोमणि प्रोफेसर मोक्षमूलर ने इसी-लिये महती आशा से संस्कृत के अमरत्व की कामना करते हुये स्वरचित निम्नलिखित श्लोक द्वारा सस्कृत का सुन्दर स्तवन किया है—

"यावद गगा च गोदा च, यावद् विन्ध्यहिमालयौ।
तावद् हि संस्कृत भाषा, भूतले प्रचरिष्यति ॥"

अर्थात् जब तक गगा और गोदावरी नदियाँ हैं और जब तक विन्ध्याचल और पर्वतराज हिमालय विद्यमान हैं, तब तक सस्कृत भाषा भूतल पर अमर रहेगी। —समाप्त

# संसार लिये फिरता हूँ

"वियोगी" अजमेर

ससार लिये फिरता हू।
इस नन्हें से नश्वर तन मे
ससार लिये फिरता हू॥
भावों के टूटे बन्ध,
बिखर मे लगे सभी विहंग,
नियन्त्रण हीन हुऐ कुछ द्वन्द,
विलय हो गये मधुर स्वर छन्द,
हुई खडित जिसकी झनकार
उसी के तार लिये फिरता हू॥
ससार लिये फिरता हू।
वह स्वर्णिम सुन्दर भोर गया,
आकर्षित कर चित चोर गया,
तन्मयता मन की हुई लोप,
मधुरस आनन्द विभोर गया,
उस प्रतिभा का इन नैनों मे,
शृङ्गार लिये फिरता हू॥
ससार लिये फिरता हू॥
निष्ठुर हो कर घन श्याम गये,
वे छल कर अन्तर धाम गये,
हो गये शुष्क सब स्नेह स्रोत,
सरिता सागर के नाम गये,
जल हीन मीन व्याकुल उसको,
रस धार लिये फिरता हू॥
ससार लिये फिरता हू।
निशि अचल मे जो हुआ भ्रमित,
जर जर तन जिसका व्यथा ग्रसित,
सौन्दर्य रूप मुस्कान हीन,
बिखरी श्यामलता अधर तृषित,
उस थकित पथिक की मैं उर में,
मनुहार लिये फिरता हू॥
ससार लिये फिरता हूं॥
जग मे जिसको दुत्कार मिला,
विपदाओं का उपहार मिला,
करने को पार शेष जीवन,
क्रन्दन स्वर का आधार मिला,
मैं बना "वियोगी" उस जग का,
झनकार लिये फिरता हू॥
संसार लिये फिरता हूं।

# आर्य मार्तण्ड

अजमेर भाद्रपद कृ० ४ सं० २०२६ वि० दिनांक १ अगस्त सन् १९६९

## चन्द्रलोक पर विजय !

विज्ञान ने कितनी आशातीत प्रगति की है। यह देखकर मानव मस्तिष्क और बुद्धि कभी २ तो अत्यन्त आश्चर्य चकित हो उठती है। अभी २ विगत दिनांक २१ जुलाई को अमरीका के तीन अन्तरिक्ष यात्रियों ने जो अपूर्व साहस का कार्य कर चन्द्र लोक की यात्रा सानन्द समाप्त की है, उससे समस्त विश्व विस्मित हो उठा है। अब तक की चन्द्रमा के सम्बन्ध में कल्पनायें, लोक कथायें क्या वास्तव में किवदंती मात्र थी, यह विचार कर प्रत्येक मननशील मस्तिष्क आज उत्सुकता की ऊहापोह में आन्दोलित हो रहा है। अमरीका के आर्मस्ट्रांग, कोलिंस और एल्ड्रिन ने जो महान साहस का कार्य करके विश्व को चमत्कृत कर दिया है, वह विश्व के इतिहास में एक आश्चर्यजनक घटना है। इनमें तीनों ही यात्रियों ने लगभग ढाई लाख मील दूरी की यात्रा अपने जीवन की बाजी लगाकर की। चन्द्र धरातल की वायु पत्थर तथा मिट्टी को साथ लाये और विश्व के वैज्ञानिक इतिहास में एक नवीन अध्याय प्रारम्भ कर दिया है, जो मानव की भौतिक उन्नति की पराकाष्ठा है।

अब शीघ्र ही इस पृथ्वी तल के लोग चन्द्र लोक में जाकर निवास करेंगे और वहां एक नया संसार बनाकर शासन करेंगे, यही नहीं लोग चन्द्र लोक पर्यटन के लिये जायेंगे।

जहां तक भौतिक उन्नति का प्रश्न है। इसे कभी अस्वीकार नहीं किया जा सकता कि मनुष्य ने कथित देव लोक पर विजय प्राप्त कर मानव विजय का झण्डा गाड़ दिया और साथ ही अब नित्य नयी २ एतदर्थ योजनायें बनने लगी हैं।

परन्तु आज प्रश्न यह है कि इतनी भौतिक उन्नति होते हुए भी क्या मानव सुखी है? क्या वह शांतिमय जीवन बिता रहा है। क्या मानवता सुरक्षित और अक्षुण्ण है? इन प्रश्नों का उत्तर आज भी नकारात्मक है और मानव मानव के रक्त का प्यासा है। वह अपने अस्तित्व और स्वार्थपूर्ति के लिये मानवता के अस्तित्व को भी नष्ट करने में निरन्तर तत्पर है। तो फिर चन्द्र लोक में पहुंचकर भी क्या मानव वही दुर्दशा पूर्ण दृश्य उपस्थित करेगा जो आज विश्व में दिखाई देता है। मैं समझता हूं, इस भौतिक उन्नति से मनुष्य चन्द्र मंगल लोक में भले ही पहुंच जाय किन्तु वह मानव लोक में भी रहने के योग्य नहीं रहा। भारत की तो और ही विचित्र दशा है। एक ओर विश्व के अन्य देशों के नवयुवक नित्य नवीन शोध आविष्कार और अन्वेषण में तत्पर हैं। वहां भारतीय नवयुवक ने भी कम प्रगति नहीं की? वह रेल की पटरियां उखाड़ कर अपनी ही धन-जन सम्पत्ति और देश का संहार कर रहा है। बड़े २ उद्योग संस्थानो में आग लगाकर विश्व में अपनी प्रगति का उदाहरण प्रस्तुत कर रहा है। विदेशी अराष्ट्रीय तत्वों की प्रेरणा, और अर्थ प्राप्त कर विघटन, विध्वंस और राष्ट्र के विनाश की योजनायें बना रहा है। ऐसा क्यों?

इसका उत्तर है शासन सत्ता की अयोग्यता और अकर्मण्यता; जिसने विदेशी शिक्षा की भट्टी में भारतीय नवयुवक के मस्तिष्क को झोंक कर उसे सर्वथा नष्ट कर दिया है।

आज भारत के नवयुवक की शक्ति का सदुपयोग यदि शासन सत्ता करे, तो यह देश अन्य देशों से और आगे प्रगति कर सकता है। किन्तु यहां इस बात की कोई चिंता नहीं, यहां कुर्सी विजय के लिये देश का सर्व स्वाहा किया जा रहा है और भारत जिस पतन के गहरे गर्त में जा गिरा है, निकट भविष्य में उसके प्रस्थान की आशा नहीं?

अत: भारत के वीरों! विश्व के बदलते हुये इतिहास से शिक्षा लो और अब भी सचेत होकर अपनी राष्ट्रीय एकता, समृद्धि और साहस के बल पर वैदिक पथ के अनुयायी बनकर मानव उन्नति के मूल मन्त्र से विश्व को परिचित करा दो। यदि तुमने राष्ट्र कल्याण के लिये अपने अनियमित मन मस्तिष्क पर विजय प्राप्त कर ली, तो यह तुम्हारी विजय विश्व की मंगल कारिणी सर्वश्रेष्ठ विजय होगी, और विश्व तुम्हारा अनुकरण करेगा।

विश्व का समस्त विज्ञान वेदों में भरा हुआ है। इसमें आध्यात्मिक एव भौतिक सभी प्रकार की उन्नति के अनन्त स्रोत हैं। अत: विश्व को वेदों के सर्वोत्कृष्ट ज्ञान से परिचित कराकर मानव की सर्वांगीण प्रगति का पथ प्रशस्त कर दो। इसी से मानव लोक और चन्द्र लोक में सुख शांति व्याप्त होगी। अन्यथा कितनी भौतिक उन्नति होने पर भी हम सुखी नहीं रह सकते। देश के नवयुवकों को सत्य दिशा दर्शन में वैदिक धर्म और आर्य संस्कृति ही सक्षम और समर्थ है। उसी के द्वारा हमें प्रगति पथ पर बढ़ना है। यही मानवता की रक्षा का सत्य शिव एवं सुन्दर पथ है। इसी पथ पर चलकर हम सभी लोकों पर विजय प्राप्त कर सकते हैं। और तभी विश्व में सुख शांति का साम्राज्य होकर आर्यों का स्वप्न साकार होगा।

## आर्य प्रतिनिधि सभा उत्तर प्रदेश के प्रधान मन्त्री पण्डित प्रेमचन्द्र शर्मा एम एल. ए. का आर्य जगत के नाम सन्देश !

### काशी शास्त्रार्थ शताब्दी के लिए एक लाख रुपये की अपील

आर्य जगत को यह भली भांति विदित है कि विरजानन्द दीक्षा शताब्दी मथुरा आदि कई महत्वपूर्ण कार्य अखिल भारतीय और सार्वदेशिक स्तर पर आर्य प्रतिनिधि सभा उत्तरप्रदेश ने अपने इतिहास में किये हैं। उसी प्रकार यह शास्त्रार्थ शताब्दी महोत्सव सार्वदेशिक स्तर पर उत्तर प्रदेश काशी नगरी में १६ नवम्बर से २१ नवम्बर तक मनाने की घोषणा अभी से की जाती है, जिससे विदेश के आर्य भाई भी इसमें भाग लेने के लिए आने की तैयारी कर सकें।

इस समारोह के कई विशिष्ट भाग हैं जैसे:—

१—अन्तर्राष्ट्रीय सर्वधर्म विद्वत्सम्मेलन।

२— समस्त भारत मे शास्त्रार्थ दिग्विजय यात्रा।

३—प्राचीन कोई यज्ञ।

४—सार्वदेशिक महिला सम्मेलन।

५—विशिष्ट प्रकार की शोभा यात्रा काशी मे।

६—शोध पत्र और सम्मति पत्र तथा अन्तर्राष्ट्रीय सर्वधर्म विद्वत्सम्मेलन निबन्ध प्रकाशन।

इत्यादि कार्यों के संपादन में एक लाख रुपये का व्यय होना साधारण बात है। इस समय भारतवर्ष में दस आर्य प्रतिनिधि सभाएं हैं। प्रत्येक सभा और उसकी आर्य समाजें और क्षेत्र से दस दस हजार की राशि संग्रह करके भेजें, तो यह व्यय पूरा हो सकता है।

विदेश के विश्वविद्यालयों से जो स्कालर पधारेंगे, उन पर भी व्यय स्वागत, प्रबन्ध आदि पर होगा। अतः भारत से बाहर देशों में स्थित आर्य जगत का कर्त्तव्य है कि उस व्यय की पूर्ति वे देश मे करने की कृपा करें। आर्य जगत का कर्तव्य है कि इन चार मास म सब कार्यों को छोड़कर सामूहिक शक्ति से इस कार्य में जुट जावें। इस समारोह की सफलता से आर्यसमाज विद्या और सिद्धान्त के संसार में शिरोमणि बन जावेगा।

शताब्दी समारोह के प्रचार मंत्री श्री आचार्य विश्वश्रवाजी व्यास एम० ए० वेदाचार्य इस समय बनारस संस्कृत यूनिवर्सिटी की एक्जीक्यूटिव कौंसिल के मेम्बर सरकार की ओर से हैं, इस कार्य के लिए यात्रा करेंगे। उन्हें समस्त आर्य जगत का सहयोग धन संग्रह तथा योजना के कार्यों में करना कर्त्तव्य है। आचार्यजी का सब जगह पहुंचना कठिन है, अतः अन्य भाई भी यू० पी० सभा से सम्पर्क स्थापित करें और सीधा भी धन लखनऊ नीचे लिखे नाम पते पर भेजा जा सकता है। यह धन क्रास चैक अथवा बैंक ड्राफ्ट के रूप में भेजना चाहिये। जिस पर लिखा हो, काशी शास्त्रार्थ शताब्दि समिति, लखनऊ।

नोट—इसका हिसाब बैंक में पृथक रक्खा जावेगा और नोट भी प्रकाशित किये जावेंगे।

प्रेमचन्द्र शर्मा
मंत्री

महर्षि दयानन्द की कसौटी पर—

# भारत का इतिहास

लेखक—श्री पं. जगत्कुमार जी शास्त्री "साधु सोमतीर्थ" देहली

चारवाक, बौद्ध और जैन भारत के इन तीन प्रसिद्ध नास्तिक मतों की विस्तृत समालोचना महर्षि दयानन्द जी ने सत्यार्थ-प्रकाश के बारहवें समुल्लास में की है; परन्तु इन नास्तिक मतों के आरम्भ, उत्थान और पतन का उल्लेख उन्होंने सत्यार्थ-प्रकाश के ग्यारहवें समुल्लास में किया है। महाभारत के महा विनाशक युद्ध के पश्चात् जब भारत में वाम मार्ग का प्रसार बढ़ा, यज्ञों में पशुवध होने लगा, पौराणिक ढकोसले बढ़े और वेदों के नाम पर नाना प्रकार के कुपन्थ एवं भ्रष्टाचार फैले, तब नास्तिक मतों का प्रादुर्भाव हुआ। ऐसा प्रतिपादन महर्षि दयानन्द जी ने किया है। लिखते हैं—

"घोड़े, गाय आदि पशु तथा मनुष्य मार के होम करना कहीं नहीं लिखा। केवल वाम मार्गियों के ग्रन्थों में ऐसा अनर्थ लिखा है। किन्तु यह भी बात वाममार्गियों ने चलाई है। और जहां-जहां लेख है, वहां-वहां वाम मार्गियों ने प्रक्षेप किया है। देखो! राजा न्याय धर्म से प्रजा का पालन करे, विद्यादि का दान द्वारा यजमान और अग्नि में घी आदि का होम करना अश्वमेध; अन्न, इन्द्रियां, किरण, पृथिवी आदि का पवित्र करना गोमेध; जब मनुष्य मर जाय, तब उस के शरीर का विधिपूर्वक दाह करना नरमेध कहाता है।"

आगे लिखते हैं—

"प्रश्न—यज्ञकर्त्ता कहते हैं कि यज्ञ करने से यजमान और पशु स्वर्गगामी होते हैं, तथा होम करके फिर पशु को जीता करते थे, यह बात सच्ची है, वा नहीं?

उत्तर—नहीं, जो स्वर्ग को जाते, तो ऐसी बात कहने वाले को मार के, होम कर स्वर्ग में पहुंचाना चाहिये। वा उस के प्रिय माता, पिता, स्त्री और पुत्र आदि का मार होम कर, स्वर्ग में क्यों नहीं पहुंचाते? वा वेदी में से पुनः क्यों नहीं जिला लेते हैं?

प्रश्न—जब यज्ञ करते हैं, तब वेदों के मन्त्र पढ़ते हैं। जो वेदों में न होता, तो कहां से पढ़ते?

उत्तर—मन्त्र किसी को कहीं पढ़ने से नहीं रोकता, क्योंकि वह शब्द है। परन्तु उन का अर्थ ऐसा नहीं है कि पशु को मार के होम करना।"

आगे फिर लिखते हैं—

"परन्तु इन सत्य अर्थों को वे मूढ़ नहीं समझते थे। क्योंकि जो स्वार्थ बुद्धि होते हैं, वे केवल अपने स्वार्थ करने के दूसरा कुछ भी नहीं जानते, मानते। जब इन पोपों का ऐसा अनाचार देखा, और दूसरा मरे का तर्पण श्राद्धादि करने को देख कर, एक महा भयंकर वेदादि शास्त्रों का निन्दक, बौद्ध वा जैन-मत प्रचलित हुआ है।"

एक घटना का उल्लेख करते हैं—

"सुनते हैं कि एक इसी देश में गोरखपुर का राजा था। उससे पोपों ने यज्ञ कराया। उसकी प्रिय राणी का समागम घोड़े के साथ कराने से, उस के मर जाने पर, पश्चात् वैराग्यवान् होकर, अपने पुत्र को राज्य दे, साधु हो, पोपों की पोल निकालने लगा। इसी की शाखा रूप चारवाक और आभाणक मत भी हुआ था।"

आगे लिखते हैं—

"जैनी वेद का अर्थ न जानकर, बाहर की पोप-लीला भ्रान्ति से वेद पर मान कर वेदों की भी निन्दा करने लगे। उसके पठन-पाठन, यज्ञोपवीतादि और ब्रह्मचर्यादि नियमों को भी नाश किया। जहां जितने पुस्तक वेदादि के पाये, नष्ट किये। आर्यों पर बहुत सी राजसत्ता भी चलाई, दुःख दिया। जब उन को भय शंका न रही, तब अपने मतवाले गृहस्थ और साधुओं की प्रतिष्ठा और वेद मार्गियों का अपमान और पक्षपात से दण्ड भी देने लगे। और आप सुख, आराम और घमण्ड में आ फूलकर फिरने लगे।"

आगे लिखते हैं—

"ऋषभदेव से लेके महावीर पर्यन्त अपने तीर्थंकरों की बड़ी-बड़ी मूर्तियां बना कर पूजा करने लगे। अर्थात् पाषाणादि मूर्तिपूजा की जड़ जैनियों से प्रचलित हुई। परमेश्वर का मानना न्यून हुआ। पाषाणादि मूर्तिपूजा में लगे। ऐसा तीन सौ वर्ष पर्यन्त आर्यावर्त्त में जैनों का राज्य रहा। प्रायः वेदार्थ ज्ञान से शून्य हो गये थे। इस बात को अनुमान से अढ़ाई सहस्र वर्ष व्यतीत हुए होंगे।"

महर्षि दयानन्दजी ने सत्यार्थ-प्रकाश में सबसे अधिक विस्तृत और जोरदार खण्डन नवीन-वेदान्त का किया है जो कि श्री आद्य शंकराचार्यजी के नाम से प्रचलित भारत का एक अत्यन्त हानिकारक दार्शनिकवाद है। महर्षि के समय में यहां नवीन-वेदान्त का प्रचलन बहुत अधिक था। जिसे भी देखो वही—"अहं ब्रह्मास्मि" अर्थात् मैं ही ब्रह्म हूं ऐसा राग अलापता हुआ दिखाई देता था, परन्तु अब महर्षि के आन्दोलन और आर्यसमाज के प्रचार के परिणाम स्वरूप नवीन-वेदान्त का उन्माद लगभग शान्त हो चुका है। मौलिक सिद्धान्त-भेद होने पर भी महर्षि दयानन्दजी ने श्री शंकराचार्य जी की जो प्रशंसा की है, वह भी आचार्य के प्रति महर्षि के हार्दिक अनुराग की ही प्रतिबोधक है।

बौद्ध और जैन आदि नास्तिक मतों के उन्मूलन का सम्पूर्ण श्रेय महर्षि दयानन्दजी ने श्री शंकराचार्यजी को ही प्रदान किया है। लिखते हैं:—

"बाईस सौ वर्ष हुए कि एक शंकराचार्य द्रविड़देशोत्पन्न ब्राह्मण ब्रह्मचर्य से व्याकरणादि सब शास्त्रों को पढ़कर सोचने लगे कि अहह! सत्य आस्तिक वेद मत का छूटना और जैन नास्तिक मत का चलना बड़ी हानि की बात हुई है। इन को किसी प्रकार हटाना चाहिये। शंकराचार्य शास्त्र तो पढ़े ही थे, परन्तु जैन-मत के भी पुस्तक पढ़े थे। और उनकी युक्ति भी बहुत प्रबल थी। उन्होंने विचारा कि इनको किस प्रकार हटावें? निश्चय हुआ कि उपदेश और शास्त्रार्थ करने से ये लोग हटेंगे। ऐसा विचार कर उज्जैन नगरी में आये।"

आगे लिखते हैं:—

"वहां उस समय सुधन्वा राजा था, जो जैनियों के ग्रन्थ और कुछ संस्कृत भी पढ़ा था। वहां जाकर वेद का उपदेश करने लगे। और राजा से मिलकर कहा कि आप संस्कृत और जैनियों के भी ग्रन्थों को पढ़े हो, और जैन मत को मानते हो। इसलिये आपको मैं कहता हूं कि जैनियों के पण्डितों के साथ मेरा शास्त्रार्थ कराइये, इस प्रतिज्ञा पर जो हारे, सो जीतने वाले का मत स्वीकार कर ले। और आप भी जीतने वाले का मत स्वीकार कीजियेगा। यद्यपि सुधन्वा जैन-मत में थे, तथापि संस्कृत ग्रन्थ पढ़ने से उनकी बुद्धि में कुछ विद्या का प्रकाश था। इससे उनके मन में अत्यन्त पशुता नहीं छाई थी। क्योंकि जो विद्वान् होता है, वह सत्यासत्य की परीक्षा करके सत्य का ग्रहण और असत्य को छोड़ देता है।"

आगे फिर लिखते हैं:—

"जब तक सुधन्वा राजा को बड़ा विद्वान् उपदेशक नहीं मिला था, तब तक सन्देह में थे कि इनमें कौनसा सत्य और कौनसा असत्य है। जब शंकराचार्य की यह बात सुनी और बड़ी प्रसन्नता के साथ बोले कि हम शास्त्रार्थ कराके सत्यासत्य का निर्णय अवश्य करावेंगे। जैनियों के पण्डितों को दूर-दूर से बुलाकर सभा कराई। उसमें शंकराचार्य का वेदमत और जैनियों का वेद विरुद्ध मत था। अर्थात् शंकराचार्य का पक्ष वेद मत का स्थापन और जैनियों का खण्डन, और जैनियों का पक्ष अपने मत का स्थापन और वेद का खण्डन था। शास्त्रार्थ कई दिनों तक हुआ।

······बहुत दिन तक शास्त्रार्थ होता रहा। परन्तु अन्त में युक्ति और प्रमाण से जैनियों का मत खण्डित और शंकराचार्य का मत अखण्डित रहा। तब उन जैनियों के पंडित और सुधन्वा राजा ने वेद मत को स्वीकार कर लिया, जैन-मत को छोड़ दिया पुनः बड़ा हल्ला गुल्ला हुआ और सुधन्वा राजा ने अन्य अपने इष्ट मित्र राजाओं को लिखकर शंकराचार्य से शास्त्रार्थ कराया। परन्तु जैन का पराजय समय होने से पराजित होते गये।"

फिर लिखते हैं—

"पश्चात् शंकराचार्य के सर्वत्र आर्यावर्त्त देश में घूमने का प्रबन्ध सुधन्वादि राजाओं ने कर दिया, और उनकी रक्षा के लिये साथ में नौकर-चाकर भी रख दिये। उस समय से सब के यज्ञोपवीत होने लगे और वेदों का पठन-पाठन भी चला। दस वर्ष के भीतर सर्वत्र आर्यावर्त्त देश में घूमकर जैनियों का खण्डन और वेदों का मण्डन किया। परन्तु शंकराचार्य के समय में जैन विध्वंस

(शेष पृष्ठ ७ पर)

# प्रान्त में मेरा प्रचार कार्य

लेखक—श्री बोसूमल वानप्रस्थ

अजमेर से प्रस्थान कर मैं आर्य समाज फुलेरा में पहुंचा और समाज के प्रमुख कार्यकर्ता श्री पं० भँवर लाल जी शर्मा से भेंट की। उनके द्वारा समाज के आय व्यय के पर्चों का निरीक्षण किया। जब से आपने इस विभाग को सम्भाला है, तब से समाज के धन की समुचित रक्षा हुई है। आपने समाज मन्दिर के बाहर अपनी देखरेख में चार नवीन दुकानें बनवाई हैं और ऊपर के रिक्त भाग में भी एक दो कमरे बनाकर समाज की आय बढ़ाने का विचार रखते हैं। मैंने सभा को वेद प्रचारार्थ धन देने के लिये कहा तो आपने कहा मेरा मुझको कुछ नहीं, सभा का सब कुछ जाये। सभा को सब कुछ देने में क्या लागे है मोय।। ऐसे भाव रखते हुए आपने २१) श्रद्धा-पूर्वक प्रदान किया। आप में विशेषता यह है कि समाज का एक पैसा भी अपने काम में लेना पाप समझते हैं। पूर्व यहां ऐसे भी अधिकारी रहे जो समाज का धन लेकर चले गये। यहां से चलकर कुचामन पहुंचा और समाज के स्तम्भ श्री सेठ मदन लाल जी पोद्दार प्रधान से भेंट की। आप वैदिक धर्म के परम भक्त और स्वाध्यायशील और कर्मकाण्डी आर्य पुरुष हैं। आप प्रात: काल लगभग ८–१० छात्रों को संध्या हवन मन्त्र और आर्य समाज के नियम स्मरण करवाते हैं। भावी आर्य बनाने का यह उत्तम आयोजन है। दूसरे दिन रविवार था। समाज के साप्ताहिक अधिवेशन में लगभग १५–२० की उपस्थिति थी। आर्य भ्राताओं के साथ उक्त छात्रों ने भी वेद मन्त्रों का उच्चारण किया। भजन के पश्चात् मेरा वेदोपदेश हुआ और इसके पश्चात् श्री से० लेखराम जी भँवर के गृह पर भोजनार्थ पहुंचा, भोजनान्त परिवार वालों को भजन सुनाये और गृहस्थ धर्म पर उपदेश दिया। यहां से चल कर डीडवाना पहुंचा और आ० स० के सुयोग्य मन्त्री श्री पं० भँवरलाल जी गौड़ से भेंट की। रात्रि में सार्वजनिक व्याख्यान की सूचना आपने करवाई। लगभग १-१॥ घन्टा मैंने उपदेश दिया। उपस्थिति बहुत अच्छी थी। आर्य समाज की वास्तविकता जनता को बताई और पाखण्ड से सावधान किया। यह किसी समय पोपगढ़ था। तनिक कुछ कहने पर मेरे ऊपर पत्थर फेंकते थे। अब जनता आर्य समाज के कार्य को जानती है। यहां से लाडनूं आया और समाज के उत्साही मन्त्री श्री देवमित्रजी आर्य साहित्य रत्न से भेंट की। यहां उक्त तीनों स्थानों की भांति वेद प्रचार की सहायता प्राप्त कर सुजानगढ़ आया और समाज के सुयोग्य मन्त्री श्री पं० सूरजमलजी शर्मा से भेंट की और प्रधान श्री पं० लक्ष्मीचन्द्रजी शर्मा से। शर्मा जी कार्य-वशात् कहीं चले गये थे। मैं श्री सेठ ब्रह्मप्रकाश जी लाहोटी के गृह पर पहुंचा और सायंकालीन नित्य कर्म आपके साथ सम्पन्न किया। सन्ध्या में आप की चारों पुत्रियों ने भाग लिया और तत्पश्चात् इन पुत्रियों ने आर्य भजनों का बड़े ही मधुर स्वर से गान किया। दूसरे दिन आ० स० रतनगढ़ के मन्त्री श्री कैलाश चन्द्र जी त्यागी, जो रतनगढ़ से राजकीय औषधालय में सेवक हैं, उन से भेंट की। आप के यहां आ जाने से रतनगढ़ समाज का कार्य शिथिल हो गया। आपने सभा का दशांश और नि० को० धन देने का वचन दिया। यहां से लक्ष्मणगढ़ आया और समाज के उत्साही मन्त्री श्री केदारमल जी आर्य से भेंट की। यहां तीन दिन तक मेरे उपदेश समाज मन्दिर में कराये। शेखावाटी में यह समाज प्रति वर्ष विशेष ढंग के साथ अपना उत्सव मनाती है। श्री केदारमल जी यहां के प्रसिद्ध सेठ श्री सागरमल जी अग्रवाल के सुपुत्र हैं और आर्य समाज की सेवा आप तन-मन-धन से करते हैं। आपके श्री सेठ भेंवराज जी आर्य, श्री सेठ बनवारी लाल जी आदि युवक उत्साह से समाज सेवा कर रहे हैं। यहां समाज से ५१) वेद प्रचारार्थ प्राप्त किये और झुनझुनूं होकर अजमेर आ गया।

## मेरे जीवन के संस्मरण

उस दलितों की शाला की देखरेख मैं और श्री अलगूरायजी शास्त्री करते थे और श्री मा० ब्रह्मानन्दजी अध्यापक थे। काशी के पौराणिक छात्र आर्य विचार के छात्रों से भारी द्वेष रखा करते थे और उनको अन्न :क्षेत्र में भोजन करने पर भारी आपत्ति करते थे और कभी तो मारपीट तक की नौबत आ जाती थी। ये क्षेत्र अधिकांश शेखावाटी के मारवाड़ी सेठों के होते थे। मुझे जासवंत निवासी छात्र श्री हरविलासजी शर्मा ने कहा कि आप राजस्थानी है क्यों नहीं किसी क्षेत्र में भोजन करते। मैंने कहा मैं तो जड़ पूजा नहीं करता। उन क्षेत्रों में छात्रों से पूजा करवाते है। इन्होंने मुझे चिड़ावा निवासी पं० पूर्णचन्द्रजी जो श्री सेठ हरनारायणजी, जयनारायणजी के क्षेत्र का पता दिया। जो नीलकण्ठ महादेव के मन्दिर के पास था वे सुधरे विचारों के है। मैं उनसे मिला और उन्होंने मेरा परिचय प्राप्त किया बड़े ही प्रेम के साथ मुझे उक्त क्षेत्र में रहने का और भोजन करने को कहा। परन्तु मैंने उनसे दो बातें कहीं। मैं सच्चा गायत्री का जाप करने वाला वैदिक हूं, न तो आरती में जाऊंगा और न घासी बर्णा (ब्रह्म भोज) मेरी दो बातें स्वीकार करले, मैं तो आपके क्षेत्र में आजाऊं। उक्त मुनीमजी ने मेरी दोनों बातें स्वीकार करलीं। मुझे श्री स्वामी सत्यानन्दजी ने श्री स्वामी वेदानन्दजी तीर्थ जो अभी नवयुवक ही थे। मेरी भांति घर त्याग कर काशी में संस्कृत पढ़ने आये थे। उनके पास मैं अपना अध्ययन करने लगा और कुंजबिहारीजी काव्यतीर्थ और बालकृष्णजी शास्त्री के साथ पढ़ने लगा। मेरे अन्नक्षेत्र जाने से मैं आर्य छात्रों को अपने क्षेत्र में भोजन करने को भर्ती करने लगा। यह बात पौराणिक छात्र सहन न कर सके और वे मेरा विरोध करने पर उतारु होगये। एक दिन आर्यसमाज मन्दिर में एक ईसाई को शुद्ध किया। मैंने उसमें भाग लिया और उसके हाथ कर हलवा खाया। तो सारे छात्रों और भड़ गया और वे मेरे घोर विरोधी हो गये। वे और सैकड़ों छात्रों के हस्ताक्षर करवाकर मेरे विरोध में क्षेत्र स्वामी सेठों को कलकत्ते शिकायत भेजी कि आपके मुनीम ने एक नास्तिक छात्र को क्षेत्र में रख लिया।

शेष पुन:

## काशी शास्त्रार्थ शताब्दी समिति, आर्य प्रतिनिधि सभा उत्तर प्रदेश की आवश्यक बैठक और उसके निश्चय

आर्य प्रतिनिधि सभा के कार्यालय ५ मीराबाई मार्ग, लखनऊ में ता० १३-७-६९ को मध्याह्न में १२ बजे काशी शास्त्रार्थ समिति की बैठक हुई। जिसमें आर्य प्रतिनिधि सभा वाराणसी के प्रधान श्री क्षेमचन्द्र जी तथा मन्त्री श्री कैलाशनाथसिंह जी तथा केदारनाथ जी कोषाध्यक्ष वाराणसी से इस बैठक में भाग लेने आये थे। इस बैठक में नीचे लिखे निश्चय किये गये।

(१) यह शताब्दी समारोह आर्य प्रतिनिधि सभा उत्तर प्रदेश द्वारा आनन्द बाग वाराणसी में १६ नवम्बर से २१ नवम्बर तक मनाया जावेगा, जिस में देश विदेश के तथा सर्व धर्माव-लम्बी विद्वान् भाग लेंगे। विषय—वेद ईश्वरीय ज्ञान।

(२) १६ अक्तूबर से १५ नवम्बर तक सारे देश में आर्य विद्वानों की शास्त्रार्थ यात्रा होगी। विषय—मूर्ति पूजा वेदानुकूल है या नहीं।

(३) प्राचीन काल की शैली पर एक यज्ञ। इस अभूतपूर्व यज्ञ की रूपरेखा भी पृथक प्रकाशित की जावेगी।

(४) सार्वदेशिक स्तर पर एक महिला सम्मेलन भी होगा।

(५) आज से एक सौ वर्ष पूर्व संसार की जो विचारधाराएं थी, उन में इसने जितना परिवर्तन किया है, इस पर संसार की सम्मतियां संग्रह करके प्रकाशित की जावेंगी।

(६) शोध पत्र जो जिला सभा वाराणसी ने मंगाये हैं, वे सब आर्य प्रतिनिधि सभा उत्तर प्रदेश, लखनऊ को काशी के शोध भेज देंगे, जिनका सम्पादन श्री आचार्य विश्वश्रवा: जी व्यास वेदाचार्य करेंगे।

(७) आगे से धन संग्रह का कार्य आर्य प्रतिनिधि सभा उत्तर प्रदेश के तत्त्वावधान में यू० पी० सभा द्वारा प्रकाशित रसीदों और नोटों से ही होगा।

(८) जिला सभा वाराणसी ने जो धन संग्रह अब तक किया है, उसका हिसाब यू० पी० सभा को दे दिया जावेगा। अब आगे धन संग्रह का कार्य काशी के आर्य भाई भी यू० पी० सभा द्वारा करेंगे।

(९) शास्त्रार्थ शताब्दी समिति के प्रधान श्री पं० प्रकाशवीर जी शास्त्री संसद सदस्य तथा प्रचार मन्त्री श्री आ० विश्वश्रवा: जी व्यास एम० ए० वेदाचार्य निर्वाचित हुये।

(१०) काशी के पांच विशिष्ट व्यक्ति शास्त्रार्थ शताब्दी समिति में रहेंगे।

(११) स्वागत समिति के निर्माण का कार्य प्रारम्भ किया जावे, फिर काशी में स्वागत समिति का निर्वाचन होकर कार्य विभाजन होगा, जिस में सब प्रान्तों के प्रमुख कार्यकर्ता विशेष रूप से रहेंगे।

महेन्द्र प्रताप शास्त्री

संयोजक—काशी शास्त्रार्थ शताब्दी समिति

# अजमेर जिले में अराष्ट्रीय ईसाईयों का जाल

## सरकार तथा शिक्षा विभाग शीघ्र ध्यान दे!

१. नहीं चाहते हुए भी गरीब छात्रों को विदेशों से प्राप्त दान प्राप्त करने के प्रलोभन से इनकी शालाओं में आना पड़ता है।

२. केवल एक ही प्रमुख लक्ष्य है और वह है येन-केन प्रकारेण यहां की राजकीय शाला का उखाड़ना—

जिलान्तर्गत भवानीखेड़ा, लाडपुरा, नर्वदखेड़ा के कैथोलिक पादरियों द्वारा शिक्षण संस्थाओं के माध्यम से विदेशी प्रेरणा और सहयोग लेकर धर्म परिवर्तन और अराष्ट्रीयता की गतिविधियों पर गम्भीरता से विचार करते हुए यहां के बहुसख्यक रावत राजपूतों ने यहां की कैथोलिक पाठशालाओं का बहिष्कार किया है।

कैथोलिक मिशनरीज की पाठशालाओं का बहिष्कार करने के बाद रावत राजपूतों ने अपने बच्चों को शिक्षा दिलाने के लिये इन स्थानों पर राजकीय शालाओं की मांग की और इस मांग को स्वीकार करते हुए तत्काल अजमेर राज्य के शिक्षा विभाग ने सन् १९५६ में भवानीखेड़ा सहित प्रायः सभी रावत राजपूत बाहुल्य क्षेत्रों में राजकीय प्राथमिक शालाओं की स्थापना की है।

रावत राजपूतों की मांग के विरोध में इन स्थानों के मिशनरीज पूरी शक्ति से जुट गये, लेकिन शिक्षा विभाग ने रावत राजपूतों की मांग को काफी वजनदार माना और उसी का परिणाम कैथोलिक पाठशालाओं के समानान्तर राजकीय पाठशालाओं के रूप में उपस्थित है।

रावत राजपूत पिछड़ी जातियों की सूची में है। इस बहुसख्यक जाति की प्रबल मांग पर ही जब इन स्थानों पर राजकीय शालायें खुल चुकी थीं, तो फिर इनमें शिक्षा के प्रसार के नाम से राजकीय अनुदान प्राप्त करना बिल्कुल अनुचित माना गया। इस विषय में लिखा पढ़ी के बाद सर्वप्रथम पंचायत समिति पीसांगन ने सन् ६१-६२ में सेंट मार्टीन पाठशाला भवानीखेड़ा को अनुदान देना बन्दकर दिया। बाद में शिक्षा विभाग राजस्थान ने कैथोलिक पादरियों के दबाव में आकर अपनी ओर से अनुदान प्रारम्भ किया है, जो कि बहुसख्यक रावतो और पंचायत समिति पीसांगन को अपमानित करने का एक उदाहरण माना जायगा।

पादरियों के विरोध के बावजूद भी जब भवानीखेड़ा सहित अन्य रावतों के गांवों में राजकीय शालाएं स्थापित हो ही गई, तो फिर इन्होंने इन शालाओं को जड़मूल से उखाड़ फेंकने के अभियान के रूप में एक शीतयुद्ध शुरू किया हुआ है, और इसीलिये जो भी कदम इनकी ओर से उठाया जाता है, ऊपर से तो उसका रूप उचित ही प्रतीत होता है, लेकिन उसके भीतर पल्लवित खतरनाक षड़यन्त्र लगातार विघटन और अराष्ट्रीय गतिविधियों को पनपाता जा रहा है जो कि समय पाकर विस्फोटक रूप धारण करेगा।

पूछा जा सकता है कि जब एक बहुसंख्यक वर्ग और उनकी सर्वोच्च पचायत ने कैथोलिक मिशनरीज द्वारा संचालित शिक्षा को अवांछित मानकर उसका बहिष्कार ही कर दिया और इस बात को मानकर राज्य सरकार ने इनके समानान्तर राजकीय शालाओं की स्थापना कर दी है, तो फिर उस समाज में शिक्षा के प्रचार के लिये हाथ धोकर क्यों पीछे पड़ा जा रहा है। इस प्रकार मिशनरीज में कौन ख्वामखाह की नीति का अवलम्बन करते हुए बहुसंख्यक रावत समाज में विघटन पैदा करके उनके सामाजिक वातावरण को भी अशान्त बना देना चाहते हैं।

राजकीय पाठशालाओं को उखाड़ने के लिये इन मिशनरीज को भरपूर विदेशी सहायता मिल रही है। रावत राजपूतों की पंचायत के फैसले को तोड़कर मिशनरीज के आश्रित करने के लिये पादरी लोग विदेशी खाद्यान्न, तेल, दलिया आदि का वितरण किया करते हैं। इधर चिकित्सालय में भी इन बातों का पूरा ध्यान रखा जाता है। प्रसगातीत मैं इन बातों को छोड़कर चलूं तो भी इतना तो निश्चयात्मक रूप से कहना ही पड़ेगा कि यद्यपि शिक्षा संस्था के माध्यम से यह अपनी विघटनकारी मनोवृत्ति में उतने सफल नहीं हो सके जैसा यह चाहते थे, लेकिन प्रयासों में यह पीछे भी नहीं है और उस दिन तक प्रयास करते रहेंगे जब रावतों में पूर्ण विघटन होकर रक्तपात की स्थिति पैदा न होगी तब इनकी शिक्षा की मंशा पूरी होगी। दुर्भाग्य से राजस्थान का शिक्षा विभाग इन मिशनरीज की भयंकर षड़यन्त्रकारी योजना को केवल शिक्षा के विस्तार की आड़ में सहयोग देता जा रहा है।

भवानीखेड़ा की सेंट मार्टीन पाठशाला के पादरी द्वारा इसे छट्टी तक क्रमोन्नत करवाने के पीछे भी यही योजनाबद्ध षड़यन्त्र काम कर रहा है। जिसकी प्रत्येक को सहज जानकारी भी नहीं हो सकती। इस शाला में धर्म परिवर्तन की गतिविधियों के विषय में काफी लिखा जा चुका है, इस समय तो केवल पादरी द्वारा शिक्षा की आड़ में बहुसंख्यक वर्ग में विघटन पैदा करने के लिये पादरी द्वारा की जा रही छेड़छाड़ की मनोवृत्ति पर ही प्रकाश डालना चाहूंगा।

भवानीखेड़ा स्थित राजकीय शाला को सेंट मार्टीन शाला के सामने प्राथमिक स्तर तक असफल नहीं किया जा सका। भय, अनेक और भ्रामक प्रचार के बावजूद भी राजकीय पठशाला मिशनरीज के समानान्तर सफलता पूर्वक चल रही है। प्राथमिक स्तर पर शिक्षा के क्षेत्र में अपनी षड़यन्त्रकारी योजना को सफल न होता देखकर मिशनरी अब माध्यमिक स्तर तक क्रमोन्नत करना चाहते हैं ताकि उन रावतों के बच्चों को जिन्होंने हमारा बहिष्कार किया है, हमारी ही शरण में आना पड़े ताकि इससे रावतों में पारस्परिक मनमुटाव और झगड़ा की स्थिति बन सकेगी और इस मौके पर वह धर्म परिवर्तन और अराष्ट्रीयता के अपने क्रम को अधिकाधिक सुव्यवस्थित एवं सुदृढ़ बना सकें।

जनता की जानकारी में यह तो है ही कि सन् ६५-६६ में इन्होंने छटी कक्षा चालू करने के लिये शिक्षा विभाग से अनुमति प्राप्त की भी थी, लेकिन केवल एक वर्ष चलाकर उसे स्वतः बन्द करना पड़ा है क्योंकि इन्हें अपेक्षित सहयोग न मिल सका और न ही इन्हें रावतों में विघटन के आशाजनक परिणाम प्राप्त हुए।

अब भवानीखेड़ा के पादरी ने २८-६-६९ को दुबारा छटी की अनुमति प्राप्त करने के लिये प्रयास चालू किया है। उल्लेखनीय है कि बिना अनुमति प्राप्त किये ही उक्त पादरी की ओर से इस आशय का एक प्रचार पत्रक जून ६९ के आरम्भ में गावों में वितरण करवाया गया था, जिसमें 'अनुमति मिल गई है' कहकर लोगों को धोखा दे दिया है। इस प्रकार यह कहते हुए कि जिला विद्यालय से तो हम कान पकड़कर करा लेते हैं।

पुराना रिकार्ड देखने से यह भी ज्ञात होगा कि सन् १९४० से सन् १९४७-४८ तक इसी शाला ने दो तीन बार माध्यमिक की अनुमति लेकर एक एक वर्ष बाद बन्द कर चुके हैं।

अतः बहुसंख्यक लोगों में शांति और व्यवस्था बनाये रखने के लिये भवानीखेड़ा की सेंट मार्टीन शाला को कतई छटी की मान्यता न दी जाय और सरकार राजकीय शाला को शीघ्र क्रमोन्नत करे।

— एक नागरिक

---

## चिकित्सक की खोज

डा० ओमप्रकाश शर्मा नरसेना

अतीत व वर्तमान में राष्ट्रीय जागरण का सजग प्रहरी आर्यसमाज आज सोया सा दीख रहा है। देश में धर्म निरपेक्षता के नाम पर क्या नहीं हो रहा? भाषा एव जाति के आधार पर प्रान्त ही नहीं बन रहे जिले तक बन रहे हैं क्यों? आर्यसमाज आपसी संघर्ष में व्यस्त नहीं है क्या?

महर्षि दयानन्द द्वारा आयोजित बीज आर्यसमाज पंजाब ने पल्लवित पोषित किया, अखिल भारतीय ही नहीं सार्वदेशिक नेताओं को उत्पन्न कर गौरवान्वित समझने वाला पंजाब स्वामी श्रद्धानन्दजी स्वामी दर्शनानन्दजी जैसे वीतरागियों का पंजाब आज राग-द्वेष में लिप्त है वीर लेखराम प० गुरुदत्त का पंजाब वेद प्रचार की जगह अवद्वेष प्रचार में व्यस्त है वर्षों से एक प्रतिनिधि की दो प्रतिनिधियां आपसी संघर्ष में व्यस्त है न्यायालय और उसके बाहर भी.........।

बड़े-बड़े संन्यासी, तपस्वी नेता अपनी इस आपसी कलह-द्वेष को न मिटा सके।

अब यह विष सक्रमण करता हुआ आर्यों की शिरोमणि सार्वदेशिक में भी फैल सा रहा है, दो सार्वदेशिक बन गईं, वहां भी यही संघर्ष होगा! और अगर विष को तुरन्त (रोकना नहीं) न निकाला गया तो प्रत्येक प्रान्त में २-२ प्रतिनिधि बनेगी (कहीं कहीं तो ये आसार दीखने भी लगे हैं)

अतएव सभी आर्य (जनता) नेता पदाधिकारी, विद्वान् एकत्रित होकर विचार विमर्श कर चिकित्सक खोजे जो द्वेष की इस व्याधि को नष्ट कर सकें। शीघ्रता जरूरी है।

ओमप्रकाश शर्मा
चिकित्साधिकारी

## दयानन्द कालेज शोलापुर का धार्मिक कार्यक्रम

दयानन्द कालेज शोलापुर महाराष्ट्र की चोटी की संस्थाओं में से है। यह महान् संस्था महर्षि दयानन्द सरस्वती के ज्ञान-प्रसारण के पुनीत उद्देश्य की पूर्ति में, प्रतिपल प्रयत्न रत है। यह भव्य संस्था आर्यसमाज की उस विजय का प्रतीक है जो उसे निजाम हैदराबाद के विरुद्ध सत्याग्रह में प्राप्त हुई थी। अतः इसके वातावरण में धार्मिक भावनाएं तथा उच्च सांस्कृतिक आदर्श प्रारम्भ से ही ओतप्रोत रहे हैं। आज भी यह कालेज अपने छात्रों के जीवन में धार्मिक भावनायें भरता हुआ प्रगति पथ पर अग्रसर है। इनमें होने वाले धार्मिक आयोजनों का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है:—

कालेज के छात्रावास में दैनिक तथा साप्ताहिक सत्संग होते हैं। दैनिक सत्संग प्रात:काल ६.३० से ७ बजे तक होता है। इसमें सन्ध्या हवन तथा भक्ति गीत शामिल हैं। इसके अतिरिक्त थोड़ी सी देर के लिए वैदिक सिद्धान्तों पर व्याख्यात्मक प्रवचन भी होता है। अथवा किसी मन्त्रार्थ पर प्रकाश डाला जाता है। दैनिक सत्सग में विद्यार्थी पर्याप्त रुचि से भाग लेते हैं।

प्रति बृहस्पतिवार को रात्रि ७.३० से ९.३० बजे तक साप्ताहिक सत्संग होता है। इसमें कालेज के प्राचार्य तथा अन्य प्राध्यापकगण विद्यार्थियों के सम्मुख जीवनोपयोगी विचार रखते हैं। इस प्रकार गुरु तथा शिष्य को एक दूसरे के निकट सम्पर्क में लाकर यह कालेज प्राचीन गुरुकुलों का दृश्य उपस्थित करता है। बढ़ती हुई अनुशासनहीनता के इस युग में आर्यसमाज के ही ये कालेज हैं जहां शिक्षक और शिष्य एक दूसरे के निकट रहकर अपना सम्बन्ध मधुर बनाए हुए हैं। इन धार्मिक आयोजनों के माध्यम से सामान्यतः कालेज के समस्त वातावरण में तथा विशेषतः छात्रावास के सैकड़ों विद्यार्थियों के जीवन में पावन संस्कारों का समावेश हो जाता है। कालेज को गर्व है कि इसकी छाया में पलने वाले छात्रों का बौद्धिक, सांस्कृतिक तथा चारित्रिक स्तर बहुत ऊंचा रहता है। इसका श्रेय जहां व्यवस्था की अन्य बातों को है वहां इन धार्मिक आयोजनों को भी कम नहीं है।

इतना ही नहीं। महाविद्यालय के छात्र स्वेच्छा से धर्म शिक्षा की परीक्षाओं में बैठते रहते हैं। स्थानीय आर्यसमाज के साप्ताहिक सत्सगों में भी रुचि पूर्वक भाग लेते हैं। प्रस्तुत पंक्तियों के लेखक ने इतने सुव्यवस्थित एवम् सुनियमित धार्मिक आयोजन अन्यत्र बहुत कम देखे हैं। इन सबके लिये कालेज के वर्तमान प्राचार्य श्री जगन्नाथ जी दुबेजा का अनुभवी मार्ग दर्शन समय समय पर मिलता रहता है। आशा है दूसरी शिक्षण संस्थायें भी आर्यसमाज से प्रेरणा पाकर इस प्रकार के धार्मिक आयोजनों द्वारा अपने युवकों का जीवन निर्माण करेंगी ताकि बढ़ती हुई अनास्था और अनैतिकता रोकी जा सके।

---

## राजस्थान अराष्ट्रीय ईसाई प्रचार निरोध समिति

श्री प्रतिनिधि सभा के आबूरोड अधिवेशन में अराष्ट्रीय प्रचार निरोध समिति का निम्नलिखित संगठन हुआ है।

१.डा०राजबहादुर कोटा २.श्री स्वमी स्वतन्त्रानन्द जी ३. श्री केशवसिंह जी सांखला ४. आचार्य धर्मेन्द्र नाथ जयपुर ५. डा० सेतलसामी जी।

उपरोक्त सदस्यों तथा अध्यक्ष महोदय से निवेदन है कि कृपया नीचे लिखी बातों पर अपने विचार पत्रों द्वारा मुझे सूचित करने का कष्ट करें।

१. समिति का कार्यक्रम क्या २ हो और कैसे उसे प्रयोगात्मक रूप दिया जावे।

२. प्रान्त में फैले अराष्ट्रीय प्रचार की जानकारी और उसके निरोध के लिए कदम क्या क्या हो ?

३. धन संग्रह की योजना और विधि, (इस उद्देश्य की पूर्ति हित)।

४. सभा में इस शीर्षक में इकट्ठे धन का विभाजन और नियन्त्रण।

५. वर्तमान में सभा के अन्तर्गत कार्य क्षेत्रों के विषय में सविस्तार जानकारी तथा अन्य आवश्यक स्थानों की सूचना।

६. बांसवाड़ा, प्रतापगढ़ क्षेत्रों में हो रहे कार्यों मे विशेष सहयोग अर्थात् स्वा० स्वतन्त्रानन्दजी महाराज को आर्थिक सहायता देने पर विचार और प्रचार। इस समय वहां की स्थिति में अर्थ की आवश्यकता है। जैसा कि श्री स्वामी जी के पत्र से ज्ञात हुआ है।

शीघ्र ही अपने अपने विचार भेजने की कृपा करें।

राजबहादुर प्रधान, आर्यसमाज कोटा (राज०) के पते पर भेजें।

अपने पत्रों में निज के पत्र व्यवहार का पता अवश्य देवें। भवदीय

राजबहादुर संयोजक

## अजमेर में ऋषि मेला

स्वामी दयानन्द सरस्वती के निर्वाण दिवस पर आगामी १० नवम्बर से १६ नवम्बर तक ऋषि उद्यान अजमेर में ऋषि मेला आयोजित किया गया है, जिसमें आर्य जगत के नेता उपदेशक व भजनीक भाग लेंगे। दिल्ली से आर्य नरनारियों की एक स्पेशल ट्रेन भी आवेगी।

परोपकारिणी सभा के मंत्री श्री श्रीकरणजी शारदा ने सूचित किया है कि इस मेले में आने वाले व्यक्तियों के भोजन व निवास की व्यवस्था निशुल्क की जावेगी। -सभा मंत्री

## हिन्दी साहित्य सम्मेलन के परीक्षार्थियों को सूचना

उपरोक्त सम्मेलन की परीक्षाओं के फार्म केन्द्र में आगये हैं। भरने की अन्तिम तिथि ३१ अगस्त है, अतः इच्छुक परीक्षार्थियों को चाहिये कि वे शीघ्र फार्म लेकर भरदें, अन्यथा विलम्ब करने पर फार्म समाप्त हो जायेंगे। इसके पश्चात् प्राप्त होना कठिन ही है।

फार्म प्राप्ति का पता
रामचन्द्र आर्य मुसाफिर
चांद बावड़ी अजमेर

---

(शेष पृष्ठ ४ का)

अर्थात् जितनी मूर्तियां जैनियों की निकलती हैं, वे शंकराचार्य के समय में टूटी थीं। और जो बिना टूटी निकलती हैं, वे जैनियों ने भूमि में गाड़ दी थीं कि तोड़ी न जावें। वे अब तक कहीं भूमि में से निकलती हैं।"

आगे लिखते हैं—

"शंकराचार्य के पूर्व शैव मत भी थोड़ा सा प्रचलित था, उस का भी खण्डन किया। वाम मार्ग का खण्डन किया। उस समय इस देश में धन बहुत था और स्वदेश-भक्ति भी थी। जैनियों के मन्दिर शंकराचार्य और सुधन्वा राजा ने नहीं तुड़वाये थे। क्योंकि उनमें वेदादि की पाठशाला करने की इच्छा थी।"

शास्त्रार्थ समर में पराजित होकर जैनियों ने शंकराचार्यजी के प्राण-हरण का षड़यन्त्र रचा। महर्षि लिखते हैं:—

"जब वेद मत का स्थापन हो चुका और विद्या-प्रचार करने का विचार करते ही थे। उतने में दो जैन ऊपर से कथनमात्र वेदमत और भीतर से कट्टर जैन अर्थात् कपटमुनि थे, शंकराचार्य उन पर अति प्रसन्न थे। उन दोनों ने अवसर पाकर शंकराचार्य को ऐसी विषयुक्त वस्तु खिलाई कि उनकी क्षुधा मन्द होगई। पश्चात् शरीर में फोड़े-फुन्सी होकर छः महीने के भीतर शरीर छूट गया। तब सब निरुत्साही हो गये। और जो विद्या का प्रचार होने वाला था, वह भी न होने पाया। जो जो उन्होंने शारीरिक भाष्य आदि बनाये थे उनका प्रचार शंकराचार्य के शिष्य करने लगे। अर्थात् जो जैनियों के खण्डन के लिये ब्रह्म सत्य—जगत् मिथ्या और जीव ब्रह्म की एकता कथन की थी, उसका उपदेश करने लगे। दक्षिण में शृंगेरी, पूर्व में भूगोवर्धन, उत्तर में जोशी और द्वारिका में शारदा मठ बांध कर शंकराचार्य के शिष्य महन्त बन और श्रीमान् होकर. आनन्द करने लगे। क्योंकि शंकराचार्य के पश्चात् उनके शिष्यों की बड़ी प्रतिष्ठा होने लगी।"

[सत्यार्थ-प्रकाश, ११ वां समुल्लास]

श्री शंकराचार्य जी क अमर बलिदान की गौरव गाथा को लिखते समय महर्षि दयानन्दजी ने भी धर्म के लिये अपना जीवन न्यौछावर करने की कामना की ही होगी, जैसे श्री शंकराचार्यजी की मौत शानदार थी, वैसे ही महर्षि दयानन्द की मृत्यु भी शानदार थी। आचार्य शंकर और हमारे मूलशंकर के जीवन और मरण दोनों में ही बहुत सी समानतायें हैं) विज्ञजन उनका विशेष विचार करें।

महर्षि दयानन्दजी ने सत्यार्थ प्रकाश के ग्यारहवें समुल्लास के अन्त में दिल्ली [इन्द्रप्रस्थ] के आर्य राजाओं की एक वंशावली प्रकाशित की है। इतिहास के अनुसंधायकों के लिये वह बहुत अधिक उपयोगी है। उसके अनुसार [महाराजा युधिष्ठिर से महाराजा यशपाल तक] यहां ४१५७ वर्ष, ९ मास और १४ दिन तक आर्य राजाओं का राज्य रहा था।

## आर्य वेद प्रचार मण्डल मेवात

आर्य वेद प्रचार मण्डल मेवात के निर्देशानुसार आर्यसमाज फिरोजपुर फिरका के तत्वावधान में सप्तदिवसीय आर्यवीर दल चरित्र निर्माण प्रशिक्षण शिविर पूज्य स्वामी प्रेम की अध्यक्षता में प्रारम्भ हुआ, मुख्य प्रशिक्षक का दायित्व श्री सत्यपालजी आर्य मण्डल पति मुकमाबा द्वारा सम्पन्न किया गया। इस प्रशिक्षण में प्रातः ४ बजे ब्रह्ममुहूर्त से लेकर रात्रि के नौ बजे तक व्यस्त कार्यक्रम सुनियोजित ढङ्ग से चलता था, वैदिक विचारधारानुसार आर्यवीर का माता, पिता एवं आचार्य तथा परमपिता परमात्मा के प्रति श्रद्धापूर्ण आचरण, रचनात्मक ढंग से जीवन का पथ बना कर, स्वस्थ, अनुशासित, कर्मनिष्ठ, यशस्वी चरित्रवान उत्साही युवक रूप में निर्माण करना मुख्य लक्ष्य रहा।

इस शिविर की समाप्ति के दिन दीक्षान्त भाषण पूज्य श्री प० बाल दिवाकरजी हंस ने दिया तथा कहा वर्तमान शिक्षा पद्धति अत्यन्त दूषित हो गई है। तथा कहा राष्ट्र मे सच्चे ब्राह्मणों का अभाव होगया है। इस कारण उन्होंने जन्माधिकार-वाद ही बताया। आपने कहा जब तक महर्षि दयानन्दजी सरस्वती द्वारा बनाये मार्ग का अवलम्बन कर हम कर्म प्रधान वैदिक वर्ण व्यवस्था की पुनः स्थापना नहीं करेंगे तब तक चारित्रिक उत्थान की बात कहना आकाश कुसुम प्राप्ति जैसा व्यर्थ ही समझना चाहिये। अत प्रत्येक माता पिता तथा आचार्य (प्रशिक्षक) महानुभावों का संयुक्त कर्तव्य है कि वह अपने सतत् प्रयास से तपश्चर्यापूर्ण जीवन में स्वयं नियुक्त होवें तथा सन्तान को नियुक्त करने का यत्न करें और जन्मगत जातिपाति के झमेले को त्याग के गुण कर्म स्वभाव के आधार पर नये समाज के निर्माण में आर्य समाज का योगदान दें।

इस अवसर पर प्रशिक्षणार्थियों ने यौगिक व्यायाम तथा लाठी आदि का प्रदर्शन किया। शिविर की सफलता के निमित्त स्थानीय आर्य समाज के समस्त कार्यकर्ताओं तथा शिविर के संरक्षक तथा मण्डल के प्रधान समाज के समस्त कार्यकर्ताओं तथा शिविर के संरक्षक तथा मण्डल के प्रधान श्री भजनलाल आर्य ने अपूर्व सहयोग दिया। उपस्थित जनता पर बड़ा ही अच्छा प्रभाव पड़ा तथा अनेक बन्धुओं ने आर्य समाज के इस रचनात्मक कदम की बड़ी सराहना की।

## आवश्यक सूचना

सभा के मन्त्री श्रीमान डा० भवानी-लालजी भारतीय M. A. Ph. D. अब स्थायी रूप से अजमेर पधार गये हैं। अत सभा मन्त्री अथवा व्यक्तिगत रूप से अब भविष्य मे निम्नांकित पते पर उनसे पत्र व्यवहार अथवा सम्पर्क स्थापित करें।

—डा० भवानीलाल भारतीय
एम ए. पी एच डी
मन्त्री
आर्य प्रतिनिधि सभा राज०
दयानन्द आश्रम
केसर गंज अजमेर

## गौ रक्षा का विशेष कार्यक्रम

पश्चिम बंग सरकार की ओर से समय समय पर उन गायों बछड़ों की नीलामी की जाती है, जिन्हें सरकार अपने हरिघाटा व कल्याणी पशु केन्द्रों मे नहीं रखना चाहती। यह नीलाम यद्यपि उन्हें ही दिया जाता जो इन पशुओं को पालना चाहते हैं किन्तु यह सहज अनुमान किया जा सकता है कि ये पशु सरकारी केन्द्रों से निकल कर जीवन के अन्तिम क्षणों की प्रतीक्षा कहा करते हैं। कई गौ भक्तों के परामर्श से आर्य समाज कलकत्ता ने सरकार से प्रार्थना की कि इन पशुओं के जीवन की रक्षा होनी चाहिये। आर्य समाज की इस प्रार्थना पर सरकार ने आगामी नीलामी के आधे मूल्य पर इन पशुओं को देना स्वीकार कर लिया। कलकत्ता के गौ भक्त समाज ने आर्य समाज के साथ चेष्टा की और गौ भक्त दानियों के पुण्य दान से ४४०००) चौवालीस सहस्र रुपये एकत्र करके ६६१ पशुओं को सरकार से लेकर कलकत्ता पिंजरापोल सोसाइटी को सौंप उनके जीवन की रक्षा की गई। जिन में काफी गाये गर्भवती हैं तथा कुछ दूध भी देती हैं। गौ भक्त समाज का यह कार्य अत्यन्त प्रशंसनीय है।

यह कार्य चलता रहेगा लगभग ३०० पशु प्रति मास केन्द्रों से निकाले किये जाते हैं। आर्थिक सहायता प्रार्थनीय है।

## आर्य मार्तण्ड प्रेमियों से

आर्य मार्तण्ड आर्य प्रतिनिधि राजस्थान का मुख पत्र है। वैदिक धर्म तथा महर्षि दयानन्द का पावन सन्देश जन-जन तक पहुंचाने मे यह निरन्तर प्रयत्नशील है। हम चाहते हैं कि आपके हार्दिक सहयोग से इस पत्र को शीघ्र ही साप्ताहिक रूप देकर इसे अधिक आकर्षक, लाभप्रद एवम् जन प्रिय बनाया जाय, इसमे आपका योगदान परमावश्यक है। आशा है कि आप निम्न प्रकार से सहायता प्रदान कर इस पत्र की उपयोगिता के प्रचार प्रसार में यथेष्ठ सहयोग देकर हमे अवश्य प्रोत्साहित करेंगे।

१०१) के आजीवन सदस्य अधिकाधिक संख्या मे बनाकर।
वार्षिक ग्राहक बनाकर, वार्षिक चन्दा भिजवाकर
अधिकाधिक विज्ञापन देकर।
उत्तम रचनायें भेजकर।
कृपया अपने उत्तम प्रस्ताव, सुझाव एवम् तन-मन-धन से अवश्य सहयोग प्रदान करें।

सम्पादक—आर्य मार्तण्ड

## मुफ्त

आर्यसमाजों को गत २० वर्षों से नियमित प्रकाशित होने वाला मासिक "साहित्य प्रचारक" डाक व्ययार्थ केवल ५० पैसे भेजने पर २ वर्ष तक मुफ्त भेजा जायेगा। मनीआर्डर या डाक टिकट द्वारा धन भेजें।

पता —
पण्डित एण्ड कम्पनी
आत्माराम मार्ग, बड़ोदा—१

## मेरा उन से कोई सम्बन्ध नहीं !

ता १५ जुलाई के "आर्य मार्तण्ड" में पृष्ठ संख्या ५ पर श्रीमान् ब्रह्मदत्त जी सोढा का "स्वामी मेधार्थी" के सम्बन्ध मे जो लेख प्रकाशित हुआ है, उसके चौथे कालम में विषय ११ वें के सम्बन्ध में मेरा स्पष्टीकरण निम्न है—

"मैं महाशय से रुष्ट नहीं हूं। सब अपने अनुभव के आधार पर कार्य करते हैं। स्वामी मेधार्थी ने गत ८—१० वर्षों मे कभी 'आर्य समाज मन्दिर—टंकारा' में डेरा नहीं डाला। मेरा उन से न कभी कोई सम्बन्ध था और न इस समय उन से कोई सम्बन्ध है।"

भगवानदेव
प्रधान आर्य समाज मन्दिर—टंकारा

## कलकत्ता में परोपकारिणी सभा के मंत्रीजी का स्वागत !

गत मास के अन्त में सार्वदेशिक सभा के उप-प्रधान तथा परोपकारिणी सभा के मन्त्री श्री श्रीकरणजी शारदा आर्यसमाज विधान सारिणी कलकत्ता पधारे। वहा के अधिकारियों ने आपका सार्वजनिक भव्य स्वागत किया।

## वल्लभ नगर में वृष्टि यज्ञ

वल्लभ नगर (उदयपुर) में दि० २९ जून को बृहद् वृष्टि यज्ञ का आयोजन ठा० बलवन्तसिंहजी की अध्यक्षता मे किया गया। भजनोपदेशों का बड़ा उत्तम प्रभाव पड़ा।

## आर्यसमाज बसेड़ा का चुनाव

श्री शंकरलालजी आर्य—प्रधान
,, वृद्धिचन्दजी आर्य—मन्त्री
,, राधेश्यामजी—कोषाध्यक्ष
,, रामलालजी—प्रचार मन्त्री
,, मोतीलाल, श्री खेमराजजी, मांगीलालजी, श्री ओ३म्प्रकाशजी, श्री गोडीलालजी, श्री चतुर्भुज जी श्री देवकिशनजी श्री श्रीनारायणजी, श्री हरिश्चन्द्र जी, श्री बसन्तीलालजी श्री शान्तिलालजी अन्तरंग सदस्य चुने गये।

## आवश्यकता है

परोपकारिणी सभा के प्रकाशन विभाग के लिए एक योग्य संस्कृत के विद्वान् की आवश्यकता है, जो संस्कृत व्याकरण, निघण्टु, निरुक्त आदि पर पूर्ण अधिकार रखता हो तथा महर्षि कृत ग्रन्थों वेदभाष्य आदि का ज्ञाता और उन पर पूर्ण आस्था रखता हो।

महर्षि कृत ग्रन्थों के शुद्ध प्रकाशन की दृष्टि से आवश्यकतानुसार हस्तलेख का मिलान कर प्रेस कापी तैयार करना तथा तदनुसार मुद्रण हो, इसकी देखरेख रखना होगा। प्रूफ संशोधन का अभ्यास होना आवश्यक होगा।

आवेदन पत्र अपने पूर्व कार्य के अनुभव के विवरण तथा प्रमाण पत्रों की प्रमाणित प्रतिलिपि सहित १५ जुलाई तक आना चाहिये। आवेदन पत्र मे यह भी लिखें कि न्यूनतम वेतन क्या स्वीकार करेंगे।

श्री श्रीकरण शारदा
मन्त्री
परोपकारिणी सभा, अजमेर

श्री पं० भगवानस्वरूपजी "न्यायभूषण" के प्रबन्ध से वैदिक यन्त्रालय अजमेर में मुद्रित और ओम्भक्त वानप्रस्थ, सम्पादक प्रकाशक द्वारा दयानन्द आश्रम, केसरगंज अजमेर से प्रकाशित। अधिष्ठाता—श्रीमान् डा० भवानीलालजी भारतीय एम. ए. पी. एच. डी. शास्त्री

आर्य प्रतिनिधि सभा राजस्थान का मुख-पत्र

रजि० नं० जे १४

पाक्षिक

# आर्य मार्तण्ड

दयानन्द आदित्य से पाकर ज्योति प्रचण्ड । ध्वंस दम्भ पाखण्ड का करे आर्य्यमार्तण्ड ॥

वार्षिक मूल्य ५) रुपया | सम्पादक—श्री ओमप्रकाश वानप्रस्थ ( रामसहाय शर्मा ) अजमेर भाद्रपद शु० सं. २०२६ वि., दि. १५ अगस्त ६९ दयानन्दाब्द १४५ | एक प्रति का २० पै० | अङ्क १२

## ईश्वर-प्रार्थना

ओ३म् देव सवितः प्रसुव यज्ञं प्रसुव यज्ञपतिं भगाय,
दिव्यो गन्धर्वः केतपूः ।
केतं नः पुनातु वाचस्पतिर्वाजं नः स्वदतु ॥

॥ यजु० ॥

## पद्यानुवाद

प्रभु की विलक्षण शक्तियाँ,
सर्वत्र ही गतिशील हैं ।
कर्मठ बनातीं विश्व को,
करतीं नहीं वो ढील हैं ।
उन शक्तियों से युक्त हो,
प्रभु की करे जो भक्तियाँ ।
मिलता उन्हें है इष्टधन,
बढ़ती अधिक अनुरक्तियाँ ।
प्यारे सवर्मन ! छोड़ मिथ्या,
वर्ष तू अमंदीय की ।
गा खूब सविता देव की,
स्तुतियाँ उसी परमेश की ।
तू रात में गा, हर समय गा,
देव से पुलकित हुआ ।
सब दोष तेरे दूर हों,
बहु दोष से निर्भीत हुआ ॥

—श्री पं० सियारामशर्मा जी व्याकरणाचार्य

## हमारी स्वाधीनता !

श्री विजय प्रकाश विद्यार्थी मन्दसौर

स्वाधीनता हमारी क्या सोज बन गई है ?
जिस ओर देखते हैं तकरार ठन गई है,
भाषा, प्रदेश, मजहब के नाम से यहाँ पर,
प्यारे वतन के तन पर तलवार तन गई है ।
क्या सर्वनाश करने को आज हम तुले हैं ?
सदियों के बाद अपने तकदीर अब खुले हैं,
नेता अलग यहाँ पर खिचड़ी पका रहे हैं,
दुर्गन्ध से जिसे अब कुत्ते न खा रहे हैं ।
वे नौजवान अपने किस ओर जा रहे हैं ?
क्या मार्ग पर किसी को हम लोग ला रहे हैं ?
ये धर्म के पुरस्कार कीचड़ में खूब फूले हैं,
सदियों के बाद अपने तकदीर अब खुले हैं,
अब भी यहाँ अशिक्षा, है छूतछात कायम,
इन कड़ियों के मारे, है आ रहा घुटा दम ।
हम भ्रष्ट, हम मिलावट कर प्राण ले रहे हैं,
देते नहीं यहाँ के प्रत्येक हैं यहाँ देने ।
भूले कहीं, कहीं पर मौसमी अब झूले हैं ।
सदियों के बाद अपने तकदीर अब खुले हैं ॥

### हार्दिक धन्यवाद !

श्रीमान् बी० बैजनाथकुमारजी बिरला कलकत्ता के जय श्री चैरिटी ट्रस्ट के द्वारा २०००) की राशि वैदिक विद्यालय सवाईमाधोपुरा की सहायतार्थ कृपा पूर्वक प्रदान की है । एतदर्थ विद्यालय प्रबन्ध समिति हार्दिक धन्यवाद अर्पित कर आशा करती है कि धर्मी दानी-दाता महानुभाव इसका अनुकरण करते हुए अराष्ट्रीय प्रचार के निरोधार्थ इस केन्द्र को सबल तन मन धन से अधिकाधिक सक्रिय सहयोग प्रदान करने की कृपा करेंगे ।

—मन्त्री

## ऋषि-ऋण

स्वामी केवलानन्द सरस्वती आबूपर्वत

ऋषि वर दयानन्द गुरु का,
ऋण पूरण करना है ।
गुरु पूर्णिमा पर व्रत कर के,
गुरु पूजन करना है ॥
छाया था अँधियारा जब वे,
सूरज बन कर जग में आये ।
सदियों से अलसाये थे जो,
उनको फिर झक-झोर जगाये,
सूखे सरवर में फिर से बहु ।
स्नेहिल निर्झरना है ॥
वैदिक व्रत करना सिखलाया,
उपाकर्म का तत्व बताया ।
रक्षा-बन्धन बाँधा मनको,
वेद-व्रती उपनयन सजाया ।
त्रैत-वाद के तीन ऋणों को
निष्पातक-ऋत-व्रत करना है ।
तम खचित पुण्य धरा है,
महा तिमिर से गगन भरा है ।
हर मानस में विष लहरा है,
ऋषि वर का उर-घट छहरा है ।
तीनो तप पूजा के राही,
सत-पथ राह बदलना है ॥
आर्य वीर विष प्याला पीते,
औरों के हित जीवन देते ।
आर्य देव गुरु हरदम देते,
कभी किसी से कुछ नहिं लेते ।
पर्व-पाठ खोला करते वे,
श्रुतियों का मन्थन करते हैं ॥
नैतिकता का उपवन सूखा,
मानस का मानस बन रूखा ।
धरती का सावन-घन रूठा,
ऋषियों का सरवर उर सूखा ।
आर्य वीर पावस घन बनकर,
आनन्द सुधा सरस झरना है ।

# हिन्दू समाज की संकीर्णता ने डा० अम्बेडकर को बौद्ध धर्म ग्रहण करवाया !

श्री कन्हैयालाल जी आर्य साहित्यभूषण, अजमेर

"यद्यपि मैं हिन्दू हूं और हिन्दू ही जन्मा हूं, तथापि मैं हिन्दू नही मरूंगा...!"

यह है दर्द भरी टीस...जो भारतीय संविधान के रचयिता, कानून के डाक्टर, डाक्टर अम्बेडकर की अन्तर-आत्मा से हिन्दू धर्म की संकीर्णता के खिलाफ आत्म स्वाभिमान को लिए हुए निकली थी।

हिन्दू धर्म अथवा हिन्दू समाज की इस कथित वर्ण-व्यवस्था से उत्पन्न जाति-भेद रूपी पक्षपात नीति ने अस्पृश्य कहकर लाखो नही करोडो मानवों के आत्म सम्मान को कुचल कर उन्हे अपंग बना दिया। भाई को भाई से अलग कर उन्हें हमेशा के लिए हिन्दू धर्म से तिलाजलि दिला दी और गऊ रक्षक से गऊ भक्षक बनाया। क्यो ? इसलिए कि उन मानवो मे मानवता के अधिकार प्राप्त करने के लिए आत्म-सम्मान की भावना जागृत हो चुकी थी, इसलिए उन्होंने अपने पक्ष-पाती और आत्म सम्मान को कुचल देने वाले हिन्दू धर्म को तिलांजलि दे बगावत कर अपने आत्म-सम्मान और स्वाभिमान की रक्षा की। इसी आत्म सम्मान और स्वाभिमान की रक्षा के लिए डाक्टर अम्बेडकर जसे महान पुरुष को अपने छः सात लाख अनुयाईयो सहित वर्णाश्रम-धर्म अथवा हिन्दूसमाज की पक्षपात नीति के खिलाफ हिन्दू धर्म को तिलाजलि देकर बौद्ध-धर्म को अपनाना पडा और उपरोक्त शब्द कहने को बाधित होना पडा।

यद्यपि डाक्टर अम्बेडकर के पिता अध्यापक थे तथापि उनको अपने प्रारम्भिक काल मे शिक्षा ग्रहण करते समय किस प्रकार से जात-पात के जहरीले वातावरण मे अपमानो की घूंट पी पी कर अपने दिन गुजारते हुए शिक्षण लेना पडा। इसको वही जान सकता है जिसको यातो इसका अनुभव हुआ हो अथवा जिसने डाक्टर अम्बेडकर के प्रारम्भिक काल की घटनाओ के साहित्य का अवलोकन किया हो। मगर इतने दूषित और अपमान मय वातावरण मे भी उस विक्षुब्ध साहसी वीर कर्मवीर आधुनिक भारत के सुषुप्ति अवस्था मे जातीय अभिमानियो की थपेडो की मारको सहन करने वाले कोटि कोटि मानवो के भाग्य निर्माता ने अपनी हिम्मत और धैर्य को नही बिसराया। हजारो आपदाओं, प्रतिक्षण के अगणित होने वाले अपमानों की कडवी घूंटों की भक्त मीरा के हलाहल विष के प्याले की भांति अमृत की घूंट बनाकर पान करता हुआ उत्तरोत्तर आगे बढ़ता ही गया और यहा तक बढा कि उसका एक एक वाक्य कानून बना और स्वतन्त्र भारत के संविधान के निर्माता के रूप मे अपने नाम को अमर कर दिया।

डाक्टर अम्बेडकर का हिन्दू-धर्म या समाज की कथित वर्ण-व्यवस्था और उससे उत्पन्न जात-पात रूपी पक्ष पाती नीति पर कतई विश्वास नही था। वर्ण व्यवस्था तथा जात पात द्वारा प्रारम्भिक काल मे गुजरे हुए अपमानो, धर्म के नाम पर हुए अत्याचारों के कारण वे हिन्दू समाज से एक प्रकार से चिढे हुए से रहते थे जिसके कारण उन्होंने हिन्दू धर्म और हिन्दू शास्त्रो तथा स्मृतियो की कटु आलोचना भी की। वे उसी धर्म को सर्वश्रेष्ठ मानते थे जिसमें मानव मानव में समानता हो। इसीलिए उन्होंने हिन्दूधर्म के उन धर्म शास्त्रों और स्मृतियो की कटु से कटु आलोचना कर डाली जिन की कथनी और करनी में अन्तर पाया। उन्होंने वर्ण-व्यवस्था, जात-पांत और उसके द्वारा प्रतिपादित अस्पृश्यता को हिन्दू जाति और हिन्दूसमाज का कलंक बताते हुए कहा कि हिन्दू समाज को छिन्नभिन्न और टुकडे टुकडे कर देने वाली यदि कोई चीज है तो वह है भारतीय वर्ण-व्यवस्था और जांत पात जिसने देश को गुलाम बनाया और आज भी स्वराज्य को सुराज्य बनाने, देश के विकास और उन्नति में यदि कोई बाधक है तो वह है वर्ण-व्यवस्था, जांत-पांत और उससे उत्पन्न होने वाली अस्पृश्यता।

डाक्टर अम्बेडकर मानवता के पुजारी थे। उनमे मानवता कूट कूट कर भरी हुई थी। इसी कारण वे मनुष्यता से कहीं ऊपर उठ चुके थे। वे एक ऐसे समाज की कल्पना करते थे, जिसमे ऊंच नीच तथा छोटे बडे का कोई भेद न हो। तथा मानव में मानवता का व्यवहार हो। इसका उन्होंने हिन्दू धर्म हिन्दू समाज में अभाव ही पाया। अपितु वर्ण व्यवस्था और जात-पांत से उत्पन्न होने वाली जहरीली कटुता, अछूत कहकर मानव के हृदयो को मृत प्राय कर देने की पक्ष-पात नीति का घातक रूप से समावेश ही पाया। इसके विपरीत उन्होंने भगवान बुद्ध के बौद्ध धर्म मे धर्म से सम्बन्धित पाई जाने वाली उदारता, मानवता, समानता तथा मानव धर्म में पाई जाने वाली सारी विशेषताओं का समावेश पाया। इसीलिए तो डाक्टर अम्बेडकर को अपने छः सात लाख अनुयाईयों को लेकर अपने आत्मसम्मान की रक्षार्थ भगवान बुद्ध के बौद्ध धर्म की शरण में जाकर हिन्दू नाम से छुटकारा पाने के लिए बौद्ध बनना पडा।

जैसे ही डाक्टर अम्बेडकर ने अपने सात लाख अनुयाइयो सहित बौद्ध धर्म को अपनाया और बौद्ध बने हिन्दू समाज मे एक प्रकार से तहलका सा मच गया। हिन्दू समाज और हिन्दू धर्मानुयाइयों की कुम्भ करणीय निद्रा क्षण-मात्र के लिए खुली समाचार पत्रो, विशेषत साम्प्रदायिक पत्रों ने बडे बडे हेडिंगो से अपने समाचार पत्रों के पत्रों को रंगा, लेकिन किसी भी धर्म गुरु तथा धार्मिक सत्यवादियों विशेषत धर्म की दुहाई देने वालों, हिन्दू संगठन के कर्त्ता धर्ताओं ने जरा भी इस पर विचार और मनन नहीं किया कि आखिर इतने बड़े आदमी का इतने बडे समुदाय को लेकर हिन्दू धर्म को तिलाजलि देकर जाने का क्या कारण है ? क्षणिक उहा-पोह दिखावे मात्र के लिए अपनी परम्परागत पुरातनी आदत के अनुसार मचाकर शान्ति की नींद सो गए।

भारत का प्राचीन इतिहास तथा साहित्य इस बात का साक्षी है कि हजारों नहीं लाखों मानवों को हिन्दू समाज की इस और जात-पांत जो मानव के विकास में बाधक बनी हुई है और देश के लिए अभिशाप सिद्ध हो चुकी है। इसी जात-पांत के अपमान रूपी कलंक के टीके को हटाने के लिए हिन्दू समाज और हिन्दू धर्म को तिलांजलि देकर ईसा और मूसा के धर्म को अपनाना पडा। गऊ रक्षक से गऊ भक्षक बने। इसी वर्ण-व्यवस्था और जात-पांत के मिथ्या अभिमान के कलंक ने पंडित कालीचन्द्र राय को काला पहाड की उपाधि से सम्बोधित करवा हजारों मन्दिरों को मिस्मार करवाया। लाखों बेगुनाह मानवों, अबला अबलाओं के सतित्व को भ्रष्ट करवाया। हिन्दू धर्म से च्युत करवा इस्लाम की शरण में भिजवाया, देश का बटवारा करवाया। इतना सब कुछ अनर्थ हिन्दू धर्म पर होने के बावजूद भी हमारे जगद्गुरुजी महाराज वर्ण-व्यवस्था तथा जांत-पात से उत्पन्न होने वाली अस्पृश्यता को कायम रखने के लिए पक्ष-पाती धर्म शास्त्रो की आड लेकर उसका समर्थन करें, वह भी ऐसे विज्ञान और क्रान्ति के युग में, जबकि मानव विज्ञान द्वारा चन्द्रमा में, जिसकी कि कपोलकल्पित कल्पनाएं एक मात्र मनुष्य को भ्रम में डालने के लिए शास्त्रो में घडी गई थी, उस चन्द्रमा में मानव आबाद होने के लिए जा रहा है।

जब तक हिन्दू धर्म में और जात-पात विद्यमान है, तब तक अस्पृश्यता कभी भी मिट नही सकती। वर्ण व्यवस्था द्वारा अस्पृश्यता को कायम रखकर गऊमाता की जय और उसकी रक्षा का दिखावटी नारा त्रिकाल में पूरा नहीं हो सकता जब तक वर्ण-व्यवस्था और जात-पात है, अस्पृश्यता त्रिकाल मे नहीं मिट सकती ? इसलिए यह जो सदियो पुराना धर्म-शास्त्रों को लेकर वर्ण-व्यवस्था तथा जात-पात द्वारा प्रतिपादित अस्पृश्यता का पक्ष पाती बेसुरा प्रलाप जो अलापा जा रहा है, उसमें सुधार और समयानुसार परिवर्तन की अत्यन्त आवश्यकता है। तभी धर्म की जय और गऊमाता की रक्षा हो सकती है। अन्यथा दोनो ही नारे एक मात्र दिखावे के रूप में दुनिया को धोखा देने के लिए शास्त्रो में विद्यमान हैं और रहेंगे ! और वह भी समय आवेगा जबकि इन नारों को कोई सुनने वाला रहेगा ही नहीं। बल्कि हो सकता है ? कि मुसलमानी काल की भांति इनको समूल नाश करने की नौबत भी आ जावे।

आज का हिन्दू समाज और उसके धर्मगुरु हिन्दू समाज और हिन्दू धर्म मे जो रोग घुसा हुआ है और जो समाज को प्रतिक्षण खोखला करता जा रहा है। उस बीमारी को तो दूर करना नहीं चाहते, बल्कि धर्म और धर्म शास्त्रों की दुहाई देकर वर्ण-व्यवस्था तथा जात-पांत को कायम रखकर अछूत पने को कायम रखना चाहते हैं, यह तो बिल्ली के सामने कबूतर की भांति आखें बन्द करके अपने

( शेष पृष्ठ ६ पर )

# आर्य मार्तण्ड

अजमेर भाद्रपद शु० २ सं० २०२६ वि० दिनांक १५ अगस्त सन् १९६९


## आर्य भ्राताओ सावधान !

वैसे तो सन् १९०९ से आर्यसमाज की जानकारी मुझे श्री अमरचन्द्र जी व्यास की कृपा से हो चुकी थी और १ वर्ष के पश्चात् आपने आर्य विद्यार्थी सभा की स्थापना कर दी थी। उसके अधिवेशन भी होने लगे थे और हमारे साथी आर्यसमाज अजमेर के साप्ताहिक अधिवेशनों में भी जाने लगे थे। उसके वार्षिकोत्सवो में स्वयंसेवक बनकर सेवा भी करने लगे थे। उस समय के आर्य पुरुषों मे जो उत्साह और उमङ्ग थी, आज वह देखने मे नही आती। प्रत्येक आर्य में पवित्र वैदिक धर्म के प्रचार की भावना काम करती थी। समय २ पर विशेष प्रचार की व्यवस्था मेलो के अवसर पर होती रहती थी। परस्पर मिल जुलकर आर्यसमाज के कार्यों का विस्तार करना प्रत्येक आर्य अपना कर्तव्य समझता था। यदि कभी कोई आर्य भाई साप्ताहिक अधिवेशन में नहीं आ पाता तो उस का कारण जानने का यत्न करते और यदि कोई रोगी हो जाता था तो उसकी सेवा करना प्रत्येक आर्य अपना कर्त्तव्य समझता था। यदि कोई नवीन सज्जन साप्ताहिक अधिवेशन में आता था तो उनका परिचय प्राप्त कर प्रत्येक अधिवेशन में आने का आग्रह किया करते थे।

समाज के अधिकारियो का निर्वाचन बडी शान्ति और गम्भीरता से सम्पन्न होते थे। पदो के लिये दलबन्दी का नाम तक नही था, किन्तु अति आग्रह और विनयपूर्वक पात्र आर्यो के हाथ में समाज का कार्य-भार सौंपा जाता था। जन साधारण मे आर्यों के सदाचार और कर्तव्य परायणता की धाक थी। दीन दु खी और विधवा अनाथों का एकमात्र रक्षक आर्यसमाज था। यदि किसी विधवा व अनाथ को कोई विधर्मी बहका कर ले जाता तो उसकी सूचना आर्यसमाज में आती थी और आर्य पुरुष उनकी रक्षा करना अपना कर्तव्य समझते थे। काल-दुकाल महामारी आदि भयंकर रोग फैल जाने पर आर्यपुरुष अपनी सेवासमिति बनाकर इस आपतकाल में जनता-जनार्दन की सेवा करना आर्य अपना धर्म समझते थे। यदि कोई भाई धर्म-भ्रष्ट हो जाता तो उसे धर्म-पथ पर लाने का प्रयत्न किया करते थे। यदि कोई स्त्री या पुरुष मुसलमान, ईसाई बन जाता, तो उसे शुद्ध कर लिया करते थे। आर्यसमाज या देश में कोई भी आन्दोलन चलता था तो आर्यसमाज उसमे पूर्णयोग देता था। अजमेर में तो यह परम्परा श्रीमान् कु॰ चान्दकरण जी शारदा और श्रीमान् प० जियालाल जी तक से इस कार्य-रूप समाज का अङ्ग बना रहा। कठिन से कठिन समय आने पर ये दोनो महानुभाव अपना सब कुछ त्याग कर उस कार्य की सिद्धि मे लग जाते थे। आगे चलकर इन दोनो कर्मवीरों मे मत-भेद हो गया, परन्तु समाजसेवा मे उसी प्रकार लगे रहे। अजमेर जैसे नगर मे अब आर्यसमाज के क्षेत्र में इस प्रकार के तप और त्याग से काम करने वालों का अभाव हो गया है।

आर्यसमाज की शिक्षा संस्थाओ से मेरा सम्बन्ध सन् ११ में हो गया था। बडी शालाओं मे और शाखा शालाओ में धर्म शिक्षा की समुचित व्यवस्था थी। मैं जब काशी से अध्ययन करके आया, तो दयानन्द वैदिक विद्यालय मे संस्कृत पढाता था और धर्म शिक्षक भी था। उस समय के छात्रो पर आर्यसमाज का पर्याप्त प्रभाव होता था और वे आर्यसमाज के विचारो के होकर निकलते थे। परन्तु आजकल की शिक्षा संस्थाओं मे नाम मात्र को धार्मिक शिक्षा नही दी जाती। केवल सरकारी शालाओं की भांति हमारी शिक्षा संस्था भी बन गई। जिन शिक्षा संस्थाओ में बालक बालिकाओ को सदाचार की शिक्षा नहीं दी जाती और माता पिता और देश धर्म के प्रति कोई भाव नही भरे जाते ऐसी शिक्षा संस्थाओ से छात्र छात्राओ का चरित्र निर्माण कब हो सकता है। जैसे भी बने अपनी शिक्षा संस्थाओ की यही एक विशेषता हो, जहा छात्र देश भक्त धार्मिक माता-पिता और गुरुजनो का सम्मान करने वाले हो। तब ही हमारी शिक्षा संस्थाओ की विशेषता है। आर्य पुरुषो के आचरण का प्रभाव अपनी भावी सन्तति पर पडता है। अत: हमें थोडी बातो के लिये समाजों मे झगडे बखेडा उत्पन्न नही करना चाहिये। आज समाज और सभा संस्थाओ के निर्वाचन विघटन का कारण बनते जा रहे हैं। जिनके हाथ मे जो समाज संस्था आ गई, उसे छोडना नहीं चाहता है और अपनी बहुसम्मति बनाने का यत्न कई दिन पूर्व आरम्भ कर देते हैं। कई २ सज्जन तो अपने पास से चन्दा देकर अपनी बहुसम्मति बनाने का प्रयत्न करते हैं और जब उन सभ्यो की जाच की जाती है, तो वैध सिद्ध न होने पर झगडा खडा होता है। सभा समाजों में नया संघर्ष उत्पन्न कर देते हैं और निर्वाचन के समय भारी खेंचातानी होती है। इस से आर्यसमाज जैसी सभ्य समाज का गौरव गिरता है और जनता में उसकी हसी होती है। दो दल बनकर रस्सा खींच आरम्भ हो जाती है। इन सब कारणो से जहा समाज का अहित होता है। वहां विरोधियो को हंसने का अवसर प्राप्त होता और भावी सन्तानों में उसका बुरा प्रभाव पडता है। वर्तमान में अपन्थाई और विधर्मी आगे बढकर अपने चेले-चेली बनाने मे और अपना पन्थ बढाने में बढ रहे हैं। और आर्य पुरुष आपस मे लड झगड पद प्राप्ति के झगडो में फंसकर अपनी शक्ति अपव्यय कर रहे हैं। यह कितने खेद की बात है।

अत आर्यसमाज के नेता और विचार शील आर्य पुरुषो को इस बढते हुए गृहकलह को शीघ्र शान्त करने की ओर अवश्य ही ध्यान देना चाहिए। अन्यथा आर्यसमाज की भावी उन्नति रुक जायगी और इस का जो भी भयंकर परिणाम होगा वह आप लोगो को ही भोगना पडेगा।

अत आर्य बन्धुओ ! सावधान हो जाने मे आपका और समाज का हित है। ❁

## बूंदी नगर में वैदिक धर्म प्रचार

बूंदीनगर मे जब से आर्यसमाज की स्थापना हुई है तभी से नियमित रूप में साप्ताहिक कार्यक्रमो के अतिरिक्त यदा कदा धर्म प्रचार के विभिन्न आयोजन भी रखे जाते रहे हैं गत ६ जुलाई से १० जुलाई पर्यन्त बूंदी के धर्मप्रेमी जनो ने आर्य भजनोपदेशक प० भगवतीप्रसादजी 'अभय' के रोचक भजनो एव उपदेशो का रसास्वादन किया। पहले दो दिन बरसात के कारण कार्यक्रम नही रखा जा सका। शेष तीन दिन विभिन्न स्थानो पर सभा के आयोजन रखे गये। पहले दिन प्रधान प० नत्थूरामजी के निवास स्थान पर, दूसरे दिन श्री बस्तीरामजी भाटिया के मकान के आगे सडक पर तथा तीसरे दिन नगर के दूसरे छोर बालचंद पाडा मे आर्यसमाज के उपप्रधान श्री परमात्मा सहायजी निवृत्त अतिरिक्त जिलाधीश के मकान के आगे सडक पर प्रचार की व्यवस्था रही।

उपस्थित पुरुषो और महिलाओ ने प० जी की उपदेश-शैली एव सरलभाषा तथा लौकिक व्यावहारिक दृष्टांतो के माध्यम से विषय-वस्तु के सफल निर्वाह की भूरि २ प्रशंसा की। उपदेश से प्रभावित होकर श्री बस्तीरामजी की धर्मपत्नी श्रीमती लाजवतीदेवी ने १२) रु० भी आर्यसमाज बूंदी को भेंट किया।

## आर्यसमाजी पत्र सम्पादकों से निवेदन

ऋषि दयानन्द से लेकर अब तक आर्य जगत् में सैकडो पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन हुआ है, उन सभी की एकत्र जानकारी सुलभ हो सके, तदर्थ शोध कार्य किया जा रहा है। अत सम्बन्धित आर्य संस्थाएँ (आर्य प्रतिनिधि सभाए गुरुकुल, कालेज, स्कूल, शोध संस्थाएं मंडल आदि), पत्र संपादक गण एव पत्र संचालक गणो से विनम्र निवेदन है कि वे अपने अपने पत्रो का प्रारम्भ से अब तक का विवरण (जन्म से अब तक के सम्पादक, स्वामी-संकट संघर्ष, विशेष महत्वपूर्ण घटनाए या तथ्य, प्रकार, गेट-अप आकार आदि) आर्य मार्तण्ड के सम्पादक को या शोध कार्य मे रत श्री मदन मोहनजी जावलिया प्राध्यापक राजकीय महाविद्यालय बून्दी को प्रेषित करने की कृपा करें। इनके अतिरिक्त जो भी सज्जन इस सम्बन्ध मे जानकारी रखते हो, वे भी अपनी जानकारी का लाभ उक्त पते पर प्रेषित करने की कृपा करें।

सम्पादक—आर्य मार्तण्ड

# वृक्षों पर यज्ञ का अदभुत प्रभाव

लेखक—श्री जी. आर. मेहता, सुरेन्द्र भवन, २१८, ११वीं रोड, चेम्बूर, बम्बई-७१

सब धर्मों का आदि स्रोत वेद ही है। धीरे-धीरे लोगो के सर्कीर्ण विचारो ने धर्म को विभिन्न अङ्गो मे विभक्त कर दिया। परन्तु इन सब का आदि मूल एक ही है और वह है—वेद। हमारे पूर्वजो ने सदा हमारे सम्मुख वेदों के मन्त्र का तथा उनके व्यापक अर्थो का व्याख्यान किया। ऋषि मुनियो ने सदा वेदो की ही महिमा गाई है। उन्होंने अपने उपदेशो से सहस्रो हृदयो में ज्ञान और धर्म की ज्योति जलाई है। ज्ञानी और धर्मात्मा पुरुषो ने ही अधर्म क कुमार्ग पर अग्रसर होते हुए अनको पथ-भ्रष्टो को सुमार्ग प्रदर्शित किया है।

यज्ञ का प्रभाव केवल मनुष्य जाति पर ही नहीं अपितु प्रकृति पर भी देखा गया है। इसके कई उदाहरण देखे और सुने हैं जो कि हम सब को आश्चर्य चकित भी कर देते हैं। जन्म से गूंगी सूरत की एक बालिका को वेद के यज्ञ द्वारा वाणी की प्राप्ति भी एक अघट अद्भुत घटना है। इस वर्ष सूरत मे गायत्री महा यज्ञ हो रहा था, श्री प० वीरसेन जी वेदश्रमी, वेद विज्ञानाचार्य ब्रह्मा क आसन पर विराजमान थे। उनके मुख से सुन्दर रूप मे मन्त्रोच्चारण को सुनकर ऐसा लगता है कि प्रकृति भी उनक साथ उच्चारण कर रही है। जीवित ही क्या जड पदार्थों को भी वाणी मिल जाती है। अन्य अनेक विद्वान् वहा उपस्थित थे। गायत्री का उच्चारण हो रहा था। एक गूंगी बालिका ने सुना। उसकी आत्मा एव आन्तरिक भावनाए विचलित हो उठी। लगातार सुनते-सुनते उस बाला को इस मन्त्र का एक एक शब्द कण्ठस्थ हो गया। लेकिन वह जिह्वा स उच्चारित करने क लिये बाध्य थी। मन्त्र का एक-एक अक्षर उसके मन और मस्तिष्क म झकृत हो रहा था लेकिन वह मूक थी—और अन्त मे वह इस बन्धन से मुक्त हो गई। अनायास ही उसका स्वर भी उस मिश्रित जन स्वर मे जागृत होकर मिल गया। यह एक आश्चर्य ही था। प्रकृति म एक परिवर्तन हो था। इसे वेद के यज्ञ का प्रभाव कहा जाय तो अतिशयोक्ति न होगी।

यह तो मनुष्य म परिवर्तन का एक उदाहरण था। इसी प्रकार का अद्भुत परिवर्तन यज्ञ के द्वारा प्रकृति मे भी देखा गया है। पजाब का प्रसिद्ध आम है मालदा। आर्य समाज के प्रचार के साथ मेरा एक शौक है—सुन्दर बाग-बगीचा लगवाने का, जिसमे भांति-भांति के फल-फूल और पौधे आदि हो। मेरा सदा यही प्रयत्न रहा है कि भारत के कोने-कोने से, जहा तक सम्भव हो सके नाना किस्मो के फल-वृक्ष अपने बगीचे मे लगवाऊ। अपनी उसी भावना से प्रेरित होकर मैंने सहारनपुर स मालदा आम का पौधा मगवाया, परन्तु यहा कृषि विभाग वालो ने यही कहा कि इस वृक्ष को उष्ण जलवायु की आवश्यकता है। बम्बई की जलवायु नम है तथा अन्य प्राकृतिक परिस्थितिया इसके अनुकूल नहीं है अतः बम्बई मे यह फल नहीं देगा। मैंने उनके इस कथन को नहीं माना और यह पौधा अपने उद्यान में उस स्थान पर लगवाया जहां प्रतिदिन मैं अपने परिवार के साथ गायत्री जाप और सन्ध्या किया करता हू।

समय व्यतीत होता रहा और उसके साथ-साथ यह नन्हा पौधा मेरी आंखो के सामने शनै शनै बढता गया। एक दिन इस नन्हे पौधे ने वृक्ष का रूप धारण कर लिया। हम सब बडी उत्सुकता से प्रत्येक वर्ष आशा करते थे कि इस वर्ष तो अवश्य फल देगा। हमारी समस्त आशाओ का केन्द्र यही था, क्योंकि इसके फलने का सन्देह पहले दिन से ही हमारे मन मे भर दिया गया था। और तब हमारा सन्देह विश्वास में परिवर्तित हो गया जब कई वर्षों तक फल-फूल का निशान तक भी दिखाई नहीं दिया।

मैं सन् १९६१ में महर्षि स्वामी दयानन्द जी की जन्म-भूमि टकारा मे गया था, वहा मेरी भेंट श्री प० वीरसेन जी वेदश्रमी, वेदविज्ञानाचार्य से हुई। एक दिवस सन्ध्या समय उनके पास कुछ लोग बैठे हुए थे। विभिन्न विषयो पर वार्तालाप हो रहा था। उसी समय मैंने इस आम की भी चर्चा की। श्री प० वीरसेन जी वेदश्रमी ने सुझाव दिया कि उसी वृक्ष के नीचे यजुर्मन्त्रो से एक सप्ताह का यज्ञ करवाइये। मेरी भी कई दिनों से इच्छा थी कि मैं अपने घर पर श्री वेदश्रमी जी से यज्ञ करवाऊ।

अपनी मन शान्ति के लिये तथा अपने परिवार की सुख शान्ति और समृद्धि के लिये मैंने फरवरी १९६४ मे यजुर्वेद से यज्ञ करवाने का निश्चय किया। १८ फरवरी को इसी आम के वृक्ष के नीचे यज्ञ का शुभारम्भ हुआ। वैदिक साधना आश्रम यमुना नगर के श्री स्वामी सत्यानन्द जी एव वहा के स्नातक यज्ञ के लिये पधारे। बडौदा आर्य कन्या महाविद्यालय की छात्रायें भी आईं। श्री प० सोमदत्त जी विद्यालङ्कार तथा अनेक महानुभाव इसमे सम्मिलित हुए।

इस यज्ञ मे ब्रह्मा की पदवी ग्रहण की श्री प० वीरसेन जी वेदश्रमी, वेदविज्ञानाचार्य ने। यज्ञ की पूर्ति का समस्त भार इन्ही के कन्धो पर था। श्री प० वीरसेन जी वेदश्रमी के मुख से मन्त्रोच्चारण की सुन्दर ध्वनि को श्रवण करके तथा यज्ञ की निर्विघ्न पूर्ति से मेरा मन शान्ति एव प्रसन्नता का अनुभव करने लगा। मेरे मन मे इच्छा हुई कि पुनरपि आगामी वर्ष भी इसी प्रकार यज्ञ करवाऊ।

हमारे आश्चर्य की सीमा न रही जब उसी वर्ष उस आम के बौर की भीनी-भीनी सुगन्धि हवा मे भर गई और देखते ही देखते वह वृक्ष आमो से भी भर गया। दूसरे वर्ष सन् १९६५ में यज्ञ न करा सका और उस आम के वृक्ष मे फल भी नहीं आये। सन् १९६६ मे यजुर्वेद का यज्ञ न करा सका और फिर फल नहीं आये। सन् १९६७ में बम्बई में जब श्री प० वीरसेन जी वेदश्रमी से भेंट हुई तो मैंने उनसे इसका कारण पूछा तो उन्होंने तुरन्त उत्तर दिया कि आपको पुनः यज्ञ का आयोजन करना था। सन् १९६८ मे भी उस वृक्ष में फलों के लगने की प्रतीक्षा की, परन्तु परिणाम पूर्ण निराशाजनक ही हुआ। अगस्त मास में जब श्री वीरसेन जी वेदश्रमी पुनः बम्बई पधारे तो फिर उनसे इसका उपाय पूछा कि यदि बड़ा यज्ञ न कराया जा सके तो क्या करें? उन्होंने उत्तर दिया कि यदि बड़ा यज्ञ कराने में असुविधा है तो जो यज्ञ आप अपने घर प्रतिदिन सपरिवार करते हैं, उसी को इस आम के वृक्ष के नीचे किया करें और उसकी जो भस्म हो उसको इसी वृक्ष की जडो में डालते रहें। तदनुसार जनवरी १९६९ से यज्ञ उसी आम के वृक्ष के नीचे प्रारम्भ किया और इसी वर्ष उस आम में पुनः अत्यधिक और अत्यन्त मधुर फल भी लगे।

क्या यह यज्ञ का ही प्रभाव नहीं है। जितने विश्वास के साथ श्री प० वीरसेन जी वेदश्रमी, वेद-विज्ञानाचार्य ने यज्ञ के करने करवाने के लिये बार-बार प्रेरणा दी मानो उन्होने यज्ञ की क्रिया और फलो का पूर्ण रीति से प्रत्यक्ष अनुभव सिद्ध कर रखा हो। अथवा किसी अज्ञात शक्ति ने उन्हे बता दिया हो कि यज्ञ के प्रभाव से वृक्ष अवश्य फल देगा। मेरा तो यह दृढ़ विश्वास है कि जो वृक्ष इतने दिनों से फल रहित था वह यज्ञ के ही प्रभाव से फला और फूला है। मेरे इस विश्वास के साक्षी मेरे परिवार के तथा मेरे वे इष्ट मित्र भी हैं जिन्होंने इसके फलो का रसास्वादन किया है। ॥ इति ॥

## आर्य समाज चौमूं का वार्षिकोत्सव

दि० ३ व ४ अगस्त को आर्य समाज चौमूं का वार्षिकोत्सव सानन्द सम्पन्न होगया। सभा की ओर से श्री प० भूदेवजी शास्त्री तथा श्री प० भगवती प्रसादजी अभय ने अपना सक्रिय सहयोग प्रदान कर उत्सव को सानन्द सफल बनाया। श्री घनश्याम जी गुप्त का उत्साह अनुकरणीय था।

मन्त्री—आर्य समाज चौमूं

## गीत

श्री प० प्रकाशचन्द्र जी कवि रत्न अजमेर

काहे! होत उदास मना! भगवन जब तेरे साथ रे!।
जानत है जो सब के मन की,
पीर हरत है जो नित जन की।
ऐसे कृपानाथ के होते, तू कब, दीन, अनाथ रे!।
पार करेगा वही नाव रे,
तू क्या जाने अरे! बावरे।
तेरे हैं दो हाथ किन्तु उसके हजार हैं हाथ रे!।
देर भले अन्धेर नहीं है,
करता सच्चा न्याय वहीं है।
वही सुनेगा एक दिवस सब तेरी करुण-गाथ रे!।
उसकी पावन ज्योति निरख रे,
प्रीति पुनीत उसी से रख रे।
आश उसी की कर 'प्रकाश' मत झुका किसी को माथ रे!।

# मेरी उड़ीसा प्रचार यात्रा

## श्री स्वामी ब्रह्मानन्दजी सरस्वती का उड़ीसा में वैदिक धर्म चक्र

लेखक—पन्नालाल पीयूष पहाड़ गंज, अजमेर

श्री स्वामी ब्रह्मानन्दजी सरस्वती महाराज दुबले पतले शरीर वाले किन्तु दस अथाह परिश्रमी और लगनशील सन्यासी हैं।

गत दिसम्बर मास में आर्य समाज विधान सरणी—कलकत्ता के उत्सव के अवसर पर पूज्य स्वामीजी से साक्षात्कार हुआ। वैसे पूर्व भी स्वामी जी से परिचय था। स्वामीजी ने मुझे उडीसा में प्रचारार्थ आने का निमन्त्रण दिया तदनुसार मैंने मास फरवरी ता० २५ से १० मार्च तक का समय उड़ीसा मे प्रचारार्थ दिया।

स्वामीजी पहले प्रचार साईकिल से माइक पीठ पर बांधकर करते, इससे इनके स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव पड़ा और अस्वस्थ रहने लगे। फिर प्रचार की धुन बराबर रही। इससे कलकत्ता तथा बम्बई निवासी कुछ आर्य सज्जन प्रभावित हुए और प्रचार के लिये २२ बाईस हजार की एक जीप कार स्वामीजी को लेकर भेंट की। स्वामीजी के पास अपने दो माइक तो थे ही अब जीप का प्रबन्ध और हो गया। जीपकार माइक इन साधनो से निरन्तर घूम घूम कर बनवासियो में जहाँ जहाँ विदेशी मिशनरियो का जाल बिछा हुआ है, वहाँ जाकर प्रचार द्वारा उनके जाल से छुडा भारत तथा भगवान राम कृष्ण, और गंगा के भक्त बनाते हैं।

मैं ता० २५ फरवरी को स्वामीजी द्वारा सस्थापित गुरुकुल आम सेनाजी (खरियार रोड स्टेशन से २ मील दूरी पर है स्वामीजी ने जीप-कार भेज दी थी) के उत्सव पर पहुचा ये स्थान उडीसा और मध्यप्रदेश की सीमा रायपुर के पास है इस गुरुकुल को लगभग दो वर्ष से आरम्भ किया है जिसमे २५ ब्रह्मचारी हैं। जिनके माता पिता कभी ईसाई बन गये थे उन बनवासियो को पुन शुद्ध किया उनके बच्चे हैं। इनके भोजन, वस्त्र पाठ्य सामग्री आदि की सारी व्यवस्था निशुल्क स्वामीजी द्वारा होती है। गुरुकुल के अधिष्ठाता पं० धर्मदेवजी हैं, जो आचार्य भगवान देवजी द्वारा स० स्थापित गुरुकुल झज्झर (हरियाणा) के स्नातक है। बडी लगन और निष्ठा से गुरुकुल का कार्य करते हैं। गुरुकुल का महोत्सव ४ दिन बडे समारोह पूर्वक मनाया गया जिसमें आसपास के ग्रामो तथा रायपुर आदि से सैंकडो की सख्या मे जनसमुदाय ने आकर भाग लिया।

प्रात स्वामीजी के आचार्यत्व मे यज्ञ होता था जिसमे आसपास के ग्रामो की देवियाँ श्रद्धा से थालो में चावल व फल तथा घृत नारियल शाक सब्जी पुष्प मालाए लेकर आती और स्वामीजी को यज्ञ मण्डप मे श्रद्धा से अर्पित करती, आम आम सेना निवासियो ने नगर के समीप गुरुकुल के लिये और भूमि प्रदान की है वहा कुआ भी है कृषि आदि भी हो सकेगी और गुरुकुल आश्रम भी वहीं बनेगा।

यहाँ उत्सव सम्पन्न कर यहा से ५० मील की दूरी पर खरियार नगर है, इसके आसपास ईसाई मिशनरियों के षडयन्त्र से कई वनवासियों तथा हरिजन के ग्राम के ग्राम ईसाई बन गये थे। स्वामीजी के प्रयत्न से उनको पुन शुद्धकर हिन्दू धर्म मे लाया गया। ता० १ मार्च को दो हरिजन ग्रामों के हरिजनो को शुद्धि का आयोजन किया गया है हम ५ बजे प्रात गुरुकुल आम सेना से जीप कार द्वारा चले और ७ बजे यहाँ यहाँ पहुचे। श्री स्वामीजी के इस अभियान मे पं० धर्मदेवजी, पं० गोविन्दप्रसादजी विद्यावारिधि पं० रामरीझनजी शर्मा कर्मकर्ता पं० सुरेन्द्रजी तथा अन्य लगभग १५ कार्यकर्ता थे। कुछ जीप मे कुछ पीछे ट्रोली पर बैठे। खरियार पहुचे। यहा पहुचते ही हरिजन बस्ती में एकत्रित जन समुदाय ने बडा स्वागत कर वैदिक धर्म की जय के नारे लगाये वहा पडाल बना था। यज्ञशाला सुन्दर बनी थी और नगर के गणमान्य सज्जनो ने अनेक द्वार बनाये थे। वहा आकर स्वागत किया वहा इसमें हरिजन भी पर्याप्त सख्या में थे।

हम स्नान आदि से निवृत्त हुए। पश्चात शुद्धि का कार्य आरम्भ हुआ। जिसमे लगभग १०० के करीब स्त्री पुरुष तथा बालक थे। पुरुष व बालकों का मुण्डन करा शुद्धि की गई। इन सबको विधिवत स्नान करा बच्चो व पुरुषो को यज्ञोपवीत दिये और सबको स्वामीजी ने पहनने के वस्त्र प्रदान किये और शुद्धि शुदा हरिजन तथा स्थानीय हरिजनो का सम्मिलित प्रीतिभोज स्वामीजी की ओर से कराया गया। जिसमें ३०० व्यक्तियो ने भाग ले भोजन किया।

सायकाल नगर के (जो पहले एक छोटी सी रियासत थी) नागरिको तथा राज्याधिकारियो ने हमारे स्वागत मे एक सभा का आयोजन किया। जिसमे स्वामी जी का भाषण तथा मेरे सगीत भजनोपदेश का कार्यक्रम रहा। श्री प्रेमानन्द जी का उडीसा भाषा मे प्रवचन हुआ। यह कार्यक्रम जो सायकाल ६॥ बजे आरम्भ हुआ था ७॥ बजे सम्पन्न कर यहा से लगभग १०० मील दूरी पर कांटा बाजी नगर मे सार्वजनिक सभा का आयोजन था वहा ९॥ बजे पहुचे और कार्यक्रम आरम्भ हुआ जो लगभग १२ बजे समाप्त हुआ। यहा के उत्साही कार्यकर्ता श्री पवनकुमारजी ने ठहरने का तथा भोजन आदि का उत्तम प्रबन्ध किया। लगभग २ बजे भोजन आदि कर विश्राम किया। इस नगर में उत्तर भारत तथा पजाब के निवासी अधिक सख्या मे रहते हैं। यह व्यापारिक नगर है। किन्तु यहा वैदिक धर्म प्रचार की कमी है।

कांटा बाजी में प्रात उठ निवृत हो कुछ साथियो को स्वामी जी ने विदा किया हम यहा से २० मील दूर पटनागढ गये। यहा पहले आर्य-समाज का अच्छा प्रचार था। बरासिंह रियासत के दीवान प्रसिद्ध आर्यसमाजी उत्तर प्रदेश के सेठ मदन मोहन जी के प्रभावो के कारण प्रचार तथा आर्य समाज के उत्सव भी होते रहे। किन्तु अब कार्यकर्ताओ मे शिथिलता आ गई उनसे मिले कुछ उत्साहवर्धक प्रेरणा दे वापस कांटाबाजी आय और श्री पवनकुमारजी के यहां भोजन कर के टिटलागढ़ को प्रस्थान किया और लगभग १२० किलोमीटर की यात्रा कर रात्रि को ९ बजे पहुचे। यहा कुछ उत्साही मारवाडी जैन समाज के नवयुवक स्वामी जी के भक्त है। उनके प्रबन्ध मे अग्रवाल भवन मे सार्वजनिक सभा का आयोजन किया गया। जो भजनोपदेशक के पश्चात् रात्रि को १२ बजे सम्पन्न हुआ, नवयुवकों ने बडा स्वागत सत्कार किया। रात्रि को वहीं विश्राम किया।

दूसरे दिन प्रात. निवृत हो टीटलागढ़ आये, यहां दो एक व्यक्ति उत्साही कार्यकर्ता है। श्री पं० देवदत्तजी का अपना प्रेस है। इन्हीं के यहा ठहरे, रात्रि को बाजार मे सार्वजनिक सभा का आयोजन किया। आज होली का भी त्योहार था तथापि जनता पर्याप्त सख्या मे आई। बीच में एक पुलिस अधिकारी जो नशे मे था। सभा मे विघ्न डाला किन्तु स्वामी जी के प्रभाव से सभा सानन्द सम्पन्न हुई।

**दयानन्द कालेज —**

जब इधर रेल्वे लाइन बनी तब रेल्वे अधिकारी और कर्मचारियो के लिये जो भवन बने हुए थे रेल्वे बन जाने के पश्चात् कर्मचारियों के चले जाने पर उस समय के उडीसा के राज्यपाल श्री खोसला साहिब (पजाबी) आर्य विचारों के थे। उनसे डी० ए० वी० कालिज कमेटी के अध्यक्ष स्व० श्री महेरचन्दजी महाराज द्वारा प्रयत्न करने पर वे सारी भूमि और भवन जो लगभग ५ ६ लाख के मूल्य के थे केवल ८० अस्सी हजार रुपये मे मिल गये, और यहा पर दयानन्द एंग्लो वैदिक कालेज खोल दिया गया जो अच्छी प्रकार से चल रहा है कालेज के प्रिंसीपल भी इसी प्रान्त के अच्छे आर्य विचार के तथा अनुभवी कार्यकर्ता हैं।

इसी कालेज की भूमि के समीप आर्य समाज भवन बनाने के लिये भूमि ले रखी है और आर्य पुरुषो का प्रयत्न है कि जल्दी ही समाज का भवन बनकर तैयार हो जायेगा।

**टीटलागढ़ से बलांगिर —**

टीटलागढ से स्नान सध्या अग्नि होत्र जल पान आदि से निवृत हो हमारा मण्डल जीप द्वारा यहा से २० मील की दूरी पर बेलगाव पहुचा। यद्यपि आज होलीका दहन द्वितीय दिवस धूलि-वन्दन (धूलहडी था) भाग मे रग गुलाल धूल मिट्टी लोग उडा रहे थे किन्तु बेलगाव मे आज हाट होने से धूम धमक यहा ब द था। यहा एक प्रतिष्ठित सेठ अमवरामजी जैन जो कि श्री आचार्य तुलसी के अणुव्रत के अनुयाई हैं श्री स्वामी ब्रह्मानन्दजी के प्रति अत्यन्त श्रद्धा रखने है इन्ही के यहाँ हम ठहरे यहा के विद्यालय मे भजन व्याख्यान का अन्य प्रबन्ध कराया। आसपास के ग्रामों के लोग जो हाटे मे आये थे बडे प्रेम और श्रद्धा से सभा मे भाग लिया प्रात १० से १२ बजे तक कार्यक्रम चला पश्चात् सेठजी ने उत्तम भोजन का प्रबन्ध किया और अच्छा आतिथ्य सत्कार किया। क्रमश

## मेरे जीवन के संस्मरण !

मेरे विरोध में काशी के पौराणिक छात्रों द्वारा एक बार लगभग तीन चार बार क्षेत्र स्वामी सेठों को सहस्रों छात्रों के हस्ताक्षर करवा कर भेजे गये। अन्ततोगत्वा मालिकों ने जाँच करने के लिये एक अपने समझदार मुनीम को भेजा। वह प्रातः सीधा ही अन्न-क्षेत्र में आया और आते ही पूर्णमलजी को उपालम्भ दिया कि आपने अपने क्षेत्र में ऐसा कौनसा नास्तिक छात्र प्रवेश किया है, जिसके बारे में सेठों के पास बार२ लिखा हुआ आता है। पूर्णमलजी ने कहा—एक अजमेर का गौड़ ब्राह्मण है। अपना अध्ययन त्याग कर यहां पढ़ने आया है और पढ़ता और पढ़ाता भी है। अपने रास्ते आता है। और अपने रास्ते जाता है। बनता है तो क्षेत्र में जो अन्य छात्र हैं, उनकी सेवा सहायता करता है और नियम से नित्य संध्या गायत्री का जाप हवन यज्ञ करता है। आप ऊपर जाकर देखलें,यह क्या नास्तिक है। मुनीमजी ऊपर आये। मैं स्नान करके संध्या कर रहा था और अग्निहोत्र का सामान रखा था। मेरे कमरे में महर्षि दयानन्द आदि महापुरुषों के चित्र लग रहे थे। यह सब देखकर आपने पूर्णमलजी से छात्र तो अच्छा ज्ञात होता है। क्या यह आर्यसमाजी है? पूर्णजी ने कहा मैं तो क्षेत्र में अच्छे छात्र रखता हूँ और ये जो होहल्ला मचाते हैं। ये केवल भोजन भट्ट हैं।

पढ़ने लिखने के नाम राम का नाम है और काम पड़े तो क्षेत्र से काली तक से मागें। इन छात्रों में ऐसे भी छात्र हैं। ये सारी बातें जानकर मुनीमजी सेठों के पास गये और सारी कथा कह सुनाई। सेठों के यहां से लिखा आया कि आप अपने क्षेत्र में पात्र छात्रों को प्रवेश करें और उनको मानपूर्वक भोजन दें। फिर क्या था, मैं सुखकर सुयोग्य आर्य छात्र अपने क्षेत्र में भोजनार्थ प्रवेश करने लगा। एक दिन बेनीराम और माधव छात्रों ने क्षेत्र के छात्रों को रुद्रि का पाठ करके भोजन त्याग देने का कार्यक्रम बनाया। इसकी सूचना भोजन बनाने वाले ने मुझे दे दी। क्योंकि मैं चौके में बैठकर ही भोजन किया करता था। मैंने यह हाल पूर्णमलजी से कहा, वे अस्वस्थ थे। आये और भोजन करने वालों से कहा:— "आया मारा खेतर में आर्य और सनातनी को झगड़ो कोनी, जो आछा विद्यार्थी है, वो भी पूछ है, थाने भोजन करनो है तो ठीक, अन्यथा कुत्तों को ढलवा दूंगा, थारो प्रबन्ध और क्षेत्र में करलों।" उस दिन तो सबने चुपचाप भोजन कर लिया। पर वे हम आर्य छात्रों के और अधिक विरोधी होगये और मारपीट पर उतारू होगये। जिनमें काशी के व्याकरण के सुयोग्य छात्र श्री प० शंकरदेवजी, मारके- पं० बुद्धदेवजी उपाध्याय, पं० गंगादत्तजी अलगूरायजी बालशास्त्रीजी, कुंजबिहारीजी और मुझे मारने का कार्यक्रम बनाया। प० शंकरदेवजी से तो विश्वनाथ के फाटक पर मारपीट होगई औरों के भी कुछ चोटें लगी। धीरे २ यह सब काण्ड समाप्त होगया। अब मैंने सोचा अब के किसी ब्राह्मण के यहाँ भोजन होने पर मैं जाकर इन पोपों का अवश्य ही भ्रष्ट करूंगा। हमारा क्षेत्र बड़े क्षेत्रों में गिना जाता था। क्षेत्र के छात्रों को भी ब्राह्मण भोजन का निमन्त्रण आया मैं भी गया। मेरे जाते ही उपरोक्त छात्रों ने सारे क्षेत्रों के छात्र को मेरी जानकारी करवाई और मुझे मारने का कार्यक्रम बनाया। मेरे क्षेत्र के पौराणिक छात्रों ने यह सब हाल मुझे बता दिया। यह बात सुनकर मैं वहां के नामी, पहलवान झूमनूं का गौड़ ब्राह्मण, जो वहां के गुन्डों का नेता था। मैंने जाकर उससे नमस्कार किया और यह सब हाल कह सुनाया। इन्होंने उक्त छात्रों के नेताओं को बुलाकर कह दिया। यदि मेरे इस भाई को किसी ने हाथ भी लगा दिया तो काशी में रहना भुला दूंगा।

## आर्य समाज टोंक का चुनाव

दि. ५-८-६९ को श्री स्वामी उमानाथ जी की अध्यक्षता में निम्नांकित आर्य समाज टोंक का निर्वाचन सानन्द सम्पन्न हुआ।

१. श्री. फूलचन्द जी बजाज—प्रधान
२. नारायण प्रकाश जी—उपप्रधान
३. प्यारेलाल जी—मंत्री
४. हुकुमचन्द जी—उपमंत्री
५. लल्लूराम जी—कोषाध्यक्ष
६. रामनाथ जी चौहान—संगठन मंत्री
७. कँवर बहादुर—कार्यालय मंत्री

( शेष पृष्ठ २ का )

आप को और दूसरों को धोखा देनेवाली बात है। और यह अक्षरशः सत्य है कि आज जितने भी हिन्दू धर्मान्तर या समानान्तर होते हैं अथवा करते हैं, उनमें से मुश्किल से दो या तीन प्रतिशत ऐसे होंगे, जिन्होंने बायबल या कुरान का अध्ययन किया हो, और उन्होंने उस धर्म को चुना हो? यह बात ध्रुव सत्य है जो कि नजर अन्दाज नहीं की जा सकती। विचार को स्वतन्त्रता एक बात है और आचरण की स्वाधीनता दूसरी।सवर्ण हिन्दू यह नहीं सवाल करता कि शूद्रों का स्वामी बना रहने में उसका अपना हित है, लेकिन द्विजों का दास बना रहने में उस शूद्र का क्या हित हो सकता है, जो आज तक सवर्णों की दया का पात्र रहता चला आ रहा है? हिन्दुओं में विचार की स्वतन्त्रता अवश्य है, परन्तु आचरण के नाम पर एक मात्र बिन्दु है। जितने भी सुधारक धर्म के नायकों कुहाई देकर जांत-पांत में विश्वास न रखने की डींगे हांकते हैं, यदि देखा जाय तो उनमें से मुश्किल से एक आध ही ऐसे हैं जो कि इसे कार्य रूप में परिणित करते होंगे।

यद्यपि भगवान बुद्ध का बौद्ध-धर्म, वास्तविक हिन्दु-धर्म से, जिस की व्याख्या पूज्य महात्मा गांधी ने की है, उससे अधिक दूर नहीं है और न ही ईसा या मूसा की भांति बाहर से आया हुआ या जबर-दस्ती थोपा हुआ धर्म है? यह तो भारत भूमि की पवित्र गोदी में प्रगटे हुए उस महान् त्यागी,तपस्वी, वीतराग-जिसके जीवन का प्रत्येक क्षण, शरीर का रोम-रोम मानव मात्र के कल्याण के लिए बीता हो, सच्चे अर्थों में मानवता के वास्तविक पुजारी, का मानव धर्म है जिसमें न कोई शूद्र है और न ही कोई ब्राह्मण। वह तो मानव मानव में प्रेम, द्वेष का परित्याग और वासनाओं से विमुक्ति करना सिखाता है। हो सकता है डाक्टर महोदय को इन्हीं विशेषताओं या जैसा कि ऊपर लिखा जा चुका है हिन्दू धर्म की अस्पृश्यता के कलंक को दूर करने के लिए बौद्ध धर्म को अपना कर वर्ण-व्यवस्था और जात-पांत के पाप से मुक्त होने के लिए बौद्ध-धर्म रूपी समुद्र में विलीनी करण कर पावन हो अपने आत्म सम्मान की रक्षार्थ उपरोक्त वाक्यों को पूरा करना पड़ा हो?

मुझे डाक्टर महोदय से मिलने, वार्तालाप तथा उनके साहित्य को अवलोकन करने का सुअवसर प्राप्त हुआ था। वे प्रतिभाशाली और उच्चकोटि के महान् विद्वान थे, जिनकी गणना संसार के गिने चुने व्यक्तियों में थी। वे हमेशा यही कहते रहते हिन्दू समाज को छिन्न-भिन्न करने वाली यदि कोइ चीज है, तो वह है वर्ण व्यवस्था और इससे पैदा जात-पात, जब तक इसका समूल रूप से नाश नहीं किया गया, तब तक देश में एकता नहीं आ सकती? और छूत अछूत अस्पृश्यता का भेद बना ही रहेगा। वे जिसके कारण कि लाखों नहीं करोड़ों मानवों ने अपने आत्म सम्मान की रक्षा के लिए अन्य धर्म को अपनाया। अतः अब भी यदि हिन्दू समाज ने समयानुसार डाक्टर महोदय जैसे अनेकों धर्म परिवर्तन करने वाले व्यक्तियों से शिक्षा लेकर अपने धर्म के सोखचों में तबदीली नहीं की और वही स्त्री शूद्रों नाधीयताम तथा अछूत अथवा अस्पृश्यता आदि का बेसुरा राग अलापते रहे, तो न तो सुराज्य की कल्पना ही सार्थक हो सकती है और न ही धर्म का जय और गऊ माता की रक्षा का नारा ही सफल हो सकता। समय के परिवर्तन ने किसी को किसी से दब कर आश्रित रहना—अब भुला दिया। ❀

## दयानन्द विद्यालय अजमेर छात्र-संसद के चुनाव

हाल ही में दयानन्द विद्यालय—छात्र संसद का निर्वाचन विद्यालय अनुशासनाध्यक्ष श्री कृष्ण-प्रसाद जी शर्मा (सहायक अध्यापक) की अध्यक्षता में दि. ६-८-६९ को निम्न प्रकार सम्पन्न हुआ—

श्री बद्रीनाथ जी भार्गव (प्रधानाध्यापक) संरक्षक, श्री लक्ष्मणसिंह जी पारख (सहायक अध्यापक) प्रमुख परामर्शदाता, सर्वश्री विष्णुमोहन रावत—अध्यक्ष, मोटसिंह—प्रधान मन्त्री, नवीन कुमार शर्मा-विरोधी दल का नेता, रमेश कुमार—उप प्रधान मन्त्री, अनिल कुमार सुराणा—शिक्षा मन्त्री, जगदीश प्रसाद—स्वास्थ्य मन्त्री, विनोद कुमार झा—क्रिडा मन्त्री, महादेव—अनुशासन मन्त्री, निर्मल कुमार—साहित्य मन्त्री, नवीन जैन—सांस्कृतिक मन्त्री, अरुण कुमार—वित्त मन्त्री, श्रवण कुमार—गृह मन्त्री, अजीतसिंह पारख—श्रम मन्त्री।

### भूल सुधार

दि. १ अगस्त १९६९ के आर्य मार्तण्ड के पृ० ७ पर "दयानन्द कालेज शोलापुर का वार्षिक कार्यक्रम" वृत्त प्रकाशित हुआ है। उसके प्रेषक श्री ओ३म् कुमार जी हैं। प्रेषक का नाम मुद्रित होने से रह गया था।

## दिनांक २७ अगस्त ६९ को श्रावणी पर्व तथा वेद सप्ताह पूर्ण समारोह से मनायें !

प्रान्त की समस्त समाजों तथा आर्य जनता से निवेदन है कि वे दिनांक २१ अगस्त से २७ अगस्त ६९ तक 'वेद सप्ताह' तथा दिनांक २७ अगस्त ६९ को श्रावणी पर्व' पूर्ण उत्साह एवं समारोह से सामूहिक रूप से मनायें।

१. नित्य प्रातः प्रभात फेरी का, सस्वर वेद मन्त्र पाठ, सुमधुर भजनों एवं जय घोषों के साथ आयोजन करें।

२. वेद कथा, प्रवचन एवं भजनोपदेशों की सामूहिक व्यवस्था करें।

३. सायंकाल नित्य सार्वजनिक सभाओं के द्वारा वैदिक धर्म एवं ऋषि के जीवन के महत्व पर प्रकाश डाला जाय।

४. वाद-विवाद, खेल-कूद, निबन्ध, कविता प्रतियोगिताओं तथा वैदिक धर्म के ज्ञान सम्बन्धी परीक्षाओं का आयोजन करें।

५. प्रीतिभोज तथा शोभा यात्रा के द्वारा जन-जागरण की ओर प्रयास करें।

६. आर्यवीर दल का विशेष दीक्षा शिविर तथा सामूहिक यज्ञोपवीत-दान-यज्ञ का आयोजन करें। उत्तम वेद पाठी विद्वानों तथा प्रतियोगिता में विजेता प्रत्याशियों को सम्मानित एवं पुरस्कृत करें।

७. दिनांक २७ अगस्त ६९ को विशेष आकर्षक कार्यक्रम आयोजित करें। यथा यज्ञ, सामूहिक शुद्धि, ध्वजारोहण, यज्ञोपवीत परिवर्तन, सार्वजनिक सभा वेद पाठ आदि।

इस अवसर पर प्रत्येक सभासद ऋषि ऋण मध्ये न्यूनतम ५० पैसे तथा अधिकाधिक श्रद्धानुसार धन राशि एकत्रित कर सभा कार्यालय को भेजने की कृपा करें। —सभा-मन्त्री

---

## आर्य मार्तण्ड प्रेमियों से

आर्य मार्तण्ड आर्य प्रतिनिधि राजस्थान का मुख पत्र है। वैदिक धर्म तथा महर्षि दयानन्द का पावन सन्देश जन-जन तक पहुंचाने में यह निरन्तर प्रयत्नशील है। हम चाहते हैं कि आपके हार्दिक सहयोग से इस पत्र को शीघ्र ही साप्ताहिक रूप देकर इसे अधिक आकर्षक, लाभप्रद एवम् जन-प्रिय बनाया जाय, इसमें आपका योगदान परमावश्यक है। आशा है कि आप निम्न प्रकार से सहायता प्रदान कर इस पत्र की उपयोगिता के प्रचार प्रसार में यथेष्ठ सहयोग देकर हमें अवश्य प्रोत्साहित करेंगे।

१०१) के आजीवन सदस्य अधिकाधिक संख्या में बनकर।

वार्षिक ग्राहक बनाकर, वार्षिक चन्दा भिजवाकर

अधिकाधिक विज्ञापन देकर।

उत्तम रचनायें भेजकर।

कृपया अपने उत्तम प्रस्ताव, सुझाव एवम् तन-मन-धन से अवश्य सहयोग प्रदान करें।

सम्पादक—आर्य मार्तण्ड

---

## बूंदी से क्या ऋषि की पाखण्ड-खण्डिनी पताका उड़ जायेगी ?

ऋषि-शिष्य ब्रह्म० नित्यानन्दजी का अपमान क्या व्यर्थ जायगा ? आर्यों ! क्या शास्त्रार्थ-विजय का लाभ प्राप्त करने में भी संकोच करोगे ? और क्या न्यूनतम आवश्यकता यज्ञशाला के लिये भी धन नहीं जुटा सकोगे ?

नव स्थापित आर्य समाज बूंदी के कार्यकर्त्ताओं के अदम्य उत्साह की पुष्टि के लिये पानी नहीं दूध दीजिये। पसीने की कमाई का एक तुच्छ सा भाग भवन निर्माण के प्रारम्भिक रूप परकोटे एवं यज्ञ शाला के लिये आहुति के रूप में दीजिये।

आपको ज्ञात है कि हमारे सारे शरीर की क्रियाओं का संचालन मस्तिष्क में केन्द्रित चेतना-शक्ति से होता है। संपूर्ण नगर में प्रकाश की जगमगाहट बिजली घर से होती है। इसी तरह जिले भर में आर्यत्व का प्रसार जिले के केन्द्रीय स्थान पर आर्यसमाज होने से ही हो सकता है।

जिले के किसी कोने में आर्यसमाज है, तो बहुत अच्छा, किन्तु उसका कार्य स्थानीय महत्त्व का होता है। जबकि जिले के केन्द्रीय स्थान पर स्थित आर्यसमाज से जिले भर की जनसंख्या आर्यसमाज के लोकोपकारक संदेश एवं कार्य से परिचित हो सकेगी। अपने २ स्थानों पर इस गंगा को ले जाने की बात सोचेंगी, तो केवल जिले के केन्द्रीय स्थान पर अपने महत्व के अनुरूप आर्यसमाज को देखकर उसकी ओ३म् पताका को देखकर, उसके नामपट्ट को एवं भवन को देखकर !

और जब ये सब हैं, तो दर २ भटकने वाले, खानाबदोश, 'आज यहाँ डेरे तो कल वहां, की स्थिति में कार्य चलाने वाले कार्यकर्त्ताओं का भी ठिकाना हो जायगा।

बाजे की सरगम और ढोलक की थाप के साथ नाचने वाले के पैर उठते हैं। इसी तरह ओ३म् पताका आर्यसमाज नाम पट्ट एवं भवन को देखकर कार्यकर्त्ताओं को काम करने की प्रेरणा मिलेगी नगर के कोने २ से सहायकों, समर्थकों एवं सहानुभूति रखने वाले जनों के नाले उमड़ उमड़कर नदी को बड़ा रूप देंगे आर्य समाज का कार्य चल निकलेगा। उसमें गति, वेग एवं स्थायित्व होगा।

बूंदी में भी आर्यसमाज संस्था बनी, टूटी, फिर बनी और फिर टूटी और अब कार्यकर्ताओं का जोड़ है।

ऐसा न हो कि आप जैसे दानदाताओं की थोड़ी सी भी सुस्ती से कार्यकर्त्ताओं का हिमालय सा दिल बैठ जाय और इसके साथ ही आर्य समाज भवन एवं आर्यत्व-प्रसार की उत्साह-पूर्ण योजना भी धरती में समा जाय। ऐसा न हो कि फिर आर्य-समाज बूंदी एक स्वप्नमात्र रह जाय ! और यदि अबकी बार आर्यसमाज बूंदी का काम नहीं चल सका तो फिर अगले २५ वर्षों तक कोई आशा नहीं ! और इस सबका दोष हम कार्यकर्त्ताओं पर नहीं आप दानदाताओं पर एवं राजस्थान के आर्य जगत् पर होगा।

आपको ज्ञात है—बूंदी के कतिपय पंडित बूंदी को अब भी बड़ी काशी कहते हैं। मिथ्या प्रचार फैलाते हैं कि स्वामी दयानन्द जी ने जब काशी के पंडितों को जीत लिया, तो पंडितो ने कहा कि हमारी बड़ी काशी तो बूंदी है। जब तक उसे न जीत लोगे तब तक हम हारे हुए नहीं हैं। फलतः दयानन्द यहाँ आये, और पंडितों से पराजित हुए। यह है इनकी मनगढन्त कथा।

इतिहास साक्षी है कि ऋषि का पदार्पण यहाँ नहीं हुआ। यहाँ के पंडितों में ज्येष्ठ पं० गंगासहाय जी ने ऋषि से अजमेर में कुछ प्रश्न पूछे थे जिनका उनको यथोचित्त उत्तर दिया गया।

वास्तविकता यह है कि ब्रह्म नित्यानन्दजी तथा स्वामी विश्वेश्वरानन्दजी आज से ८१ वर्ष पूर्व संवत् १९४५ वि० में यहाँ आये। राजा के पंडितों की प्रेरणा से तथा ऋषि के बढते हुए देशव्यापी प्रभाव से आतंकित होकर 'आर्य मत-खण्डिनी' सभा बना रखी थी। दोनों आर्य विद्वानों को भी इसमें सहायक होने तथा तदर्थ निवास-भोजनादि के यथोचित प्रबंध करने का प्रलोभन दिया गया। आर्य विद्वानों के उपदेशों से जनता में जागृति फैलने लगी। शास्त्रार्थ के चैलेन्ज को बूंदी के पंडितो ने विवश होकर स्वीकार किया और परास्त हुए। किन्तु पराजय कैसे स्वीकार करते ? राज्य की ओर से दोनों महात्माओं को कोठले की गाड़ी में बिठाकर १५ सिपाहियों तथा दो अधिकारियों के साथ मेवाड़ की सीमा पर जाकर छोड़ दिया गया।

उसी बूंदी नगरी में ८० वर्ष बाद आर्यसमाज का पौधा फिर लगा है। १ वर्ष का हो चुका है। नियमित कार्यक्रम तथा प्रचार होता है।

अब यह राजस्थान की आर्य जनता पर और आर्यसमाजों पर निर्भर है कि इसे अपने धन से एवं सहानुभूति से जीवित रखने में त्याग का परिचय दें अथवा इसे मुरझा जाने दें और साथ ही कार्यकर्त्ताओं के हृदय को भी निराश हो जाने दें।

किन्तु आर्य जनता से मुझे आशा है और मेरे परिचित जन भी राजस्थान के आर्य जगत मे कम नहीं है। वे जानते हैं कि मेरी दृष्टि उन पर पूरी तरह केन्द्रित हैं और वे मुझे उन्हें पृथक् पत्र द्वारा निवेदन का कष्ट नहीं देंगे। कृपया दान मन्त्री आर्य समाज बूंदी के पते पर भेजकर सन्तोष लाभ करें।

---

## आवश्यकता

एक विद्वान्, संन्यासी अथवा वानप्रस्थ की जो वैदिक धर्म तथा आर्य संस्कृति के प्रचार प्रसार में अभिरुचि रखते हों, ग्रामों में घूम-घूमकर अराष्ट्रीय प्रचार का निरोध करने की क्षमता रखते हों, तथा छात्रावास की व्यवस्था के उत्तरदायित्व को सम्भाल सकते हों, शीघ्र आवश्यकता है।

भोजन वस्त्रादि छात्रावास से दिया जा सकेगा।

श्री श्यामलाल जी आर्य
प्रधान आर्यसमाज
थांदला जिला झाबुआ (म. प्र.)

श्री अधिष्ठाताजी
गुरुकुल कांगड़ी
सहारनपुर





## वाराणसी में महर्षि दयानन्द काशी शास्त्रार्थ शताब्दी

### दिनांक १६ से २१ नवम्बर १९६९ तक

आर्य जनता को यह जानकर प्रसन्नता होगी कि आर्य प्रतिनिधि सभा उत्तर प्रदेश के तत्वावधान में महर्षि दयानन्द काशी शास्त्रार्थ शताब्दी दि० १६ से २१ नवम्बर १९६९ तक वाराणसी में आयोजित की जा रही है। इससे एक मास पूर्व दि० १६ अक्टूबर से १५ नवम्बर १९६९ तक आर्य विद्वानों की शास्त्रार्थ यात्रा सारे देश में होगी। सभी आर्यसमाजों और आर्य जनता का हार्दिक सहयोग इसके लिये अपेक्षित है तथा निम्नांकित सूचनायें भी शास्त्रार्थ शताब्दी के संयोजक "श्रीमान् पं० महेन्द्रप्रतापजी शास्त्री आर्य प्रतिनिधि सभा उत्तर प्रदेश लखनऊ" के पास शीघ्र भेजनी चाहिये।

(१) शास्त्रार्थ यात्रा में भाग लेने के लिये इच्छुक आर्य विद्वानों की नामावली भेजें।

(२) इस अवसर पर उक्त तिथियों में उत्सव सम्मेलन आदि अपने यहां न रक्खें।

नीचे लिखी परिषदों तथा सम्मेलनों में अधिकाधिक सहयोग प्रदान करें।

(१) सांख्य परिषद् (क्या सांख्य अनीश्वरवादी है ?)

(२) वेदान्त परिषद् (क्या वेदान्त दर्शन अद्वैत प्रतिपादक है ?

(३) व्याकरण परिषद् (व्याकरण शास्त्र में महर्षि की देन)

(४) श्रौत परिषद् (क्या श्रौत सूत्रादि में पशुवलि है।

(५) वेद परिषद् (वेदार्थ की सही प्रक्रिया)

(६) पुराण परिषद् (पुराणों के अश्लील भाव के सम्बन्ध में पौराणिकों से निर्णय लेना)

(७) संस्कृत राष्ट्रभाषा सम्मेलन।

(८) अन्तर्राष्ट्रीय महिला आचार संहिता सम्मेलन।

(९) राजनीतिक सिद्धान्त आदर्श सम्मेलन।

(१०) हरिजन समस्या सम्मेलन।

(११) धर्म परिवर्तन समस्या सम्मेलन।

## आवश्यकता है

परोपकारिणी सभा के प्रकाशन विभाग के लिए एक योग्य संस्कृत के विद्वान् की आवश्यकता है, जो संस्कृत व्याकरण, निघण्टु, निरुक्त आदि पर पूर्ण अधिकार रखता हो तथा महर्षि कृत ग्रन्थों वेदभाष्य आदि का ज्ञाता और उन पर पूर्ण आस्था रखता हो।

महर्षि कृत ग्रन्थों के शुद्ध प्रकाशन की दृष्टि से आवश्यकतानुसार हस्तलेख का मिलान कर प्रेस कापी तैयार करना तथा तदनुसार मुद्रण हो, इसकी देखरेख रखना होगा। प्रूफ संशोधन का अभ्यास होना आवश्यक होगा।

आवेदन पत्र अपने पूर्व कार्य के अनुभव के विवरण तथा प्रमाण पत्रों की प्रमाणित प्रतिलिपि सहित आना चाहिये। आवेदन पत्र में यह भी लिखें कि न्यूनतम वेतन क्या स्वीकार करेंगे।

श्री श्रीकरण शारदा
मन्त्री परोपकारिणी सभा, अजमेर

## अजमेर में ऋषि मेला

स्वामी दयानन्द सरस्वती के निर्वाण दिवस पर आगामी १० नवम्बर से १६ नवम्बर तक ऋषि उद्यान अजमेर में ऋषि मेला आयोजित किया गया है, जिसमें आर्य जगत के नेता उपदेशक व भजनीक भाग लेंगे। दिल्ली से आर्य नरनारियों की एक स्पेशल ट्रेन भी आवेगी।

परोपकारिणी सभा के मंत्री श्री श्रीकरणजी शारदा ने सूचित किया है कि इस मेले में आने वाले व्यक्तियों के भोजन व निवास की व्यवस्था निःशुल्क की जावेगी। —सभा मंत्री

## आर्य जनता सावधान !

स्वामी अमृतानन्द नाम के एक साधु वेषधारी सज्जन प्रान्त की समाजों में भ्रमण कर जनता अमनात्मक मिथ्या प्रपंच की बातें फैला रहे हैं। वह विश्वस्त एवं आर्य समाजी नहीं हैं। आर्य जनता उनसे सावधान रहे। उन्हें धनादि तथा आर्य समाज के मंच का प्रयोग न करने दें।

—सत्यानन्द सरस्वती साधु आश्रम

## सभा का महत्वपूर्ण निश्चय

दि. २० जुलाई, ६९ को सभा की कार्यकारिणी ने सभा की आर्थिक स्थिति को सुदृढ़ बनाने के लिये जो सर्वसम्मत निश्चय किया है, उसकी प्रतिलिपि प्रकाशित कर सविनय निवेदन है कि सम्बन्धित समस्त महानुभाव एतदर्थ अपना सक्रिय सहयोग अवश्य प्रदान कर अनुगृहीत करें।

मन्त्री सभा

## प्रस्ताव सं० ७ दि. २० जुलाई, ६९

सभा के आगामी कार्य-क्रम का विषय प्रस्तुत हुआ। विचार विनिमय के पश्चात् निश्चय हुआ कि—सभा की आर्थिक स्थिति को सुदृढ़ बनाने के लिये सभा के प्रधान जी १०००), उप प्रधान जी ५००), मन्त्री जी तथा कोषाध्यक्ष जी २००), उप मन्त्री जी २००) तथा प्रत्येक अन्तरंग सदस्य १००) यथाशक्ति दि. ३१ मार्च १९७० तक स्वयं अथवा अपने प्रयास द्वारा सभा-कोष में शीघ्र अवश्य जमा करा कर सक्रिय सहयोग प्रदान करें। —सभा मन्त्री

## हिन्दी साहित्य सम्मेलन के परीक्षार्थियों को सूचना

उपरोक्त सम्मेलन की परीक्षाओं के फार्म केन्द्र में आगये हैं। भरने की अन्तिम तिथि ३१ अगस्त है, अतः इच्छुक परीक्षार्थियों को चाहिये कि वे शीघ्र फार्म लेकर भरदें, अन्यथा विलम्ब करने पर फार्म समाप्त हो जायेंगे। इसके पश्चात् प्राप्त होना कठिन ही है।

फार्म प्राप्ति का पता
रामचन्द्र आर्य मुसाफिर
चाव बावड़ी अजमेर

## कुण्डलिया

श्री सत्यनारायण जी भालवाली "सिद्धान्त शास्त्री"
कुंवारकि सिटी।

नित उठ ब्रह्म मुहूर्त में, ईश्वर ध्यान लगाय।
जप, उपासना, यम नियम, जीवन में अपनाय॥
जीवन में अपनाय, कटेगा भव से फन्दा।
ज्ञान प्रकाश हो जाय, घटेगा अवगुण गन्दा॥
कहे 'सत्य' कविराय, इसी की महिमा न्यारी।
भव सागर तरजाय, इसी से दुनियां सारी॥

❀ ❀ ❀

वेद उपनिषद गीता में, जग्ग ज्ञान विशेष।
कर्म-धर्म प्रधान है, मूल तत्व का ज्ञान॥
मूल तत्व का ज्ञान, सुमन्थन कर जो पीता।
काम क्रोध मद लोभ, आदि को जिसने जीता॥
कहे 'सत्य' कवि-राय, [illegible]
पुण्य कर्म का किया है जिसने, पलड़ा भारी॥

## वीर बाला की भव्य भावना !

श्री बाबूराम महाकवि अजमेर

नहि चाह नाथ सुख सम्पत्ति की है जग में,
भर दे सतीत्व का रंग मेरी रग-रग में॥१॥

हो जाऊं साहसी किञ्चित नहि घबराऊं।
विकराल काल के सम्मुख भी डट जाऊं॥
नहि डरू कभी चित भीरु भाव नहि लाऊं,
जो भूला है पथ उन्हें सुपथ दिखलाऊं।
मैं सहूं सहर्षित कष्ट आय जो मग में॥
भरदे सतीत्व का॥२॥

चाहे छूटे गृह सुख मात तात बिसरायें।
चाहे हिंसक तन को नोच नोच कर खायें॥
चाहे क्रूर कुटिल कितना ही क्यों न सतायें।
मैं हटूं न प्रण से प्राण भले ही जायें।
नहि चिन्ता हो हथकड़ी बेड़ियां पग में।
भर दे सतीत्व का॥३॥

चाहे तरणि-तेज, तज चन्द्र अनल बरसावें।
गिरि गलें सिन्धु जाय सूख धरा हिल जावे :
जाय प्रकृति पलट ध्रुव टूट धरनि पर आये।
मैं रहूं अटल मम सत नहि डिगने पाये।
बन सावित्री सी "[illegible]" दिखलाऊं जग में:
भर दे सतीत्व का॥४॥



श्री पं० भगवत्स्वरूपजी 'न्यायभूषण' के प्रबन्ध से वैदिक यन्त्रालय अजमेर में मुद्रित और ओम्भक्त वानप्रस्थ, सम्पादक प्रकाशक द्वारा दयानन्द आश्रम, केसरगंज अजमेर से प्रकाशित। [illegible] पी. एच. डी. [illegible]

१३९१ [illegible]
आर्य प्रतिनिधि सभा [illegible] का मुख-पत्र
राज० नं० जे० १४
पाक्षिक

# आर्य मार्तण्ड

दयानन्द आदित्य से पाकर ज्योति प्रचण्ड । ध्वंस दम्भ पाखण्ड का करे आर्य्यमार्तण्ड ॥

वर्ष ४७ | वार्षिक मूल्य ५) रुपया | सम्पादक—श्री ओम्भक्त वानप्रस्थ ( रामसहाय शर्मा ) | एक प्रति का २० पै० | अङ्क १५
अजमेर आश्विन कृ० ६ सं. २०२६ वि., दि. १ अक्टूबर ६९ दयानन्दाब्द १४५

## ईश्वर-प्रार्थना

ओ३म् यत इन्द्र भयामहे, ततो नो अभयं कृधि ।
मघवञ्छग्धि तव तन्न ऊतिभिर्विद्विषोवि मृधोजहि

व्याख्या:—हे सर्वद्रष्टा प्रभो ! परमात्मन !! ( यतः ) जिस जिस हिंसादि प्राणियों से (भयामहे) हम डरते हैं । ( ततः ) उस उससे ( नः ) हमको ( अभयं कृधि ) अभयदान दीजिए । ( मघवन ) हे [illegible] ( शग्धि ) आप समर्थ हैं ( [illegible] ) [illegible] ( [illegible] ) आप अपनी रक्षाओं से ( नः द्विषः ) हमारे आन्तरिक और बाह्य द्वेषकारी शत्रुओं को ( विजहि ) विनष्ठ कीजिए । ( मृधः ) मनुष्यों को धोखा देने वाले कपटी वंचक पुरुषों को ( विजहि ) विनष्ठ कीजिए ।

ऋग्वेद ८।६१।१३

## पद्यानुवाद

हिंसकादि प्राणियों से प्रभो ! अभयदान दीजे ।
बाह्य आन्तरिक द्वेषकारी, शत्रु मेरे नाश कीजे ॥

अम्बादान आर्य
कवि कुटीर कुरडायाँ (राज०)

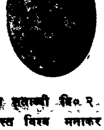
### स्वामी काव्यानन्दजी द्वारा प्रांत में प्रचार

श्री स्वामी काव्यानन्दजी आज कल राजस्थान प्रांत में वैदिक धर्म के प्रचार का कार्य बड़ी लगन से कर रहे हैं । इन दिनों आप अमरगढ, राणापुर, आमकूट, आम्बुआ, अली राजपुर, थादला आदि भील क्षेत्र में प्रचार कर रहे हैं । तथा इस बार में झाबुआ, सवासा आदि क्षेत्रों में आर्य समाज का पावन संदेश प्रसारित कर रहे हैं ।

जो आर्य बन्धु अथवा आर्यसमाजें उन्हें आमन्त्रित करना चाहें । सभा से सम्पर्क स्थापित करें ।

मंत्री

## राष्ट्र-वन्द्य महात्मा गांधी !



[illegible] दि० २ अक्टूबर ६९ को समस्त विश्व मनाकर अपनी श्रद्धांजलि अर्पित कर रहा है ।

### महात्मा गांधी की जन्म-भूमि गुजरात साम्प्रदायिकता की आग में

अभी गत सप्ताह अहमदाबाद मे भीषण साम्प्रदायिक दगा हुआ, जिसमे बहुत अधिक धन-जन को क्षति पहुची है । उन्मादी दगाइयों ने महात्मा गांधी के साबरमती स्थित आश्रम पर भी आक्रमण कर दिया । यह अग्नि समस्त गुजरात में फैल रही है ।

### आर्यसमाज राजगढ़ (अजमेर) का वार्षिक उत्सव

आर्यसमाज राजगढ ( अजमेर ) का ३१ वाँ वार्षिक उत्सव आश्विन शुक्ला १४ पूर्णमाह कार्तिक कृष्ण १ वि. २०२६ दिनांक २४ अक्टूबर से २६ तक सानन्द मनाया जावेगा । जिसमे श्री डा. भवानीलाल जी भारतीय सभा मन्त्री, कमलेश कुमार जी व भगवती प्रसादजी अभय भजनोपदेशक व अन्य विद्वान् प्रचारक पधारेंगे । आशा है आर्यजन उपस्थित होकर अवश्य धर्म लाभ उठावेंगे ।

## निर्दोष एवं निहत्थे छात्रों पर गोली चलाई गई ?

### श्रीकरण शारदा का वक्तव्य

(टाटगढ डाक से)

अजमेर जिला जनसघ के अध्यक्ष श्री श्रीकरण शारदा यहा पुलिस स्टेशन गोली काड के सम्बन्ध में मौके की जानकारी करने पधारे । सारी स्थिति का अवलोकन करने के पश्चात् हिन्दुस्तान समाचार संवाददाता को उन्होंने बताया कि यदि पुलिस द्वारा अध्यापक श्री गंगासिह की पिटाई न होती तो यह दु:खद घटना न होती । १० सितम्बर को छात्र श्री रामनारायण से केवल मिलने के लिये गये थे । यह जानना चाहते थे कि उनके शिक्षक को अकारण क्यों मारा गया । थाने पर सन्तरी पहरा लगा रहे थे । अन्य सिपाही भी उपस्थित थे । बच्चो ने किसी को कुछ नही कहा । ऐसी हालत मे श्री रामनारायण तो अपने मकान मे सो रहे थे और चदर के किवाड अन्दर मे बन्द थे । फिर उन्हे गोली चलाने की क्या आवश्यकता पड़ी । सच बात तो यह है कि सिपाही रसूक अली ने उसके कान भर रखे थे । और बिना सोचे समझे उसने बाल छात्रो पर गोली चलादी । जिससे श्री सुभाष, केसरसिंह, रामसिह इत्यादि छात्र सख्त घायल हो गये । केवल भगवान की कृपा से ही वे बच पाये । उनका ब्यावर हॉसपिटल मे अब तक उपचार चल रहा है । ऐसी स्थिति मे श्री रामनारायण को नोकरी से हटा दिया जावे । सिपाही रसूक अली की निष्पक्ष जाँच करवाई जावे और मुकदमे चलाये जावें । तथा निर्दोष छात्रो पर जो मुकदमे लगाये गये हैं, वे अविलम्ब वापिस लिये जावे घायल छात्रो को नकद सहायता तुरन्त दी जावे ।

# साहित्य समीक्षा

**पं० गुरुदत्त विद्यार्थी जीवन एवं व्यक्तित्व : लेखक—डा० रामप्रकाश एम. एस. सी. पी. एच. डी. प्रकाशक : वैदिक साधनाश्रम, यमुना नगर। मूल्य १ रु० ३५ पैसे**

आर्य समाज के मनीषी विद्वानों में पं. गुरुदत्त का नाम स्वामी दयानन्द के बाद ही आता है। २६ वर्ष की अल्पायु में ही जिसकी जीवन कलिका मुरझा गई, वह अपूर्व प्रतिभा का धनी गुरुदत्त स्वामी दयानन्द के सिद्धान्तों और मन्तव्यों का सबसे बड़ा व्याख्याकार था। यद्यपि गुरुदत्त की जीवनी विषयक ३-४ ग्रन्थ मिलते हैं तथापि सम्पूर्ण तथ्यों को एकत्रित कर एक सर्वाङ्ग सुन्दर जीवन चरित लिखे जाने की आवश्यकता थी। हर्ष का विषय है कि आर्य समाज के उदीयमान तरुण वक्ता एवं विद्वान् डा. रामप्रकाश ने यह जीवन चरित लिख कर एक बहुत बड़े अभाव की पूर्ति की है। इसमें जहाँ गुरुदत्त के व्यक्तित्व का सम्पूर्ण आकलन करने की चेष्टा की गई है। वहाँ उनके लेखन कार्य का भी विशद मूल्यांकन करते हुये उनके द्वारा रचित साहित्य की समीक्षा की गई है। बहुत कम लोगों को पता होगा कि गुरुदत्त के कतिपय ग्रन्थ अमेरिका के प्रसिद्ध नगर शिकागो से भी प्रकाशित हुये थे। डी. ए. वी. कालेज लाहोर की स्थापना तथा उसकी प्रगति के लिये गुरुदत्त का योगदान महान् था। वास्तव में इस ग्रन्थ को लिख कर डा. रामप्र[illegible]श ने आर्य समाज के जीवनी साहित्य को [illegible] मूल्यवान भेंट प्रदान की है।

श्री हंसराज आर्यसमाज के पुराने अनुसंधान विद्वान् हैं जिन्होने वर्षों डी. ए. वी. कालेज, लाहोर के शोध विभाग में रह कर कार्य किया है। ब्राह्मण ग्रन्थों मे प्रयुक्त पदों का कोष बड़े परिश्रम पूर्वक उन्होने तैयार किया था। आलोच्य ग्रन्थ आर्यसमाज के इस मन्तव्य को स्पष्ट करने वाला ग्रन्थ है कि वेद मे लौकिक इतिहास नहीं है। लेखक ने अपने कथन को सिद्ध करने के लिये १०० ग्रन्थो के २४० प्रमाणों का संग्रह किया है। वैदिक साहित्य का विशद, व्यापक एव तल स्पर्शी अध्ययन के अभाव में ऐसा ग्रन्थ लिखा जाना शक्य नही है। लेखक ने वैदिक वाङ्मय पर पाश्चात्य विद्वानो द्वारा लिखे गये ग्रन्थों का भी विस्तृत अध्ययन किया है तथा वेद में प्रयुक्त अनेक शब्दों के निरुक्त, ब्राह्मण ग्रन्थ तथा अन्यत्र किये गये अर्थों के आधार पर यह सिद्ध किया है कि वैदिक शब्द यौगिक ही होते हैं, उनका रूढ़िगत अर्थ निकालना अनुचित है। ग्रन्थान्त में वैदिक तथा आर्ष ग्रन्थो की एक विस्तृत सूची भी दी गई है, जो विस्तृत स्वाध्याय करने वालों के लिये अतीव उपयोगी है।

यद्यपि आर्यसमाज ने षोडश संस्कारों का महत्त्व स्थापित किया, तथापि प्रत्येक संस्कार की पृथकशः व्याख्या अभी लिखी जानी शेष है। आर्य-समाज के प्रसिद्ध विद्वान् तथा वाग्मी उपदेशक आचार्य कृष्ण ने उपनयन सर्वस्व लिखकर एक अभाव को पूरा किया है। उन्होंने स्वयं उपनयन संस्कार के मर्म महत्व पर गम्भीरता से मनन किया है। अतः उस पर लिखने के वे पूर्ण अधिकारी हैं व्यावहारिक रीति से भी उन्होंने अपने संचालन में कराये जाने वाले पारायण यज्ञों के पश्चात् सहस्रों बालकों को यज्ञोपवीत देकर उन्हें दीक्षित किया है। उपनयन एक प्रतीकात्मक संस्कार है। जनेऊ के तीन धागे वैदिक संस्कृति के प्रतीक तो है ही, सांस्कृतिक दृष्टि से भी उनका महत्व कम नहीं है। उपनयन विषयक मन्त्रों का विस्तृत खुलासा करते हुये आचार्य ने प्रत्येक शब्द में वर्णित अर्थ की विशद व्याख्या की है। ग्रन्थ सर्वथा उपादेय पठनीय एवं मननीय है। आशा है आचार्यजी अन्य संस्कारों की भी इसी प्रकार व्याख्या करेंगे। ४ स्वाध्याय सर्वस्व—लेखक आचार्य कृष्ण प्रकाशक पं० नरेन्द्रजी, प्रधान आर्य प्रतिनिधि सभा, मध्य दक्षिण, हैदराबाद। मूल्य १-५०

आर्यसमाज में आज स्वाध्याय का नितान्त अभाव है। स्वाध्याय शून्य आर्यसमाज में यदि आन्तरिक कलह और विवाद बढ़ें तो आश्चर्य ही क्या ? आचार्य कृष्ण ने आलोच्य ग्रन्थ में स्वाध्याय के विविध पहलुओं पर अपना गम्भीर एवं चिन्तन प्रधान दृष्टिकोण उपस्थित करते हुये स्वाध्याय को परम श्रम, परम तप, परम धर्म एवं परम योग सिद्ध किया है। इस दृष्टि से वैदिक वाङ्मय में जहाँ जहाँ स्वाध्याय शब्द का प्रयोग हुआ है। उसे सम्यक् रूपेण तथा प्रसंगोपात्त विवेचित किया है। स्वाध्याय की तैयारी शीर्षक अध्याय में स्वाध्याय विषयक कतिपय उपयोगी एवं महत्वपूर्ण सुझाव दिये गये हैं 'ग्रन्थान्त में स्वाध्याय के योग्य कतिपय ग्रन्थों की सूची भी प्रस्तुत की गई है, जो यद्यपि अपनी दृष्टि से पूर्ण तो नहीं कहला सकती तथापि स्वाध्याय करने वाले उससे सहायता ले सकते हैं। ५ टोंक का शास्त्रार्थ—डा० श्रीराम आर्य वैदिक साहित्य प्रकाशन कासगंज (उ० प्र०) मूल्य १-२५। डा. साहब आर्यसमाज में खण्डन-मण्डन प्रधान ग्रन्थों के लिखने वाले अद्वितीय लेखक हैं। प्रस्तुत ग्रन्थ में टोंक के चारभुजा मन्दिर के महन्त श्री सीतारामदास शास्त्री से हुये उनके लेखबद्ध शास्त्रार्थ का विवरण प्रकाशित हुआ है। पौराणिक धर्म इतना दुर्बल है कि अब अधिक प्रहारों का सहन करना उसके लिये असम्भव सा है। यद्यपि आर्यसमाज की स्थापना काल से ही पौराणिकों से उसका शास्त्रार्थ संग्राम चल रहा है, परन्तु अभी भी यदा कदा पौराणिक पण्डित आर्य विद्वानों से भिड़ ही जाते हैं। खण्डन मण्डन का माहौल आज आर्यसमाज में पुनः पनपाया जाना आवश्यक है। पुस्तक पठनीय एवं संग्रहणीय है।

—डा० भवानीलाल भारतीय
एम. ए. पी. एच. डी.

# कभी हम कलंकित न हो जाएं !

**लेखक—श्री बुद्धदेव आर्य गुरुकुल झज्जर रोहतक ( हरियाणा )**

जिस मनुष्य का मन बिगड़ जाता है। उसका सब कुछ बिगड़ जाता है। आज देश के अन्दर जितने भी दुःख दिखाई दे रहे हैं। उन सब का मूल कारण लोगो की विचार धारा का दूषित हो जाना है। हमने आश्रमों की मर्यादा को मर्यादा न समझकर दिखावा बना लिया है। समाज और आश्रमों का सहारा लेकर अपने स्वार्थ सिद्धि के लिए ऐसा कोनसा दुष्ट-कर्म है, जो आज भारत में न होता हो। और हम नहीं करते हों। आज हमारी शिरोमणी सभा और प्रतिनिधि सभा की दुरवस्था को देखते हैं तो रोना आता है। दिखावा ही दिखावा है। अधिकारियों के पास काम करने के लिए एक मिनट का समय भी नहीं है। उंगली में सुई से रक्त निकाल करशहीदों में नाम लिखवाने की अत्यधिक है। लाखोंरुपया मुकद्दमें बाजी में दोनों ओर का खर्च हो रहा है। सो ? क्यों समाज के ठेकेदारों और समाज के अधिकारियों के मन साफ नहीं है। उर्दू की मिसाल है कि—

"खुद मियां फजीहठ दीगरा नसीहत" ऐसा सुना जाता है कि सभा के उपदेशक और प्रतिनिधि झूठी डायरी बनाते हैं। और वानप्रस्थी, सन्यासी भी दिखावा में फंसे हैं। यदि यह बात सत्य है तो हम सुख और शान्ति की सांस कैसे ले सकते हैं। जिन साधु और सन्यासियों को परमात्मा की बनाई हुई सृष्टि के प्राणियों से प्यार नहीं है। और वे किसी रोग से पीड़ित कराह करते हुए भूख और प्यास से व्याकुल हुए सर्दी संतप्त अथवा समाज की कुरीतियों से दुःखी होने की अवस्था में क्या हमारी योग समाधि लग सकती है। क्या हमारा अग्नि क्षेत्र सम्पन्न हो सकता है। जब कि एक मनुष्य रोग से पीड़ित बराबर में कराह रहा है। और मैं संध्या करने बैठ जाऊं तो मेरा परमात्मा से मेल हो सकता है। जिसकी बनाई हुई सृष्टि के प्राणियों से मेल नहीं हो सकता। ऐसा मैं मानता हूँ। आज हमने बाहरी आडम्बर में फंसकर अपनी मर्यादाओं को भुला दिया और अपनी स्वार्थ सिद्धि के लिए आश्रमों का सहारा लेकर उदर-पूर्ति करते हैं। जब तक देश में मन, कर्म, वचन मर्यादाओं का पालन करने वाले सच्चे ब्राह्मण वान-प्रस्थी और सन्यासी न होंगे, तब तक बनावटी बने हुए गृहस्थी वान-प्रस्थी और सन्यासी समाज के दुःख का कारण होंगे। क्योंकि उनके मन की भावनाएं बिगड़ चुकी हैं। प्रत्यक्ष प्रमाण के लिए आज भी हमारे बीच में पूज्य स्वामी आनन्द भिक्षुजी महाराज संसार के दुःख और समाज की दुर्दशा को देखकर आमरण अनशन का निश्चय कर चुके हैं। और फिर भी हम दोनों समय यज्ञ-वेदी पर बैठकर "छोड़ देवें छल कपट को मानसिक बल दीजिए" इस पद का जाप करते हैं। तो आज हम मानसिक बल प्राप्त करने के लिए हम सब आर्यसमाज की यज्ञ वेदी पर बैठकर यह शपथ लेकर उनको विश्वास दिला दें कि हम भी उनकी तरह परमात्मा की बनाई हुई सृष्टि के सभी प्राणियों की कल्याण की भावनाओं को अपने अपने मनों में धारण कर मन, कर्म और वचन से छल कपट को छोड़ देवें। इसी में हम सब का कल्याण हो सकेगा। अन्यथा हमारे ऊपर कलंक का टीका लगा होगा।

# आर्य मार्तण्ड

अजमेर आश्विन कृ० ६ सं० २०२६ वि० दिनांक १ अक्टूबर सन् १९६९

## महर्षि दयानन्द और महात्मा गांधी

इस वर्ष २ अक्टूबर का पर्व 'गांधी जयन्ती' गांधीजी के श्रद्धालु भक्तों के लिये एक विशेष समारोह आकर्षण और प्रेरणा का नवीन सन्देश लेकर आया है। आज से एक शताब्दी पूर्व महात्मा गांधीजी का जन्म गुजरात प्रान्त में हुआ था। इसी भूमि पर विश्व के सत्य-पथ प्रदर्शक महर्षि दयानन्द भी भी अवतरित हुये थे, जिनके चरण चिन्हों पर चलकर महात्मा गांधी भी धन्य हो गये। किन्तु जब हम दोनो ही विभूतियों के जीवन एवं कार्य पर दृष्टिपात करते हैं, तो हमारे सामने स्पष्ट सत्य दृष्टि गोचर होता है, कि महर्षि दयानन्द विश्व-विभूति थे और महात्मा गांधी एक देशीय। महर्षि ने अपने आत्म-बल, ईश्वर विश्वास, अखण्ड ब्रह्मचर्य, चरित्र-बल और त्याग-तप से विश्व के मानव समाज को असत्य, अज्ञान के महान्धकार से निकालकर सत्यं, शिव, सुन्दर की प्राप्ति का पथ प्रदर्शित किया और इसमें कोई अतिशयोक्ति नहीं कि यदि महर्षि दयानन्द न होते, तो यह भारत आज भारत ही न रहता। इसकी सत्ता और अस्तित्व ही समाप्त हो जाता।

गांधीजी की ख्याति राज्याश्रय से हुई। किन्तु महर्षि के चरित्र, प्रतिभा और व्यक्तित्व ने उन्हें स्वतः विश्व वन्द्य बना दिया। दोनों ने ही भारत की एकता के लिए भागीरथ प्रयत्न किये, किन्तु यदि गांधीजी को कहीं असफलता मिली, तो वह केवल उनकी आत्म-निर्बलता के कारण।

महर्षि की एकता का मन्त्र आध्यात्मिक और मौलिक वेद वाद पर आधारित था, किन्तु गांधीजी की एकता भौतिक कृत्रिमता से ओत-प्रोत थी। यही कारण है कि महर्षि के सिद्धान्त, उद्देश्य जब तक सूर्य चन्द्र है, सदा प्रेम, विश्व-बन्धुत्व, सुख-शान्ति का सन्देश देते रहेंगे।

गांधीजी को अपने जीवन में अपने अनुयायियों से कई बार अपमानित होना पड़ा, किन्तु वह सन्त थे। वह आदर, अनादर को विशेष महत्व नहीं देते थे। वह पाकिस्तान और देश विभाजन के प्रबल विरोधी थे। किन्तु नेहरूजी की सत्ता प्राप्ति के व्यामोह की आतुरता ने गांधीजी की एक नहीं चलने दी और मातृभूमि का दुखद विभाजन हत्या-काण्ड और नरसंहार हुआ।

महर्षि [illegible] को सत्य ज्ञान से परि-[illegible] "वैदिक एकता का" [illegible] एक वैदिक [illegible] के संगठन में [illegible] चाहते थे। इसीलिए वह राष्ट्र के [illegible] तत्पर रहे और पूर्ण सफल हुए। किन्तु गांधीजी की कृत्रिम एकता का मन्त्र राष्ट्र में एकता स्थापित करने में सर्वथा असमर्थ रहा और देश को इसी अदूरदर्शिता के कारण विश्वासघात का भयंकर आघात सहना पड़ा।

महात्मा गांधी ने सामाजिक भेद भाव एवं विषम जीवन स्तर को समानान्तर लाने का भर-सक प्रयास किया, किन्तु उनके देहावसान के पश्चात् उनकी शिक्षायें और आदर्श केवल व्याख्यान और लेखों तक ही सीमित कर दी गई। आज बाईस वर्ष की स्वतन्त्रता के बाद भी विघटन, विद्रोह भुखमरी, विनाश, और राष्ट्र-घात के दृश्य स्थान २ पर दृष्टि गोचर हो रहे हैं, किन्तु ऋषि की स्थापित विश्वोद्धारक आर्यसमाज बिना राज्याश्रय के अपने त्याग तप, सेवा से विश्वप्रिय हो रहा है। आर्य समाज ने तो वास्तव में अछूतोद्धार किया किन्तु गांधीजी के शिष्यों ने अछूतों को विधान के द्वारा सदा अछूत अथवा हरिजन कहलाने का ताम्र पत्र लिख दिया और शासन आज उसी दृष्टि से उन्हें देखता और तदनुसार व्यवहार कर रहा है।

आज राष्ट्र जिन परिस्थितियों में है, उन पर गम्भीरता पूर्वक विचार कर उसकी समृद्धि, सुरक्षा और एकता के लिये यदि हमें प्राणोत्सर्ग भी करना पड़े तो उसके लिये हम सहर्ष तैयार रहे। उनकी ईश्वरास्था, आत्म बल त्याग-तप भारत के कोटि २ जन-मानस को प्रभावित और आलोकित करें। और हम मातृभूमि, पितृभूमि तथा पुण्यभूमि भारत के सच्चे सुपुत्र बनकर राष्ट्र की संस्कृति सत्ता और एकता की सुरक्षा तन-मन-धन और सर्वस्व अर्पित कर सदा करते रहे! गांधी जन्म शताब्दी के अवसर पर यदि राष्ट्रहित में हमने यह दृढ़ व्रत कर लिया, तो वास्तव में यही गांधी जी के प्रति हमारी हार्दिक श्रद्धाञ्जलि होगी।

अतः गांधी जयन्ती के अवसर पर आओ हम सभी आज प्रतिज्ञा करें कि हम देश को उनके आदर्शों के आधार पर सुखी समृद्ध बनायेंगे। अराष्ट्रीय विरोधी तत्वों से राष्ट्र की रक्षा करेंगे और यदि कहीं उनके जीवन में कोई राष्ट्रव्यापी भूल हुई हो, तो उससे राष्ट्र को बचाने का सक्रिय प्रयास करेंगे।

[illegible] हमारे मन के उत्साह, हृदय के भावों [illegible] [illegible] शक्ति दे, कि हम [illegible] [illegible] [illegible] की पूर्ति करने में समर्थ हो सकें।

## खोसला समिति का सुझाव अमान्य हो।

### एक सामयिक प्रस्ताव

केन्द्रीय सरकार द्वारा गठित खोसला समिति ने चल चित्रों में चुम्बन, नग्न चित्रों आदि के प्रदर्शनों को अवैध न मानकर उनके प्रदर्शन पर कोई आपत्ति करना उचित नहीं बतलाया है।

इस ऋषि महर्षियों की पुण्य भूमि में यहाँ की सभ्यता संस्कृति एवं नारी जाति पर यह एक गहरा प्रहार है और चारित्रिक एवं नैतिक दृष्टि से भी यह हेय है। भारतीय जनता इस प्रकार के निर्णय को बड़ी ही रोषपूर्ण एवं घृणा की दृष्टि से देखती है और आशा करती है कि इस प्रकार के अनौचित्य-पूर्ण एवं अनैतिकतापूर्ण निर्णय को शीघ्र वापिस लिया जायगा। चलचित्रों आदि के प्रदर्शन में एक स्वस्थ परम्परा का सूत्रपात करें ताकि देश का चरित्र नीचा गिरने के स्थान पर ऊँचा उठ सके।

यदि उक्त निर्णय शीघ्र ही सरकार द्वारा वापिस नहीं लिया गया तो क्षुब्ध भारतीय जनता को क्रान्तिकारी कदम उठाना पड़ेगा और उसका सम्पूर्ण उत्तरदायित्व सरकार पर होगा।

अतः आज दिनांक ३१ अगस्त १९६९ को आर्यसमाज किशनपोल बाजार जयपुर में एकत्रित नगर के विभिन्न मतावलम्बियों के प्रतिनिधि गण सर्व सम्मति से यह प्रस्ताव करते हैं कि खोसला समिति द्वारा दिये गये निर्णय को सरकार क्रिया-न्वित न करें।

## गोरक्षा के पुण्य का स्वर्ण-सुयोग!

आर्य समाज कलकत्ता द्वारा पश्चिम बंग सरकार के हरिनघाटा व कल्याणी केन्द्रों से (उनके काम में न आने वाले पशु) नीलाम होने वाले गोवंश की रक्षा के लिये कुछ काल से जो कार्यक्रम प्रारम्भ किया गया है, उस कार्य-क्रम के अन्तर्गत जुलाई के आरम्भ से लेकर सितम्बर ६९ के प्रथम सप्ताह तक चार बार में १०२०००) रुपये में हरिनघाटा व कल्याणी केन्द्रों से १४३४ पशु खरीदकर कलकत्ता पिंजरापोल सोसाइटी को सौंप दिये गये हैं। इस तरह भविष्य में सारे पशु लेने का निर्णय आर्य समाज कलकत्ता ने किया है।

ये प्राप्त किये जानेवाले पशु कलकत्ता पिंजरा-पोल सोसाइटी तथा देश की अन्य गोपालक संस्थाओं, डेयरी फार्म तथा किसानों को दिये जायेंगे। इस कार्य में लगभग ३ लाख रुपये वार्षिक खर्च होने का अनुमान है। दानी मानी महानुभावों से प्रार्थना है कि वे मुक्तहस्त से कलकत्ता आर्य समाज को आर्थिक सहयोग देकर इस गोधन की रक्षा करें।

गोरक्षक संस्थाएं गायें एवं बछड़े प्राप्त करने के लिये नीचे लिखे पते पर सम्पर्क स्थापित करें।

निवेदक :—

आर्य समाज कलकत्ता

१९, विधान सरणी, कलकत्ता—६

फोन : ३४-२८०३

# पूज्य महात्मा गांधी-राष्ट्र-भाषा और राष्ट्र-लिपि

लेखक—पण्डित धर्मदेवजी विद्या मार्तण्ड

पूज्य महात्मा गान्धी जी के राष्ट्र भाषा और राष्ट्र लिपि विषयक क्या विचार थे-इसको अपने शब्दो मे न कह कर उन्ही के शब्दों मे प्रकट करना अधिक अच्छा होगा । पहले मैं राष्ट्र भाषा विषयक उनके विचार उनके अपने शब्दा में प्रस्तुत करना चाहता हू ।

'राष्ट्र भाषा' नामक पुस्तक के पृ० ३५ मे पूज्य महात्मा गाधी जी ने राष्ट्र भाषा विषयक अपने विचार इन शब्दो में प्रकट किये थे । उद्धरण उनके मद्रास की हिन्दी परिषद् में दिये भाषण से उक्त पुस्तक मे उद्धृत किये गये हैं ।

"अगर स्वराज्य करोडो भूखो मरने वालो, करोडो निरक्षरो बहिनो और दलितो व अन्त्यजों का हो और इन सबके लिए होने वाला हो तो हिन्दी ही एकमात्र राष्ट्र भाषा हो सकती है ।"

( राष्ट्र भाषा' नवजीवन प्रकाशन, पृ० ३५)

२० अप्रल सन् १९३५ मे हिन्दी साहित्य सम्मेलन, इन्दौर के सभापति पद से भाषण देते हुए पूज्य महात्मा गाधी जी ने कहा था 'हिन्दी को हम राष्ट्र भाषा मानते हैं । यह राष्ट्र-भाषा होने के लायक है । वही भाषा राष्ट्रीय भाषा बन सकती है जिसे अधिकसख्यक लोग जानते हो तथा बोलते हों और जो सीखने मे सुगम हो। ऐसी भाषा हिन्दी ही है" ।

(राष्ट्र भाषा, पृ० ४३)

इसी पुस्तक के पृ० ४४ मे महात्मा जी ने लिखा—

"अगर हिन्दुस्तान को सचमुच एक राष्ट्र बनाना है तो चाहे कोई माने या न माने, राष्ट्र भाषा तो हिन्दी ही बन सकती है। क्योकि जो स्थान हिन्दी को प्राप्त है, वह किसी दूसरी भाषा को कभी नही मिल सकता । इसलिये उचित और सम्भव तो यही है कि प्रत्येक प्रान्त मे उस प्रान्त की भाषा, सारे देश के पारस्परिक व्यवहार के लिए हिन्दी, और अन्तर्राष्ट्रीय उपयोग के लिए अंग्रेजी व्यवहार हो।"

(राष्ट्र भाषा, पृ० ४४)

५-७-४६ के 'हरिजन बन्धु' मे पूज्य महात्मा जी ने लिखा था कि 'अगर आप की दृष्टि-मर्यादा उत्तर मे श्रीनगर से दक्षिण में कन्याकुमारी तक और पश्चिम मे कराची से पूर्व में डिब्रूगढ तक पहुचती हो और इतनी वह पहुँचनी भी चाहिये, तो उसके लिये आपके पास हिन्दी को छोड कर और साधन नहीं । अंग्रेजी हमारी राष्ट्र भाषा नहीं बन सकती" ।

(हरिजन बन्धु ५-७-४६)

१०-४-३७ के 'हरिजन सेवक' मे महात्मा जी ने स्पष्ट लिखा था कि जहा तक दक्षिण भारत की भाषाओं का सम्बन्ध है बहुत अधिक सस्कृत शब्दों से युक्त हिन्दी ही एक ऐसी भाषा है जो दक्षिण के लोगो को अपील कर सकती है ।

(हरिजन सेवक १०-४-३७)

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि पूज्य महात्मा गाधी जी सस्कृतनिष्ठ हिन्दी को ही राष्ट्र-भाषा मानने के प्रबल पक्षपाती थे और दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा आदि सस्थाओ के द्वारा उन्होंने हिन्दी के भारत के सब प्रदेशों में प्रचार के लिए विशेष प्रशसनीय कार्य किया था । जीवन के अन्तिम दिनो में उन्होने जो हिन्दुस्तानी के नाम से राष्ट्र-भाषा का प्रचार किया था, उसके विषय में मैं इस लेख के अन्त मे सक्षेप से प्रकाश डालूँगा ।

राष्ट्र-लिपि विषयक महात्मा जी के विचार—

'नवजीवन' के २१-६-२७ मे महात्मा गाधी जी ने लिखा था कि—

"सचमुच मेरा यह दृढ विश्वास है कि भारत की तमाम भाषाओं के लिये एक ही लिपि का होना फायदेमन्द है और वह लिपि देवनागरी हो सकती है, यदि तमाम व्यवहार्य और राष्ट्रीय कामो के लिए इन सब लिपियो के स्थान पर देवनागरी का उपयोग होने लग जाए तो वह एक भारी प्रगति होगी । उससे हिन्दू भारत सुदृढ हो जाएगा और भिन्न भिन्न प्रान्त एक दूसरे के अधिक निकट आ जाए गे । हमे एक ऐसी सर्वमान्य लिपि की जरूरत है, जो जल्दी से जल्दी सीखी जा सके और देवनागरी के समान सरल, जल्दी से सीखने योग्य और तैयार लिपि दूसरी कोई है ही नहीं ।"

(नवजीवन २१-६-२७)

१८ २-३९ के 'हरिजन सेवक' में पूज्य महात्मा जी ने लिखा—

'मैं अपनी यह राय तो जाहिर कर चुका हू कि अगर हिन्दुस्तान मे सर्वमान्य हो सकने वाली कोई लिपि है तो वह देवनागरी है ।"

(हरिजन सेवक १८-२-३९)

३-३-३७ के 'हरिजन सेवक' मे महात्मा जी ने लिखा—'देवनागरी को सारे हिन्दुस्तान की सर्वमान्य लिपि होना चाहिये क्योकि विविध प्रातो मे प्रचलित ज्यादहतर लिपिया मूलतः देवनागरी से ही निकली हैं और इसलिए उनके लिए उसे सीखना सब से ही ज्यादह आसान है ।"

२६-४-४२ के 'हरिजन सेवक' में पूज्य महात्मा जी ने कुछ प्रश्नोत्तर दिये थे, जिनमें से लिपि विषयक निम्नलिखित प्रश्न और उसका उत्तर इस सम्बन्ध में उल्लेखनीय है । प्रश्न—भारतीय भाषाओं को व्यक्त करने की सबसे अधिक योग्यता नागरी लिपि मे है और आजकल की फ़ारसी लिपि इस काम के लिए बहुत ही दोषपूर्ण है । क्या यह सच नही है ?

इसका उत्तर देते हुए महात्मा जी ने लिखा था कि "आप ठीक कहते हैं ।"

इन उद्धरणों से जो पूज्य महात्मा गांधी जी के अनेक लेखों से भी स्पष्ट है कि वे देवनागरी लिपि को ही राष्ट्रीय लिपि के रूप में मानते और चाहते थे कि भारत की सब भाषाओं के लिए उसका प्रयोग किया जाए ।

२६-६-४२ के 'हरिजन सेवक' में महात्मा जी ने इसके सम्बन्ध में लिखा था कि "बहुतेरी प्रांतीय भाषाए सस्कृत से सम्बन्ध रखती हैं और यह भी सच है कि भिन्न-भिन्न प्रान्तों के मुसलमान अपने-अपने प्रान्तो की भाषाए बोलते हैं इसलिए यह ठीक ही है कि उनके लिए देवनागरी लिपि हिन्दी आसान रहेगी ।"

(हरिजन सेवक, २६-६-४२)

लेख के अन्त मे इतना लिख देना पर्याप्त है कि यदि जीवन के अन्तिम भाग में महात्मा जी ने हिन्दुस्तानी शब्द का राष्ट्रभाषा के लिए प्रयोग किया तो उसका उद्देश्य केवल राजनैतिक था। अन्य कुछ नहीं । वर्धा के हिन्दुस्तानी सम्मेलन में २७ २-४५ को भाषण करते हुए महात्मा जी ने कहा था 'मैं हिन्दू-मुस्लिम एकता के लिए जीता हूं । मैं जानता हू कि हिन्दुस्तानी के प्रचार से हिन्दू-मुस्लिम एकता होगी ।"

१०-८ ४७ के 'हरिजन सेवक' मे महात्मा जी ने लिखा "मैं यह कबूल करता हूँ कि हिन्दुस्तानी पर मेरा जोर मुसलमान भाइयों की खातिर है।"

महात्मा गाधी जी का राजनैतिक उद्देश्य से किया यह प्रयत्न सफल नहीं हुआ, यह स्पष्ट है इसीलिए भारतीय सविधान सभा ने भारतीय सविधान मे देवनागरी लिपि में लिखित सस्कृतनिष्ठ हिन्दी को ही राजभाषा के रूप में बहुमत से स्वीकार किया यह प्रसन्नता की बात है । स्वयं महात्मा गाधी का प्रबल समर्थन हिन्दी को राष्ट्र-भाषा और देवनागरी लिपि को राष्ट्र लिपि मानने के सिद्धान्त को मिलता रहा—यह ऊपर दिये उद्धरणो से स्पष्ट है । अब देशभक्त राष्ट्रीय एकता प्रेमियो का कर्तव्य है कि हिन्दी सच्चे अर्थों में राजभाषा पद पर प्रतिष्ठित हो—इसके लिए सगठित प्रयत्न करें और देवनागरी लिपि को भारत की सर्वसामान्य लिपि के रूप में स्वीकार करें ।

## जालमपुरी (कुशलगढ) में स्वतन्त्रता दिवस

दिनाक १५ अगस्त को अराष्ट्रीय ईसाई प्रचार निरोध केन्द्र जालमपुरी ( कुशलगढ ) में आर्य समाज द्वारा सचालित पाठशाला मे स्वतन्त्रता दिवस समारोह से मनाया गया । श्री बिजिया जी पटेल ने झण्डा फहराया तथा श्री जगदीश दत्त जी शर्मा ने वनवासियो को राणा प्रताप के समान धर्मवीर बनने की प्रेरणा दी। उत्सव आनन्द सफल हुआ ।

## अराष्ट्रीय प्रचार निरोध केन्द्र कुशलगढ

कुशलगढ में दयानन्द सेवा आश्रम दि० १ जुलाई ६९ ई० से किराये के मकान में खुल गया है। आश्रम में इस समय १० वनवासी छात्र रह कर शिक्षा व सहायता प्राप्त कर रहे हैं। शीघ्र ही इस क्षेत्र के अराष्ट्रीय ईसाइयों से प्रभावित दो तीन ग्रामों में प्राथमिक शालायें चालू की जावेगी ।

स्वतन्त्रानन्द
जालमपुर

# मेरी उड़ीसा प्रचार यात्रा

## श्री स्वामी ब्रह्मानन्दजी सरस्वती का उड़ीसा में वैदिक धर्म चक्र

लेखक—श्री पन्नालाल पीयूष पहाड़ गंज, अजमेर

( गतांक से आगे )

**एक घटना :**

यहां एक बंगाली ब्राह्मण परिवार की युवा कन्या जिसका विवाह उसके माता पिता की निर्धन स्थिति के कारण दहेज न देने से नहीं हो रहा था। इस कन्या को इसके माता-पिता ने ईसाई मिशिनरियों को दे दी। इसका समाचार स्वामीजी को विदित हुआ अतः स्वामीजी तुरन्त पुलिस के बड़े अधिकारियों से मिले और रात्रि के १२ बजे उस कन्या को ईसाई मिशनरियों के चंगुल से निकाल कर लाए तथा उसकी उचित व्यवस्था की। यह है हिन्दू जाति की दुर्दशा।

**सुन्दर गढ़ :**

ता० ११ मार्च को गुरुकुल वेदव्यास से प्रातः स्नान सन्ध्या अग्निहोत्र तथा जल पान आदि से निवृत्त होकर हमारा प्रचार मण्डल सुन्दर गढ़ की ओर चला कुछ ब्रह्मचारी तथा आचार्य दयानन्दजी भी साथ थे। लगभग १२५ मील की यात्रा करके ११॥ बजे सुन्दरगढ़ पहुंचे। यहां पर कविराज श्री गंगाकिशनजी ने धर्मशाला में ठहरने का उत्तम प्रबन्ध किया और उत्सव के लिये नगर के बाग में सुन्दर पण्डाल बनाया। सायंकाल इसी पण्डाल में सार्वजनिक सभा हुई। जिसम नगर के हजारों नर नारियों ने भाग लिया। जिसमें विद्वानों के भाषण भजन, तथा ब्रह्मचारियों के मन्त्र पाठ एवं व्यायाम प्रदर्शन हुए जिसका जनता पर अच्छा प्रभाव रहा।

सुन्दर गढ़ उड़ीसा का एक प्रमुख जिला है। पहले यह एक रियासत थी। इस समय यहां के महाराज श्री राजेन्द्र नारायणसिंहजी उड़ीसा के मुख्यमन्त्री है। जो स्वतन्त्र पार्टी के सम्बन्धित है। यह जिला स्वामी जी का प्रमुख कार्यक्षेत्र है। इस जिले में अधिकांश बनवासी लोग रहते हैं। यहां के बनवासी मुण्डा कहलाते हैं। इनमें राजा भी होता है। यहीं का राजा शुका मुण्डा जो प्रलोभन में आकर ईसाई बन गया था और इसी के प्रभाव से यहां के बनवासी अधिकांश ईसाई बने थे। ईसाई मिशनरियों ने इनको चर्च का प्रेसीडेंट बना दिया था। स्वामीजी का शुद्धि का चक्र चला उसका प्रभाव शुका मुण्डा पर भी पड़ा। उससे वह पुनः शुद्ध होकर हिन्दु धर्म में आ गया। इस कारण इसके प्रभाव में जितने भी बनवासी थे वे सारे गांव के गांव शुद्ध हो गए। इस समय सार्वदेशिक सभा देहली द्वारा इस क्षेत्र के लिये जो प्रचारक नियुक्त है शुका मुण्डा, उसका अधिष्ठाता है और वृद्धावस्था होने पर भी बड़े उत्साह और लगन से साइकल द्वारा सारे क्षेत्र में प्रचार तथा प्रचार कार्य की निरीक्षण व्यवस्था करता है।

**उड़िया भाषा :**

संस्कृत सारी भाषाओं की जननी है। अतः सारे संसार की भाषाएं संस्कृत की पुत्रियां हैं। किन्तु उड़िया भाषा में लगभग ७५ प्रतिशत शब्द संस्कृत के हैं। यदि विशुद्ध संस्कृत में कोई भाषण देवे तो बड़े नगरों के निवासी अच्छी प्रकार समझ सकते हैं। अत: इस प्रान्त में शुद्ध हिन्दी भी अच्छी प्रकार से समझ लेते हैं। इससे हिन्दी भाषा के व्यक्ति को भी प्रचार में सुविधा रहती है।

**उड़ीसा प्रान्त में स्वामी ब्रह्मानन्दजी का रचनात्मक कार्य :**

इस क्षेत्र में स्वामी के प्रचार तथा प्रयत्न से २ निशुल्क गुरुकुल, १२ पाठशालाएं, ५५ रात्रि पाठशालाएं, कई दयानन्द मिडिल स्कूल तथा हाई स्कूल और दो बड़े डी. ए. वी. कालेजं चल रहे हैं। एक टीटागढ़ के कालेज का वर्णन पीछे किया जा चुका है और दूसरा राउरकेला में कन्याओं के लिये विशाल उद्योगिक कालेज उड़ीसा के भूतपूर्व राज्यपाल श्री कोसला जी द्वारा सम्पादित किया जिसका विशाल भवन चारमञ्जिला का बनकर तैयार हो गया और छात्रावास तथा उद्योगिक विभाग बन रहे हैं।

स्वामी जी के ही प्रयत्न से वर्तमान उड़ीसा शासन में कानून बना दिया है कि कोई भी व्यक्ति प्रलोभन देकर किसी का धर्म परिवर्तन नहीं कर सकता। इस कानून से ईसाइयों की गतिविधि मन्द पड़ गई हैं। इसके लिये श्री स्वामी जी पर विदेशी मिशनरियों ने झूंठे दावे और कई प्रकार के षड़यन्त्र किये किन्तु निर्भीक सन्यासी कर्म क्षेत्र में बराबर डटे हुए हैं।

इस प्रकार के कर्मठ संन्यासी वानप्रस्थी प्रत्येक प्रान्तों में लगन से निस्वार्थ भाव से त्याग और तपस्या से कार्य करें तो विदेशी मिशनरियों की अराष्ट्रीय कूटनीति पूर्ण गतिविधियां बन्द होकर बनवासी तथा हरिजन वर्ग में सच्ची धार्मिकता तथा राष्ट्रीयता की भावना जाग्रत हो जाय।

मैंने सुन्दरगढ़ का कार्यक्रम सम्पन्न करके रात्रि के १२ बजे स्वामी जी से विदा ली। स्वामी जी ने जीप द्वारा मुझे झारसूगड़ा जंक्शन पर पहुंचाने की व्यवस्था की। रात्रि के २ बजे स्टेशन पर पहुंचे। रेल द्वारा बिलासपुर आया, जो मध्य प्रदेश में है। वहां से कटनी सागर व कोटा होता हुआ लगभग चार हजार किलो मीटर की यात्रा कर तथा प्रचार करके ता० १४ मार्च को अजमेर पहुंचा।

**श्री स्वामी ब्रह्मानन्द जी स्व० पं० स्वामी श्रद्धानन्द जी की प्रतिमूर्ति :**

स्वामी, ब्रह्मानन्दजी की कार्यदक्षता, निष्ठा, निर्भिकता, दृढ़ता आदि से देखकर स्वर्गीय स्वामी श्रद्धानन्दजी की आत्मा इनमें कार्य कर रही है। ऐसा आभास होता है। इस समय तो जीप मोटर है तथा धन का कुछ सहयोग मिलता रहता है किन्तु उस समय धन तथा मोटर आदि का कोई साधन नहीं था तब भी स्वामी जी साईकिल द्वारा अपनी पीठ पर लाउडस्पीकर बांधकर ५०-६० मील की यात्रा कर के उड़ीसा प्रान्त में जहां जहां भी अराष्ट्रीयता ईसाई मिशनरी ने भोले भाले बनवासी तथा हरिजनों को प्रलोभन देकर धर्म भ्रष्ट करने का प्रयत्न करते थे वहां पहुँच कर उनके धर्म की रक्षा कर राम कृष्ण गंगा और गैया का भक्त बना रहने की प्रेरणा देते रहे अब तो स्वामीजी के पास यातायात तथा धन के साधन तो हैं किन्तु कार्यकर्ता लगनशील आर्य मिशनरियों का नितान्त अभाव है। जिस प्रकार से विदेशी ईसाई पादरी मिशन के लिये सेवा करने वाले नवयुवक और नवयुवतियां अपना सुख वैभव त्यागकर इस मिशन के लिये अपना जीवन देते हैं। और विहड़ जंगलों में जहां यातायात के कोई साधन नहीं होते वहां पैदल पहुंचकर मीशन का कार्य करते है इस प्रकार आर्य हिन्दु युवक और युवतियां तथा कुछ वानप्रस्थ व सन्यासी निकल पड़े तो निश्चयपूर्वक विदेशी ईसाई भारत से अपना बोरियां बिस्तर बांधते नजर आवें। किन्तु हिन्दु भाई तो गंगा स्नान, कुंभ मेला प्रयाग स्नान और मन्दिरों के निर्माण में अपना लाखों करोड़ों रुपया व्यय करते हैं किन्तु रामकृष्ण के भक्तों की रक्षा का प्रबन्ध नहीं करते। और आर्य भाई सभाओं समाजों संस्थाओं के पदाधिकारी बनने के लिये व पार्टियों के संगठन में अपनी सारी शक्ति का उपयोग करते हैं और कहीं समाज तथा सभाएं दुकाने व भव्य भवन बनाने में अपनी शक्ति लगा रही है और जहां पाठशालाएं संस्थाएं है वो सारी शक्ति आर्यसमाज की खा जाती है।

भव्य भवन तो बन रहे हैं किन्तु भावनाएं समाप्त हो रही है। आर्य समाज के ९४ वर्ष के इतिहास में अभी तक मिशनरी पैदा करने के लिये अच्छा शक्ति सम्पन्न कोई भी विद्यालय नहीं बना व भजनोपदेशकों को तैयार करने के लिये आज तक कोई विद्यालय हैं।

महर्षि दयानन्द सरस्वती महाराज ने जिस समय परोपकारिणी सभा की स्थापना की थी और महाराणा सज्जनसिंहजी उदयपुर उसके अध्यक्ष बनाए। उसके उद्देश्यों में कृषि वेद प्रचार के लिये छपाई के साधन को वैदिक यन्त्रालय की स्थापना की यहां देश देशान्तर और दीप दीपान्तर में वैदिक धर्म के प्रचारार्थ उपदेशक तैयार कर भेजने का भी आदेश दिया है गौ-रक्षा शिक्षा आदि कई उद्देश्य बनाएं। ये सारे आदेश महर्षि के परम शिष्य और भक्त स्वर्गीय श्री रामविलासजी शारदा द्वारा लिखि आर्य धर्मेन्द्र, जीवन में वर्णन है। इन उद्देश्यों की पूर्ति में कहा तक सार्थक हुए हैं इसके लिये अधिकारी वर्ग अपना निरीक्षण करें और ऋषि दयानन्द के उद्देश्यों की पूर्ति करने में कटिबद्ध हों।

—

## महात्मा गांधीजी का जन्म दिवस, भारतीय तिथि आह्वान

ईसवी सन् के अनुसार महात्मा गांधीजी का जन्म २ अक्टूबर १८६९ को हुआ था। इसी अवसर पर शासन सत्ताधीश कांग्रेसी करोड़ों रुपयों का उचित और अनुचित दोनों प्रकार का व्यय कर रहे हैं। सत्ता मनुष्य को प्रायः मदमत्त कर देती है। मदमत्तों को उचित अनुचित और मर्यादाओं का बोध नहीं रहता। अभी २ पारसी उरदू के चारित्रिक दृष्टि से तिरस्करीय कवि 'ग़ालिब' की जन्म शताब्दी पर सम्भवतया जनाब फखरुद्दीन साहब (जो महादेवी प्रियदर्शिनी इन्दिरा नेहरु गांधी के रसोई मंडल (Kitchen Calbnet) के प्रमुख सदस्य हैं) के उद्योग से सरकारी और गैर सरकारी स्रोतों से लगभग २५ लाख की राशि स्वाहा की गई है।

सन्त तुलसीदासजी पुण्य तिथि का आयोजन करने की चर्चा उठी है देखना है कि शासनाधीश कांग्रेसी तिरस्करीय ग़ालिब की तुलना में सन्त तुलसी के प्रति जिनकी कृति रामचरितमानस (रामायण) पर जगत् मुग्ध है, महात्मा गांधी जी तो तुलसी के परम भक्त थे और तुलसी के परम आराध्य 'राम" का ही राज्य भारत में पुनः लाना चाहते थे।

प्राण विसर्जन करते हुए भी महात्माजी के मुखारविन्द से "हे राम" का ही मन्त्र निकला। इस विचार धारा के प्रकाश पुंज महात्मा गांधीजी की जन्म शताब्दी ईसवीं तारीख से मनाने के स्थान में भारतीय तिथि संवत् से ही मनाना महात्माजी के प्रति वास्तविक श्रद्धांजलि अर्पण करना होगा।

श्री पं० युधिष्ठिर मीमांसकजी "जीवेम शरदः शतम्, भूयश्च शरदः, शतात्"

विरकच्यावास निवासी ऋषि भक्त पं० श्री गौरीलालजी के सुपुत्र स्वाध्यायी स्वावलम्बी आर्य विद्वानों में अग्रगण्य पं० युधिष्ठिरजी का जन्म दिवस भाद्रपद शु० ८ है। राजस्थान में तीर्थराज पुष्कर में सावित्री का मेला लगता है। "सावित्रीम् अपि अधीयतः गत्वा अरण्य समाहित." की उक्ति को चरितार्थ करते हुए मीमांसकजी अब दिल्ली के समीपस्थ सोनीपत (हरियाणा) को केन्द्र बना गुरुवर ब्रह्मदत्तजी जिज्ञासु के कार्य का सचालन कर रहे हैं। महर्षि रचित ग्रन्थों के शुद्ध संस्करण और उनकी व्याख्या सूक्त सुलभ मूल्य पर प्रकाशित करने में रामलाल कपूर ट्रस्ट ने जो सुख्याति पाई है वह विख्यात है।

गुरुवर जिज्ञासुजी परोपकारिणी सभा के सदस्य थे। उत्तम हो कि प्रशंसनीय सभा, कपूर ट्रस्ट के प्रतिनिधि अथवा मीमांसकजी को सदस्यता देने पर विचार करें। कपूर ट्रस्ट और परोपकारिणी सभा दोनों को मिलकर महर्षि की रचनाओं का आर्यसमाज स्थापना शताब्दि पर महर्षि की समस्त रचनाओं के सुन्दर संस्करण प्रकाशित करना वांछित है।

## चिरस्मरणीया चाचीजी श्रीमती गुलाबदेवी जी की जन्म शताब्दी पर आयुर्वेद आर्य महिला विद्यालय स्थापित हो

(१) इस आर्य मार्तण्ड में सुश्री निर्मला एम.ए. कल्याण का मथुराप्रसाद गुलाबदेवी ट्रस्ट के महारथियों के नाम का निवेदन पढा।

(२) मिमन्देह केवल ४ कन्याओं से चालू पाठशाला में इन दिनों ८०० छात्राओं का अध्ययन करना साधारण जनता को प्रभावित करता है।

(३) पर जिज्ञासा है कि पाठशाला में जो सरकारी शिक्षा प्रणाली को प्राधान्य मिल रहा है, वह कहां तक उपयुक्त है। केन्द्र के शिक्षा मन्त्री से लेकर, प्रान्त जिला, नगर और ग्राम के शिक्षा अधिकारी इस शिक्षा प्रणाली से असतुष्ट हैं।

(४) वृद्धावस्था बढती जाने पर चाचीजी ने जब देखा कि मुझे जो परामर्शदाता उपलब्ध हैं, उन्हीं के परामर्शानुसार कार्य करने के अतिरिक्त कोई अन्य उपाय नहीं रह गया, तो उन्होंने पाठशाला के सचालन को अपनी सारी सम्पत्ति उनके सिपुर्द कर दी। ट्रष्टियों ने अवाछित सरकारी शिक्षा प्रणालियों को अपनाया। परिणामस्वरूप पाठशाला की अधिकांश छात्राओं की वेश भूषा, भारतीय की अपेक्षा योरुपीय दृष्टिगत हो रही है। प्रायः छात्राएँ लज्जा-शून्य अर्ध नग्न यूनीफार्म धारण करने को बाध्य की जा रही है।

(५) उत्तम हो कि ट्रस्टी गण मथुराप्रसाद गुलाबदेवी कन्या पाठशाला को "आर्य महिला आयुर्वेद विद्यालय" में परिणत करने की ओर ध्यान दें।

"चाचीजी गुलाबदेवीजी की, कीर्ति करो सुरक्षित
आर्य महिला आयुर्वेद विद्यालय हो शीघ्र स्थापित।
जन्म शताब्दि पर आयोजन यह होवे प्रारम्भ
कृतज्ञ आर्यो इसमें अब तनिक न करो विलम्ब
आधार शिला स्थापित कर दो उत्साहपूर्ण उत्कर्ष।
वर्तमान में राजस्थान के आयुर्वेद विभाग के उप सचालक श्री चन्द्रशेखरजी इस पुण्य कार्य में सहयोग देने की कृपा करें।

पौराणिक प्रणाली वर्ज्य हैं, वैदिक तर्पण और श्राद्ध परम्परा श्रद्धा से पालनीय है। भाद्रपद शुक्ल पक्ष में ४ जन्म जयन्ती प्रसंग आ रहे हैं।

(१) आधुनिक अजमेर के भूषण कवि स्व० श्री अमरचन्द्रजी व्यास। आप निर्भीक रचनाएं और केसरीवत् गर्जन वीरों को संघर्षों से जूझने की प्रेरणा देते थे और कायरों में वीर भाव भर

"चिड़ियों से मैं बाज लड़ाऊं
तो गुरु गोविन्दसिंह कहाऊं"

घोषणा को सिद्ध करते थे। आप के पिता श्री लक्ष्मीनारायणजी महर्षि के जीवन काल में ही स्थापित आर्यसमाज के सदस्य थे और नगर परिषद की तह बाजारी भूमि का किराया उगाहने के परिवार के कामदी की रायबहादुरी सेंगर की ऐसे ही आर्य सदस्य थे। आपकी धर्मपत्नी ने नित्यानन्द निकेतन निर्माणार्थ ५१) मंत्रीजी परोपकारिणी को श्री सेंगर की चिर स्मृति स्वतः प्रेरणा से भेंट किये हैं।

श्री सेंगरजी के साथ श्री लक्ष्मीनारायणजी के कौटुम्बिक घनिष्ठता थी। अजमेर आर्य जगत् के विश्वकर्मा मनीषी पद्म चंद्रजी की आर्य भवनो के निर्माण की सुख्याति प्रसिद्ध है। वह त्रिमूर्ति नगर परिषद मे आर्य समाज की भू संपत्ति की सुरक्षा में सदा दत्त चित्त रहती थी।

श्री अमरचन्दजी ने चाचीजी गुलाबदेवीजी के प्रति उनकी हीरक जयन्ती के अवसर पर श्रद्धांजलि समर्पित की थी।

परमात्मा कृपा करें, ऐसे ओजस्वी पुरुष उत्पन्न हों। श्री अमरचन्दजी के अनुज श्री मंगलचन्द्र उनके और परिवार तथा इष्ट मित्रो यथा श्री ओमप्रकाशजी श्री जगन्नाथजी उपाध्याय आदि से निवेदन है कि श्री लक्ष्मीनारायणजी और श्री अमरचन्दजी की यादगार में ऋषि उद्यान में निर्मित होने वाले नित्यानन्द निकेतनार्थ अपनी शक्ति अनुसार आर्थिक श्रद्धांजलि अर्पण करने की कृपा करें।

(२) भाद्रपद शु० १० (तेजा दशमी) स्वर्गं पवित्र और अन्यो को पवित्रता प्रदातृ श्री हरिभाऊ उपाध्याय के शब्दों में भक्त मीरा के समान वैदिक धर्म की मतवाली चाचीजी गुलाबदेवीजी की जन्म शताब्दी के सम्बन्ध में चाचीजी की संपत्ति के सत्ताधिकारियों और वशजों का ही नहीं समस्त राजस्थानी आर्यजगत का जो कर्तव्य है उसके सम्बन्ध में आर्यमार्तण्ड के गतांक और इस अंक में जो सुझाव दिये गये हैं वे पालनीय हैं।

ब्रह्मचारी नित्यानन्दजी महाराज की जन्म जयन्ती के सम्बन्ध में अंक में लेख अलग प्रकाशित हुई है। आर्य जगत् आ० प्र० स० के कार्यालय निमित्त नित्यानन्द भवन निर्माण निधि में मुक्त हस्त हो अपनी श्रद्धांजलि भेंट करें।

### ❁ मातृभूमि यशो गान ❁

ये ग्रामा यदरण्यं या सभा अधि भूम्याम्।
ये सग्रामः समितयः तेषु चारु वदेम ते॥
अथर्व० १२।१।५६॥

व्याख्या:—(ये) जो (ग्रामाः) ग्राम, (यद्) जो (अरण्यम्) वन, (याः) जो (सभाः) सभाएं (ये) जो (सग्रामा) युद्ध तथा (समितयः) समितियां (भूम्यामधि) भूमि पर हैं, (तेषु) उन सब स्थानों में हे मातृभूमि ? (ते) तेरी (चारु) उत्तम स्तुति (वदेम) हम करें।

#### पद्यानुवाद

समिति सभा ग्राम नगर वन युद्ध क्षेत्र के बीच महान।
करे सदैव "मातृभूमि का" धन्य आर्य निर्भय यशगान॥

धन्यवाद आर्य
कवि कुबेर कुरड़ावी (राज०)

---

#### [illegible]

वैदिक विद्यालय आर्य समाज मोती कटला जयपुर के लिए एक सुयोग्य, अनुभवी, वैदिक सिद्धांतवादी अध्यापक की शीघ्र आवश्यकता है। शीघ्र ही आवेदन पत्र भेजिए।

सूर्यप्रकाश अग्रवाल,
आर्य समाज, मोती कटला,
जयपुर।

## आर्य स्पेशल ट्रेन, दिल्ली जंक्शन से

आर्य केन्द्रीय सभा दिल्ली राज्य के तत्वावधान में एक विशेष रेलगाड़ी, १२ नवम्बर रात्रि को दिल्ली जंक्शन से जयपुर, जोधपुर, ब्यावर होती हुई, अजमेर में ऋषि निर्वाणोत्सव, और गोवा आर्य सम्मेलन में भाग लेने हेतु एवं प्रमुख ऐतिहासिक स्थान देखने के लिये प्रस्थान कर रही है। अजमेर में ऋषि निर्वाणोत्सव दीपावली के एक सप्ताह पश्चात् मनाया जाता है। अतः अजमेर हम १४, १५ नवम्बर को ऋषि निर्वाणोत्सव में भाग लेकर, दक्षिण भारत के प्रमुख स्थान सिकन्दराबाद, हैदराबाद, पहुंचने से पहले औरङ्गाबाद के समीप अजन्ता, अलोरा गुफाओं को भी देख सकेंगे। अजमेर दिनांक १४ नवम्बर को गाड़ी प्रातः ५ बजे पहुंचेगी।

गोवा में भी २३, २४, २५ नवम्बर को सायं तीन-तीन घण्टों के लिये वहां की सभा ने तीन प्रमुख स्थान, वास्कोडिगामा, पजम, कुंककली में आर्य सम्मेलनों का आयोजन किया है। शेष समय ऐतिहासिक एव दर्शनीय स्थान दिखलाने का कार्यक्रम बनाया है। आर्य सम्मेलन में भाग लेने के पश्चात् यह आर्य स्पेशल ट्रेन पूना होती हुई २८ नवम्बर प्रातः बम्बई पहुंचेगी, और बम्बई से २९ नवम्बर को प्रस्थान करके सूरत, बड़ौदा, और कोटा होती हुई, आर्य स्पेशल ट्रेन २ दिसम्बर को पुनः नई दिल्ली रेलवे स्टेशन पर पहुंचेगी।

आपको यह जान कर अत्यन्त प्रसन्नता होगी कि इस आर्य स्पेशल ट्रेन में पूजनीय स्वामी विद्यानन्द जी विदेह चल रहे हैं, जिनके मधुर वेदोपदेश से आप लाभान्वित हो सकेंगे।

जिन भाई बहिनों ने आर्य स्पेशल ट्रेन में यात्रार्थ अपने स्थान सुरक्षित नहीं कराये हैं, वे ५-१०-६९ से पहले ही आर्य केन्द्रीय सभा के कार्यालय १५, हनुमान रोड, नई दिल्ली—१ और उप कार्यालय आर्य समाज, करोल बाग नई दिल्ली ५ द्वारा अपना स्थान सुरक्षित करवा लेवे। पूरी जानकारी के लिये फोन नं० ४३३८०, आर्य केन्द्रीय सभा, १५ हनुमान रोड नई दिल्ली—१, लाला रामलाल ५२/३८ रामजस रोड, करौल बाग नई दिल्ली, फोन न. ५६२५१० से प्राप्त करें।

भवदीय
रामलाल

## कुशलगढ़ में प्रचार

दिनांक १७-९-६९ को आर्य समाज कुशलगढ़ द्वारा आयोजित कार्यक्रम के अन्तरगत योगीराज स्वामी श्री कण्वानन्दजी सरस्वती का उपदेश कराया गया। जिसमें नगर के सभी समुदायों के लोगों ने लाभ लिया। दिनांक १८-९-६९ को प्रातः यज्ञ, वेदपाठ तथा उपदेश हुआ एवं दिन में स्थानीय राजकीय कन्या सैकण्डरी स्कूल में आदरणीय स्वामीजी का उपदेश विद्यार्थी-जीवन पर हुआ।

मंत्री
आर्य समाज कुशलगढ़

## संस्कृत की ओर लौट चलो अभियान!

मातृ-मन्दिर सस्कृत प्रचार समिति की ओर से 'संस्कृत की ओर लौट चलो' अभियान का शुभारम्भ किया गया है। इसका उद्देश्य है कि संस्कृत की ओर प्रत्येक भारतवासी का ध्यान हो और वह संस्कृत स्वय पढ़े भी और अन्यों को पढ़ाएं भी।

कहना न होगा कि अंग्रेजी के कारण हमारी दिमागी गुलामी अभी दूर नहीं हुई है और जिसका कुफल हम भुगत रहे हैं, देश की समस्याओं का हल हम अपने देश की परम्पराओं व परिस्थितियों के आधार पर न विचार कर विदेशी आधार पर खोजते हैं, जिसका सबसे घातक परिणाम हो रहा है कि देश को खण्ड करने की प्रवृत्ति पनप रही है। यदि अंग्रेजी की भक्ति हमने नहीं छोड़ी, तो यहां अनेक नागालैण्ड बनेंगे और खाद्य समस्या व मँहगाई आदि का कभी अन्त न होगा।

दिमागी गुलामी केवल संस्कृत के पढ़ने पढ़ाने से ही दूर होगी। और तभी भारतीयों के सुख-प्रभात का उदय होगा, क्योंकि तभी हमारा ध्यान अपने देश के मौलिक शक्ति स्रोतों की ओर पूर्ण रूप से जायगा और तभी हमें सब समस्याओं का सही हल मिल सकेगा।

अतः "सस्कृत की ओर लौट चलो अभियान" को सफल बनाने में हम आपके शुभ सहयोग का आह्वान करते हैं और आपका भी कर्त्तव्य है कि इसमें पूरा योग दें।

हमारा नारा है—संस्कृत सरल भाषा है।
हमारा कार्यक्रम यह है—

(१) संस्कृत विद्यालयों में अधिकाधिक छात्रों का प्रवेश हो।

(२) बालिकाओं के लिए सस्कृत विद्यालय खुलें।

(३) प्रौढ़ों के सस्कृत की रात्रि व मध्याह्न पाठशालाएं हों।

(४) सस्कृत के पाठ्यक्रमों मे आधुनिक विषयो की पढ़ाई की उत्तम व्यवस्था हो, जिससे ऊँची-ऊँची सरकारी सेवाओं में भी प्रवेश कर सकें।

(५) सस्कृत परीक्षाओं में उत्तीर्ण विद्यार्थियों को जीविकोपार्जन के साधन सुलभ हों।

(६) भारत के प्रत्येक नागरिक को संस्कृत का ज्ञान हो, जिससे यह भारत की जन भाषा बन सके।

(७) सस्कृत में वैज्ञानिक आधार पर अनुसन्धान हो।

(८) आधुनिक युग की समस्याओं व विषयों पर पुस्तकें लिखी जाएं।

(९) सरल संस्कृत भाषा में संस्कृत पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन हो।

(१०) संस्कृत प्रचार प्रसार के और भी जो आवश्यक कार्यक्रम होंगे उन्हें हम अपनायेंगे।

बालिकाओं के लिए उच्चकोटि की शिक्षा की व्यवस्था "मातृ-मन्दिर कन्या संस्कृत पाठशाला वाराणसी" चल रही है। इसमें उपरोक्त विशेषताओं के सहित संस्कृत की शिक्षा दी जा रही है।

आप भी अपने यहां संस्कृत विद्यालय चालू करें।

यह आपको विदित हो कि संस्कृत की परीक्षाओं की सरकारी मान्यता है जो कि इस प्रकार हैं—

प्रथमा १ छठीं के समकक्ष, प्रथमा २ सातवीं के समकक्ष प्रथमा ३ आठवीं के समकक्ष, पूर्व मध्यमा दसवीं के समकक्ष उत्तर मध्यमा इन्टर के समकक्ष, शास्त्री बी० ए० के समकक्ष आचार्य एम० ए० के समकक्ष।

संस्कृत में विश्वभाषा बनने की भी पूरी क्षमता है। प्रत्येक भारतीय का हमें सहयोग मिलेगा, यह हमें पूर्ण विश्वास है।

### संस्कृत प्रचार समिति के नियम

(१) साधारण सदस्य—१) रु० वार्षिक शुल्क
(२) विशिष्ट सदस्य—११) रु० वार्षिक शुल्क।
(३) संरक्षक सदस्य—१०१) रु० वार्षिक शुल्क।
(४) आजीवन सदस्य १००१) रु० शुल्क।

कर्त्तव्य—(१) प्रतिदिन कम से कम तीन व्यक्तियों को समझाना कि संस्कृत सरल भाषा है और वह राष्ट्रभाषा बनने योग्य है।

(२) सस्कृत प्रचार के प्रत्येक कार्य में सहयोग देना।

सदस्य बनकर संस्कृत की उन्नति में सहयोग दें।

अध्यक्षा :
डा०कु०पुष्पावती एम.ए.पी.एच.डी. आचार्य
मातृ-मन्दिर संस्कृत प्रचार समिति
डी. ४५/१२९, नई बस्ती रामापुरा,वाराणसी

## आर्य समाज मसूदा (अजमेर) का चुनाव

आज दिनांक १४-९-६९ को आर्य समाज की साधारण सभा का आयोजन होकर सर्वसम्मति से निम्न कार्यकारिणी के सदस्यों का चुनाव हुआ।

अध्यक्ष—श्री रामनाथ अरोड़ा, उपाध्यक्ष—श्री हीराचन्द मन्त्री, मन्त्री—श्री शालिगराम पुरोहित, उपमन्त्री—श्री कन्हैयालाल नाहर, कोषाध्यक्ष—श्री गुलाबचन्द नाहर, पुस्तकाध्यक्ष—श्री नौरतमल सिन्धी, सदस्य—श्री रामचन्द्र लोहार, श्री दूल्हेसिंह चौहान (घोलादांता), श्री सोहनसिंह सींदल, श्री योगेशचन्द्र व्यास, श्री रामचरण दोसायां, श्री सुरेशचन्द्र पुरोहित, श्री गजराज धूत।

मन्त्री
शालिगराम पुरोहित

## श्री गंगानगर में अमृतवर्षा

दिनांक १५-८-६९ तक आर्यसमाज श्री गंगा नगर द्वारा नगर के विभिन्न मुहल्लों में वेद प्रचार और भजन कीर्तन चलता रहा। तत्पश्चात् १९-८-६९ से २५-८-६९ तक आर्यसमाज मन्दिर में वेद प्रचार सप्ताह मनाया गया। जिसमें शास्त्रार्थ महारथी श्री प० ओम प्रकाशजी शास्त्री (खतौली वाले) एवं गायनाचार्य श्री प० शोभारामजी प्रेमी (मेरठ) ने तन-मन से वेद प्रचार किया। यहां की जनता ने भी उत्साह पूर्वक भाग लिया। सात दिन तक प्रातः ७ बजे यज्ञ, ८ से ८॥ बजे तक भजन, ८॥ से ९ बजे तक उपदेश, रात्री ८॥ से ९॥ बजे तक भजन, ९॥ से १०॥ बजे तक वेदोपदेश का कार्यक्रम रहा।

मंत्री
आर्यसमाज श्रीगंगानगर

## आर्यसमाज सवाई माधोपुर की आर्य बन्धुओं से अपील

समस्त आर्य बन्धुओं को यह जानकर हर्ष होगा कि शैल एवं वष्णव नगरी सवाई माधोपुर में स्थानीय आर्य सज्जनों ने आर्य समाज की स्थापना एवं समाज भवन निर्माण हेतु सक्रिय कदम उठाया है। यह इस क्षेत्र का वह पुनीत स्थान है, जहां अपने प्रारम्भिक जीवन काल मे प्रात स्मरणीय श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती ने निवास किया था एवं जिला मुख्यावास होने के साथ ही साथ रमणीक पर्वत श्रेणियों के बीच घिरा होने के कारण प्रकृति का सुरमय क्रीडा स्थल है।

स्थानीय आर्य समाज का कार्य यहां पिछले दो वर्षों से द्रुत गति से चल रहा है एवं हवन सत्संग आदि का कार्य क्रम चल रहा है। परन्तु किसी सर्वसुविधा युक्त भवन के अभाव में सक्रिय रूप में वांछित सफलता प्राप्त नही होने के कारण इस ओर यह कदम उठाया गया है जिसकी सफलता सभी आर्य बन्धुओं के सक्रिय सहयोग पर निर्भर है।

अत निवेदन है कि सभी आर्य समाज सामूहिक एवं व्यक्तिगत रूप से द्रव्य एकत्रित कर अपनी आहुति मन्त्री आर्य समाज के पास रूप से भिजवाने की कृपा कर। भवन निर्माण हेतु ५५×८० फीट का एक भूमि खण्ड क्रय कर लिया है। जिस पर निर्माण व्यय लगभग १००००) रु० अनुमानित है। निर्माण यज्ञ प्रारम्भ किया जा चुका है। अत आपकी आहुति की उत्कृष्ट प्रतीक्षा है।

समाज की अन्तरिम कार्यकारिणी का गठन दिनांक १७-८ ६९ ई० का हुआ जो निम्न प्रकार है—

(१) प्रधान—सर्वश्री आत्माराम जी ठकेदार (२) उप प्रधान—श्री भवरलाल जी ठकेदार (३) मन्त्री—श्री मूलचन्द जी शर्मा स० अ०, (४) उप मन्त्री—श्री वृद्धिचन्द जी शर्मा व० अ० (५) कोषाध्यक्ष—श्री व्रजबहादुरसिंह प्र० अ० (६) लेखा निरीक्षक—श्री प्रेमप्रकाश जी गुप्त (७) पुस्तकालयाध्यक्ष—श्री घनश्याम गुप्त सदस्य— (८) श्री चरणदास जी फोरमेन (९) श्री सरस्वती प्रसाद जी गोयल (१०) श्री महेन्द्र प्रताप जी एडवोकेट (११) श्री द्वारिका प्रसाद जी एडवोकेट (१२) श्री [illegible] जी [illegible] (१३) श्री [illegible] जी गोयल प्र० अ० (१४) सूबचन्द्र जी गुप्त (१५) श्री फूलचन्द जी अग्रवाल। सधन्यवाद।

विनीत
मूलचन्द शर्मा
मन्त्री

### सूचना

गुरु विरजानन्द निर्वाण शताब्दी महोत्सव करतारपुर मे जी० टी० रोड पर स्मारक भवन में ५ १० ६९ से १२ १० ६९ तक मनाया जा रहा है कृपया अवश्य पधार और इस महान् यज्ञ म आहुति दकर जीवन सफल कर।

मन्त्री

## आर्य समाज मसूदा में श्रावणी पर्व

आर्य समाज मसूदा ने अपना श्रावणी उत्सव दिनांक २१ से २७ अगस्त सन् ६९ तक हवन भजन प्रवचन आदि कार्य क्रमों से सफलता पूर्वक सम्पन्न किया।

इस समाज ने अपने भवन में बिना किराये, तथा बिना मूल्य जल व्यवस्था तथा बालकों को बैठने क अन्य साधन उपलब्ध करते हुए इसी माह से ग्राम क प्रतिष्ठित नागरिकों एवं शिक्षा प्रेमियों के सहयोग से ३ वर्ष से ६ वर्ष के बालक व बालिकाओं को नई शिक्षण पद्धति से एक प्रशिक्षित महिला अध्यापिका द्वारा पढ़ने हेतु एक शिशु शाला दयानन्द सरस्वती शिशु-शाला के नाम से प्रारम्भ की है। इस शाला का उद्घाटन माननीय प्रधान श्री गोपाल सिंह जी पंचायत समिति मसूदा के करकमलों द्वारा दिनांक १६-८ ६९ को सानन्द सम्पन्न हुआ। इस शिशु शाला में इस समय करीब ३० बालक व बालिकाओं का प्रवेश हो चुका है तथा शीघ्र ही सख्या बढ़ने की सम्भावना है।

समस्त आर्य प्रेमियों को इस शिशु शाला को विद्या दान के रूप में पठन सामग्री एवं धन राशि देने हेतु शाला व्यवस्थापक मण्डल द्वारा प्रार्थना की जाती है।

उप मन्त्री
शालिगराम पुरोहित

## महात्माजी का जन्म आश्विन कृ० १२ (गुजरात की भाद्रपद कृ०१२) स १९२६ विक्रमी को हुआ था

समस्त विश्व को महात्माजी के जन्म दिवस की मान्यता ऋषि तिथि को देनी चाहिये। ईसवी तारीख को नही।

दुर्भाग्य से कालेजो स्कूलो के शिक्षित अधिकतर भारतीयों को ईसवी तारीखों का ही ज्ञान है। उन्हे भारतीय सवत् अयन ऋतु मास पक्ष तिथि आदि का बोध कराने को वि० स० १९०२ (ईसवी १८४५) से २०३० (ईसवी १९७२) तक के भारतीय तिथि पत्र प्रकाशन का प्रयत्न हो रहा है। सम्भवतया आर्यमार्तण्ड में इस आयोजन की विगत शीघ्र ही प्रकाशित हो। जो सज्जन इस आयोजन मे सहयोग देना चाहे वे सचालक भारतीय तिथि पत्र मार्फत वैदिक पुस्तकालय केसर गंज अजमेर को सूचित कर।

## बवासीर के समूल नाश की रामबाण औषधि शीघ्र मगाकर आजमाइये!

खूनी तथा बादी नई पुरानी सभी प्रकार की बवासीर को जड से मिटाने के लिये यह अमोघ रामबाण औषधि है। दो सप्ताह के पास के सेवन से पूर्ण लाभ। आज ही मगाकर आजमाइये। और व्याधि से मुक्ति प्राप्त कीजिये।

डा० शकरलाल ठाकर
दादा भाई क्वाटर
नसीराबाद मार्ग अजमेर

## अजमेर में ऋषि मेला

स्वामी दयानन्द सरस्वती के निर्वाण दिवस पर आगामी १० नवम्बर से १६ नवम्बर तक महर्षि उद्यान अजमेर में ऋषि मेला आयोजित किया जाता है, जिसमें आर्य जगत के नेता, उपदेशक व भजनीक भाग लेंगे। दिल्ली से आर्य नरनारियों की एक स्पेशल ट्रेन भी आवेगी।

परोपकारिणी सभा के मन्त्री श्री श्रीकरणजी शारदा ने सूचित किया है कि इस मेले में आने वाले व्यक्तियों के भोजन व निवास की व्यवस्था निःशुल्क की जावेगी।

—मन्त्री

## आर्यसमाज टोंक में नव जागरण

इस वर्ष आर्य समाज टोंक मे श्रावणी पर्व धूमधाम से समाज के नव जागरण का अभियान प्रारम्भ हुआ तथा निम्नांकित रूप से समाज का पुनर्गठन किया गया:—

(१) प्रधान—श्री पुखराजजी बजाज (२) मन्त्री—श्री प्यारेलालजी, (३) उपमन्त्री—हुकमचन्दजी, (४) कोषाध्यक्ष—लल्लूराम जी।

### आवश्यकता

आर्य परिवार की २४ वर्षीय राजपूत सुशिक्षित बी० ए० उत्तीर्ण कन्या के लिये आर्य विचार धारा के सम्पन्न परिवार के सुयोग्य सुशिक्षित वर की शीघ्र आवश्यकता है। जाति भेद नही। पूर्ण परिचय सहित निम्नांकित पते से पत्र व्यवहार करें।

मूलचन्द वर्मा
३८२ अजुन गली
भीम मण्डी, कोटा
जंक्शन—२

### शीघ्र आवश्यकता है

वैदिक विद्यालय ([illegible] मिडिल स्कूल) पर्वतपुरा जि[illegible] [illegible]ए एक अनुभवी सुयोग वैदिक सिद्धान्त [illegible] प्रशिक्षित स्नातक प्रधानाध्यापक की शीघ्र [illegible] है। आवेदन पत्र निम्नांकित [illegible] पते [illegible] तथा अनुभव के प्रमाण पत्रो के [illegible] भेजें।

मन्त्री
वैदिक पाठशाला पर्वतपुरा
द्वारा दयानन्द आश्रम
केसर गंज अजमेर

### आर्य मार्तण्ड के प्रेमी ग्राहकों से नम्र निवेदन

आर्य मार्तण्ड राजस्थान मे वैदिक धर्म के प्रचार प्रसार मे लगभग ४३ वर्ष से सक्रिय तत्पर है। उच्चकोटि के विद्वानों की वैदिक साहित्य एवं उत्तम रचनाओं का यह प्रमुख पत्र है। अत पत्र की सुव्यवस्था और सहयोगार्थ आप मार्तण्ड का वार्षिक चन्दा धनादेश द्वारा आज ही भेजकर अपने सक्रिय सहयोग से अनुगृहीत कीजिये।

व्यवस्थापक
आर्य मार्तण्ड अजमेर।

श्री पं० भगवानस्वरूपजी 'न्यायभूषण' के प्रबन्ध से वैदिक यन्त्रालय अजमेर में मुद्रित और ओम्प्रकाश वानप्रस्थ, सम्पादक प्रकाशक द्वारा दयानन्द आश्रम केसरगंज अजमेर से प्रकाशित। अधिष्ठाता—श्रीमान् डा० भवानीलालजी भारतीय एम ए पी एच डी अजमेर

आर्य प्रतिनिधि सभा राजस्थान का मुख्य-पत्र

रजि० नं० जे १४

पाक्षिक

# आर्यमार्तण्ड

दयानन्द आदित्य से पाकर ज्योति प्रचण्ड । ध्वंस दम्भ पाखण्ड का करे आर्य्यमार्तण्ड ॥

वर्ष ४७ | वार्षिक मूल्य ५) रुपया | सम्पादक—श्री आनन्दभिक्षु वानप्रस्थ ( रामसहाय शर्मा ) | अजमेर आश्विन शु० ५ सं. २०२६ वि., दि. १५ अक्टूबर ६९ दयानन्दाब्द १४५ | एक प्रति का २० पै० | अङ्क १६

## ईश्वर-प्रार्थना

ओ३म् उद्वयं तमसस्परि स्वः पश्यन्त
उत्तरम् ।
देवं देवत्रा सूर्यमगन्म ज्योति-
रुत्तमम् ॥

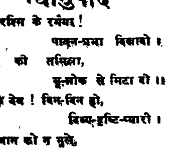
यजु० ३५।१४

हम सर्व अन्धकार से परे उत्कृष्ट प्रकाश स्वरूप, प्रलय के पश्चात् भी विद्यमान रहने वाले दिव्य गुणों से युक्त चराचर के आत्मा ईश्वर को सर्वत्र देखते हुए सर्व श्रेष्ठ ज्ञान को प्राप्त होवें ।

## पद्यानुवाद

रवि रश्मि के रमैया !
पावन-प्रभा दिखादो ।
अज्ञान की तमिस्रा,
भू-लोक से मिटा दो ॥
देवों के देव ! दिन-दिन हो,
दिव्य-दृष्टि-प्यारी ।
श्रुति-नाम को न भूले,
रसना कभी हमारी ॥

### परम-यज्ञ-भक्त महात्मा कन्हैयालालजी



आपकी जन्म जयन्ती आश्विन शु० ५ सं० २०२६ वि० १६ अक्टूबर ६९ को अजमेर की जनता बड़े समारोह से मनाकर अपनी हार्दिक श्रद्धाञ्जलि अर्पित कर रही है ।

# अजमेर में भव्य ऋषि मेला !

## ऋषि-निर्वाण दिवस पर ऋषि की निर्वाण स्थली अजमेर में दि. १४, १५ और १६ नवम्बर सन् ६९ को हो रहा है

परोपकारिणी सभा के तत्वावधान में महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती के ८६ वें निर्वाण दिवस पर इस वर्ष ऋषि मेला दिनांक १० नवम्बर से १६ नवम्बर तक ऋषि उद्यान, पुष्कर रोड, अजमेर में समारोह पूर्वक मनाया जावेगा ।

**यजुर्वेद पारायण यज्ञ –**

कार्तिक शुक्ला प्रतिपदा सोमवार दिनांक १० नवम्बर से यजुर्वेद पारायण यज्ञ आचार्य कृष्णजी के आचार्यत्व में आरम्भ होगा, जो नित्य प्रात. और सायं १६ नवम्बर तक चलेगा ।

**कवि सम्मेलन:–**

कार्तिक शुक्ला ५ शुक्रवार दिनांक १४ नवम्बर को सायंकाल कवि सम्मेलन होगा । जिसमें ऋषि दयानन्द व आर्यसमाज सम्बन्धी सरस रचनाएं प्रसिद्ध कवियों द्वारा प्रस्तुत की जावेंगी ।

**वाद विवाद-प्रतियोगिता:–**

दिनांक १४ व १५ नवम्बर को मध्यान्ह में वाद विवाद-प्रतियोगिता स्कूल व कालेज के छात्र छात्राओं के लिए होगी । दिनांक १४ नवम्बर १९६९ शुक्रवार, के मध्यान्होत्तर ३ बजे हाई स्कूल, उच्चतर माध्यमिक विद्यालय स्तर के छात्र-छात्राओं के लिए । (स्थान ऋषि उद्यान) विषय –

"विश्व की समस्त समस्याओं का समाधान अहिंसा से ही सम्भव है ।"

**अराष्ट्रीय ईसाई प्रचार निरोध सम्मेलन:–**

दिनांक १५ नवम्बर को मध्यान्ह में अराष्ट्रीय ईसाई प्रचार निरोध सम्मेलन श्री डा० राजबहादुर जी के संयोजकत्व में होगा ।

दिनांक १५ नवम्बर १९६९, शनिवार को मध्यान्होत्तर ४ बजे कालेज व गुरुकुल महाविद्यालय के छात्र तथा छात्राओं के लिए (स्थान : ऋषि उद्यान ) विषय:—

"संस्कृति का विकास धर्म में ही निहित है ।"

**शोभा यात्रा –**

दिनांक १५ नवम्बर को प्रात काल विशाल शोभा यात्रा ( नगर कीर्तन ) दयानन्द आश्रम आर्यसमाज मार्ग केसरगंज से होकर ऋषि उद्यान पहुंचेगी, जिसमें दिल्ली से स्पेशल ट्रेन से पधारे सैकड़ों, आर्य नर-नारी, आर्य कन्या महाविद्यालय बड़ौदा व अबोहर गुरुकुल की छात्राएं तथा राजस्थान की आर्यसमाजों के सदस्य विशेष रूप से भाग लेंगे ।

**भाषण एवम् भजनोपदेश –**

दिनांक १४, १५ व १६ नवम्बर की रात्रि को आर्य विद्वानों के भाषण होंगे । विशेष कर श्री तिलोत्तमा यतीजी, लाला रामगोपाल जी शाल वाले, प्रो० रतनसिंहजी, आचार्य कृष्णजी, पंडित सुदेवजी शास्त्री, डा० भवानीलाल जी भारतीय, पण्डित आनन्द प्रियजी तथा ओ३म् प्रकाशजी वर्मा भजनोपदेशक के मधुर गायन होंगे ।

आशा है आर्य नर-नारी हजारों की संख्या में पधार कर इस आयोजन को सफल बनाने में अपना सक्रिय सहयोग प्रदान करने की कृपा करेंगे ।

विशेष सूचना:—ऋषि मेला मे पधारने वाले महानुभावो के भोजन तथा निवास की निःशुल्क समुचित व्यवस्था है ।

श्रीकरण शारदा
मन्त्री
परोपकारिणी सभा

# स्वर्गीय श्री बद्रीप्रसाद भोरूका का जीवनवृत्त

राजस्थान के चूरू जिले के राजगढ़ नगर के समीपवर्ती नागल बड़ी मे गर्ग-गोत्रीय अग्रवाल वैश्य परिवार मे सन् १९११ ई० मे आपका जन्म हुआ। आपके पिताजी का शुभ नाम श्री मोडूराम जी था। वे साधारण पढे लिखे थे। आपने अपने



तीसरे पुत्र बद्रीप्रसाद का घर पर साधारण पठन-पाठन करवाया जब ये चौदह वष के हुए तो पिता जी के काम खेती ब डी मे उनका मन न लगा और अपने बड़े जीजा शेरडा चूरू निवासी श्री रामानन्द जी ग्र य के पास बगाल के जलपाईगुडी के चामुर्ची बाजार मे जा पहुचे और छ रुपय मासिक की नौकरी करने लगे। बहनाई की छोटा सी दुकान से इनकी मनोकामना पूर्ग न हो सकी और तब इ होने रेड बै० टा इस्टेट की एक दुकान मे भागीदारी का। तेरह वर्षों तक नौकरी और भागीदारी के बाद सत्ताइस वष की आयु में अपना स्वत त्र व्याप र अपने बड भाई श्री काशीराम और अपने नाम पर 'काशीराम बद्रीप्रसाद के नाम से करने लगे। यह दुक न बानरहाट मे खोली गयी, फिर इसके बाद दूसरा दुकान इनके सबसे बड़े भाई जसवन्तरायजी के नाम पर जसवन्तराय एण्ड ब्रदस खोली गई। इसी व ष मगाला जिला हिसार (हरियाणा) के निवासी श्री झन्नूमलजी की सुपुत्री कमला के साथ सन् १९३५ मे इनका विवाह हुआ।

अब ये अपने छोटे बड़े चारो भाइयो को व्यापार मे सलग्न देखना च हते थे। अपने सगे-सम्बन्धियो को भी अपने समान समृद्ध चाहते थे। फलत कलकत्ता के २६।१, आर्मेनियन स्ट्रीट में विजयादशमी के शुभ पव पर सन १९४३ मे एक और नयी पीढा स्थापित की। इस प्रकार बगाल, आसाम मे अपना व्यापारिक सम्मान अर्जित कर इनके मन मे बम्बई की ओर बढने का विचार हुआ। अन वे सन् १९५४ ई० मे बम्बई आ गये। अनेक प्रकार के व्यापारो मे ये निपुण हो ही गये थे। बाजारो मे इनकी साख भी बढती रही। कुछ समय के बाद इनको लगा कि यदि ट्रान्सपोट का व्यापार भी किया जाय तो अच्छा रहेगा। विचार आया और सन् १९५८ ई० मे ट्रासपोट कारपा रेशन आफ इ डया की स्थापना की। जिसका अब समस्त कार्यों का सचालन भार इनके सबसे छोटे भाई प्रभुदयालजी के कन्धो पर है तथा दूसरे छोटे भाई श्री छोगमलजी किशनगज बिहार मे बिहार टैक्स टाइल्स" के नाम पर कपडे का उद्योग चला रहे हैं।

इन्होंने एक बार जब महात्मा गाधीजी का व्याख्यान अपने नगर हिसार में सुना तो झट से निर्णय कर बठे अब मैं 'बीडी, सिगरेट, तम्बाकू को हाथ भी नहीं लगाऊगा।" और जीवन के अन्तिम क्षण तक भी इन दुर्व्यसनों से स्वय तो बचे ही, अनेक व्यक्तियों को बचाने में सफल भी हुए।

समाज सुधारक

इनके जीवन पर इनके छोटे बहनोई श्री छबील-दास आर्य के वैदिक विचारों का व्यापक प्रभाव पडा। ये शनै शनै. पक्के आर्य हो गये। महर्षि दयानन्द सरस्वती को ही भारत का सच्चा उद्धारक एव महान् सुधारक सन्यासी मानने लगे। इनके जीवन मे नयी क्रान्ति आयी। जब सबसे छोटे भाई श्री प्रभुदयाल का विवाह सन् १९४२ में हरियाणा में होने लगा। तो पर्दा प्रथा का तीव्र विरोध किया और सारे दकियानूसी समाज मे पर्दा-प्रथा के विरोध मे भयकर वातावरण बना दिया। फिर तो परिवार मे सभी सम्बन्धियो में जितने विवाह हुए सवत्र पर्दा उठ ही गया। इसी प्रकार दहेज देने के भा कट्टर विरोधी थे।

माताजी एव पिताजी के देहावसान पर लोगों ने मृतक भोज मागा तो टकासा उत्तर दे दिया, भई! मैं हू सुधारवादी, महर्षि का तुच्छतम सेवक! भला मैं इस कुप्रथा का कैसे निर्वाह कर सकता हूँ? वैसे तो वे महर्षि दयानन्द सरस्वती के स्वदेश प्रेम से पूर्ण प्रभावित थे ही, परन्तु जैसे ही महात्मा गाधी और पण्डित नेहरू के सम्पर्क में आये तो प्रतिज्ञा कर बैठे, अब तो मैं सिवाय शुद्ध खादी के और कुछ न पहनूगा ही नहीं। इसको उन्होने आजीवन निभाया। इसी भाति मारवाडी समाज मे व्याप्त बाल विवाह वृद्ध विवाह अनमेल-विवाहो का भीषण विरोध किया, अनेक नौजवानो के सगठनो को खडा किया, पूरी तरह सहायता दी और समाज के इजारदारो के नाकों मे दम कर दिया। अब तो धीरे-धीरे ये कुप्रथाए कम होती जा रही हैं, पर आज से बीस-पच्चीस वष पूर्व तो बडा ही कठिन था, इनके विरोध में स्वर तक निकालना।

दान देने में तो सीमा ही लाघ गये। आर्य समाज बडा बाजार के बारह वष तक प्रधान रहे। मतभेद होने पर भी छोड भी दिया, पर जब समाज मन्दिर के बनाने मे रुपयो की कमी हुई तो बम्बई बुलाकर उन्हे अभीष्ट धन दिया। मृत्यु समय तक भी पच्चीस विद्वानो को वृद्धावस्था के कारण ५०) रुपये मासिक देते रहे। केरल मे बढते हुए ईसाइयत को रोकने मे जब वहा का एक युवक आगे आया तो उसे ढाई सौ रुपये मासिक की सहायता देने लगे। स्वय केरल मे जाकर जब उस युवक का काम कोट्टायम् नगर में देखा तो मलयालम भाषा में दो पुस्तको के प्रकाशन के लिए तुरन्त दस हजार रुपया दे दिया। आर्यसमाज दयकौर वाले जानते भी न थे कि ये कौन हैं जो कुरेद-कुरेद कर आर्य समाज के बारे मे पूछ रहे हैं? उन्हे भी उसकी प्रतिशिलान्यास के लिए दस हजार रुपया दे दिया। श्री दयानन्द ब्राह्म महाविद्यालय, ज्वालापुर को चीनी और पाकिस्तानी युद्ध में वीर गति प्राप्त सैनिको के बालकों के शिक्षण के लिए प्रतिमास दो हजार रुपया देते रहे हैं। आर्य गुरुकुल एटा, गुरुकुल चित्तौडगढ एव उडीसा के स्वामी ब्रह्मानन्द जी को ईसाई प्रचार-विरोधी कार्यों के लिए प्रतिमास हजारों की सहायता देते रहे हैं।

ससद सदस्य सर्वश्री प्रकाशवीर शास्त्री, श्री ओमप्रकाश त्यागी, श्री शिवकुमार शास्त्री इत्यादि आर्य-नेताओं को लोक सभा मे भेजने में स्तम्भ रहे हैं।

वेदो के अनन्य भक्त थे ही। विश्व के प्रत्येक पुस्तकालय मे, ससार के प्रत्येक प्रचारक के हाथो मे अपन भाषा मे अनूदित सुमुद्रित वेदो की प्रतियां हो, यह इनकी मरते-दम तक इच्छा रही। इस कार्य की पूर्ति "सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा", दिल्ली के सरक्षण मे हो रही है।

अपने ग्राम नागल बडी मे एक विद्यालय भव-कक्ष का व्यवस्था के लिए भी इन्होने सकल्प किया और इस सकल्प को पूरा करने के लिए इनके परिवार ने तीन लाख तक का खर्चा मजूर किया है। इसी प्रकार जब भिवानी आर्य समाज के एव हरियाणा नागरिक सघ के सुयोग्य मन्त्री श्री मनीरामजी आर्य ने भिवानी मे नारी-शिक्षण के कन्या विद्यालय की आधारशिला रखने की इनसे प्राथना की तो गत २१ सितम्बर को विद्यालय की आधारशिला के साथ-साथ इक्कीस हजार रुपये का प्रारम्भिक दान भी दिया। बम्बई म हरियाणा नागरिक सघ को, राज्य के होनहार निधन छात्रों की नियमित सहायता के लिए तीन हजार रुपये वार्षिक की सहायता दी और इस समय इनके भाई पाच लाख रुपयो से इनके नाम पर स्मारक औषधालय का निर्माण बम्बई मे भी करने जा रहे हैं। भारतीय सस्कृति एव वैदिक भावनाओ के सजीव उपासक स्वर्गीय श्री बद्रीप्रसाद भोरुका का पावन नाम सदैव जाज्वल्यमान रहेगा।

## झाबुआ क्षेत्र में प्रचार

दिनाक ५-९-६९ से ११-१०-६९ तक का वेद प्रचार कायक्रम पूज्य स्वामी कामानन्दजी सर-स्वती का अराष्ट्रीय प्रचार निरोध समिति रतलाम झाबुआ के अन्तर्गत चल रहा है। इसमे २ शुद्धि व करीब १५० यज्ञोपवीत सस्कार हुए व प्रचारक मनोहरलाल आर्य, ओंकारसिंह आर्य, विनोद कुमार दवे का काफी अधिक सहयोग रहा।

स्थानीय आर्यसमाजों ने अति श्रद्धा के साथ सहयोग दिया व आंवली वापूसिंह उपमन्त्री आदिम जन-जाति कल्याण विभाग (श्री प्रभुदयालजी गहलोत) के द्वारा उद्घाटन समय पूज्य स्वामीजी ने अध्यक्षता की व भावी कार्यक्रम की रूपरेखा दी।

—मनोहरलाल

# आर्य मार्तण्ड

अजमेर आश्विन शु० ४ सं० २०२६ वि० दिनांक १५ अक्टूबर सन् १९६९

अभिव्यक्ता की कलम से—

## गाण्डीव के तीर

**( किसी समय साप्ताहिक 'वीर अर्जुन' से गाण्डीव के तीर छूटते थे, अब 'आर्य मार्तण्ड' मे सामयिक विषयों पर व्यावहारी टिप्पणियाँ पढ़िये और अपनी प्रतिक्रिया से सूचित कीजिये )।**

पिछले दिनों में बैंकों के राष्ट्रीयकरण की धूमधाम रही। लोगों ने अत्यन्त उत्साह पूर्वक प्रधान मंत्री के इस प्रगतिशील आर्थिक कदम का स्वागत किया। प्रधानमंत्री को धन्यवाद और बधाई देने के लिये नित्य प्रति विभिन्न वर्गों के लोग झुण्ड के झुण्ड उनके निवास स्थान के बाहर एकत्र होते रहे। यह बधाई का समारोह एक जलसे का रूप धारण कर लेता। लाउडस्पीकर लगते और जोश खरोश से भरे भाषण किये जाते। परन्तु बधाई देने वालों में कौन लोग होते। बकौल भूतपूर्व वित्त मंत्री श्री मुरारजी देसाई इन सभाओं की भीड़ भाड़ मे स्कूली बच्चे, तांगे रिक्शा चालक स्कूलों के अध्यापक, रेहड़ी और खोमचे वाले तथा इसी किस्म के लोग रहते, जिन्हे यदि एकान्त में पूछा जाये कि बैंकों के राष्ट्रीयकरण का क्या अर्थ है और इससे कौन लोग किस प्रकार लाभान्वित होंगे? तो वे शायद इसका उत्तर भी न दे सकें। खैर कोई मुजायका नहीं। मुरारजी भाई के इस आक्षेप के उत्तर मे प्रधान मन्त्री ने कहा कि यही तो लोकतन्त्र की विशेषता है। इसमे उन वर्गों के लोगो के उत्थान को देखना चाहिये जो पिछड़े हुये हैं, उपेक्षित हैं, तथा अब तक जिनकी ओर कोई ध्यान नही दिया गया।

हम प्रधान मंत्री के समाधान से सहमत हैं परन्तु उनके पड़ौस मे रहने वाले बूढ़े पितामह आचार्य कृपलानी ने एक और प्रश्न उठाया। उन्होंने लिखा 'मेरा घर प्रधान मंत्री के घर से कोई आधा मील पर है। शाम को मैं आम तौर पर अपने घर में ही रहता हूं। हर शाम को लोग प्रधानमंत्री के घर के पास मील चक्कर मे एकत्रित होते हैं। उन्हें बिना भाड़े की सवारियो में लाया जाता है। ये लोग प्रधान मंत्री की प्रशंसा मे नारे लगाते हैं। ध्वनि विस्तारक यंत्रो से गुंजाये जाने वाले भाषणों और नारों का स्वर इतना तीव्र होता है कि पड़ौसियों की नींद हराम हो जाती है। सम्भव है कि इन नारों तथा भाषणों द्वारा जिस व्यक्ति की तारीफ की जा रही हो, उसे ये स्वर संगीत के समान मधुर लगते हो, परन्तु भारत की इन प्रधान मंत्री को कम से कम अपने पड़ौसियो पर तो दया दिखानी ही चाहिये, जब कि वे इन लोक शिक्षा के साधनों के द्वारा अपने आपको सर्वाधिक शक्तिशाली और लोकप्रिय सिद्ध कर चुकी हैं।" कृपलानीजी ने प्रधान मंत्री के प्रोपेगण्डा एजेन्टो तथा समर्थकों से अत्यन्त विनम्रतापूर्वक अनुरोध किया है कि वे इस शोरगुल को बन्द करें ताकि यह बूढ़ा आदमी शान्तिपूर्वक सो सके। पता नही स्टेट्समैन मे प्रकाशित उनकी इस प्रार्थना का क्या परिणाम निकला। परन्तु हमें गुसाईंजी का यह वाक्य स्मरण हो आया— समरथ को नहिं दोष गुसाईं।'

यरुशलम की अलअकसा मस्जिद मे आग क्या लगी ससार के समस्त मुसलमान देशो मे एक भूकम्प सा आगया। किसी भी धर्मस्थान को नष्ट भ्रष्ट और दूषित करना अत्यन्त निन्दनीय है, इसमे दो मत नही हो सकते। परन्तु अल अकसा मसजिद के अग्निकाण्ड ने जिन इस्लाम मतानुयायियो को अपना रोष और आक्रोश प्रकट करने की प्रेरणा दी, क्या उन्होंने कभी ठण्डे दिल से यह भी सोचा कि जिस समय बाबर ने अयोध्या के राम जन्म स्थान के मन्दिर को ध्वस्त कर बाबरी मसजिद बनाई उस समय राम के अनुयायियो को भी ऐसी ही पीड़ा हुई होगी। मथुरा काशी और अन्यान्य तीर्थस्थानो के सैकड़ो धर्मस्थानो को ध्वस्त कर जिन मूर्ति भंजकों ने निराकार ईश्वर की उपासना के लिये मसजिदो का निर्माण कराया, क्या यह अल अकसा काण्ड से अधिक घृणित एव निरस्करणीय नहीं था? काश! अलअकसा के नष्ट होने पर दुख व्यक्त करने वाले अन्य धर्मावलम्बियो की पीड़ा को भी समझें और कृष्ण जन्मभूमि मथुरा मे कटरा केशवदेव स्थित औरंगजेबी मसजिद तथा काशी विश्वनाथ के पुरातन मन्दिर को ध्वस्त कर ज्ञानवापी के निकट मसजिद बनाये जाने से हिन्दुओ को जो तीव्र वेदना हुई होगी उसका भी अनुमान करें।

अलअकसा मसजिद को जलाये जाने के दूषित कृत्य की निन्दा करने तथा इस घोर अमानवीय एव निन्दनीय कृत्य के प्रति अपनी नाराजगी जाहिर करने के लिये रब्बात मे विश्व मुस्लिम शिखर सम्मेलन हुआ। सम्मेलन के आयोजको ने पहले ही घोषित कर दिया था कि इस सम्मेलन में उन्ही देशो को आमन्त्रित किया जायगा, जहाँ मुस्लिम आबादी का बहुमत हो, अथवा जिस देश का अध्यक्ष मुसलमान हो। निश्चय ही यह निर्णय युक्ति सगत था, क्योंकि प्रस्तावकों का विचार विश्व के मुस्लिम राष्ट्रों को ही आमन्त्रित करने का था। पता नही धर्म निरपेक्षता का डिंडिम घोष करने वाले भारत को क्या सूझी, कि इस साम्प्रदायिक सम्मेलन में भाग लेने के लिये व्याकुल हो उठा। न तो इस देश मे मुस्लिम आबादी का ही बहुमत है और न इसका राज्याध्यक्ष ही मुसलमान है। पुन ऐसी क्या उतावली पड़ी थी कि यहाँ के यार लोग सम्मेलन के आयोजकों पर बरस पड़े कि भारत मे ६ करोड़ मुसलमान रहते है और उन्हे मुस्लिम सम्मेलन में नही बुलाया गया। यदि विश्व हिन्दू शिखर सम्मेलन होता तो शायद उसमे सरकारी रूप मे भाग लेने का या भारत सरकार के प्रतिनिधित्व का कोई स्वप्न मे भी नही सोचता खैर, रब्बात का निमन्त्रण भी मिला और उसमे भारतीय प्रतिनिधि मण्डल को 'बड़े बे आबरू होकर' कूचे से निकलना भी पड़ा। जो प्रतिनिधि मण्डल भारत सरकार की ओर से भेजा गया, उसमे हमारे देश के मोरक्को स्थित सिक्ख राजदूत श्री सरदार गुरबचनसिंह भी थे। भला मुसलमान अपने धार्मिक सम्मेलन मे किसी सरदारजी को कैसे सहन करते। बात थी भी उचित। सम्मेलन के आयोजक तो इसे शुद्ध धार्मिक सम्मेलन कहें और उसे मुसलमानो तक ही सीमित रखने की बात करें और हमारी सरकार के विदेश विभाग के कर्णधार उसकी और ही व्याख्या करें मुद्दई सुस्त और गवाह चुस्तवाली बात हुई। अब भारतीय प्रतिनिधि मण्डल के नेता श्री फखरुद्दीन अली अहमद अपने क्षोभ को व्यक्त करते हुए भारत की विदेश नीति के पुनर्विचार की बात करते हैं, पाकिस्तान को कोसते है, मोरक्को के शाह को आंखे दिखाते है परन्तु प्रधान मंत्री ने तो स्पष्ट कर दिया कि रब्बात में चाहे कुछ भी हुआ हो, हमारी अरब राष्ट्रों के सम्बन्ध मे नीति अपरिवर्तित रहेगी। पचो की राय सिर माथे परन्तु परनाला तो वहीं गिरेगा। पाकिस्तान भी बेचारा क्या करता। उसके आका याह्या खां ने तो साफ कह दिया कि यदि मैं भारतीय प्रतिनिधियों के साथ बैठा तो स्वदेश लौटते ही मेरे देशवासी मेरा गर्दन उतार लेंगे। फिर भला इस सम्मेलन मे भाग लेकर भारतीय प्रतिनिधि कौन सा माल लेते। चलो अच्छा हुआ। मारवाड़ी कहावत है—सहजै चूड़ो फूटग्यो हलका होग्या हाथ। सहज ही चूड़ा फूट गया और पहनने वालों के हाथ हल्के हो गये। भारतीय प्रतिनिधि मण्डल चाहे अपमानित हुआ परन्तु अरब राष्ट्रों की मित्रता की कलई तो खुल गई।

तमिलनाडु मे एन सी सी. का प्रशिक्षण इस आधार पर बन्द कर दिया गया था कि इसके आदेश हिन्दी मे दिये जाते है। तमिल भाषियो को अंग्रेजी भाषा का प्रयोग स्वीकार है परन्तु स्वदेशी भाषा का प्रयोग उनको सह्य नही। पर्याप्त समय तक एन सी सी बन्द रही और तमिलनाडु सरकार ने भारत सरकार से अंग्रेजी मे आदेश दिये जाने की अनुमति चाही। हमारी उदार भारत सरकार ने अब अंग्रेजी आदेश दिये जाने की अनुमति दे दी है और मद्रास में एन सी. सी. का कार्य पुन जारी हो जायगा। अपनी नाक बचा लेने के लिये केन्द्रीय रक्षा मन्त्रालय ने इतना अवश्य कह दिया कि छात्रो को कक्षाओ में हिन्दी आदेशो का ज्ञान कराया जावे। परन्तु जो लोग

( शेष पृष्ठ ७ पर )

# हमारी उत्तराखण्ड यात्रा का संक्षिप्त विवरण

लेखक—श्री रामस्वरूपजी वेदी सिद्धान्त शास्त्री मन्त्री आर्यसमाज शाहपुरा (राजस्थान)

ओ३म् यस्येमे हिमवन्तो महित्वा
यस्य समुद्रं रसया सहाहुः
यस्येमाः प्रदिशो यस्य बाहू
कस्मै देवाय हविषा विधेम
(यजु० अ० २५ मं० १२)

स्वाध्याय के अन्तर्गत जब २ भी यह वेद मन्त्र सम्मुख आता, तब अर्थ विचार से आत्मा में यह भाव स्फुरित होता कि ये बर्फीली पर्वत श्रेणियां समुद्र और ये दिशाएं उस प्रभु की अलौकिक महिमा को बताने वाले हैं। तब ऐसे दृश्यों को देखने की अभिलाषा हो जाती थी। संयोगवश वह अभिलाषा इस वर्ष पूर्ण हुई।

पूज्या माताजी के परलोकवास के पश्चात् पूज्य पिताजी का चित्त खिन्न सा रहने लगा था। अतः खिन्नता निवारणार्थ कुछ काल के लिये एकान्त सेवन का निश्चय कर अधिक मास प्रथम आषाढ़ कृष्णा ३० से द्वि० आषाढ़ शुक्ला १५ तक गङ्गा किनारे हरिद्वार रहने का निश्चय किया। और दो दिन पूर्व शाहपुरा से प्रस्थान कर हरिद्वार पहुचे। साथ मे उपदेशक के रूप मे प. वंशीधर जी शास्त्री को तथा स्वाध्याय हेतु आनन्द स्वामी जी द्वारा लिखित कुछ पुस्तकें ले गये थे।

एक सप्ताह के अनन्तर पू० पिताजी का यह आदेश पत्र प्राप्त हुआ कि "हमारा विचार उत्तरा खण्ड की यात्रा करने का है, अतः तुम सब भी आजावो" इस प्रकार का पत्र प्राप्त होते ही हम सब परिवार के प्रौढ़ सदस्य प्रथम आषाढ़ शुक्ला १४ सं० २०२६ दि० २८ जून शनिवार को प्रस्थान कर हरिद्वार पहुचे। दि० २९ जून रविवार को प्रातः ८ बजे इन पंक्तियों के लेखक को दीवान हाल आर्य समाज देहली के साप्ताहिक सत्सङ्ग में उपस्थित होने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। हरिद्वार पहुचने तक हम परिवार के ११ सदस्य प० वंशीधर जी शास्त्री सपत्नीक एवं अन्य २, इस प्रकार कुल १५ सदस्यो का संघ हो गया था।

द्वि० आषाढ शुक्ला १ सोमवार दि० ३० जून को ४ बजे हरिद्वार से रवाना हो ऋषिकेश पहुचे। सध्यादि कार्य मे निवृत्त हुए। ठीक ६ बजे बस रवाना हुई। आगे आकर नियमानुसार हम सबने हैजे के टीके लगाकर प्रमाण पत्र प्राप्त किये। ६॥ बजे नरेन्द्र नगर पहुँचे। यह उत्तरा खण्ड के मार्ग में पहला द्वार है, इस मार्ग मे ऐसा नियम है कि सभी रवाना होने वाली बसें एक साथ प्रस्थान करती हैं। सर्व प्रथम बस पर लाल झण्डी एव अन्तिम बस पर हरी झण्डी रहती है। जब तक एक स्थान से अगले स्थान पर बसें नहीं पहुच जाय तब तक के लिये अगला द्वार बन्द रहता है। जिससे रास्ते में कहीं क्रासिंग हो और एक्सिडेन्ट (टक्कर) न होने पावे। यहां से हम हिमालय के गर्भ मे प्रवेश कर गये। चढ़ाव आरम्भ हुआ। कई मील के चढ़ाव के बाद कुछ उतार इस प्रकार चढ़ाव उतार का आनन्द लेने लगे। जब चढ़ाव आता था, तब हृदय कम्पित होता था। उतार में मन हिलोरें लेता था। इस प्रकार करीब २०० कि० मी० की बस यात्रा कहीं २ दुर्गम पथ में हो रही थी। इस पहाड़ी यात्रा के बीच टिहरी में समतल भूमि भी देखी गई। चम्बा, टिहरी, बाड़कोट, धरासु होते हुए शाम को ५ बजे कुथनौर पहुँचे।

यहां से यमुनोत्री के लिये २१ मील की पैदल यात्रा प्रारम्भ हो जाती है। आवश्यक सामान के लिये १) किलो के हिसाब से कुली किया। शेष सामान को यहां एजेंसी में रखा। पू० पिताजी के लिये ५०) में कंडी वाले का निश्चय किया। जो अपनी पीठ पर यात्रियों को पहाड़ी मार्ग पर ले जाते हैं। इस प्रकार मजदूरी करने वाले नैपाली लोग होते हैं। जिनके नामों के आगे "बहादुर" की उपाधि होती है। माउण्ट एवरेस्ट के शिखर पर चढ़ने वाला "तेनसिंह बहादुर" इन्हीं नैपालियों में ही था।

साढे पांच बजे कुथनौर से पैदल रवाना हो १॥ मील यमुना चट्टी पहुँचे। भोजनोपरान्त रात्रि भर विश्राम किया। ६ बजे आगे के लिये रवाना हुए। ५ मील सयाना चट्टी पहुँच कर जल-पान किया। वहां से प्रस्थान कर ४ मील दूर हनुमान चट्टी १ बजे पहुंच गये। भोजनादि से २ बजे निवृत्त हो गये थे। परन्तु वर्षा हो जाने के कारण हमें रात्रि को हनुमान चट्टी पर ही रहना पड़ा। अगले दिन प्रातः यहां से रवाना हो फूल चट्टी होकर ठीक १०॥ बजे जानकी बाई चट्टी पहुंचे। यहां से यमुनोत्री ४ मील की दुर्गम चढ़ाई पर है। परन्तु वहां रहने आदि की व्यवस्था ठीक नहीं है और वहां से लौट कर आना भी कठिन है। अतः रात्रि को जानकी बाई चट्टी ही ठहरे। दिन भर एवं रात्रि के विश्राम के बाद हम सब स्वस्थ थे। अतः उत्साह पूर्वक रवाना हो १० बजे यमुनोत्री पहुंच गये।

यमुनोत्री में यमुना देवी का छोटा सा मन्दिर है। वहां के कलिन्द पर्वतमालाओं से अनेक धाराएं एकत्रित होकर यमुना (कालिन्दी) नदी का उद्गम बन गया है। यह स्थान समुद्र तल से ११००० फीट की ऊंचाई पर स्थित है। अतः सर्दी अधिक पड़ती है। यहां १ तप्त कुण्ड है। मालूम होता है कि यहां के पहाड़ों के पत्थरों में गंधक अधिक मात्रा में है, जिसके कारण पहाड़ों से इतना गर्म पानी निकलता है कि उसकी उष्णता से आधा घण्टा में चावल की पोटली पकने जैसी हो जाती है। इस कुण्ड का पानी दूसरे कुण्ड में और वहां से नीचे तीसरे कुण्ड में गिरता है। वहां यात्री स्नान करते हैं। हमने भी इस तप्त कुण्ड में स्नान किया, और थकान मिटाई। ये तप्त कुण्ड पोरबन्दर निवासी स्व० श्रीमान् नानजी भाई कालिदास जी महता ने अपनी माताजी "जमना बाई" की पुण्य स्मृति में बनाये हैं। ऐसा वहां लिखा लेख है।

भोजन के पश्चात् यहां से ४ फर्लांग दूर पहाड़ की खोह में रहने वाले अवधूत बाबा के दर्शन करने गये। वहां से लौटकर १॥ बजे पुनः नीचे उतरना आरम्भ किया। जानकी बाई चट्टी होकर फूल चट्टी आये। रात्रि को विश्राम किया। अगले दिन हनुमान चट्टी, सयाना चट्टी होते हुए शाम को यमुना चट्टी पहुँच गये। इस प्रकार यह ४२ मील की पैदल यात्रा ४ दिन में पूर्ण हुई।

प्रसङ्गानुसार यह भी लिखना आवश्यक है कि इस पैदल यात्रा का दृश्य मनोहर था। पर्वतों के बीच में सुगम पथ (पग डण्डी) एवं दुर्गम पथ (पहाड़ी चढ़ाई) बहुत है। यमुना के किनारे २ चलना पड़ता है। पहाड़ी मार्ग में कई स्थानों पर ऐसा दृश्य भी देखा गया जहां पत्थरों से पानी टपकता है और उनके नीचे होकर जाना पड़ता है। पर्वतों की चोटियां बर्फ से ढकी दिखाई देती है। सर्दी इतनी पड़ती है कि इन्हीं दिनों गर्म कपड़े पहनना पड़ता है और रात्रि को कम्बल ओढ़कर सोना पड़ता है। गरीबी इतनी है कि मांगने वालों की भरमार है। कुछ पैसा देने पर अत्यन्त प्रसन्न होते हैं। यहां से यमुना नदी सैकड़ों एवं हजारों छोटे बड़े प्रपातों को लेकर आगे बढ़ती जा रही है। इस प्रकार हमारी यह प्रथम यात्रा पूर्ण हुई।

दूसरे दिन प्रातः यमुना चट्टी से कुथनौर आये। यहां से ही गङ्गोत्री के लिये बस मिलती है। प्रातः ८ बजे यहां से रवाना हो शाम को ५ बजे उत्तर काशी पहुंचे। यहां से गङ्गोत्री जाने के लिये परमिट लेना पड़ता है। कारण इधर चीन की सीमा पड़ती है। बस से उतरते ही पुलिस स्टेशन गये, परमिट के लिये प्रार्थना पत्र दिये। रात्रि को धर्मशाला में ठहरे। प्रातः आवश्यक कार्यों से निवृत्त हो गङ्गा किनारे रहने वाले साधु महात्माओं के दर्शन करने गये। हमने एक विशाल काय तपस्वी बाबा रामानन्द जी के दर्शन किये। जो दिगम्बर रहते हैं। १५० वर्ष के कहते हैं। ऐसा भी सुना है कि इन्होंने अपने जीवन में मानसरोवर की चार बार परिक्रमा की और वर्षों तक गङ्गोत्री में खड़े २ तपस्या की है। यहां पर भी विश्वनाथ का मन्दिर, गङ्गा किनारे मणिकर्णिका घाट, संस्कृत विद्यालय आदि बनारस की प्रतिकृतियां हैं। उत्तर प्रदेश सरकार ने यह नया जिला बनाया है। यमुनोत्री एवं गङ्गोत्री इसी उत्तर काशी जिले में हैं। नगर छोटा ही है, परन्तु सुन्दर बनाने का प्रयास किया जा रहा है।

११ बजे हम [illegible] में पहुंचे। यहां हमें परमिट बन कर तैयार मिला। परमिट लेकर बस स्टेण्ड आये। १२॥ बजे पुनः बस रवाना हुई। मार्ग में कई स्थानों पर हमें परमिट एवं हैजे के प्रमाण-पत्र दिखाने पड़े। शाम को ६ बजे लङ्का चट्टी पहुंचे, वहीं उतर हमने १ मील की दुर्गम भैरव घाटी को पार किया। रात्रि को भैरव

(भैरू) चट्टी ठहरे यहा से गङ्गोत्री सिर्फ ५ मील दूर है। प्रात उठते ही रवाना हो ६ बजे हम गङ्गोत्री पहुच गये।

गङ्गोत्री समुद्र तल से १०३०० फीट की ऊंचाई पर स्थित है। यहा गङ्गा का मन्दिर बना रखा है। जहा बारी २ से पण्डा लोग सेवा पूजा किया करते हैं। यहा से १० मील दूर गोमुख है। यही वास्तव में गङ्गा का उद्गम है। अति क्लिष्ट पहाडी रास्ता है। वहां के लिये विशेष परमिट की आवश्यकता पडती है। सर्दी अधिक पडती है, भोज पत्र बहुतायत से मिलते हैं।

भोजनोपरान्त हम सब गङ्गोत्री के दूसरे किनारे पर रहने वाले कई साधु सन्यासियो के दर्शन करने गये। हमने योगी स्वामी रामानन्दजी के भी दर्शन किये। जिनकी प्रशसा आनन्द स्वामी जी महाराज अपनी पुस्तको मे किया करते हैं और राजगुरु प. धुरेन्द्रजी शास्त्री (स्वामी अ्युतानन्दजी) ने भी मानते है। करीब १०० वर्ष के हैं। छोटी सी कुटिया मे दिगम्बर रहते हैं और यहीं पर तपस्या किया करते हैं। हम सब ने प्रणाम किया और उन्होने शुभाशीर्वाद दिया। बातचीत के अनन्तर आनन्द स्वामीजी महाराज के लिये भी कुशल प्रश्न किया। दूसरे दिन प्रात: मैं स्वय अकेला पुन स्वामीजी के दर्शन करने गया। प्रश्नोत्तर के अनन्तर स्वामीजी ने अपनी योग विद्या का कुछ चमत्कार भी दर्शाया।

हमने स्वामी कृष्णानन्दजी महाराज के भी दर्शन किये। जो १२५ वर्ष के बताते हैं। ८० वर्ष से मौनी है। ऐसा भी सुना है कि पं॰ मदनमोहन जी मालवीय ने इन्ही स्वामी जी के कर कमलों द्वारा काशी विश्व विद्यालय का उद्घाटन कराया था। इनके अतिरिक्त और भी अनेक साधु महात्माओ के दर्शन किय। इस प्रकार हमारी यह दूसरी उत्तराखण्ड यात्रा पूर्ण हुई।

गङ्गोत्री से पुन भैरू घाटी पार कर दिन के १२ बजे लङ्का चट्टी आये। यहा से ही केदारनाथ के लिये बसयात्रा प्रारम्भ हो जाती है। १२।। बजे लङ्का चट्टी से रवाना हो ५। बजे पुन उत्तरकाशी आये। रात्रि को यहा ठहरे। दूसरे दिन यहा से प्रात ८ बजे रवाना हो धरासु, टिहरी, श्रीनगर होते हुए शाम को ५। बजे रुद्र प्रयाग पहुचे। रात्रि को यहा विश्राम कर अगले दिन ११ बजे गुप्त काशी पहुचे। गुप्त काशी मे भी विश्वनाथ का मन्दिर है। जिसके चौक मे १ हौज बना हुआ है। उसमे दो छोटे २ प्रपात गिरते हैं। जिनमे गोमुख लगा रखे हैं। जिनको गुप्त गङ्गा और गुप्त यमुना के नाम से कहते हैं। यहा गुप्त दान का विशेष महत्व बताते हैं।

रात्रि पर्यन्त गुप्त काशी ठहरे। यहीं से केदारनाथ के लिये २८ मील की पैदल यात्रा प्रारम्भ हो जाती है। प्रात. पूर्वोक्त प्रकार पिताजी के लिये कण्डी एवं आवश्यक सामान ले जाने के लिये १)२५ किलो के हिसाब से कुली कर हम सब रवाना हुए ११ बजे फाटाचट्टी पहुँचे। भोजनोपरान्त कुछ विश्रामकर पुङ्गपुरचट्टी के लिये रवाना हुए। मार्ग में हमने देखा कि एक कार छिन्न भिन्न अवस्था में पडी हुई थी। पूछने पर ज्ञात हुआ कि करीब १।। महीना पूर्व इस स्थान पर ऊपर से पहाड गिर गया। फलस्वरूप ३ आदमियों की मृत्यु हो गई। ड्राइवर बाल २ बच गया। रात्रि को रामपुर चट्टी ठहरे। प्रात सीतापुर चट्टी आये यहीं से केदारनाथ तक १४ मील की चढाई प्रारम्भ हो जाती है। रास्ते मे गौरीकुण्ड आये। यहां पर भी तप्तकुण्ड है, जिसमे स्नान कर थकान मिटाई भोजन कर राम बाडा पहुचे रात्रि भर विश्राम किया। प्रात केदारनाथ के लिये प्रस्थान किया। जो यहां से ५ मील दूर है। ९ बजे केदारनाथ पहुचे।

केदारनाथ के मन्दिर मे केवल पहाड की प्रतिकृतिमात्र है। मदाकिनि नदी का उद्गम स्थल है। रुद्र प्रयाग से ही मदाकिनि नदी के किनारे २ यात्रा करनी पडती है। यह स्थान समुद्र तल से ११७५० फीट की उचाई पर स्थित है। अधिक ऊंचाई पर स्थान के कारण यहीं ६ महीने तक बर्फ जमी रहती है। अन्य बडे पेड कई मीलो तक नहीं दिखाई देते। छोटे छोटे पौधो में रग बिरगे फूल अधिक है। वायु मे ऑक्सीजन की कमी है। दो दिन यहीं ठहरने के पश्चात् वापिस नीचे उतरे। रात्रि को रामपुर चट्टी ठहरे। वर्षा अधिक हो जाने के कारण मार्ग मे रुकावट हो गई थी। लौटते समय हमने अपनी आंखों से पहाडो को ढहते हुए देखा। कई स्थानो पर मार्ग में दरारें पड गई थी। इस प्रकार ५६ मील की पैदल यात्रा कर पुन गुप्त काशी आये। इस प्रकार यह उत्तराखण्ड की तीसरी यात्रा पूर्ण हुई। गुप्त काशी मे रात्रि भर विश्राम के पश्चात् दूसरे दिन प्रात ८।। बजे बदरिकाश्रम के लिये बस यात्रा प्रारम्भ की। १० बजे रुद्र प्रयाग आये भोजन किया। रुद्र प्रयाग मे मदाकिनि एव अलकनन्दा नदी का सगम है। यहीं से अलकनन्दा नदी के किनारे २ बस चलने लगी। कर्णं प्रयाग, चमोली पीपल कोटि होते हुए शाम को ५।। बजे जोशी मठ पहुँचे। इस नगर का शुद्ध नाम ज्योतिर्मठ है। जगद्गुरु शकराचार्यजी का उत्तर भारत मे प्रधान मठ यहीं पर है। बस से उतरते ही पहाडी पर स्थित ज्योतिमठ पहुचे। सायकाल का समय था यज्ञ की सुगन्ध आ रही थी। उस समय उनका सायकालीन सत्सग चल रहा था। हमने भी यहा जगद्गुरु शकराचार्यजी के दर्शन किये और भाषण सुना। यहां की पहाडियो पर हमारी (भारतीय) सेनाओ का बडा भारी जमाव भी देखा गया। रात्रि को जोशी मठ ठहरे। प्रात. ६ बजे प्रस्थान कर ९ बजे हम बदरिकाश्रम पहुच गये। बस स्टेन्ड पर वहां पण्डा लोगों की अधिक भीड थी। मेवाड के पण्डे से उसी समय हमारा सम्पर्क होगया और उन्हीं की व्यवस्था मे धर्मशाला मे ठहरे।

यह बदरिकाश्रम उत्तरभारत का अन्तिम छोर है। अलकनन्दा नदी का उद्गम् स्थल है। इस क्षेत्र में भी बडे पेड नही पनप सकते। बर्फीले पहाड दिखाई देते है। प्राकृतिक सौन्दर्य अच्छा है। पहाडो में गन्धक की मात्रा अधिक होने के कारण यहा पर भी तप्त कुण्ड बने हुए है। कहते है कि भगवान नर-नारायण की यह तपोभूमि है। जिनकी स्मृति में मन्दिर बना हुआ है। उत्तर प्रदेश सरकार की ओर से चमोली जिलान्तर्गत १ समिति बनी हुई है जिसके द्वारा बदरीनाथ एव केदारनाथ दोनों मन्दिरों की सेवा पूजा के नियम निर्धारित कर रखे है। पहाडो में व अलकनन्दा के किनारे किनारे सैकडो साधु सन्यासी रहते है। सस्वर वेद पाठ करते हुए ब्रह्मचारियों को भी हमने यहीं देखा।

बदरिकाश्रम में तीन दिन ठहरने के पश्चात् दोपहर को २।। बजे यहा से प्रस्थान किया। पाण्डुकेश्वर विष्णु प्रयाग जोशीमठ होते हुए शाम को पीपल कोटि आये रात्रि पर्यन्त यहीं ठहरे दूसरे दिन प्रातः ८ बजे यहा से रवाना हो चमोली नन्द प्रयाग कर्ण रुद्र प्रयाग श्रीनगर होते हुए देव प्रयाग पहुँचे। यह भागीरथी एवम् अलकनन्दा नदी का सगम है। प्रपूर्वक यज धातु से प्रयाग शब्द सिद्ध होता है और यज धातु देवपूजा, सगतिकरण और दान अर्थ में प्रयुक्त होती है। इसीलिए जहां भी इस प्रकार का सगम हो, प्रयाग नाम रख दिया गया है। भागीरथी का नाम गङ्गा इस देव प्रयाग से ही करते हैं। देव प्रयाग से आगे बढकर हिमालय के गर्भ से निकलकर शाम को ७ बजे ऋषिकेश पहुँच गये।

दूसरे दिन ऋषिकेश से लक्ष्मण झूला देखने गये यह झूला लोह के मोटे मोटे रस्सो से बधा हुआ गङ्गा नदी के ऊपर पुल है जिसको झुंझुनू वाले सेठ ने अढाई लाख रुपये की लागत से बनाया है। देखने योग्य है। वहा से हम स्वर्गाश्रम गये यह गङ्गा किनारे हिमालय की तलेटी में सघन वृक्षो का सुन्दर बगीचा है। यहा पर लक्ष्मीनारायण जी का मन्दिर, गीता भवन, परमार्थ-निकेतन एव शान्ति स्तम्भ (क्लाक टावर) देखने योग्य है। परमार्थ निकेतन की कारीगरी एवम् सुन्दरता को देखकर मन हर्षित होता है। सुन्दर-सुन्दर झाँकियां अत्यन्त आकर्षक रही। आकर्षक ढग से सुसज्जित की गई हैं। प्रमुख द्वार में प्रवेश करते ही दाई ओर मन्दिर मार्ग पर सर्व प्रथम महर्षि दयानन्द सरस्वती का दिव्य स्मारक कांच की अलमारी मे सुशोभित है। प्राय यहा सत्सग होता ही रहता है। हजारो आदमियों के ठहरने की नि शुल्क व्यवस्था है। सस्कृत विद्यालय एवम् छात्रावास भी है रात्रि को यहा विश्राम कर दूसरे दिन हरिद्वार आ गये।

हरिद्वार से हम देहली आये उन्हो दिनो यहा लोक सभा का अधिवेशन चल रहा था। ऐसे समय में हमारी सार्वदेशिक सभा के महा मन्त्री एवम् ससद सदस्य श्री रामगोपाल जी शाल वाले की कृपा से हम सब को ससद देखने का सुअवसर प्राप्त हुआ। देहली से अजमेर होकर मैं शाहपुरा आया। परन्तु पूज्य पिताजी आदि परिवार के सभी सदस्यगण मथुरा वृन्दावन, आगरा, जयपुर, पुष्कर, अजमेर होते हुए शाहपुरा पधारे।

इस प्रकार हमारी उत्तरा खण्ड की पैदल यात्रा करीब १०० मील बस यात्रा करीब १००० मील एव ट्रन यात्रा करीब १००० मील ३५ दिन में पूर्ण हुई। महर्षि स्वामी दयानन्द जी सरस्वती ने इस भूमि को देव भूमि कहा है और सच्चे शिव की प्राप्ति एव अमरत्व की खोज के लिये लगातार २ वर्ष तक इसी भूमि मे विचरण करते रहे।

(शेष पृष्ठ ७ पर)

# आनन्द मार्ग एक भ्रम जाल !

लेखक—श्री मदनमोहन जी जावलिया एम ए (हिन्दी संस्कृत) शास्त्री बी एड. प्राध्यापक डूंगी (राज०)

देश का प्रबुद्ध वर्ग धीरे २ आनन्द मार्ग जैसे अवाञ्छनीय साम्प्रदायिक संगठन से सतर्क होता जा रहा है। सन् १९६८ के सितम्बर मास के किसी अङ्क मे साप्ताहिक हिन्दी ब्लिट्ज ने इस पंथ की हरकतों का भंडा फोड़ किया था। उसमे बताया गया था कि इस पंथ को विदेशी कम्पनियो एवं भारत द्वेषी संस्थाओ से भारतीय जनता को पथ-भ्रष्ट करने हेतु विपुल धन राशि मिलती है। अभी अभी भारत सरकार ने इसे राजनैतिक संगठन घोषित कर सरकारी कर्मचारियो का इनसे सम्पर्क रखना निषिद्ध ठहराया था। तभी से इसके जाल में फंसे पढ़े लिखे लोग चौकन्ने हो गये और इसके सदस्यों की संख्या दिनों दिन घटने लगी। अब सरकारी कर्मचारी इनके तथा कथित साधु वेष-धारी प्रचारको से सवाल जवाब करने लगे हैं, और अब इन्हे वह उर्वर भूमि नही मिल पा रही है जो पहले उपलब्ध थी। बंगाल और बिहार में सम्पन्न हुए मध्यावधि चुनावों मे इस संस्था ने 'प्राउटिस्ट ब्लाक' नाम से निर्वाचन मे उम्मीदवार खड़े किये किन्तु इनके दुर्भाग्य से इनका एक भी प्रत्याशी सफल नही हो पाया। इससे इनके तथा इनकी पीठ पर विराजमान विदेशी ताकतों के हौसले भी पस्त हो गये। भारत सरकार ने जांच के बाद घोषित किया कि इस पार्टी का कोई आध्यात्मिक स्वरूप नही है, यह विशुद्ध राजनीतिक संगठन है।

इनके प्रचार के लक्ष्य य सरकारी अथवा गैर सरकारी अधिकारी एवं कर्मचारी बनते हैं। जिनके बारे में इन्हें विश्वास हो जाता है कि इनकी कोई आध्यात्मिक, सांस्कृतिक पृष्ठभूमि नही है। ऐसे व्यक्तियो मे ये भगवा कपड़ो को सज्जित करते हुए से पहुँच जाते है। अंग्रेजी भाषा एवं योग साधना का हौवा सा खड़ा कर इनके 'साधु' उन्हे प्रभावित नही आतंकित सा कर लेते हैं।

राजस्थान के भी बहुत मे सरकारी अधिकारी एवं कर्मचारी इनके जाल मे फंसे हुए हैं। यद्यपि वर्तमान मे यह कहा जा सकता है कि ये अधिकारी सरकार अथवा समाज के लिये कोई खतरा नही उपस्थित कर सकते। किन्तु इतना तो है ही कि वे ऐसे अराष्ट्रीय तत्व विशेषत हिन्दू धर्म की जड़ खोदने वाले तत्वों को प्रश्रय देते हैं और इस तरह हिंदुत्व एवं राष्ट्रीयता के शत्रु सिद्ध होते हैं।

एक विद्वान् सरकारी अधिकारी ने जो सपरिवार आनन्द मार्ग के जाल मे ग्रस्त था, मुझे बताया कि हमने इस पंथ का इसलिये त्याग किया कि इनके यहा धार्मिक या आध्यात्मिक चर्चा तो होती नही, राजनैतिक विचार विमर्श होता है। इनका लक्ष्य यह है कि भारत की सेना के अफसरो को अपने प्रभाव में लेकर शासन-सत्ता को हस्तगत किया जाय।

इनके तथा कथित साधुओ के वेष-निरीक्षण से ज्ञात होगा कि इनका साधुता से दूर का भी सम्बन्ध नही है। उत्तम कोटि के वस्त्र ही जिनके अवयव हैं—बहुमूल्य घड़ी, जूते, कटार, केश, साफा आदि ये धारण करते हैं। चमड़े का बड़ा बैग जिसमे पुस्तक-विक्रेताओ के एजेंट से ये प्रतीत होते है, भी इनके पास होता है। यदि इनसे कोई प्रभावित हुआ सा लगता है तब तो ये छोटी मोटी पुस्तिका उसे दे देते हैं—यदि तर्क वितर्क कर लिया और फिर पुस्तिका मांग ली तो ये यह बहाना करेंगे कि ऐसी पुस्तिका एक ही है, चाहिए।

इनके एक 'साधु' से बात करने पर उसने बताया कि आनन्द-मार्ग कोई पंथ नही है, हम कोई सदस्य नही बनाते। हमारी संस्था आध्यात्मिक है। सभी धर्मों के व्यक्ति साधक हो सकते हैं। हम जाति पाँति मे विश्वास नही करते। बुद्ध, नानक, मुहम्मद, ईसा तथा आनन्द मूर्ति (आनन्द-मार्ग के संस्थापक जो अभी विद्यमान है) सभी Realized Soul (आत्म बोध प्राप्त अथवा सिद्ध) हैं। आनन्द मूर्ति जी से साधकों की कोई बात छिपी नहीं रह सकती। वे दोषी साधक को दण्ड देते हैं और बड़ा से बड़ा अधिकारी भी इनके द्वारा प्रदत्त दण्ड को सहर्ष स्वीकार करता है। साधक पातंजल अष्टांग योग का अभ्यास करने के बाद ही आनन्द मूर्ति जी के दर्शन कर सकता है तथा आध्यात्मिक चेतना प्राप्त कर सकता है। योगाभ्यास करने के बाद भी यदि आनन्द मूर्ति जी के दर्शन कर उनका आशीर्वाद नही लिया तो साधक का कल्याण नही हो सकता।

जाति पांति के बन्धन तोड़ने तथा अन्तर्जातीय विवाह कराने का काम आर्य समाज भी करती है फिर आनन्द मार्ग मे क्या विशेष है यह पूछने पर 'साधु' ने बताया कि आर्य समाज इस कार्य मे सफल नही हुआ। मैंने कहा आनन्द मार्ग में सम्मिलित होने वाले व्यक्ति भी इस कार्य मे अभी तक तो प्रवृत्त हुए नही हैं। और इक्के-दुक्के उदाहरण से तो आपका कथन प्रमाणित नहीं माना जा सकता। जब मैंने यह कहा कि आप उन लड़के लड़कियो की सूची दीजिये जो अन्तर्जातीय विवाह के इच्छुक हों, उनका आर्य समाज द्वारा विवाह करवाया जायगा, तो साधु निरुत्तर था। बंगाल के पुरुलिया जिले में दस हजार बीघा भूमि मे आश्रम स्थापित करने, अस्त्रशस्त्र रखने एवं पुलिस के साथ सशस्त्र संघर्ष करने का काम क्या किसी आध्यात्मिक संस्था का हो सकता है, यह पूछे जाने पर 'साधु' ने कहा कि वहा शैक्षणिक संस्थाए चलाते हैं। मेरा प्रश्न था—"शिक्षा सम्बन्धी, आपके क्या विचार हैं, पृथक् संस्थाए चलाने मे क्या उद्देश्य हैं। कौन से दोषो का निराकरण तथा कौन से गुणो का समावेश करने के लिये ऐसा करते हो।" साधु का उत्तर था, वहां से सभी सुसंस्कृत छात्र निकलते है—साधक होते हैं।' मैंने जब उन्हें यह बताया कि आपकी वे संस्थाएं महज चोंचले एवं मिथ्यात्व के भरी हुई हैं। चोंचलाए मात्र हैं—चोंचलाओं एवं यथार्थ मे आकाश-पाताल का अन्तर है। सही बात तो यह है कि आनन्द-मार्ग एक प्रहार एवं रहस्य का पर्दा डाले रखना चाहने वाला संगठन है। कम्यूनिस्ट या अमेरिका की C I (Central Intelligence) संस्था से धनराशि प्राप्त कर देश की वैधानिक सत्ता को पलटने का षडयन्त्र करता है, इस पर साधु सकपका सा गया और उसने कहा कि हम तो संविधान को मानते हैं तथा उसकी धाराओ के अन्तर्गत योग साधना के प्रचार का काम करते हैं।

जब मैंने यह कहा कि क्या आप गुरु-पूजा को प्रोत्साहन नही दे रहे हैं और इस माध्यम से व्यक्ति पूजा नही प्रचलित कर रहे हैं? जबकि व्यक्ति की सीमाएँ हैं व्यक्ति मे कमजोरियां हो सकती हैं। विचार या सिद्धान्त का अनुगमन ही सिखाना चाहिए। इस पर साधु ने व्यक्ति-पूजा से इन्कार करते हुए आनन्दमूर्ति को Realized Soul बताकर उन्हीं के माध्यम से कल्याण की बात कही।

मेरा आरोप था कि आनन्द मार्गी साधु चोटी और जनेऊ कटवा कर अपने पंथ मे दीक्षित करते हैं। क्या यह हिन्दू धर्म का उन्मूलन करने जैसी शत्रुतापूर्ण कार्यवाही नही है? अपने पक्ष के पोषण मे मैंने किसी स्थान विशेष के वर्ग विशेष का नामोल्लेख किया। साधु का उत्तर क्या था—बहाना मात्र था कि साधक साधना के उच्च स्तर पर पहुंचकर इन्हे आप ही छोड़ देता है। मेरा प्रश्न था कि आप जिन्हे उच्चस्तरीय साधक होने का प्रमाण पत्र दे रहे हैं, उनमे से किसी का चरित्र ऊंचा नही कोई शराबी है कोई मिथ्याभाषी है और फिर क्या उन्होने सांसारिकता का त्याग कर वैराग्य ले लिया है? शास्त्रानुसार तो संन्यासी ही शिखा-सूत्र के बन्धन से मुक्त है। शिखा-सूत्र त्यागी साधकों ने घर-बार-पत्नी-बाल-बच्चे-नौकरी गृहस्थी बाजा, तेल नमक लकड़ी की चिन्ता, प्रमोशन ट्यूशन आदि तो न छोड़ी और शिखा-सूत्र छोड़ दी? कितनी लज्जाजनक बात है। किन्तु सम्प्रदाय का विस्तार जो इन्हे करना है।

मैंने पूछा आनन्दमूर्ति के नाम पर आनन्द मार्ग चलाया गया। जिस तरह कि ईसा के नाम पर ईसाई पंथ और मुहम्मद के नाम पर इस्लाम या मुहम्मदी पंथ और बुद्ध के नाम पर बौद्ध पंथ। किन्तु हिन्दू अथवा वैदिक धर्मियों व्यक्ति आश्रित नही है वह सिद्धान्त एवं व्यवहार परक धर्म है, अपने पंथ का नाम वैदिक धर्म ही क्या नहीं रख लेते? साधु ने अपने सुने सुनाये ज्ञान का परिचय देते हुए कहा—वेद तो ज्ञान है। धर्म मे तो ज्ञान कर्म भक्ति तीनो चाहिए। मैंने कहा वेद में तीनों हैं। किसी साथी के यह पूछने पर कि क्या आनन्द मार्ग सनातन धर्म है? साधु ने उत्तर दिया, हाँ सनातन काल से चलता आया है। मैंने कहा जो यह तो १०-१२ वर्ष पहले प्रभातरंजन चक्रवर्ती नामक रेल्वे क्लर्क ने चलाया नहीं अब आनन्दमूर्ति बने हुए हैं। यदि सनातन धर्म ही है तो किस शास्त्र पुराण या ग्रन्थ को उपजीव्य मानता है? साधु का उत्तर था कि सभी अच्छी बात जिस किसी ग्रन्थ से मिल जाय। मैंने कहा अच्छी का माप दंड क्या है? साधु इनकी गहराई मे जाना नहीं चाहता था।

(शेष अगले अङ्क मे पढ़ें)

( शेष पृष्ठ २ का )

सम्पूर्ण यात्रा का दृश्य अभूतपूर्व था। पर्वतो की ऊपर से ऊपर चढाई, चीड एव देवदारू के घने जङ्गल, पहाडो पर सीढियो के समान चावल एव आलू की खेती, दूध के समान बर्फीले पानी के छोटे बडे सहस्रो झरने, पर्वतों के नीचे बहने वाली नदियो की कल कल ध्वनि, नीचे के पहाडों पर बैठे हुए बादलो के मनोरम दृश्यो को देखकर हमें मैथिलिशरण गुप्त की लिखी ये पंक्तियां स्मरण आई कि—

ये पर्वत की रम्य शिखा,
औ शोभा सहित चढाव उतार।
निर्मल जल के सोते झरने,
सीमा रहित महा विस्तार॥

ये सम्पूर्ण दृश्य परम पिता परमात्मा के सगुण स्वरूप के दर्शन कराने वाले हैं। प्रभु के निकट पहुचने के लिये जितनी उसकी रचना का अध्ययन किया जाय। उतना ही अधिक मन व आत्मा उसके गुणो मे मग्न हो जाता है और उसकी भक्ति अधिकाधिक बढती है। महर्षि स्वामी दयानन्दजी सरस्वती ने उत्तराखण्ड के विषय मे सत्यार्थ-प्रकाश के ११वें समुल्लास में लिखा है कि—

उत्तर काशी आदि स्थान ध्यान करने वालो के लिये विशेष उपयोगी है। परन्तु दुकान दारो के लिये वहा की दुकानदारी है।

केदार का स्थान और वहा की भूमि बहुत अच्छी है और बदरी नारायण की भूमि बडी ही रमणीय और पवित्र भूमि है। अत प्रत्येक आर्य को अपने जीवन काल मे एक बार अवश्य ही इस उत्तराखण्ड की यात्रा करनी चाहिये और अपना वानप्रस्थ काल उधर ही व्यतीत करना चाहिये। वेद भगवान का भी यही सन्देश है कि—

उपह्वरे गिरीणा सङ्गमे च नदीनाम्।
धिया विप्रो अजायत॥

ऋ० ८-६-२८

इस प्रकार की यात्रा के लिये आवश्यक सामान की एव विशेष जानकारी देना हम अपना कर्तव्य समझते हैं।

(१) गर्म कपडे एव कम्बल (२) लोहे के तीखे नोक वाली लाठी (३) रबड के तलवे के जूते (४) पैरो मे बाधने के लिये पट्टा (५) वर्षा से बचने के लिये प्लास्टिक (६) स्टोव (७) बैटरी (८) मोमबत्तिया (९) माचिस (१०) प्राथमिक दवाइयाँ (११) देशी घी (१२) प्रत्येक को प्रात हल्दी एव नमक का चूर्ण लेना चाहिये। (१३) मार्ग में प्राप्त होने वाले जङ्गली फलो का प्रयोग वर्जित है। (१४) स्थान २ पर ठहरने आदि के लिये बाबा काली कमली वालों की ओर से धर्म शालाएें है, जहाँ बतन आदि की विशेष व्यवस्था है। (१५) कई स्थानो पर निर्धारित मूल्य से आटा एव शक्कर मिलने का सरकारी प्रबन्ध है। (१६) वर्षा के समय पट्टी नहीं खोलनी चाहिये। (१७) यात्रा के लिए मई अथवा जून का महीना सर्वोत्तम है।

---

( शेष पृष्ठ ३ का )

हिन्दी को फूटी आंख मे भी देखना नही चाहते, वे कक्षा में हिन्दी अग्रेजी का क्या खाक ज्ञान प्राप्त करेंगे। यदि इसी प्रकार सेना मे विभिन्न भाषाओं मे प्रवेश दिये जाने की माग अलग २ प्रान्त वालो ने की तो राष्ट्रीय एकता का क्या हश्र होगा और फिर मद्रास की माग को स्वीकार कर अन्य प्रान्तों की मागो को कैसे अस्वीकार किया जा सकेगा?

चीन का राष्ट्रीय दिवस दिल्ली स्थित चीन दूतावास मे १ अक्टूबर को मनाया गया। विदेश मन्त्रालय के आदेश की पुन अवहेलना कर दूतावास ने स्वतन्त्र रूप से अतिथियो को निमन्त्रण पत्र भेजे और उस निमन्त्रण को शिरोधार्य कर सबसे प्रथम उत्सव में सम्मिलित होने वाले सज्जन थे प सुन्दरलाल जो अपने आपको भारत-चीनी एकता के अलमबरदार कहते हैं, विश्व शाति की स्थापना के लिये उधार खाये फिरते रहने वाले प. सुन्दरलाल ही वह व्यक्ति थे जो चीनी प्रधान मन्त्री चाऊ एन लाई के दूसरी बार भारत में आने पर उनका इस्तकबाल करने के लिये भारतीय जनता के एक मात्र स्वयम् प्रतिनिधि के रूप मे हवाई अड्डे पर उस समय उपस्थित हुये थे, जबकि दोनो देशो मे सीमा विवाद के कारण पर्याप्त विरोध भाव बढ चुका था। उस समय प सुन्दर लाल ने ही चाऊ से हाथ मिलाकर उनके कान में 'भारत-चीनी भाई भाई' के महामन्त्र का उच्चारण किया, परन्तु उसका प्रतिदान उन्हे क्या मिला? चीनी दूतावास का निमन्त्रण और भारतीय राष्ट्र को १९६२ का दुर्दान्त आक्रमण बेहयाई तेरा ही नाम प सुन्दरलाल है।

---

## जोधपुर नगर की समस्त आर्यसमाजों द्वारा विजयादशमी पर्व

वि० स० २०२६ आश्विन शुक्ला ७, ८, ९, १० ११ १२ शुक्र, शनि, रवि सोम, मगल, बुध, तदनुसार दिनांक १७, १८, १९, २०, २१, २२ अक्टूबर १९६९ को नगर आर्यसमाज गुलाबसागर मे जोधपुर नगर की समस्त आर्यसमाजो (यथा नगर आर्यसमाज गुलाबसागर आर्यसमाज रातानाडा आर्यसमाज सरदारपुरा, आर्यसमाज पूजला, आर्य समाज चैनपुरा द्वारा विजयादशमी पर्व समारोह पूर्वक मनाया जायेगा। १७ अक्टूबर को दिन के ३ बजे नगर कीर्तन श्री मद्दयानन्द प्राङ्गण से प्रारम्भ होकर कन्दोई बाजार, आडा बाजार, जालोरी गेट, स्टेशन रोड, सोजती द्वार, घास मन्डी, मार्ग होता हुआ गिरदी कोट घण्टा घर मे विसर्जित होगा।

इस शुभ अवसर पर सवश्री स्वामी रामेश्वरानन्दजी, पण्डित शान्ति प्रकाशजी शास्त्रार्थ महारथी, श्री वीरेन्द्रजी 'वीर' (चिमटा भजन मण्डली सहित) श्री वेगराजजी, प्रो० श्यामरावजी एम० काम आदि पधार रहे हैं। २६ अक्टूबर रविवार को नगर आर्यसमाज द्वारा सचालित आर्य मरुधर व्यायाम शाला का व्यायाम प्रदर्शन होगा।

## दयानन्द विद्यालय में गांधी जन्म शताब्दी समारोह।

दि० २ अक्टूबर ६९ को गाधी जन्म शताब्दी श्रीमान् बदरीनाथ भागव M.A. B.T प्रधानाध्यापक की अध्यक्षता मे बडे समारोह से मनायी गयी। महात्मा गांधीजी के प्रिय भजन "वैष्णव जन तो तेने कहिये..." को लोगो ने बहुत प्रेम भाव भरी ध्वनि में गाकर अपनी श्रद्धाञ्जलि अर्पित की। श्री प० रमा शकरजी शास्त्री, श्री हरि कृष्णजी मिश्र, श्री लक्ष्मण सिंह पारख ने गाधीजी के पावन जीवन से शिक्षा एव प्रेरणा ग्रहण करने पर बल दिया।

दि० ३ अक्टूबर ६९ को दयानन्द आश्रम के विशाल भवन मे गाधीजी की जन्म शताब्दी समारोह के उपलक्ष्य मे विद्यालय छात्र ससद का उद्घाटन राजस्थान के भूतपूर्व वित्तमन्त्री तथा वर्तमान राज्य सभा सदस्य श्री प० बालकृष्णजी कौल ने अपने कर कमलो से कर स्वस्थ जन तन्त्रात्मक प्रणाली का मार्ग प्रदर्शन किया। सर्व प्रथम विद्यालय के स्काउटो ने सादर अभिवादन करते हुए माल्यार्पण के द्वारा मुख्य अतिथि का हार्दिक स्वागत किया।

उत्सव का कार्यक्रम श्री करणजी शारदा प्रधान दयानन्द विद्यालय, की अध्यक्षता में आरम्भ हुआ। मन्त्री दयानन्द विद्यालय, मुख्याध्यापकजी तथा अध्यक्ष छात्र-ससद विष्णु मोहन रावत ने माल्यार्पण कर स्वागत किया।

सरस्वती वन्दना के पश्चात् श्री प० रमा शङ्कर जी शास्त्री ने मुख्य अतिथि का परिचय देते हुए उनके विशेष गुणो पर प्रकाश डाला। छात्रो द्वारा गाये जाने वाले गाधी जी के प्रिय गीत 'वैष्णव जन" की धुन बडी ही मधुर तथा प्रिय थी। तदुपरान्त अध्यक्ष महोदय ने ससद का उद्घाटन करते हुए अध्यक्ष को शपथ ग्रहण कराई। अध्यक्ष तथा प्रधान मन्त्री ने क्रमश शपथ ग्रहण की विधि पूर्ति की।

अध्यक्ष, प्रधान मन्त्री तथा सभी मन्त्रियो के भाषण उत्तम, सामयिक ससदीय प्रणाली के रुचिकर थे। प्रधानाध्यापक तथा सरक्षक छात्र ससद श्री प बदरीनाथ भागव ने ससद का कार्य विवरण प्रस्तुत किया। हिन्दी, सस्कृत, अग्रेजी सभी भाषाओ का समन्वयात्मक भाषण बडा ही उत्तम रहा। इस अवसर पर श्रीमान भारत भूषणजी गुप्त विद्यालय निरीक्षक अजमेर श्रीमान गणेशशङ्कर जी द्विवेदी जी प्रशासक नगर परिषद अजमेर आदि उपस्थित गण्य मान्य अधिकारियो, प्रतिष्ठित नागरिको तथा जनता ने कार्यक्रम की बडी सराहना की। श्रीमान कौल साहब ने महात्मा गाधी के प्रमुख अस्त्र सत्य तथा अहिंसा को ही देश के सगठन और सुरक्षा का मूल मन्त्र बताया। उन्होने कहा—यदि देश गाधी जी के आदर्शों पर नहीं चला तो वह नष्ट हो जायगा।

मन्त्रि परिषद के सदस्यो की पीताम्बरी वेश भूषा अत्यन्त आकर्षक थी। उत्सव की समाप्ति पर श्री बा जतनचन्दजी एडवोकेट ने सभी आगन्तुक महानुभावो को धन्यवाद अर्पित किया।

इसी अवसर पर अल्पाहार का भी उत्तम आयोजन किया गया था।

आयोजन की सानद सफलता के लिये श्री बद्रीनाथजी भागव प्रधानाध्यापक दयानन्द विद्यालय वास्तव मे बधाई के पात्र है।

श्री अधिष्ठाताजी
गुरुकुल कांगड़ी
सहारनपुर



## आर्य मार्तण्ड के आजीवन सदस्यों की सूची

| सं० | नाम | राशि |
|---|---|---|
| १. | श्रीमान् प० भगवान स्वरूपजी न्यायभूषण अजमेर | १०१) |
| २. | " श्रीकरण जी शारदा एडवोकेट अजमेर | १०१) |
| ३ | सुश्री कुमारी सरला शारदा अजमेर | १०१) |
| ४. | श्रीमान् वैद्य धर्मसिंहजी कोठारी अजमेर | १०१) |
| ५. | " रतनचन्दजी एडवोकेट अजमेर | १०१) |
| ६. | " ओमप्रकाशजी वानप्रस्थ अजमेर | १०१) |
| ७. | " छोटूसिंहजी एडवोकेट अलवर | १०१) |
| ८ | " डा० रामबहादुर जी बादा पाडा कोटा | १०१) |
| ९. | " सेवारामजी चौहान सार्इकिल डीलर्स किशनगढ़ | १०१) |
| १० | " किशनसिंहजी श्री गंगानगर | १०१) |
| ११ | " आशीरामजी ४४६ ब्लाक श्री गंगानगर | १०१) |
| १२ | " सन्तोषसिंहजी कछवाहा जोधपुर | ५०) |
| १३ | " रामचन्द्रजी [illegible] रोड [illegible] | १०१) |
| १४ | " रामस्वरूपजी सैनी [illegible] | १०१) |
| १५. | " [illegible]सिंहजी [illegible] | १०१) |
| १६ | " मदन [illegible] | १०१) |
| १७. | " जेठमल[illegible] | १०१) |
| १८ | " गोपी वल्लभजी कोटा | १०१) |
| १९ | " माधोसिंहजी शाहपुरा | १०१) |
| २० | " सुश्री मोहनी देवी बजाजा बाजार अलवर | १०१) |
| २१ | " श्रीमान् माधूलालजी अग्रवाल खिवसर | १०१) |
| २२ | " जेठमलजी राठी पाली | १०१) |
| २३ | " नारायण रामजी श्री गंगानगर | १०१) |
| | | २२७१ |

### वचन प्राप्त

| | |
|---|---|
| श्री सेठ रमेशचन्द्र जी शारदा | १०१) |
| श्री प० सुमदेवजी शर्मा M A D Litt | १०१) |
| श्री सन्तोषसिंह जी कछवाहा | ५१) |
| श्री लक्ष्मीचन्द जी शर्मा सुजानगढ | १०१) |

### हार्दिक धन्यवाद

श्री मदन मोहनजी शर्मा संगठन मंत्री सभा के सद्प्रयत्नों से ६००) अराष्ट्रीय ईसाई प्रचार निरोध मध्य वै० पाठशाला पवतपुरा को प्राप्त हुए है। इसमें श्री इन्दरजीत सिंहजी का हार्दिक सहयोग रहा। एतदर्थ दोनों ही महानुभावों को हार्दिक धन्यवाद। आशा है भविष्य में भी आपका सक्रिय सहयोग प्राप्त होता रहेगा।

मंत्री

## गुलाब कुंवर ओसवाल कन्या विद्यालय अजमेर में

### गांधी जन्म शताब्दी समारोह

दि० २ से १२ अक्टूबर तक विशेष बौद्धिक एवं सांस्कृतिक कार्यक्रमों के माध्यम से गांधीजी के जीवन दर्शन का आकर्षक आयोजन एवं सफल प्रदर्शन किया गया। इस गुलाब कुंवर कन्या विद्यालय में गांधी जन्म शताब्दी समारोह के रूप में लगभग ११ दिन तक बड़े उत्साह से मनाया गया। इस अवसर पर पधारे हुए मुख्य अतिथियों में श्री विष्णु माया कौल प्रवकाश प्राप्त उपर निदेशक (महिला) शिक्षा विभाग राजस्थान, श्री प० सुदेवजी शास्त्री उपाचार्य बी ए बी ट्रेनिंग कालेज अजमेर, श्रीमती विमला शर्मा, विद्यालय निरीक्षका अजमेर, श्री प्रभा मिश्रा, [illegible] राजस्थान राज्य, श्री प० भगवानस्वरूप जी न्यायभूषण प्रधान आर्य प्रतिनिधि सभा राजस्थान एवं श्री आर० पी भटनागर रीडर क्षेत्रीय प्रशिक्षण महा विद्यालय के नाम विशेष उल्लेखनीय है। छात्राओं के बौद्धिक कलात्मक एवं सांस्कृतिक कार्यक्रम बड़े ही आकर्षक रहे। इन सभी कार्यक्रमों से छात्राओं तथा कार्यकर्ताओं को तो प्रोत्साहन मिला ही जनता भी अत्यधिक प्रभावित हुई।

श्री विमला शर्मा ने गांधी शताब्दी समारोह के सम्बन्ध में आयोजित प्रतियोगिता में सफल छात्र छात्राओं को पुरस्कृत किया।

श्री चांदमलजी सीपाणी मंत्री कन्या विद्यालय का उत्साह वास्तव में प्रशंसनीय है। जिन्होंने इस शाला के उन्नयन में अपनी सम्पूर्ण हार्दिक शक्ति अर्पित कर रक्खी हैं। एतदर्थ वह धन्यवाद के पात्र है।

### स्वा. नित्यानन्द जयन्ती

आर्य समाज डाडवाना ने स्वामी नित्यानन्द जयन्ति मना कर के स्वामी जी को श्रद्धांजलि अर्पित की। जयन्ति के लिए अध्यक्षता श्री कुंज बिहारी लाल जी प्रधान ने की। श्री सम्पतलाल जी मन्त्री तथा बृज बिहारी लाल आर्य ने अपने विचार स्वामी जी के प्रति प्रकट करते हुए निवेदन किया कि हम लोगों की वास्तविक श्रद्धांजलि तभी सार्थक होगी, जब कि हम उनके जीवन की विशेषताओं को अपने जीवन में ढालने का प्रयास करेंगे। तथा सिद्धान्तिक कार्यकर्ता को तैयार कर आर्य समाज को समुन्नत करेंगे।

मन्त्री
सम्पतलाल शर्मा

### आवश्यकता

एक २४ वर्षीय बी० ए० स्टेनो, ब्राह्मण कन्या के लिए योग्य वर चाहिए। दहेज के इच्छुक पत्र व्यवहार न करें।

पता—
श्री प सुरेन्द्र शर्मा पुरोहित,
आर्य समाज, कृष्णपोल बाजार,
जयपुर

## वाणिज्य शिक्षक संघ का चुनाव

अजमेर नगर में वाणिज्य शिक्षकों के व्यावसायिक विकास के लिए एक संघ गत २ वर्षों से काम कर रहा है। कृपया संघ के निम्न समाचार को अपने दैनिक समाचार पत्र में स्थान देकर कृतार्थ करें।

"वाणिज्य शिक्षक संघ की इस वर्ष की प्रथम बैठक दिनांक १२ [illegible] स्थानीय ठीकमचन्द जैन माध्यमिक विद्यालय में हुई। जिसमें इस वर्ष के लिए नये पदाधिकारियों के चुनाव हुए। अध्यक्ष पद के लिए क्षेत्रीय शिक्षा महाविद्यालय के श्री कृष्णचन्द्र सिंह, उपाध्यक्ष पद के लिए मोईनिया विद्यालय से श्री वेदप्रकाश शर्मा, सचिव पद के लिए प्रायोगिक विद्यालय से श्री ओमप्रकाश शर्मा, उप-सचिव पद के लिए ठीकम चन्द जैन विद्यालय के श्री रामसेवक गुप्त चुने गये। सभी चुनाव निर्विरोध हुए। संघ ने वाणिज्य शिक्षकों के व्यावसायिक विकास के लिए प्रवचन पाठों, व्यावसायिक क्षेत्र के उद्भट विद्वानों की वार्ताओं, वाणिज्य पुस्तकालय की व्यवस्था एवम् प्रमुख पुस्तकों की समीक्षा के सम्बन्ध में एक विस्तृत रूप-रेखा बनाई। साथ ही छात्रों के मार्ग दर्शन के लिए विभिन्न पुस्तकों के प्रकाशन एवम् वाणिज्य मेले के सम्बन्ध मे भी निर्णय किये गये।"

भवदीय
कृष्णचन्द्र सिंह

## आर्य घोष गान

लेखक—श्री छगनलालजी कश्यप, अजमेर

बढे चलो, बढे चलो, मा के लाडलो! मा के लाडलो।
वेदों का गान हो, भारत का मान हो,
गौ का सम्मान हो।
ओ३म् की ध्वजा लिये उमग से चलो। १॥
मा के लाडलो
शान्त कर्मवीर बनो, ज्ञानी गंभीर बनो,
दयानन्द सम धीर बनो।
आर्य बन्धु बन्धु साथ झूमते चलो॥२॥
मा के लाडलो
राष्ट्र का निनाद हो एक वेद वाद हो
विश्व आर्य राज्य हो॥
शत्रु दग्ध भूमि को उबारने चलो॥३॥
मा के लाडलो
राणा सम शूर बनो, शिवाजी से वीर बनो।
केशव सम धीर बनो।
कृष्ण के समान नीतिवान हो चलो॥४॥
मा के लाडलो।
सीमा आक्रान्त देश, शत्रु धरे मित्र वेश
प्रलयंकर बन महेश।
शत्रु रक्त से धरा सींचते चलो॥५॥
मा के लाडलो
आज युवा बालवृद्ध, दृढ प्रतिज्ञ देशभक्त
सिद्धहस्त मंत्र मुग्ध
भारत से भाग्यवाद मेटने चलो॥६॥
मा के लाडलो
बढे चलो बढे चलो मा के लाडलो मा के लाडलो॥

श्री प० भगवानस्वरूपजी "न्यायभूषण" के प्रबन्ध से वैदिक यन्त्रालय अजमेर में मुद्रित और ओम्प्रकाश वानप्रस्थ, सम्पादक प्रकाशक द्वारा दयानन्द आश्रम, केसरगंज अजमेर से प्रकाशित। अधिष्ठाता—श्रीमान् डा० भवानीलालजी भारतीय एम. ए. पी. एच.डी अजमेर

आर्य प्रतिनिधि सभा राजस्थान का मुख-पत्र

राज० नं० जे १४

पाक्षिक

# आर्य्यमार्तण्ड

दयानन्द आदित्य से पाकर ज्योति प्रचण्ड। ध्वंस दम्भ पाखण्ड का करे आर्य्यमार्तण्ड ॥

वर्ष ४७ | वार्षिक मूल्य ५) रुपया | सम्पादक—श्री ओम्भक्त वानप्रस्थ ( रामसहाय शर्मा ) | अजमेर कार्तिक कृ० ७ सं. २०२६ वि., दि. १ नवम्बर ६९ दयानन्दाब्द १४५ | एक प्रति का २० पै० | अङ्क १७

## ईश्वर-प्रार्थना

ओ३म् नमः शम्भवाय च मयोभवाय च नमः शंकराय च मयस्कराय च नमः शिवाय च शिवतराय च ॥

जो सुखस्वरूप, संसार के उत्तम सुखों का देने वाला, कल्याणकारी, मोक्षस्वरूप धर्मयुक्त कार्यों को ही करने वाला, अपने भक्तों को सुख देने वाला और धर्म कार्यों में युक्त करने वाला अत्यन्त मङ्गलस्वरूप और धार्मिक मनुष्यों को सुख देने वाला है, उसको हमारा वारम्वार नमस्कार हो।

## पद्यानुवाद

हे मान्यवर ! महेश्वर, मङ्गल करो हमारा।
पावन-प्रकाश पावें, परमार्थ पुण्य द्वारा॥
हे शान्ति-रूप स्वामी, मन शान्त हो हमारा।
बहती रहे हृदय में, अविरल-सुज्ञान-धारा॥
फिर अन्त में पिता जी, तुमको नमन करें हम।
वेदों के ज्ञान द्वारा, जीवन-सफल करें हम॥

### प्रज्ञाचक्षु गुरुवर विरजानन्दजी के प्रति श्रद्धांजलि अर्पित

दिनांक ९ अक्टूबर को आर्य जगत् ने निर्वाण शताब्दी मनाकर पूज्य गुरुवर्य के प्रति अपनी हार्दिक श्रद्धांजलि अर्पित की।

## अजमेर में भव्य ऋषि मेला !

### ऋषि-निर्वाण दिवस पर ऋषि की निर्वाण स्थली अजमेर में दि. १४, १५ और १६ नवम्बर सन् ६९ को हो रहा है।

परोपकारिणी सभा के तत्त्वावधान में महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती के ८६ वें निर्वाण दिवस पर इस वर्ष ऋषि मेला दिनांक १० नवम्बर से १६ नवम्बर तक ऋषि उद्यान, पुष्कर रोड, अजमेर में समारोह पूर्वक मनाया जावेगा।

### यजुर्वेद परायण यज्ञ

कार्तिक शुक्ला प्रतिपदा सोमवार दिनांक १० नवम्बर से यजुर्वेद पारायण यज्ञ आचार्य कृष्णजी के आचार्यत्व में प्रारम्भ होगा, जो नित्य प्रातः और सायं १६ नवम्बर तक चलेगा।

### कवि सम्मेलन

कार्तिक शुक्ला ५ शुक्रवार दिनांक १४ नवम्बर को सायंकाल कवि सम्मेलन होगा। जिसमें ऋषि दयानन्द व आर्यसमाज सम्बन्धी सरस रचनाएं प्रसिद्ध कवियों द्वारा प्रस्तुत की जावेंगी।

### वाद विवाद-प्रतियोगिता

दिनांक १४ व १५ नवम्बर को मध्यान्ह में वाद विवाद-प्रतियोगिता स्कूल व कालेज के छात्र छात्राओं के लिए होगी। दिनांक १४ नवम्बर १९६९ शुक्रवार, को मध्यान्होत्तर २ बजे हाई स्कूल, उच्चतर माध्यमिक विद्यालय स्तर के छात्र-छात्राओं के लिए। (स्थान ऋषि उद्यान) विषय:—

"विश्व की समस्त समस्याओं का समाधान अहिंसा से ही सम्भव है।"

### अराष्ट्रीय ईसाई प्रचार निरोध सम्मेलन

दिनांक १५ नवम्बर को मध्यान्ह में अराष्ट्रीय ईसाई प्रचार निरोध सम्मेलन श्री डा० राजबहादुर जी के संयोजकत्व में होगा।

दिनांक १५ नवम्बर १९६९, शनिवार को मध्यान्होत्तर ४ बजे कालेज व गुरुकुल महाविद्यालय के छात्र तथा छात्राओं के लिए (स्थान : ऋषि उद्यान ) विषय:—

"संस्कृति का विकास धर्म में ही निहित है।"

### शोभा यात्रा

दिनांक १५ नवम्बर को प्रातःकाल विशाल शोभा यात्रा ( नगर कीर्तन ) दयानन्द आश्रम आर्यसमाज मार्ग केसरगंज से होकर ऋषि उद्यान पहुंचेगी, जिसमें दिल्ली से स्पेशल ट्रेन से पधारे सैकड़ों, आर्य नर-नारी, आर्य कन्या महाविद्यालय बड़ौदा व अबोहर गुरुकुल की छात्राएं तथा राजस्थान की आर्यसमाजों के सदस्य विशेष रूप से भाग लेंगे।

### भाषण एवम् भजनोपदेश

दिनांक १४, १५ व १६ नवम्बर की रात्रि को आर्य विद्वानों के भाषण होंगे। विशेष कर श्री विद्योत्तमा यतीजी, लाला रामगोपाल जी शाल वाले, प्रो० रतनसिंहजी, आचार्य कृष्णजी, पंडित सुदेवजी शास्त्री, डा० भवानीलाल जी भारतीय, पण्डित आनन्द प्रियजी तथा ओ३म् प्रकाशजी वर्मा भजनोपदेशक के मधुर गायन होंगे।

आशा है आर्य नर-नारी हजारों की संख्या में पधार कर इस आयोजन को सफल बनाने में अपना सक्रिय सहयोग प्रदान करने की कृपा करेंगे।

नोट:—बाहर से पधारने वाले आर्य नर-नारियों के आवास व भोजन की व्यवस्था ऋषि उद्यान में निशुल्क रहेगी। शीत ऋतु के योग्य वस्त्र तथा बिस्तर साथ मे अवश्य लावें।

श्रीकरण शारदा
मन्त्री
परोपकारिणी सभा

# आर्य जनता शरारती तत्वों से सावधान रहे !

## सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा के नाम पर झूठा प्रचार

८ सितम्बर, १९६९ के वीर अर्जुन के प्रभात संस्करण में "सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा हिन्दी दिवस मनायेगी" शीर्षक से पृष्ठ पांच पर एक समाचार छपा है जिसके संदर्भ में आर्यसमाजों और आर्य नर नारियों की ओर से सभा कार्यालय में आवश्यक जानकारी के लिए पत्र आ रहे है।

इस विज्ञप्ति के द्वारा उन सभी आर्य समाजों, आर्य जनों और आर्य जगत को सूचित किया जाता है कि यह समाचार सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा के कार्यालय महर्षि दयानन्द भवन, रामलीला मैदान से प्रसारित नहीं किया गया अतः अनधिकृत है, इस पर जरा भी ध्यान दिये जाने की आवश्यकता नहीं है। यह शरारती तत्वों की चाल मात्र है अतः इनके धोखे से बचना चाहिए।

सम्बद्ध समाचार में कहा गया है कि सभा की अन्तरंग ने आर्य प्रादेशिक सभा पंजाब और आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब को अपने से सम्बद्ध करने का निश्चय किया है, जबकि यह दोनों सभायें सार्वदेशिक सभा के साथ पहले से ही सम्बद्ध हैं।

स्पष्ट है कि ये तत्व न केवल जनता को ही धोखे में रखने के लिए प्रयत्नशील हैं अपितु स्वयं अपने को भी धोखे में रखने का परिचय दे रहे हैं। विज्ञप्ति में न्याय सभा, धमार्य सभा और विद्यार्य सभा के निर्माण का भी निर्णय किया गया प्रकट किया गया है। यह भी अवगंल एवं असत्य बात है। यह तीनों सभायें सार्वदेशिक सभा द्वारा पहले से ही संगठित हैं, अपना कार्य भली भांति कर रही हैं, आर्य जगत उनके प्रति निष्ठावान तथा उनसे आशान्वित है।

काशी शास्त्रार्थ शताब्दी समारोह का आर्य प्रतिनिधि सभा उत्तर प्रदेश आयोजन कर रही है। सभा के कार्यालय से उक्त सभा को लिखा गया था; कि वह अपनी योजना भेजे, जिससे सार्वदेशिक सभा अपने सहयोग का निश्चय कर सके। परन्तु उक्त सभा ने अभी तक कोई योजना नहीं भेजी। योजना के प्राप्त होने पर ही सार्वदेशिक स्तर पर उसके मनाये जाने का कार्यक्रम बनाया जा सकेगा। अभी तक सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा का काशी शास्त्रार्थ शताब्दी समारोह की योजनाओं से कोई भी नियमित सम्बन्ध नहीं है और न उनके बनाने और क्रियान्वित करने में इस सभा का कोई हाथ ही है। अतः यह कहना कि इससे सार्वदेशिक सभा सम्बद्ध है असत्य है।

विरजानन्द निर्वाण शताब्दी समारोह को सभा ने अपना आयोजन समझकर अपना पूर्ण सहयोग दिया है, क्योंकि इसको सहयोग देने का सभा निश्चय कर चुकी है।

एकता प्रयास की सफलता के लिए सार्वदेशिक सभा की अन्तरंग सभा ने अपनी २४-८-६९ की बैठक में क समिति नियुक्त कर दी है, जिसके सदस्य महात्मा आनन्द भिक्षुजी, श्री स्वामी रामेश्वरानन्दजी तथा स्वामी विद्यानन्दजी विदेह हैं, जो समिति के संयोजक के रूप में कार्य कर रहें हैं।

आर्य समाजों और आर्य जनता को सार्वदेशिक सभा के नाम पर अन्य द्वारा प्रचारित होने वाली विज्ञप्तियों के भ्रम जाल में नहीं फंसना चाहिए और उन्ही सूचनाओं और विज्ञप्तियों को प्रमाणित मानना चाहिएं जो सभा के मुख पत्र "सार्वदेशिक" में प्रकाशित हो या सभा के महर्षि दयानन्द भवन स्थित कार्यालय से प्रचारित हों।

यह सभा आर्यसमाज के विवादों के समाधान का यही मार्ग प्रशस्त मानती है और प्रशस्त है भी जो आर्यसमाज की परम्पराओं, विधान और नियमोपनियम के अन्तर्गत हों। इसी से हमारा संगठन बचा रहेगा और उसकी महत्ता की रक्षा हो सकेगी। कोई भी व्यक्तिगत प्रयत्न और उसकी भावना स्वागत योग्य है, उसी सीमा तक जब तक वे नियमोपनियमों एवं विधान से मेल खाते हों।

शिवचन्द्र
(उप-मन्त्री)
सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा
महर्षि दयानन्द भवन
रामलीला मैदान
नई दिल्ली

## वैदिक पाठशाला पर्वतपुरा में विजयदशमी समारोह

दिनांक १८ अक्टूबर को वैदिक पाठशाला पर्वतपुरा में श्री श्रीकरणजी शारदा, प्रधान वैदिक पाठशाला की अध्यक्षता में विजय दशमी उत्सव बड़े उत्साह से मनाया गया। व्याकरणाचार्य श्री पं. सत्यानन्दजी वेद वागीश, श्री पं. रामचन्द्रजी आर्य मुसाफिर, श्री पं. रामभजनजी मिश्र, श्री श्रोश्म प्रकाशजी मिश्र ने सामूहिक यज्ञ किया तथा श्री प. रामचन्द्रजी आर्य मुसाफिर ने दुर्गा पूजा तथा विजय दशमी का वैदिक रूप बड़े ओजस्वी शब्दों में जनता के सम्मुख रखा। श्री पं. भगवान स्वरूपजी न्यायभूषण तथा श्री शारदाजी ने विद्यालय की व्यवस्था का ब्यौरा प्रस्तुत रखते हुए जनता से हार्दिक सहयोग की अपील की। छात्रों ने भी अपने कार्यक्रम प्रस्तुत किये।

इस अवसर पर श्री डा. पूर्णकलाजी शारदा की ओर से २५) का प्रसाद और २५) की पुस्तकें निर्धन छात्रों को बांटी गई। एतदर्थ धन्यवाद।

## शोक !

आर्य अध्यक्ष रसायन प्रभाकर के श्री हीरालाल जी की धर्मपत्नी श्रीमती धापूदेवी देवी का दि. ४ अक्टूबर को देहावसान हो गया।

परमात्मा दिवंगत आत्मा को सद्गति तथा शोक संतप्त परिवार को धैर्य प्रदान करें।

मन्त्री
आर्य समाज गंगापुर

## शारदा जी का अमृतसर में भव्य स्वागत

श्रीमान् श्रीकरणजी शारदा, मन्त्री अन्तरंग कारिणी सभा तथा उपप्रधान सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा दिल्ली, गत २५, २६ अक्टूबर ६९ को पंजाब में प्रमुख प्रचारार्थ अमृतसर पधारे। वहां पर आर्य समाज लक्ष्मणसर तथा आर्य समाज बाजार श्रद्धानन्द ने उनका हार्दिक भव्य स्वागत किया।

श्री शारदाजी ने अपने स्वागत सम्मान के प्रति हार्दिक आभार प्रदर्शित करते हुए आर्य समाज को अब विशेष सक्रिय संगठित होकर राष्ट्र तथा वैदिक धर्म की सेवा में तत्पर होने के लिये आवाहन किया। आपने कहा यदि आर्य समाज के कार्यकर्ता दलबन्दी, व्यक्तिगत द्वेष भाव को त्याग कर ऋषि दयानन्द के उद्देश्यों की पूर्ति में त्याग तप की भावना से, हृदय से प्रवृत्त नहीं हुए, तो समस्त समाज और राष्ट्र नष्ट भ्रष्ट हो जायगा।

आज अराष्ट्रीय तत्वों के आक्रमणों से बाह्याभ्यान्तरिक सुरक्षा तभी सम्भव है, जब हम निःस्वार्थ भाव से अपने राष्ट्र के नैतिक स्तर को ऊंचा उठाने और चरित्र निर्माण में अपनी सम्पूर्ण शक्ति लगा दें। आज आर्य समाज के सुदृढ़ संगठन, प्रभावोत्पादक प्रचार शैली की प्रबल आवश्यकता है। उसी के द्वारा हम महर्षि के उद्देश्यों की पूर्ति करते हुए वैदिक धर्म की सच्ची सेवा करने में समर्थ हो सकते हैं।

## दयानन्द विद्यालय अजमेर का संस्थापक दिवस (महात्मा कन्हैयालाल जयन्ती) सानन्द सम्पन्न !

आश्विन शु० ५ सं० २०२६ वि० तदनुसार दि. १६ अक्टूबर को राजस्थान के प्रसिद्ध शिक्षा शास्त्री, अनन्य यज्ञभक्त महात्मा कन्हैयालालजी की जन्म जयन्ती "संस्थापक दिवस" के रूप में आर्य प्रतिनिधि सभा राजस्थान के प्रधान श्रीयुत पं. भगवानस्वरूप जी न्याय भूषण की अध्यक्षता में बड़े समारोह से मनायी गयी।

इस अवसर पर श्री श्रीकरणजी शारदा, श्री बा. विष्णुचन्दजी, प. रामभजनजी मिश्र, श्री डा. भवानीलालजी भारतीय ने महात्माजी के आदर्श जीवन वृत्त पर प्रकाश डालते हुए अपनी हार्दिक श्रद्धांजलि अर्पित की। अध्यक्ष महोदय ने इस अवसर पर आयोजित निबन्ध तथा कला प्रतियोगिता में प्रथम, द्वितीय, तृतीय आने वाले प्रत्याशियों को पुरस्कृत किया।

महात्मा कन्हैयालाल ट्रस्ट की ओर से पुरस्कार तथा प्रसाद वितरण हुआ। श्री हरिकृष्णजी मिश्र कला शिक्षक दयानन्द विद्यालय ने चित्र कला प्रदर्शनी का भी सुन्दर आयोजन किया, यह वास्तव में प्रशंसनीय है।

### उपाधियां एवं पारितोषिक

रामायण विशारद, रामायण रत्न, रामायणाचार्य आदि एवं गीता कोविद गीता रत्न आदि उपाधियों व पारितोषिक प्राप्त करने हेतु शीघ्र लिखें।

पता—
मंत्री अ० भा० आर्ष ग्रन्थ प्रचार समिति,
मछुरना (मिहोना)
भिण्ड (म० प्र०)

# आर्य मार्तण्ड

अजमेर कार्तिक कृ० ७ सं० २०२६ वि० दिनांक १ नवम्बर सन् १९६९

ऋषि-निर्वाण दिवस पर अजमेर में—

## ऋषि मेला !

विश्ववन्द्य महर्षि दयानन्दजी सरस्वती की उत्तराधिकारिणी परोपकारिणी सभा प्रतिवर्ष ऋषि निर्वाण दिवस पर ऋषि की निर्वाण-स्थली अजमेर में 'ऋषि मेला' का आयोजन कर महर्षि भक्तों को अपने कर्तव्य की ओर ध्यानाकर्षित कर एक नवीन, उत्साह एवं कर्तव्यनिष्ठा की प्रेरणा देती है। इस वर्ष भी यह मेला दि० १४ से १६ नवम्बर तक बड़े समारोह के साथ आयोजित किया जा रहा है, जिसमें राजस्थान ही नहीं भारत के विभिन्न भागों से आर्य जनता आकर महर्षि को अपनी हार्दिक श्रद्धाञ्जलि अर्पित करेगी।

दिल्ली की आर्य केन्द्रीय सभा ने तो और भी अधिक उत्साहजनक एक पग आगे बढ़ाने का प्रयास किया है, और वे राजस्थान के आर्य बन्धुओं को प्रोत्साहन एवं प्रेरणार्थ ६०० यात्रियों की विशेष रेलगाड़ी लेकर दि० १४ नवम्बर ६९ को प्रातः अजमेर आ रहे हैं। इस तीर्थ यात्री दल में नेता, उपदेशक, भजनोपदेशक, गायक, आदि सभी प्रकार के आर्य नर-नारी हैं। अब देखना यह है कि राजस्थान की आर्य जनता अपने उत्साह को किस रूप में प्रदर्शित कर प्रान्त के गौरव वृद्धि में सक्रिय सहयोग प्रदान करती है। आशा तो यह की जाती है कि प्रांत की सभी आर्यसमाजें अपने दल-बल के साथ इस समारोह में अधिकाधिक संख्या में सम्मिलित होकर राजस्थानेतर आर्य-बन्धुओं को अपने संगठन, सक्रियता और उत्साह का परिचय देंगी। इस अवसर पर आर्य जगत के प्रसिद्ध विद्वान आचार्यकृष्णजी की अध्यक्षता में बृहद यजुर्वेद पारायण यज्ञ होगा। साथ ही दि० १५ अक्टूबर को अजमेर नगर में विशाल शोभायात्रा का भी आयोजन अजमेर की आर्य जनता कर रही है, जो अत्यन्त प्रभावोत्पादक, शिक्षाप्रद और आदर्श होगा। बड़ौदा आर्य कन्या विद्यालय तथा गुरुकुल अबोहर की आर्य कन्यायें भी बहुत बड़ी संख्या में इस अवसर पर आ रही हैं। सुश्री विद्योत्तमाजी बती, श्री रामगोपालजी शालवाले संसद सदस्य तथा मंत्री सार्वदेशिक सभा, गुजरात के आर्य नेता प० आनन्दप्रियजी के अतिरिक्त अन्य प्रसिद्ध आर्य विद्वान् भी ऋषि के इस विशाल मेले में पधार कर आर्य जनता को नवीन संदेश देंगे। इसमें कोई संदेह नहीं कि अजमेर की आर्य जनता इस मेले की सानन्द सम्पन्नता में रात्रिन्दिव सक्रिय सोत्साह तत्पर है। देश की भीषण विभीषिका एवं संकटापन्न परिस्थिति में ऋषि निर्वाण दिवस पर आर्य जनता अजमेर में एकत्रित होकर अपनी कार्यक्रम नियोजित कर इस निराशापूर्ण अंधकार में नयी आशा पूर्ण कार्य योजना से जन मानस को आलोकित करेगी। नई दिशा निर्धारित करेगी। ऐसी पूर्ण आशा है।

आज अराष्ट्रीय विदेशी तत्त्व विघटन, पृथकता की अग्नि से भारत देश को भस्म करने में सक्रिय तत्पर है। स्थान २ पर विस्फोट, दंगे, अग्निकांड, हत्याएँ और विनाश लीला अपनी चरम सीमा पर पहुच चुकी हैं। देश की राष्ट्रीय महासभा कांग्रेस गृह-कलह से नष्ट हो रही है। जनता निराश और किं कर्तव्य विमूढ़ हो आज योग्य मार्ग दर्शक को ढूंढ रही है। आशा है आर्यसमाज आज वास्तव में एक दिव्य प्रकाश-स्तम्भ बन कर पथ-भ्रष्ट भारत की जनता को सुख शान्ति और प्रकाश के पथ पर अग्रसर करने में अपनी पूर्ण शक्ति लगायेगी।

यदि हम 'वेदोऽखिलो धर्म मूलम्' का संदेश सुनाकर एक वैदिक धर्म के झण्डे के नीचे भारत की जनता को एकत्रित करने में सफल प्रयास कर सके, तो यही महर्षि दयानन्द के निर्वाण दिवस पर ऋषि को सच्ची श्रद्धांजलि होगी। आज चांदी की कृपाण के बल पर हो रहे धर्म, संस्कृति और राष्ट्रीयता के अपहरण और विनाश को रोकने में यदि हम संगठित होकर सफलता प्राप्त कर सके, तो यह विश्व भर के लिए महान आदर्श और गौरव की बात होगी। आशा है आर्य जनता समय के वातावरण के अनुसार अपने कार्यक्रम, प्रचार और संगठन को और अधिक सुदृढ व्यापक बनाकर महर्षि के अधूरे स्वप्न को पूर्ण कर अपने कर्तव्य का पालन करेगी और यही वास्तविक श्रद्धांजलि विश्व की जनता को भी नवीन प्रेरणा देकर 'कृण्वन्तो विश्वमार्यम्' को सार्थक सिद्ध कर सकेगी।

### आर्यसमाज राजगढ़ (अजमेर) का वार्षिकोत्सव सानन्द सम्पन्न

दि० २४ से २६ अक्टूबर ६९ तक आर्यसमाज राजगढ़ का उत्सव सानन्द सम्पन्न हो गया। इस अवसर पर आर्य प्रतिनिधि सभा राजस्थान के माननीय प्रधान श्री पं० भगवानस्वरूपजी न्यायभूषण श्री स्वामी शिवानन्दजी, श्री स्वामी सुबोधानन्दजी, श्री पं० कमलेशकुमारजी आर्य भजनोपदेशक श्री पं० रामभजनजी मिश्र, श्री छगनलालजी कश्यप आदि महानुभावों ने अपने ओजस्वी व्याख्यानों से ग्रामीण जनता को प्रोत्साहित किया। स्थानीय आर्यसमाज के प्राण स्वरूप श्री शिवराज भी आर्य का अतिथि सत्कार एवं सेवा भाव वास्तव में सराहनीय है। आर्यसमाज राजगढ़ ग्रामीण क्षेत्र में वैदिक धर्म प्रचार का प्रशंसनीय कार्य कर रही है।

### महर्षि दयानन्द काशी शास्त्रार्थ शताब्दी

के अवसर पर "आर्यसमाज के शास्त्रार्थ महारथी" नाम से पुस्तक तैयार करनी है। आर्य समाज के अनुभवी लेखक श्री पण्डित शिवदयालु जी ने उसका सम्पादक बनना स्वीकार कर लिया है। इस सम्बन्ध में विभिन्न आर्य प्रतिनिधि सभाओं, आर्यसमाजों तथा सर्व साधारण से प्रार्थना है कि पुस्तक के सम्बन्ध में जो भी सुझाव और मसाला वे दे सकें, अतिशीघ्र पण्डित जी के पास "आर्य वानप्रस्थाश्रम पो० ज्वालापुर, सहारनपुर" के पते पर भेजने की कृपा करें। इस सम्बन्ध में यदि कोई पुस्तकें छपी हुई हों, या शास्त्रार्थ महारथियो के जीवन, कार्य आदि के बारे मे ज्ञात हो, सब भेज दें।

—महेन्द्र प्रताप शास्त्री सयोजक

### गुरु विरजानन्द निर्वाण शताब्दी समारोह

अजमेर की समाजो की ओर से नगर आर्यसमाज अजमेर के तत्वावधान मे दिनाक ९ अक्टूबर ६९ को श्रीमान् पण्डित भगवानस्वरूप जी न्यायभूषण प्रधान आ० प्र० सभा की अध्यक्षता में बड़े समारोह से मनाया गया। इस अवसर पर श्रीमान् डा० भवानीलाल जी भारतीय, श्री पण्डित रमेशचन्द्रजी शास्त्री, श्री डा० सूर्यदेवजी शर्मा ने अपने ओजस्वी व्याख्यानों के द्वारा गुरु विरजानन्द जी के प्रकाण्ड पाण्डित्य स्वाध्याय एव धर्म की निष्ठा पर प्रकाश डाला।

### ब्यावर आर्यसमाज का उत्सव सानन्द सम्पन्न

दिनांक १७ से २१ अक्टूबर तक आर्यसमाज ब्यावर का उत्सव बड़े समारोह से मनाया गया। इस अवसर पर श्रीमान् स्वामी रामेश्वरानन्द जी, डा० भवानीलाल जी भारतीय, वाचस्पतिजी शास्त्री, पण्डित शान्ति प्रकाश जी के ओजस्वी व्याख्यानों का बड़ा उत्तम प्रभाव पड़ा। श्री कमलेश कुमार जी के राजस्थानी भाषा के भजन बड़े लोकप्रिय थे।

इस अवसर पर जनता के आग्रह पर खड़ा खेड़ा दशहरा उत्सव पर भी श्री डा० भवानीलाल जी पधारे। वहा दशहरे पर प्रतिवर्ष पशु बलि दी जाती थी। भारतीय जी के तर्क एव आग्रह पूर्ण अपील को ग्रामीण जनता ने मानकर पशु बलि सदा के लिए बन्द करदी।

---

### शोक !

दयानन्द विद्यालय अजमेर के प्रधानाध्यापक श्री बद्रीनाथजी भार्गव M. A. B. T. की धर्म पत्नी का दिनांक २१ अक्टूबर ६९ को अचानक देहावसान हो गया। इस दुःखद समाचार से विद्यालय परिवार को असीम दुःख पहुंचा। विद्यालय परिवार ने शोक सभा के द्वारा प्रस्ताव पारित कर शोकाञ्जलि अर्पित करते हुए हार्दिक संवेदना प्रकट की और दिवंगत आत्मा की सद्गति के लिए प्रभु से प्रार्थना की। आर्य मार्तण्ड परिवार भी शोक सवेदना प्रकट करता हुआ परमपिता परमात्मा से प्रार्थना करता है कि वह दिवंगत आत्मा को सद्गति और परिवार को धैर्य प्रदान करे।

# अनित्य से नित्य की प्राप्ति

लेखक—श्री जीवाराम 'आचस्पति' पुरोहित आर्यसमाज [illegible]पुर (राज०)

कठोपनिषद् में एक मन्त्र आता है जिसकी अन्तिम पंक्ति यह है 'अनित्यैर्द्रव्यैः प्राप्तवानस्मि नित्यम्' अर्थात् अनित्य पदार्थों के द्वारा मैंने नित्य (ईश्वर) की प्राप्ति करली है। यम ऋषि नचिकेता को समझा रहे हैं कि मैंने भी इस अग्नि में अनित्य पदार्थ (घृत सामग्री समिधा आदि) डाल कर इन के द्वारा नित्य की प्राप्ति कर ली है।

किन्तु यहां सन्देह उत्पन्न होता है कि विरुद्ध भाव वाले पदार्थों द्वारा नित्य की कैसे प्राप्ति हुई। कोई मनुष्य कहने लगे कि मैं रेलगाड़ी द्वारा समुद्र पार कर सकता हूं या नौका द्वारा आकाश की यात्रा कर सकता हूं तो यह एक उपहासास्पद बात ही होगी, क्योंकि पृथ्वी पर चलने वाली गाड़ी समुद्र में नहीं चल सकती तथा नौका आकाश में नहीं उड़ सकती फिर उपनिषद्कारों ने यह पंक्ति कैसे लिख दी कि अनित्य से नित्य की प्राप्ति होती है।

अब पूरे मन्त्र पर विचार करें कि वास्तविकता क्या है। जानाम्यहं शेवधिरित्यनित्यं, न ह्यध्रुवैः प्राप्यते हि ध्रुवं तत्। ततो मया नाचिकेतश्चितोऽग्निरनित्यैर्द्रव्यैः प्राप्तवानस्मि नित्यम्' अर्थ—हे नचिकेता। मैं इस बात को भली भांति जानता हूं कि कर्मों के फलस्वरूप इस लोक और परलोक के भोग समूह की जो निधि मिलती है। वह चाहे कितनी ही महान् क्यों न हो एक दिन उस का विनाश निश्चित है। अतएव वह अनित्य है। और यह सिद्ध है कि अनित्य पदार्थों से नित्य की प्राप्ति नहीं होती। इस रहस्य को जान कर ही मैंने नाचिकेत अग्नि के चयनादि रूप से जो कुछ यज्ञादि कर्तव्य कर्म अनित्य वस्तुओं के द्वारा किये सब की सब कामना और आसक्ति से रहित होकर केवल कर्तव्य बुद्धि से किये। इस निष्काम भाव की ही यह महिमा है कि अनित्य पदार्थों के द्वारा कर्तव्य पालन रूप ईश्वर पूजा कर के मैंने नित्य सुख रूप परमात्मा को प्राप्त कर लिया है।

संसार के जितने पदार्थ हैं वे निश्चित रूप से अनित्य हैं। इस में किसी की दो राय नहीं हो सकती किन्तु अनित्य से नित्य की प्राप्ति में यम ऋषि ने अनित्य पदार्थों के साथ एक सिद्धान्त संलग्न कर दिया। उन्होंने इस बात का स्पष्टीकरण कर दिया कि जब हम अनित्य पदार्थों का सेवन निष्काम भाव से करते हैं और कर्तव्य समझ कर उन पदार्थों को संसार में व्यवहार रूप में लाते हैं तो वे ही पदार्थ हम मुक्त-अवस्था में लाने वाले होते हैं। किन्तु जब हम उन्हीं पदार्थों का प्रयोग स्वार्थ भावना से या कोई कामना रख कर करते हैं तो वे ही पदार्थ हमें बन्धन में डालने वाले होते हैं अर्थात् नित्य से दूर करते हैं।

उदाहरण—यज्ञ करना एक जीवन का अंग है। यह जीवन की प्रथम सीढ़ी है जिसके द्वारा हम अनित्य से नित्य की प्राप्ति करना सीखते हैं। हमने यज्ञ में घृत, सामग्री, समिधा आदि ज्योंही जब घर अग्नि में डाली, वे सब अनित्य पदार्थ हैं किन्तु ज्योंही हमने स्वाहा के पश्चात् वे शब्द उच्चारण किए "इदमग्नये इदन्नमम" वे पदार्थ अग्निरूप ईश्वर के लिये हैं मेरे लिए नहीं, उसी समय वे अनित्य पदार्थ हमें नित्य के निकट लाते हैं। वे यज्ञ में जो आहुतियां दीं वे सब शत्रु मित्र सभी के लिए लाभदायक सिद्ध हुईं और उस के प्रति हमारी कामना ऐसी बनी रही कि हे अग्नि रूप परमात्मन्! मैं अपने लिए इस के बदले में कुछ नहीं चाहता सब प्राणियों का इसके द्वारा हित हो यही मेरी कामना है। तभी याज्ञिक अपने भाव को अनित्य से नित्य की प्राप्ति करा पाता है।

विस्तृत रूप से हमारे शरीर के प्रत्येक अंग भी तो अनित्य हैं पर इन के द्वारा भी हम नित्य की प्राप्ति कर सकते हैं। आंखों से प्रेम दृष्टि रखकर, कानों से सुभाषित सुन कर, मुख से मधुर व सत्य बोलकर, हाथों द्वारा प्राणियों की रक्षा करके पांवों द्वारा चलकर किसी को सहयोग देकर आदि कर्तव्य कर्म करके इन अनित्यांगों से नित्य की प्राप्ति कर सकते हैं। जग में जितने भी पदार्थ हैं। जब हम उनका प्रयोग परहित के लिए करते हैं तो उस समय हम नित्य के निकट होते हैं। किन्तु ज्योंही हमारे अन्दर स्वार्थ की या बदले की भावना हमारे अन्दर पैदा होती है उसी समय हम नित्य (ईश्वर) से दूर होकर बन्धन में आ जाते हैं। जब हमारे पास आवश्यकता से अधिक वस्त्र हैं तो उन वस्त्रों द्वारा किसी को सरदी गर्मी से बचा सकें तो हम नित्य की ओर बढ़ते हैं। हमारे घर में जरूरत से अधिक जूते जोड़े पड़े रहे हैं। यदि उनके द्वारा किसी के पैरों को सरदी गर्मी से रक्षा कर सकें, तो हमें नित्य की प्राप्ति होती है।

नित्य क्या है? अब हमें सोचना है कि नित्य क्या वस्तु है, क्या वह हमें दिखाई देती है या स्पृश होता है। इस का वास्तविक भाव यह है कि जब हम किसी की कोई आवश्यकता निःस्वार्थ भाव से पूर्ण करते हैं तो हमारे हृदय में एक आनन्द का अनुभव होता है। वह आनन्द शायद दीन को दी गई सहायता के फलस्वरूप हमें आशीर्वाद के रूप में प्राप्त हुआ। उन असहाय प्राणियों के अन्तर्हृदय से निकला सुख का आंसू ही हमारे अन्तर्हृदयों को छूकर आनन्दित करता है। जब हम कोई भी शुभ कर्म निष्काम भाव से प्रेरित होकर करते हैं और उस समय जब हमारे अन्तर्हृदयों में आनन्द का अनुभव होता है। वह एक नित्य का ही प्रतीक है। जैसे हम अपने जीवन में सदा निष्काम भाव से कर्मों का संपादन करते रहते हैं तो उस आनन्द का तारतम्य नहीं टूटता और वह हमारा आनन्द सदा ही रहता है। गीता में इसे प्रकार कहा है "[illegible] [illegible] [illegible] [illegible]" [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] के मुख पर सदा प्रसन्नता विराजमान रहती है और आत्मिक [illegible] [illegible] शब्द ही बोलता है। अभिप्राय यह है रहता कि अपने अन्तर्हृदय में आनन्द का अनुभव करता रहता है।

उपनिषत्कार का यह कथन 'अनित्यैर्द्रव्यैः प्राप्तवानस्मि नित्यम्' [illegible] [illegible] है। उन महात्मा ने बड़ी सूक्ष्म दृष्टि से साक्षात् करके यह वचन लिखा है। अतः हम सांसारिक प्राणियों के लिये यह अत्यन्त सरल व सुगम साधन बना दिया कि हम संसार में रहते हुए इन अनित्य पदार्थों से नित्य की प्राप्ति निःसंकोच होकर कर सकते हैं।

## काशी शास्त्रार्थ शताब्दी समारोह की तिथियों में परिवर्तन

पूर्व प्रकाशित सूचनाओं के अनुसार श्री काशी शास्त्रार्थ शताब्दी समारोह की तिथियां १८-२१ नवम्बर निर्धारित की गई थीं। अब तिथियों में परिवर्तन कर दिया गया है। शताब्दी समारोह अब २३ दिसम्बर से २८ दिसम्बर ६९ तक हो गया है।

(२) पुस्तक विक्रेताओं और प्रकाशकों की दुकानें

शास्त्रार्थ शताब्दी पर पुस्तक विक्रेताओं तथा प्रकाशकों को दुकानें लगाने की विशेष सुविधा दी जाएगी। शताब्दी पर पुस्तकों की दुकानें लगाने वाले सज्जनों से अनुरोध है कि वे इस सम्बन्ध में आवश्यक पत्र व्यवहार कर अपना स्थान सुरक्षित करवा लें ताकि बाद में उन्हें असुविधा न हो।

(३) शताब्दी कार्यालय

आर्य प्रतिनिधि सभा उ० प्र० के नारायण स्वामी भवन लखनऊ में शताब्दी कार्यालय खोल दिया गया है ताकि शताब्दी सम्बन्धी समस्त पत्र व्यवहार सुगमता से किया जा सके। शताब्दी समारोह सम्बन्धी पत्रों के शीघ्र उत्तर देने की व्यवस्था की गई है। पत्र व्यवहार करने वालों को चाहिए कि वे पत्र पर पूरा पता अर्थात् 'काशी शास्त्रार्थ शताब्दी कार्यालय," नारायण स्वामी भवन, ५ मीरा बाई मार्ग, लखनऊ—१ लिखें।

(४) धन संग्रह के लिए नोट.

शताब्दी समारोह के लिए धन संग्रह के निमित्त १००), २५), १०), ५) व १) के नोट प्रकाशित किए जा रहे हैं। समस्त आर्य समाजों को चाहिए कि वे अपनी आवश्यकताओं से तुरन्त सूचित करें ताकि उन्हें नोट भिजवाए जा सकें।

कृपया स्मरण रखें कि काशी शास्त्रार्थ शताब्दी समस्त आर्य जगत् की अपनी शताब्दी है। इसमें तन मन धन से पूर्ण सहयोग देना प्रत्येक आर्य नर-नारी का नैतिक कर्तव्य है।

मन्त्री
काशी शास्त्रार्थ शताब्दी समिति
५, मीरा बाई मार्ग, लखनऊ

# क्या संन्यासी यज्ञ और संस्कार करा सकता है ?

लेखक—श्री आचार्य विश्वश्रवा व्यास एम. ए. वेदाचार्य, देहली

हमारे मित्र और पुराने साथी वेदस्वामी मेधार्थी जी ने एक लेख 'परोपकारी' जून १९६९ के अंक में लिखा है। इस में बहुत सी बातें विनोद या उपहास जैसी हैं, कोई उन को सत्य भी मान ले। अत यह लेख अपने मित्र के लेख पर लिखना पड़ रहा है। मन्त्र के अर्थ करने में भी आप स्वतन्त्र हैं। संन्यासी सर्वतन्त्र स्वतन्त्र होता है। अतः संन्यासी मन्त्रार्थ करने में भी स्वतन्त्र है। हम भी आज उन की ही शैली को लेकर एक मन्त्र का अर्थ करेंगे। वेद का मन्त्र है—

ओं विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परासुव यद् भद्रं तन्न आसुव ॥ [यजु ३०।३]

इस मन्त्र में आये दुरित शब्द का अर्थ वे संन्यासी हैं जो संन्यासी गृहस्थ की जीविका हरण करके गृहस्थो को दुःखदायी हैं। दु+दुःख और रित+प्राप्त कराने वाले। रि धातु गति अर्थ में है। गृहस्थो को दुःख प्राप्त कराने वाले संन्यासियो को वेद में 'दुरित' शब्द से कहा गया है। इन (विश्वानि दुरितानि) इस प्रकार के सब संन्यासियों को (परासुव) नगरों से दूर हे प्रभु कर दीजिए जिससे (यद् भद्रम्) जो कल्याण धन जीविका गृहस्थ की है वह (नः) हम सब गृहस्थो को (आसुव) प्राप्त कराइए।

यदि कोई यह कहे कि दुरित शब्द तो नपुंसक लिङ्ग है। संन्यासी तो पुंलिङ्ग होता है, तो इस के दो कारण है कि संन्यासी को नपुंसक लिङ्ग शब्द का प्रयोग क्यों किया। एक कारण तो यह है कि—

(१) संन्यासी सन्तानोत्पत्ति में असमर्थ होता है। अतः उस के लिए वेद मे नपुंसक लिङ्ग का शब्द है।

(२) दूसरा कारण यह है कि संन्यासी और संन्यासिनियां दोनो यज्ञ कराते आजकल डोलते हैं। अत पुंलिङ्ग और स्त्री लिङ्ग दोनो के बीच का लिङ्ग दे दिया है।

## सिद्धान्त पक्ष

महर्षि स्वामी दयानन्द जी सरस्वती ने संस्कार विधि में, जातकर्म संस्कार में टिप्पणी में लिखा है कि—

धर्मात्मा शास्त्रोक्त विधि को पूर्ण रीति से जानने वाला विद्वान्, सद्धर्मी, कुलीन, निर्व्यसनी, सुशील, वेदप्रिय, पूजनीय, सर्वोपरि गृहस्थ की पुरोहित करा है।

ऋषि के इस लेख के आधार पर हम कह सकते हैं कि गृहस्थ ही पुरोहित हो सकता है। संन्यासी आदि नहीं।

श्री मेधार्थी जी ने ऋग्वेद का एक मन्त्र लेकर संन्यासी अर्थ कर दिया है। वह मन्त्र यह है—

भद्रा वस्त्रा समन्या वसानो महान् कविर्निवचनानि शंसन्। आ वच्यस्व चम्वोः पूयमानो विचक्षणो जागृविर्देववीतौ ॥ [ऋ. ९।९७।२]

इस मन्त्र पर मेधार्थी जी लिखते हैं कि इस मन्त्र का ऋषि मैत्रावरुणि वसिष्ठ है और वसिष्ठ वह है, जिसका वीर्य बस गया है। गृहस्थ वसिष्ठ नहीं हो सकता है।

हम आप से पूछते हैं कि वसिष्ठ ऋषि स्वयं गृहस्थ थे या संन्यासी। यदि मेधार्थी जी भूल गये हो तो मैं उन्हें स्मरण दिलादूं।

वसिष्ठ जी की पत्नी का नाम अरुन्धती था वसिष्ठ जी के सात पुत्र और एक पुत्री थी।

वसिष्ठो वा अरुन्धत्यां सप्त पुत्रानजीजनत्।
कन्या च पुण्डरीकाक्षीं सर्वशोभासमन्विताम् ॥

अर्थात् वसिष्ठ जी के सात पुत्र और एक कन्या अरुन्धती से हुए। मामूली गृहस्थी वसिष्ठ जी नहीं थे कि —

"दो या तीन बच्चे बस डाक्टर की सलाह मानिये"

आठ बच्चे वसिष्ठ जी ने पैदा किये जो वसिष्ठ इस मन्त्र के ऋषि हैं।

मेधार्थी जी वसिष्ठ शब्द का अर्थ करते हैं कि जिस का वीर्य बस गया हो। वहां वीर्य कहां से आ टपका। जो बसा हुआ हो यही अर्थ करते तो भी कुछ अच्छा होता। गृहस्थ ही बसा हुआ होता है, संन्यासी तो घुमक्कड़ होता है। कभी कानपुर कभी देहली कभी टङ्कारा कभी फीरोजपुरा कभी बमालपुर। बन्धुवर! पुरोहित कर्म गृहस्थ ही कर सकता है, जो एक जगह रह कर परिवार वालो के यहां संस्कार कराये और बाल-बच्चो की शिक्षा भी देता रहे। संन्यासी तो संस्कार करा कर भी दो ग्यारह होकर दक्षिणा लेकर भाग निकलेगा। वह पुरोहित हो ही नहीं सकता। अब प्रस्तुत मन्त्रार्थ पर विचार किया जाता है।

इस मन्त्र मे वाक्य है—

'समन्या भद्रा वस्त्रा वसान.'

इस का अर्थ मेधार्थी जी करते हैं कि केसरिया वस्त्र धारण करने वाला संन्यासी देववीतौ=यज्ञ मे। निवचनानि शंसन्=उपदेश कर सकता है।

हम मेधार्थी जी से पूछते हैं कि केसरिया वस्त्र किस शब्द का अर्थ है। सायण का आधार लेकर आप ने 'समन्या' का अर्थ किया है कि संग्राम योग्य। संग्राम में केसरिया वस्त्र कब से पहने जाने लगे यह भी कुछ पता है बन्धुवर!

रामायण महाभारत काल में सेना की वर्दी लाल थी। जैसा लिखा है कि—

"लोहितोष्णीषकाम्बरधरा वज्रहस्ता स्वलङ्कृता:"

इसी प्रकार पुरोहित की ड्रेस थी।

"लोहितोष्णीषा ऋत्विजः प्रचरन्ति"

अर्थात् पुरोहित की भी लाल पगड़ी है।

वस्तुतस्तु इस मन्त्र में समन्या का क्या अर्थ है जरा ऋषि दयानन्द सरस्वतीजी से पूछ लेते तो अधिक अच्छा था। समन्या का अर्थ है समन के योग्य, सायण समन का अर्थ संग्राम करता है और समन्या का अर्थ संग्राम योग्य करता है इसका उससे भी कुछ नही बिगड़ता पर ऋषि दयानन्द समन का क्या अर्थ करते है वह भी सुनिये।

"समनम्=अवधारित स्थानम्"

वस्त्र वे धारण करने चाहिये जो जिस स्थान पर जाना हो उसके योग्य वस्त्र धारण करने वाला। और वे वस्त्र भद्रा=बहुत सुन्दर हों। गृहस्थ पुरोहित उन सुन्दर वस्त्रों को धारण करने वाला हो जो गन्तव्य स्थान यज्ञ में पहनने के योग्य हों। यहां संन्यासी कहां से घुस आया।

दूसरा मन्त्र भी मेधार्थीजी ने आधा ही प्रमाण में दिया है, क्योंकि अगले आधे मन्त्र में दो विशेषण ऐसे है जो संन्यासी मे घट ही नहीं सकते। वे दो शब्द हैं—

अजुर्या=जीर्ण अवस्था से रहित

उक्षा=सेचन समर्थ।

बूढे संन्यासी मे ये दोनो विशेषण घट ही नहीं सकते अत मेधार्थीजी ने ऋ० ३।७।७ के मन्त्र "अध्वर्युभि. पञ्च" में पूर्वार्द्ध भाग की ही व्याख्या की उत्तरार्ध को छिपा गये।

(जो गृहस्थ नहीं है, वह विशेष स्थिति में यज्ञ करा सकता है)

इतिहास मे लिखा है कि पुत्रेष्टि यज्ञ शृङ्गी ऋषि ही कराना जानता था। पर वह गृहस्थ नहीं था, अत यज्ञ कराने का अधिकारी नही था। तब दशरथ ने अपनी कन्या का विवाह शृङ्गी ऋषि से किया और गृहस्थ बनाकर तब उनसे यज्ञ कराया। अत जिनको ब्रह्मचारियो और संन्यासियो से यज्ञ कराने का शौक हो, वे ऐसा उपाय अवलम्बन कर सकते है।

(गृहस्थी ही पुरोहित क्यों हो)

अब व्यावहारिक दृष्टि से भी विचार किया जाता है कि गृहस्थ ही पुरोहित क्यों हो। पौरोहित्य के सिवा ब्राह्मण गृहस्थ की कोई आजीविका नहीं है। विद्या विक्रय वह कर नहीं सकता। न नौकरी कर सकता है। तो जीविका कहां से करे। आर्य-समाज में अनार्यपन चल रहा है। जो ब्रह्मचारी वानप्रस्थ और संन्यासी हवन कराते डोल रहे हैं। मूर्ख लोग खुश होते है कि हमारे यहां ब्रह्मचारी यज्ञ कराने आये है। अरे बुद्धि के शत्रुओ! ब्रह्मचारी का समय विद्याध्ययन का है या हवन कराते डोलने का। तभी तो सारे जीवन अष्टाध्यायी लिये घूमते है। जैसे काशी मे पेटार्थी विद्यार्थी लघु कौमुदी लिये जीवन भर क्षत्रो में रोटी खाते रहते हैं। वानप्रस्थी को तो शहर मे आना मना लिखा है। पर इन वानप्रस्थी लोगो की रोटी जङ्गल में नहीं पचती। नगरों

( शेष पृष्ठ ८ पर )

# आनन्द मार्ग एक भ्रमजाल !

लेखक—श्री मदनमोहन जी जावलिया एम. ए. (हिन्दी संस्कृत), शास्त्री बी. एड. प्राध्यापक बूंदी (राज०)

(गताङ्क से आगे)

मैंने फिर पूछा कि साधु हो तो डाक बंगलों में क्यों ठहरते हो? क्या यह साधुत्व, वैराग्य एवं निस्पृहता वृत्ति के विपरीत नहीं? "कोई उत्तर नहीं। मैंने पूछा इतना पैसा कहां से आता है जिससे कि इतनी स्कूलें, बाल गृह, अनाथ गृह चलने की बात कहते हो। साधु का कहना था कि उस २ क्षेत्र के साधक ही खर्चा चलाते हैं। मैंने कहा यह विश्वास योग्य नहीं है। भोले भाले लोगों को चक्कर में डालने के लिये गढ़ा हुआ उत्तर है। योगाभ्यास का प्रचार करने एव आनन्दमूर्ति के नाम पर आनन्द मार्ग जैसे पथ चलाने में क्या सम्बन्ध है? क्या पहले ही देश में पंथों की कमी है? क्या पंथों की अगणित संख्या मानव समाज एवं भारत राष्ट्र को खंड खंड नहीं कर रही है? सीधे सादे भोले भाले हिन्दुओं को फंसाकर हिन्दू धर्म की शक्ति तोड़ने के लिये पातंजल योगदर्शन का आश्रय लेने तथा आध्यात्मिकता एवं त्रस्त मानव को साधना द्वारा एकाग्रता देने का मीठा प्रलोभन देने का कुत्सित कार्य कर आप आनन्द मार्गी देश, राष्ट्रीयता एवं हिन्दू धर्म के विरुद्ध गहरा षड्यन्त्र रच रहे हो। साधु इतनी वक्तृता सुनने की तैयारी नहीं करके आया था। उसकी तैयारी केवल सुनाने की थी। अत. वह निरुत्तर-सा था। हर आर्यसमाजी को आज की परिस्थिति में इन नये चले मत मतान्तरों के मन्तव्यों एवं गतिविधियों का सूक्ष्म अध्ययन होना चाहिए। साथ ही वैदिक धर्म का गहरा अध्ययन भी हो तभी इन अवैदिक पथाइयों को छकाया जा सकेगा।

साधु के पास आनन्द की कोई दार्शनिक व्याख्या नहीं थी व्यावहारिक शब्दार्थ मात्र को सूत्रात्मक रूप देकर वह कहता था—सुखं अनन्त आनंदम्।' साधु के पास पत्र पत्रिका पुस्तिका आदि सब अंग्रेजी में हो सकता है हिन्दी में भी हो। किन्तु जब अंग्रेजी पुस्तिकाओं को ही प्रस्तुत किया जाता है तब यह मानने के लिये कारण है कि आनन्दमार्ग प्रादेशिक भाषाओं तथा राष्ट्र भाषा हिन्दी का अपमान या उपेक्षा करता है और पूर्व शासकों की भाषा का प्रयोग स्वदेश में करके अपनी दास मनोवृत्ति को प्रस्तुत करता है। हिन्दी, हिन्दू एवं हिन्दुस्थान का शत्रु यह आनन्दमार्ग आर्यसमाज एवं सभी राष्ट्र भक्तों के लिये एक चुनौती है।

आनन्दमार्गी साधु की सत्यवादिता की परीक्षा तब हुई जब पूछने पर उसने बताया कि हम सदस्य नहीं बनाते। किन्तु ४-५ मि. के बाद चर्चा प्रसंग में कहा कि सारे भारत में १० लाख साधक हैं। शायद उसने हम सभी को मूर्ख समझा हो, जो साधक और सदस्य का अर्थ नहीं समझते। जब मैंने कहा श्रीमन् यह वदतो-व्याघात दोष अपने कथन में क्यों? और यह संख्या भी आप लोग नये लोगों को मूंडने के लिये उन पर आतंक स्थापित करने हेतु मिथ्या रूप में प्रस्तुत करते हैं। वास्तव में इतनी संख्या है नहीं।'

किसी ने साधु को पूछा कि क्या आप मेरी शराब छुड़ा सकते हैं। साधु ने उत्तर दिया—हाँ हम आसनों से शराब छुड़ा देंगे। मैंने तुरन्त साधु से प्रश्न किया। आसन शारीरिक हैं या मानसिक। यदि शारीरिक हैं तो फिर शराब पीना क्रिया मात्र नहीं। यह आदत है जिसका निवास मन में है, अतः जब तक इच्छा-शक्ति प्रबल नहीं होती, तब तक शराब छूटना संभव नहीं। वास्तव में आनन्दमार्गियों का प्रचार व्यावसायिक हैं धार्मिक नहीं। उन दर्जी, मोची धोबी एवं टटपूंजिए दूकानदार की तरह हैं जो बड़े एव प्रसिद्ध आदमियों के अपनी दूकान के ग्राहक होने की बात का हर नवीन श्रोता रूपी खरीददार के सामने विज्ञापन करते हैं। उन्हें यह ज्ञात नहीं है कि आज बड़ा वह नहीं है जो ऊँची गद्दी पर बैठता है या ऊँचे पद पर है। ऐसे बड़े आदमी अधिकांशतः आध्यात्मिक दृष्टि से शून्य होते हैं—ज्ञान की दृष्टि से कोरे होते हैं तथा साधुवेषधारी व्यक्ति को अंग्रेजी बोलते देखकर आतंकित होकर आत्म समर्पण कर देते हैं।

जब साधु से यह पूछा गया कि अमुक व्यक्ति तो महादुराचारी है—शराबी है—उसको आपने अपने साधकों की श्रेणी में कैसे सम्मिलित कर लिया? उत्तर मिला—"अब वे शराब छोड़ देंगे" योगाभ्यास और शराब मांस, पकौड़ी, अचार, कचौरी चाय आदि विकारी भोजन दोनों का सह अस्तित्व न जाने कैसे ये लोग निभाते हैं? अस्तु असलियत यह है कि इन्हें इससे मतलब नहीं कि इनके पंजे में आया हुआ व्यक्ति शराब छोड़ता है अथवा नहीं—योगाभ्यास द्वारा आत्म कल्याण कर सकता है अथवा नहीं। इन्हें मतलब है बड़े आदमी को अपने मुरीदों में सम्मिलित कर उसके नाम का यत्र-तत्र प्रयोग कर अपने सम्प्रदाय की संख्या एवं प्रतिष्ठा बढ़ाने की।

जब साधु से पूछा गया कि संन्यास वेष धारण कर हिंसा का चिह्न कटार क्यों रखते हो? तो उत्तर था कि आत्म रक्षा के लिये। जब फिर पूछा गया कि साधु को अपने शरीर की चिन्ता तथा मोह क्यों? यदि आपकी बात में सच्चाई है तो आपको क्या डर और यदि आपकी आपकी सच्चाई के लिये आपका शरीरपात भी हो गया, तो आपका सिद्धान्त तो शतगुण होकर संसार में फैलेगा। यदि शस्त्र से बचाव की बात करते हो, तो फिर शासन के कानून एव रक्षा दायित्व पर आप अविश्वास करते हो। इसके अतिरिक्त प्राचीनकाल से लेकर अब तक न तो किसी शास्त्र ने संन्यासियों को शस्त्र धारण करने का विधान किया है न वह परम्परा ही रही है। वैदिक धर्म ही नहीं संसार के किसी धर्म में कदाचित् संन्यासी को शस्त्र रहित होना ही बताया है। अष्टांग-योग का ढिंढोरा पीटने वाला आनन्दमार्गी प्रथम योग 'यम' के अन्तर्गत प्रथम कर्म 'अहिंसा' का पालन नहीं कर सकता, तो फिर वह गेरुआ चोला उतार देना चाहिए। जिस पातंजल योग दर्शन के अनुगमन की डींग हांकते हो, उसमें तो अहिंसा की महिमा [illegible] बताई गई है, "अहिंसा प्रतिष्ठायां तत्सन्निधौ वैरत्यागः।" अर्थात् "योगी में अहिंसाभाव के पूर्णतया दृढ़ हो जाने पर उसके निकट आने वाले हिंसक जीव भी वैरभाव का पूरी तरह त्याग कर देते हैं।" आनन्द मार्गी साधु ने अपना मंतव्य प्रकट किया कि हम अपने धर्म प्रचार में साम-दाम, दण्ड, भेद इन चारों नीतियों पर चलते है। जो बात से नहीं समझा तो इस शस्त्र रूपी दण्ड से समझाते हैं। मेरा प्रत्युत्तर था, "आत्मरक्षा के लिये घातक शस्त्र धारण करना सन्यासियों का नहीं गृहस्थों का काम है। धर्म प्रचार के लिये शस्त्र का प्रयोग करना धर्म का अर्थ नहीं समझना है और इस्लाम के इतिहास को दुहराना है। धर्म आत्मा के द्वारा स्वतंत्र वातावरण में ग्रहण किया जाता है। बात मनवाने के लिये शस्त्र-प्रयोग परले दर्जे का जंगलीपन और कायरता है। यह तरीका न तो लोकतन्त्रात्मक है और न धर्म सम्मत। साधु क्या उत्तर देता। बचने के लिये कह दिया—यह तो प्रतीकात्मक है। मैंने कहा प्रतीक और असल में अन्तर होता है। प्रतीक असल से स्थूल किन्तु अहिंसक होता है। जैसे यज्ञोपवीत एवं ध्वज किन्हीं अधिक व्यापक उदात्त भावनाओं का प्रतिनिधित्व करते हैं, जब असल शस्त्र को ही आप प्रतीक मानने लग गये तब आपके इरादों पर संदेह होता है।

सबसे अधिक आपत्तिजनक बात जो आनन्दमार्गी साधु ने कही, वह थी हमारे गुरुदेव आनन्दमूर्तिजी केवल गेट पास वाले साधकों को ही दर्शन देते हैं। वे हजारों वर्षों से हैं, सर्वज्ञ हैं वे संसार की हर एक भाषा एवं बोली जानते हैं, बोल सकते हैं। किसी भी व्यक्ति के मन की बात बता सकते हैं।" मैंने पूछा कि एक ससीम हाड़ मांस का पुतला कैसे निस्सीम ज्ञान एवं क्षमता रख सकता है? यह विज्ञान विरुद्ध, तर्क विरुद्ध एवं वेद शास्त्र विरुद्ध बात है। इस सर्वज्ञता की जांच हम भी कर सकते हैं अथवा नहीं? तो उत्तर मिला नहीं पहले साधक बनिये। साधक बनने के लिये इन्हीं आनन्दमार्गियों के निरीक्षण में योग-शिक्षण प्रत्येक व्यक्ति को पृथक् २ तथा एकांत में सिखाया जाता है प्रत्येक को अलग २ मंत्र दिया जाता है। धर्म चक्र और महाधर्म चक्र की भी बात की गई। मैंने कहा, "आप तंत्रों के अनुयायी नहीं है? ब्रह्माकुमारी संस्था की तरह जिसके संस्थापक दादा लेखराज ने पहले ओ३म् मंडली चलाई थी—आपकी संस्था के साधु गुप्त रहस्यमय क्रिया तो नहीं करते हैं? एक नकटा समुदाय भी चला था जो साधकों के नाक कटा कर उन्हें नारायण के दर्शन का झांसा देता था।

साधु ने कहा, 'हमारे 'गुरुदेव' एक व्यक्ति की आत्मा दूसरे में और दूसरे की पहले वाले में रख सकते हैं। मैंने कहा 'यह कार्य तो परमात्मा भी नहीं कर सकता। वह भी एक व्यक्ति की मृत्यु के बाद दूसरे नवीन शरीर में उसका प्रवेश कराता है। ऐसी अवस्था में आपके आनन्दमूर्तिजी परमात्मा से भी जबरदस्त है। फिर उनका स्वयं का जन्म मरण भी नहीं होता होगा। जब वे सामर्थ्यवान् है—

संभव असंभव से भी कर सकते हैं तो दुनिया में व्याप्त इस संघर्ष की और पीड़ा को इच्छा मात्र से समाप्त कर देना चाहिए। आप जैसे साधुओं को क्यों प्रचार का कष्ट किया जा रहा है" साधु ने चौकन्नेपन का स्तूप-सा बना करते हुए कहा— "हाँ-आप देखेंगे कि ४-५ वर्षों में सर्वत्र आनन्द बरसेगा—दुनिया में जबरदस्त क्रांति होगी। वह समय आयगा।"

साधु महाराज को मेरा विनम्र उत्तर था, 'महाराज आप भोले हैं—भरमाये हुए हैं। आपकी आशा मृगमरीचिका मात्र है, आप अन्धभक्ति एवं निराधार महत्वाकांक्षा के शिकार हैं। फिर भी यदि आपको पूरा विश्वास है तो आप या तो विदेशी शक्ति के बल पर ऐसा करने की दुष्ट योजना बना रहे हैं अथवा देश में सैनिक क्रांति कराने की साजिश होगी। कम्यूनिस्टों को भी दुनिया में अपना शिकंजा फैलाने में ५२ वर्ष हो गये। सफलता अवश्य मिली है, किन्तु अभी मंजिल दूर है। क्या आपकी क्रांति उनसे भी बड़ी होगी? अथवा यदि आप निःशस्त्र प्रेम प्रचार करते हैं तो फिर धार्मिक क्रांतियों के इतिहास से अनभिज्ञ प्रतीत होते हैं। बौद्ध-जैन, ईसाई-मुसलमान पौराणिक आर्यसमाज सभी के धर्म प्रचार का प्रभाव शनैः २ पड़ा है, आपकी ४ ५ वर्ष की अवधि को कुछ विस्तृत करके कहिए जिससे समझदारों के गले तो बात उतर सके। सही बात तो यह है कि आप अपने इस Spiritnalism का संदेश विदेशों में क्यों नहीं फैलाते? भारत के हिन्दू तो गुम्बुसरे से आकंठ इसी में डूबे हुए हैं। आप विदेशों पर ही यह कृपा करें। साधु इस व्यंग को समझ गये और मुस्कराता हुआ विषयान्तर की मुद्रा बनाने लगा।

"हमें भी यौगिक क्रियाएं सिखाइये। हम चार-पाँच व्यक्ति हैं।" साधु ने इस पर कहा, "प्रत्येक व्यक्ति को बारी बारी से एकान्त कमरे में सिखाया जाता है", हमने आपत्ति की, 'ऐसा क्यों", उत्तर मिला 'बस ऐसा ही है। हम प्रत्येक के मन की जाँच करते हैं। प्रत्येक का मानसिक तथा शारीरिक ढांचा भिन्न भिन्न है। त्रिगुणात्मिका प्रकृति अलग २ व्यक्ति को अलग २ मंत्र क्यों दिया है। क्या करोड़ों व्यक्तियों को दीक्षित करने के लिये आपके 'नाम मे करोड़ों मंत्र हैं? क्या पहले के बने हुए हैं अथवा फटाफट उसी समय बना लेते हैं? किस मनोवैज्ञानिक वेत्ता इसके लिये सक्षम नहीं है? उनसे हम अपनी मनोवैज्ञानिक जाँच कराकर विवरण आपको दे दें। फिर आप खुले में हमें यौगिक क्रियाएं तथा मंत्र दीक्षा दीजिए। आपका मनोवैज्ञानिक ज्ञान किस शैक्षणिक अथवा अनुभूतिगत योग्यता से सम्बन्ध रखता है? केवल आनन्द मार्ग का लेबल धारण कर लेने से? फिर आप वेद को भी नहीं मानते।" साधु और बातों का उत्तर क्या दे सकता था? अन्तिम बात पर उसने टिप्पणी की कि हम वेद को मानते हैं हमारा तो सहला दीक्षा मंत्र ही है 'संगच्छध्वं संवदध्वम् सं वो मनांसि जानताम्' आदि। मैंने कहा महाराज 'भट्ट' विषकुम्भ पयोमुखम् ही तो है ऊपर २ वेद का मंत्र रूपी अमृत और भीतर सब अवैदिक विष।

साधु से कहा, आनन्दमूर्तिजी का फोटो नहीं दिखाया जाता। किसी विदेशी फोटो ग्राफर के आग्रह पर पत्नीक कुछ दो साधकों ने पूछते हुए गुरु महाराज का फोटो खींचा। अर्थ देश में धोकर उसने देखा कि बहुत प्रयत्न करने पर भी कैमरे में फोटो नहीं आ सका।" हमने आश्चर्य प्रकट किया "क्या बात थी—आजकल चन्द्रमा और मंगल जैसे दूरवर्ती ग्रहों के भी फोटो ले सकने वाले कैमरे हैं फिर ऐसा क्यों हुआ?" साधु ने दाढ़ी में आनन्द लूटते हुए कहा बस ऐसी ही बात है उनकी फोटो खिंच ही नहीं सकती।" हमने कहा 'तो क्या आपके गुरु निराकार है? साधु ने कहा, "हाँ ऐसा ही समझिये, हमारा उत्तर था—महाराज यह अयथार्थ मिथ्या और आप जैसे अंध भक्तों का प्रलाप है। ऐसे चमत्कारों के बल पर आप जनता को इस वैज्ञानिक युग में मूंडते हो पाप कमाते हो। इस्लाम और ईसाइमत से लेकर जैन बौद्ध पौराणिकों सभी ने इन चमत्कारों को गढ़ा, फैलाया और मूर्खों पर आतंक स्थापित कर अपने पंथ का प्रसार किया 'धर्म का शुद्ध स्वरूप आपको वेदों के अतिरिक्त कहीं नहीं मिल सकता। आप क्यों अपनी जवानी बरबाद कर रहे हैं? शैक्षणिक योग्यता बढ़ाकर नौकरी या स्वतंत्र धंधा करिये या फिर साधु ही बनना है तो आर्यसमाज के निर्देशों पर काम कीजिये' लोक और परलोक का सुधार कीजिए। 'साधु उपदेश सुनकर—आप कहाँ रहते हैं" आदि पूछता एवं बात करता हुआ फिर उठ बैठा ठहरा नहीं चलता बना।

---

## आर्यसमाज डीडवाना का चुनाव

दिनांक ६-९-६९ को आर्यसमाज डीडवाना के उप प्रधान श्रीयुत् कुँज बिहारीलालजी माथुर की अध्यक्षता में आर्यसमाज डीडवाना का वार्षिक निर्वाचन निम्न प्रकार से सम्पन्न हुआ—

प्रधान—श्री कुँज बिहारीलालजी माथुर, उप प्रधान—श्री फवरलालजी गौड, मंत्री—सम्पतलाल शर्मा, उपमंत्री—श्री मदनलालजी आसेरी कोषाध्यक्ष—"रामेश्वरजी मोट हिसाब परीक्षक" सीतारामजी कुम्पावत पुस्तकालय अध्यक्ष—बिहारी लालजी आर्य प्रचार मंत्री श्री बाला बक्सजी काबरा

अन्तरंग सदस्य-गण—श्री बुद्धकरणजी वैष्णव श्री आशारामजी माथुर व श्री भंवरलालजी व्यास।

वैदिक विद्यालय पर्वतपुरा में—

## गांधी जन्म शताब्दी समारोह

दिनांक २ अक्टूबर को श्री श्रीकरण शारदा एडवोकेट की अध्यक्षता में वैदिक विद्यालय पर्वतपुरा में गांधीजी का जन्म शताब्दी समारोह धूम-धाम से मनाया गया। छात्र छात्राओं के गायन तथा प्रदर्शन अत्युत्तम रहे।

इस अवसर पर महात्मा गांधीजी के जीवन चरित्र एवम् उनके उत्तम आदर्शों पर श्री पण्डित रामजतन जी मिश्र, पण्डित रमाशंकर जी शास्त्री के व्याख्यान हुए। श्रीमान् अध्यक्ष महोदय ने गांधी जी की विशेषताओं पर प्रकाश डालते हुए उत्तम आदर्शों से शिक्षा ग्रहण करने पर बल दिया। पर्वतपुरा ग्राम वासियों ने भी काफी संख्या में भाग लिया। कार्यक्रम बड़ा ही उत्तम रहा।

## उदयपुर में वैदिक धर्म प्रचार

शहर नाथद्वारा के ४५० हरिजन (बड़ी) भाईयो ने एक अपील ईसाई धर्म ग्रहण करने बाबत निकाली तथा धर्म परिवर्तन करना प्रारम्भ किया जिसकी सूचना आर्यसमाज उदयपुर के पास अपील सहित प्राप्त हुई।

इस अपील की सूचना के आधार पर आर्यसमाज उदयपुर से ४ आदमियों का एक शिष्ट मण्डल दिनांक ७ सितम्बर प्रात काल ७॥ बजे बस द्वारा नाथ द्वारा पहुंचा। जिसमें प्रधान ठा० बलवन्तसिंह, उपप्रधान श्री अनिलकुमारजी, श्री भंवरलालजी पोरवाल आदि का मण्डल श्री नरेन्द्रपालसिंहजी चौधरी तथा भंवरलालजी जैन आचार्य हरिजन सेवक संघ से करीबन २ घण्टे तक हरिजनों की समस्या पर विचार विनिमय किया।

साथ ही दिन को १२ बजे नाथद्वारा महाराज श्री गोविन्दलालजी गोस्वामीजी से भी हमारा शिष्ट मण्डल मिला करीबन तीन घटे की बातचीत से महाराज आर्यसमाज के सभासदों से काफी प्रभावित हुवे तथा हर प्रकार से हरिजनों के दुःखों को तथा उनकी समस्या सुलझाने का आश्वासन दिया।

सायंकाल ४॥ बजे से ६ बजे हरिजन भाईयों की सभा में काफी विचार विमर्श हुआ जिसमें हरिजन भाईयों को ईसाई नहीं बनने पर काफी जोर दिया गया और समझाया गया।

६॥ बजे से रात को १० बजे तक श्री नरेन्द्र-पालसिंहजी चौधरी के माडर्न स्कूल में श्री ठा० बलवन्तसिंहजी प्रधान आर्यसमाज उदयपुर तथा हरिजन सेवक संघ राजस्थान के मन्त्री श्री जवा-हरलालजी जैन एवं नरेन्द्रपालसिंह चौधरी के तत्वाधान में नाथद्वारा शहर के जनमानस को बुला-कर सभा की गोष्ठी का आयोजन किया गया जिसमें नगर के प्रमुख व साधारण व हरिजन भाईयों ने भाग लिया नाथद्वारा शहर के गणमान्य व्यक्तियों ने अपने २ विचार व्यक्त किये तथा हर प्रकार की हरिजन समस्या सुलझाने का आश्वासन देकर एक समिति गठन की गई।

समिति के सदस्यों के आश्वासन पर प्रमुख नागरिक समिति के सदस्यों के आश्वासन पर हरिजन बन्धुओं के बुजर्गों तथा नौजवानों के भविष्य में ईसाई नहीं बनने का आश्वासन दिया।

टेम्पुल बोर्ड के एडमिनिस्ट्रेटर साहब से ८ सितम्बर प्रात हमारे सभासद मिले और हरिजनों की समस्या से अवगत कराया गया।

एडमिनिस्ट्रेटर साहब ने सब प्रकार की सुविधा देने का आश्वासन दिया।

आर्य-समाज उदयपुर श्री गोविन्दलालजी महाराज नाथद्वारा, एडमिनिस्ट्रेटर साहब टेम्पुल बोर्ड श्री नरेन्द्रपालसिंहजी चौधरी तथा नाथद्वारा नागरिक बन्धुओं का अत्यन्त आभारी है, जिन्होंने विधर्मी बननेवाले हरिजन भाइयों को वापस अपने अपने से मिलने का प्रयास किया है।

## वार्षिकोत्सव

दि० ८ से १२ अक्टूबर ६९ तक आर्यसमाज कुमानपुरा कोटा का वार्षिकोत्सव सानन्द सम्पन्न हो गया।

( शेष पृष्ठ ५ का )

में गृहस्थियों के घरों में घुसते फिरते है, तो फिर अपना ही घर क्यों छोड़ा था। अरे वनस्थो तुम वानप्रस्थ हो या भवरस्थ कुछ लज्जा भी है या नहीं।

और सन्यासी तो यज्ञ को छोड कर सन्यास लेता है, योगाभ्यास करना उस का काम है न कि हवन कराते डोलना। अब न ब्रह्मचारी पढना चाहता है और न सन्यासी योगाभ्यास करना चाहता है। सब हवन कराते डोलना चाहते हैं।

इसका दुष्परिणाम

जब कोई आर्य सन्यासी या ब्रह्मचारी मरता है, तो उसके पास हजारो रुपया बैंक में निकलता है और गृहस्थ उपदेशक जब मरता है, तब बच्चो पर कर्जा छोडकर मरता है और उस उपदेशक के बच्चे कसम खाते है कि पिताजी ने जो जीवन अर्पित किया हम नहीं करेंगे। गृहस्थ की आजीविका नष्ट करने वाले इन सन्यासी और ब्रह्मचारियो को मनु ने लिखा है कि जो दूसरे की आजीविका लेवे।

स राजा निर्धनं कृत्वा क्षिप्रमेव निवासयेत्।

अर्थात्—राजा उस का धन छीनकर देश से निकाल देवे।

एक बार बम्बई में सेठ प्रताप[illegible] सूरजी वल्लभदास के कच्छ कैसल में यज्ञ [illegible] सेठजी ने भी गृहस्थो के अतिरिक्त सन्यासी और ब्रह्मचारी बुला रखे थे, मैंने [illegible] किया, तो सेठजी कहने लगे कि अब तो आगये है रहने [illegible] जब समाप्त होने वाला था, तब प्रतापभाईजी ने मुझ से पूछा कि सब को दक्षिणा क्या देनी चाहिये। उस समय सवा सौ पुरोहित उस यज्ञ में थे। मैंने सेठजी को कहा कि यज्ञ में सुवर्ण देना लिखा है वेदों मे। कहा क्या देर थी, सवा सौ सुवर्ण मालाए गृहस्थ पुरोहितो के समान इन सन्यासियों और ब्रह्मचारियो के गले में भी डाली गई। गृहस्थ पुरोहित सुवर्ण मालाए लेकर घर गये और अपनी पत्नी और पुत्री को दे दी, पर सन्यासी और ब्रह्मचारी बम्बई के बाजार मे मालाए बेच रहे थे। मैंने श्री प्रतापभाई जी को समाचार दिया। वे भी हसने लगे। एक बार रामपुर के नवाब ने भाडो से प्रसन्न होकर हाथी इनाम में दे दिया। भाडो ने सोचा इस हाथी को क्या करे। खिलाते खिलाते मर जावेंगे। अत भाडो ने हाथी के गले में ढोलक डालकर रामपुर के बाजार में छोड दिया, तब वे भीड नवाब साहब ने बुलाए और पूछा। भांड कहने लगे कि जैसे हम गले मे ढोलक डालकर मागते खाते है, वैसे ही यह हाथी भी खावेगा। हम इस को कहा से खिलावें। वैसे ही सन्यासी और ब्रह्मचारियो के गले मे माला डालना है। अत मत उपहास करो वैदिक सस्कृति के साथ और परम्परा और वेदानुकूल गृहस्थ को ही यज्ञादि कर्म कराने दो, जैसा ऋषि ने सस्कारविधि मे लिखा है।

---

## सभा की कार्यकारिणी की मीटिंग

विदित हो कि आर्य प्रतिनिधि सभा राजस्थान की कार्यकारिणी की आवश्यक मीटिंग दि० १४ नवम्बर ६९ को मध्यान्होत्तर २ बजे ऋषिउद्यान (आनासागर तट पुष्कर मार्ग) अजमेर में आवश्यक विषयों के विचारार्थ आमन्त्रित की गई है। सभा के सभी पदाधिकारी महोदयों एव अन्तरंग सदस्यों की उपस्थिति इस अवसर पर सादर प्रार्थनीय है।

भवानीलाल भारतीय
एम ए पी एच डी
मन्त्री सभा

## आर्यसमाज बूंदी की यज्ञशाला के निर्माण हेतु धन की अपील !

आर्य म तण्ड के पिछले अक मे आर्यसमाज बूंदी की यज्ञशाला के निर्माण हेतु निवेदन प्रकाशित हुआ था, आर्यबन्धुओं तथा आर्यसमाजो ने उस निवेदन पर ध्यान दिया ही होगा, फिर भी सहायता हेतु राशि की प्राप्ति अत्यल्प मात्रा मे प्राप्त हुई हैं, हमें आर्यजनो तथा आर्यसमाजो की विवशता एव दानशीलता दोनो का ध्यान है, फिर भी निवेदन उन्ही को किया जाता है जिनसे आशा है।

अत इन शब्दो द्वारा मैं पुन अपील करता हू कि कृपया आवश्यक समझ कर शीघ्रातिशीघ्र सहायता राशि भिजवावें।

मन्त्री

## टोंक में आर्यसमाज मन्दिर का शिलान्यास

टोंक में आर्यसमाज मन्दिर का शिलान्यास करते हुए केन्द्रीय उपवित्त मन्त्री श्री जगन्नाथ पहाडिया ने कहा कि मुझे यह कहने मे बिल्कुल सकोच नही, कि मेरा राजनीतिक जीवन आर्य समाज से ही प्रारम्भ हुआ है। तथा आर्यसमाज ने देश व जाति की बडी सेवा की है।

श्री पहाडिया ने आर्यसमाज के भविष्य की मगल कामना की तथा कहा कि मैं आशा करता हू, टोंक मे आर्यसमाज का कार्य प्रगति करेगा।

सभा, टोंक विश्वहिन्दू परिषद के अध्यक्ष श्री प्रमीजी एडवाकेट की अध्यक्षता में हुई थी, आर्यसमाज का कार्य टोंक में प्रारम्भ ही हुआ है किन्तु वहाँ सभी वर्गो का सहयोग प्राप्त हो रहा है।

मन्त्री

---

## सूचना

आर्यसमाज बाल मन्दिर शिवगज के लिये एक अध्यापिका की आवश्यकता हैं। आर्य सिद्धान्तो को मानने वाली, मान्टेसरी ट्रेन्ड अवकाश प्राप्त हो और कार्य करने की क्षमता रखती हो तो वह भी स्वीकार की जा सकती है।

पत्र व्यवहार करें—
मन्त्री आर्यसमाज शिवगज
महर्षि दयानन्द मार्ग,
बाल मन्दिर (सिरोही राज०)

## भव्य स्वागत

श्रीमान् रामगोपालजी शालवाले व श्रीमान् ओमप्रकाशजी त्यागी लोक सभा सदस्य का भव्य स्वागत दि० २५-९-६९ देहली अहमदाबाद मेल पर आर्यसमाज आबू रोड के मन्त्री श्रीमान् जेठमलजी आर्य के नेतृत्व मे आबू रोड आर्य वीर दल के अधिकारी गण व सैनिको ने अपने प्रिय नेताओं का भव्य स्वागत किया। श्रीमान् भगवान देवजी द्वारा लगवाए गए नारो से स्टेशन गूंज उठा।

## आर्य वीर दल आबूरोड के आम चुनाव

दि०. २१-७-६९ का आबूरोड आर्यवीर दल का सन् १९६९-७० के वर्ष के लिए चुनाव हुआ जिसमे निम्न व्यक्ति पदाधिकारी चुने गए—श्रीमान् बनारामजी आर्य नगर नायक श्रीमान् राजेन्द्रप्रसादजी जैन उपनगर नायक, श्रीमान् ललितकुमार आर्य मन्त्री, श्रीमान् अमरचन्दजी कोषाध्यक्ष, श्रीमान् मोहनलाल जी शाखा सचालक, श्रीमान् जयकुमार जी जैन शिक्षा नायक, श्रीमान् महेन्द्रप्रसादजी जैन बौद्धिक नायक, श्रीमान् बनवारीलालजी गुप्ता निरीक्षक।

कार्य[illegible] सदस्य—श्री विष्णुलालजी सोनी, श्री [illegible] मिस्त्री, श्री [illegible] परिहार।

## आर्यसमाज [illegible] मथुरा का— [illegible] समारोह !

दि० २४ से २८ अक्टूबर तक बडे ही उत्साह के साथ मनाया जा रहा है।

इस अवसर पर वेद ज्योति सहित अपूर्व शोभा यात्रा, वैदिक सिद्धान्त दिग्विजय (शास्त्रार्थ) सम्मेलन, अराष्ट्रिय तत्व निरोध सम्मेलन, शिक्षा सम्मेलन, महिला सम्मेलन, वैदिक राष्ट्र निर्माण सम्मेलन, वेद सम्मेलन, वैदिक अध्यात्म (अक+भोग) सम्मेलन, अ० भा० आर्य युवक (आर्य वीर) सम्मेलन व्रत दीक्षा के रूप मे अन्तिम दिन गुरु विरजानन्द शताब्दी दिवस का कार्यक्रम रहेगा।

यह आयोजन एक वृहद् आर्य सम्मेलन के रूप मे हो रहा है। मथुरा जिले के अतिरिक्त अन्य कई जिलों तथा प्रान्तो के आर्य भाई-बहिन और आर्य वीर भी इस आयोजन मे भाग ले रहे हैं। आर्य-जगत् के मूर्धन्य तपस्वी महात्मा, वैदिक विद्वान्, महोपदेशक, आर्य भजनोपदेशक तथा अन्य नेतागण इस आयोजन म पधार रह है। कविरत्न श्री प० प्रकाशचन्द्रजी 'प्रकाश' को भी।

देव दयानन्द की दिव्य दीक्षाभूमि मथुरा में आयोजित इस विराट् आर्य सम्मेलन मे समस्त आर्यगण सादर आमन्त्रित हैं। विश्वास है कि आर्य जनता के आशीर्वाद से यह आर्य जगत् मे एक नई आशा-किरण का सवाहक सिद्ध हो सकेगा।

---

आ। प० भगवानस्वरूपजी "न्यायभूषण" के प्रबन्ध से वैदिक यन्त्रालय अजमेर में मुद्रित और ओम्प्रकाश वानप्रस्थ, सम्पादक प्रकाशक द्वारा दयानन्द आश्रम, केसरगज अजमेर से प्रकाशित। अधिष्ठाता—श्रीमान् डा० भवानीलालजी भारतीय एम. ए. पी. एच डी. अजमेर

आर्य प्रतिनिधि सभा राजस्थान का मुख-पत्र

पाक्षिक

रजि० नं० जे १५

# आर्य मार्तण्ड

दयानन्द आदित्य से पाकर ज्योति प्रचण्ड । ध्वंस दम्भ पाखण्ड का करे आर्यमार्तण्ड ॥

वर्ष ४७ | वार्षिक मूल्य ४) रुपया | सम्पादक—श्री ओम्प्रकाश वानप्रस्थ ( रामसहाय शर्मा ) | अजमेर कार्तिक शु० ६ सं. २०२६ वि., दि. १५ नवम्बर ६९ दयानन्दाब्द १४५ | एक प्रति का २० पै० | अङ्क १८

## ईश्वर-प्रार्थना

ओ३म् यज्जाग्रतो दूरमुदैति दैवं
तदु सुप्तस्य तथैवैति ।
दूरङ्गमं ज्योतिषां ज्योतिरेकं
तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ॥

[illegible]

हे धर्मनिरूपद्रव परमात्मन् ! मेरा मन सदा शिवसंकल्प वाला, धर्म-कल्याण-सकलकारी ही आपकी कृपा से हो । कभी अधर्मकारी न हो । वह मन कैसा है ? जागते हुए पुरुष का दूर-दूर जाता आता है । दूर जाने का जिसका स्वभाव ही है । अग्नि, सूर्यादि, श्रोत्रादि इन्द्रिय, इन ज्योति-प्रकाशकों का भी ज्योति प्रकाशक है, अर्थात् मन के बिना किसी पदार्थ का प्रकाश कभी नहीं होता । वह एक बड़ा चंचल वेगवाला मन आपकी कृपा से ही स्थिर, शुद्ध, धर्मात्मा, विद्यायुक्त हो सकता है । "दैवम्" देव ( आत्मा का ) मुख्यसाधक भूत, भविष्यत् और वर्तमान काल का ज्ञाता है, वह आपके वश में ही है । उसको आप हमारे वश में यथावत् करें, जिससे हम कुकर्म में कभी न फंसे, सदैव विद्या, धर्म और आपकी सेवा में ही रहें ।

"आर्याभिविनयः" से

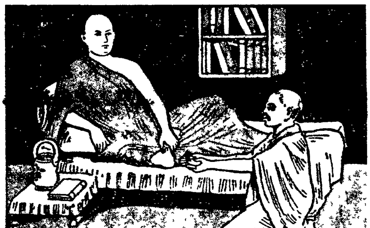
## उद्बोधन

ओ३म् अहमस्मि सहमान उत्तरो नाम भूम्याम् ।
[illegible] विश्वाषाडाशामाशां विषासहिः ॥

अपनी मातृभूमि के दुःख-सन्ताप निवारण के लिए मैं अनेक प्रकार का कष्ट सहने के लिए तैयार हूं । मैं कष्ट चाहे जहां से आवें और चाहे [illegible] ॥ अथर्व वेद ॥

[illegible]

## विश्व-वन्द्य महर्षि दयानन्द सरस्वती



ऋषि का निर्वाण दिवस दि० १० नवम्बर को समस्त विश्व की आर्य जनता ने मनाकर अपनी हार्दिक श्रद्धांजलि अर्पित की । इसी शुभावसर पर ऋषि की उत्तराधिकारिणी परोपकारिणी सभा ने ऋषि की निर्वाण स्थली अजमेर में दिनाङ्क १४ से १६ नवम्बर तक ऋषि मेला समायोजित किया है ।

## श्रद्धांजलि !

पीड़ित मानव को दिया, ! सत्य, ज्ञान, तप दान ।
फिर अनन्त में हो गये, ऋषिवर अन्तर्ध्यान ।
ऋषि का यह निर्वाण ही, भारत जीवन-दान,
जन-मन मंगल करन हो, संकट हरन विहान ।
धन्य धरा अजमेर की, वीर भूमि तू धन्य ।
परम कृतार्थ हुई तुही, ऋषि की भक्त अनन्य ।
[illegible] विकीर्ण की पाप-तमिस्रा भ्रांति ।
[illegible] ऋषि को शाश्वत शांति ।
[illegible] करन विश्व कल्यान ।
[illegible] विष-पान ।
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]

—[illegible] मिश्र प्रभाकर

## प्रांत में ऋषि का ८६ वाँ निर्वाण दिवस सानन्द सम्पन्न !

प्रान्त की प्रायः समस्त आर्यसमाजों ने महर्षि दयानन्द जी का ८६वा निर्वाण दिवस सानन्द मनाकर विश्व वन्द्य महर्षि के प्रति अपनी हार्दिक श्रद्धांजलि अर्पित की ।

इसी अवसर पर दिनाक १० नवम्बर को ऋषि उद्यान आनासागर तट अजमेर में अजमेर की समस्त आर्यसमाजों की ओर से परोपकारिणी सभा के तत्वावधान में श्री आचार्य कृष्णजी की अध्यक्षता में उक्त समारोह मनाया गया, जिसमें श्री स्वामी काव्यानन्द जी की कविता, आर्य पुत्री विद्यालय की छात्राओं के भजन, स्वामी विरक्तदेवजी, श्री डा० भवानीलालजी भारतीय, डा० सूर्यदेवजी शर्मा, श्री पण्डित सत्यानन्दजी वेद वागीश, श्री आचार्य कृष्णजी के ऋषि जीवन पर प्रभावशाली वक्तृतायें हुईं । कार्यक्रम बहुत उत्तम रहा ।

# आर्यसमाज की शैक्षणिक प्रवृत्तियां : एक मूल्यांकन

लेखक—श्री प्रो० भवानीलालजी भारतीय एम. ए., आर. ई. एस. पी-एच-डी. : हिन्दी विभाग, गवर्नमेंट कालेज, अजमेर (राजस्थान)

आर्यसमाज के प्रवर्तक महर्षि दयानन्द का व्यक्तित्व बहुमुखी था। उन्होंने पुरातन वैदिक धर्म के पुनरुत्थान, समाज सुधार तथा देश को स्वाधीन बनाने के सम्बन्ध में जहां अपने विचारों और कार्यों से देशवासियो का नेतृत्व किया, वहां शिक्षा के क्षेत्र में भी उन्होंने भारत वासियों का मार्ग-दर्शन किया। सत्यार्थप्रकाश के द्वितीय तथा तृतीय समुल्लास इसी दृष्टि से लिखे गये हैं, जिनमें बालकों के लालन-पालन, उनके शिक्षण तथा उन्हें सुसंस्कृत बनाने के विषय में लेखक ने अपने महत्वपूर्ण विचारों को संग्रहीत किया है। संस्कृत भाषा के माध्यम से शास्त्रीय विषयों के अध्ययन अध्यापन की परिपाटी हमारे देश में शताब्दियों से प्रचलित रही है। काशी, पूना, नवद्वीप, मिथिला, जयपुर आदि पुरातन संस्कृत शिक्षा-पद्धति के केन्द्र रहे हैं। महर्षि ने स्वयं भी मथुरा के दण्डी विरजानन्द की पाठशाला में ढाई तीन वर्ष रह कर व्याकरण तथा अन्य शास्त्रों का इसी प्राचीन प्रणाली से अभ्यास किया था। स्वामी विरजानन्द की कृपा से जब उन्हें आर्ष अनार्ष ग्रन्थों के गुणावगुणों का बोध हुआ तो उन्होंने आर्ष ग्रन्थों के पठन की एक विधि बनाई। किस क्रम से इन शास्त्रीय ग्रन्थों का अभ्यास किया जाय। यह महर्षि ने सत्यार्थप्रकाश के उपर्युक्त दोनों समुल्लासों में बताया है। संस्कृत व्याकरण के सुगम बोध के लिए उन्होंने वेदांग-प्रकाश के नाम से चौदह खण्डों में व्याकरण के गूढ़ विषय को हिन्दी भाषा के माध्यम से प्रस्तुत किया। 'व्यवहार भानु' तथा 'संस्कृत वाक्य प्रबोध' नामक उन के लघु ग्रन्थ संस्कृत पठन-पाठन व्यवस्था के अन्तर्गत छपे, जिनके विषय में महर्षि की एक विस्तृत योजना थी। अष्टाध्यायी का हिन्दी भाष्य भी उन्होने दो खण्डो में प्रकाशित कराया।

ग्रन्थ निर्माण के अतिरिक्त वे जहां-जहां अपने भ्रमण के दौरान में गये, वहा उन्होंने संस्कृत पाठशालायें भी स्थापित कीं, यद्यपि कालान्तर में उन्हे ये पाठशालायें बन्द कर देनी पड़ीं, क्योंकि उपयुक्त अध्यापको का अभाव तथा श्रम एवं तपस्यापूर्वक आर्ष ग्रन्थों का अध्ययन करने वाले छात्रो का अभाव ही इसका कारण हुआ। स्वामी जी केवल पुस्तकीय ज्ञान के ही पक्ष में नहीं थे। उन की दृढ़ धारणा थी कि जब तक देश के नवयुवको को उद्योग, कला कौशल तथा यांत्रिक व्यवसायो की शिक्षा नहीं दी जायेगी, तब तक देश की आर्थिक समृद्धि नही हो सकती। इसी दृष्टि से उन्होंने कुछ युवकों को जर्मनी भेजा, ताकि वहां रह कर वे औद्योगिक शिक्षण प्राप्त करें। महर्षि के सुप्रसिद्ध शिष्य तथा भारत में क्रान्तिकारी प्रवृत्तियो के भाग्यविधाता प० श्याम जी कृष्ण वर्मा उनके जीवनकाल मे ही आक्सफोर्ड विश्व-विद्यालय मे संस्कृत के प्राध्यापक पद पर नियुक्त हो गये थे और उन का स्वामी जी से नियमित रूप में पत्राचार होता था।

महर्षि के देहान्त के पश्चात् उनके स्मारक के रूप में १८८६ में डी० ए० वी० स्कूल लाहौर की स्थापना की गई, जो बहुत शीघ्र ही डी०ए०वी० कालेज के रूप में परिणत हो गई। महात्मा हंसराज ने अपने अपूर्व त्याग द्वारा इस महान् शिक्षण संस्था की आजन्म प्रिंसिपल तथा प्रबन्धक के रूप में सेवा की। आर्यसमाज के शिक्षा-शास्त्रियों में महात्मा जी का नाम स्वर्णाक्षरों से लिखा जायेगा। डी० ए० वी० कालेज की स्थापना के समय उसके संस्थापकों का दृष्टिकोण समन्वय प्रधान था। वे इस कालिज में प्राचीन संस्कृत भाषा, साहित्य, दर्शन तथा सम्पूर्ण वैदिक साहित्य के विधिवत् अध्ययन की व्यवस्था देखना चाहते थे। साथ ही साथ भौतिक विज्ञान, सामाजिक ज्ञान सोसल साइंसेज तथा अंग्रेजी भाषा और साहित्य का अध्यापन भी इस कालेज में हो यह उन्हें अभीष्ट था। पं० गुरुदत्त विद्यार्थी जैसे पुरानी पीढ़ी के नेताओं तथा मनीषियों ने भी डी. ए. वी. कालेज के आन्दोलन को व्यापक बनाने में जो अपना अमूल्य योगदान दिया उसका एकमात्र कारण यही था कि वे इस विद्यालय द्वारा महर्षि दयानन्द के शैक्षणिक दृष्टिकोण की पूर्ति सम्भव समझते थे। परन्तु शीघ्र ही उनका सुख-स्वप्न भंग हो गया। उन्हें प्रतीत होने लगा कि डी. ए. वी. कालेज के संचालक पाश्चात्य ज्ञान विज्ञान तथा अंग्रेजी भाषा एवं साहित्य के अध्यापन के लिए जितने प्रयत्नशील हैं, उतने संस्कृत तथा वैदिक वाङ्मय के लिए नहीं। तब उन्हें डी. ए. वी. कालेज से निराशा होने लगी और उन्होंने अपना हाथ भी उसकी व्यवस्था से खींच लिया।

डी. ए. वी. कालेज को अपने निर्धारित लक्ष्य में असफल होता देख कर आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के तत्कालीन प्रधान महात्मा मुंशीराम ने ऋषि के शिक्षा-सिद्धान्तों को मूर्त रूप प्रदान करने के लिए सभा की अन्तरंग में गुरुकुल स्थापना विषयक प्रस्ताव रक्खा और स्वयं उसे मूर्त रूप देने में प्राण-पण से जुट गये। महात्मा जी को गुरुकुल के लिए यथेष्ट आर्थिक सहायता अविलम्ब उपलब्ध हो गई और उन्होंने गुजरांवाला में गुरुकुल की स्थापना कर दी, जो कुछ समय पश्चात् ही मुन्शी अमनसिंहजी द्वारा प्रदत्त भूमि में गंगा पार की रेती में कांगड़ी ग्राम में चला गया।

स्वामी श्रद्धानन्द के श्रम और त्याग ने गुरुकुल कांगड़ी को देश की एक महत्त्वपूर्ण शिक्षण-संस्था बना दिया जो प्राचीन तथा आधुनिक शिक्षा-पद्धति का एक सुन्दर सामञ्जस्य था। गुरुकुल ने अनेक उच्च कोटि के विद्वान् स्नातक देश को प्रदान किये जिन्होंने लेखक, पत्रकारिता, धर्मप्रचार, शिक्षा, आयुर्वेदादि अनेक क्षेत्रों में देश, धर्म तथा समाज की अपूर्व सेवा की। स्वामी श्रद्धानन्द के पश्चात् आचार्य रामदेव के सुयोग्य संचालन में गुरुकुल कांगड़ी उत्तरोत्तर उन्नति करता गया। कांगड़ी के नमूने पर ही ज्वालापुर में महाविद्यालय की स्थापना हुई। इसके संस्थापक स्वामी दर्शनानन्द थे। स्वामीजी को गुरुकुल स्थापित करने का एक खब्त सा था, वे कहीं भी तनिक सी सुविधा देख कर गुरुकुल की स्थापना कर देते और उसका संचालन कार्य वहां के लोगों को सौंप कर आगे चल देते। पुनः कभी आकर उस संस्था को देखने का भी अवकाश उन्हें नहीं मिलता। महाविद्यालय ज्वालापुर में लौकिक संस्कृत का अध्यापन निपुणता से होने लगा। उत्तर प्रदेश में प्रतिनिधि सभा द्वारा गुरुकुल वृन्दावन की स्थापना हुई। प्रारम्भ में महात्मा नारायण स्वामी (तत्कालीन मुन्शी नारायण प्रसाद) उसके मुख्याधिष्ठाता और आचार्य रहे। इस गुरुकुल ने आचार्य विश्वेश्वर, आचार्य द्विजेन्द्रनाथ शास्त्री, कविरत्न मेधाव्रताचार्य जैसे उत्कृष्ट विद्वान् स्नातक आर्यसमाज को प्रदान किये।

गुरुकुल स्थापना का यह चक्र एक समय देश-व्यापी हो गया। उत्तर प्रदेश तथा पंजाब में तो बीसों गुरुकुल खुले ही, दिल्ली में गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ राजस्थान में गुरुकुल चित्तौड़गढ़, बिहार में गुरुकुल बैद्यनाथ धाम, बम्बई में गुरुकुल सूपा व सोनगढ़, मध्यप्रदेश में गुरुकुल महेश्वर, दक्षिण हैदराबाद में गुरुकुल घटकेश्वर आदि सैकड़ों गुरुकुलों की स्थापना हुई। प्रत्येक प्रान्त के आर्यों को गुरुकुल स्थापित करने का नशा सा था। आगे चल कर गुरुकुल भी अपने आदर्शों से च्युत होने लगे। अनेक गुरुकुल तो नाममात्र के लिए ही गुरुकुल रह गये। उनमें हाई स्कूल तथा अन्य सरकारी पाठ्यक्रमों के अनुसार शिक्षण होने लगा। महर्षि द्वारा निर्धारित पाठविधि को अपने विशुद्ध रूप में शायद ही किसी गुरुकुल में अपनाया गया हो। अनार्ष ग्रन्थों का पठन-पाठन भी कुछ अपवादों को छोड़ कर सर्वत्र होता रहा। आज आर्ष पठन-पाठन विधि को संरक्षण देने वाले गुरुकुल बहुत कम रह गये हैं। कन्या शिक्षण के लिए गुरुकुल देहरादून, गुरुकुल हाथरस, नरेला तथा बड़ौदा के कन्या महाविद्यालय के नाम उल्लेखनीय हैं। नारी शिक्षा के क्षेत्र में इन संस्थाओं की देन महत्वपूर्ण है।

डी० ए० वी० कालेज लाहौर के अनुकरण पर ही पंजाब तथा अन्य प्रान्तों में भी डी० ए० वी० स्कूलों तथा कालेजों की स्थापना हुई। इनमें सरकारी पाठविधि को ही अपनाया गया है। 'दयानन्द तथा वैदिक' शब्दों की लाज रखने के लिए 'धर्म शिक्षा' की व्यवस्था भी रहती है। परन्तु यह धर्म शिक्षा का पठन-पाठन नितान्त उपेक्षित दिशा में रहता है। दयानन्द कालेजों के संचालन में आर्यसमाज की प्रभूत धन तथा जन शक्ति व्यय होती है। पंजाब की डी० ए० वी० कालेज कमेटी का करोड़ों का वार्षिक बजट होता है। इस कमेटी द्वारा जालन्धर, अमृतसर, अम्बाला, शोलापुर, दिल्ली आदि नगरों में शिक्षण कालेजों का संचालन होता है। इसी प्रकार कानपुर का दयानन्द कालेज उत्तर प्रदेश का सबसे बड़ा कालेज

(शेष पृष्ठ ७ पर)

# आर्य मार्तण्ड

अजमेर कार्तिक शु० ६ सं० २०२६ वि० दिनांक १५ नवम्बर सन् १९६९


# आत्म-चिन्तन करें !

"हम कौन थे ? क्या हो गये ?

फिर और क्या होंगें अभी,

आओ विचारें बैठ करके।

ये समस्यायें सभी ॥

—गुप्त

हम प्रतिवर्ष महर्षि दयानन्दजी का निर्वाण दिवस मनाकर राष्ट्रोद्धारक उस महान सन्त के प्रति अपनी हार्दिक श्रद्धाञ्जलि समर्पित करते हैं। आज नहीं, यह क्रम वर्षों से निरन्तर अबाध गति से चल रहा है। किन्तु जब हम अपनी पूर्वापर परिस्थितियों पर दृष्टिपात कर वास्तविक स्थिति का सिंहावलोकन करते हैं, तो घोर निराशा होती है। महर्षि दयानन्द ने समस्त मानव जाति को एक एकेश्वरवाद का 'सत्यं शिवं सुन्दर सन्देश देकर पावन पथ प्रदर्शित किया। पथ भ्रष्ट बिखरी-विश्रृंखलित मानव जाति को वैदिक धर्म के झण्डे के नीचे संगठित करने का अनुपम प्रयास किया, और विश्व-बन्धुत्व का आदर्श स्वरूप सम्मुख रख हमारी संस्कृति, स्वाभिमान को जागृत कर हमें सुप्तावस्था से जगाकर अपने स्वरूप और बल पौरुष का भान कराया। यही नहीं "वेदोऽखिलो धर्म मूलम्" के मन्त्र द्वारा संसार को एक अद्वितीय पथ प्रदर्शित कर 'कृण्वन्तो विश्वमार्यम्' का संदेश दिया। विघटन, विनाश तथा विरोध को सदा के लिए समाप्त कर सत्य ज्ञान के प्रकाश और महान् संगठन के द्वारा राष्ट्र को नव जीवन दान देकर सुख-शांति और एकता का मार्ग दिखाया, किन्तु क्या अब हम उस ऋषि के आदर्शों पर चल रहे हैं ? क्या हम त्याग-तप के पावन पाथ से इस वैदिक-धर्म-मूल का सिंचन कर उसे सुफलित-सुपुष्पित करने में वास्तव में सक्रिय तत्पर हैं ? यदि उस महान् सन्त की निर्वाण-स्मृति मेला में हम इतना ही आत्म चिन्तन कर अपना भावी कार्यक्रम निश्चित कर महर्षि के अधूरे स्वप्न को साकार करने का दृढ़ व्रत लेकर तन-मन-धन और मन-वचन कर्म से उसको पूरा करने में तत्पर हो जांय, तो हम वास्तव में ऋषि भक्त कहलाने के अधिकारी हैं, अन्यथा हम न केवल ऋषि की दिवंगत आत्मा को ही धोखा देते हैं, अपितु अपनी आत्मा के साथ भी प्रवंचना कर स्वतः विनाश के गर्त में गिरने जा रहे हैं।

स्वतन्त्रता प्राप्ति से पूर्व जो हमने प्रचार संगठन का पुण्यार्जन किया, उसी अर्जित सम्पत्ति का आर्यसमाज आज उपभोग कर रहा है। उसने इन बाईस वर्षों में कोई नवीन प्रगति की हो, ऐसा हमें दृष्टि गोचर नहीं होता।

अतः आर्य पुरुषों ! यदि महर्षि दयानन्दजी के महान् उपकारों और कार्यों के प्रति कुछ भी हृदय में श्रद्धा और कृतज्ञता का भाव है, तो धर्म, समाज और राष्ट्र के नाम पर आज सत्यव्रत धारण करो, कि हम ऋषि की वसीयत को पूरा करने में हृदय से जान की बाजी लगाकर अवश्य सन्नद्ध होंगे। और जन-जन में ऋषि का सत्य ज्ञान का वैदिक संदेश पहुंचाने में अपनी सम्पूर्ण शक्ति लगा देंगे। हम आर्य समाज और वैदिक धर्म से अधिक किसी को भी महत्व नहीं देंगे। द्वेष-पद-लिप्सा दल-बन्दी और स्वार्थ परता की संक्रामक व्याधि से आर्यसमाज को मुक्त करने में महर्षि दयानन्द और श्रद्धानन्द के समान हलाहल विषपान कर, गोलियों की बौछार का स्वागत कर ऋषि के अमर ज्ञान को विश्व के कोने २ में पहुंचायेंगे।

यदि इस ऋषि निर्वाण दिवस पर आयोजित ऋषि मेला के शुभावसर पर एकत्रित आर्य जनता ने यह सत्य संकल्प लेकर तदनुकूल आचरण भी प्रारम्भ कर दिया, तो निश्चय ही आर्यसमाज आर्य जाति, वैदिक धर्म और भारत राष्ट्र की सर्वांगीण समुन्नति, सुरक्षा, सम्पन्नता और समृद्धि में सफल सिद्ध होगा। आज विदेशी अराष्ट्रीय तत्वों को भयंकर झञ्झावात और मृग मरीचिका से राष्ट्र का जन मानस त्रस्त एवं पथ-भ्रष्ट हैं। इन सभी आपत्तियों और संकटों से राष्ट्र की रक्षा करके युग धर्म और सुपथ प्रदर्शन में आर्य बन्धुओं ने निःस्वार्थ भाव से सक्रिय तत्पर हो जाने का इस अवसर पर दृढ़ व्रत किया, तो यही महर्षि दयानन्द के महान् ऋणों और उपकारों के प्रति हमारी वास्तविक श्रद्धाञ्जलि होगी और तभी इस महान् सम्मेलन का शुभायोजन भी सार्थक सिद्ध होगा।

आशा है आर्य बन्धु ऋषि की इस धरोहर आर्यसमाज के संगठन और सुरक्षा में अपनी सम्पूर्ण शक्ति लगाकर 'कृण्वन्तो विश्वमार्यम्' को सत्य चरितार्थ करने में अपने कर्तव्य और उत्तरदायित्व को अवश्य पूरा करेंगे, और यही वैदिक धर्म तथा आर्य समाज की सच्ची सेवा ऋषि के महान् ऋण से हमें उऋण कर सकेगी।

## सूचना

आर्यसमाज बास मन्दिर शिवगंज के लिये एक अध्यापिका की आवश्यकता है। आर्य सिद्धान्तों को मानने वाली, मोन्टेसरी ट्रेन्ड अवकाश प्राप्त हो और कार्य करने की क्षमता रखती हो, तो वह भी स्वीकार की जा सकती है।

पत्र व्यवहार करें:—
मंत्री आर्यसमाज शिवगंज
महर्षि दयानन्द मार्ग,
शिवगंज (सिरोहीराज०)

## प्रान्त के आर्यसमाजों के अधिकारियों से निवेदन

अकसर सभा कार्यालय में जो समाजों के पदाधिकारियों के निर्वाचनों की सूचनायें "आर्य मार्तण्ड" में प्रकाशनार्थ आती हैं उनमें अधिकारियों के नामों के आगे जन्मगत जाति तथा कभी २ तो 'जैन', 'वैष्णव' आदि शब्द भी लगा रहता है। पता नहीं जो अपने को जैन या वैष्णव नाम से अभिहित करते हैं, वे आर्यसमाज के सदस्य तथा पदाधिकारी कैसे चुन लिये जाते हैं। अतः समाजों से निवेदन है कि निर्वाचनों की सूचना भेजते समय आर्यपुरुषों के नामों के आगे ऐसे विशेषण न लगावें। एक ओर अपने आपको जैन या वैष्णव कहना और दूसरी ओर आर्यसमाजी बताना वदतोव्याघात (Self Contradiction) दोष है। जन्म सूचक जाति लगाना भी आर्यपुरुषों के लिये वांछनीय नहीं है। भवानीलाल भारतीय,

मन्त्री, सभा

## हरिजनों के ग्राम में देवी पर पशु-बलि बंद

दिनांक १९-१०-६९ को आर्यसमाज ब्यावर के वार्षिकोत्सव समय अर्द्धरात्रि को श्री अमरचन्द जी जैन सरपंच ग्राम शाहपुरा द्वारा यह सूचित किये जाने पर कि ग्राम बलाई खेडा में विजया-दशमी के दिन मूक एवं निर्दोष पशुओं की कालका देवी के समक्ष बलि चढ़ाई जाती है, उसे बन्द किये जाने हेतु आर्यसमाजी कार्यकर्ताओं का वहां जाना आवश्यक है। आर्यसमाज ब्यावर के कार्यकर्ता श्री रविदत्त जी वैद्य, श्री सूरजमल जी त्यागी, श्री ओमप्रकाश जी कंवर, श्री प्रेमराज जी आर्य, श्री हरिदेवजी आर्य, सभा मन्त्री डा० भवानीलाल जी भारतीय के साथ अर्द्धरात्रि के पश्चात् उक्त ग्राम में पहुंचे। तुरन्त ही ग्रामवासियों से सम्पर्क किया गया तथा देवी के स्थान पर बलि देने वाले भोपों को बुलाया गया। भोपा पन्नाजी, गोपाजी, हजारीजी तथा मेघाजी को समझा बुझाकर प्रेरित किया गया कि वे इस अमानुषिक एवं निन्दनीय हिंसा कृत्य से दूर रहें। फलतः यह दूषित प्रथा जो वर्षों से प्रचलित थी बन्द हो गई। सर-पंच महाशय विशेष धन्यवाद के पात्र हैं।

—संवाददाता

## आर्यसमाज मल्हार गंज, इन्दौर का उत्सव

आर्यसमाज मल्हार गंज, इन्दौर का उत्सव दिनांक २४ अक्टूबर से २७ अक्टूबर ६९ तक अत्यन्त हर्ष एवं उल्लास के वातावरण में सम्पन्न हुआ। बाहर से पधारने वाले उपदेशकों में आचार्य वैद्यनाथजी शास्त्री, दिल्ली, डा० भवानीलाल जी भारतीय, मन्त्री, आर्य प्रतिनिधि सभा, राजस्थान तथा श्री पन्नालालजी पीयूष सङ्गीताचार्य का नाम उल्लेखनीय हैं।, सायंकालीन सभा सुभाष चौक में होती थी, जिसमें डा० भारतीय जी के महर्षि दयानन्द और आर्य समाज विषयक प्रेरणादायी भाषण होते रहे। डा० भारतीय का एक विशेष भाषण आर्यसमाज संयोगिता गंज के रविवासरीय सत्सङ्ग में भी हुआ। उत्सव की सफलता के लिये समाज के प्रधान डा० उदयभानुजी तथा मन्त्री श्री हरिचरणलालजी वर्मा बधाई के पात्र हैं।

—संवाददाता

# दयानंद के राजनैतिक विचार

लेखक—श्री मधुदेवजी "अजय" इन्दौर

१३ वी शताब्दी के भारतीय इतिहास में जितने भी महापुरुष हो चुके हैं, उनमें महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती का नाम अत्यन्त आदर के साथ लिया जाता है। स्वामीजी ने यद्यपि धार्मिक कार्यों में आजीवन रुचि ली, परन्तु राजनीतिक द्रष्टा के रूप में उन्होंने उल्लेखनीय कार्य किया। उनके धार्मिक एवं राष्ट्रीय विचारों की सुन्दर झलक "ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका" और "सत्यार्थप्रकाश" में दिखलाई पड़ती है। ऋषिवर ने अपने राजनैतिक विचारों को स्पष्ट रूप से प्रकट करने के लिए सत्यार्थप्रकाश में छठा समुल्लास विस्तृत रूप से लिखा है।

महर्षि महान् देशभक्त एवं उच्च कोटि के राजनीतिज्ञ थे। वे अपने देश को परतन्त्र देखकर अत्यन्त दुःखी थे। उन्होंने अपनी आँखों के सम्मुख सन् १८५७ का प्रथम स्वतन्त्रता संग्राम निर्दयता-पूर्वक कुचलते हुए देखा था। देश की स्वाधीनता के लिए देशभक्त वीरों को फाँसी के झूले पर झूलते हुए वह देख रहे थे। परन्तु क्या करें, वे विवश थे। ऋषिवर निराशावादी नहीं थे, उन्होंने अपने ढंग से देश में धार्मिक पुनर्जागृति करने का महत्व कार्य सम्पन्न किया। यह आत्मविश्वास पूर्वक कहा जा सकता है कि वे इस पुनर्जागृति में सफल भी हुए। उन्होंने अपने राजनैतिक विचारों को वैदिक ज्ञान पर आधारित किया था।

तत्कालीन भारत मे सामाजिक तथा धार्मिक एकता स्थापित करने के लिए उन्होने राष्ट्रीय स्तर पर सन् १८७७ ई० में दिल्ली मे एक सम्मेलन बुलाया परन्तु दुर्भाग्यवश वह सम्मेलन सम्भव न हो सका। वे इस पर भी निराश न हुए और उन्होने देशवासियो में आत्म विश्वास तथा स्वाभिमान उत्पन्न करने का आन्दोलन प्रारम्भ किया। उन्होने अपने आन्दोलन का एकमात्र आधार भारतीय संस्कृति एव सभ्यता की रक्षा। भारत का प्रशंसा करते हुए "सत्यार्थप्रकाश" के ग्यारहवें सम्मुल्लास में उन्होंने लिखा है।

यह आर्यावर्त देश कैसा सुन्दर और उपजाऊ है। यहा की जलवायु कितनी उत्कृष्ट है। इसमें छः ऋतुए होती हैं और कितने सुन्दर क्रम से उनका आयोजन है। यहा के निवासियो को 'देव' अर्थात् विद्वान् कहा जाता था, इसीलिए गङ्गा को 'देव-नदी' नाम दिया गया। जितनी विद्या भूगोल में फैली है, वह सब आर्यावर्त देश से मिश्र वालों, उनसे यूनानी, उनसे रूस और उनसे यूरोप देशों मे, उनसे अमेरिका आदि देशो मे फैली है। इस देश की प्राकृतिक सम्पदा की मुक्त कण्ठ से प्रशंसा करते हुए वे लिखते हैं।

"यह आर्यावर्त देश ऐसा है कि जिसके सदृश भूगोल में दूसरा कोई देश नहीं है। इसलिये इस भूमि का नाम स्वर्ण भूमि है, क्योंकि यही सुवर्णादि रत्नों को उत्पन्न करती है। जितने भूगोल में देश हैं, वे सब इस देश की प्रशंसा करते और आशा रखते हैं कि पारस-मणि पत्थर सुना जाता है, वह बात तो झूठी है, परन्तु आर्यावर्त देश ही सच्चा पारसमणि है, जिसको लोहे रूप दरिद्र विदेशी छूने के साथ ही सुवर्ण अर्थात् धनाढ्य हो जाते हैं।"

उन्हें देश के परतन्त्र होने के कारणों का भली-भांति ज्ञान था। उनके विचारानुसार यदि भारतीयों में एकता होती और यदि उन्होंने अपने धार्मिक सामाजिक तथा आर्थिक आदर्शों को दृष्टि से ओझल न किया होता, तो यह देश दूरस्थ समुद्रतटीय जातियों का गुलाम न बन पाता। वे हृदय से राष्ट्रीय एकता चाहते थे और उन्होंने इस एकता के लिये अहिंसक एवं असहयोगात्मक आन्दोलन चलाया। यद्यपि वे प्रत्यक्ष रूप से किसी भी राजनैतिक मंच पर उपस्थित न हुए, परन्तु उन्होंने अप्रत्यक्ष रूप से अपने इस आन्दोलन को जारी रखा। वे भाषा तथा मत अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता के प्रबल समर्थक थे। उनका कथन था कि "सत्य प्रकट करते समय किसी भी व्यक्ति से भयभीत नहीं होना चाहिए। ऋषि प्रवर ने तत्कालीन राज्यसत्ता एवं शासकों की बिना चिंता किये उनके संकीर्ण विचारों की खुलकर आलोचना की। इसके अतिरिक्त उन्होंने देशवासियों के सम्मुख शासक, प्रजा, विधान और शासन शैली सम्बन्धी विचार प्रस्तुत किये।

उन्होंने वेदों के आधार पर यह घोषित किया कि सत्ता जनता में ही अधिष्ठित होना चाहिए। उनका कथन है कि राजा अर्थात् सभापति को स्वाधीन नहीं होना चाहिए, क्योंकि सम्पूर्ण सत्ता एक व्यक्ति में केन्द्रित नहीं होना चाहिए। उन्होंने सत्यार्थप्रकाश के छठे समुल्लास में लिखा जो प्रजा से स्वतन्त्र स्वाधीन राजवर्ग रहे, तो वे राज्य में प्रवेश कर के प्रजा का नाश किया करेंगे, इसलिए अकेला राजा स्वाधीन अथवा उन्मुक्त होकर प्रजा का नाशक होता है। अर्थात वह राजा प्रजा को खाये जाता है। इसलिए किसी एक को राज्य में स्वाधीन न करना चाहिए। वे यजुर्वेद के नवें अध्याय के चालीसवें मन्त्र को आधार बनाकर सभापति अर्थात् राष्ट्रपति के विषय में कहते हैं—हे विद्वानों। राजा, प्रजाजनो! तुम इस प्रकार के पुरुष को बड़े चक्रवर्ती राज्य, सबसे बड़े होने, बड़े-बड़े विद्वानों से युक्त राज्य पालने एवं परम ऐश्वर्ययुक्त राज्य और धर्म के पालन के लिए सम्मति कर के सर्वत्र पक्षपात-रहित, पूर्ण विद्या, विनययुक्त, सब के मित्र सभापति राजा को सर्वाधीश बनाकर सब भूगोल को शत्रु रहित करो। ऋषि दयानन्द की इस पुनीत भावना प्रयास वर्तमान राष्ट्रसंघ है।

वे राजा और प्रजा के सम्बन्धों पर प्रकाश डालते हुए कहते हैं—प्रजा के धनाढ्य, आरोग्य, खानपान आदि से सम्पन्न रहने पर राजा की बड़ी उन्नति होती है।

सार्वजनिक कार्य को सुचारु रूप से चलाने के लिए वे तीन प्रकार की सभाओं को आवश्यक मानते हैं, प्रथम विद्यार्य सभा, द्वितीय धर्म सभा और तृतीय राजसभा। इन सभाओं में क्रमशः बड़े बड़े विद्वान् एवम् शिक्षाविद, विज्ञ, धार्मिक, विद्वान्, आचार्य-वर्ग तथा विद्वान् राजनीतिज्ञों एवम् कुशल शासकों को सम्मिलित करते हैं। महर्षि सभापति के कर्तव्यों के विषय में बलपूर्वक कहते हैं कि उसे संधि अर्थात् मित्रता, विरोध अर्थात् युद्ध, स्थान अर्थात् स्थिति एवं समय को देखकर चुप रहना, समुद्रयम, अर्थात् अपनी शक्ति बढ़ने पर दुष्ट शत्रु पर आक्रमण, द्विधा अर्थात् मूल राजसेना और कोषादि की रक्षा तथा सम्यप्रशमनाशी अर्थात् जो जो देश प्राप्त हों, उसे शान्ति स्थापना इन छः बातों पर बल देना चाहिए।

महर्षि दयानन्द ने "युद्ध नीति" के विषय में भी महत्वपूर्ण विचार प्रकट किए हैं। वे युद्ध में कतिपय-नैतिक-नियमों के परिपालन के घोर समर्थक हैं। युद्ध नीति के विषय में महर्षि दयानन्द सत्यार्थ प्रकाश के छठे सम्मुल्लास में लिखते हैं—युद्ध समय में न इधर उधर खड़े, नपुंसक, न हाथ जोड़े हुये, न जिसके सिर के बाल खुल गये हों, न बैठे हुए, न मैं तेरी शरण में हूं, ऐसे को न सोते हुए, न मूर्छा को प्राप्त हुए, न नग्न हुए; न आयुध के प्रहार से पीड़ा को प्राप्त हुए, न दुःखी, न अत्यन्त घायल, न डरे हुए और पलायन करते हुए पुरुष को सत्पुरुषों के धर्म का स्मरण करते हुए योद्धा लोग कभी मारें। किन्तु उनको पकड़ कर जो अच्छी बन्दी हों, बन्दीगृह में रख दें और भोजन आच्छादन यथावत देवें और जो उनके योग्य काम हो, विशेष इस पर ध्यान रखें कि स्त्री, बालक, वृद्ध और आतुर तथा शोक युक्त पुरुषों पर शस्त्र कभी न चलावें। उनके लड़के बालों को अपनी सन्तानवत पालें और उनकी स्त्रियों को पालें। उनको अपनी बहिन और कन्या के समान समझें, कभी विषयासक्त की दृष्टि से भी न देखें।

इस प्रकार स्पष्ट ज्ञात होता है कि ऋषिवर विश्व में युद्धों में एक नैतिक बल लाना चाहते हैं। इसका यह अर्थ नहीं कि वे युद्ध-प्रिय थे। वे युद्धों के कारण साम्राज्य लिप्सा नहीं; अपितु वैयक्तिक एवं सामाजिक स्वतन्त्रता स्थापित करने के समर्थक थे। यद्यपि महर्षि दयानन्द के जीवन काल में लीग आफ नेशन्स अथवा संयुक्त राष्ट्र संघ की स्थापना नहीं हुई थी, परन्तु वे भी एक सार्वभौमिक राज्य चाहते थे। उन्होंने अपने अनेक ग्रन्थों में जिस "चक्रवर्ती साम्राज्य" की चर्चा बारम्बार की है, उसमें ऋषिवर की यह भावना दिखलाई पड़ती है।

आज विश्व को भारतीय राजनीति के मौलिक तत्वों की नितांत आवश्यकता है। आधुनिक भारतीय समाज में न तो स्वस्थ राजनीतिक तत्व ही प्रवेश कर पा रहे हैं और न सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति में विशेष सुधार हो रहा है। इन सारी बातों को ध्यान में रखते हुए विवश होकर यह स्वीकार करना पड़ता है कि महर्षि दयानन्द ने अपने मौलिक चिन्तन के आधार पर विश्व को जो कुछ दिया है, उसका अधिकाधिक प्रचार किया जाना चाहिए।

धार्मिक जगत् के अद्वितीय प्रकाश स्तम्भ—

# महर्षि दयानन्द सरस्वती

लेखक—श्री पण्डित रामचन्द्रजी आर्य मुसाफिर, अजमेर

कहते है कि विशाल जल-राशि-भण्डार समुद्रो मे यत्र तत्र बुद्धिमान मनुष्यों ने प्रकाश स्तम्भ बना रखे है, जिनका प्रयोजन यह है कि सामुद्रिक यात्रा करने वाले यात्रियों को अपने गन्तव्य मार्ग का सही ज्ञान हो सके।

समुद्रों में समय २ पर बडे बडे तूफान आया करते है, जो बात की बात मे जहाजो को कहीं का कहीं पहुचा देते है, यहीं तक नहीं बल्कि जहाज के कप्तान की थोडी भी असावधानी से सारा का सारा जहाज कभी २ विशाल जल राशि मे विलीन हो जाता था, जिससे धन जन की अपूरणीय एव निरानुमानित क्षति हो जाया करती थी। जब से ये प्रकाश स्तम्भ समुद्रों में लगाये गये हैं तब से इस खतरे से मनुष्य बहुत कुछ बच गया है।

ठीक इसी प्रकार धार्मिक जगत् मे महर्षि दयानन्दजी सरस्वती महाराज भी १९ वीं शताब्दि के अद्वितीय और अभूतपूर्व प्रकाश स्तम्भ थे।

स्वामीजी से पूर्व हिन्दू जाति लगभग एक हजार से भी अधिक टुकडो मे बंटी हुई थी, जो मत पथ, सम्प्रदाय, गुरु अखाडे द्वैत अद्वैत, विशिष्टाद्वैत, गद्दी, मन्दिर, मठो, गिरि, पुरी, उदासी, गुसाई आदि के नामो में विभाजित थी। चार वर्णों के स्थान पर प्रान्त पेशे आदि से भी अनेक प्रकार के ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य और शूद्र (सेवक वर्ग) वर्ग विभाजित हो गये थे, समस्त विश्व के मनुष्य यह जानते हुए भी कि इस भूगोल खगोल का विधाता एक ही ईश्वर है, यदि एक न होता तो मनुष्य पशु पक्षियो, जड तथा चेतन सृष्टि मे जहाँ तहाँ विभिन्नता पाई जाती।

किन्तु फिर भी अज्ञानता वश जन समूह के मिथ्या ज्ञानी गुरुजनों ने उसे स्वार्थ वश ब्रह्मा, विष्णु, महेश शकर, दुर्गा, काली, खुदा, अल्लाह, रहमान, रहीम, यहोवा आदि नामो से भिन्न २ शक्तियो वाला बताकर उसमे विभेद पैदा कर दिये, जिससे केवल मुसलमानो में ३०० सो से अधिक फिर्के हो गये, इसी प्रकार ईसाइयों मे भी अनेक भेद हो गये। उपरोक्त सारे मजहब वालों की ईश्वर भक्ति के तौर तरीके भी भिन्न २ ही थे। जब कभी ये लोग किसी बात पर आपस में टकरा जाते थे तो खून की नदियाँ बह जाती थी और वह लोमहर्षक काण्ड हो जाता था कि कठोर से कठोर दिल रखने वाला व्यक्ति भी उस नजारे को देखकर रो देता था। उसे इससे छुटकारा पाने का कोई उपाय न सूझता था कौन नही जानता हिन्दुओ के सैकडों मन्दिर थ जिनमे सब देवता पृथक २ पधराये हुए थे, एक का दूसरे से कोई सम्बन्ध न था, पुजारियो की वेशभूषा तक भिन्न थी। यही दशा ईसाई मुसलमानो में भी थी, एक दूसरे के पूजागृहो में भिन्न विचार वाला पूजा नहीं कर सकता था, लखनऊ के शिया, सुन्नियों के झगडे और लडाई इसके प्रमाण हैं। इन लोगों में जो द्वन्द्व युद्ध दोनों प्रकार के मुसलमानों मे होता था, उसे देखकर कहना पडता था कि यह अशरफुल मखलूकात (सभ्य पुरुषो का समूह) मानने वालो की जमात नही बल्कि सिंह, चीते, भेडियो का समूह है जिनमें उन्स (प्रेम) का निशान तक न था, जो अपने मजहबी अन्धेपन मे आकर मा बहिन बेटियो तक की हत्या करना मजहबी फर्ज अदा करना समझते थे। अगरचे यह वहशियाना पन मुसलमान भाइयो में अभी तक भी मौजूद है जो गैर मुसलमानों के साथ चाहें वह कितना ही नेक, शरीफ क्यो न हो अभद्र व्यवहार करते हैं। आये दिन के साम्प्रदायिक दगे इस बात के प्रमाण हैं।

जिनमें पूजागृहो को नष्ट करके बहिन बेटियो और मासूम बच्चों तक के खून में हाथ रंगकर मजहबी अन्धेपन की प्यास बुझाई जाती है। महर्षि दयानन्दजी का हृदय ससार के मनुष्य समाज की उपरोक्त दशा को देखकर अत्यन्त ही दुखी हुआ वे सारी सारी रात जागकर जबकि संसार गहरी निद्रा मे सोता था उठ उठकर चिन्ता ग्रस्त हो आत्म चिन्तन किया करते थे, ऋषि २४ घंटे की समाधि लगाकर इस संसार से गोता लगा जगत् पति प्रभु की गोद में जा विराजा करते थे, किन्तु जब समाधि से जाग्रत होते थे तो पतनोन्मुख मनुष्य समाज को देखकर दु खोदधि मे डूब जाते थे, अन्त मे प्रभु परमात्मा ने उन्हे आत्मिक शक्ति प्रदान की और वे डेढ अरब विश्व के जन-समूह के समक्ष सन्मार्ग दिखाने को कमर कसकर खडे हुए।

विश्व के समस्त मत मतान्तरों के धर्म गुरुओं नेताओ को उन्होने चेलेंज किया और सबके मनो की विद्या, बुद्धि विज्ञान, विरुद्ध बातो का दिग्दर्शन कराया, फलत बडे २ विद्वान् पडित, साधु सन्त, मठाधीश मौलवी पादरी अपने २ मजहबों की वकालत करने स्वामीजी के सन्मुख आये। किन्तु महर्षि की युक्तियुक्त और तर्क सम्मत वक्तृता से मन्त्र मुग्ध हो अपने २ धर्म की बातो को तर्क सम्मत लेकर परखना प्रारम्भ किया। तत्कालीन श्री पादरी टी जे स्काट साहब श्री सरसैय्यद अहमद खा साहब व बगाल के श्री महर्षि देवेन्द्रनाथ इत्यादि ने अपने मजहबी घर का कूडा कचरा साफ करने की ठानी। पादरी साहब ने बाइबिल का तथा सरसैय्यद साहब ने कुरान शरीफ का विद्या, बुद्धि विज्ञान सम्य अनुवाद किये। आज स्थिति यह है कि जो हिन्दू कभी पास भी एक दूसरे के न बैठते थे। दो वर्ष हुए समस्त हिन्दू धर्म के प्रमुख आचार्य लोग तीर्थराज प्रयाग मे त्रिवेणी के सगम पर उपस्थित हो विश्व हिन्दू परिषद की स्थापना करते हैं और गैर हिन्दुओ को मन्त्र गायत्री और गौ का महत्व बताकर ससार के आदि धर्म (वैदिक धर्म मे दीक्षित करने की घोषणा करते हैं, फलत आज इगलैण्ड, मलेशिया आदि देशो मे वेदमतानुयायियो की सख्या प्रतिदिन बढती जा रही है।

इसी प्रकार मुसलमान भाइयो ने भी अपने धर्म ग्रन्थ जिसका सिवा अरबी के दूसरी भाषाओ में पढना गुनाह था, अब उसका अंग्रेजी, इटली, रशिया, हिन्दी आदि भाषाओं में अनुवाद हो रहा है। हिन्दी भाषा मे मक्त बा अल-हसनात रामपुर उ० प्र० ने प्रकाशित किया है। दिल्ली से कान्ति नामक साप्ताहिक पत्र मे इस्लाम में जो विद्या, बुद्धि विज्ञान के विरुद्ध बाते है, उनकी तर्क सम्मत व्याख्या प्रकाशित होने लगी है।

अभी पिछले महीनो में उक्त समाचार पत्र ने अपना वेदांक प्रकाशित किया है, जिसमें वेदमन्त्रों की व्याख्या उससे मिलती जुलती कुरान शरीफ की आयतों की व्याख्या की गई है, यह मतान्धता के मिटने के शुभ लक्षण हैं। उक्त मुसलिम पत्र ने यह भी स्वीकार किया है कि वेद ईश्वर का सर्वप्रथम प्रदत्त ज्ञान है। इसी तरह ईसाई जगत मे भी परिवर्तन हो रहा है। प्रतिवर्ष बाइबिल के विद्वान् एकत्रित हो बाइबिल की आप तो नई नई व्याख्या प्रकाशित करते हैं, जैसे कुवारी मरियम से ईसा की उत्पत्ति, हजरत ईसा का मर कर जी उठना, अधो को आखे देना, मुर्दों का जिलाना इत्यादि बेजोड बातों को युक्तियुक्त तथा बुद्धिगम्य बना रहे हैं। महर्षि दयानन्दजी सरस्वती ने जो ज्ञान-दीप (प्रकाशस्तम्भ) वेद और गुरु दण्डी विरजानन्दजी से प्राप्त किया था। उन्होंने उसे सब साधारण के लाभार्थ 'सत्यार्थप्रकाश" के रूप में रखकर १८८३ ई० की दीपमालिका के दिन हजारों बुझे हुए दीप के रूप मानवों के हृदय के दीपको को प्रज्वलित कर निर्वाणपद प्राप्त कर गये और अपने पीछे वेद-ज्ञान-दीप को जाज्वल्यमान रखने के हेतु आर्य-श्रेष्ठ पुरुषों का समाज-समूह (आर्यसमाज) की स्थापना करके आदेश दे गये कि जब तक सारे ससार से अविद्यान्धकार जहालत, तारीकी नाश न हो जावे किसी भी वैदिक धर्मी आर्य को शान्ति से न बैठना चाहिये। क्या ही अच्छा हो कि आज ऋषि के निर्वाण पर्व पर जले दीपको के प्रकाश मे प्रत्येक ऋषि भक्त भाई बहिन ऋषि के आदेश के पालन की प्रतिज्ञा करे। ओम् शम्

## पावन स्मरण !

ले०—विद्यावाचस्पति गणेश शर्मा "इन्द्र' आगर

दया के महार्णव आनन्दकन्द दयानन्द,
पाखण्डतम खण्डन हेतु प्रचण्ड मार्तण्ड थे।
धर्म की विडम्बना प्रवञ्चना देख भारत मे,
सत्य प्रकाश ले प्रकटे दयानन्द थे।
मत पथ सम्प्रदायों की गोल मोल पोल खोल,
अज्ञान की अमा में प्रभासित ज्यो चन्द थे।
"कृण्वन्तो विश्वमार्यम् की गर्जना सुन अनार्यजन
भागे गयन्द से ज्यो हरि श्री दयानन्द थे।
वेद ज्ञान की कसौटी पर पारखी दयानन्द ने,
परख कर डके की चोट सबको बता दिया।
वैदिक धर्म ही एक मात्र धर्म है मानव का,
चौंका दिया विश्व को, भारत को जगा दिया।
'आर्यसमाज' की स्थापना के दिग्भ्रान्त मानव को,
बांह पकड सीधे मार्ग पर लगा दिया।
समाज के सुधार मे क्रान्ति कर दिखाई और,
बलिवेदी पर अन्त मे प्राण तक चढा दिया।

# दयानन्द दशावतार स्तोत्र

[ हिन्दी के सुप्रसिद्ध लेखक निबन्धकार और कवि भारतेन्दु कालीन प० प्रतापनारायण मिश्र ने महर्षि दयानन्द की वन्दना में एक कविता लिखी थी, जिसमें महर्षि को पुराण वर्णित विष्णु के दसों अवतारों के तुल्य वर्णित किया था। काव्य गुणों की दृष्टि से यह कविता अद्वितीय है। इसका प्रकाशन आज से ६१ वर्ष पूर्व प० पद्मसिंह शर्मा द्वारा सम्पादित परोपकारी मासिक पत्र के वैशाख स० १९६५ वि० के अंक में हुआ था। वहीं से लेकर यह कविता आर्य मार्तण्ड के पाठकों के मनोरञ्जनार्थ यहाँ उद्धृत की जाती है। डा० भवानीलाल भारतीय मन्त्री सभा के सौजन्य से यह प्राचीन कृति उपलब्ध हो सकी है एतदर्थ श्री भारतीय जी धन्यवाद के पात्र हैं। —सम्पादक]

### मत्स्यावतार—

जय जय जय अद्भुत अवतारी।
दयानिधि अमित आनन्द प्रद
सरस्वति जासु हृदय हितकारी।
अतिहि अपार अविद्या निधि में,
लोपे लखि काढ़े श्रुति चारी।
हति निज आलस असुर दियो सुख,
जिन देवन विद्या रहि प्यारी ॥१॥

### कूर्मावतार

बहु संसार सिंधु तें लीन्हें,
चौदह विद्या रत्न निकारी।
को धरि सके महाश्रम मंदर,
सहज जो लियो पीठ पर धारी ॥२॥

### वराहावतार—

कलित दशा-पातालपुरी में,
परी जो भारत भूमि बिचारी।
मारि कुकर्म कनक लोचन कहँ,
सो द्विज देवन हेत उधारी ॥३॥

### नृसिंहावतार—

आपस प्रेम रूप प्रहलादहिं,
जब देख्यो सब भांति दुखारी।
कृपा सिंधु थिर करते हि थाप्यो,
द्वेष-दैत्य को उदर विदारी ॥४॥

### वामनावतार—

आरज-अमरनि दियो राजसुख,
कियो आपनो भेष भिखारी।
बनि सुविवेक ज्ञान बलि इन पर,
देहिजु तन मन धनवारी ॥५॥

### परशुरामावतार—

कल्पित सम्प्रदाय जब बहु विधि,
सहस्रभुजन किये अनरथ भारी।
निज उपदेश परशु तें खण्डन,
किये लोक बिन शोक सुखारी ॥६॥

### रामावतार—

महा अगम्य वेदवारिधि जेहि,
देख पण्डितन गति मति हारी।
जन अनुकम्प हित सुगम कियो सो,
टीका सेतु समान सुधारी ॥७॥

### कृष्णावतार—

सुधी सुमति सरिता में पैठ्यौ,
सर्प सदेह विपुल विषधारो।
ताहि निकारि स्वच्छा करि दीन्हो,
लीन्हों यश दावा दुख टारी ॥८॥

### बुद्धावतार—

पशु बधादि जिन सुधरम समझ्यो
नितहि निदरि शुभ राह संचारी।
परम मरम बूझे बिन इनकी
निंदा करहिं पोप अविचारी ॥९॥

### कल्कि अवतार—

वेद विमुख यवनादि मान मथ
बहुरि नींव सतयुग की डारी।
सब विधि निष्कलङ्क करणी
कर कीरति अति पवित्र विस्तारी ॥
जय जय जय अद्भुत अवतारी ॥

परोपकारी के तत्कालीन सम्पादक समालोचक प्रवर पं. पद्मसिंह शर्मा ने इस कविता पर निम्न टिप्पणी लिखी थी—"इस कविता में कवि ने पुराण प्रसिद्ध विष्णु के दस अवतारों से श्री स्वामीजी महाराज की समता विचित्र रीति से की है। यह बात भी ध्यान में रखने योग्य है कि कवि जी आर्यसामाजिक नहीं थे. तथापि उन्होंने श्री महाराज के प्रति कैसे उच्च भाव प्रकट किये हैं।"

---

## अपील

आल इण्डिया दयानन्द साल्वेशन मिशन होशियारपुर, जो गत ३६ वर्षों से हिन्दू जाति की प्रशंसनीय सेवा कर रहा है, उसके कार्यक्रम का विस्तार क्रियात्मक रूप में अखिल भारत के लगभग समस्त प्रान्तों में हो चुका है। मिशन ने ३१ मार्च, १९६९ तक १००२८८ गैर हिन्दुओं को शुद्ध करके हिन्दू जाति का अङ्ग बनाया और २२०९ हिन्दू देवियों तथा अनाथ बालकों की रक्षा की और लाखों हिन्दुओं को अन्यमतावलम्बी होने से बचाया।

शुद्धि कार्य, वैदिक धर्म का प्रचार तथा रक्षा कार्य के अतिरिक्त मिशन १९६५-६६ तक तरन-तारन जिला अमृतसर में एक धर्मार्थ औषधालय स्थापित करके कुष्ट रोगियों की सेवा अति लगन से कर रहा था। परन्तु सुयोग्य, लगनशील तथा कुष्ट रोग के विशेषज्ञ के अभाव से अब यह औषधालय बन्द है। परन्तु मिशन ने अब कुष्ट रोगियों के बच्चों के लिए एक शिशुगृह स्थापित करने का काफी देर से निश्चय किया हुआ है।

कुष्ट रोगियों में न किसी आर्यसमाजी संस्था ने और न ही किसी अन्य हिन्दू संस्था ने कार्य करने का साहस किया है और न ही इसकी आवश्यकता को अनुभव किया है। परन्तु दूसरी ओर विदेशी ईसाई मिशनरी इन पीड़ित लोगों की बड़ी लग्न से सराहनीय सेवा करते हैं और इनको इस तरह ईसाई बना लेते हैं।

कुष्ट रोगियों को अपने बच्चों को कानून के अनुसार तीन वर्ष की अवस्था होने पर अपने से अलग करना पड़ता है, इस तरह ईसाई मिशनरियों के बिना अन्य कोई ऐसी हिन्दू संस्था नहीं है, जो ऐसे बच्चों को लेकर अपने पास रख सके। इस तरह विदेशी ईसाई मिशनरी सैंकड़ों ही ऐसे बच्चों को प्रति मास ले जाते हैं और उनको अपने आश्रमों में रखते हैं, शिक्षा देते हैं, पालते पोसते हैं और इस तरह वे कट्टर ईसाई बन जाते हैं।

ऐसे बच्चो तथा कुष्ट रोगियों का प्रवाह ईसाईयत में रोकने के लिए मिशन ने कुष्ट रोगियों के बच्चों के लिए एक शिशुगृह तथा इनके इलाजार्थ एक औषधालय स्थापित करने का निश्चय किया है, जिसके लिए भूमि तो ली हुई है, परन्तु धन मिशन के कोष में नहीं है। इसलिए अब यह शिशुगृह बनाने की मिशन की शीघ्रकालीन तथा अत्यन्तावश्यक आवश्यकता है। अब मिशन झटपट शिशुगृह के लिए बिल्डिंग बनाना चाहता है, इसलिए सब शुभचिन्तकों तथा दानी महानुभावों से मैं मिशन की ओर से अपील करता हूँ कि इस पुण्य कार्य के लिए यथाशक्ति अधिक से अधिक दिल खोलकर दान दें, ताकि मिशन ऐसे बच्चों को ईसाइयत का शिकार होने से बचा सके।

राम दास
प्रधान
आल इण्डिया दयानन्द साल्वेशन मिशन,
होश्यारपुर।

## श्रीमती राधारानीजी शर्मा का दान

### सात्विक दान

श्रीमान् पं० ज्वालाप्रसादजी दत्त की सुपुत्री सौ० श्रीमती राधारानीजी ने आपके द्वारा २५) निष्कलंक योगेश्वर श्रीकृष्ण पौराणिकों पढितों को भेंट देने के निमित्त १५) अतिथि सत्कार में ११) सभा को वेद प्रचारार्थ प्रदान किये।

ओम् भक्त

## बांसवाड़ा में एक वनवासी की वानप्रस्थ दीक्षा

दयानन्द सेवाश्रम बांसवाड़ा से प्रेरणा लेकर वनवासी श्री सूरजी भक्त ने विजयादशमी के अवसर पर यज्ञपूर्वक दयानन्द आश्रम बांसवाड़ा में नगर के गण्य-मान्य व्यक्तियों की उपस्थिति में वानप्रस्थ की दीक्षा ग्रहण की। अब आप जिले भर में वनवासियों के बीच धर्म प्रचार का ही कार्य करेंगे। स्वतन्त्रानन्द

## सूचना

श्री सर्वदानन्द साधु आश्रम अलीगढ़ का वार्षिकोत्सव ता० २८, २९, ३० नवम्बर सन् १९६९ ई० तदनुसार अगहन कृष्ण पक्ष ४, ५, ६ दिन शुक्रवार, शनिवार रविवार को होना निश्चित हुआ है आशा है कि श्रीमान्जी इष्ट मित्रों सहित पधार कर उत्सव को सफल बनावेंगे।

मंत्री

## महर्षि दयानन्द काशी शास्त्रार्थ शताब्दी
## २३ दिसम्बर से २८ दिसम्बर तक

(१) महर्षि द्वारा हरिद्वार के कुम्भ के अवसर पर गाड़ी गई पाखण्ड खण्डिनी पताका को भी एक सौ वर्ष हो गये हैं। इसलिये निश्चय किया गया है कि शास्त्रार्थ शताब्दी के साथ साथ (पाखण्ड खण्डिनी पताका शताब्दी) भी मनायी जावेगी। यह सौभाग्य की बात है कि यह घटना भी उत्तर प्रदेश की है। अतः आर्य प्रतिनिधि सभा उत्तरप्रदेश द्वारा उसका आयोजन करना उचित ही होगा।

(२) शताब्दी के लिये धन सग्रह करने के लिये १००), २५), १०), ५), १), रुपयों के नोट छपवाये गये हैं वे सब आर्यसमाजों को शीघ्र हा भेजे जावेंगे यदि आर्यसमाजों से मन्त्री और अन्य सज्जन जो इस कार्य में सहयोग देना चाहें, यह लिखने की कृपा करें कि उनके पास किस २ राशि के कितने २ नोट भेजे जावें, तो अच्छा हो।

(३) वाराणसी में स्वागत समिति का निर्माण हो रहा है उसके कई सौ सदस्य बन चुके हैं एक हजार सदस्य बनाने का लक्ष्य है। वहां के आर्य भाई तथा आर्यसमाजें उत्साह से कार्य कर रही है।

(४) शताब्दी के अवसर पर कई प्रदर्शनियां लगाई जावेंगी। एक प्रदर्शनी में महर्षि दयानन्द के हस्त लिखित ग्रन्थ, उनके खड़ाऊं, वस्त्र आदि रखे जावेंगे। दूसरी में आर्यसमाज से सम्बन्धित साहित्य का प्रदर्शन होगा।

अन्य आकर्षक तथा शिक्षा-प्रद आयोजन करने पर विचार किया जा रहा है, जिसकी सूचना यथा समय दी जावेगी।

महेन्द्र प्रताप शास्त्री
संयोजक

(शेष पृष्ठ २ का)

है, जिसमें सहस्रों की सख्या में छात्र ज्ञानार्जन करते हैं।

सस्कृत शिक्षा में भी आर्यसमाज ने अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया है। सैकड़ों छोटी-बड़ी संस्कृत पाठशालायें आर्यसमाजों मे चलती है। इसी प्रकार प्रौढ़ शिक्षण, रात्रि पाठशालायें तथा दलित वर्ग के लोगों के लिए शिक्षण आदि की विविध प्रवृत्तियो का संचालन कर आर्यसमाज ने शिक्षा कार्य को अत्यधिक प्रगति प्रदान की है। वस्तुतः आर्यसमाज ने शिक्षा प्रचार के क्षेत्र मे जो कार्य किया है वह श्लाघनीय है। FATHER INDIA के लेखक श्री रङ्गा अय्यर ने ठीक ही लिखा है—"Arya Samaj Schools aim at fostering nationalism. Even their critics recognise that they are genuine educational institutions, very different from political mushrooms which non-cooperation called into existence." अर्थात् आर्यसमाज के विद्यालयों का उद्देश्य राष्ट्रीयता को जाग्रत करना है। उनके समालोचक भी यह स्वीकार करते हैं कि वह असहयोग के दिनों में अचानक स्थापित हुए अल्पजीवी राष्ट्रीय स्कूलों से भिन्न वास्तविक शिक्षण संस्थायें हैं।

## आर्यसमाज बूंदी का वार्षिक निर्वाचन

आर्यसमाज बूंदी का निर्वाचन प्रधान श्री नत्थूरामजी ठेकेदार की अध्यक्षता में दिनांक २१-९-६९ को इस प्रकार सम्पन्न हुआ।

प्रधान—श्री रघुवरदयालजी गुप्ता एडवोकेट उपप्रधान—श्री परमात्मासहायजी निवृत्त अतिरिक्त जिलाधीश, मंत्री—श्री मदनमोहनजी जावलिया प्राध्यापक राज० महाविद्यालय, उपमंत्री—श्री मोहनलालजी शर्मा सावर-घटियाली वाले कोषाध्यक्ष—श्री बजरंगसिंहजी अकाउन्टेन्ट रसद विभाग प्रचार मत्री—श्री पं० विद्यासागरजी शास्त्री अधिकारीन पा०, पुस्तकाध्यक्ष—श्री रमेशचन्द्रजी शर्मा प्राध्यापक रसायन विद्वान राज० महावि०अराष्ट्रीय प्रचार निरोध समिति प्रधान—श्री पं० नत्थूराम जी ठेकेदार, अराष्ट्रीय प्रचार निरोध समिति मत्री—श्री रतनलालजी पुरोहित सहा० जीवन बीमा मैनेजर कोटा क्षेत्र, आर्यकुमार सभा अधिष्ठाता—श्री शिवचरणजी गर्ग प्राध्यापक सस्कृत राज० महाविद्यालय, आर्यकुमार सभा कार्यालय सचिव—श्री रामलक्ष्मणजी बी०एस०सी०, आर्य वीर दल अधिष्ठाता—श्री बांके बिहारीलालजी प्राध्यापक भूगोल राज० महाविद्यालय, आर्य वीर दल कार्यालय सचिव—श्री कृष्ण गोपालजी सुपरवाइजर भूमि विकास बैंक।

अन्तरंग सदस्य—श्री चाननमल तुलसीदास श्री चाननमल लद्दारामजी, श्री पं० नत्थूरामजी, श्री रतनलालजी पुरोहित श्री मिचूंमलजी सहजवानी प्राध्यापक-भौतिक शास्त्र, श्री रमेशजी सत्यार्थी प्राध्यापक चित्रकला, श्री सुशीलकुमारजी, श्री पीताम्बरलालजी पटवारी, श्री रामलक्ष्मणजी, शर्मा, श्री कन्हैयालालजी कौशिक, श्री पं० भंवरलालजी तिलांट्ट, श्री ज्ञानेशजी माथुर, श्री किशनस्वरूपजी ठेकेदार श्री जगन्नाथजी पेंटर।

मदनमोहन जावलिया
मंत्री

## शोक !

आर्य जगत् में यह समाचार बड़े खेद के साथ सुना जावेगा कि बांरा (जिला कोटा) के श्री पूज्य मांगीलालजी आर्य वानप्रस्थी का स्वर्गवास हो गया। आपने अपने काल में समाज की बड़ी सेवायें की हैं। आपका प्रचार विज्ञापनों द्वारा हुआ करता था।

आपने अपने पीछे पुत्री शान्ती जी जो कन्या गुरुकुल हाथरस की स्नातिका हैं, छोड़ी है।

परमात्मा दिवंगत आत्मा को शान्ति व सद्गति प्रदान करे।



## ओ३म्-ध्वज फहराओ !

श्री प० रामभजन मिश्र, प्रभाकर: अजमेर

लहर लहर लहराओ,
फहर फहर फहराओ,
लहर लहर लहराओ ओ३म् ध्वज,
लहर लहर लहराओ,
फहर-फहर फहराओ ओ३म् ध्वज,
फहर फहर फहराओ।

आर्यों की यह विमल पताका,
गौरव, गरिमा, ज्ञान, पताका,
महा-काल अरिदल का बांका,
इसके ही आश्रय में आकर,
अभय-अमर हो जाओ।

इसमें ही वेदों की वानी,
सत्य, त्याग, तप का वरदानी,
आर्य जाति की अमर निशानी,
घर-घर में नित साम-गान की,
ध्वनियां मधुर गुंजाओ ॥ल०

"कृण्वन्तो विश्वमार्यम्" त्राता,
प्रेम सुधा - रस धार बहाता,
साम्य-सुमन जन-मन विकसाता,
सुखद-सुयश सौरभ को जल-थल,
अम्बर तक फैलाओ ॥

राम - कृष्ण - सीता - बजरंगी,
वीर प्रताप शिवा वैरागी,
ऋषिवर दयानन्द से त्यागी,
का पावन संदेश सङ्ग ले,
दिग-दिगन्त छा जाओ।

लहर लहर लहराओ ओ३म् ध्वज,
फहर फहर फहराओ ॥

## जोधपुर में प्रचार

मैं जोधपुर निवास समय में आर्य समाज सरदारपुरा के साप्ताहिक अधिवेशनों और महिला आर्यसमाज के सोमवार साप्ताहिक अधिवेशनों में वेदोपदेश करता रहा। महिला समाज का कार्य ठीक चल रहा है। ओम् भक्त

## श्री मोतीलालजी टांक के गृह पर यज्ञ

आपके सुपुत्र श्री पीयूषकुमारजी टांक बी. काम के जन्म दिवस के उपलक्ष्य में १९-१०-६९ को एक विशेष यज्ञ मेरे आचार्यत्व में सम्पन्न हुआ इस अवसर पर नगर के कई प्रतिष्ठित सज्जन पधारे। यज्ञ के पश्चात् मेरा वेदोप्रदेश हुआ। इस शुभ अवसर पर आपने ५०) रु० भिन्न २ सस्थाओं को दान दिया आ० प्र० सभा राजस्थान को भी ५) प्रदान किये। —ओमभक्त वानप्रस्थ

# अजमेर में भव्य ऋषि मेला !

## ऋषि-निर्वाण दिवस पर ऋषि की निर्वाणस्थली अजमेर में दि. १४, १५ और १६ नवम्बर सन् ६९ को हो रहा है।

परोपकारिणी सभा के तत्वावधान में महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती के ८६ वें निर्वाण दिवस पर इस वर्ष ऋषि मेला दिनांक १० नवम्बर से १६ नवम्बर तक ऋषि उद्यान, पुष्कर रोड, अजमेर में समारोह पूर्वक मनाया जा रहा है।

### यजुर्वेद पारायण यज्ञ

दिनांक १० नवम्बर से यजुर्वेद पारायण यज्ञ आचार्य कृष्णजी के आचार्यत्व में दिनांक १६ नवम्बर तक चलेगा।

### कवि सम्मेलन

कार्तिक शुक्ला ५ शुक्रवार दिनांक १४ नवम्बर को सायंकाल कवि सम्मेलन हुआ। जिसमें ऋषि दयानन्द व आर्यसमाज सम्बन्धी सरस रचनाएं प्रसिद्ध कवियों द्वारा प्रस्तुत की गई।

### वाद विवाद-प्रतियोगिता

दिनांक १४ व १५ नवम्बर को मध्याह्न में वाद विवाद-प्रतियोगिता स्कूल व कालेज के छात्र छात्राओं के लिए है। दिनांक १४ नवम्बर १९६९ शुक्रवार, को मध्याह्नोत्तर २ बजे हाई स्कूल, उच्चतर माध्यमिक विद्यालय स्तर के छात्र-छात्राओं के लिए। (स्थान ऋषि उद्यान) विषय—

"विश्व की समस्त समस्याओं का समाधान अहिंसा से ही सम्भव है।"

### अराष्ट्रीय ईसाई प्रचार निरोध सम्मेलन

दिनांक १५ नवम्बर को मध्याह्न में अराष्ट्रीय ईसाई प्रचार निरोध सम्मेलन श्री डा० राजबहादुर जी के सभापतित्व में होगा।

दिनांक १५ नवम्बर १९६९ शनिवार को मध्याह्नोत्तर ४ बजे कालेज व गुरुकुल महाविद्यालय के छात्र तथा छात्राओं के लिए (स्थान ऋषि उद्यान) विषय:—

"संस्कृति का विकास धर्म में ही निहित है।"

### शोभा यात्रा

दिनांक १५ नवम्बर को प्रातःकाल विशाल शोभा यात्रा (नगर कीर्तन) दयानन्द आश्रम आर्यसमाज मार्ग केसरगंज से होकर ऋषि उद्यान पहुंचेगी, जिसमें दिल्ली से स्पेशल ट्रेन से पधारे। सैंकड़ों, आर्य नर-नारी, आर्य कन्या महाविद्यालय बड़ौदा व अबोहर गुरुकुल की छात्राएं तथा राजस्थान की आर्यसमाजों के सदस्य विशेष रूप से भाग लेंगे।

### भाषण एवम् भजनोपदेश

दिनांक १४, १५ व १६ नवम्बर की रात्रि को आर्य विद्वानों के भाषण होंगे। विशेष कर श्री शिवकुमार शास्त्री, लाला रामगोपाल जी शाल वाले, प्रो० रतनसिंहजी, आचार्य कृष्णजी, पंडित बुद्धदेवजी शास्त्री, डा० भवानीलाल जी भारतीय, [illegible] तथा ओम् प्रकाशजी वर्मा भजनोपदेशक के मधुर भजन होंगे।

आशा है आर्य नर-नारी हजारों की संख्या में पधार कर इस आयोजन को सफल बनाने में अपना सक्रिय सहयोग प्रदान करने की कृपा करेंगे।

श्रीकरण शारदा
मन्त्री
परोपकारिणी सभा

---

### आर्यसमाज बूंदी में नित्यानन्द जयन्ती

श्रीमान् श्री रघुनाथप्रसादजी गुप्ता एडवोकेट के निवास स्थान पर बूंदी आर्यसमाज का नियमित साप्ताहिक [illegible] होता है, दि० २४-९-६९ को स्वामी नित्यानन्दजी महाराज की १०९ वीं जयन्ती बड़े ही हर्ष एव उत्साह के वातावरण मे मनाई गई। कालेज का प्राध्यापक वर्ग, छात्र वर्ग, आर्य परिवार एव अन्य प्रतिष्ठित महानुभाव उपस्थित थे। ऋषि महिमा एव ईश्वर भक्ति सम्बन्धी भजनों के साथ ही भाषण एव प्रवचन भी हुए। श्री प० विद्यासागरजी ने स्वामी नित्यानन्द जी महाराज द्वारा बूंदी में किए गए शास्त्रार्थ के मुख्य विषय कि 'हमारा वेदमत है' एव केवल संहिता भाग ही वेद है ब्राह्मण ग्रन्थ समेत संहिता भाग नही के सैद्धान्तिक पक्ष पर विस्तार से प्रकाश डाला। श्री बांके बिहारीलालजी प्राध्यापक भूगोल ने स्वामी जी महाराज का जीवन परिचय एव उससे ग्राह्य शिक्षा पर प्रकाश डाला। श्री धजानन्द सुथार छात्र तृतीय वर्ष कला ने स्वामीजी के गुणों एव कर्तृत्व का अनुकरण करते हुए आर्यसमाज को वेदो के अधिकाधिक अध्ययन की ओर प्रवृत्त होने की प्रेरणा दी। श्री मदनमोहन बीजावतिया मन्त्री आर्यसमाज ने अपने एक घंटे के भाषण में स्वामी नित्यानन्दजी को ऋषि दयानन्द का योग्य अनुयायी सिद्ध करते हुए उनकी जीवन घटनाओं बूंदी एव नरसिंहगढ़ शास्त्रार्थों का विस्तृत विवरण प्रस्तुत किया तथा आर्यसमाज के सम्बन्ध में फैली भ्रान्तियों का युक्तियुक्त भाषा में निराकरण किया। अन्त में प्रधानजी ने सबको धन्यवाद तथा स्वामीजी के जीवन से सभी को विशेषतः नवयुवकों को प्रेरणा लेने का अनुरोध किया। शांति पाठ के उपरान्त सभा विसर्जित हुई।

---

हुल्लड़ सप्तक—

### दीपावली की फुलझड़ियां

श्री सत्यदेवराव "हुल्लड़ कवि" अजमेर

(१)

लो दिवाली आ गई, करो कीर्तन खूब,
बैठे लक्कड़ छोड़कर, करो निरन्तर खूब,
करो निरन्तर खूब, कभी इनकी नहिं मानो,
सभी रोग घर डाक्टरों के मिथ्या [illegible],
कहें 'हुल्लड़' कविराय' [illegible],
है [illegible], करो मदद, सरकार हमारी।

(२)

झूठ बराबर तप नहीं, सच बराबर पाप,
जाके हृदय सांच है, वह मूरख का बाप,
वह मूरख का बाप, जनम भर रहे ठनठना,
कोई न पूछे बात, बोलता खूब [illegible],
कहे 'हुल्लड़' कविराज झूठ है असली [illegible],
झूठ धर्म का मर्म, [illegible]

(३)

लक्ष्मीपूजन करना अगर चाहो करलो मौज,
तीन गुणो को सीस धरो, झूठ, कपट छल खोट,
झूठ, कपट छल खोट, तेल को घी बिकवाओ,
बिना क्रीम का दूध, असल का बाप बताओ,
कह "हुल्लड़' कवि सारी दुनियां होगी चेरी,
खूब ब्लैक कर अमर कमालो धन की ढेरी।

(४)

त्रेता युग में एक भये रावण की महाराज,
कलियुग मे घर २ हुए, [illegible] रावण [illegible],
पैदा रावण आज, [illegible],
राम दुबक कर बैठ [illegible]
कह 'हुल्लड़' कविराय, [illegible]
राम मरे भूखो रावण [illegible]

(५)

'हुल्लड़ जी एडवस ही, चलो चाह के साथ
यह दुनियां रही हुई, बसन काबिल नाथ।
बसने काबिल नाथ, जनम भर होंगे फाका,
रावण के सब बाप, डालो दिल्ली डाका।
लूट कूट कर थके मिल सब रीते कुल्हड़,
दया धर्म नहिं हया रह गये कोरे हुल्लड़।

(६)

काल मरे सो आज मर, आज मरे सो अब।
एक सेर गेहूं बिके, फेर मरोगे कब।।
फेर मरोगे कब यह अवसर फिर नहिं आवे।
दीपावली पर मरे, सो लक्ष्मी धाम सिधावे।।
कह हुल्लड़ कवि जल्द लिस्ट मे नाम लिखाओ।
बहुत स्वाम में तुम फिर लड्डू खूब उड़ाओ।।

(७)

डालडा सब का पूज्य है असली घी का बाप।
सब देवी और देवता, इसको खाते आप।।
खाते इसको आप, भोग छप्पन बन जाते।
ऋषि मेले में खूब प्रेम से इसे खिलाते।।
कहे हुल्लड़' कवि खूब डालडा खाओ प्यारे।
ए से लेकर जैड विटैमिन इसमें सारे।।

श्री पं० भगवानस्वरूपजी "न्यायभूषण" के प्रबन्ध से वैदिक यन्त्रालय अजमेर में मुद्रित और श्रीमान् [illegible], संस्थापक [illegible] द्वारा दयानन्द आश्रम, केसरगंज अजमेर से प्रकाशित। अधिष्ठाता—श्रीमान् डा० भवानीलालजी भारतीय एम. ए. पी. एच.डी. अजमेर

१४१२ १:११ ' ' ?
पाक्षिक
आर्य प्रतिनिधि सभा राजस्थान का मुख-पत्र
रजि० नं० जे १७
पुस्तकालय गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय हरिद्वार

# आर्य मार्तण्ड

वर्ष ७७ | वार्षिक मूल्य ५) रुपया | सम्पादक—श्री ओम्भक्त वानप्रस्थ ( रामसहाय शर्मा )
अजमेर मार्गशीर्ष कृ० ७ सं २०२६ वि., दि. १ दिसम्बर ६९ दयानन्दाब्द १४५ | एक प्रति का २० पै० | अङ्क ११

## ईश्वर-प्रार्थना

ओ३म् स्वस्ति सिद्ध प्रपथ श्रेष्ठा,
रेक्ण स्वस्त्यभि या वाममेति ।
सा नो अमा सो अरणो निपातु,
स्वावेशा भवतु देवगोपः ॥

मातृ भूमि की सेवा, सादर पर अधिकार जमावें ।
सी भी हैं सम्पूर्ण जगत को सच्चा स्वर्ग बनावें ॥
ओ३म् शं नो देवीरभिष्टय आपो भवन्तु पीतये ।
शंयोरभिस्रवन्तु नः ॥

हे भगवन् ! हमारे सारे पूर्ण मनोरथ कीजे ।
सद्‌गुण शक्ति शौर्य सत्स हस, नीर सुधामय दीजे ॥

### साहित्य समीक्षा

प्रकाश तरङ्गिणी—रचयिता—भारत रत्न श्री प० प्रकाशचन्द्र जी कविरत्न पृ सं ६२ मूल्य १ रुपया २५ पैसे प्राप्ति स्थान प्रकाश साहित्य प्रकाशन, पहाड़ गंज, अजमेर ।

कविवर श्री प प्रकाशचन्द्र जी 'कविरत्न' के हृदयोद्‌गारों का यह काव्य संग्रह गागर में सागर भरने का सफल प्रयास है। काव्य और अनुभूति का सुन्दर समन्वय प्रकाश जी की अपनी विशेषता है। यह आप गत कई वर्षों से पक्षाघात से पीड़ित रोग शैया पर पड़े हैं। परन्तु वैदिक धर्म का ममत्व ऋषि की अनन्य भक्ति और राष्ट्र प्रेम का उन्माद मानों उनके रोम २ और रक्त के बूंद बूंद कण में समाया हुआ है। आज भी [illegible] के समान श्रेष्ठ, शुद्ध वैदिक काव्य [illegible] करने वाला उच्च कोटि का कोई कवि नहीं। आर्य समाजी और आर्य बन्धुओं के लिए यह [illegible] संग्रह [illegible] एवं अत्यन्त लाभ प्रद है। [illegible] श्री के साहित्य का [illegible], प्रचार एवं विक्रय में सहयोग देकर अपनी [illegible] [illegible] [illegible] रूप में [illegible] करेंगे । —सम्पादक

## श्री स्वामी अभेदानन्द जी महाराज

राजस्थान आर्य जगत के सुपरिचित महोपदेशक श्री प० रामसहाय जी शर्मा जो ओ३म्भक्त जी



वानप्रस्थी के नाम से प्रख्यात थे। उन्होंने दिनांक १४ नवम्बर को ऋषि उद्यान में आचार्य विद्यानन्द जी विदेह से संन्यास की दीक्षा ले ली है। अब उनका नाम स्वामी अभेदानन्दजी है।

आपका जन्म ग्राम रसीदपुर जयपुर राज्य में सम्वत् १९९० में हुआ। आपने रेल्वे की सेवा को ठुकरा कर डी ए वी विद्यालय में अध्यापन कार्य १९११ में आरम्भ किया। १९१५ में आपने काशी में संस्कृत का विधिवत अध्ययन किया। सन् १९१८ से आप १९५८ तक आर्य प्रतिनिधि सभा राजस्थान में महोपदेशक रहे तथा राजस्थान में वैदिक धर्म के प्रचार तथा आर्य समाज के संगठन का महत्वपूर्ण कार्य किया। इस वृद्धावस्था में भी आप अपने अदम्य उत्साह, अनुभव और कर्मशील कार्य क्षमता से जनता में वैदिक धर्म का अथाह प्रचार करने में संलग्न तत्पर हैं। आप बड़े ही विनम्र, मेधावी, विद्वान कर्मठ संन्यासी हैं।

आपने अपने जीवन में शास्त्रार्थ अनेक विद्वानों से शास्त्रार्थ किये जिनमें चार बार विजयी स्वर्ण पदक प्राप्त किये। आर्य मार्तण्ड के आप ही जन्म दाता हैं।

आपने आजीवन वैदिक धर्म के प्रचार प्रसार का दृढ़ व्रत लिया है।

परम पिता परमात्मा आपको पूर्ण स्वस्थ रखते हुए दीर्घायुष्य प्रदान करें ताकि राजस्थान की आर्य जनता आपसे अधिकाधिक लाभान्वित हो सके।

आर्य मार्तण्ड परिवार पूज्य स्वामीजी की सेवा में अपनी हार्दिक शुभ कामनाएं समर्पित करता है।

### आर्यसमाज आदर्शनगर में ऋषि दयानन्द निर्वाणोत्सव महती उपस्थिति में मनाया गया

वक्ताओं ने ऋषि को श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए उनके जीवन पर प्रकाश डाला। श्री डा० सुधीर कुमारजी गुप्त, श्री सुन्दरलालजी भाटिया और पंडित जयदेव जी वेदालंकार ने अपने विचार व्यक्त करते हुए महर्षि के पदचिह्नों पर चलने का आह्वान किया।

समाज के युवा मंत्री श्री श्यामसुन्दर बिहानी ने कहा कि महर्षि दयानन्दजी ने भारतीय संस्कृति की रक्षा कर देश के नौजवानों में जागृति पैदा की और सत्यार्थप्रकाश जैसी पुस्तक लिखकर देशवासियों को घोर अन्धकार से बचाया। —मंत्री

### आवश्यक सूचना

श्री सीतारामजी आर्य शिवगंज निवासी का एक कैमरा क्लीक IV एग्फा कम्पनी का ऋषि मेले के अवसर पर चोरी चला गया है। यदि किसी सज्जन को कहीं मिल जाय या पता चल जाय, तो निम्नाङ्कित पते पर सूचित करने का कष्ट करें। कैमरे का पता लगाकर बरामद कराने वाले सज्जन को पुरस्कृत किया जायगा।

सम्पादक
आर्य मार्तण्ड
केसरगंज, अजमेर ।

# आर्यसमाज अदालत में !

लेखक—श्री प्रेमदेवजी भूषण एडवोकेट भरतपुर

आर्य सम्मेलन को सम्पन्न हुये अरसा हो गया उस समय लिये गये निर्णय आज तक क्रियान्वित किये जा सकने सम्भव न हो सके। स्थिति पूर्ववत ही नहीं अपितु प्रतिदिन अधिक गम्भीर होती जा रही है। जो सार्वदेशिक सभा आर्यसमाज की सर्वोच्च संस्था ( Supreme body ) थी और जिसका सर्वोत्तम कार्य आर्यसमाजों पर सम्यक नियन्त्रण रखकर प्रचार को बढ़ाना था आज स्वयं देश की सभी आर्यसमाज उसी के लिये चिन्ता प्रकट कर रही हैं। प्रान्तीय आर्य प्रतिनिधि सभाओं की स्थिति में भी अनेकानेक संकट उत्पन्न हो रहे हैं और सुधार लाने के लिये किये जा रहे सभी प्रकार के प्रयास असफल होते प्रतीत होते हैं। परम पुनीत महर्षि दयानन्दजी द्वारा सम्पादित इस तरु का तना ही यदि सूखने लगा तो उसके पत्र पुष्पों का क्या बनेगा ? सब संसार में सुगन्धि का प्रसार कैसे होगा ?

आर्यसमाज का महान् ध्येय है जगत गुरु बन कर विश्व से अन्धकार मिटाकर प्रकाश की अभिवृद्धि करना। आर्यसमाज का निरन्तर लक्ष्य है अन्याय का नाश कर न्याय की स्थापना करना। आर्यसमाज सांसारिक जीवों के दुख कष्टों का निवारण कर उनके लिये सुख और शान्ति की वृष्टि करना चाहता है। आर्यसमाज का आधारभूत नियम है कि केवल अपनी ही उन्नति से सन्तुष्ट न रहकर सब की उन्नति में अपनी उन्नति स्वीकार करना। आर्यसमाज सर्वत्र समाज देश और संसार में मानवता लाना चाहता है—वही मानवता कि जिसे वेद मन्त्र के द्वारा मनुर्भव का उपदेश दिया गया है। आर्यसमाज वर्तमान भौतिकवाद को हेय और नाशकारी बताकर सम्पूर्ण जगत को अध्यात्मवाद का सच्चा हितकारी मार्ग दर्शाना चाहता है। आर्यसमाज आत्मवत सर्वभूतेषु का पाठ पढ़ाकर प्राणिमात्र को अपनाना चाहता है। आर्यसमाज 'विश्वानि दुरितानि परासुव' का पाठ और उस पर आचरण कर सब संसार के मनुष्यों की प्रवृत्तियों में परिवर्तन कर कल्याणमयी बनाना चाहता है। आर्यसमाज विश्व से घृणा ईर्षा द्वेष पाप की अग्नि समाप्त कर उसके स्थान पर पारस्परिक प्रेम और भ्रातृत्व की शीतल सुन्दर सरिता प्रवाहित करने का अभिलाषी है। परन्तु इस अद्वितीय महानतम उद्देश्य की पूर्ति क्या आज के वातावरण में की जा सकनी कभी सम्भव है ? इसके लिये आर्यसमाज को घोर तप और तपस्वी लाने की नितान्त आवश्यकता है।

आर्यसमाज का अब तक का इतिहास उज्ज्वल रहा है। इसके क्षेत्र में उन विभूतियों का आगमन हुआ जिनने सर्वस्व की आहुति इस धर्म यज्ञ में डाल दी। शताब्दी पर्यन्त बलिदानों का तांता लगा रहा। इसके जन्मदाता ऋषिवर दयानन्द ने वेद ज्ञान की खोज में सारा जीवन दे कर, सब प्रकार के सुख आनन्द का त्याग कर स्थान स्थान पर घूमकर और नाना प्रकार के कष्ट सहन कर तब एक ऐसे मार्ग का दर्शन कराया जहां चलकर अमरत्व की उपलब्धि होती है। इसके बाद आने वाले नेताओं ने मान अपमान यश अपयश सुख दुख की कोई परवाह न करते हुये अपनी निःस्वार्थ भावना द्वारा ऋषि के मिशन का प्रचार किया। तभी आर्यसमाज का नाम सर्वत्र फैल गया और इसी के द्वारा संसार का वास्तविक कल्याण हो सकने की आशा सब को बंधी। जनता जनार्दन के हृदय में आर्यसमाज और उसके कार्यकर्ताओं के प्रति अविरल स्नेह और अटूट श्रद्धा के भावों का प्रादुर्भाव हुआ। आर्यसमाज का भविष्य चमकने लगा और किंचिद् काल में आर्यसमाज का प्रभाव सब संसार में छा जायेगा ऐसा आभास होने लगा। ऐसे समय में आर्यसमाज में अनेकों शहीद महात्मा, संन्यासी और प्रकाण्ड विद्वानों ने आर्यसमाज को मिलकर तीव्रगति से अग्रसर किया

आज उसी आर्यसमाज के क्षेत्र में आश्चर्यजनक परिवर्तन हुआ दिखाई पड़ता है। प्रचार की गति मन्द पड़ गई है। पारस्परिक स्नेह में क्षीणता आ गई है। सर्वसाधारण की दृष्टि में आर्यसमाज का मान निरन्तर कम होता जा रहा है। कार्यकर्ताओं में न वह लगन रही है और न कार्य करने की क्षमता ही। वास्तविकता का स्थान आडम्बर लेने लगा है। संस्था को आगे बढ़ाने के स्थान पर प्रत्येक व्यक्ति स्वयं को एकमात्र अधिकारी समझकर संस्था पर नियन्त्रण बना लेना चाहता है। समाज की उन्नति की भावना लुप्त हो कर निजी स्वार्थों की सिद्धि कर लेने का सतत प्रयास किया जाता है। प्रचार कार्य की ओर विशेष ध्यान न दे कर निर्धारित कार्यक्रम सम्पन्न कर लेने में सन्तोष हो जाता है। इस प्रकार की स्थिति ने पहले तो आर्यसमाज की गति का अवरोध किया और अब नीचे की ओर ले जाने में भी संकोच नहीं होता है। इसी तुच्छ और हेय भावना के परिणामस्वरूप आज आर्यसमाजों में प्रान्तीय सभाओं में तथा सर्वोच्च सभा तक में अनेकानेक झगड़े खड़े हो गये हैं जिनका समाधान मिल सकना कठिन प्रतीत हो रहा है।

आर्यसमाज में आज जो वैमनस्य की ज्वाला जलने लगी है। उसके लिए अन्य भी कई कारण हैं। आर्यसमाजों और उसकी सभाओं के पास लाखों की अचल सम्पत्ति आ जाने से लाखों की आय का साधन मिल गया है। इनके पदाधिकारी मठाधीशों के रूप में इस सम्पत्ति पर अपना नियन्त्रण बनाये रखना चाहते हैं। इस प्राप्त अधिकार को त्याग देना उनके लिए समस्या रूप बन जाता है और तभी संघर्ष खड़ा होता है। एक दूसरे को हटाने और बनाये के प्रयास में स्नेह और श्रद्धा की सीमा का उल्लंघन हो जाता है और अनेकानेक अमानवीय योजनायें बनाई जाने लगती हैं। इन्हीं कारणों से आर्यसमाज की प्रचुर अचल सम्पत्ति का समुचित उपयोग भी नहीं हो रहा है। इसका दूसरा कारण आर्यसमाज से सम्बन्धित शिक्षा की तथा अन्य संस्थाओं में है। प्रत्येक पदाधिकारी संस्था के हित की भावना से केवलमात्र कार्य न कर उन पर अपना विशेषाधिकार स्वीकार कर लेता है और संस्था की व्यवस्था में स्वेच्छानुकूल परिवर्तन न होने पर वह अधिकारी उसे अपने प्रति अपमान का कारण मान लेता है। तीसरा कारण आर्यसमाज द्वारा धार्मिक क्षेत्र त्याग कर राजनीति के क्षेत्र में प्रवेश कर जाना है। राजनीतिक क्षेत्र में प्रलोभन और अधिकार प्राप्त होते नजर आते हैं, जिन्हें प्राप्त कर लेने की लालसा हर किसी सदस्य व कार्यकर्ता को होने लगती है। इन तीन कारणों ने विशिष्ट रूप से स्पर्धा, ईर्षा वैमनस्य आदि कई तुच्छ भावनाओं को जन्म दिया है और आर्यसमाज जो कि अध्यात्मवाद का उपासक था स्वयं इस भौतिकवाद के चक्कर में उलझने लगा है। इन पारस्परिक झगड़ों के कारण व्यक्तियों के पारस्परिक सम्बन्ध भी हो सकते हैं। परन्तु तथ्य यह है कि जब से आर्यसमाज के सदस्यों और कार्यकर्ताओं में समाज के सर्वोपरि होने की भावना क्षीण हुई है और उसके स्थान पर व्यक्तिगत स्वार्थों का प्रवृत्ति आने लगी है, तभी से कलह और क्लेश का बोल बाला होने लगा है।

इस लेख का विषय जटिल है और इसे और अधिक बढ़ा कर विशेष उदाहरणों द्वारा स्पष्ट करना सर्वथा अनुचित है। वर्तमान में आवश्यकता है एक उत्तम मैत्रीपूर्ण वातावरण उत्पन्न करने की जिनमें देश को विदेश की प्रत्येक आर्यसमाज के सदस्य और कार्यकर्ता समाज के हितों को सर्वोपरि मान कर उसके लिए स्वार्थमय तत्वों का त्याग कर दें। सम्पत्ति और शिक्षा संस्थाओं आदि के लिये ऐसी पृथक व्यवस्था प्रणाली निर्माण कर दी जाये जिससे वे आर्यसमाज के प्रचार कार्य में बाधक न बनकर सहायक सिद्ध हों। आर्यसमाज को धर्म प्रचार का क्षेत्र प्रधान मानकर कार्य करना और राजनीति से घनिष्टतम सम्पर्क बनाये रखने की आवश्यकता नहीं है।

आज देश की कितनी आर्यसमाजों में झगड़ों की स्थिति है। कई प्रान्तीय सभायें अनेक प्रकार के आपसी झगड़ों में व्यस्त रह कर शक्ति का ह्रास कर रही हैं। मामला बढ़ते बढ़ते सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा तक पहुंच गया है। परस्पर समझौते की कोई सूरत न देख कर न्यायालयों में दावे पेश करने की नौबत आ चुकी है। खेद का विषय है कि संसार में अन्याय का मिटा कर न्याय की स्थापना करने का अभिलाषी आर्यसमाज आज स्वयं न्यायालय के समक्ष न्याय की पुकार लेकर जा रहा है। न्याय देने और दिलाने वाला स्वयं न्याय मांगने आया है। आर्यसमाज के लिए ऐसी स्थिति कदापि शोभनीय नहीं है। इसके लिए आर्यसमाज के नेताओं को सतत प्रयास करके स्थिति को बदलना चाहिये। पुन आर्यसमाज में पारस्परिक प्रेम और मैत्री की शुभ भावना जागृत कर सङ्गठित रूप से उस महान् लक्ष्य की ओर अग्रसर हो यहां कह सकें—कृण्वन्तो विश्वमार्यम्।

# आर्य मार्तण्ड

अजमेर मार्गशीर्ष कृ० ७ सं० २०२६ वि० दिनांक १ दिसम्बर सन् १९६९

ऋषि की निर्वाण स्थली अजमेर में—

## ऋषि मेला सानन्द सम्पन्न !

महर्षि दयानन्द सरस्वती की उत्तराधिकारिणी परोपकारिणी सभा द्वारा आयोजित ऋषि मेला दि० १४ से १६ नवम्बर तक अजमेर में सानन्द सम्पन्न हो गया। इस वर्ष यह मेला कुछ अधिक आकर्षक उत्साहवर्धक एवं प्रभावशाली रहा।

दि० १० नवम्बर ६९ से यजुर्वेद पारायण यज्ञ आचार्य श्री कृष्णजी की अध्यक्षता में प्रारम्भ हुआ। यह यज्ञ प्रातः सायं दोनों समय पूर्ण विधि विधान से सम्पन्न होता था। यज्ञोपरान्त विद्वानों के वेदोपदेश अधिक प्रभावोत्पादक रहे। श्री पं० भगवतीप्रसादजी अभय श्री पन्नालालजी पीयूष के मधुर भजनोपदेश तथा श्री आचार्य कृष्णजी, श्री विद्योत्तमाजी यती श्री पं० वाचस्पति जी शास्त्री, आचार्य विश्वनन्दजी, श्री डा० सूर्यदेव जी शर्मा, श्री पं० भूदेवजी शास्त्री श्री पं० ब्रह्मानन्द जी त्रिपाठी श्री डा० भवानीलालजी भारतीय पं० श्री रामचन्द्रजी के वेदोपदेश जनता को नित्य नवीन आध्यात्मिक प्रेरणा एवं प्रोत्साहन प्रदान करते रहे।

दि० १९ नवम्बर को श्री [illegible] आचार्य कृष्णजी की अध्यक्षता में ऋषि निर्वाण दिवस ऋषि उद्यान में समारोहपूर्वक अजमेर नगर की समस्त आर्यसमाजों की ओर से परोपकारिणी सभा के तत्वावधान में मनाया गया, जिसमें अनेक विद्वानों ने मार्मिक भाषणों के द्वारा ऋषि को हार्दिक श्रद्धाञ्जलि समर्पित की गई।

दि० १४ नवम्बर को यज्ञोपदेश के उपरान्त श्रीमान् बाबूप्रसादजी जिज्ञासु तथा श्री ओम्भक्त जी वानप्रस्थ ने संन्यास की विधिवत दीक्षा ली। इसी दिन आर्य प्रतिनिधि सभा राजस्थान का अन्तरंग अधिवेशन श्रीमान् पं० भगवान स्वरूपजी न्यायभूषण सभा प्रधान की अध्यक्षता में हुआ, जिसमें कई महत्वपूर्ण प्रस्ताव पारित हुए।

३ बजे स्व० श्रीकरण शारदा वाद विवाद प्रतियोगिता श्रीमान् क्षितीशकुमार वेदालंकार सं० सम्पादक 'हिन्दुस्तान' की अध्यक्षता में आयोजित हुई, जिसमें सावित्री उच्चतर कन्या अजमेर विद्यालय की छात्रा कु० प्रभा माथुर सर्वप्रथम घोषित की गई।

आज ही आर्य केन्द्रीय सभा दिल्ली की स्पेशल ट्रेन द्वारा ५०० आर्यजनों का दल भी इस मेले में सम्मिलित होने के लिये [illegible], जिससे मेले में विशेष चहल पहल रही।

[illegible] हरियाणा दिल्ली गुजरात के [illegible] स्पेशल ट्रेन के [illegible] का विशेष स्वागत आर्यसमाज नया बाजार तथा नगर आर्य समाज अजमेर के द्वारा किया गया।

रात्रि में आर्य कन्या विद्यालय मढी० की छात्राओं के व्यायाम प्रदर्शन बड़े ही आकर्षक ढंग से हुए। रात्रि में भारत के प्रख्यात कविरत्न श्री पं० प्रकाशचन्द्रजी की अध्यक्षता में विशाल कवि सम्मेलन हुआ जिसमें दीनबन्धु शर्मा 'वियोगी' श्री विनोद सामानी हर्ष श्री सज्जनजी श्री प्रमोद जी, श्री 'रश्मि' श्री प्रेमप्रकाशजी आदि कवियों की रचनायें बड़ी ही उत्साहवर्धक एवं प्रेरणाप्रद रहीं।

दि० १५ नवम्बर को प्रातः ९ बजे एक विशाल शोभायात्रा श्री श्रीकरणजी शारदा संयोजक ऋषि मेला के संयोजकत्व में आयोजित हुई, जिसमें घुड़सवार भजन मण्डलियाँ स्पेशल ट्रेन के यात्री, आर्य कन्या विद्यालय बड़ौदा की छात्राएँ बैण्ड सहित, केशरिया वेश भूषा में शाहपुरा का महिला दल, दयानन्द विद्यालय अजमेर, आर्य पुत्री विद्यालय श्री मथुराप्रसाद गुलाबदेवी आर्य कन्या विद्यालय, वैदिक पाठशाला पटेलपुर के छात्र छात्राओं महावीर व्यायामशाला के खिलाड़ियों के अतिरिक्त नगर की प्रमुख समाजों के सदस्यों का दल ऋषि गुणगान, एवं जयघोष से गगन गुंजाता चल रहा था। शोभा यात्रा काफी विशाल लगभग २ मील लम्बी थी। उल्लेखनीय बात यह है कि यह शोभा यात्रा बिना पुलिस की सहायता एवं व्यवस्था के बड़े ही व्यवस्थित एवं सगठित अनुशासन में चल रही थी, जिसका नगर निवासियों ने स्थान २ पर भव्य स्वागत किया जनता ने नगर कीर्तन की भूरि २ प्रशंसा की।

मध्यान्ह में परोपकारिणी सभा के मान्य सदस्य गुजरात के आर्य नेता श्रीमान् पं० आनन्द प्रियजी के कर कमलों द्वारा सरस्वती भवन पर आर्य ध्वज फहराया गया तथा सामूहिक ध्वज गान हुआ।

दि० १५ नवम्बर को संसद सदस्य लाला रामगोपालजी शालवाले, मन्त्री सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा की अध्यक्षता में अराष्ट्रीय ईसाई प्रचार निरोध सम्मेलन हुआ। जिसमें श्री पं० वाचस्पतिजी शास्त्री, श्री विद्योत्तमाजी यती, आचार्य कृष्ण आदि प्रमुख वक्ताओं ने राष्ट्र का हिमायती एवं वैचारिक राष्ट्रीय करण करने पर बल दिया।

रात्रि में ऋषि मेला के विशाल पण्डाल में सार्वजनिक सभा आयोजित हुई, जिसमें लाला रामगोपाल जी [illegible], श्री प्रो० रतनसिंह जी [illegible], श्री विद्योत्तमा जी यती, श्री पण्डित वाचस्पति जी शास्त्री श्री पण्डित आनन्द प्रिय जी के भाषण श्री पन्नालाल जी पीयूष तथा श्री अभय जी के सुमधुर भजनोपदेश हुए।

दिनांक १६ नवम्बर ६९ को प्रातःकाल श्री आचार्य कृष्णजी की अध्यक्षता में श्री श्रीकरण जी शारदा मन्त्री परोपकारिणी सभा के कर कमलों द्वारा यजुर्वेद पारायण यज्ञ की पूर्णाहुति सम्पन्न हुई तथा प्रसाद वितरण हुआ। मध्यान्होत्तर २ बजे श्रीमान् ठा० मानकरण जी शारदा की अध्यक्षता में परोपकारिणी सभा का साधारण अधिवेशन हुआ जिसमें कई जनोपयोगी प्रस्ताव पारित हुए। ३ बजे से आचार्य धर्मेन्द्र नाथ जी जयपुर की अध्यक्षता में अराष्ट्रीय ईसाई प्रचार निरोध सम्मेलन हुआ जिसमें स्वामी कान्तानन्दजी, श्री वृजमित्रजी महात्मा रतलाम, श्री घीसूलालजी भारती पं० रामभजनजी मिश्र ने अपनी ओजस्वी वक्तृताओं द्वारा जनता को राष्ट्रीयता की रक्षार्थ सतर्क एवं शीघ्र सजग होने के लिये प्रोत्साहित किया। अध्यक्ष आचार्य धर्मेन्द्र नाथजी ने सार्वजनिक प्रस्ताव जनता की ओर से प्रस्तुत करते हुए मध्यप्रदेश तथा उड़ीसा सरकार के समान राजस्थान सरकार से भी धर्म स्वातन्त्र्य विधेयक पारित कर धर्म परिवर्तन पर राजस्थान में भी शीघ्र कानूनी प्रतिबन्ध लगाने की प्रबल शब्दों में माग की।

५ बजे कन्याओं का व्यायाम प्रदर्शन बड़ा ही आकर्षक एवम् उत्साहवर्द्धक रहा। रात्रि में समापन समारोह के अवसर पर श्री विद्योत्तमाजी यती, श्री प्रो० रतनसिंहजी, श्री पण्डित वाचस्पति जी शास्त्री एवम् श्रीमान् पण्डित उदयवीर जी शास्त्री के ओजस्वी व्याख्यान एवं श्री पीयूष जी के भजनोपदेश हुए।

इस प्रकार यह ऋषि मेला का ज्ञान प्रचार यज्ञ आज पूर्ण समारोह के साथ सानन्द सफलता पूर्वक सम्पन्न हुआ। इसमें सन्देह नहीं कि ऋषि मेला के जन्मदाता और संयोजक श्री श्रीकरण जी शारदा का अदम्य उत्साह और कर्तव्य निष्ठा ही इस मेले की सफलता का मुख्य कारण है। स्वास्थ्य के अनुकूल न होने पर भी उन्होंने रात्रिन्दिव भाग दौड़ कर अपने कार्य व्यवहार और उत्साह से आर्य जनता में जो उत्साह शक्ति प्रेरणा, प्रचार और संगठन की ज्योति जगाने में अनोखा क्रियात्मक सक्रिय योग प्रदान किया है उसके लिए वह वस्तुतः में बधाई के पात्र है। इस ऋषि मेला में आवास और भोजन की जो निःशुल्क उत्तम व्यवस्था थी वह आपके कार्य व्यवहार कुशलता का आदर्श प्रतीक है।

भोजन की समस्त निःशुल्क व्यवस्था कडेल निवासी श्री सेठ पन्नालाल जी बोहरा ने जिस प्रेम, श्रद्धा, आत्मीयता एवं सहृदयता से की, वह निस्सन्देह आदर्श एवं अनुकरणीय है। आपकी भोजन व्यवस्था की जनता ने भूरि भूरि प्रशंसा की है। एतदर्थ श्री बोहरा जी धन्यवाद के पात्र हैं।

---

# सितम्बर मास में मेरी प्रचार यात्रा

लेखक—श्री पण्डित भगवती प्रसाद जी 'अभय'

श्रीमती आर्य प्रतिनिधि सभा राजस्थान के कार्यक्रमानुसार मैं दि० २६ अगस्त को श्रीकरणपुर पहुंचा, श्रीकरणपुर आर्यसमाज मे दि० २७ अगस्त से दि० ४ सितम्बर तक वेद प्रचार सप्ताह एव श्रीकृष्ण जन्माष्टमी उत्सव बडे ही समारोह पूर्वक मनाया गया। पूरे सप्ताह तक लगातार प्रात यज्ञ के पश्चात् तथा दोपहर में ३ से ५ बजे तक महिला समाज में और रात्रि के ९ बजे से १०॥ बजे तक मेरे भजन व्याख्यान होते थे। श्री कु० सुखलालजी आर्य मुसाफिर भी इस कार्य क्रम में भाग लेने के लिये आने वाले थे, मगर किसी कारण वश वे न आ सके, अत अधिकतर मुझे अकेले ही तीनो समय यह कार्यक्रम सम्पन्न करना पडा। श्रोताओ पर अच्छा प्रभाव पडा, उपस्थिति दिनो दिन बढती ही गई। अन्तिम दो दिन के लिये श्री गगानगर से प० हरिदत्तजी शास्त्री एव श्री प० विक्रमसिंहजी आगये थे। अत उनके भी प्रभावशाली भाषण हुए। करणपुर से चलकर पीली बगा मडी आया, वहा पर आर्यसमाज मन्दिर मे चार दिन तक रात्रि को तथा दिन में मेरे भजन व्याख्यान हुए। पीली बगा मडी आर्यसमाज का कार्य सचालन श्री रामकृष्ण जी आर्य अकेले ही कर रहे हैं। वहां से चलकर जैतसर आया, जैतसर में श्री ब्रह्मचारी मल्हारराव जी एव उनके सहयोगी अध्यापकों के परिश्रम से मडी में रात्रि के समय ८ बजे से १० बजे तक मेरे भजन व्याख्यानों का कार्यक्रम लगातार तीन दिन तक चलता रहा। स्थानीय जनता ने मेरे द्वारा वैदिक सिद्धान्त की विचारधारा को बडे प्रेम से सुना। इस मडी में यह प्रथम अवसर आर्यसमाज के प्रचार का था। मेरे पहिले यहा पर सार्वजनिक स्थान पर बोलने वाला आर्य विद्वान् कोई नही आया।

जैतसर मडी मे आर्यसमाज की स्थापना अभी थोडे ही दिनो से हुई है। यहाँ का आर्यसमाज अभी शिशु अवस्था मे है। आशा है भविष्य में यह आर्यसमाज अच्छी उन्नति करेगा। यहा पर आर्य समाज के नाम पर कुछ भूमि भी दे रखी है। उस भूमि पर इस समय कुछ कमरे बने हैं, जिनमे श्रद्धानन्द आर्य विद्यालय चल रहा है। इस विद्यालय की तथा आर्यसमाज की स्थापना श्री मल्हाररावजी के अथक परिश्रम का परिणाम है। श्री मल्हारराव जी को यहाँ आये अभी थोडा ही समय हुआ है, मगर उनके उत्साह एव पुरुषार्थ से प्रभावित होकर यहा के दानदाताओ ने धन की सहायता देकर विद्या के लिये कुछ कमरे बनवा दिये है जिनमें विद्यार्थियो के अध्ययन का कार्य हो रहा है शेष भवन निर्माण का कार्य अभी चल रहा है। आशा है श्री मल्हाररावजी इसी प्रकार जनसेवा के कार्य में लगे रहेगे तो आर्यसमाज तथा विद्यालय की दिनो दिन उन्नति होती रहेगी। जैतसर से प्रस्थान करके श्री गगानगर आया, रविवार के साप्ताहिक सत्सग मे मेरे भजन व्याख्यान हुए। गगानगर से दि. १६ को मैं तथा यहा की समाज के पुरोहित प० विक्रमसिंहजी हनुमानगढ आये, रात्रि के समय ८ से १० बजे तक आर्यसमाज भवन में मेरे भजन तथा विक्रमसिंहजी के व्याख्यान हुए। हनुमानगढ में आर्यसमाज कई वर्षों से स्थापित है, तथा समाज का निजी भवन भी है। यहा की आर्यसमाज का कार्य काफी समय से श्री भरतकुमार जी सभाले हुए थे, मगर स्थानीय जनता का पूरा सहयोग न मिलने के कारण यहा की प्रगति मन्द पडी हुई थी।

कुछ समय से गगानगर आर्यसमाज के प्रधान श्री नारायण राम ' के सुपुत्र कु० प्रतापसिंहजी ने यहा पर कपडे की दुकान करली है, जबसे प्रतापसिंह जी यहा आ गये हैं, तबसे आर्यसमाज का कार्य सुचारु रूप से चलने लगा है, यहा की समाज के नवयुवक मत्रीजी का भी अच्छा सहयोग इनको मिल रहा है। प्रतापसिंहजी तथा उनके नवयुवक साथी उत्साह एव लगन के साथ समाज की सेवा कर रहे हैं। आशा है भविष्य मे भी दिनो दिन यहा का कार्य प्रगति करता रहेगा।

हनुमानगढ से मैं तथा पुरोहित विक्रमसिंहजी ता० १७ को गूगा मेडी के मेले मे प्रचारार्थ पहुचे, गूगामेडी के मेले मे कई वर्षों से श्री स्वा० वेधडकजी द्वारा पाखड खडन बडे जोर शोर से होता रहा है। श्री गगानगर आर्यसमाज की ओर से मेले में तम्बू कैम्प लगाया जाता है। पजाब प्रतिनिधि सभा की ओर से तथा हिसार की ओर से भजन मडली प्रतिवर्ष आती है। इस वर्ष राजस्थान प्रतिनिधि सभा की ओर से मैं भी पहुचा था। मेले मे ता० १७ से ता० २० तक वैदिक धर्म के प्रचार की खूब धूम रही। दिन भर तथा रात्रि के १२ बजे तक स्वा० वेधडकजी, श्री चिरजीलालजी, श्री नन्दलालजी, तथा मेरे और पुरोहित विक्रमसिंह जी के व्याख्यान एव भजन बारी बारी से होते रहे। गूगा पीर के नाम से जो पाखड और अन्ध विश्वास जनता मे फैल रहा है, उसका तीव्र खडन करके समझाया गया। हजारो की सख्या में लोगो ने भजन व्याख्यान सुने। मैं गूगा मेडी से चलकर टमकोर आया, आर्यसमाज टमकोर मे मेरे भजन व्याख्यान हुए। यहा के,प्रधान मत्री आदि सभी कार्यकर्ता बडे उत्साही एव श्रद्धालु हैं। रामनवमी के आसपास के दिनो मे यहा प्रतिवर्ष उत्सव तथा विशाल यज्ञ होता है। टमकोर से झुनझुनू नवलगढ होता हुआ अजमेर पहुचा, एक दिन अजमेर मे ठहर कर भीम के लिये प्रस्थान किया। भीम मे मेरे भजन व्याख्यान हुए। यहा पर आर्यसमाज कई वर्षों से है मगर नियमानुसार कार्य नहीं चल रहा है। श्री वयोवृद्ध छगनलालजी का वैदिक धर्म के प्रति प्रेम अगाध है। इनके मनमे केवल एक यही भावना है कि भीम मे आर्यसमाज का सगठन दृढ होकर कार्य सुचारु रूप से चलने लगे। छगनलालजी अपना पैतृक मकान (जो लगभग दस पन्द्रह हजार रुपयो के मूल्य का है) प्रतिनिधि सभा राजस्थान को दान करना चाहते हैं। इस विषय का पत्र व्यवहार सभा के अधिकारियो के साथ चल रहा है। आशा है। मकान की रजिस्ट्री हो जावेगी।

भीम से प्रस्थान करके अजमेर पहुचा।

### कष्ट से मुक्त होगया।

विगत अगस्त मास की २३-८-६१ को रात्रि के समय असावधानी से मैं तीन सीढ़ियो से गिर पडा और दाहिने हाथ में भारी चोट आई और अस्थि टूट गई। बडी कठिनाई से रात काटी। प्रात आश्रम के चौकीदार श्र मोतीपुरीजी स्थानिक चव हुरलाल अस्पताल में ले गये। श्री डा० ओझा साहब देखकर पट्टी बधा दी। दूसरे ही दिन अस्थि रोग के विशेषज्ञ श्री डा० पी० एस० श्री सक्सेना साहब ने चूने का प्लास्टर चढ़ा दिया। सात दिन के पश्चात् देखकर फिर ऐसा ही पट्टी चढ़ाया और यहा से दयानन्द साधना आश्रम में आ गया। श्रीमान् सेठ फूलचन्दजी बाहेती और श्रीमती पोखीबाई ने मेरे भोजन की व्यवस्था कर दी। परन्तु नित्यक्रम में बाधा देख श्री देवप्रकाश आर्य के घर जोधपुर चला गया और वहां से मुझे गान्धी अस्पताल ले गये। यहा के डा० बी० ए० एस० चुग्ध बन साहब को बताया और श्रीमान् डा० पी एस न्हाप साहब को आपने कहा। ६ सप्ताह बाद यह प्लस्टर कटेगा। समय आने पर ८-१०-६१ को यह कट गया। श्री गोपालदासजी मालवीय के पास जाने को कहा। आप अस्थि को ठिकाने बैठाने और तत्सम्बन्धी व्यायाम करने मे बडे ही दक्ष हैं। आर्य व्यायाम शाला आर्य वीर दल के आप पुराने कार्यकर्त्ता हैं। बाते करते २ मेरे हाथ की हड्डी को ठिकाने बैठा दी। मैं थोड़ा देर के लिये सन्न रह गया और मुझे पसीना भी आगया। मुझे वहा ही लेटा दिया। कुछ समय पश्चात् उठ बैठा। इस प्रकार लगभग १ मास हाथ का व्यायाम आपने और दयालु नर्स, श्री इन्दुपाल शर्मा कराती रही। घर पर मेरे पुत्र श्री देवप्रकाश आर्य और पुत्र-वधू ने उत्तमता से मेरी सेवा की और अब ३१-१०-६१ को अजमेर आगया इस कठिन समय मे प्रान्त के बहुत से दयालु और मेरे प्रेमी हितैषी आर्य बन्धुओं के सहानुभूतिपूर्ण पत्र आये। मैं इन सबका धन्यवाद करता हू।

आर्य सेवक
धर्मानन्द

### प्रो. शेरसिंह परोपकारिणी सभा के सदस्य निर्वाचित

दिनांक १६ नवम्बर को परोपकारिणी सभा के साधारण अधिवेशन में भारत सरकार के सचार राज्य मन्त्री श्री प्रो. शेरसिंह जी को सदस्य चुना गया।

---

### आवश्यकता

स्वस्थ्य, सुन्दर, [illegible] गोत्रीय, कान्यकुब्ज ब्राह्मण शुक्ल परिवार [illegible] १९ वर्षीय २५०) रु० मासिक प्राप्त करने [illegible] सुशिक्षित, नवयुवक वर के लिए स्वस्थ, सु[illegible] गृह कार्य में दक्ष, सुन्दर शिक्षित योग्य [illegible] कन्या की शीघ्र आवश्यकता है। शीघ्र पत्र [illegible]र करें।

सम्पादक
आर्य मार्तण्ड, अजमेर।

# शिखा का वैज्ञानिक महत्व

लेखक—श्री जगन्नाथ प्रसाद जी गुप्ता, अजमेर

(लेखक अपने विचारों के लिये स्वय उत्तरदायी है)

भारत का पतन का कारण प्राय कांग्रेस शासन को ही बतलाया जाता है। आजकल भारत वादों के चक्कर में पड़कर अपनी असलियत भूल रहा है। जहा देखो वहा साम्यवाद, समाजवाद इत्यादि वादो की चर्चा की जाती है, कोई साम्यवाद अच्छा बताता है, तो कोई पूंजीवाद। हम वाद-विवादो मे फसकर मनुष्य अपने स्वय के उस वायदे को भूल जाता है जो उसने इस ससार मे आने से पहले अपने प्रभु से किया था। यह किसका दोष है ? क्या यह कांग्रेस का दोष है ? यह माना कि कांग्रेस में बहुत कुछ खराबियाँ हैं, जिसे शासक वर्ग स्वय स्वीकार करते हैं, जैसा कि राजस्थान के मुख्य मन्त्री श्री सुखाडिया ने राजस्थान पत्रिका द्वारा जनता की नाराजी के लिए अधिकारी जिम्मेवार बतलाये हैं। राजस्थान पत्रिका द्वारा भारत के भूतपूर्व उप प्रधानमन्त्री श्री मोरारजी देसाई ने स्वय कहा है कि कांग्रेस मन्त्री और विधायक शराब पीते हैं। क्या हमने कभी यह भी सोचा है कि हम कहा तक इन खराबियो के लिए जिम्मेवार हैं ? भारत के भूतपूर्व राष्ट्रपति महोदय डा० राधाकृष्णन जो कि ससार के सुप्रसिद्ध दार्शनिक भी हैं। उनका कहना है कि Religion in the Summari human of life वर्तमान राष्ट्रपति महोदय डा० जाकिर हुसैन कुछ दिन पहले जबकि भाषा सम्बन्धी जलसे में भारत के दक्षिण में भाषण कर रहे थे, तो उन्होंने कुरान शरीफ की तारीफ करते हुए कहा है कि यह पवित्र पुस्तक है। रामायण के लिए कहा है कि यह चोरो की गाथा है। कहने का तात्पर्य यह है कि कांग्रेसी उच्चकोटि के विद्वान् भी धार्मिक भावना पर जोर देते हैं। किन्तु अधकचरे कांग्रेसी धर्म को दिमाग पर पर्दा पड़ा हुआ समझते हैं। सम्भवतया ऐसे ही मनुष्यों द्वारा शासन चलाए जाने पर लोग कांग्रेस को दोष देते हैं। किन्तु क्या अपनी तरफ भी किसी ने देखा है ? इसी प्रकार एक और भी लाभदायक प्रथा का उल्लघन हो रहा है और वह यह कि आजकल के जिसके पूर्वज अपने सिर पर चोटी रखते आये हैं, वे भी चोटी नहीं रखते। चोटी रखने के महत्व को समझना तो दूर रहा, किन्तु वे लोग भरपूर विरोध भी करते हैं। इसका क्या कारण है ? धोती पहनने पर या चोटी रखने पर क्या कांग्रेस ने प्रतिबन्ध लगा रखा है। जब मैं स्वय अपने देश के अन्दर अपनी वेश-भूषा — भाषा का निरादर करता हूं, तो क्यो नहीं शासन की ओर से भी प्रतिबन्ध लग सकता है। कुछ दिन पूर्व जयपुर मे डा० जाकिर हुसैन साहब पधारे थे, तो उनके भाषण के लिये एक स्थान पर धोती पहनने वालो को अड़चन पैदा हो गई थी। जिसके लिये स्वय श्री भैरोंसिंह जी शेखावत ने मुख्य मन्त्री महोदय का ध्यान इधर आकर्षित किया था। मैं श्री शेखावत साहब का आभारी हूँ कि उन्होंने धोती की दुर्दशा की ओर ध्यान दिया। साथ मे मैं यह भी निवेदन करूंगा कि वे चोटी की ओर भी ध्यान दे। क्योकि चोटी का गहरा सम्बन्ध मनुष्य की बुद्धि विकास से है। जब मनुष्य की चोटी द्वारा सद्बुद्धि की रक्षा करनी होगी तो उसके मस्तिष्क मे धोती पहनने के लाभो का सूर्य उदय होकर उसकी अज्ञानता के अन्धकार को अवश्य दूर कर देगा।

आज समय उच्छृखलता को लिये हुए हैं बच्चे इस कुचक्र का शिकार हो चुके हैं। बड़े बच्चो को छोड़िये किन्तु मैं छोटे बच्चो के सिर पर चोटी रखना चाहता हू किन्तु कुछ बच्चे मखोल करते हुए चोटी को खैचते हैं और अवहेलना करते हैं। मैंने स्वय ने अपने जीवन मे सन् १९३१ या ३४ के बीच उस समय लगभग एक साल के चोटी नही रखी ? क्योकि इसके महत्व को नही समझता था। आज जनता जनार्दन के समक्ष अपनी तुच्छ बुद्धि के अनुसार अपने सिर पर चोटी रखने के महत्व को रखना चाहता हू। कोई भी मनुष्य किसी भी जाति का क्यो न हो, यदि वह गङ्गाजल, तुलसी जल एव गोदुग्ध पान करेगा, तो उसे लाभ होगा ही, चाहे वह मनुष्य किसी भी वर्ग का क्यो न हो। जो मनुष्य अपने रोग सब निर्वाणार्थ औषधि का सेवन करेगा, उसे लाभ होगा ही। औषधि सब के लिये है किसी जाति वर्ग का कोई प्रतिबन्ध नहीं है। जो भी मनुष्य अपने सिर पर चोटी रखेगा उसे लाभ होगा ही।

७५ वर्ष की आयु के बाद यदि कोई मनुष्य चोटी नही रखता है, तो कोई हानि की बात नही है। क्योकि इस उम्र मे मस्तिष्क खुद परिपक्व हो जाता है। किन्तु ७५ साल की आयु के पूर्व प्रत्येक व्यक्ति को चोटी रखनी चाहिये।

चोटी पर गाठ लगाने पर मस्तिष्क को सचेतन अवस्था में रखने मे वह सहायक होती है। किसी मनुष्य पर यदि भूत वगैरह का असर आ जाता है तो उसकी चोटी पकड़ कर ही उससे बातचीत की जाती है। हम पर भी फैशन का भयकर भूत सवार हो गया है। अत हमे भी अपनी अपनी चोटी सम्भालनी चाहिये।

कुछ वर्ग के लोग सध्या करते समय गायत्री मन्त्र उच्चारण कर अपना चोटी मे गाठ लगाते हैं। चोटी गाय के खुर के बराबर एक मनुष्य के सिर पर रखी जानी चाहिये। चोटी एक मनुष्य को अपनी सामाजिक, राजनैतिक, दार्शनिक एव धार्मिक स्तर को ऊचा उठाती है।

आजकल अधिकाश भारतीय अपने सिर पर चोटी नहीं रखते हैं। कुछ लोग कहते हैं कि झगड़ा हो जाने पर चोटी शत्रु के हाथ में सम्भवतया आ सकती है इसलिये उसे नही रखना चाहिये। मैं ऐसे विचारकों से यह पूछना चाहता हूँ, कि यदि शत्रु के हाथ मे नाक या कान आ जाय तो क्या उसे भी नहीं रखना चाहिये। इसके अतिरिक्त चोटी तो प्रभभाव रखना सिखाती हैं क्योकि यह एकता का चिन्ह हैं। चाहे राजा हो चाहे रक, चाहे वह ब्राह्मण या हरिजन सबको एक सूत्र मे बांधती हैं। सोचिये तो जरा कि अपने पूर्वज जो चोटी रखते थे क्या वे बेवकूफ थे जिन्होने यह प्रथा चलाई ? क्या वास्तव में हम अपने पूर्वजों से विद्वान हैं कुछ वर्ग के लोगो मे तो शिखा सूत्र को धारण करना एक आवश्यक सस्कारों मे से सस्कार माना है। यह दुर्भाग्य की बात है कि हम स्वय तो अपने पूर्वजो की छोटी सी छोटी शिखा रखने की वेदोक्त आज्ञा उल्लघन कर अपने बच्चो की अनुशासनहीनता की शिकायत करते हैं। अत: उन्हें चाहिये कि वे स्वय अपने पूर्वजो की बहुमूल्य वाणियो का उचित सत्कार करते हुये अपने जीवन मे काम मे लावे और अपने बच्चो के सामने अपने पूर्वजो की प्रति श्रद्धा प्रकट करे। ताकि उनके बच्चे भी उनकी आज्ञा का पालन करने को सदैव तत्पर रहे।

मोटे तौर पर आप यह भी सोचे की किसी गवर्नर की कार पर या किसी कलेक्टर के निवास स्थान पर राष्ट्रीय झण्डा क्यों फहराया जाता है। पुलिस के आई० जी० पी० की कार पर झण्डी क्यों लगाई जाती है। ठीक यही उद्देश्य एक मनुष्य के सिर पर चोटी रखने के भी हैं। भूत-पूर्व अलवर राज्य के महाराजा सवाई श्री जयसिंहजी के परम पूज्यनीय गुरु श्री मस्तराम हस परिव्राजकाचार्य श्री १०८ स्वामी हस स्वरूपजी ने अपने निरूपण चित्रण की पुस्तक मे पृष्ठ ४ पर लिखा है कि जिस प्रकार गढ़ के उच्च मकान पर जिसमें स्वयं शासक महाराजा बैठता है। एक झण्डी लगादी जाती है। उसी प्रकार इस शरीर रूपी गढ़ में जहां वह गुप्त रूप से निवास करता है, शिखा रूपी ध्वजा है। अर्थात् शिखा ब्रह्मरन्ध्र के स्थान को जानती हैं मेरे विचार से ब्रह्माण्ड की रक्षा करते हुये उसकी पुष्टि भी करती रहती है। सूरदासजी ने सूर पचरत्न के बालकृष्ण में यशोदा माता द्वारा कजरी गाय का दूध पीने से सबसे प्रथम अन्य लोगो के साथ चोटी बढ़ाने का लाभ बताया है। दूसरे नम्बर पर श्री के अधिक चढ़ने का लाभ बताया है फिर उम्र और बाल के बढ़ने का लाभ बताया है।

कजरी को पय पियहु लला तेरी चोटी बढ़े।
सब लरकन सुन सुन्दर तो श्री अधिक चढ़े ।।
जैसे देखि और ब्रज बालक लो बल वैस बढ़े।
कस केसि बक बैरिन के उर अनुदिन अनल दहे।
यह सुनकर कृष्ण दूध पीने लग गये।

दूध पीने के बाद श्री कृष्ण ने माता यशोदा से चोटी के ही बारे मे पूछा और अन्य लाभो को छोड़ दिया। मैया कबहि बढ़ेगी चोटी।
किती बार मोहि दूध पियत भई, यह अजहू है छोटी,
तू जो कहती बल की बेनी ज्यो ह्वै है लांबी मोटी,
काढ़त गुहत न्हावत ओछत नागिन सी भुई लोटी।

बाल काण्ड दोहा नम्बर २०२ के बाद गो-स्वामी श्री तुलसीदास जी ने श्री राम का बाल चरित्र वर्णन करते हुए लिखा है। चूडा करन कीन्ह गुरु जाई।

सुष्मना नाड़ी क्या है। योग के अनुसार इस शरीर में अन्य नाड़ियों के अतिरिक्त इड़ा पिंगला और सुष्मना नाम की ३ मुख्य नाड़ियां हैं।

इसमें सुष्मना मुख्य नाड़ी हैं। आयुर्वेद के अनुसार १४ मुख्य नाड़ियों में यह एक मुख्य नाड़ी है। मनुष्य के हृदय में १०० नाड़ियां हैं। उनमें से एक पर चक्र मनुष्य के शरीर के कई चक्रों को भेदती हुई कपाल की ओर निकलती है। इसी को सुष्मना कहते हैं। यह मनुष्य को ईश्वर से मिलाने वाली नाड़ी है। यही मनुष्य को अमृत देती है।

इसी में इच्छा शक्ति है, क्रिया शक्ति तथा ज्ञान शक्ति तीनों शक्तियां होती हैं। यह मूलाधार में सोये हुए हैं और आज्ञा चक्र में पहुंच कर भूत, भविष्य, वर्तमान का ज्ञाता बना देती है और मोक्ष का कारण बन जाती है।

ये कितने महत्व की चीजें हैं। इन्हें प्रत्येक व्यक्ति ठीक तरह से नहीं समझ पाता। ब्रह्मरन्ध्र को एवं सुष्मना के केन्द्रों की रक्षा चोटी के बालों से ठीक इसी तरह होती हैं, जैसे ऊनी कम्बल शीत से बचा सकता है और गर्मी से भी बचा सकता है। मसलन गर्मियों के दिन में बर्फ को कम्बल से ढक दीजिए वह पिघलेगी नहीं।

चोटी के बाल के सिर के अन्य बालों से बड़े होने चाहिए। जिससे कि वह एक प्रकार से एरियल (जो कि रेडियो में होता है) का काम कर सके। चोटी के बाल हवा में से ओक्सिजन (आक्सीजन) खींचते हैं। चोटी के बालों के बिना मस्तिष्क प्राण वायु नहीं खेंच सकता। चोटी पोषक वायु खींचने को पम्प का कार्य करती है। चोटी वाला उलझी हुई बातों को सुलझा सकता है और योगाभ्यास के योग्य होता है। शिखा के साथ बल वीर्य स्वास्थ्य और आध्यात्मिक शक्ति का घनिष्ठ सम्बन्ध है। क्योंकि गीता अध्याय १५ में शरीर को वृक्षस्वरूप माना है। जिसका मूल सिर है। इसका स्पष्टीकरण इस बात से भी होता है। कि बच्चा मां के गर्भ में उल्टा ही लटकता रहता है। जन्म लेते समय सिर पहिले बाहर आता है। श्रुतियों में भी इस शरीर को अश्वत्थ वृक्ष कहा है। क्योंकि यह शरीर एक उलटा ही वृक्ष है। जिसका मस्तक जो मूल रूप है। वह ऊपर की ओर है। शिखा के केश जड़े हैं। जड़ काटने से क्या वृक्ष पनप सकता है। इसलिये शिखा रूपी जड़ें मनुष्य रूपी वृक्ष के लिये अति आवश्यक हैं। क्योंकि वह अच्छी तरह फल फूल सकता है। भारतीय दृष्टिकोण से तो शिखा रखने का वेदों में महत्व कई स्थानों में बताया गया है। देखिये यजु० १७।४८ यजु १३।३२ अथ० ४।२२।१५।

किन्तु मैं आप लोगों से यह भी [illegible] हूँ कि पश्चिमी देश भी शिखा के महत्व से प्रभावित रहे हैं। इस सम्बन्ध में अंग्रेजों की धर्म पुस्तक बाइबिल में एक सामसन राजा की कहानी है। वह एक बड़ा प्रतापी राजा था। जिसने अपने शक्ति का कारण अपने सिर के केश बतलाये थे और जिसमें अपने इस भेद को अपनी प्रेमिका को बतलाकर अपने प्राणों से हाथ धोये।

मुसलमानों को भी मैंने उन्हें उनकी तुर्की टोपी काले धागों की चोटी लगाते देखा है।

फौजियों के टोपी पर पीतल और चांदी की कलंगी लगे हुये देखा है। पंजाबियों के साफों पर मैंने तुर्रा लगे हुए देखा है। पक्षियों में भी मोरे और मुर्गों के सिर पर कलगी होती है। पशुओं के भी गर्दन पर बाल होते हैं। इससे सिद्ध होता है कि मनुष्य को भी बाल रखने चाहिये। यह चोटी वह चोटी है, जो मनुष्य को श्रेष्ठ कामों की चोटी पर जाने को अग्रसर करती है। गोखुर के बराबर चोटी रखने से वीर्य की उर्ध्व गति होती है। उर्ध्वरेता ही जितेन्द्रिय होता है। जितेन्द्रिय होने से अनेकों लाभ हैं। अतः यह चोटी हमें सदा यह याद दिलाती रहती है कि हमारा ज्ञान विज्ञान सदा ऊंची चोटी का हो।

मित्रों वेदों में जो यश और लक्ष्मी की प्राप्ति के लिये शिखा रखने का विधान है। फिर यह क्या चाल चली है, क्या लहर उठी है कि जिधर देखो उधर तंग मोरी की पतलून और सिर पर शिखा गायब।

आज भारत के विद्या विद्यालयों को देखिये क्या हो रहा है। मैं तो राजस्थान विश्वविद्यालय को देखता रहता हूं। न गुरु के सिर पर शिखा न शिष्य के सिर पर। मेरे विचार से शिखा के कटने से उच्छृंखलता स्वाभाविक है। यह मूल कारण है कि बिना चोटी के बच्चों में कोई अनुशासन नहीं है।

हमारे भारत के पढ़े लिखे ब्राह्मण पतलून धारी प्रायः अपने सिर से चोटी साफ कराते हैं। किन्तु पश्चिमी देशों के विद्वान जिन्होंने इस सम्बन्ध में कुछ खोज की है। क्या कहते हैं जरा देखिये।

सर चर्ल्स पार्निल्यूक्स

चोटी का शरीर के सम्पूर्ण अंगों को संचालन होता है। जब से मैं चोटी के वैज्ञानिक महत्व को समझा हूं। तब से मैं स्वयं चोटी रखता हूं।

(सरस्वती सन् १९१४ अंक ७)

डा० यूमन

मैंने भारतीय संस्कृति का अध्ययन किया है। वहां के निवासी बहुत काल से सिर पर चोटी रखे है जिसका जिक्र वेदों में भी आया है। दक्षिण में तो आधे सिर पर गोखुर के समान चोटी रखते हैं। मैं उनकी बुद्धि विलक्षणता देखकर बहुत प्रभावित हुआ हूं। अवश्य ही बौद्धिक विकास में चोटी बड़ी भारी सहायता देती है। मैं स्वयं भी चोटी रखने का कायल हो गया हूं।

([illegible])

[illegible]

मैं जब चीन में भ्रमण करने गया। तब मुझे यह देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ कि चीनी लोग भी भारत वासियों की तरह आधे से अधिक सिर पर बड़े बाल रखते हैं। मैंने जब से इस विज्ञापन की खोज की तब से मुझे विश्वास हो गया है कि आर्य लोगों का प्रत्येक नियम या कार्य विज्ञान से ओत प्रोत है और चोटी रखना आर्य लोगों का धर्म ही नहीं है, अपितु सुषम्णा के केन्द्रों की रक्षा के लिये ऋषि मुनियों की खोज का विलक्षण चमत्कार है।

मि० अर्लथ मसन—

सुषुम्णा की रक्षा आर्य लोग चोटी रखकर करते हैं। और यूरोप के देश के लोग सिर पर बड़े बाल रखकर। मैं इन दोनों में से विज्ञान की दृष्टि से चोटी रखना अधिक उपयोगी समझता हूं। क्योंकि यह ठीक उसी स्थान की रक्षा करती है। जिसकी मनुष्य जीवन के लिये सबसे अधिक आवश्यकता है।

(बलार्थ मेगजीन सन् १९२१ अंक ७१ पृ० २९७०)

इस प्रकार धार्मिक, वैज्ञानिक और ऐतिहासिक सभी दृष्टि से मनुष्य के जीवन में चोटी रखना एक अत्यन्त महत्व की बात है। अतः प्रत्येक मनुष्य को चाहे वह किसी भी मत या सम्प्रदाय का मानने वाला हो। बाल, बुद्धि के लिए एवं मर्म स्थान की (जहां शिखा रखी जाती है और चोट लगने से तत्काल मृत्यु हो जाती है) रक्षा के लिए चोटी रखना आवश्यक है।

[illegible] को [illegible] सो [illegible] कि वह दूसरों को भी समाज [illegible] बुद्धि की वृद्धि करने में सहायक होवे।

गीता में अध्याय ३ श्लोक २१ में बतलाया गया है कि श्रेष्ठ पुरुष जो आचरण करता है अन्य पुरुष भी उनके ही अनुसार करते हैं, वह पुरुष जो कुछ प्रमाण कर देता है, लोग उसके अनुसार बरतते हैं।

अब थोड़ा आयुर्वेद और शारीरिक विज्ञान की दृष्टि से भी देखा जाय तो प्रकट है कि सुश्रुत वैद्य कहते हैं कि जहां शिखा रखी जाती है, वह बड़ी ही नाजुक जगह है। उसकी रक्षा शिखा के लम्बे बालों द्वारा ही होती है।

अनाटामी (शारीरिक विज्ञान) कहता है कि चोटी के नीचे का स्थान महत्व का है। इस हिस्से में पिटमकी (Pind Sland) के बीच ग्रन्थी रस बनाती है। यहां से नाड़ियों द्वारा सारे शरीर में रस जाता है। जिससे शरीर बलिष्ठ होता है। शिखा इस ग्रन्थी को अपना कार्य करने में बड़ी मदद देती है। जिससे मनुष्य स्वस्थ बलवान और ज्ञानवान होता है। चोटी आध्यात्मिक की ओर [illegible] ले जाने की प्रथम सीढ़ी है। मनुष्य को जब तक अक्षर ज्ञान नहीं है, तो वह किस प्रकार एम० ए० बी० ए० पास कर सकता है। इसी प्रकार जब तक मनुष्यों को चोटी रखने का भी अपने पूर्वजों की वेदोक्त आज्ञानुसार [illegible] [illegible]

([illegible])

## श्री स्वामी कार्ष्यानन्द जी सरस्वती का मध्य प्रदेश में प्रचार-भ्रमण

अगस्त मास के अन्तिम सप्ताह से यह प्रचार यात्रा श्रीमान् स्वामी कार्ष्यानन्द जी सरस्वती ने रतलाम से प्रारम्भ की। दिनांक २४ अगस्त से ४ सितम्बर तक आपने आर्य समाज रतलाम मे प्रचार किया। इस अवसर पर पारिवारिक, सार्वजनिक अनेको सम्मेलन सभायें आयोजित की गई, जिसमे आपने आर्य समाज की आवश्यकता तथा वैदिक धर्म की महत्ता पर प्रकाश डालते हुए राष्ट्र मे फैले अराष्ट्रीय तत्वो से सावधान रहने पर विशेष बल दिया। लगभग १०१ स्त्री पुरुषो का यज्ञोपवीत संस्कार कराया।

दिनांक ५ सितम्बर से ११ अक्टूबर तक झाबुआ जिले की आर्य समाजो तथा अराष्ट्रीय प्रचार केन्द्रो मे वेद प्रचार कर राष्ट्रीयता तथा धर्म के सम्बन्ध मे नव संदेश दिया। इस क्षेत्र मे लगभग ४० हजार हिन्दू ईसाई बनाये जा चुके हैं। इस क्षेत्र मे त्यागी, तपस्वी वानप्रस्थी प्रचारको की घर २ घूम कर प्रचार की बड़ी ही आवश्यकता है। यहा स्वामी जी ने कई ईसाई परिवारो को वैदिक धर्म मे दीक्षित किया।

१७ सितम्बर से कुशलगढ थांदला पेटलावद क्षेत्रो मे स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी महाराज के सहयोग से प्रचार कार्य प्रारम्भ किया।

स्वामीजी मे इस क्षेत्र के भीलो के प्रचार की तीव्र लगन है। धर्म तथा सभी राष्ट्र प्रेमियो से राष्ट्र तथा संस्कृति की सहायतार्थ जनता से तन, मन, धन से शीघ्र सभा को सक्रिय सहयोग देने की अपील की है। अन्यथा यह समस्त क्षेत्र अराष्ट्रीय बन जायगा।

### प्रचार

दिनांक ११ १० ६९ को कर्मवीर जी वानप्रस्थी द्वारा ग्राम मोतीपुरा मे गुमानजी के निवास स्थान पर समस्त ग्रामवासियो के सहयोग से यज्ञ कार्य तथा प्रचार कार्य सम्पन्न किया गया।

दिनांक १८ १० ६९ को इन्ही वानप्रस्थी जी ने बादनवाडा ग्राम मे श्रीमान् रंगलाल जी कुमावत की अध्यक्षता मे आर्यसमाज शाखा बादनवाडा की स्थापना की। इस अवसर पर उपस्थिति करीब ५० की थी। हवन तथा प्रचार कार्य सफलता पूर्वक सम्पन्न हुआ।

दिनांक ५ ११ ६९ को ग्राम मानपुरा मे श्री कालूसिंह के मकान पर यज्ञ कार्य सम्पन्न किया गया। इस यज्ञ मे श्री कालूसिंह के ज्येष्ठ पुत्र श्री भैरासिंह सपत्नीक बैठे। ग्रामवासियो के लिए यह कार्य बड़ा ही प्रभावोत्पादक रहा। आर्यसमाज के कार्य नियम तथा अन्य विषयो पर विस्तृत वार्तालाप हुआ।

इसी प्रकार थोलादाता ग्राम व मसुदा ग्राम के अन्य आसपास के ग्रामो में इसी प्रकार का प्रचार कार्य श्रीमान् कर्मवीर जी वानप्रस्थी के सतत् प्रयत्नों द्वारा सफलता पूर्वक नियमित रूप से सम्पन्न हो रहा है।

अभिमराम पुरोहित
मन्त्री
आर्यसमाज मसुदा

## पुस्तक समीक्षा

"परिवार नियोजन-राष्ट्रीय संकट" संग्रहकर्ता श्री छगनलाल कश्यप पुस्तक प्राप्ति स्थान—भरत आयुर्वेद गृह उद्योग सदन आनासागर, कृष्णगंज अजमेर मूल्य ३० पैसे।

आज हमारे देश में परिवार नियोजन का सर्वत्र शोर सुनाई पड़ता है। अमरीकी सहायता से प्राप्त धन का उपयोग लोगो को पुंसत्वहीन बनाने मे किया जा रहा है। देश की जनशक्ति का ह्रास करने का यह एक नियोजित षड्यन्त्र है और खेद है कि सरकार के द्वारा ही इसका प्रचार किया जाता है। यह सत्य है कि आर्थिक स्थिति का सुधार तभी सम्भव है जबकि परिवार के सदस्यो की संख्या मर्यादित हो, परन्तु सन्तान का कम उत्पन्न होना कृत्रिम उपायो को काम मे लाने पर उतना निर्भर नही है जितना आत्म संयम से। बात बात मे महात्मा गांधी की दुहाई देने वाले लोग यह भूल जाते हैं कि गांधीजी परिवार नियोजन के लिये कृत्रिम उपायो को काम मे लाने के घोर विरोधी थे।

परन्तु समस्या का एक दूसरा पहलू भी है। यह परिवार नियोजन का विचार आज भारत के हिन्दुओ मे ही अधिक व्यापक हो रहा है। मुसलमान और कैथोलिक ईसाई इसे अपनी धार्मिक मान्यताओ के विरोध मे होने के कारण स्वीकार नही करते। ऐसी दशा मे यह सोचना पड़ेगा कि यदि परिवार नियोजन के कार्यक्रम को एकांगी रूप से केवल हिन्दुओ ने ही स्वीकार किया तो इससे उनका अल्पमत मे हो जाना सुनिश्चित है। हिन्दुओ को तो कानूनन एक पत्नीव्रती होने के लिये बाध्य किया जाता है, जबकि मुस्लिम सामाजिक विधान मे संशोधन करने के सरकार को हिचकिचाहट होती है। यद्यपि श्री मुहम्मद करीम चागला जैसे सुशिक्षित और प्रगतिशील मुसलमान यह स्पष्ट कर चुके हैं कि कुछ कट्टर पंथी मुल्ला मौलवियो की चिंता किये बिना ही सरकार को मुस्लिम कानूनो में संशोधन करना ही चाहिये। अस्तु। श्री कश्यपजी ने इस पुस्तक मे परिवार नियोजन से उत्पन्न राष्ट्रीय विभीषिका का ज्वलन्त चित्र उपस्थित किया है। जगद गुरु शंकराचार्य, सर्वोदयी नेता विनोबा भावे, राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ के प्रधान गुरु गोलवलकर आदि नेताओ तथा धर्माचार्यों की सम्मतियो का संग्रह कर इस लघु पुस्तिका मे स्पष्ट कर दिया गया है कि परिवार नियोजन के क्रियान्वित होने से हिन्दुओ के ऊपर आने वाले आसन्न संकट की सम्भावना कम नहीं है। इसी प्रकार आयुर्वेद शिरोमणि प. ब्रह्मानन्द जी त्रिपाठी तथा आचार्य भद्रसेनजी आदि की सम्मतिया भी उल्लेखनीय है। इस पुस्तक का सर्व सामान्य मे प्रचार युग की आवश्यकता है। संग्रहकर्ता की हार्दिक इच्छा है कि उसका प्रचार भारत के कोने २ मे हो। अधिक संख्या मे वितरण करने के लिये आर्य संस्थाओ तथा दानी सज्जनो को लागत मात्र पर १५) रु० सैकडा के भाव से यह पुस्तक उपर्युक्त पते पर अथवा वैदिक यन्त्रालय केसरगंज, अजमेर से उपलब्ध कर सकते हैं।

डा. भवानीलाल भारतीय
एम ए. पी. एच. डी.

( शेष पृष्ठ ६ का )

राष्ट्र ने पांडिचरी के स्वामी विवेकानन्द का स्मारक पालन रखने की क्या आशा की जा सकती है? एक बहुत बड़ी द्रव्य राशि इकट्ठी कर बनाया है। स्वामी विवेकानन्द जी ने आठ धर्म किया करने का जो उपदेश दिया है, उसको पालन करने के लिये हम लोगो मे फैशन की हवा मे क्या आशा की जा सकती है।

प्राचीन काल मे हमारे पूर्वजो ने चोटी की रक्षार्थ क्या क्या किया है। यहा तक कि बच्चो ने अपने प्राणो को भी दे दिये हैं। यह इतिहास बताता है। आज दुख की बात है कि हम पर फैशन का भूत सवार है और हम अंग्रेजी पहनावे को अपनाते हुए अपने सिर पर चोटी रखना एक लज्जा की बात समझते हैं। मनुष्य को चाहे वह ईसाई मुसलमान फारसीवाद इत्यादि कोई भी क्यो न हो। अपने सिर पर चोटी अवश्य रखना चाहिये, इससे अवश्य उनकी बुद्धि का विकास होगा।

अन्त में मैं प्रभु से यही प्रार्थना करता हू कि प्रभो सब को सद्बुद्धि दो और—

सर्वे भवन्तु सुखिनः, सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु, मा कश्चिद् दुःख भाग भवेत् ॥

## ऋषि दयानन्द

लेखक : भैरूलाल शर्मा आर्य पुरोहित छोटी सादड़ी

सच्चा मसीहा बनकर आया है दयानन्द।
दीनो की दवा बनकर, आया है दयानन्द ॥
चो तरफा मुसीबत की छाई थी घटा बनकर।
खुद भाई मुकाबिल थे दुश्मन की तरह तनकर।
खुद का पता नही था, सोये थे नशा पीकर।
आपस मे बाते करते क्या रक्खा है अब जीकर।
जीने की सलाह लेकर, आया है दयानन्द। दीनो। १।
आगे बढा सभी के खम्भ अपना ठोककर।
नुस्खा बताया हमको, वेदो को खोलकर।
ऐलान किया सबको जबां अपनी खोलकर।
आज भी सब मैदान मे ताकत को तोलकर।
मुक्के को अपना तानकर आया है दयानन्द। दीनो। २।
भूले हुए थे ईश्वर पूजते थे ऊत भूत।
कबरा मे सर को मारते, थे पूजते न बूत।
थे ऐरे गेरे साथ मे सैकड़ो यम दूत।
कम कम के मारते थे, हिन्दू के सर मे जूत।
दीवान उनका बनकर आया है दयानन्द। दीनो। ३।
भगवान की माया को काबू मे किया था।
पूजन का हक हर एक को हरगिज न दिया था।
खाना व पीना बैठना तक बंद किया था।
यूं घर मे घर के दुश्मन को पैदा किया था।
हमदर्द उनका बनकर आया है दयानन्द। दीनो। ४।
खाने व पीने मे अब कहते दोष नी।
अब जरा भी मन मे रहा कुछ भी जोश नी।
हर रग व हर जर्रे मे, अब उसकी रोशनी।
भागे बचा के जान, रहा कुछ भी होश नी।
झूठो का काल बनकर आया है दयानन्द। दीनो। ५।
अब बच्चियें भी पढ रही शूद्र भी पढ रहे।
तकदीर जिनके बंद थे अब उनके खुल रहे।
पढ पढ के देखो आज, मिनिस्टर भी बन रहे।
सदियो से जो दबे थे वही अब उभर रहे।
मल्लाह उनका बनकर आया है दयानन्द। दीनो। ६।
अब साफ शुद्ध बनकर कोई भी आइये।
वेदो को पढो प्रेम से इज्जत बढाइये।
हर गन्दगी को अपने दिल से हटाइये।
ऐ शर्मा भैरु आजम पै बैठ जाइये।
आज्ञा प्रभु की लेकर, आया है दयानन्द। दीनो। ७।

[illegible]
[illegible] 14

## सभा की सहायतार्थ दि० १९ नवम्बर ६९ को ऋषि मेला अजमेर के शुभअवसर पर अराष्ट्रीय ईसाई प्रचार निरोध मध्ये अपील द्वारा प्राप्त धन राशि—

२) स्वामी ओमानन्दजी अजमेर, १) श्री जगदीशचन्द्रजी सरकार, ५) श्री [illegible]जी [illegible] (अजमेर) ११) गुप्त दान द्वारा श्री [illegible] प्रकाशजी अजमेर, ११) मन्त्री आर्यसमाज [illegible] २) श्री [illegible] (होशगाबाद) ५) श्री [illegible] मुजफ्फर नगर, २) श्री ओम्प्रकाशजी गुप्त आर्यसमाज बांदीकुई, २) श्री [illegible] [illegible] ५) श्री [illegible] पटवारी अजमेर, १०) श्री [illegible] आर्य पूर्वी पटेल नगर नई दिल्ली ८, ५) श्री [illegible] [illegible], ५) श्री [illegible] जोधपुर, १०) श्री महावीरजी [illegible] नेशनल होजरी अजमेर १) श्री [illegible] भारद्वाज अजमेर, २) श्री विष्णुचन्द्रजी [illegible] अजमेर, १) श्री रामदेवजी [illegible] १) श्री [illegible] [illegible], ९) श्री [illegible] [illegible], १) श्री तुलसीरामजी अजमेर १) श्री मूलचन्दजी अजमेर, ५) श्री लक्ष्मीनारायणजी रिटायर्ड स्टेशन मास्टर अजमेर, ५) श्री रामजीवनजी जोधपुर, ११) श्री[illegible] एम पटेल प्रधान आ० स० जामनगर ५) श्री राधाकिशनजी [illegible] १ श्री [illegible]जी [illegible] रतलाम, ५) श्री [illegible]जी आर्य जयपुर, ५) श्री [illegible] आर्य [illegible] (कश्मीर) १) श्री सत्यदेवजी फुलेरा १) श्री [illegible]लालजी, १) श्री करतारसिंहजी सीकर, ११) श्री लक्ष्मीचन्द जी शर्मा [illegible] २) श्री देवीलालजी [illegible], १) श्री तुलसीचरणजी आर्य, २) श्री [illegible]लालजी, १) सुश्री [illegible] नारंग, १) श्री [illegible] [illegible] १) श्री [illegible]जी नसीराबाद १) श्री [illegible] जी नसीराबाद २) श्री [illegible]जी १) श्री मनोहरजी १) श्री प्रीतमसिंहजी [illegible] ५) सुश्री [illegible]जी, १) सुश्री [illegible] (मराठनीय) १) श्री तुलसीराम १) श्री नोरतमल १) सुश्री प्रेमवती, २) सुश्री तेजवती, १) श्री भगवान सरन २) श्री चन्द्रप्रकाश, १) श्री जसराजजी R A S [illegible] २) श्री [illegible]जी टाक [illegible] [illegible], १) सुश्री [illegible]देवी, २) श्री [illegible] कृषि विभाग अजमेर, २) श्री मुन्नीलालजी आर्य [illegible] [illegible], १) श्री [illegible]दासजी, ५) श्री फूलचन्दजी [illegible] अजमेर। १८२) योग

### बनेड़ा में प्रचार

दीपावली दि० ९ ११ ६९ ई० को "महर्षि निर्वाणोत्सव आयसमाज राजपुर बनेड़ा (मेवाड़) की ओर से श्रीमान् राजाधिराज हेमेन्द्रसिंहजी की अध्यक्षता मे ४२ वर्षों मे प्रथम बार बड़े समारोह के साथ सम्पन्न हुआ।

सन्ध्या, यज्ञ, ध्वजारोहण शोभा यात्रा (नगर कीर्तन) के उपरान्त आर्यसमाज मंदिर प्रांगण में श्रीमान् राजाधिराज हेमेन्द्रसिंहजी श्री [illegible] [illegible] मन्त्री आर्यसमाज श्री प० राम[illegible]जी शर्मा एवं श्री [illegible] मुहम्मदजी प्रधानाध्यापक के प्रभाव शाली भाषण हुए।

## जगमग ज्योति जली !

कविवर—श्री प० [illegible] जी कविरत्न, अजमेर

उठ चल देख सखी !
ऋषि मेले में स्नेह-शान्ति की,
सरिता उमड़ चली !
आनासागर के [illegible] तट पर,
ऋषि उद्यान मनोहर सुन्दर,
जहां वेद मन्त्रों से सस्वर,
नित्य यज्ञ कर रहे विज्ञवर,
है जिसकी सुगन्ध से सुरभित,
उपवन, हाट, गली,
उठ चल देख सखी !
वाद-विवाद विविध सम्मेलन,
योग-कथा, व्यायाम प्रदर्शन,
[illegible]-कविता [illegible]-प्रवचन,
करते [illegible] [illegible]-मन,
हरती सकल, शूल-व्यथा सब,
वैदिक कथा भली,
उठ चल देख सखी !
आर्य सुहृद परिवार संग ले,
आये 'स्पेशल' में उमङ्ग ले,
तू भी अपना अङ्ग अङ्ग अब
भक्ति प्रेम के रङ्ग रङ्ग ले,
सच्चा रङ्ग यही, सब झूठे
और रङ्ग पगली,
उठ चल देख सखी !
भक्ति एक सच्चिदानन्द की,
सिखलाई [illegible] भक्ति [illegible] की,
टूटी सब छल छन्द फन्द की,
हुई दया ऋषि दयानन्द की,
जिन के तप से वेद ज्ञान की,
जगमग ज्योति जली।
उठ चल देख सखी !

(यह कविता ऋषि मेला के अवसर पर दिनांक १४ नवम्बर को आयोजित कवि सम्मेलन के अध्यक्ष पद से श्रीमान् 'कविरत्न' जी ने समस्या पूर्ति करके पढ़कर सुनाई थी)

### वार्षिक उत्सव !

आर्य समाज परमानन्द बस्ती बीकानेर का वार्षिकोत्सव दिनांक २६ अक्टूबर से ९ नवम्बर तक सानन्द सम्पन्न हो गया। जिसमे भारत के उच्च कोटि के आर्य विद्वानों ने भाग लिया।

### मैसूर राज्यपाल डा० धर्मवीर ऋषि उद्यान में

डा० धर्मवीर ऋषि उद्यान पधारे महर्षि स्वामी दयानन्दजी के हस्तलेख व वस्तु प्रदर्शनी देखी, परोपकारिणी सभा के मन्त्री श्री श्रीकरण शारदा व प० [illegible]जी [illegible] ने गवर्नर महोदय का स्वागत किया और सत्यार्थप्रकाश आदि पुस्तकें भेंट की, गवर्नर महोदय ने ऋषि उद्यान को अजमेर का उत्तम तथा पवित्र स्थान बताया। वहां से श्री धर्मवीरजी शारदा भवन पधारे जहाँ शारदा परिवार के सदस्यों के साथ चाय पान किया।

## महर्षि दयानन्द काशी शास्त्रार्थ शताब्दी पालन [illegible] [illegible]

गत दो सप्ताहों में हमें शताब्दी के सम्बन्ध में लखनऊ, वाराणसी, मथुरा, दिल्ली आदि स्थानों के कार्यों मे शताब्दी के लिए उत्साह की लहर का संचार देखा। आर्य जन, तन, मन, धन से सहायता करने को उद्यत देखें। अनेक स्थानो पर जाने वालों की सूचि तैयार की जा रही है और दान एकत्रित किया जा रहा है। वाराणसी में स्वागत समिति तथा उसके अधीन विभिन्न प्रबन्ध कार्यों के लिए उपसमितियों की स्थापना हो गई है। स्वागत समिति समिति का सदस्यता शुल्क १०) रु० से १००) रु० तक रखा गया है। ५१ रु० देने वाले अनेक सदस्य बन चुके थे। स्वागत समिति का ४०,००० रु० का बजट रखा गया है। आगन्तुकों के ठहरने का प्रबन्ध डी० ए० वी० डिग्री तथा इण्टर कालेज, [illegible] इण्टर कालेज आदि मे किया गया है। २५ से० हजार नर नारियो के बैठने के लिए सभा मण्डप बनाने का निश्चय किया गया है।

लखनऊ में आर्य प्रतिनिधि सभा के कोषाध्यक्ष श्री मदनलाल जी श्री कृष्ण बलदेव जी आदि धन-संग्रह आदि मे सहयोग दे रहे हैं। यहां से कम से कम तीन एक-एक हजार रुपये की दक्षिणा देने वाले यजमान बन रहे हैं। शताब्दी का कार्यालय-५ मीराबाई मार्ग, लखनऊ मे खुल गया है, जहां से सब प्रकार की सूचनाएं मिल सकती हैं।

देहली मे न [illegible] उत्साह देखा। सर्वश्री प्रकाशवीर [illegible] [illegible]कुमार शास्त्री, रामनाथजी सहगल डेपुटेशन [illegible] [illegible] प्रतिष्ठित दानी महानुभावों से मिल रहे हैं। उन्हे आशा से अधिक सफलता मिल रही है। कई सज्जन यजमान बनके [illegible] का [illegible] करने को तैयार हो गये हैं। उनकी सूची अगले सप्ताह दी जावगी।

स्वागत समिति का कार्यालय 'आर्यसमाज [illegible], वाराणसी' मे खुल गया है। आर्यसमाजो को चाहिये कि अपने यहां से जाने वाले नर नारियों की संख्या पहुंचने के दिन, समय आदि की सूचना भेज देनी चाहिए। व्यक्तिगत रूप से जाने वालो को भी ऐसा ही करना चाहिए।

महेन्द्रप्रताप शास्त्री
संयोजक

---

### आर्य डायरी १९७०

प्रकाशित हो गई है। प्रत्येक पृष्ठ पर वेदों की सूक्ति, सन्ध्या, हवन मन्त्र, आर्यसमाज के नियम, [illegible] के [illegible] [illegible], वैदिक [illegible], आर्य पर्व, राष्ट्रीय प्रार्थना तथा अन्य [illegible] सूचनायें दी गई हैं। मूल्य १)५० पैसे दर्जन १३)५०, पॉकेट आकार १) रु० दर्जन का १०)५०, डाक व्यय [illegible]। ४ से कम न मंगावें।

### महर्षि कलैण्डर १९७०

१२ पृष्ठ का प्रत्येक पृष्ठ पर महर्षि दयानन्द की जीवनी। १ कलैण्डर १० पैसे, २५ के ७) रु० १०० के २०), डाक व्यय अलग।

पता:—
गुरुकुल [illegible] [illegible], [illegible]

श्री प० भगवानस्वरूपजी "न्यायभूषण" के प्रबन्ध से वैदिक यन्त्रालय अजमेर में मुद्रित और [illegible] [illegible], [illegible] [illegible] आर्य दयानन्द आश्रम, केसरगंज अजमेर से प्रकाशित। अधिष्ठाता—श्रीमान् डा० [illegible]जी [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

आर्य प्रतिनिधि सभा राजस्थान का मुख-पत्र

रजि० नं० जे १४



# आर्य मार्तण्ड

दयानन्द आदित्य से पाकर ज्योति प्रचण्ड। ध्वंस दम्भ पाखण्ड का करे आर्यमार्तण्ड॥

वर्ष ४७ | वार्षिक मूल्य ४) रुपया | सम्पादक—श्री ओमप्रकाश वानप्रस्थ (रामसहाय शर्मा) अजमेर मार्गशीर्ष शु० ७ सं. २०२६ वि., दि. १५ दिसम्बर ६९ दयानन्दाब्द १४५ | एक प्रति का २० पै० | अङ्क २०

## ईश्वर-प्रार्थना

ओ३म् तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः दिवीव चक्षुराततम् ॥

ऋ० १।२।७।६०।

हे विद्वानों और मुमुक्षु जीवो! विष्णु का जो परम प्रत्यन्तोत्कृष्ट पद सब के जानने योग्य, जिसको प्राप्त होके पूर्णानन्द में रहते हैं फिर वहाँ से शीघ्र दुःख में नहीं गिरते उस पद को धर्मात्मा जितेन्द्रिय सब के हित कारक विद्वान् लोग यथावत् अच्छे विचार से देखते हैं वह परमेश्वर का पद है जिस दृष्टांत से कि जैसे आकाश में नेत्र की व्याप्ति वा सूर्य का प्रकाश सब ओर से व्याप्त है। वैसे ही परब्रह्म सब जगह में परिपूर्ण रस भर रहा है। वही परम पद स्वरूप परमात्मा परम पद है, इसी की प्राप्ति होने से जीवन सब दुःखों में छूटता है। अन्यथा जीव को कभी परम सुख नहीं मिलता। इससे सब प्रकार परमेश्वर की प्राप्ति में यथावत प्रयत्न करना चाहिए। —महर्षि दयानन्द

## पद्यानुवाद

वह जन विष्णु महा-पद-पाते,
सुखकर जो श्रुति सूर कहाते।
दिवि, जन, चक्षु-वितान बनाते,
परम, प्रकाश, सबे हरषाते॥

—डा० सूर्यदेवजी शर्मा एम ए डी लिट्

### हार्दिक बधाई

सौभाग्यकांक्षिणी रेणु दौहित्री स्व० चाण्करण जी शारदा (तथा सुपुत्री श्री डा० गणेशप्रसादजी [illegible]) का शुभविवाह जोधपुर निवासी श्री दामोदरलालजी काबरा के सुपुत्र श्री मधुसूदनजी काबरा के साथ [illegible] में आनन्द सम्पन्न हो गया। इस अवसर पर नगर के गण्यमान्य प्रतिष्ठित नागरिक तथा अधिकारीगण उपस्थित थे। विवाह वैदिक रीति से सम्पन्न हुआ। आर्य मार्तण्ड परिवार नव दम्पती को अपनी शुभ कामनायें एवं बधाई अर्पित करता हुआ परमपिता परमात्मा से प्रार्थना करता है कि वर वधू स्वस्थ, सुखी एवं समृद्ध रहते हुए जीवन में [illegible] पथ पर अग्रसर रहें। [illegible] का जीवन सदा उज्ज्वल एवं आदर्श हो।

## अमर हुतात्मा स्वामी श्रद्धानन्द जी!



स्वामीजी का बलिदान दिवस दिनांक २३ दिसम्बर ६९ को समस्त आर्य जगत् मनाकर उस दिव्य विभूति को अपनी हार्दिक श्रद्धांजलि अर्पित कर रहा है।

### सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा देहली का निश्चय

सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा देहली की अन्तरंग सभा ने निश्चय किया है कि २३ से २८ दिसम्बर ६९ को होने वाले महर्षि दयानन्द काशी शास्त्रार्थ एवं पाखण्ड खण्डिनी पताका शताब्दी समारोह आर्यों के सार्वजनिक सार्वभौम महोत्सव हैं। उन्हें सफल बनाने के लिए आर्य जनता को तन, मन, धन से सहयोग देना चाहिये और आर्य-समाज की शक्ति का विराट प्रदर्शन करने के लिए वहां अधिक से अधिक संख्या में पहुंचना चाहिये।

उमेशचन्द्र स्नातक
उपमंत्री सभा

### महर्षि दयानन्द महाविद्यालय में अन्तः राज्य वादविवाद प्रतियोगिता

श्री गंगानगर। स्थानीय महर्षि दयानन्द कालेज में एक विशाल अन्तःराज्य वादविवाद प्रतियोगिता का आयोजन किया। आयोजन की अध्यक्षता माननीय श्री तारचन्द शर्मा तथा संयोजन प्रो० चम्पालाल गुप्त ने किया। प्रतियोगिता में राजस्थान पंजाब हरियाणा देहली चण्डीगढ आदि प्रान्तों एवं केन्द्र शासित प्रदेशों की १७ टीमों ने भाग लिया। श्री गंगानगर जिले में इस स्तर का यह प्रथम बड़ा आयोजन था।

वाद विवाद प्रतियोगिता का परिणाम निम्नानुसार रहा—

प्रथम श्री जोतेन्द्रसिंह पंजाब विश्वविद्यालय चण्डीगढ।

द्वितीय—श्री विनोदकुमार दवे जी बी पोद्दार कालेज नवलगढ।

श्री विजय कुमार बतरा महर्षि दयानन्द कालेज श्री गंगानगर।

तृतीय—श्री भागीरथ राजकीय महाविद्यालय कोटा। श्री पवन कुमार अग्रवाल महर्षि दयानन्द कालेज श्री गंगानगर।

इनके अलावा श्रेष्ठ स्तर प्रदर्शित करने पर राजकीय महाविद्यालय कोटा के छात्र महावीरसिंह हाडा शारदा सदन कालेज मुकुन्दगढ के छात्र श्री सुधीर कुमार जोशी यूनिवर्सिटी कामर्स कालेज, जयपुर के छात्र श्री जगदीश कातिल जी बी पोद्दार कालेज नवलगढ के छात्र श्री मधुसूदन शर्मा एवं मुकुन्दगढ के श्री आत्माराम शर्मा को विशेष सान्त्वना पुरस्कार दिए गए। वाद विवाद का स्तर पर्याप्त उच्च एवं प्रशंसनीय रहा। चल वैजयन्ती राजकीय महाविद्यालय कोटा को प्राप्त हुई।

# गीतोक्त विषाद-योग और उसकी पृष्ठ-भूमि

लेखक—श्री पण्डित जगत्कुमार जी शास्त्री "साधु सोमतीर्थ" देहली

१—कौरवो और पाण्डवो के पारस्परिक विद्वेष को समाप्त करने के सभी उपाय व्यर्थ हो गये। महात्मा विदुर और योगेश्वर श्री कृष्ण जैसे नीतिज्ञ भी कुछ न कर सके। अन्त में महा भयंकर युद्ध का क्रूर प्रसंग जो देर से येनकेन प्रकारेण टाला जा रहा था, सामने आ ही गया। कुरुक्षेत्र के रणांगण में पक्ष और विपक्ष एक दूसरे के सामने डट गये। अब-तब मे ही युद्ध के धौंसे दनदना उठेगे, शंखनाद गूंजने लगेंगे, युद्ध के मारू बाजे बजेंगे। लोहे से लोहा टकराने और झनझनाने लगेगा। बारूद की बदबू दिग्दिगान्तरों में फैल जायेगी। तीरों की सरसराहट, कमानों की टङ्कार, तलवारो के छपाके, सिपाहियो की खट-पट, मार-पछाड़, हाय-हू और चीख-पुकार आदि-आदि के महा भयकर शब्द सुनाई देंगे। वह समय अब समीप ही है, जबकि खून-खराबी और महा विनाश के दृश्य दिखाई देंगे। हजारो साल के लिये भारत का ज्ञान-विज्ञान, कला-कौशल, बल-वैभव, मान-सम्मान, सस्कृति, साहित्य, सुख, शान्ति, स्वातन्त्र्य आदि-आदि सब कुछ नष्ट-भ्रष्ट हो जायेगा। उन्नति और प्रगति के सभी मार्ग रुद्ध हो जायेंगे। विधवायें रोयेंगी, अनाथ चिल्लायेंगे, बूढ़े तड़पेंगे, विदेशी शक्ति दुर्बल और अरक्षित भारत पर चढ़ आयेंगी।

२—अर्जुन पाण्डव-पक्ष का एक बहुत बड़ा योद्धा है। वह धर्मराज युधिष्ठिर का मझला भाई है, कुन्ति का लाडला, देवी द्रौपदी का पति श्री कृष्ण का बहनोई भी, प्राण-प्यारा मित्र भी। उसने अपने भाइयो तथा अन्य पारिवारिकजनो के साथ वर्षों तक कौरवो के अत्याचारो को सहन किया है। परन्तु सहनशीलता की भी एक अन्तिम सीमा है। आज वह जंगी-रथ मे सवार और युद्ध के लिये अस्त्र-शस्त्र आदि से सुसज्जित होकर युद्ध-स्थल मे आया है। वह एक वीर क्षत्रिय है। क्षात्र-धर्म और वीरो के कर्त्तव्यो को वह भली प्रकार जानता है। प्रस्तुत युद्ध के वास्तविक कारणो को भी वह अपने व्यक्तिगत परिज्ञान और अनुभव के आधार पर यथावत् जानता है। धृतराष्ट्र की मक्कारियो, दुर्योधन की बेइन्साफियों और दुशासन की दस्तादराजियो का बदला चुकाने का अवसर एक मुद्दत के बाद आज उसे मिला है। उसे अपने बल और अपने पक्ष की सत्यता पर भरोसा है।

३—युद्ध के आरम्भ में अर्जुन दोनों तरफ की सेनाओ को जरा उचटता-सी नजरो से देख लेने की इच्छा प्रगट करता है। श्री कृष्णजी, जो कि सारथी के रूप मे रथ पर मौजूद है, रथ को ले जाकर दोनों सेनाओ के मध्य मे खड़ा कर देते हैं।

४—अर्जुन देखता है—पूज्य गुरुजन, प्रिय मित्र, बेटे, पोते, भाई, बान्धव, बाप-दादा, ताऊ-चाचा, मामा-नाना, शूरवीर और महान विद्वान् सबके सब लाखो की सख्या में एक दूसरे के खून के प्यासे बनकर आमने-सामने खड़े हैं। कोई पाण्डवों का तरफदार है, कोई कौरवों का पक्षपाती। उनको देखकर, सहसा ही उसे ध्यान आता है, उस विनाश-लीला का और महाभयंकर खून खराबी का, जो अब बहुत शीघ्र ही आरम्भ होगी। विधवाओं और अनाथों के चित्र उसकी नजरों में घूमने लगते हैं। घायलों, पीड़ितों और शोक-सन्तप्त जनों के चीत्कार, हाहाकार, विलाप और रुदन उसे सुनाई देते हैं। मौत के भयानक दृश्य और प्रियजनों के चिरवियोग का भी उसे ख्याल आता है। उसे स्मरण हो जाता है अपनी सुनी हुई, सोची हुई, पढ़ी हुई, तरह-तरह की बातों का। एक नया सघर्ष उसके दिल और दिमाग में पैदा हो जाता है। वह अपने आप को एक धर्म-संकट में फसा हुआ पाता है। उसके मन में किंकर्त्तव्य विमूढ़ता समा जाती है, शरीर में कम्प पैदा हो जाता है, जड़ता हाथों और पांव को जकड़ लेती है। उस की शक्तियां साथ छोड़ देती हैं। वह बेचैन हो हो जाता है और भारी मानसिक उत्पीड़न में फंस जाता है। अपनी शूरवीरता, अपने क्षात्र-धर्म और अपने युद्धादर्शों को भी वह बिसार देता है। सत्य और न्याय की रक्षा भी अब वह नहीं कर सकता। युद्ध करने की अपेक्षा अब तो वह भीख मांग-मांग खाना भी उचित समझता है। उस पर भारी उदासी छा गई है। वह एक भयंकरतम मानस-रोग उन्माद में फस गया है। तीर-कमान को उसने परे फेंक दिया है वह सिर लटकाये धरती पर बैठा है। उसका विषाद अत्यन्त तीव्र है।

५—श्री कृष्णजी की बंसरी बजने लगती है। एक मधुर, मादक, सुरीला, उत्तेजक, दिव्य और अमर सगीत दिशाओं-उपदिशाओं में प्रतिध्वनित होकर गूंजने लगता है। वह अब शीघ्रता से अर्जुन के सशय-जाल को छिन्न-भिन्न करके उसके कर्त्तव्य पथ को सुप्रकाशित कर देता है। अर्जुन के सभी रोग, सभी विषाद और सभी उन्माद पूर्णतया दूर हो जाते हैं। उसका आत्म-सम्मान जाग उठता है। स्थिति की भयकरता, गम्भीरता और आवश्यकता को वह समझ लेता है। उसका पौरुष चमकने लगता है। युद्ध-स्थल में वह पुनरपि शेर की तरह दहाड़ने और बिफरने लगता है।

६—संक्षेप में यही है, सार-संक्षेप उस कहानी का जो कि श्री मद्भगवद्गीता और उसकी शिक्षाओं के विषय मे लोक-विश्रुत है। युद्ध के आरम्भ में अर्जुन की ओर से जो दुर्बलता, दिखलाई, युद्ध के प्रति अरुचि प्रगट की, युद्ध करने में आना-कानी की, विषाद का अनुभव करके संसार के प्रति एक ओर वैराग्य और दूसरी ओर माया-मोह का जो परिचय दिया था, उस सब के विषय में विद्वानों ने तरह-तरह के विचार प्रगट किये हैं। खूब ही बाल की खाल उतारी गई है। इस विषय में अब तक जो कुछ भी लिखा गया है, और आगे भी जो-जो कुछ लिखा जायेगा, वह सब पूर्णतया सत्य है। तथापि वास्तविकता कुछ और ही है। वह वास्तविकता कोई गुप्त रहस्य भी नहीं है। फिर भी जन-साधारण ही नहीं, गीता के प्रेमी पाठक भी उस वास्तविकता को नहीं जानते। अर्जुन मानवता का प्रतिनिधि है, श्री कृष्ण जी शास्त्रोपदेशक हैं। अर्जुन क्षात्र-धर्म का प्रतिनिधि है, श्री कृष्णजी ब्राह्म-शक्ति के प्रतिनिधि हैं। ब्राह्म-शक्ति और क्षात्र-शक्ति के चमत्कार संसार में बारम्बार देखे हैं, आगे भी ये चमत्कार दिखाई देंगे।

७—युद्ध के आरम्भ में अर्जुन ने जो दुर्बलता दिखलाई, और जिसे दूर करने के लिये श्रीकृष्ण ने अपनी बंसरी बजाई, उसका वास्तविक कारण क्या था? अर्जुन एक नामी योद्धा था। इससे पूर्व भी वह कई मोर्चों पर लड़ चुका था। विराट् नगर के मोर्चे पर अपने सम्बन्धियों, गुरुजनों और भाई-भतीजों से भी वह दो-दो हाथ कर चुका था। पहिले तो कभी भी उसने ऐसी कमजोरी नहीं दिखलाई थी, न किसी मोह-ममता का परिचय दिया था, नहीं भीख मांगकर खाने का इरादा किया था। फिर नई बात क्या हुई?

८—अर्जुन के दुर्बलता-प्रदर्शन और विषाद-युक्त होने का एक विशेष कारण है। वह कारण महाभारत में स्पष्ट लिखा भी है, परन्तु गीता-वादियों का ध्यान उधर जाता ही नहीं है। उस वास्तविक कारण को उजागर करने के विचार से ही हमारा यह प्रयत्न है।

९—जब हम महाभारत के उद्योग पर्व के अध्याय बीस से बत्तीस तक का स्वाध्याय करते हैं, तब हमको अर्जुन के विषाद, उसकी दुर्बलताओं और मानसिक उलझनों का यथार्थ कारण भली प्रकार अवगत हो जाता है और वह यह है कि जब दोनों पक्षों में युद्ध की तैयारियां होने लगीं थीं, तब धृतराष्ट्र और सजय ने आपस में षड्यन्त्र रचा-कर, युधिष्ठिर, भीम और अर्जुन वगैरा को पथ-भ्रष्ट करने तथा पागल बनाने का एक महाभयङ्कर चाल चली थी।

१०—यदि श्रीकृष्णजी मौजूद न होते और समय पर बात को न सम्भाल लेते, तो वह चाल अवश्य ही सफल हो जाती। चाल तो विफल हुई, परन्तु अर्जुन के मन पर वह अपना बुरा प्रभाव डाल गई। इस बुरे प्रभाव के कारण ही अर्जुन ने विषाद-युक्त होकर दुर्बलता दिखलाई थी। आवश्यकता है कि सभी गीता-प्रेमी सज्जन इस पृष्ठभूमिका को भली प्रकार समझ लें और इस पृष्ठ भूमिका के विचार पूर्वक ही गीता-विचार में प्रवृत्त हों। इस पृष्ठभूमिका को विचारे बिना गीता के भाष्यकारों ने बहुत ठोकरें खाई हैं।

११—जुए में हारने के बाद पाण्डवों ने सम-झौता की शर्त के अनुसार १२ वर्ष जगलों में भटक भटक कर गुजार दिए। तेरहवां वर्ष भी उन्होंने अज्ञात-वास में बिता दिया। इसके बाद उन्होंने दुर्योधन से अपना राज्य वापिस मांगा। दुर्योधन ने उनकी मांग ठुकरा दी। पाण्डवों के हितैषी राजाओं और राजनीतिज्ञों ने दुर्योधन और धृतराष्ट्र आदि को समझाया। सारा परिश्रम बेकार चला गया। श्री कृष्णजी ने बीच-बचाव कराना चाहा। कुछ न हो सका। (क्रमशः)

# आर्य मार्तण्ड

अजमेर मार्गशीर्ष शु० ७ सं० २०२६ वि० दिनांक १५ दिसम्बर सन् १९६९



## देश को बचाओ !

आज विश्व की परिस्थितियां जिस तीव्रगति से परिवर्तित होकर हमारे सम्मुख आ रही हैं, उनको दृष्टिगत रखते हुए कोई भी मनीषी, विचार शील व्यक्ति यह नहीं कह सकता कि कल क्या होगा ?

राष्ट्र की जनता ने जिस महान् राष्ट्रीय संस्था को राष्ट्र का उत्तरदायित्व समर्पित कर सुख, समृद्धि की अभिलाषा की थी। आज वह केवल स्वप्न-मात्र ही प्रतीत होती है। सन् १८८५ में अंग्रेज विचारक ह्यूम ने जिस दूरदर्शिता से स्वप्न लेकर कांग्रेस की स्थापना की थी, वह उसका स्वप्न अक्षरशः साकार हो रहा है और उस के दीपक से ही हमारा घर धांय-धांय जल रहा है।

आज राष्ट्रीयता और अराष्ट्रीयता में भयंकर देवासुर संग्राम छिड़ गया है। जिस कांग्रेस के सर्वेसर्वा महात्मा जवाहरलाल जी ने अपनी अज्ञानता एवं सत्ता लोलुपता से मातृ-भूमि का विभाजन स्वीकार कर भयकर धन-जन संहार कराया था, उन्हीं की सुपुत्री श्रीमती इन्द्रादेवीजी सत्ता के मद में मातृ-भूमि की सत्ता को ही अराष्ट्रीय विदेशी शक्तियों के षड़यन्त्र से समाप्त करने पर तुली हुई हैं और अपने 'त्रिया हठ' से ऐसे अनैतिक मार्ग पर देश की जनता को लाकर खड़ा कर दिया है कि राष्ट्र भक्त भारतीय आज किंकर्तव्य - विमूढ एवं सर्वथा निराश हो रहा है तथा सब आज यही प्रश्न करने लगे है, अब क्या होगा ?

परिवर्तन अवश्यम्भावी है। रोग की शल्य चिकित्सा रोगी की दशा पर निर्भर है। परन्तु यहां तो कुछ स्थिति ही विचित्र बन गई है। २२ वर्ष का स्वतन्त्रता का फल भुखमरी, दुष्काल, बेकारी और मंहगाई की मार से जनता की कमर टूट चुकी है। देश की उन्नति और विकास के नाम पर अरबों का ऋण लेकर भी आज हम नंगे भूखे हैं, परन्तु किसका ध्यान है, इस ओर ? यहां तो इन्डीकेट और सिण्डीकेट का युद्ध-ताण्डव दिन-दूना रात चौगुना बढ़ रहा है, जिसका अनुचित लाभ विदेशी अराष्ट्रीय शक्तियां उठाकर भारत को सदा के लिये समाप्त करने में सक्रिय तत्पर हैं।

भारत की निर्बलता का विदेशी अराष्ट्रीय शक्तियों ने लाभ उठाकर पाकिस्तान, नागालैण्ड का निर्माण कराया। केरल तथा बंगाल में साम्यवादी हिंसा का शासन स्थापित किया। जन-धन का संहार किया और राष्ट्र की अखण्डता को सर्वथा जर्जर कर विदेशियों की दया पर छोड़ दिया है। इन अराष्ट्रीय शक्तियों द्वारा राष्ट्र की नैतिक परम्परायें, मान्यतायें, संस्कृति, भाषा, साहित्य, इतिहास सभी नष्ट किया जा रहा है। बहु संख्यकों को निरीह नपुंसक बनाकर बर्बर अत्याचारियों के द्वारा नष्ट कराया जा रहा है और भारत की आत्मा आज बिलख २ कर करुण क्रन्दन कर अपने वीर पुत्रों का रक्षार्थ आह्वान कर रही है।

वर्तमान परिस्थितियों में आज राष्ट्र की धन-जन, सत्ता, सम्पत्ति, मान-मर्यादा सभी असुरक्षित हैं। स्वाभिमान, आत्म-बल, आस्था, निष्ठा सब को मिट्टी में मिला दिया गया है। फिर बताइये राष्ट्र कैसे बचेगा ?

वैसे तो प० जवाहरलाल ने ही सब कुछ समाप्त कर दिया था, हां, लालबहादुर शास्त्री ने राष्ट्र के जन-जन और कण-कण में राष्ट्र भक्ति की भावना भर कर राष्ट्र में दृढ़ता, एकता एवं स्थिरता स्थापित की थी। परन्तु राजनैतिक स्वार्थ की बलिवेदी पर वह बलिदान होकर इस भारत को भूखे भेड़ियो को सौंप गये। जिसका दुखद परिणाम आज देश को इस दयनीय स्थिति मे भुगतना पड़ रहा है।

अतः भारत की सुषुप्त आत्माओ ! जागो ! अराष्ट्रीयता के आक्रमण और आघात से यदि देश को इस समय नही बचाया, तो इसका अस्तित्व सदा २ के लिये समाप्त हो जायगा और यूनान, मिश्र और रोम की आख्यायिकाओं के समान भारत का इतिहास भी भूत काल की कहानियाँ मात्र रह जायगा।

आज राष्ट्र की सुरक्षा का सब से अधिक सरल साधन है, "राष्ट्र-पति शासन" और अराष्ट्रीय विदेशियों पर प्रतिबन्ध। इसके बिना संरक्षण सर्वथा असम्भव है। आज देश का कोई दल स्वस्थ एवं सुदृढ संगठित शासन का भार सम्भालने में समर्थ नहीं। अतः इससे ही जनता एव प्रशासन में स्थिरता तथा दृढ़ता होगी और असीमित व्यय, कर-भार से भी देश की निर्धन जनता को किंचदांशों में राहत मिलेगी।

आशा है समय रहते देश-भक्त भारतीय वीर अवश्य राणा प्रताप, वीर शिवाजी के समान अपने शक्ति, संगठन और आत्म-बल द्वारा भारत की प्रभु-सत्ता, संस्कृति, अस्तित्व और गौरव रक्षा में त्याग-तप का आदर्श उपस्थित कर अपनी राष्ट्र-निष्ठा और कर्तव्य परायणता का परिचय देंगे और देश को नष्ट होने से बचायेंगे।

---

## श्रुति भिक्षु नामधारी आर्य के दुष्ट प्रचार से सावधान !

कुछ समय पूर्व एक भूखे मरते हुए युवक को जिसका नाम विनोद दुबे है, टंकारा उपदेशक महाविद्यालय में कुछ आर्यों की जमानत में रखा गया। वहीं दो मास के भीतर ही संस्था में निरुपयोगी होने के कारण तथा धूर्त मनोवृत्ति का परिचय प्राप्त करने पर उसे वहां से निकाल दिया गया।

दुःखी और बीमार हालत में वह बड़ौदा आया और उसकी स्थिति पर दया करके बड़ौदा आर्यसमाज ने आश्रय दिया। उसे कुमाराश्रम में कुछ दिन रहने दिया, पर उसका चरित्र यहां भी शंकास्पद होने के कारण विशेषकर विधवाश्रम की कन्याओं के प्रति उसकी कुदृष्टि देखकर उसे यहां से भी निकाल दिया गया।

अब इस विनोद दुबे ने श्रुति भिक्षु आर्य का नाम धारण किया और वे बड़ौदा की प्रमुख संस्था आर्य कन्या महाविद्यालय के विरुद्ध अनर्गल और आक्षेप रूप पत्र लिखकर आर्य नेताओं को और आर्य पत्रों को भड़का रहा है। उसने गुजरात राज्य के शिक्षाधिकारी को भी इसी प्रकार का अनर्गल पत्र लिखा है जिन्होने प्राथमिक जांच करके उस पत्र को रद्दी की टोकरी मे फेंक दिया।

इस समय वह यहां मे भागकर मध्य भारत में गया और वहां से भी दुष्टतापूर्ण पत्र लिखता है।

आर्य महानुभाव इस क्षीणाजनः की दुष्ट प्रवृत्तियों पर ध्यान न दें तथा उसके दुष्ट प्रचार से सावधान रहें।

श्रुति भिक्षु उसका फर्जी नाम है। न वह सन्यासी है और न ही ब्रह्मचारी है, वह एक लफंगा युवक है।

नानुभाई

मन्त्री

आर्यसमाज बड़ौदा

---

बलिदान दिवस पर—

# साहित्यकार श्रद्धानन्द

लेखक—श्री डा० भवानीलालजी भारतीय, एम. ए. पी. एच. डी. गवर्नमेंट कालेज, अजमेर

अमर शहीद स्वामी श्रद्धानन्दजी महाराज का व्यक्तित्व बहुमुखी था। वे एक ओर महान सगठक, समाज सुधारक, राजनीतिज्ञ तथा शिक्षा शास्त्री थे, वहाँ दूसरी ओर एक कुशल लेखक, वक्ता तथा साहित्यकार भी थे। उन्होंने शिक्षा, राजनीति, धर्म, समाज तथा हिन्दू सगठन के विभिन्न क्षेत्रों में उल्लेखनीय कार्य किया। अपने अत्यन्त व्यस्त जीवन में से समय निकाल कर वे साहित्य लेखन के पुनीत कार्य में भी जुट जाया करते थे। उनके द्वारा रचित साहित्य की एक संक्षिप्त रूपरेखा यहाँ प्रस्तुत की जा रही है—

महात्मा मुन्शीराम ने १९१६-१७ में आर्यधर्म ग्रन्थमाला अन्तर्गत निम्न पुस्तकें लिखकर प्रकाशित की—

१. आर्यों की नित्यकर्म विधि—इसके ५ संस्करण छापे। यह सद्धर्म प्रचारक प्रेस में छापी।

२. पञ्च महायज्ञ विधि—इसके दो संस्करण छापे।

३ आचार-अनाचार और छूवाछूत।

४. ईसाई पक्षपात और आर्यसमाज—इसमें सुप्रसिद्ध ईसाई पादरी जे० एन० फर्कुहर लिखित Modern Religions Movements in India ग्रन्थ मे आर्यसमाज पर किये गये आक्षेपों का उत्तर दिया गया है।

५. वेद और आर्यसमाज।

६. मातृभाषा का उद्धार—हिन्दी साहित्य सम्मेलन के भागलपुर अधिवेशन के अध्यक्ष पद से दिया गया महात्मा मुन्शीराम का भाषण।

७. पारसी मत और वैदिक धर्म—यह तुलनात्मक अध्ययन है।

८. मानव धर्म शास्त्र और वैदिक धर्म।

उपर्युक्त लघु ग्रन्थो के अतिरिक्त स्वामीजी ने धर्मवीर प० लेखराम का जीवन चरित ओजस्वी भाषा मे लिखा था। इसका नवीन संस्करण आर्य प्रतिनिधि सभा पजाब से प्रकाशित हुआ, तथा साप्ताहिक सार्वदेशिक ने इसे अपने विशेषांक रूप में भी प्रकाशित किया है। स्वामीजी ने अपनी आत्मकथा 'कल्याण मार्ग का पथिक' शीर्षक से लिखी थी जो ज्ञान मण्डल, काशी से प्रकाशित हुई। सार्वदेशिक साप्ताहिक ने इस आत्मकथा को भी विशेषांक रूप में पुन: प्रकाशित किया था। स्वामीजी के अन्य लघु ग्रन्थ इस प्रकार हैं—(१) उत्तराखण्ड की महिमा (२) गुरुमत दिवाकर (३) छात्रों के लिये उपदेश (४) जाति के दीनों को मत त्यागो (५) पुराणों की शिक्षा से बचो (६) बूढ़ीघर के विचित्र अनुभव (७) मुक्ति सोपान—इसका नवीन सस्करण आर्यकुमार सभा किंग्सवे दिल्ली ने छापा है। (८) विस्तारपूर्वक संध्या (९) वेदानुकूल संक्षिप्त मनुस्मृति। (१०) संक्षिप्त मनुस्मृति। (१०) संक्षिप्त महाभारत, भीष्म पर्व (११) सद्धर्म प्रचारक पर पहला मान हानि का अभियोग।

स्वामीजी के अन्य महत्वपूर्ण ग्रन्थ—

(१) ऋषि दयानन्द का पत्र-व्यवहार—प्रथम भाग। महाशय मुन्शीराम जिज्ञासु लिखित भूमिका सहित। यह १९६६ वि. में सद्धर्मप्रचारक प्रेस, गुरुकुल कांगड़ी से प्रकाशित हुआ। इसमें उन पत्रों को संगृहीत किया गया है, जो अन्य लोगों ने ऋषि दयानन्द को भेजे थे।

(२) आदिम सत्यार्थप्रकाश और आर्यसमाज के सिद्धान्त, जिस समय पौराणिक पण्डित कालूराम शास्त्री ने सत्यार्थप्रकाश का १८७५ में प्रकाशित प्रथम संस्करण को पुन: प्रकाशित कर उसमें छपे मृतक श्राद्ध तथा यज्ञ में पशुहिंसा आदि लेखक पण्डितों द्वारा प्रक्षिप्त विषयों का प्रचार कर बुद्धि भेद पैदा करना चाहा था, उस समय स्वामीजी ने यह ग्रन्थ लिखकर सत्यार्थप्रकाश की प्रथम आवृत्ति के विषय में आर्यसमाज के सैद्धान्तिक दृष्टिकोण को स्पष्ट किया था। इसे वेदवाणी के विशेषांक के रूप में पं० युधिष्ठिरजी मीमांसक ने पुन: प्रकाशित किया है।

(३) स्वामी श्रद्धानन्दजी के धर्मोपदेश—इन्हें लाला लब्भूराम नैयर ने संगृहीत कर तीन भागों में गुरुकुल कांगड़ी की स्वाध्याय मञ्जरी शीर्षक पुस्तकमाला के अन्तर्गत प्रकाशित किया है।

### स्वामीजी रचित अंग्रेजी ग्रन्थ—

(1) Arya Samaj and its Detracters—A vindication by Munshi Ram Jijyasu, Governor of Gurukula Hardwar and Ramdeva, Editor—The Gurukula Magajine.

छः सौ पृष्ठों का यह वृहद् ग्रन्थ १९१० ई० में स्वामीजी ने आचार्य रामदेव के सहलेखन में उस समय लिखा था, जब पटियाला में निर्दोष आर्यसमाजियों पर षड़यन्त्र और राजनैतिक अपराधों का दोषारोपण कर उन्हें कारागृह में डाल दिया था। इसके प्रथम भाग में आचार्य रामदेव ने अत्यन्त ओजस्विनी भाषा में आर्यसमाज पर राजनैतिक षड़यन्त्रकारी होने के सभी आरोपों का उत्तर दिया है। द्वितीय भाग में पटियाला षड़यन्त्र अभियोग का विस्तृत विवरण संकलित किया गया है।

(2) Gurukula through European Eyes. (3) Hindu Sangathan. (4) Religions Intolerance.

स्वामीजी रचित उर्दू ग्रन्थ—(१) उपदेश मञ्जरी (ऋषि दयानन्द के पूना में दिये गये पन्द्रह व्याख्यानों का उर्दू अनुवाद) (२) दु:खी दिल की पुरदर्द दास्तां (३) मेरी जिन्दगी के नशे व फराजा (४) सुबह उम्मीद (५) कुलियात संन्यासी—इसमें स्वामीजी के सभी उर्दू ग्रन्थों का संग्रह है।

आज आवश्यकता इस बात की है कि स्वामीजी के समस्त ग्रन्थों को सुन्दर सुसम्पादित रूप में श्रद्धानन्द ग्रन्थमाला के रूप में प्रकाशित किया जाय। यह कार्य सार्वदेशिक सभा, पंजाब प्रतिनिधि सभा तथा गुरुकुल कांगड़ी में से कोई एक संस्था कर सकती है।

---

### वाराणसी में शताब्दी समिति की बैठक—वाराणसी और गोरखपुर मण्डलों के कार्यों में उत्साह—

३२,००० रुपये से अधिक के दानों की घोषणा—

### शताब्दी-समारोह का कार्यक्रम—

२९ नवम्बर १९६९ को आर्यसमाज बुलानाला, वाराणसी में शास्त्रार्थ शताब्दी समिति की बैठक पं० प्रकाशवीरजी शास्त्री की अध्यक्षता में हुई। श्री पं० शिवकुमारजी शास्त्री, श्री पं० प्रेमचन्द्रजी शर्मा, श्री राजितसिंहजी, श्री कैलाशनाथसिंहजी आदि के अतिरिक्त वाराणसी और गोरखपुर मण्डलों के लगभग ८० प्रतिनिधि उपस्थित थे। सर्व प्रथम सयोजक तथा उप-सयोजक ने अब तक के हुये कार्य का विवरण तथा भावी कार्यक्रम की रूपरेखा प्रस्तुत की। उसके पश्चात् अनेक प्रतिनिधियों ने अपने सुझाव दिये। अन्त में प्रधान जी ने धन के लिये अभ्यर्थना की, जिसके परिणाम स्वरूप वहीं पर ३२,००० रुपये से अधिक की घोषणाएं की गई। उनका विवरण अलग से दिया जा रहा है।

रात्रि को दूसरी बैठक हुई, जिसमें शताब्दी समारोह का विभिन्न कार्यक्रम निश्चित किया गया। यह शीघ्र ही प्रकाशित कर आर्यसमाजों मे भेजा जावेगा।

संयोजक

महेन्द्रप्रताप शास्त्री

### सभा मन्त्री का जोधपुर भ्रमण

दि० २२-११-६९ को सायंकाल नगर आर्यसमाज जोधपुर में जोधपुर नगर तथा उपनगरों की छ: आर्यसमाजों की सम्मिलित बैठक हुई। इसकी अध्यक्षता सभा मन्त्री डा० भवानीलालजी भारतीय ने की। आपने जोधपुर में महर्षि दयानन्द स्मृति भवन न्यास विषयक सम्पूर्ण पृष्ठभूमि का विवेचन करते हुये बताया कि जोधपुर के आर्यसमाजी अपने सम्पूर्ण मतभेदों को भुलाकर इस स्मारक भवन को प्राप्त करने के लिये प्रयत्नशील हों। तदनुरूप ही एक सर्व सम्मत प्रस्ताव स्वीकार किया गया। आशा है कि ट्रस्ट निर्माण एवं तदनुसार स्मारक भवन को प्राप्त करने का मार्ग प्रशस्त हो जायगा। दि० २३-११-६९ को डा० भारतीय ने आर्यसमाज सरदारपुरा के रविवासरीय अधिवेशन को सम्बोधित करते हुये देश की धार्मिक एवं सांस्कृतिक एकता के लिये ऋषि दयानन्द द्वारा किये गये प्रयत्नों को निरूपित किया।

# आज की अवस्था

लेखक—श्री मदनमोहनजी शर्मा संगठन मन्त्री, आर्य प्रतिनिधि सभा राजस्थान

आज हम बड़ी भयंकर परिस्थितियों से गुजर रहे हैं। मानवता खतरे में है-"मनुर्भव" का उद्घोष वाणी पर भी दिखाई नहीं देता है। हाथ हाथ को खाये जा रहा है—किसी पर भी किसी भी स्तर पर विश्वास करते संकोच हो रहा है। 'संगच्छध्वं संवदध्वं......' इत्यादि मन्त्रों का उच्चारण कर समय नेत्र व कान दोनों के दरवाजे बन्द कर लेते हैं—बुद्धि का तो कहना ही क्या ? जिसके द्वारा नापा तौला जा सकता है, उसको तो हम समाज के लिये जब घर से रवाना होते हैं, तो घर पर ही छोड़ आते हैं, या यों कहिये आर्यसमाज में हम किसी और ही दृष्टिकोण से आते हैं।

राजनैतिक दृष्टिकोण से यदि हम सोचे तो हमने स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् राष्ट्र को ऊँचा उठाने के लिये जिन भावनाओं की आवश्यकता होनी चाहिये थी, उनको हमने खोया ही है—राष्ट्रीय स्तर पर यदि हमने कुछ सीखा है, तो यही सीखा है कि किस तरह तथा किस २ स्तर पर हम अपना व्यक्तिगत स्वार्थ जो हम को पतन की तरफ ले जायगा। कैसे पूरा किया जाय। त्याग सेवा एव बलिदान की भावनायें जो राष्ट्र को ऊँचा उठा सकती है, स्वप्न के सागर में डुबो दी गई है।

हमारा समाज दूषित दुराग्रह एवं वासनाओं का केन्द्र बन चुका है। भाई, बहिन, माता स्त्री एवं आचार्य के सम्बन्धों की पावनता एवं कर्त्तव्य परायणता नष्ट कर चुके है। जातीय मर्यादायें केवल राजनैतिक लाभ उठाने के लिये है, नामोच्चारण के लिये रह गई है। भावी होनहार नवयुवकों को सुन्दर संस्कार मिल ही नहीं सकते, जिससे ऐसी अभिलाषा हो, कि वे अपना जीवन सुखी बना सकेगें। परिवार नियोजन ने, सिनेमा, फैशन तथा पश्चिमी सभ्यता के प्रभाव में आज के नवयुवक अल्प काल में ही जीवन के वास्तविक आनन्द से हीन हो रहे हैं।

भारत का प्रत्येक नौजवान पुष्टिकर भोज्य पदार्थों को प्राप्त कर ही नहीं सकता। घी, दूध,दही बादाम ऐसा मालूम होता है,ऐतिहासिक वस्तु बनने जा रही है। चाय डालडा तथा नमकीन में ही समस्त शक्ति वर्धक तत्त्व अनुभव हो रहे हैं। अर्थ हीन व्यक्ति के सम्मुख पेट भरना भी दुर्लभ हो रहा है। सन्तान को पैदा करना तथा शिक्षा देकर योग्य बलवान बनाना तो प्रभु के हाथ में रह गया है।

आर्यसमाज के संस्थापक - प्रात: स्मरणीय परम पूज्य स्वामी दयानन्दजी के सम्मुख भी जिस समय वे मार्ग दर्शनार्थ कार्य क्षेत्र में अग्रसर हुये, उस समय ऐसी अनेकों भयंकर परिस्थितियाँ थीं, जिनका समाधान करना उनका मुख्य कर्तव्य था। धन्य है उस ऋषि को जिसने आर्यसमाज को स्थापित कर मानव उत्थान का द्वार खोल दिया। आर्यसमाज का द्वार मानव मात्र की उन्नति के लिए खुला है। 'आर्यसमाज वह अमृत है, जिसका पान कर मानव स्वर्ग में आ सकता है।

धन्य है, यह देश! जिसकी वसुन्धरा पर मानव मात्र के जीवन को सुखी बनाने वाले ऋषि पैदा हुये। वेद ज्ञान जिसको लोग भुला चुके थे, पुनः दिलाया। पाखण्ड का नाश किया। प्रान्तीयता, जातीयता, धर्मान्धता, छूतछात का नाश किया, जो कि मनुष्यता को नष्ट कर रही थीं।

महर्षि के दिखाये मार्ग ने मनुष्यों पर ऐसी छाप डाली कि पाखण्डी अपना रास्ता भूल गये। आज तक वह ज्ञान जो महर्षि ने दिखाया चमक रहा है। उसका मानव मात्र को सुखी बनाने का दृष्टिकोण है। सत्य प्रेम एवं ज्ञान की जो गंगा महर्षि ने बहाई वह अभी तक विद्यमान है।

परन्तु हम जो स्वयं को आर्य कहते हैं, आर्यत्व की ओर अग्रसर नहीं हो रहे हैं। महर्षि ने जो मानव मात्र को प्रकाश पुंज दिया उसके ठेकेदार कहलाने वाले हम लोग कहाँ हैं ? कुछ अपना निरीक्षण करें। 'प्रकाश से प्रकाश को ग्रहण कर दूसरो को प्रकाशित करें, प्रकाश की तरफ मुंह करके खड़े हो जायं। इन्द्रियों से उसका पान करें तथा फिर दूसरों को पान करायें। यह नहीं कि उसकी तरफ पीठ करके खड़े हो जायं, जिससे दूसरों तक जो प्रकाश जाने वाला है उसको रोक लें। जिससे हमारी छाया का अन्धकार ही दूसरों के पास जाय।

यदि हम वास्तविकता की ओर जाय और यदि स्वयं को नापे तौले तो मालूम हो जायगा कि अपने मिशन के कार्य की गिरावट में ऋषि दयानन्द के भक्त कहलाने वाले व्यक्ति कहाँ तक भागीदार हैं ? आर्य सार्वदेशिक सभा का अनुशासन प्रान्त की सभायें नहीं मानती सभाओं का अनुशासन समाजें तथा समाजों का अनुशासन सदस्य नही मानने तथा सदस्य स्वयं अनुशासित नहीं है।

मुझको अभी तक कुछ समाजें देखने का सुअवसर मिला है उनका वर्गीकरण मैं निम्न प्रकार से कर सकता हू।

## (१) नाम मात्र की समाज—

ऐसी समाज का कोई ठौर-ठिकाना नहीं—कहीं भवन है तथा कहीं भवन भी नहीं है। इस प्रकार के समाजों की स्थापना कुछ ऐसे महानुभावों द्वारा की गई थीं, जो उत्साही व्यक्ति थे। जिन्होने अपने जीवन में आर्य समाज का काफी कार्य किया। अब वर्तमान समय में वे कार्यकर्त्ता नही रहे, तो समस्त गतिविधियाँ सुप्त हो गईं। प्रतिनिधि सभा की सूची में अब भी वे समाजें विद्यमान हैं। कहीं कहीं पर ऐसी समाजों के भवन भी अन्य व्यक्तियो के अधिकार में हैं, जो समाज के लिये अनुचित हैं। ये समाजें कम आबादी वाले स्थान में हैं जहां अन्य कार्यकर्त्ता का जुटाना सभा के लिये कठिन है।

## (२) क्रियाशील समाज—

जो अपना साप्ताहिक सत्सङ्ग अवश्य करती हैं व यज्ञ की कार्यवाही सम्पूर्ण करने की आवश्यकता पूरी करने हेतु सदस्य पहुंच ही जाते हैं। ऐसी समाजों के पास सर्वत्र भवन हैं तथा कहीं २ भवन की आमदनी भी है।

## (३) सक्रिय प्रभावशाली समाजें—

कार्य की दृष्टि से ऐसी समाजें प्रथम श्रेणी में आती हैं। जिनके पास साल भर का नियमित कार्यक्रम होता है। वार्षिक अधिवेशन, पर्व इत्यादि समस्त कार्यक्रम प्रभावशाली होते हैं। ऐसी समाजें अधिकतर एक प्रान्त में ५-७ हो होती हैं।

अनेकों जगह जहां एक ही शहर में एक से अधिक समाजें होती हैं, वहां एक दूसरे की देखादेखी प्रतिस्पर्धा से भी कार्य होता है। यदि किसी एक समाज का कार्य होता है, तो दूसरी समाज भी कार्य करती है अन्यथा नहीं। इस समाज के कार्यकर्त्ताओं में यदि अपने मिशन के प्रति निष्ठा होती है, तो निःसन्देह समाज का कार्य अधिक होता है। इस प्रकार की समाजें श्रेष्ठ समाजों में होती है। कहीं २ कुछ धनी मानी व्यक्ति ऐसी समाजों में विद्यमान रहते हैं, जिनकी अभिलाषा यही होती है कि आर्य समाज का कार्य हो, उनकी मर्जी के अनुसार हो तथा समस्त कार्यकर्त्ता उनकी सहमति के साथ ही चले अन्यथा वे कार्य के प्रति बाधक के रूप में भी सिद्ध हो जाते हैं। ऐसी स्थिति में निष्ठावान, निस्वार्थ कार्यकर्त्ताओं की सुरक्षा कार्य की दृष्टि से नहीं रहती तथा कार्य रुक जाता है। किसी कारण से अथवा निष्ठावान कार्यकर्त्ता यदि अपने को त्याग दें अथवा यों कहिए कि आदर्श को निभाने के लिये ही सच्चे कार्यकर्त्ता यदि पदों से पीछे खिसक जाय तो तत्काल वे व्यक्ति आगे आ जाते हैं, जो अवसरवादी होते हैं तथा स्वयं को पुजवाना चाहते हैं, दूसरों पर शासन करना चाहते हैं। आर्यसमाज के मिशन का ध्यान उनको नहीं रहता तथा उनका उद्देश्य मन्त्री या प्रधान पद प्राप्त कर पिछले (भूतपूर्व) निष्ठावान कार्यकर्त्ताओं पर कीचड़ उछालना ही रह जाता है तथा अपनी सफलता उसी में समझते हैं, जबकि वे भूतपूर्व कार्यकर्त्ताओं को बदनाम करने का कार्यक्रम बना लेते हैं।

## (४) विघटनकारी समाजें—

अनुचित कार्यकर्त्ताओं के आगे आने पर समाज का सङ्गठन विघटित अवस्था की ओर अग्रसर होने लगता है। इसमें तनिक भी सन्देह नहीं कि कोई भी व्यक्ति किसी भी व्यक्ति की प्रतिष्ठा को हानि नहीं पहुंचा सकता। परन्तु कीचड़ अवश्य फैंकता है। जिसका परिणाम स्वयं को भी कीचड़ से गुजरना पड़ता है तथा दूसरों को भी उसी मार्ग से निकल कर समाज को उन्नति की तरफ ले जाना पड़ता है।

जब किसी भी शक्तिशाली समाज में अनुचित कार्यकर्त्ता आ जाते हैं, तो वे न स्वयं कार्य करते हैं तथा न दूसरों को कार्य करने देते हैं। भूतपूर्व कार्यकर्त्ताओं द्वारा अर्जित साधनों के द्वारा अपना स्वार्थ हल करते रहते हैं। दूसरों की बुराई

( शेष पृष्ठ ७ पर )

# साहित्य समालोचना

श्री डा० भवानीलालजी भारतीय

१. योग और स्वास्थ्य—लेखक आचार्य भद्रसेन प्रकाशक : वैदिक साहित्य निकेतन अजमेर मूल्य १-२० प्रथमावृत्ति।

आर्यसमाज के सुप्रसिद्ध विद्वान् आचार्य भद्रसेन जी योग विद्या के मर्मज्ञ विद्वान् और व्यावहारिक जानकार हैं। आपने सुप्रसिद्ध योगी स्वामी कुवलयानन्दजी के पास रहकर योग विद्या का अभ्यास किया था। उन्हीं की लेखनी से प्रसूत इस ग्रन्थ में योग विषयक सभी महत्वपूर्ण बातों का विवेचन किया गया है। यौगिक साधना का शरीर की उन्नति से घनिष्ट सम्बन्ध है। अतः स्वास्थ्य रक्षा के लिये यदि मनुष्य यौगिक प्राणायाम, आसन आदि क्रियायें करने लगें, तो वह नीरोग तथा दीर्घ जीवी होकर मनुष्य जीवन के परम फल मोक्ष को प्राप्त करने का अधिकारी बन सकता है। पांच अध्यायों में विभक्त इस पुस्तक में योग विषयक सामान्य जानकारी, योगासन, प्राणायाम यौगिक एवं प्राकृतिक चिकित्सा विभिन्न रोगों को दूर करने के उपाय आदि विवेचन किया गया है। 'शरीर माद्यं खलु धर्म साधनम्' की उक्ति को चरितार्थ करने वाली इस पुस्तक को लिखकर लेखक ने योग विषयक साहित्य में अपना महत्वपूर्ण योगदान किया है।

२. कठिन और घोर असाध्य रोगो की यौगिक प्राकृतिक तथा आयुर्वेदिक चिकित्सा—लेखक व प्रकाशक उपर्युक्त मूल्य १-७५।

संसार मे मानव जीवन के आविर्भाव के साथ ही मनुष्य शरीर को रुग्ण बनाने और अन्ततोगत्वा नष्ट करने वाले रोगो का दल भी आविर्भूत हुआ। मनुष्य प्रकृति माता को सुन्दर सुखद एवं नैसर्गिक गोद को छोडकर जब अप्राकृतिक जीवन व्यतीत करने लग जाता है, तब उस पर रोगो का अनायास ही आक्रमण होता है। मनुष्य अपने को इन रोगों से मुक्त रखने के लिये अनादि काल से प्रयास करता रहा है, परन्तु कहावत है, मर्ज बढता गया, ज्यों ज्यो दवा की' वस्तुत जब तक मनुष्य प्रकृति की ओर नही लौट आता तब तक रोगो से सर्वांश से मुक्ति असम्भव है। संसार में एलोपेथी, होमियोपैथी, यूनानी आयुर्वेद आदि अनेक चिकित्सा प्रणालियाँ प्रचलित हैं, परन्तु उनमें सर्वश्रेष्ठ प्रणाली प्राकृतिक चिकित्सा है। आचार्य भद्रसेन ने अपने दीर्घकालीन चिकित्सा के अनुभव के आधार पर आलोच्य पुस्तक मे कतिपय रोगो की यौगिक, प्राकृतिक तथा आयुर्वेदिक चिकित्सा का विवेचन किया है। सामान्य रूप से इन चिकित्सा प्रणालियो का अनुसरण कर मनुष्य स्वल्प काल में, स्वल्प साधनों द्वारा तथा स्वल्प धन व्यय कर रोग मुक्त हो सकता है, जब कि अन्यान्य चिकित्सा पद्धतियां मनुष्य के जीवन एवं स्वास्थ्य के प्रति कृत्रिम दृष्टिकोण रखने के कारण हानिकारक तथा व्यय साध्य सिद्ध हुई हैं। आहार-विहार एवं दैनन्दिन जीवन को नियमित व्यवस्थित एवं प्रकृति के अनुकूल बना कर मनुष्य कठिन से कठिन रोगो से मुक्त हो सकता है यही इस पुस्तक का विवेचनीय विषय है। पुस्तक प्रत्येक व्यक्ति के काम की है। यह पठनीय भी है और संग्रहणीय भी।

३ आदर्श गार्हस्थ्य जीवन—लेखक तथा प्रकाशक उपर्युक्त मूल्य ३·५० रुपये।

भारतीय जीवन पद्धति वर्णाश्रम धर्म पर आधारित है। चारों आश्रमों में गृहस्थ का सर्वोपरि महत्व है। भगवान् मनु के अनुसार तो जिस प्रकार नदी और नाले समुद्र में जाकर विलीन हो जाते हैं। उसी प्रकार सारे आश्रम गृहस्थ पर आधारित हैं। पूर्वेकेन्द्रिय व्यक्ति इस आश्रम को धारण नहीं कर सकते। ऐसे महत्वपूर्ण गृहस्थ धर्म की व्याख्या विद्वान् लेखक ने अथर्ववेद के एक मन्त्र के आधार पर की है। अथर्ववेद के सातवें काण्ड के साठवें सूक्त का द्वितीय मन्त्र आदर्श गृहस्थ का सस्पिष्ट चित्र उपस्थित करता है। गृहस्थ जीवन से सम्बन्धित सभी समस्याओं पर लेखक ने साङ्गोपाङ्ग विचार किया हैं। बहुधा गृहस्थ जीवन से सम्बन्धित ग्रन्थों का स्तर अत्यन्त साधारण होता है और उनमे पिष्टपेषण ही अधिक रहता है। परन्तु आलोच्य ग्रन्थ इसका अपवाद है। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष पुरुषार्थ चतुष्टय की प्राप्ति का आधार गृहस्थ जीवन है। लेखक ने गृहस्थ जीवन विषयक ज्ञातव्य बातो का विवेचन करते हुये रोगो की चिकित्सा, योगासन, भोजन, व्यायाम आदि उपयोगी विषयो का विश्लेषण किया है। पुस्तक की छपाई सफाई सर्वथा श्लाघनीय है।

४—अष्टाङ्ग योग प्रकाश—लेखक—आचार्य भगवानदेव शर्मा प्रकाशक महर्षि दयानन्द योगाश्रम टङ्कारा (गुजरात) मूल्य १ ५० रुपये।

आचार्य प. भगवानदेवजी आर्यसमाज के नवयुवको मे अपना पृथक् स्थान रखते हैं। योगाभ्यास की ओर आपकी विशेष रुचि है तथा आपके योगासन तथा प्राणायाम विषयक व्यावहारिक अनुभव का लाभ अनेक जिज्ञासुओ ने लिया है। महर्षि पतञ्जलि प्रतिपादित योगदर्शन का क्रियात्मक अश योग के आठ अङ्ग है। लेखक ने इसी अष्टागयोग का विवेचन योगसूत्रो के आधार पर किया है। आसनो का प्रकरण विशद है तथा चित्रो द्वारा उसे सरलतापूर्वक समझाया गया है। आज जब कि देश में भोगवृत्ति की वृद्धि हो रही है यह अत्यन्त आवश्यक है कि यौगिक जीवन प्रणाली का प्रचार किया जाय। इसके लिये इस पुस्तक की उपयोगिता निर्विवाद है।

## शास्त्रार्थ-शताब्दी कार्यालय काशी को—

शताब्दी का कार्यालय ८ दिसम्बर १९६२ से लखनऊ से वाराणसी चला गया है। अतः समस्त आर्य बन्धुओं और आर्य समाजों को सूचित किया जाता है कि शताब्दी सम्बन्धी पत्र-व्यवहार नीचे लिखे पते पर करने की कृपा करें।

संयोजक
महेन्द्रप्रताप शास्त्री
आर्यसमाज, दूधनाला,
वाराणसी

## आर्यसमाज पीपाड़ शहर का निर्वाचन

आज दिनांक २१-११-६२ रविवार को पीपाड़ आर्य समाज का वार्षिक निर्वाचन बड़े ही उत्साह व शांति के साथ सर्व सम्मति से सम्पन्न हुआ। जिसमें निम्न पदाधिकारी निर्वाचित किये गये। जिनके नाम निम्न प्रकार हैं—

(१) प्रधान—श्री बालीरामजी भट्टा, (२) कार्यवाहक प्रधान—श्री कन्हैयालालजी आर्य, (३) उपप्रधान—श्री बस्तीमलजी सांखला, (४) मन्त्री—श्री आर्य रामरत्नजी पुरोहित, (५) उपमन्त्री—श्री मांगीलालजी कुलदीप, (६) कोषाध्यक्ष—श्री भवरलालजी वैष्णव, (७) प्रचार मन्त्री—श्री कवि कस्तूरचन्दजी धनसार, (८) सहायक प्रचार मन्त्री—श्री प्यारेलालजी आर्य, (९) सहायक प्रचार मन्त्री—श्री भवरलालजी मूथा, (१०) पुस्तकाध्यक्ष—श्री हीरालालजी आर्य, (११) सहायक पुस्तकाध्यक्ष—श्री ईसराजजी कुलदीप, (१२) लेखा निरीक्षक—श्री देवराजजी आर्य, (१३) सहायक लेखा निरीक्षक—श्री भीकमचन्दजी आर्य।

मन्त्री

## आर्य जनता से अपील!

बन्धुवर,

सविनय प्रार्थना है कि आर्य्यसमाज सरवाड़ जिला अजमेर मे समाज मन्दिर बनी हुई है, सरवाड़ से ५-६ हजार रुपये आर्थिक सहायता इकट्ठी करके जमीन खरीदकर चार दीवारी और फाटक बनवाकर लगवा दी है। उसको पूरी बनाने के लिये आर्थिक सहायता प्रदान करने की कृपा करावें। ताकि आपके आर्थिक सहयोग से समाज मन्दिर पूरा हो जाय।

मन्त्री
जगदीशप्रसाद आर्य
आर्यसमाज सरवाड, (अजमेर)

## आर्य मार्तण्ड का नवीन आकर्षण

आर्य मार्तण्ड के किसी आगामी अंक मे हम ऋषि दयानन्द के जोधपुर प्रवास विषयक ऐतिहासिक सामग्री प्रस्तुत करेंगे। इसमे उस शास्त्रार्थ का भी विवरण होगा जो ऋषि दयानन्द के जोधपुर प्रवास काल के पश्चात् आर्यसमाजी और पौराणिक पण्डितों में हुआ था तथा जो तत्कालीन मारवाड़ गजट मे छापा था। यह सामग्री हम जोधपुर निवासी श्री भैरवसिंहजी आर्य के सौजन्य से प्राप्त करने का प्रयास कर रहे हैं। अधिष्ठाता आर्यमार्तण्ड

## आवश्यक सूचना

श्री भीकारामजी आर्य खिवसर निवासी का एक कैमरा क्लीक IV एग्फा कम्पनी का ऋषि मेले के अवसर पर चोरी चला गया है। यदि किसी सज्जन को कहीं मिल जाय या पता चल जाय, तो निम्नाङ्कित पते पर सूचित करने का कष्ट करें। कैमरे का पता लगाकर बरामद कराने वाले सज्जन को पुरस्कृत किया जायगा।

सम्पादक
आर्य मार्तण्ड
केसरगंज, अजमेर।

# गुरुवर विरजानन्द की सुशिक्षा

रचनाकार श्री प जगत्कुमार शास्त्री साधुसोमतीर्थ आर्योपदेशक देहली

मातृ पितृ विहीन अन्ध बालक दर-दर भटकता रहा,
निधनता वचनीयता बभुक्षा के ताप जिसने सह
प्रज्ञा का वरदान उमन पाया करके प्रबल साधना
गुरुवर विरजानन्द दण्डधारी योगी महापुरुष था ॥१॥

जन्मा था करतारपुर नगर मे हरद्वार मे था पढा
संस्कृत का विद्यालय खुला था सोरो मे उसका कभी
दर्शन वेद व्याकरण प्रमति का मूर्धन्य ज्ञाता था।
विरजानन्द यती श्रुति स्मृति का रक्षक प्रशिक्षक बना ॥२॥

जिज्ञासु वर्गों मे उसके यश का प्रसार होने लगा
विद्या के अनुरागी शिष्य विद्या का दान पाने लगे।
अलवर का महिपाल शिष्य उनका करके अनुनय विनय
अलवर मे ले आया उनको उनके चरणों मे पढने लगा ॥३॥

यू बीता कुछ काल फिर यतीवर आकर भरतपुर रहे
फिर कर मथुरा-वास दान विद्या का जग का देन लगे।
प्ररा था जगदीश्वर ने उन को अस्पष्ट सब हो चुका
मथुरा मे सच्छिष्य आगमन की प्रतीक्षा करने लगे ॥४॥

फिर आई वह शुभ घडी कि जिस की वे इन्तजारी मे थे
खट खट खट खट द्वार की ध्वनि को सुनकर मुनि ने कहा।
कौन आया ? क्या काम नाम क्या है ? उत्तर मिला खुश हुए
जिज्ञासु चरणानुरागी भगवन् ! हू आपका एक मैं ॥५॥

मैं हूँ कौन ? नही यह मैंने जाना मैं मैं बहुत कर चुका
क्या है मौत ? दवाई मौत की क्या ? उद्देश्य क्या जन्म का ?
जीवन मरण व्याधि और जरा को है कौन सचालता
लखकरके निज भ्रांति मार गुरुवर आया हू मैं दूर से। ६॥

जड चेतन और नाम रूपवाला प्रपंच जिसने रचा
कैसा है वह कौन है ? कहा है ? कुछ है भी ? या कुछ नही।
पुष्टि तुष्टि भुक्ति मुक्ति क्या है ? क्या प्रेय ? क्या श्रेय है ?
क्या है धर्म-अधर्म ? क्या उपाय है ईश से मिलन का ॥७॥

जिज्ञासु के शब्द फिर मुनि के थे कर्णगोचर हुए
अष्टाध्यायी वेद योग विद्या की है मेरी कामना।
ज्ञानांजन पूरो किवाड खोलो सशय मेरे मेट दो
शरणागत हू आपका दयानन्द भगवन ! मेरा नाम है ॥८।

अब जग मे कर्त्तापुर की महिमा दिन दून बढने लगी
गगा हरि की द्वार सोरो अलवर जग में उजागर हुए।
गुरुवर विरजानन्द का दयानन्द अधिकारी चेला मिला
सद्गुरु और सुशिष्य के मिलन से विद्या की शोभा बढी ॥९॥

मथुरा का सम्मान था कृष्ण ने जग मे बढाया कभी
अत्याचार अन्याय ग्रस्त नामी नृप कस को मारकर।
सद्गुरु और सुशिष्य ने पछाडे अज्ञान अविद्या-असुर
सत्यार्थ प्रकाश जग मे फला मथुरा का गौरव बढा ॥१०।

आर्षेय-साहित्य का जगत् में फिर मान होने लगा
वैदिक धर्म विजय निनाद गूजे आशा के दीपक जले।
मानवता सुख चैन ऋद्धि सिद्धि पाकर सुरक्षित हुई
भारत भाल, विशाल जग मे ऊचा गुरु शिष्य ने कर दिया ॥११।

गुरुवर विरजानन्द द्वारा प्रेरित ऋषिवर दयानन्द ने
वैदिक धर्मालोक को प्रसारा अन्धकार जग का हरा।
फैलाकर नव चेतना ऋषि ने स्वराज्य सिद्धि प्रदा
भारत के स्वाधीनता क युग का आयोग भी रच दिया ॥१२॥

सद्गुरु और सुशिष्य के मिलन के देखो चमत्कार को
[illegible] आमोद शान्ति सौरभ की वृद्धि करते रहो।
है यह मानवता यही मनुज के जीवन का आदर्श है,
मित्रो ! ईश्वर साथ है तुम्हारे कर्त्तव्य-पालन करो ॥१३॥

सद्गुरु और सुशिष्य के सुमार्ग को छोडना न कभी
सत्यासत्य विवेक को न खोना मित्रो ! कभी भूलकर।
जीवन का साफल्य बस यही है 'जय हो सदा सत्य की'
गुरुवर विरजानन्द की सुशिक्षा का सार है, बस यही ॥१४॥

( शेष पृष्ठ ५ का )

निकाल कर अपने आपको भला सिद्ध करते हैं। आर्यसमाज के धन का सदुपयोग न कर अपनी मनमानी इस प्रकार करते हैं जिससे अधिकाधिक लोग धीरे २ उनके व्यवहार से रुष्ट होकर समाज की सहायता के द्वार बन्द कर देते हैं। परन्तु ऐसे कार्यकर्त्ता इस बात को कभी भी स्वीकार करने को तय्यार नही रहते कि ऐसी घटनायें उनके दुर्व्यवहार से हो रही हैं। जैसा कि देखने मे आ रहा है आज का शासन भी अपनी कमजोरी को स्वीकार नही करना चाहता।

ऐसा सदैव देखा गया है कि पद लोलुपता के कारण विघटनकारी तत्व सदैव ऐसा प्रयास करते रहते हैं जिससे लोगो को बहकाया जा सके। पुराने निष्ठावान निस्वार्थी कार्यकर्त्ताओं पर कीचड उछाला जा सके।

अत यह उचित होगा कि हम स्वयं को नापे तौले कि हमारे मे कितना वजन है। गन्दगी की तरफ न जाय। आर्यसमाज के मिशन को ऊंचा उठाने के लिये हमको प्रेम से मिल कर चलना होगा। विशाल हृदय रखना होगा।

एक समय था जबकि इतिहास साक्षी है इस देश मे हूण आदि अनेकों विदेशी जातियां यहां आई। उनको हमने अपने अन्दर पचा लिया। वे जातियां हमारे अन्दर समा गई। हमारी पाचन क्रिया इतनी शक्तिहीन हो चुकी है कि एक कार्यकर्त्ता दूसरे कार्यकर्त्ता का आपरेशन करने मे लगा हुआ है। अपने मिशन से पदाधिकारी दूर हो गये हैं। दूसरों को अपनाने की शक्ति क्षीण हो गई है।

भाषण देना एव सत्यार्थप्रकाश का पाठ करना चाहते हैं परन्तु हिन्दी पढना भी नहीं आता न दूसरो को कार्य करने देना चाहते। हमको हमारा दृष्टिकोण बदलना होगा। आर्य समाज की उन्नति के लिये त्याग एव बलिदान करना होगा प्रेम ज्ञान एव सत्य व्यवहार की गङ्गा बहानी होगी। आदर्श को क्रिया मे लाना होगा। तब ही हम आगे बढ सकेंगे। तमसो ज्योतिर्मय के उद्देश्य को लेकर चलना होगा।

---

## पुष्कर में विश्व हिन्दू परिषद का राजस्थान प्रान्तीय सम्मेलन सानन्द सम्पन्न !

दिनांक २१ २२ नवम्बर१९६९को बाईजी के मन्दिर पुष्कर में हिन्दुआ सूर्य मेवाड के महामहिम महाराणा श्रीमान् भगवत सिंहजी की अध्यक्षता में परिषद का प्रान्तीय सम्मेलन सानन्द सम्पन्न हुआ। जिसमें अनेक उच्चकोटि के सन्तों महात्माओं विद्वानो और हिन्दू नेताओं ने भाग लेकर अखिल विश्व के हिन्दुओं को सगठित होने का आह्वान किया। स्वागताध्यक्ष श्रीमान् भगवानदास जी गार्गीय चार्टर्ड अकाउन्टेन्ट को इस सम्मेलन की स्वागत व्यवस्था एव सानन्द सफलता के लिए हार्दिक धन्यवाद।

# पिस्तौल का पश्चाताप !

[ यह कविता आर्यसमाज के सुप्रसिद्ध कवि एवं नाटककार पण्डित नारायण प्रसाद "बेताब" द्वारा लिखी गई थी तथा कलकत्ता से प्रकाशित होने वाले कलकत्ता साप्ताहिक पत्र में प्रकाशित हुई थी। डा० भवानीलालजी भारतीय मन्त्री सभा के सौजन्य से प्राप्त इस कविता को आर्य मार्तण्ड में ४२ वर्ष पश्चात् पुनः प्रकाशित किया जा रहा है। —सम्पादक]

किया दिल्ली निवासी को, असुर ने स्वर्ग का वासी।
[illegible] है कि कमरे में, बहा दी लाश गंगा की ॥
बाईमुल उम्र जुईफ़िल, नातवां, बीमार, सन्यासी।
[illegible] की छुरि [illegible] न ऐसे खून की प्यासी ॥
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]।
अरे [illegible] ! तू तो हीजड़ों से ले गया बाजी ॥
दिये दर्शन दया से तुझको बीमारी की हालत में।
दिखाया यह कि है यह फ़र्क़ असालत और रिज़ालत में
तुझे मालूम है उस वक्त क्या पिस्तौल कहती थी।
अरे शैतान, तेरे मुंह पै वह लाहौल कहती थी ॥
उसे अफ़सोस था मैं पंजए नापाक में आई।
मुक़ाबे शर्म है छिपकर नजिस पोशाक में आई ॥
चला जाता है दिल क्यों रस्ते गैरतनरूक में आई।
गज़ब है एक बुज़ुर्गे नातवां की ताक में आई ॥
चला करती हूं मैं मूज़ी शरीरों के शरीरों पर।
अधर्मी ने चलाया हाथ ! पीरों पर फ़क़ीरों पर।
मुझे मालूम होता तो यहां हरगिज़ न आती मैं।
निशाना अपने लाने वाले बुज़दिल को बनाती मैं ॥
मिटा है दर्दे क़ातिल जिससे वह गोली न खाती मैं।
हुआ है ख़ूने नाहक़ के सबब मुराक्ष आता मैं ॥
कहेंगी देख के क्या क्या मुझे हमजोलियां मेरी।
परस्तिशगाह में दाखिल हुई है गालियां मेरी ॥

—पण्डित नारायण प्रसाद बेताब

## शारदाजी का मद्रास आर्यसमाज द्वारा भव्य स्वागत !

श्री श्रीकरणजी शारदा उप प्रधान सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा तथा मन्त्री परोपकारिणी सभा का ७ दिसम्बर को मद्रास आर्य समाज की ओर से भव्य स्वागत किया गया। मद्रास में शारदाजी के दो ओजस्वी भाषण हुए जिसमे उन्होंने आर्यसमाज के कार्यकर्ताओं को हार्दिक बधाई देते हुए दक्षिण भारत मे व्याप्त ईसाई प्रचार के निराधार अधिक संगठित होकर कार्य करने के लिये आह्वान किया। उन्होंने जनता को मार्मिक अपील में राष्ट्र रक्षा में समग्र आर्यसमाज को तन मन धन से सक्रिय सहयोग देने पर विशेष बल दिया। साथ ही राष्ट्र एवं जन समाज के गिरते हुए चरित्र और नैतिक स्तर को उठाने के लिये वैदिक धर्म के प्रचार और आ० स० के संगठन की दृढ़ता की अत्यन्त आवश्यकता व्यक्त की। जिसका यहां के नागरिकों पर उत्तम प्रभाव पड़ा।

# अपनी राह चला चल !

श्री पं० प्रकाशचन्द्रजी कविरत्न, अजमेर

कोई बुरा कहे, कहने दे, पर तू अपनी राह चलाचल
बिन पतझड़ मधुमय बसन्त कब,
बिन आतप बरसात कहां है ?
रजनी के अस्तित्व बिना प्रिय,
पावन-पुण्य प्रभात कहां है ?
याद रहे यह तथ्य, वस्तु
अनुकूल जहां प्रतिकूल वहां है।
अप्रिय जहां है, सरल वहां है,
फूल जहां है, शूल वहां है।
फूलो से ही नहीं कण्टकों से भी किये निबाह
चला चल।
कोई बुरा कहे कहने दे, पर तू अपनी राह
चला चल ॥
तरुवर की शाखा से पत्ता,
पल में टूट कहीं उड़ जाता।
पर वह अपने सखा साथियों,
के वियोग में कब पछताता ?
तीर निकल करके तरकस में,
पल में दूर कहीं गिर जाता।
पर वह निज सभी समूह के
बिछुड़न का कब शोक मनाता ?
जीवन साथी छूटे, छूट जाने दे मत भर आह
चला चल।
कोई बुरा यह कहन दे, पर तू अपनी राह पर
चला चल ॥
नाम न ले विश्राम शान्ति का
अरे ! विश्व यह समरांगण है।
संघर्षण में यहां जागरण
विराम में ही यहां मरण है।
चंचल सरिता में मस्ती है,
अचल-कूल का क्या जीवन है ?
बढ़े चलो, बस बढ़े चलो,
लहरों का यह निर्देशन है।
दूर नहीं मन्ज़िल, उर में तू लेकर नव उत्साह
चला चला।
कोई बुरा कहे कहदे पर तू अपनी राह पर
चला चला ॥
कौन सभी कुछ तदपि हृदय में,
रहे समर्पण की अभिलाषा।
यही प्रेमियों की परिपाटी,
यही प्रेम की है परिभाषा।
अपने ही हाथों अपना घर,
फूंक और फिर देख तमाशा,
निज कर्तव्य प्रकाश किये जा,
किञ्चित रहे न फल की आशा
बाँध कफ़न सिर पर मिटने की लिये चौगुनी
चाह चला चल।
कोई बुरा कहे कहने दे, पर तू अपनी राह
चला चला ॥

## शुभ विवाह

[illegible] आर्यसमाज के प्रधान प्रमुख जन सेवी कार्यकर्ता एवं [illegible] श्रीमान् [illegible] एडवोकेट की सुपुत्री सौ.का [illegible] का शुभ विवाह दिनांक १२ दिसम्बर को सानन्द सम्पन्न हो गया नव दम्पति स्वस्थ सानन्द चिरायु हो।

## गो संवर्धन सप्ताह और गोपाष्टमी उत्सव

जोधपुर मण्डोर स्थित सुप्रसिद्ध दयानन्द गो शाला द्वारा आयोजित मोहल्ले मोहल्ले गोसंवर्धन सप्ताह का कार्यक्रम सफलतापूर्वक सम्पन्न हुआ।

दिनांक १७ नवम्बर कार्तिक शुक्ला सोमवार को गोशाला के अन्दर स्वामी [illegible] की अध्यक्षता मे गोपाष्टमी उत्सव मनाया गया राजस्थान गोरक्ष प्रतिष्ठान के सचिव, विद्वान लेखक और पत्रकार पं० लक्ष्मीनारायण मिश्र शास्त्री का जो उत्सव के मुख्य अतिथि थे—भारतीय संस्कृति के उत्थान मे गाय का योगदान पर प्रभावशाली भाषण हुआ।

स्वतन्त्रता संग्राम के पुराने सैनिक श्री ज्ञान चौपासनी वाला राजस्थान गो सेवा संघ के मन्त्री श्री माणकचन्द बाहरा, राजकीय पशु चिकित्सा के डाक्टर श्री गणपतिलाल माथुर, धून आ मिल वाले श्री [illegible] धून उपाध्यक्ष श्री [illegible] देवड़ा नगर आर्यसमाज के उपाध्यक्ष श्री राधाकिशन परिहार महर्षि दयानन्द स्मृति न्यास के मन्त्री श्री सतार्थसिंह कछवाह, सरदारपुरा आर्य समाज के मन्त्री व पुस्तकाध्यक्ष श्री हरेन्द्रकुमार गुप्त श्री श्यामसुन्दर जोशी, पूंजला आर्यसमाज प्रधान श्री बस्तीराम टाक [illegible] प्रमन्त्री आदि अनेक गण मान्य सज्जनों ने उत्सव में पधार कर शोभा वृद्धि की। दिन भर महिलाओं द्वारा गौ सेवा तथा पूजा आदि की [illegible] [illegible] दिया गया। श्री [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] का कार्यक्रम पसन्द किया गया।

उत्सव के अन्त में मन्त्री श्री मोतीलाल द्वारा गौशाला के लिये भावी योजनाओं पर प्रकाश डालते हुए अकाल पीड़ित गायों के लिये अधिका धन संग्रह की अपील की।

स्मरण रहे पश्चिमी राजस्थान में [illegible] [illegible] भूखी गायों की सेवा करने [illegible] सर्वाधिक प्राचीन [illegible] [illegible] गौशाला सञ्चालन मारवाड़ [illegible] संघ द्वारा [illegible] जाता है।

श्री पं० भगवत्स्वरूपजी "न्यायभूषण" के प्रबन्ध से वैदिक यन्त्रालय अजमेर में मुद्रित और श्रीमद् दयानन्द [illegible], सम्पादक प्रकाशक द्वारा दयानन्द आश्रम, केसरगंज अजमेर से प्रकाशित। [illegible]—[illegible] डा० भवानीलाल भारतीय एम. ए. पी. एच.डी अजमेर

as are involved when we talk about our ideas of an object. A person who is familiar with a horse approaches it as one who is going to ride it. He moves toward the proper side and is ready to swing himself into the saddle. His approach determines the success of the whole process. But the horse is not simply something that must be ridden. It is an animal that must eat, that belongs to somebody. It has certain economic values. The individual is ready to do a whole series of things with reference to the horse, and that readiness is involved in any one of the many phases of the various acts. It is a horse that he is going to mount; it is a biological animal, it is an economic animal. Those characters are involved in the ideas of a horse. If we seek this ideal character of a horse in the central nervous system we would have to find it in all those different parts of the initiated acts. One would have to think of each as associated with the other processes in which he uses the horse, so that no matter what the specific act is, there is a readiness to act in these different ways with reference to the horse. We can find in that sense in the beginning of the act just those characters which we assign to "horse" as an idea, or if you like, as a concept.

If we are going to look for this idea in a central nervous system we have to look for it in the neurons, particularly in the connection between the neurons. There are whole sets of connections there which are of such a character that we are able to act in a number of ways, and these possible actions have their effect on the way in which we do act. For example, if the horse belongs to the rider, the rider acts in a different way than if it belongs to someone else. These other processes involved determine the immediate action itself and particularly the later stages of the act, so that the temporal organization of the act may be present in the immediate process. We do not know how that temporal organization takes place in the central nervous system. In some sense these later processes which are going to take place, and are in some sense started, are worked into the immediate process. A behavioristic treatment, if it is made broad enough, if it makes use of the almost indefinite

complexities existing in the nervous system, can adjust itself to many fields which were supposed to be confined to an introspective attack Of course, a great deal of this must be hypothetical. We learn more day by day of what the connections are, but they are largely hypothetical. However, they can at least be stated in a behavioristic form. We can, therefore, in principle, state behavioristically what we mean by an idea.

THE BEHAVIORISTIC SIGNIFICANCE OF GESTURES

The behaviorist of the Watsonian type has been prone to carry his principle of conditioning over into the field of language. By a conditioning of reflexes the horse has become associated with the word "horse," and this in turn releases the set of responses. We use the word, and the response may be that of mounting, buying, selling, or trading. We are ready to do all these different things. This statement, however, lacks the recognition that these different processes which the behaviorist says are identified with the word "horse" must be worked into the act itself, or the group of acts, which gather about the horse. They go to make up that object in our experience, and the function of the word is a function which has its place in that organization, but it is not, however, the whole process We find that same sort of organization seemingly extended in the conduct of animals lower than man: those processes which go to make up our objects must be present in the animals themselves who have not the use of language. It is, of course, the great value, or one of the great values, of language that it does give us control over this organization of the act That is a point we will have to consider in detail later, but it is important to recognize that that to which the word refers is something that can lie in the experience of the individual without the use of language itself. Language does pick out and organize this content in experience. It is an implement for that purpose.

Language is a part of social behavior.[9] There are an indefi-

[9] What is the basic mechanism whereby the social process goes on? It is the mechanism of gesture, which makes possible the appropriate responses to one another's be-

nite number of signs or symbols which may serve the purpose of what we term "language." We are reading the meaning of the conduct of other people when, perhaps, they are not aware of it. There is something that reveals to us what the purpose is—just the glance of an eye, the attitude of the body which leads to the response. The communication set up in this way between individuals may be very perfect Conversation in gestures may be carried on which cannot be translated into articulate speech This is also true of the lower animals. Dogs approaching each other in hostile attitude carry on such a language of gestures They walk around each other, growling and snapping, and waiting for the opportunity to attack. Here is a process out of which language might arise, that is, a certain attitude of one individual that calls out a response in the other, which in turn calls out a different approach and a different response, and so on indefinitely In fact, as we shall see, language does arise in just such a process as that We are too prone, however, to approach language as the philologist does, from the standpoint of the symbol that is used.[10] We analyze that symbol and find out what is the intent in the mind of the individual in using that symbol, and then attempt to discover whether this symbol calls out this intent in the mind of the other. We assume that there are sets of ideas in persons' minds and that these individuals make use of certain arbitrary symbols which answer to the intent which the individuals had. But if we are going to broaden the concept of language in the sense I have

havior of the different individual organisms involved in the social process Within any given social act, an adjustment is effected, by means of gestures, of the actions of one organism involved to the actions of another, the gestures are movements of the first organism which act as specific stimuli calling forth the (socially) appropriate responses of the second organism The field of the operation of gestures is the field within which the rise and development of human intelligence has taken place through the process of the symbolization of experience which gestures—especially vocal gestures—have made possible The specialization of the human animal within this field of the gesture has been responsible, ultimately, for the origin and growth of present human society and knowledge, with all the control over nature and over the human environment which science makes possible.

[10] ["The Relations of Psychology and Philology," *Psychological Bulletin*, I (1904), 375 ff ]

spoken of, so that it takes in the underlying attitudes, we can see that the so-called intent, the idea we are talking about, is one that is involved in the gesture or attitudes which we are using The offering of a chair to a person who comes into the room is in itself a courteous act We do not have to assume that a person says to himself that this person wants a chair. The offering of a chair by a person of good manners is something which is almost instinctive. This is the very attitude of the individual From the point of view of the observer it is a gesture. Such early stages of social acts precede the symbol proper, and deliberate communication.

One of the important documents in the history of modern psychology, particularly for the psychology of language, is Darwin's *Expression of the Emotions in Man and Animals* Here Darwin carried over his theory of evolution into the field of what we call "conscious experience." What Darwin did was to show that there was a whole series of acts or beginnings of acts which called out certain responses that do express emotions If one animal attacks another, or is on the point of attacking, or of taking the bone of another dog, that action calls out violent responses which express the anger of the second dog. There we have a set of attitudes which express the emotional attitude of dogs, and we can carry this analysis into the human expression of emotion

The part of our organism that most vividly and readily expresses the emotions is the face, and Darwin studied the face from this point of view. He took, naturally, the actor, the man whose business it is to express the emotions by the movements of the countenance, and studied the muscles themselves, and in studying them he undertook to show what the value of these changes of the face might be in the actual act. We speak of such expressions as those of anger, and note the way in which the blood may suffuse the face at one stage and then leave it at another Darwin studied the blood flow in fear and in terror In these emotions one can find changes taking place in the blood flow itself. These changes have their value. They represent,

of course, changes in the circulation of blood in the acts. These actions are generally actions which are rapid and can only take place if the blood is flowing rapidly There must be a change in the rhythm of circulation and this generally registers itself in the countenance

Many of our acts of hostility exhibit themselves in attitudes of the face similar to animals which attack with their teeth The attitude, or in a more generalized term, the gesture, has been preserved after the value of the act has disappeared The title of Darwin's work indicates his point of approach. He was dealing with these gestures, these attitudes, as expressive of emotions and assuming at the time that the gesture has this function of expressing the emotions. That attitude has been preserved, on this view, after the value of the act has disappeared. This gesture seems to remain for the purpose of expressing emotions. One naturally assumed there an attitude in the experience of animals which answers in some sense to those of the human animal One could apply the doctrine of the survival of the fittest here also The implication in this particular case was that these gestures or attitudes had lost the value which they had in the original acts, and yet had survived. The indication was that they had survived because they served certain valuable functions, and the suggestion was that this was the expression of the emotions. That attitude on Darwin's part is reflected in the work of other psychologists, men who were interested, as Darwin was, in the study of the act, in the information that is conveyed by one individual to another by his attitude They assume that these acts had a reason for existence because they expressed something in the mind of the individual. It is an approach like that of the philologist. They assume that language existed for the purpose of conveying certain ideas, certain feelings.

If one considers, he realizes that this is a false approach It is quite impossible to assume that animals do undertake to express their emotions. They certainly do not undertake to express them for the benefit of other animals. The most that can be said

is that the "expressions" did set free a certain emotion in the individual, an escape valve, so to speak, an emotional attitude which the animal needed, in some sense, to get rid of. They certainly could not exist in these lower animals as means of expressing emotions, we cannot approach them from the point of view of expressing a content in the mind of the individual. We can, of course, see how, for the actor, they may become definitely a language. An actor, for example, may undertake to express his rage, and he may do it by an expression of the countenance, and so convey to the audience the emotion he intended. However, he is not expressing his own emotion but simply conveying to the audience the evidence of anger, and if he is successful he may do it more effectively, as far as the audience is concerned, than a person who is in reality angered. There we have these gestures serving the purpose of expression of the emotions, but we cannot conceive that they arose as such a language in order to express emotion. Language, then, has to be studied from the point of view of the gestural type of conduct within which it existed without being as such a definite language. And we have to see how the communicative function could have arisen out of that prior sort of conduct.

The psychology of Darwin assumed that emotion was a psychological state, a state of consciousness, and that this state could not itself be formulated in terms of the attitude or the behavior of the form It was assumed that the emotion is there and that certain movements might give evidence of it. The evidence would be received and acted upon by other forms that were fashioned like itself. That is, it presupposed the conscious state over against the biological organism. The conscious state was that which was to be expressed in the gesture or the attitude. It was to be expressed in behavior and to be recognized in some fashion as existent in the consciousness of the other form through this medium of expression. Such was the general psychological attitude which Darwin accepted.

Contrary to Darwin, however, we find no evidence for the prior existence of consciousness as something which brings

about behavior on the part of one organism that is of such a sort as to call forth an adjustive response on the part of another organism, without itself being dependent on such behavior. We are rather forced to conclude that consciousness is an emergent from such behavior, that so far from being a precondition of the social act, the social act is the precondition of it. The mechanism of the social act can be traced out without introducing into it the conception of consciousness as a separable element within that act; hence the social act, in its more elementary stages or forms, is possible without, or apart from, some form of consciousness.

### RISE OF PARALLELISM IN PSYCHOLOGY

The psychology which stresses parallelism has to be distinguished from the psychology which regards certain states of consciousness as existing in the mind of the individual, and succeeding each other in accordance with their own laws of association. The whole doctrine of the psychology which follows Hume was predominantly associationistic. Given certain states of consciousness they were supposed to be held together by other similar elements Among these elements were those of pleasure and pain Connected with this atomism of associated conscious states was a psychology of action grounded on the association of pleasure and pain with certain other sensations and experiences The doctrine of association was the dominant psychological doctrine; it dealt with static rather than dynamic experience.

The pushing of the psychological side further and further into the central nervous system revealed that there were whole series of experiences which might be called sensations and yet were very different from those which could be regarded as static, such as sound, odor, taste, and color. Association belonged to this static world. It was increasingly recognized that there was a large part of our experience which was dynamic.[11] The form of actual doing was present in some of the sensations which

[11] The lines of association follow the lines of the act (1924).

answered to the innervation of sensory nerves There was also the study of those tracts which went down to the viscera, and these certainly were aligned with the emotional experiences. The whole process of the circulation of the blood had been opened up, and the action which involved the sudden change of the circulation of the blood Fear, hostility, anger, which called for sudden movement, or terror, which deprived the individual of the ability to move, reflected themselves in the visceral conditions; and also had their sensory aspects connected with the central nervous system. There was, then, a type of experience which did not fall into place in a static world. Wilhelm Wundt approached his problem from the standpoint of this sort of physiology which offered a clew by means of which one could follow out these various dynamic experiences into the mechanism of the organism itself.

The treatment which had been given to the central nervous system and its motor and sensory nerves had been that of bringing a nerve current to a central nervous system which was then in turn responsible for a sensation that happened in "consciousness" To get a complete statement of what we call the act one had to follow up the sensory side and then follow out the motor results that took place because of what happened in consciousness. The physiology to which I have referred in a certain sense separated itself from the field of consciousness. It was difficult to carry over such a mechanism as this into the lower animals. That, at least, took the psychologist out of the field of animal experience Darwin regarded the animal as that out of which human conduct evolves, as well as the human form, and if this is true then it must be that in some sense consciousness evolves.

The resulting approach is from the point of view of conduct itself, and here the principle of parallelism is brought in. What takes place in consciousness runs parallel with what takes place in the central nervous system. It is necessary to study the content of the form as physiological and also as psychological. The center of consciousness, within which is registered that which

affects the sensory nerves and out of which springs the conduct due to sensation and memory images, is to be taken out of the physiological mechanism, and yet one must find a parallel in what takes place in the nervous system for what the physiologist had placed in consciousness as such What I have referred to in the matter of the emotions seemed to present a physiological counterpart for what takes place in consciousness, a field that seemed to belong peculiarly to the mental side of life Hate, love, anger—these are seemingly states of mind. How could they be stated in physiological terms? The study of the acts themselves from an evolutionary standpoint, and also the study of the changes that take place in the organism itself when it is under the influence of what we call an emotion, present analogues to these emotional states. One could find something there that definitely answered to the emotions

The further development of this lead occurred in James's theory of the emotions Because we run away when we are afraid, and strike when we are angry, we can find something in the physiological organism that answers to fear and to anger. It is an attitude in the organism which answers to these emotional states, especially these visceral conditions to which I have referred, and the sudden changes in the circulation which are found associated with emotions. It becomes possible to relate the psychical conditions with physiological ones The result was that one could make a much more complete statement of the conduct of the individual in physiological terms, could find a parallel for that which is stated in terms of consciousness in the mechanism of the body and in the operation of that mechanism. Such a psychology was called, naturally enough, a physiological psychology. It was a statement in terms of what went on in the organism of the content with which the psychologist had been dealing. What is there in the act of the animal which answers to these different so-called psychological categories? What is there that answers to the sensations, to the motor responses? When these questions were answered physiologically, they, of course, involved mechanisms located inside of

the act, for all that takes place in the body is action. It may be delayed action, but there is nothing there that is itself simply a state, a physiological state that could be compared with a static state We come then to the sensations and undertake to state them in terms of complete reflex action. We deal with the sensation from the standpoint of the stimulus, and when we come to deal with the various emotional states we deal with them in terms of the preparation for action and the act itself as it is going on.[12] That is, it becomes now essential to relate a set of psychical states with the different phases of the act. Parallelism, then, is an attempt to find analogues between action and experienced contents.

The inevitable result of this analysis was to carry psychology from a static to a dynamic form. It was not simply a question of relating what was found in introspection with what is found in the organism; it became a question of relating together those things which were found in introspection in the dynamic way in which the physiological elements were related to the life of the organism. Psychology became in turn associational, motor, functional, and finally behavioristic.

The historical transformation of psychology was a process which took place gradually. Consciousness was something which could not be simply dispensed with. In early psychology there was a crude attempt to account for consciousness as a certain secretion in the brain, but this was only a ridiculous phase of the transformation. Consciousness was something that was there, but it was something that could be brought into closer and closer relationship with what went on in the body. What went on there had a certain definite order. Everything that took place in the body was part of an act. The earlier conception of the central nervous system assumed that one could locate certain faculties of the mind in certain parts of the brain, but a study of the central nervous system did not reveal any such correlation. It became evident that there were nothing but

[12] Thus John Dewey added to James's doctrine the necessity of conflict in action in order for emotions to arise.

paths in the central nervous system.[13] The cells of the brain were seen to be parts of the nervous paths provided with material for carrying on the system, but nothing was found there to carry on the preservation of an idea as such. There was nothing in the central nervous system which would enable one to locate a tract given over to abstractions. There was a time when the frontal lobe was regarded as the locus of thought-processes—but the frontal lobe also represents nothing but paths. The paths make very complicated conduct possible, they complicate the act enormously through the mechanism of the brain; but they do not set up any structure which functionally answers to ideas. So the study of consciousness from the standpoint of the organism inevitably led men to look at consciousness itself from the point of view of action.

What, for example, is our experience that answers to clenching of the fist? Physiological psychology followed the action out through the nerves that came from the muscles of the arm and hand. The experience of the act would then be the sensation of what was going on; in consciousness as such there is an awareness of what the organ was doing, there is a parallelism between what goes on in the organ and what takes place in consciousness. This parallelism is, of course, not a complete parallelism. There seems to be consciousness corresponding only to the sensory nerves.[14] We are conscious of some things and not conscious of others, and attention seems to play a very great part in determining which is the case. The parallelism which we carry over does not seem to be complete, but one which occurs only at various points. The thing that is interesting here is that it is the organism that now provides the clew for the analysis. Only portions of the response appear in con-

[13] [Among philosophers, Henri Bergson especially stressed this point. See his *Matière et Mémoire*.]

[14] We are conscious always of what we have done, never of doing it. We are always conscious directly only of sensory processes, never of motor processes; hence we are conscious of motor processes only through sensory processes, which are their resultants. The contents of consciousness have, therefore, to be correlated with or fitted into a physiological system in dynamic terms, as processes going on.

sciousness as such. The organism has assumed the primary place Experimental psychology started off from what it could get hold of in the physiological system, and then undertook to find out what in consciousness seemed to answer to it The scientist felt that he had the same assurance that the physiologist had in identifying these facts in the nervous system, and given those facts he could look into consciousness It was simpler to start off with the neurosis and then register what was found in the psychosis. Thus, the acceptance of some sort of a parallelism between the contents of consciousness and the physiological processes of the central nervous system led to a conception of those contents dynamically, in terms of acts, instead of statically, in terms of states. In this way the contents of consciousness were approached from below (that is, naturalistically) rather than from above (that is, transcendentally), by a study of the physiological processes of the central nervous system to determine what in the mind answers to the activities of the physiological organism

There was a question as to the directive centers for unified action. We are apt to think of the central nervous system from the point of view of the telephone board, with calls coming in and responses going out. Certain centers come to be conceived as principal centers. If you go back to the base of the brain, to that portion which is the essence of the central nervous system of lower forms, you do find an organization there which controls in its activity other activities; but when you come to conduct in the human form, you fail to find any such system in which there is a single directive center or group of centers. One can see that the various processes which are involved in running away from danger can be processes which are so interrelated with other activities that the control comes in the organization. One sees the tree as a possible place of escape if a bull is after him; and in general, one sees things which will enable the ongoing activity to be carried out. A varying group of centers may be the determining factor in the whole activity of the individual. That is the concept which has also been carried over

into the field of growth Certain parts of the embryo start growing, and control the action of growth until some other process comes into control. In the cortex, that organ which in some sense answers to human intelligence, we fail to find any exclusive and unvarying control, that is, any evidence of it in the structure of the form itself In some way we can assume that the cortex acts as a whole, but we cannot come back to certain centers and say that this is where the mind is lodged in thinking and in action. There are an indefinite number of cells connected with each other, and their innervation in some sense leads to a unitary action, but what that unity is in terms of the central nervous system it is almost impossible to state. All the different parts of the cortex seem to be involved in everything that happens All the stimuli that reach the brain are reflected into all parts of the brain, and yet we do get a unitary action There remains, then, a problem which is by no means definitely solved the unity of the action of the central nervous system. Wundt undertook to find certain centers which would be responsible for this sort of unity, but there is nothing in the structure of the brain itself which isolated any parts of the brain as those which direct conduct as a whole The unity is a unity of integration, though just how this integration takes place in detail we cannot say.

What I wanted to bring out is that the approach to psychological theory from the standpoint of the organism must inevitably be through an emphasis upon conduct, upon the dynamic rather than the static. It is, of course, possible to work in the other direction, that is, to look at experience from the point of view of the psychologist and to draw conclusions as to what must go on in the central nervous system It is possible to recognize, for example, that we are not simply at the mercy of the different stimuli that play in the central nervous system—the natural view of the physiologist. We can see these organs adjust themselves to different types of stimuli When air waves come in they affect the particular organs of the ear, when tastes and odors come in the stimuli get to tracts in the proper

organs that respond. There may seem to be merely a response of the organism to the stimuli. This position is taken over into the psychology of Spencer, who accepted the Darwinian principle of evolution. The influence of environment is exercised over the form, and the adaptation of the form results from the influences of the environment on it. Spencer conceived of the central nervous system as being continually played upon by stimuli which set up certain paths, so that it was the environment which was fashioning the form.

The phenomena of attention, however, give a different picture of conduct. The human animal is an attentive animal, and his attention may be given to stimuli that are relatively faint. One can pick out sounds at a distance. Our whole intelligent process seems to lie in the attention which is selective of certain types of stimuli [15] Other stimuli which are bombarding the system are in some fashion shunted off We give our attention to one particular thing Not only do we open the door to certain stimuli and close it to others, but our attention is an organizing process as well as a selective process When giving attention to what we are going to do we are picking out the whole group of stimuli which represent successive activity Our attention enables us to organize the field in which we are going to act Here we have the organism as acting and determining its environment. It is not simply a set of passive senses played upon by the stimuli that come from without The organism goes out and determines what it is going to respond to, and organizes that world. One organism picks out one thing and another picks out a different one, since it is going to act in a different way Such is an approach to what goes on in the central nervous system which comes to the physiologist from the psychologist.

The physiology of attention is a field which is still a dark continent. The organism itself fits itself to certain types of conduct, and this is of considerable importance in determining what the animal will do. There also lie back in the organism

[15] [See Sections 13 and 14 ]

responses, such as those of escape from danger, that represent a peculiar sensitivity. A sound in some other direction would not have the same effect. The eye is very sensitive to motions that lie outside of the field of central vision, even though this area of the retina of the eye is not so sensitive to form and distinctions of color. You look for a book in a library and you carry a sort of mental image of the back of the book; you render yourself sensitive to a certain image of a friend you are going to meet. We can sensitize ourselves to certain types of stimuli and we can build up the sort of action we are going to take. In a chain set of responses the form carries out one instinctive response and then finds itself in the presence of another stimulus, and so forth; but as intelligent beings we build up such organized reactions ourselves. The field of attention is one in which there must be a mechanism in which we can organize the different stimuli with reference to others so that certain responses can take place. The description of this is something we can reach through a study of our own conduct, and at present that is the most that we can say.

Parallelism in psychology was very largely under the control of the study of the central nervous system, and that led on inevitably to functional, motor, voluntaristic, and finally behavioristic psychology The more one could state of the processes of the individual in terms of the central nervous system, the more one would use the pattern which one found in the central nervous system to interpret conduct. What I am insisting upon is that the patterns which one finds in the central nervous system are patterns of action—not of contemplation, not of appreciation as such, but patterns of action On the other hand I want to point out that one is able to approach the central nervous system from the psychologist's point of view and set certain problems to the physiologist. How is the physiologist to explain attention? When the physiologist attempts that he is bound to do so in terms of the various paths. If he is going to explain why one path is selected rather than another he must go back to these terms of paths and actions You cannot set up

in the central nervous system a selective principle which can be generally applied throughout; you cannot say there is a specific something in the central nervous system that is related to attention; you cannot say that there is a general power of attention You have to state it specifically, so that even when you are directing your study of the central nervous system from the point of view of psychology, the type of explanation that you are going to get will have to be in terms of paths which represent action.

Such, in brief, is the history of the appearance of physiological psychology in its parallelistic form, a psychology which had moved to the next stage beyond that of associationalism. Attention is ordinarily stressed in tracing this transition, but the emphasis on attention is one which is derived largely from the study of the organism as such, and it accordingly should be seen in the larger context we have presented

PARALLELISM AND THE AMBIGUITY OF "CONSCIOUSNESS"

"Consciousness" is a very ambiguous term. One often identifies consciousness with a certain something that is there under certain conditions and is not there under other conditions One approaches this most naturally by assuming that it is something that happens under certain conditions of the organism, something, then, that can be conceived of as running parallel with certain phenomena in the nervous system, but not parallel with others. There seems to be no consciousness that answers to the motor processes as such; the consciousness we have of our action is that which is sensory in type and which answers to the current which comes from the sensory nerves which are affected by the contraction of the muscles We are not conscious of the actual motor pocesses, but we have a sensory process that runs parallel to it. This is the situation out of which parallelistic psychology arises. It implies on the one side an organism which is a going concern, that seemingly can run without consciousness. A person continues to live when he is under a general anesthetic Consciousness leaves and consciousness re-

turns, but the organism itself runs on And the more completely one is able to state the psychological processes in terms of the central nervous system the less important does this consciousness become.

The extreme statement of that sort was given by Hugo Munsterberg[16] He assumed the organism itself simply ran on, but that answering to certain nervous changes there were conscious states. If one said that he did something, what that amounted to was a consciousness of the movement of the muscles of his body in doing it; the consciousness of the beginning of the act is that which he interpreted as his own volition to act. There is only a consciousness of certain processes that are going on. Parallelism in this extreme form, however, left out of account just such processes as those of attention and the selective character of consciousness. If the physiologist had been able to point out the mechanism of the central nervous system by which we organize our action, there might be still dominant such a statement in terms of this extreme parallelism which would regard the individual as simply conscious of the selection which the organism made. But the process of selection itself is so complex that it becomes almost impossible to state it, especially in such terms. Consciousness as such is peculiarly selective, and the processes of selection, of sensitizing the organ to stimuli, are something very difficult to isolate in the central nervous system. William James points out that the amount of difference which you have to give to a certain stimulus to make it dominant is very slight, and he could conceive of an act of volition which holds on to a certain stimulus, and just gives it a little more emphasis than it otherwise would have. Wundt tried to make parallelism possible by assuming the possibility of certain centers which could perform this selective function. But there was no satisfactory statement of the way in which one could get this interaction between an organism and a consciousness, of the way in which consciousness could act upon a

[16] [See *Die Willenshandlung*]

central nervous system. So that we get at this stage of the development of psychology parallelism rather than interactionism.

The parallelistic phase of psychology reveals itself not simply as one of the passing forms which has appeared in psychological investigation, but as one which has served a very evident purpose and met a very evident need.

We do distinguish, in some sense, the experiences that we call conscious from those going on in the world around us. We see a color and give it a certain name. We find that we are mistaken, due to a defect in our vision, and we go back to the spectral colors and analyze it. We say there is something that is independent of our immediate sensory process. We are trying to get hold of that part of experience that can be taken as independent of one's own immediate response. We want to get hold of that so that we can deal with the problem of error. Where no error is involved we do not draw the line. If we discover that a tree seen at a distance is not there when we reach the spot, we have mistaken something else for a tree. Thus, we have to have a field to which we can refer our own experience; and also we require objects which are recognized to be independent of our own vision. We want the mechanism which will make that distinction at any time, and we generalize it in this way. We work out the theory of sense perception in terms of the external stimulus, so that we can get hold of that which can be depended upon in order to distinguish it from that which cannot be depended upon in the same way. Even an object that is actually there can still be so resolved. In the laboratory we can distinguish between the stimulus and the sense experience. The experimenter turns on a certain light and he knows just what that light is. He can tell what takes place in the retina and in the central nervous system, and then he asks what the experiences are. He puts all sorts of elements in the process so that the subject will mistake what it is. He gets on the one side conscious data and on the other side the physical processes that are going on. He carries this analysis only into a field which is of impor-

tance for his investigation; and he himself has objects out there which could be analyzed in the same fashion.

We want to be able to distinguish what belongs to our own experience from that which can be stated, as we say, in scientific terms. We are sure of some processes, but we are not sure as to the reaction of people to these processes. We recognize that there are all sorts of differences among individuals. We have to make this distinction, so we have to set up a certain parallelism between things which are there and have a uniform value for everybody, and things which vary with certain individuals. We seem to get a field of consciousness and a field of physical things which are not conscious.

I want to distinguish the differences in the use of the term "consciousness" to stand for accessibility to certain contents, and as synonymous with certain contents themselves. When you shut your eyes you shut yourself off from certain stimuli. If one takes an anesthetic the world is inaccessible to him. Similarly, sleep renders one inaccessible to the world. Now I want to distinguish this use of consciousness, that of rendering one accessible and inaccessible to certain fields, from these contents themselves which are determined by the experience of the individual. We want to be able to deal with an experience which varies with the different individuals, to deal with the different contents which in some sense represent the same object. We want to be able to separate those contents which vary from contents which are in some sense common to all of us. Our psychologists undertake definitely to deal with experience as it varies with individuals. Some of these experiences are dependent upon the perspective of the individual and some are peculiar to a particular organ. If one is color-blind he has a different experience from a person with a normal eye.

When we use "consciousness," then, with reference to those conditions which are variable with the experience of the individual, this usage is a quite different one from that of rendering ourselves inaccessible to the world[17] In one case we are dealing

[17] [And, incidentally, from a third use in which "consciousness" is restricted to the

with the situation of a person going to sleep, distracting his attention or centering his attention—a partial or complete exclusion of certain parts of a field. The other use is in application to the experience of the individual that is different from the experience of anybody else, and not only different in that way but different from his own experience at different times. Our experience varies not simply with our own organism but from moment to moment, and yet it is an experience which is of something which has not varied as our experiences vary, and we want to be able to study that experience in this variable form, so that some sort of parallelism has to be set up. One might attempt to set up the parallelism outside of the body, but the study of the stimuli inevitably takes us over into the study of the body itself.

Different positions will lead to different experiences in regard to such an object as a penny placed on a certain spot. There are other phenomena that are dependent upon the character of the eye, or the effect of past experiences. What the penny would be experienced as depends upon the past experiences that may have occurred to the different individuals. It is a different penny to one person from what it is to another, yet the penny is there as an entity by itself. We want to be able to deal with these spatially perspectival differences in individuals. Still more important from a psychological standpoint is the perspective of memory, by means of which one person sees one penny and another sees another penny. These are characters which we want to separate, and it is here that the legitimacy of our parallelism lies, namely, in that distinction between the object as it can be determined, physically and physiologically, as common to all, and the experience which is peculiar to a particular organism, a particular person.

Setting this distinction up as a psychological doctrine gives the sort of psychology that Wundt has most effectively and

---

level of the operation of symbols. On consciousness see "The Definition of the Psychical," *University of Chicago Decennial Publications*, III (1903), 77 ff., "What Social Objects Must Psychology Presuppose?" *Journal of Philosophy*, VII (1910), 174 ff.]

exhaustively presented. He has tried to present the organism and its environment as identical physical objects for any experience, although the reflection of them in the different experiences are all different. Two persons studying the same central nervous system at the dissecting table will see it a little differently; yet they see the same central nervous system. Each of them has a different experience in that process. Now, put on one side the organism and its environment as a common object and then take what is left, so to speak, and put that into the experience of the separate individuals, and the result is a parallelism: on the one side the physical world, and on the other side consciousness.

The basis for this distinction is, as we have seen, a familiar and a justifiable one, but when put into the form of a psychology, as Wundt did, it reaches its limits; and if carried beyond leads into difficulty. The legitimate distinction is that which enables a person to identify that phase of an experience which is peculiar to himself, which has to be studied in terms of a moment in his biography. There are facts which are important only in so far as they lie in the biography of the individual. The technique of that sort of a separation comes back to the physiological environment on one side and to the experience on the other. In this way an experience of the object itself is contrasted with the individual's experience, consciousness on one side with the unconscious world on the other.

If we follow this distinction down to its limits we reach a physiological organism that is the same for all people, played upon by a set of stimuli which is the same to all. We want to follow the effects of such stimuli in the central nervous system up to the point where a particular individual has a specific experience. When we have done that for a particular case, we use this analysis as a basis for generalizing that distinction. We can say that there are physical things on one side and mental events on the other. We assume that the experienced world of each person is looked upon as a result of a causal series that lies inside of his brain. We follow stimuli into the brain, and

there we say consciousness flashes out. In this way we have ultimately to locate all experience in the brain, and then old epistemological ghosts arise Whose brain is it? How is the brain known? Where does that brain lie? The whole world comes to lie inside of the observer's brain; and his brain lies in everybody else's brain, and so on without end. All sorts of difficulties arise if one undertakes to erect this parallelistic division into a metaphysical one. The essentially practical nature of this division must now be pointed out.

### THE PROGRAM OF BEHAVIORISM

We have seen that a certain sort of parallelism is involved in the attempt to state the experience of the individual in so far as it is peculiar to him as an individual. What is accessible only to that individual, what takes place only in the field of his own inner life, must be stated in its relationship to the situation within which it takes place. One individual has one experience and another has another experience, and both are stated in terms of their biographies; but there is in addition that which is common to the experience of all. And our scientific statement correlates that which the individual himself experiences, and which can ultimately be stated only in terms of his experience, with the experience which belongs to everyone. This is essential in order that we may interpret what is peculiar to the individual. We are always separating that which is peculiar to our own reaction, that which we can see that other persons cannot see, from that which is common to all. We are referring what belongs to the experience just of the individual to a common language, to a common world. And when we carry out this relationship, this correlation, into what takes place physically and physiologically, we get a parallelistic psychology.

The particular color or odor that any one of us experiences is a private affair It differs from the experience of other individuals, and yet there is the common object to which it refers. It is the same light, the same rose, that is involved in these experiences. What we try to do is to follow these common

stimuli in through the nervous system of each of these individuals. We aim to get the statement in universal terms which will answer to those particular conditions. We want to control them as far as we can, and it is that determination of the conditions under which the particular experience takes place that enables us to carry out that control.[18]

If one says that his experience of an object is made up of different sensations and then undertakes to state the conditions under which those sensations take place, he may say that he is stating those conditions in terms of his own experience. But they are conditions which are common to all. He measures, he determines just what is taking place, but this apparatus with which he measures is, after all, made up of his sensuous experience. Things that are hot or cold, rough or smooth, the objects themselves, are stated in terms of sensations, but they are stated in terms of sensations which we can make universal, and we take these common characters of experience and find in terms of them those experiences which are peculiar to the different individuals.

Psychology is interested in this correlation, in finding out what the relationship is between what goes on in the physical world and what goes on in the organism when a person has a sensory experience. That program was carried out by Hermann Helmholtz.[19] The world was there in terms which could be stated in the laws of science, i e , the stimuli were stated in physical terms. What goes on in the nervous system could be stated more and more exactly, and this could be correlated with certain definite experiences which the individual found in his own life. And the psychologist is interested in getting the correlation between the conditions under which the experience takes place and that which is peculiar to the individual. He wishes to make these statements as universal as possible, and is scientific in that respect He wants to state the ex-

[18] [The following methodological interpretation of parallelism is further discussed in Section 15 ]

[19] [*Die Lehre von dem Tonempfindungen, Handbuch der physiologischen Optik* ]

perience of an individual just as closely as he can in terms of the field which he can control, those conditions under which it appears. He naturally tries to state the conduct of the individual in terms of his reflexes, and he carries back as far as he can the more complex reflexes of the individual to the simpler forms of action. He uses, as far as he is able to use, a behavioristic statement, because that can be formulated in terms of this same field over which he has control.

The motive back of modern psychology gets an expression in the field of mental testing, where one is getting correlations between certain situations and certain responses. It is characteristic of this psychology that not only is it as behavioristic as it can be (in that it states the experience of the individual as completely as it can in objective terms), but it also is interested in getting such statements and correlations so that it can control conduct as far as possible We find modern psychology interested in practical problems, especially those of education. We have to lead the intelligences of infants and children into certain definite uses of media, and certain definite types of responses How can we take the individual with his peculiarities and bring him over into a more nearly uniform type of response? He has to have the same language as others, and the same units of measurement; and he has to take over a certain definite culture as a background for his own experience. He has to fit himself into certain social structures and make them a part of himself. How is that to be accomplished? We are dealing with separate individuals and yet these individuals have to become a part of a common whole. We want to get the correlation between this world which is common and that which is peculiar to the individual. So we have psychology attacking the questions of learning, and the problems of the school, and trying to analyze different intelligences so that we can state them in terms which are as far as possible common; we want something which can correlate with the task which the child has to carry out. There are certain definite processes involved in speech. What is there that is uniform by means of which we are able to iden-

tify what the individual can do and what particular training he may have to take? Psychology also goes over into the field of business questions, of salesmanship, personnel questions; it goes over into the field of that which is abnormal and tries to get hold of that which is peculiar in the abnormal individual and to bring it into relation with the normal, and with the structures which get their expression in these abnormalities. It is interesting to see that psychology starts off with this problem of getting correlations between the experience of individuals and conditions under which it takes place, and undertakes to state this experience in terms of behavior, and that it at once endeavors to make a practical use of this correlation it finds for the purposes of training and control. It is becoming essentially a practical science, and has pushed to one side the psychological and philosophical problems which have been tied up with earlier dogma under associational psychology. Such are the influences which work in the behavioristic psychology.

This psychology is not, and should not be regarded as, a theory which is to be put over against an associational doctrine. What it is trying to do is to find out what the conditions are under which the experience of the individual arises That experience is of the sort that takes us back to conduct in order that we may follow it. It is that which gives a distinctive mark to a psychological investigation. History and all the social sciences deal with human beings, but they are not primarily psychological. Psychology may be of great importance in dealing with, say, economics, the problem of value, of desire, the problems of political science, the relation of the individual to the state, personal relations which have to be considered in terms of individuals. All of the social sciences can be found to have a psychological phase. History is nothing but biography, a whole series of biographies, and yet all of these social sciences deal with individuals in their common characters; and where the individual stands out as different he is looked at from the point of view of that which he accomplishes in the whole society, or

in terms of the destructive effect which he may have. But we are not primarily occupied as social scientists in studying his experience as such. Psychology does undertake to work out the technique which will enable it to deal with these experiences which any individual may have at any moment in his life, and which are peculiar to that individual. And the method of dealing with such an experience is in getting the conditions under which that experience of the individual takes place. We should undertake to state the experience of the individual just as far as we can in terms of the conditions under which it arises. It is essentially a control problem to which the psychologist is turning. It has, of course, its aspect of research for knowledge. We want to increase our knowledge, but there is back of that an attempt to get control through the knowledge which we obtain; and it is very interesting to see that our modern psychology is going farther and farther into those fields within which control can be so realized. It is successful in so far as it can work out correlations which can be tested. We want to get hold of those factors in the nature of the individual which can be recognized in the nature of all members of society but which can be identified in the particular individual. Those are problems which are forcing themselves more and more to the front.

There is another phase of recent psychology which I should refer to, namely, configuration or *gestalt* psychology, which has been of interest in recent years. There we have the recognition of elements or phases of experience which are common to the experience of the individual and to those conditions under which this experience arises.[20] There are certain general forms in the field of perception in the experience of the individual as well as in the objects themselves. They can be identified. One cannot take such a thing as a color and build it up out of certain sets of sensations. Experience, even that of the individual, must start with some whole. It must involve some whole in

[20] [W. Köhler, *Die physischen Gestalten in Ruhe und im stationaren Zustand, Gestalt Psychology*]

order that we may get the elements we are after. What is of peculiar importance to us is this recognition of an element which is common in the perception of the individual and that which is regarded as a condition under which that perception arises—a position in opposition to an analysis of experience which proceeds on the assumption that the whole we have in our perception is simply an organization of these separate elements. *Gestalt* psychology gives us another element which is common to the experience of the individual and the world which determines the conditions under which that experience arises Where before one had to do with the stimuli and what could be traced out in the central nervous system, and then correlated with the experience of the individual, now we have a certain structure that has to be recognized both in the experience of the individual and the conditioning world.

A behavioristic psychology represents a definite tendency rather than a system, a tendency to state as far as possible the conditions under which the experience of the individual arises. Correlation gets its expression in parallelism. The term is unfortunate in that it carries with it the distinction between mind and body, between the psychical and the physical. It is true that all the operations of stimuli can be traced through to the central nervous system, so we seem to be able to take the problem inside of our skins and get back to something in the organism, the central nervous system, which is representative of everything that happens outside. If we speak of a light as influencing us, it does not influence us until it strikes the retina of the eye. Sound does not exert influence until it reaches the ear, and so on, so that we can say the whole world can be stated in terms of what goes on inside of the organism itself. And we can say that what we are trying to correlate are the happenings in the central nervous system on the one side and the experience of the individual on the other.

But we have to recognize that we have made an arbitrary cut there. We cannot take the central nervous system by itself,

nor the physical objects by themselves. The whole process is one which starts from a stimulus and involves everything that takes place. Thus, psychology correlates the difference of perceptions with the physical intensity of the stimulus. We could state the intensity of a weight we were lifting in terms of the central nervous system but that would be a difficult way of stating it That is not what psychology is trying to do. It is not trying to relate a set of psychoses to a set of neuroses. What it is trying to do is to state the experiences of the individual in terms of the conditions under which they arise, and such conditions can very seldom be stated in terms of the neuroses Occasionally we can follow the process right up into the central nervous system, but it is quite impossible to state most of the conditions in those terms. We control experiences in the intensity of the light which we have, in the noises that we produce, control them in terms of the effects which are produced on us by heat and cold. That is where we get our control We may be able to change these by dealing with actual organisms, but in general we are trying to correlate the experience of the individual with the situation under which it arises. In order that we may get that sort of control we have to have a generalized statement. We want to know the conditions under which experience may appear. We are interested in finding the most general laws of correlation we can find But the psychologist is interested in finding that sort of condition which can be correlated with the experience of the individual. We are trying to state the experience of the individual and situations in just as common terms as we can, and it is this which gives the importance to what we call behavioristic psychology. It is not a new psychology that comes in and takes the place of an old system.

An objective psychology is not trying to get rid of consciousness, but trying to state the intelligence of the individual in terms which will enable us to see how that intelligence is exercised, and how it may be improved. It is natural, then, that such a psychology as this should seek for a statement which

would bring these two phases of the experience as close to each other as possible, or translate them into language which is common to both fields We do not want two languages, one of certain physical facts and one of certain conscious facts. If you push that analysis to the limit you get such results as where you say that everything that takes place in consciousness in some way has to be located in the head, because you are following up a certain sort of causal relation which affects consciousness. The head you talk about is not stated in terms of the head you are observing. Bertrand Russell says the real head he is referring to is not the head that the physiologist is looking at, but the physiologist's own head Whether that is the case or not, it is a matter of infinite indifference to psychologists. That is not a problem in the present psychology, and behaviorism is not to be regarded as legitimate up to a certain point and as then breaking down. Behavioristic psychology only undertakes to get a common statement that is significant and makes our correlation successful. The history of psychology has been a history which moved in this direction, and anyone who looks at what takes place in the psychological Associations at the present time, and the ways in which psychology is being carried over into other fields, sees that the interest, the impulse that lies behind it, is in getting just such a correlation which will enable science to get a control over the conditions of experience.

The term "parallelism" has an unfortunate implication. it is historically and philosophically bound up with the contrast of the physical over against the psychical, with consciousness over against the unconscious world Actually, we simply state what an experience is over against those conditions under which it arises. That fact lies behind "parallelism," and to carry out the correlation one has to state both fields in as common a language as possible, and behaviorism is simply a movement in that direction. Psychology is not something that deals with consciousness; psychology deals with the experience of the individual in its relation to the conditions under which the experience goes on It is social psychology where the conditions are social ones.

It is behavioristic where the approach to experience is made through conduct.[21]

WUNDT AND THE CONCEPT OF THE GESTURE

The particular field of social science with which we are concerned is one which was opened up through the work of Darwin and the more elaborate presentation of Wundt.

If we take Wundt's parallelistic statement we get a point of view from which we can approach the problem of social experience. Wundt undertook to show the parallelism between what goes on in the body as represented by processes of the central nervous system, and what goes on in those experiences which the individual recognizes as his own. He had to find that which was common to these two fields—what in the psychical experience could be referred to in physical terms.[22]

[21] By way of further avoiding certain metaphysical implications I wish to say that it does not follow that because we have on the one side experience which is individual, which may be perhaps private in the sense to which I have referred to privacy, and have on the other a common world, that we have two separate levels of existence or reality which are to be distinguished metaphysically from each other A great deal that appears simply as the experience of an individual, as his own sensation or perception, becomes public later Every discovery as such begins with experiences which have to be stated in terms of the biography of the discoverer. The man can note exceptions and implications which other people do not see and can only record them in terms of his own experience. He puts them in that form in order that other persons may get a like experience, and then he undertakes to find out what the explanation of these strange facts is He works out hypotheses and tests them and they become common property thereafter That is, there is a close relationship between these two fields of the psychical and the physical, the private and the public We make distinctions between these, recognizing that the same factor may now be only private and yet later may become public It is the work of the discoverer through his observations and through his hypotheses and experiments to be continually transforming what is his own private experience into a universal form. The same may be said of other fields, as in the work of the great artist who takes his own emotions and gives them a universal form so that others may enter into them

[22] [Cf *Grundzuge der physiologischen Psychologie* ]

The fundamental defect of Wundt's psychophysical parallelism is the fundamental defect of all psychophysical parallelism the required parallelism is not in fact complete on the psychical side, since only the sensory and not the motor phase of the physiological process of experience has a psychic correlate, hence the psychical aspect of the required parallelism can be completed only physiologically, thus breaking it down And this fundamental defect of his psychophysical parallelism vitiates the analysis of social experiences—and especially of communication—which he bases upon the assumption of that parallelism

Wundt isolated a very valuable conception of the gesture as that which becomes later a symbol, but which is to be found in its earlier stages as a part of a social act.[23] It is that part of the social act which serves as a stimulus to other forms involved in the same social act. I have given the illustration of the dog-fight as a method of presenting the gesture. The act of each dog becomes the stimulus to the other dog for his response. There is then a relationship between these two; and as the act is responded to by the other dog, it, in turn, undergoes change. The very fact that the dog is ready to attack another becomes a stimulus to the other dog to change his own position or his own attitude. He has no sooner done this than the change of attitude in the second dog in turn causes the first dog to change his attitude. We have here a conversation of gestures. They are not, however, gestures in the sense that they are significant. We do not assume that the dog says to himself, "If the animal comes from this direction he is going to spring at my throat and I will turn in such a way." What does take place is an actual change in his own position due to the direction of the approach of the other dog.

We find a similar situation in boxing and in fencing, as in the feint and the parry that is initiated on the part of the other. And then the first one of the two in turn changes his attack; there may be considerable play back and forth before actually a stroke results. This is the same situation as in the dog-fight. If the individual is successful a great deal of his attack and defense must be not considered, it must take place immediately. He must adjust himself "instinctively" to the attitude of the other individual. He may, of course, think it out. He may deliberately feint in order to open up a place of attack. But a great deal has to be without deliberation.

In this case we have a situation in which certain parts of the act become a stimulus to the other form to adjust itself to those

[23] [*Volkerpsychologie*, Vol. I. For Mead's treatment of Wundt compare "The Relations of Psychology and Philology," *Psychological Bulletin*, I (1904), 375 ff., with the more critical "The Imagination in Wundt's Treatment of Myth and Religion," *ibid.*, III (1906), 393 ff.]

responses; and that adjustment in turn becomes a stimulus to the first form to change his own act and start on a different one There are a series of attitudes, movements, on the part of these forms which belong to the beginnings of acts that are the stimuli for the responses that take place. The beginning of a response becomes the stimulus to the first form to change his attitude, to adopt a different act. The term "gesture" may be identified with these beginnings of social acts which are stimuli for the response of other forms. Darwin was interested in such gestures because they expressed emotions, and he dealt with them very largely as if this were their sole function. He looked at them as serving the function with reference to the other forms which they served with reference to his own observation. The gestures expressed emotions of the animal to Darwin; he saw in the attitude of the dog the joy with which he accompanied his master in taking a walk. And he left his treatment of the gestures largely in these terms

It was easy for Wundt to show that this was not a legitimate point of attack on the problem of these gestures. They did not at bottom serve the function of expression of the emotions: that was not the reason why they were stimuli, but rather because they were parts of complex acts in which different forms were involved They became the tools through which the other forms responded. When they did give rise to a certain response, they were themselves changed in response to the change which took place in the other form. They are part of the organization of the social act, and highly important elements in that organization. To the human observer they are expressions of emotion, and that function of expressing emotion can legitimately become the field of the work of the artist and of the actor. The actor is in the same position as the poet: he is expressing emotions through his own attitude, his tones of voice, through his gestures, just as the poet through his poetry is expressing his emotions and arousing that emotion in others. We get in this way a function which is not found in the social act of these animals, or in a great deal of our own conduct, such as that of the

boxer and the fencer. We have this interplay going on with the gestures serving their functions, calling out the responses of the others, these responses becoming themselves stimuli for readjustment, until the final social act itself can be carried out. Another illustration of this is in the relation of parent-form to the infant—the stimulating cry, the answering tone on the part of the parent-form, and the consequent change in the cry of the infant-form. Here we have a set of adjustments of the two forms carrying out a common social act involved in the care of the child. Thus we have, in all these instances, a social process in which one can isolate the gesture which has its function in the social process, and which can become an expression of emotions, or later can become the expression of a meaning, an idea.

The primitive situation is that of the social act which involves the interaction of different forms, which involves, therefore, the adjustment of the conduct of these different forms to each other, in carrying out the social process. Within that process one can find what we term the gestures, those phases of the act which bring about the adjustment of the response of the other form. These phases of the act carry with them the attitude as the observer recognizes it, and also what we call the inner attitude. The animal may be angry or afraid. There are such emotional attitudes which lie back of these acts, but these are only part of the whole process that is going on. Anger expresses itself in attack, fear expresses itself in flight We can see, then, that the gestures mean these attitudes on the part of the form, that is, they have that meaning for us We see that an animal is angry and that he is going to attack. We know that that is in the action of the animal, and is revealed by the attitude of the animal. We cannot say the animal means it in the sense that he has a reflective determination to attack A man may strike another before he means it, a man may jump and run away from a loud sound behind his back before he knows what he is doing. If he has the idea in his mind, then the gesture not only means this to the observer but it also means the idea which the individual has. In one case the observer sees that the attitude of the dog

means attack, but he does not say that it means a conscious determination to attack on the part of the dog. However, if somebody shakes his fist in your face you assume that he has not only a hostile attitude but that he has some idea behind it You assume that it means not only a possible attack, but that the individual has an idea in his experience.

When, now, that gesture means this idea behind it and it arouses that idea in the other individual, then we have a significant symbol. In the case of the dog-fight we have a gesture which calls out appropriate response; in the present case we have a symbol which answers to a meaning in the experience of the first individual and which also calls out that meaning in the second individual. Where the gesture reaches that situation it has become what we call "language." It is now a significant symbol and it signifies a certain meaning.[24]

The gesture is that phase of the individual act to which adjustment takes place on the part of other individuals in the social process of behavior. The vocal gesture becomes a significant symbol (unimportant, as such, on the merely affective side of experience) when it has the same effect on the individual making it that it has on the individual to whom it is addressed or who explicitly responds to it, and thus involves a reference to the self of the individual making it. The gesture in general, and the vocal gesture in particular, indicates some object or other within the field of social behavior, an object of common interest to all the individuals involved in the given social act thus directed toward or upon that object. The function of the gesture is to make adjustment possible among the individuals implicated in any given social act with reference to the object or objects with which that act is concerned, and the significant gesture or significant symbol affords far greater facilities for such adjustment and readjustment than does the non-significant gesture, because it calls out in the individual making it the same attitude toward it (or toward its meaning) that it calls out in

[24] [See "A Behavioristic Account of the Significant Symbol," *Journal of Philosophy*, XIX (1922), 157 ff.]

the other individuals participating with him in the given social act, and thus makes him conscious of their attitude toward it (as a component of his behavior) and enables him to adjust his subsequent behavior to theirs in the light of that attitude. In short, the conscious or significant conversation of gestures is a much more adequate and effective mechanism of mutual adjustment within the social act—involving, as it does, the taking, by each of the individuals carrying it on, of the attitudes of the others toward himself—than is the unconscious or non-significant conversation of gestures.

When, in any given social act or situation, one individual indicates by a gesture to another individual what this other individual is to do, the first individual is conscious of the meaning of his own gesture—or the meaning of his gesture appears in his own experience—in so far as he takes the attitude of the second individual toward that gesture, and tends to respond to it implicitly in the same way that the second individual responds to it explicitly. Gestures become significant symbols when they implicitly arouse in an individual making them the same responses which they explicitly arouse, or are supposed to arouse, in other individuals, the individuals to whom they are addressed; and in all conversations of gestures within the social process, whether external (between different individuals) or internal (between a given individual and himself), the individual's consciousness of the content and flow of meaning involved depends on his thus taking the attitude of the other toward his own gestures. In this way every gesture comes within a given social group or community to stand for a particular act or response, namely, the act or response which it calls forth explicitly in the individual to whom it is addressed, and implicitly in the individual who makes it; and this particular act or response for which it stands is its meaning as a significant symbol. Only in terms of gestures as significant symbols is the existence of mind or intelligence possible; for only in terms of gestures which are significant symbols can thinking—which is simply an internalized or implicit conversation of the individual with himself by

means of such gestures—take place. The internalization in our experience of the external conversations of gestures which we carry on with other individuals in the social process is the essence of thinking; and the gestures thus internalized are significant symbols because they have the same meanings for all individual members of the given society or social group, i e., they respectively arouse the same attitudes in the individuals making them that they arouse in the individuals responding to them: otherwise the individual could not internalize them or be conscious of them and their meanings. As we shall see, the same procedure which is responsible for the genesis and existence of mind or consciousness—namely, the taking of the attitude of the other toward one's self, or toward one's own behavior—also necessarily involves the genesis and existence at the same time of significant symbols, or significant gestures.

In Wundt's doctrine, the parallelism between the gesture and the emotion or the intellectual attitude of the individual, makes it possible to set up a like parallelism in the other individual. The gesture calls out a gesture in the other form which will arouse or call out the same emotional attitude and the same idea Where this has taken place the individuals have begun to talk to each other. What I referred to before was a conversation of gestures which did not involve significant symbols or gestures The dogs are not talking to each other; there are no ideas in the minds of the dogs; nor do we assume that the dog is trying to convey an idea to the other dog. But if the gesture, in the case of the human individual, has parallel with it a certain psychical state which is the idea of what the person is going to do, and if this gesture calls out a like gesture in the other individual and calls out a similar idea, then it becomes a significant gesture. It stands for the ideas in the minds of both of them.

There is some difficulty in carrying out this analysis if we accept Wundt's parallelism When a person shakes his fist in your face, that is a gesture in the sense in which we use the term, the beginning of an act that calls out a response on your part. Your

response may vary: it may depend on the size of the man, it may mean shaking your fist, or it may mean flight. A whole series of different responses are possible. In order that Wundt's theory of the origin of language may be carried out, the gesture which the first individual makes use of must in some sense be reproduced in the experience of the individual in order that it may arouse the same idea in his mind We must not confuse the beginning of language with its later stages It is quite true that as soon as we see the attitude of the dog we say that it means an attack, or that when we see a person looking around for a chair that it means he would like to sit down The gesture is one which means these processes, and that meaning is aroused by what we see. But we are supposed to be at the beginning of these developments of language. If we assume that there is a certain psychical state answering to a physical state how are we going to get to the point where the gesture will arouse the *same* gesture in the attitude of the other individual? In the very beginning the other person's gesture means what you are going to do about it It does not mean what he is thinking about or even his emotion Supposing his angry attack aroused fear in you, then you are not going to have anger in your mind, but fear. His gesture means fear as far as you are concerned That is the primitive situation. Where the big dog attacks the little dog, the little dog puts his tail between his legs and runs away, but the gesture does not call out in the second individual what it did in the first The response is generally of a different kind from the stimulus in the social act, a different action is aroused. If you assume that there is a certain idea answering to that act, then you want at a later stage to get the idea of the first form, but originally your idea will be your own idea which answers to a certain end. If we say that gesture "A" has idea "a" as answering to it, gesture "A" in the first form calls out gesture "B" and its related idea "b" in the second form. Here the idea that answers to gesture "A" is not idea "a" but idea "b." Such a process can never arouse in one mind just the idea which the other person has in his.

How, in terms of Wundt's psychological analysis of communication, does a responding organism get or experience the same idea or psychical correlate of any given gesture that the organism making this gesture has? The difficulty is that Wundt presupposes selves as antecedent to the social process in order to explain communication within that process, whereas, on the contrary, selves must be accounted for in terms of the social process, and in terms of communication; and individuals must be brought into essential relation within that process before communication, or the contact between the minds of different individuals, becomes possible. The body is not a self, as such; it becomes a self only when it has developed a mind within the context of social experience. It does not occur to Wundt to account for the existence and development of selves and minds within, or in terms of, the social process of experience, and his presupposition of them as making possible that process, and communication within it, invalidates his analysis of that process For if, as Wundt does, you presuppose the existence of mind at the start, as explaining or making possible the social process of experience, then the origin of minds and the interaction among minds become mysteries. But if, on the other hand, you regard the social process of experience as prior (in a rudimentary form) to the existence of mind and explain the origin of minds in terms of the interaction among individuals within that process, then not only the origin of minds, but also the interaction among minds (which is thus seen to be internal to their very nature and presupposed by their existence or development at all) cease to seem mysterious or miraculous. Mind arises through communication by a conversation of gestures in a social process or context of experience—not communication through mind.

Wundt thus overlooks the important fact that communication is fundamental to the nature of what we term "mind"; and it is precisely in the recognition of this fact that the value and advantage of a behavioristic account of mind is chiefly to be found Thus, Wundt's analysis of communication presupposes

the existence of minds which are able to communicate, and this existence remains an inexplicable mystery on his psychological basis; whereas the behavioristic analysis of communication makes no such presupposition, but instead explains or accounts for the existence of minds in terms of communication and social experience; and by regarding minds as phenomena which have arisen and developed out of the process of communication and of social experience generally—phenomena which therefore presuppose that process, rather than being presupposed by it—this analysis is able to throw real light on their nature. Wundt preserves a dualism or separation between gesture (or symbol) and idea, between sensory process and psychic content, because his psychophysical parallelism commits him to this dualism; and though he recognizes the need for establishing a functional relationship between them in terms of the process of communication within the social act, yet the only relationship of this sort which can be established on his psychological basis is one which entirely fails to illuminate the bearing that the context of social experience has upon the existence and development of mind. Such illumination is provided only by the behavioristic analysis of communication, and by the statement of the nature of mind in terms of communication to which that analysis leads.

## MEANING[25]

We are particularly concerned with intelligence on the human level, that is, with the adjustment to one another of the acts of different human individuals within the human social process; an adjustment which takes place through communication: by gestures on the lower planes of human evolution, and by significant symbols (gestures which possess meanings and are hence more than mere substitute stimuli) on the higher planes of human evolution.

The central factor in such adjustment is "meaning." Meaning arises and lies within the field of the relation between the

[25] [See also "Social Consciousness and the Consciousness of Meaning," *Psychological Bulletin*, VII (1910), 397 ff, "The Mechanism of Social Consciousness," *Journal of Philosophy*, IX (1912), 401 ff]

gesture of a given human organism and the subsequent behavior of this organism as indicated to another human organism by that gesture. If that gesture does so indicate to another organism the subsequent (or resultant) behavior of the given organism, then it has meaning In other words, the relationship between a given stimulus—as a gesture—and the later phases of the social act of which it is an early (if not the initial) phase constitutes the field within which meaning originates and exists. Meaning is thus a development of something objectively there as a relation between certain phases of the social act, it is not a psychical addition to that act and it is not an "idea" as traditionally conceived. A gesture by one organism, the resultant of the social act in which the gesture is an early phase, and the response of another organism to the gesture, are the relata in a triple or threefold relationship of gesture to first organism, of gesture to second organism, and of gesture to subsequent phases of the given social act; and this threefold relationship constitutes the matrix within which meaning arises, or which develops into the field of meaning. The gesture stands for a certain resultant of the social act, a resultant to which there is a definite response on the part of the individuals involved therein, so that meaning is given or stated in terms of response. Meaning is implicit—if not always explicit—in the relationship among the various phases of the social act to which it refers, and out of which it develops. And its development takes place in terms of symbolization at the human evolutionary level.

We have been concerning ourselves, in general, with the social process of experience and behavior as it appears in the calling out by the act of one organism of an adjustment to that act in the responsive act of another organism. We have seen that the nature of meaning is intimately associated with the social process as it thus appears, that meaning involves this three-fold relation among phases of the social act as the context in which it arises and develops: this relation of the gesture of one organism to the adjustive response of another organism (also implicated in the given act), and to the completion of the given act—

a relation such that the second organism responds to the gesture of the first as indicating or referring to the completion of the given act. For example, the chick's response to the cluck of the mother hen is a response to the meaning of the cluck; the cluck refers to danger or to food, as the case may be, and has this meaning or connotation for the chick.

The social process, as involving communication, is in a sense responsible for the appearance of new objects in the field of experience of the individual organisms implicated in that process. Organic processes or responses in a sense constitute the objects to which they are responses, that is to say, any given biological organism is in a way responsible for the existence (in the sense of the meanings they have for it) of the objects to which it physiologically and chemically responds. There would, for example, be no food—no edible objects—if there were no organisms which could digest it. And similarly, the social process in a sense constitutes the objects to which it responds, or to which it is an adjustment. That is to say, objects are constituted in terms of meanings within the social process of experience and behavior through the mutual adjustment to one another of the responses or actions of the various individual organisms involved in that process, an adjustment made possible by means of a communication which takes the form of a conversation of gestures in the earlier evolutionary stages of that process, and of language in its later stages.

Awareness or consciousness is not necessary to the presence of meaning in the process of social experience. A gesture on the part of one organism in any given social act calls out a response on the part of another organism which is directly related to the action of the first organism and its outcome; and a gesture is a symbol of the result of the given social act of one organism (the organism making it) in so far as it is responded to by another organism (thereby also involved in that act) as indicating that result. The mechanism of meaning is thus present in the social act before the emergence of consciousness or awareness of meaning occurs. The act or adjustive response of the second organ-

ism gives to the gesture of the first organism the meaning which it has.

Symbolization constitutes objects not constituted before, objects which would not exist except for the context of social relationships wherein symbolization occurs. Language does not simply symbolize a situation or object which is already there in advance, it makes possible the existence or the appearance of that situation or object, for it is a part of the mechanism whereby that situation or object is created. The social process relates the responses of one individual to the gestures of another, as the meanings of the latter, and is thus responsible for the rise and existence of new objects in the social situation, objects dependent upon or constituted by these meanings. Meaning is thus not to be conceived, fundamentally, as a state of consciousness, or as a set of organized relations existing or subsisting mentally outside the field of experience into which they enter; on the contrary, it should be conceived objectively, as having its existence entirely within this field itself[26] The response of one organism to the gesture of another in any given social act is the meaning of that gesture, and also is in a sense responsible for the appearance or coming into being of the new object—or new content of an old object—to which that gesture refers through the outcome of the given social act in which it is an early phase. For, to repeat, objects are in a genuine sense constituted within the social process of experience, by the communication and mutual adjustment of behavior among the individual organisms which are involved in that process and which carry it on. Just as in fencing the parry is an interpretation of the thrust, so, in the social act, the adjustive response of one organism to the gesture of another is the interpretation of that gesture by that organism—it is the meaning of that gesture.

At the level of self-consciousness such a gesture becomes a symbol, a significant symbol. But the interpretation of gestures

[26] Nature has meaning and implication but not indication by symbols The symbol is distinguishable from the meaning it refers to Meanings are in nature, but symbols are the heritage of man (1924)

is not, basically, a process going on in a mind as such, or one necessarily involving a mind; it is an external, overt, physical, or physiological process going on in the actual field of social experience. Meaning can be described, accounted for, or stated in terms of symbols or language at its highest and most complex stage of development (the stage it reaches in human experience), but language simply lifts out of the social process a situation which is logically or implicitly there already. The language symbol is simply a significant or conscious gesture

Two main points are being made here: (1) that the social process, through the communication which it makes possible among the individuals implicated in it, is responsible for the appearance of a whole set of new objects in nature, which exist in relation to it (objects, namely, of "common sense"); and (2) that the gesture of one organism and the adjustive response of another organism to that gesture within any given social act bring out the relationship that exists between the gesture as the beginning of the given act and the completion or resultant of the given act, to which the gesture refers. These are the two basic and complementary logical aspects of the social process.

The result of any given social act is definitely separated from the gesture indicating it by the response of another organism to that gesture, a response which points to the result of that act as indicated by that gesture This situation is all there—is completely given—on the non-mental, non-conscious level, before the analysis of it on the mental or conscious level. Dewey says that meaning arises through communication [27] It is to the content to which the social process gives rise that this statement refers; not to bare ideas or printed words as such, but to the social process which has been so largely responsible for the objects constituting the daily environment in which we live: a process in which communication plays the main part. That process can give rise to these new objects in nature only in so far as it makes possible communication among the individual organisms involved in it. And the sense in which it is responsible for their

[27] [See *Experience and Nature*, chap. v ]

existence—indeed for the existence of the whole world of common-sense objects—is the sense in which it determines, conditions, and makes possible their abstraction from the total structure of events, as identities which are relevant for everyday social behavior; and in that sense, or as having that meaning, they are existent only relative to that behavior. In the same way, at a later, more advanced stage of its development, communication is responsible for the existence of the whole realm of scientific objects as well as identities abstracted from the total structure of events by virtue of their relevance for scientific purposes.

The logical structure of meaning, we have seen, is to be found in the threefold relationship of gesture to adjustive response and to the resultant of the given social act. Response on the part of the second organism to the gesture of the first is the interpretation—and brings out the meaning—of that gesture, as indicating the resultant of the social act which it initiates, and in which both organisms are thus involved. This threefold or triadic relation between gesture, adjustive response, and resultant of the social act which the gesture initiates is the basis of meaning, for the existence of meaning depends upon the fact that the adjustive response of the second organism is directed toward the resultant of the given social act as initiated and indicated by the gesture of the first organism. The basis of meaning is thus objectively there in social conduct, or in nature in its relation to such conduct. Meaning is a content of an object which is dependent upon the relation of an organism or group of organisms to it It is not essentially or primarily a psychical content (a content of mind or consciousness), for it need not be conscious at all, and is not in fact until significant symbols are evolved in the process of human social experience. Only when it becomes identified with such symbols does meaning become conscious. The meaning of a gesture on the part of one organism is the adjustive response of another organism to it, as indicating the resultant of the social act it initiates, the adjustive response of the second organism being itself directed toward or related to the

completion of that act. In other words, meaning involves a reference of the gesture of one organism to the resultant of the social act it indicates or initiates, as adjustively responded to in this reference by another organism; and the adjustive response of the other organism is the meaning of the gesture.

Gestures may be either conscious (significant) or unconscious (non-significant). The conversation of gestures is not significant below the human level, because it is not conscious, that is, not *self*-conscious (though it is conscious in the sense of involving feelings or sensations). An animal as opposed to a human form, in indicating something to, or bringing out a meaning for, another form, is not at the same time indicating or bringing out the same thing or meaning to or for himself; for he has no mind, no thought, and hence there is no meaning here in the significant or self-conscious sense. A gesture is not significant when the response of another organism to it does not indicate to the organism making it what the other organism is responding to.[28]

Much subtlety has been wasted on the problem of the meaning of meaning. It is not necessary, in attempting to solve this problem, to have recourse to psychical states, for the nature of meaning, as we have seen, is found to be implicit in the structure of the social act, implicit in the relations among its three basic individual components: namely, in the triadic relation of a gesture of one individual, a response to that gesture by a second individual, and completion of the given social act initiated by the gesture of the first individual. And the fact that the nature of

[28] There are two characters which belong to that which we term "meanings," one is participation and the other is communicability. Meaning can arise only in so far as some phase of the act which the individual is arousing in the other can be aroused in himself There is always to this extent participation And the result of this participation is communicability, i e , the individual can indicate to himself what he indicates to others There is communication without significance where the gesture of the individual calls out the response in the other without calling out or tending to call out the same response in the individual himself Significance *from the standpoint of the observer may* be said to be present in the gesture which calls out the appropriate response in the other or others within a co-operative act, but it does not become significant to the individuals who are involved in the act unless the tendency to the act is aroused within the individual who makes it, and unless the individual who is directly affected by the gesture puts himself in the attitude of the individual who makes the gesture (MS).

meaning is thus found to be implicit in the structure of the social act provides additional emphasis upon the necessity, in social psychology, of starting off with the initial assumption of an ongoing social process of experience and behavior in which any given group of human individuals is involved, and upon which the existence and development of their minds, selves, and self-consciousness depend.

## THE NATURE OF REFLECTIVE INTELLIGENCE

In the type of temporary inhibition of action which signifies thinking, or in which reflection arises, we have presented in the experience of the individual, tentatively and in advance and for his selection among them, the different possibilities or alternatives of future action open to him within the given social situation—the different or alternative ways of completing the given social act wherein he is implicated, or which he has already initiated. Reflection or reflective behavior arises only under the conditions of self-consciousness, and makes possible the purposive control and organization by the individual organism of its conduct, with reference to its social and physical environment, i.e., with reference to the various social and physical situations in which it becomes involved and to which it reacts. The organization of the self is simply the organization, by the individual organism, of the set of attitudes toward its social environment—and toward itself from the standpoint of that environment, or as a functioning element in the process of social experience and behavior constituting that environment—which it is able to take. It is essential that such reflective intelligence be dealt with from the point of view of social behaviorism.

I said a moment ago that there is something involved in our statement of the meaning of an object which is more than the mere response, however complex that may be. We may respond to a musical phrase and there may be nothing in the experience beyond the response; we may not be able to say why we respond or what it is we respond to. Our attitude may simply be that we like some music and do not like other music. Most of our recognitions are of this sort. We pick out the book we want but

could not say what the character of the book is. We probably could give a more detailed account of the countenance of a man we meet for the first time than of our most intimate friends. With our friends we are ready to start our conversation the moment they are there; we do not have to make sure who they are But if we try to pick out a man who has been described to us we narrowly examine the person to make sure he answers to the account that is given to us. With a person with whom we are familiar we carry on our conversation without thinking of these things. Most of our processes of recognition do not involve this identification of the characters which enable us to identify the objects. We may have to describe a person and we find we cannot do it—we know him too well. We may have to pick those details out, and then if we are taking a critical attitude we have to find out what it is in the object that calls out this complex response. When we are doing that we are getting a statement of what the nature of the object is, or if you like, its meaning. We have to indicate to ourselves what it is that calls out this particular response. We recognize a person, say, because of the character of his physique If one should come into the room greatly changed by a long attack of sickness, or by exposure to the tropical sun, one's friends would not be able to recognize him immediately. There are certain elements which enable us to recognize a friend. We may have to pick out the characters which make recognition successful, to indicate those characters to somebody or to ourselves. We may have to determine what the stimuli are that call out a response of this complex character. That is often a very difficult thing to do, as is evidenced by musical criticism. A whole audience may be swept away by a composition and perhaps not a person there will be able to state what it is in the production that calls out this particular response, or to tell what the various reactions are in these individuals. It is an unusual gift which can analyze that sort of an object and pick out what the stimulus is for so complex an action.

What I want to call attention to is the process by which there is an indication of those characters which do call out the re-

sponse. Animals of a type lower than man respond to certain characters with a nicety that is beyond human capacity, such as odor in the case of a dog. But it would be beyond the capacity of a dog to indicate to another dog what the odor was. Another dog could not be sent out by the first dog to pick out this odor A man may tell how to identify another man. He can indicate what the characters are that will bring about a certain response. That ability absolutely distinguishes the intelligence of such a reflective being as man from that of the lower animals, however intelligent they may be. We generally say that man is a rational animal and lower animals are not. What I wanted to show, at least in terms of behavioristic psychology, is that what we have in mind in this distinction is the indication of those characters which lead to the sort of response which we give to an object. Pointing out the characters which lead to the response is precisely that which distinguishes a detective office that sends out a man, from a bloodhound which runs down a man. Here are two types of intelligence, each one specialized; the detective could not do what the bloodhound does and the bloodhound could not do what the detective does. Now, the intelligence of the detective over against the intelligence of the bloodhound lies in this capacity to indicate what the particular characters are which will call out his response of taking the man.[29]

Such would be a behaviorist's account of what is involved in reason. When you are reasoning you are indicating to yourself the characters that call out certain responses—and that is all you are doing. If you have the angle and a side you can determine the area of a triangle; given certain characters there are certain responses indicated. There are other processes, not exactly rational, out of which you can build up new responses from old ones You may pick out responses which are there in other

[29] Intelligence and knowledge are inside the process of conduct. Thinking is an elaborate process of presenting the world so that it will be favorable for conduct, so that the ends of the life of the form may be reached (MS)

Thinking is pointing out—to think about a thing is to point it out before acting (1924)

reactions and put them together. A book of directions may provide a set of stimuli which lead to a certain set of responses, and you pick them out of your other complex responses, perhaps as they have not been picked out before. When you write on a typewriter you may be instructed as to the way in which to use it. You can build up a fairly good technique to start with, but even that is a process which still involves the indication of the stimuli to call out the various responses. You unite stimuli which have not been united in the past, and then these stimuli take with them the compound responses It may be a crude response at first, and must be freed from the responses had in the past. The way in which you react toward the doubling of letters when you write is different from the way you react in writing the letters on a typewriter. You make mistakes because the responses you utilize have been different, have been connected with a whole set of other responses. A drawing teacher will sometimes have pupils draw with the left hand rather than the right, because the habits of the right hand are very difficult to get rid of. This is what you are doing when you act in a rational fashion: you are indicating to yourself what the stimuli are that will call out a complex response, and by the order of the stimuli you are determining what the whole of the response will be. Now, to be able to indicate those stimuli to other persons or to yourself is what we call rational conduct as distinct from the unreasoning intelligence of the lower animals, and from a good deal of our own conduct

Man is distinguished by that power of analysis of the field of stimulation which enables him to pick out one stimulus rather than another and so to hold on to the response that belongs to that stimulus, picking it out from others, and recombining it with others. You cannot get a lock to work. You notice certain elements, each of which brings out a certain sort of response; and what you are doing is holding on to these processes of response by giving attention to the stimuli. Man can combine not only the responses already there, which is the thing an animal lower than man can do, but the human individual can get into his ac-

tivities and break them up, giving attention to specific elements, holding the responses that answer to these particular stimuli, and then combining them to build up another act. That is what we mean by learning or by teaching a person to do a thing. You indicate to him certain specific phases or characters of the object which call out certain sorts of responses. We state that generally by saying consciousness accompanies only the sensory process and not the motor process. We can directly control the sensory but not the motor processes, we can give our attention to a particular element in the field and by giving such attention and so holding on to the stimulus we can get control of the response. That is the way we get control of our action, we do not directly control our response through the motor paths themselves.

There is no capacity in the lower forms to give attention to some analyzed element in the field of stimulation which would enable them to control the response. But one can say to a person "Look at this, just see this thing" and he can fasten his attention on the specific object He can direct attention and so isolate the particular response that answers to it. That is the way in which we break up our complex activities and thereby make learning possible. What takes place is an analysis of the process by giving attention to the specific stimuli that call out a particular act, and this analysis makes possible a reconstruction of the act. An animal makes combinations, as we say, only by trial and error, and the combination that is successful simply maintains itself.

The gesture as worked out in the conduct of the human group serves definitely to indicate just these elements and thus to bring them within the field of voluntary attention. There is, of course, a fundamental likeness between voluntary attention and involuntary attention. A bright light, a peculiar odor, may be something which takes complete control of the organism and in so far inhibits other activity. A voluntary action, however, is dependent upon the indication of a certain character, pointing

it out, holding on to it, and so holding on to the response that belongs to it. That sort of an analysis is essential to what we call human intelligence, and it is made possible by language.

The psychology of attention ousted the psychology of association. An indefinite number of associations were found which lie in our experience with reference to anything that comes before us, but associational psychology never explained why one association rather than another was the dominant one. It laid down rules that if a certain association had been intense, recent, and frequent it would be dominant, but often there are in fact situations in which what seems to be the weakest element in the situation occupies the mind. It was not until the psychologist took up the analysis of attention that he was able to deal with such situations, and to realize that voluntary attention is dependent upon indication of some character in the field of stimulation. Such indication makes possible the isolation and recombination of responses.

In the case of the vocal gesture there is a tendency to call out the response in one form that is called out in the other, so that the child plays the part of parent, of teacher, or preacher. The gesture under those conditions calls out certain responses in the individual which it calls out in the other person, and carrying it out in the individual isolates that particular character of the stimulus. The response of the other is there in the individual isolating the stimulus If one calls out quickly to a person in danger, he himself is in the attitude of jumping away, though the act is not performed. He is not in danger, but he has those particular elements of the response in himself, and we speak of them as meanings. Stated in terms of the central nervous system, this means that he has stirred up its upper tracts which would lead to the actual jumping away. A person picks out the different responses involved in escape when he enters the theater and notices the signs on the program cautioning him to choose the nearest exit in case of fire. He has all the different responses, so to speak, listed before him, and he prepares what he is going to do by picking out the different elements and put-

ting them together in the way required. The efficiency engineer comes in to pick out this, that, or the other thing, and chooses the order in which they should be carried out. One is doing the same himself in so far as he is self-conscious. Where we have to determine what will be the order of a set of responses, we are putting them together in a certain fashion, and we can do this because we can indicate the order of the stimuli which are going to act upon us. That is what is involved in the human intelligence as distinguished from the intelligence type of the lower forms. We cannot tell an elephant that he is to take hold of the other elephant's tail; the stimulus will not indicate the same thing to the elephant as to ourselves. We can create a situation which is a stimulus to the elephant but we cannot get the elephant to indicate to itself what this stimulus is so that he has the response to it in his own system.

The gesture provides a process by means of which one does arouse in himself the reaction that might be aroused in another, and this is not a part of his immediate reaction in so far as his immediate physical environment is concerned. When we tell a person to do something the response we have is not the doing of the actual thing, but the beginning of it. Communication gives to us those elements of response which can be held in the mental field. We do not carry them out, but they are there constituting the meanings of these objects which we indicate. Language is a process of indicating certain stimuli and changing the response to them in the system of behavior. Language as a social process has made it possible for us to pick out responses and hold them in the organism of the individual, so that they are there in relation to that which we indicate. The actual gesture is, within limits, arbitrary. Whether one points with his finger, or points with the glance of the eye, or motion of the head, or the attitude of the body, or by means of a vocal gesture in one language or another, is indifferent, provided it does call out the response that belongs to that thing which is indicated. That is the essential part of language. The gesture must be one that calls out the response in the individual, or tends to call out the

response in the individual, which its utilization will bring out in another's response. Such is the material with which the mind works. However slight, there must be some sort of gesture. To have the response isolated without an indication of a stimulus is almost a contradiction in terms I have been trying to point out what this process of communication does in the way of providing us with the material that exists in our mind. It does this by furnishing those gestures which in affecting us as they affect others call out the attitude which the other takes, and that we take in so far as we assume his rôle We get the attitude, the meaning, within the field of our own control, and that control consists in combining all these various possible responses to furnish the newly constructed act demanded by the problem. In such a way we can state rational conduct in terms of a behavioristic psychology.

I wish to add one further factor to our account: the relation of the temporal character of the nervous system to foresight and choice.

The central nervous system makes possible the implicit initiation of a number of possible alternative responses with reference to any given object or objects for the completion of any already initiated act, in advance of the actual completion of that act, and thus makes possible the exercise of intelligent or reflective choice in the acceptance of that one among these possible alternative responses which is to be carried into overt effect [30]

Human intelligence, by means of the physiological mechanism of the human central nervous system, deliberately selects one from among the several alternative responses which are possible in the given problematic environmental situation; and if the given response which it selects is complex—i.e , is a set or

[30] It is an advantage to have these responses ready before we get to the object. If our world were right on top of us, in contact with us, we would have no time for deliberation. There would be only one way of responding to that world.

Through his distance organs and his capacity for delayed responses the individual lives in the future with the possibility of planning his life with reference to that future (1931).

chain or group or succession of simple responses—it can organize this set or chain of simple responses in such a way as to make possible the most adequate and harmonious solution by the individual of the given environmental problem.

It is the entrance of the alternative possibilities of future response into the determination of present conduct in any given environmental situation, and their operation, through the mechanism of the central nervous system, as part of the factors or conditions determining present behavior, which decisively contrasts intelligent conduct or behavior with reflex, instinctive, and habitual conduct or behavior—delayed reaction with immediate reaction. That which takes place in present organic behavior is always in some sense an emergent from the past, and never could have been precisely predicted in advance—never could have been predicted on the basis of a knowledge, however complete, of the past, and of the conditions in the past which are relevant to its emergence; and in the case of organic behavior which is intelligently controlled, this element of spontaneity is especially prominent by virtue of the present influence exercised over such behavior by the possible future results or consequences which it may have. Our ideas of or about future conduct are our tendencies to act in several alternative ways in the presence of a given environmental situation—tendencies or attitudes which can appear, or be implicitly aroused, in the structure of the central nervous system in advance of the overt response or reaction to that situation, and which thus can enter as determining factors into the control or selection of this overt response. Ideas, as distinct from acts, or as failing to issue in overt behavior, are simply what we do not do; they are possibilities of overt responses which we test out implicitly in the central nervous system and then reject in favor of those which we do in fact act upon or carry into effect. The process of intelligent conduct is essentially a process of selection from among various alternatives, intelligence is largely a matter of selectivity.

Delayed reaction is necessary to intelligent conduct. The organization, implicit testing, and final selection by the indi-

vidual of his overt responses or reactions to the social situations which confront him and which present him with problems of adjustment, would be impossible if his overt responses or reactions could not in such situations be delayed until this process of organizing, implicitly testing, and finally selecting is carried out; that is, would be impossible if some overt response or other to the given environmental stimuli had to be immediate. Without delayed reaction, or except in terms of it, no conscious or intelligent control over behavior could be exercised; for it is through this process of selective reaction—which can be selective only because it is delayed—that intelligence operates in the determination of behavior. Indeed, it is this process which constitutes intelligence. The central nervous system provides not only the necessary physiological mechanism for this process, but also the necessary physiological condition of delayed reaction which this process presupposes. Intelligence is essentially the ability to solve the problems of present behavior in terms of its possible future consequences as implicated on the basis of past experience—the ability, that is, to solve the problems of present behavior in the light of, or by reference to, both the past and the future; it involves both memory and foresight. And the process of exercising intelligence is the process of delaying, organizing, and selecting a response or reaction to the stimuli of the given environmental situation. The process is made possible by the mechanism of the central nervous system, which permits the individual's taking of the attitude of the other toward himself, and thus becoming an object to himself. This is the most effective means of adjustment to the social environment, and indeed to the environment in general, that the individual has at his disposal.

An attitude of any sort represents the beginning, or potential initiation, of some composite act or other, a social act in which, along with other individuals, the individual taking the given attitude is involved or implicated. The traditional supposition has been that the purposive element in behavior must ultimately be an idea, a conscious motive, and hence must imply or de-

pend upon the presence of a mind. But the study of the nature of the central nervous system shows that in the form of physiological attitudes (expressed in specific physiological sets) different possible completions to the given act are there in advance of its actual completion, and that through them the earlier parts of the given act are affected or influenced (in present conduct) by its later phases; so that the purposive element in behavior has a physiological seat, a behavioristic basis, and is not fundamentally nor necessarily conscious or psychical.

### MIND AND THE SYMBOL

I have attempted to point out that the meanings of things, our ideas of them, answer to the structure of the organism in its conduct with reference to things The structure which makes this possible was found primarily in the central nervous system. One of the peculiarities of this system is that it has, in a sense, a temporal dimension: the things we are going to do can be arranged in a temporal order so that the later processes can in their inception be present determining the earlier processes, what we are going to do can determine our immediate approach to the object.

The mechanism of the central nervous system enables us to have now present, in terms of attitudes or implicit responses, the alternative possible overt completions of any given act in which we are involved, and this fact must be realized and recognized, in virtue of the obvious control which later phases of any given act exert over its earlier phases. More specifically, the central nervous system provides a mechanism of implicit response which enables the individual to test out implicitly the various possible completions of an already initiated act in advance of the actual completion of the act—and thus to choose for himself, on the basis of this testing, the one which it is most desirable to perform explicitly or carry into overt effect. The central nervous system, in short, enables the individual to exercise conscious control over his behavior. It is the possibility of delayed response which principally differentiates reflective conduct from non-reflective conduct in which the response is al-

ways immediate. The higher centers of the central nervous system are involved in the former type of behavior by making possible the interposition, between stimulus and response in the simple stimulus-response arc, of a process of selecting one or another of a whole set of possible responses and combinations of responses to the given stimulus.

Mental processes take place in this field of attitudes as expressed by the central nervous system; and this field is hence the field of ideas: the field of the control of present behavior in terms of its future consequences, or in terms of future behavior; the field of that type of intelligent conduct which is peculiarly characteristic of the higher forms of life, and especially of human beings The various attitudes expressible through the central nervous system can be organized into different types of subsequent acts, and the delayed reactions or responses thus made possible by the central nervous system are the distinctive feature of mentally controlled or intelligent behavior.[31]

What is the mind as such, if we are to think in behavioristic terms? Mind, of course, is a very ambiguous term, and I want to avoid ambiguities What I suggested as characteristic of the mind is the reflective intelligence of the human animal which can be distinguished from the intelligence of lower forms If we should try to regard reason as a specific faculty which deals with that which is universal we should find responses in lower forms which are universal. We can also point out that their conduct is purposive, and that types of conduct which do not lead up to certain ends are eliminated. This would seem to answer to what we term "mind" when we talk about the animal

[31] In considering the rôle or function of the central nervous system—important though it is—in intelligent human behavior, we must nevertheless keep in mind the fact that such behavior is essentially and fundamentally social, that it involves and presupposes an ever ongoing social life-process, and that the unity of this ongoing social process—or of any one of its component acts—is irreducible, and in particular cannot be adequately analyzed simply into a number of discrete nerve elements This fact must be recognized by the social psychologist. These discrete nerve elements lie within the unity of this ongoing social process, or within the unity of any one of the social acts in which this process is expressed or embodied, and the analysis which isolates them—the analysis of which they are the results or end-products—does not and cannot destroy that unity.

mind, but what we refer to as reflective intelligence we generally recognize as belonging only to the human organism. The non-human animal acts with reference to a future in the sense that it has impulses which are seeking expression that can only be satisfied in later experience, and however this is to be explained, this later experience does determine what the present experience shall be If one accepts a Darwinian explanation he says that only those forms survive whose conduct has a certain relationship to a specific future, such as belongs to the environment of the specific form The forms whose conduct does insure the future will naturally survive In such a statement, indirectly at least, one is making the future determine the conduct of the form through the structure of things as they now exist as a result of past happenings

When, on the other hand, we speak of reflective conduct we very definitely refer to the presence of the future in terms of ideas The intelligent man as distinguished from the intelligent animal presents to himself what is going to happen The animal may act in such a way as to insure its food tomorrow. A squirrel hides nuts, but we do not hold that the squirrel has a picture of what is going to happen The young squirrel is born in the summer time, and has no directions from other forms, but it will start off hiding nuts as well as the older ones. Such action shows that experience could not direct the activity of the specific form. The provident man, however, does definitely pursue a certain course, pictures a certain situation, and directs his own conduct with reference to it The squirrel follows certain blind impulses, and the carrying-out of its impulses leads to the same result that the storing of grain does for the provident man. It is this picture, however, of what the future is to be as determining our present conduct that is the characteristic of human intelligence —the future as present in terms of ideas.

When we present such a picture it is in terms of our reactions, in terms of what we are going to do There is some sort of a problem before us, and our statement of the problem is in terms of a future situation which will enable us to meet it by our pres-

ent reactions That sort of thinking characterizes the human form and we have endeavored to isolate its mechanism. What is essential to this mechanism is a way of indicating characters of things which control responses, and which have various values to the form itself, so that such characters will engage the attention of the organism and bring about a desired result The odor of the victim engages the attention of the beast of prey, and by attention to that odor he does satisfy his hunger and insure his future. What is the difference between such a situation and the conduct of the man who acts, as we say, rationally? The fundamental difference is that the latter individual in some way indicates this character, whatever it may be, to another person and to himself; and the symbolization of it by means of this indicative gesture is what constitutes the mechanism that gives the implements, at least, for intelligent conduct. Thus, one points to a certain footprint, and says that it means bear. Now to identify that sort of a trace by means of some symbol so that it can be utilized by the different members of the group, but particularly by the individual himself later, is the characteristic thing about human intelligence. To be able to identify "this as leading to that," and to get some sort of a gesture, vocal or otherwise, which can be used to indicate the implication to others and to himself so as to make possible the control of conduct with reference to it, is the distinctive thing in human intelligence which is not found in animal intelligence.

What such symbols do is to pick out particular characteristics of the situation so that the response to them can be present in the experience of the individual. We may say they are present in ideal form, as in a tendency to run away, in a sinking of the stomach when we come on the fresh footprints of a bear. The indication that this is a bear calls out the response of avoiding the bear, or if one is on a bear hunt, it indicates the further progress of the hunt One gets the response into experience before that response is overtly carried out through indicating and emphasizing the stimulus that instigates it. When this symbol

is utilized for the thing itself one is, in Watson's terms, conditioning a reflex. The sight of the bear would lead one to run away, the footprint conditioned that reflex, and the word "bear" spoken by one's self or a friend can also condition the reflex, so that the sign comes to stand for the thing so far as action is concerned.

What I have been trying to bring out is the difference between the foregoing type of conduct and the type which I have illustrated by the experiment on the baby with the white rat and the noise behind its head. In the latter situation there is a conditioning of the reflex in which there is no holding apart of the different elements But when there is a conditioning of the reflex which involves the word "bear," or the sight of the footprint, there is in the experience of the individual the separation of the stimulus and the response. Here the symbol means bear, and that in turn means getting out of the way, or furthering the hunt. Under those circumstances the person who stumbles on the footprints of the bear is not afraid of the footprints—he is afraid of the bear. The footprint means a bear The child is afraid of the rat, so that the response of fear is to the sight of the white rat, the man is not afraid of the footprint, but of the bear. The footprint and the symbol which refers to the bear in some sense may be said to condition or set off the response, but the bear and not the sign is the object of the fear The isolation of the symbol, as such, enables one to hold on to these given characters and to isolate them in their relationship to the object, and consequently in their relation to the response. It is that, I think, which characterizes our human intelligence to a peculiar degree. We have a set of symbols by means of which we indicate certain characters, and in indicating those characters hold them apart from their immediate environment, and keep simply one relationship clear. We isolate the footprint of the bear and keep only that relationship to the animal that made it We are reacting to that, nothing else. One holds on to it as an indication of the bear and of the value that object has in experience as something to be avoided or to be hunted The ability to

isolate these important characters in their relationship to the object and to the response which belongs to the object is, I think, what we generally mean when we speak of a human being thinking a thing out, or having a mind. Such ability makes the world-wide difference between the conditioning of reflexes in the case of the white rat and the human process of thinking by means of symbols.[32]

What is there in conduct that makes this level of experience possible, this selection of certain characters with their relationship to other characters and to the responses which these call out? My own answer, it is clear, is in terms of such a set of symbols as arise in our social conduct, in the conversation of gestures—in a word, in terms of language. When we get into conduct these symbols which indicate certain characters and their relationship to things and to responses, they enable us to pick out these characters and hold them in so far as they determine our conduct.

A man walking across country comes upon a chasm which he cannot jump. He wants to go ahead but the chasm prevents this tendency from being carried out. In that kind of a situation there arises a sensitivity to all sorts of characters which he has not noticed before. When he stops, mind, we say, is freed.

[32] The meanings of things or objects are actual inherent properties or qualities of them, the locus of any given meaning is in the thing which, as we say, "has it." We refer to the meaning of a thing when we make use of the symbol. Symbols stand for the meanings of those things or objects which have meanings, they are given portions of experience which point to, indicate, or represent other portions of experience not directly present or given at the time when, and in the situation in which, any one of them is thus present (or is immediately experienced). The symbol is thus more than a mere substitute stimulus—more than a mere stimulus for a conditioned response or reflex. For the conditioned reflex—the response to a mere substitute stimulus—does not or need not involve consciousness, whereas the response to a symbol does and must involve consciousness. Conditioned reflexes plus consciousness of the attitudes and meanings they involve are what constitute language, and hence lay the basis, or comprise the mechanism for, thought and intelligent conduct. Language is the means whereby individuals can indicate to one another what their responses to objects will be, and hence what the meanings of objects are; it is not a mere system of conditioned reflexes. Rational conduct always involves a reflexive reference to self, that is, an indication to the individual of the significances which his actions or gestures have for other individuals. And the experiential or behavioristic basis for such conduct—the neuro-physiological mechanism of thinking—is to be found, as we have seen, in the central nervous system.

He does not simply look for the indication of the path going ahead The dog and the man would both try to find a point where they could cross. But what the man could do that the dog could not would be to note that the sides of the chasm seem to be approaching each other in one direction. He picks out the best places to try, and that approach which he indicates to himself determines the way in which he is going to go If the dog saw at a distance a narrow place he would run to it, but probably he would not be affected by the gradual approach which the human individual symbolically could indicate to himself.

The human individual would see other objects about him, and have other images appear in his experience. He sees a tree which might serve as a bridge across the space ahead of him. He might try various sorts of possible actions which would be suggested to him in such a situation, and present them to himself by means of the symbols he uses He has not simply conditioned certain responses by certain stimuli If he had, he would be bound to those. What he does do by means of these symbols is to indicate certain characters which are present, so that he can have these responses there all ready to go off. He looks down the chasm and thinks he sees the edges drawing together, and he may run toward that point Or he may stop and ask if there is not some other way in which he can hasten his crossing. What stops him is a variety of other things he may do. He notes all the possibilities of getting across. He can hold on to them by means of symbols, and relate them to each other so that he can get a final action. The beginning of the act is there in his experience. He already has a tendency to go in a certain direction and what he would do is already there determining him And not only is that determination there in his attitude but he has that which is picked out by means of the term "that is narrow, I can jump it." He is ready to jump, and that reflex is ready to determine what he is doing. These symbols, instead of being a mere conditioning of reflexes, are ways of picking out the stimuli so that the various responses can organize themselves into a form of action [33]

[33] The reflective act consists in a reconstruction of the perceptual field so that it becomes possible for impulses which were in conflict to inhibit action no longer. This

The situation in which one seeks conditioning responses is, I think, as far as effective intelligence is concerned, always present in the form of a problem. When a man is just going ahead he seeks the indications of the path but he does it unconsciously He just sees the path ahead of him; he is not aware of looking for it under those conditions. But when he reaches the chasm, this onward movement is stopped by the very process of drawing back from the chasm. That conflict, so to speak, sets him free to see a whole set of other things. Now, the sort of things he will see will be the characters which represent various possibilities of action under the circumstances. The man holds on to these different possibilities of response in terms of the different stimuli which present themselves, and it is his ability to hold them there that constitutes his mind.

We have no evidence of such a situation in the case of the lower animals, as is made fairly clear by the fact that we do not find in any animal behavior that we can work out in detail any symbol, any method of communication, anything that will answer to these different responses so that they can all be held there in the experience of the individual It is that which differentiates the action of the reflectively intelligent being from the conduct of the lower forms; and the mechanism that makes that possible is language We have to recognize that language is a part of conduct. Mind involves, however, a relationship to the characters of things. Those characters are in the things,

---

may take place by such a temporal readjustment that one of the conflicting impulses finds a later expression In this case there has entered into the perceptual field other impulses which postpone the expression of that which had inhibited action Thus, the width of the ditch inhibits the impulse to jump There enters into the perceptual field the image of a narrower stretch and the impulse to go ahead finds its place in a combination of impulses, including that of movement toward the narrower stretch.

The reconstruction may take place through the appearance of other sensory characters in the field ignored before A board long enough to bridge the ditch is recognized Because the individual has already the complex of impulses which lead to lifting it and placing it across the ditch it becomes a part of the organized group of impulses that carry the man along toward his destination In neither case would he be ready to respond to the stimulus (in the one case the image of the narrower stretch of the ditch, in the other the sight of the board) if he had not reactions in his nature answering to these objects, nor would these tendencies to response sensitize him to their stimuli if they were not freed from firmly organized habits It is this freedom, then, that is the prerequisite of reflection, and it is our social self-reflective conduct that gives this freedom to human individuals in their group life (MS)

and while the stimuli call out the response which is in one sense present in the organism, the responses are to things out there. The whole process is not a mental product and you cannot put it inside of the brain. Mentality is that relationship of the organism to the situation which is mediated by sets of symbols.

### THE RELATION OF MIND TO RESPONSE AND ENVIRONMENT

We have seen that mental processes have to do with the meanings of things, and that these meanings can be stated in terms of highly organized attitudes of the individual These attitudes involve not only situations in which the elements are simultaneous, but also ones which involve other temporal relationships, i e , the adjustment of the present response to later responses which are in some sense already initiated. Such an organization of attitudes with reference to what we term objects is what constitutes for us the meanings of things. These meanings in logical terminology are considered as universals, and this universality, we have seen, attaches in a certain sense to a habitual response in contrast to the particular stimuli which elicit this response. The universality is reflected in behavioristic terms in the identity of the response, although the stimuli that call out this response are all different. We can throw this statement into a logical form and say that the response is universal while the stimuli are particulars which are brought under such a universal.

These relations of attitudes to each other throw light upon the relation of a "substance" to its attributes. We speak of a house as, in a certain sense, a substance to which the attribute of color may be applied. The color is an accident which inheres in a certain substance, as such. This relationship of the inherence of a certain character in a certain substance is a relationship of a specific response, such as that of ornamenting objects about us, to the group of actions involved in dwelling in a house The house must protect us, it must provide for us when we are asleep and when we are awake, it must carry the requisites of

a family life—these are essentials that stand for a set of responses in which one inevitably implies the other. There are other responses, however, that vary. We can satisfy not simply our taste, but also our whims in the ornaments we use. Those are not essential There are certain responses that vary, whereas there is a certain body of more or less standardized responses that remain unchanged. The organized sets of responses answer to the meanings of things, answer to them in their universality, that is, in the habitual response that is called out by a great variety of stimuli. They answer to things in their logical relationships.

I have referred just now to the relationship of the substance as reflected in the body of habits, to the varied responses answering to the attributes. In the relationship of cause and effect there is the relation of the responses to each other in the sense of dependence, involving the adjustment of the steps to be taken with reference to the thing to be carried out. The arrangement which may appear at one time in terms of means and end appears at another time in terms of cause and effect. We have here a relationship of dependence of one response on another, a necessary relation that lies inside of a larger system.[34] It depends upon what we are going to do whether we select this means or another one, one causal series or another. Our habits are so adjusted that if we decide to take a journey, for instance, we have a body of related habits that begin to operate—packing our bags, getting our railroad tickets, drawing out money for use, selecting books to read on the journey, and so on. There are a whole set of organized responses which at once start to go off in their proper relationship to each other when a person makes up his mind that he will take a journey There must be such an organization in our habits in order that man may have the sort of intelligence which he in fact has.

We have, then, in the behavioristic statement, a place for that which is supposed to be the peculiar content of mind, that

[34] Representation involves relation of earlier to later acts This relation of responses gives implication (1924)

is, the meanings of things. I have referred to these factors as attitudes. There is, of course, that in the world which answers to the group of attitudes We are here avoiding logical and metaphysical problems, just as modern psychology does. What this psychology is seeking to do is to get control, it is not seeking to settle metaphysical questions. Now, from the point of view of behavioristic psychology, we can state in terms of attitudes what we call the meanings of things; the organized attitude of the individual is that which the psychologist gets hold of in this situation. It is at least as legitimate for him to state meaning in terms of attitudes as it was for an earlier psychologist to state it in terms of a static concept that had its place in the mind.

What I have pointed out is that in the central nervous system one can find, or at least justifiably assume, just such complexities of responses, or the mechanism of just such complexities of response, as we have been discussing If we speak of a person going through the steps to which I have referred, in preparing for a journey, we have to assume that not only are the nervous elements essential to the steps, but that the relation of those responses in the central nervous system is of a such sort that if the person carries out one response he is inevitably ready to find the stimulus which will set free another related response. There must be an organization in the central nervous system in the way of its elements, its neurons, for all the combinations which can possibly enter into a mind and for just such a relationship of responses which are interdependent upon each other. Some of these have been identified in the physiological study of the nervous system, while others have to be assumed on the basis of such study. As I have said before, it is not the specific physiological process which is going on inside of the neurons that as such is supposed to answer to meaning. Earlier physiological psychologists had spoken of a specific psychical process, but there is nothing in the mechanical, electrical, and physical activity that goes on in the nerve which answers to what we term an idea. What is going on in the nerve in a particular situation is the innervation of a certain response which means this, that, and the

other thing, and here is where the specificity of a certain nervous organization is found It is in the central nervous system that organization takes place. In a certain sense you can say that it is in the engineer's office that the organization of the concern is carried out. But what is found there in the blue-prints and body of statistics is not the actual production that is going on in the factory, even though that office does organize and co-ordinate those various branches of the concern In the same way the central nervous system co-ordinates all the various processes that the body carries out. If there is anything in the organism as a purely physiological mechanism which answers to what we call experience, when that is ordinarily termed conscious, it is the total organic process for which these nervous elements stand. These processes are, as we have seen, attitudes of response, adjustments of the organism to a complex environment, attitudes which sensitize the form to the stimuli which will set the response free.

The point I want to emphasize is the way that these attitudes determine the environment. There is an organized set of responses which first send off certain telegrams, then select the means of transportation, then send us to the bank to get money, and then see to it that we get something to read on the train As we advance from one set of responses to another we find ourselves picking out the environment which answers to this next set of responses To finish one response is to put ourselves in a position where we see other things The appearance of the retinal elements has given the world color; the development of the organs in the ear has given the world sound. We pick out an organized environment in relationship to our response, so that these attitudes, as such, not only represent our organized responses but they also represent what exists for us in the world; the particular phase of reality that is there for us is picked out for us by our response. We can recognize that it is the sensitizing of the organism to the stimuli which will set free its responses that is responsible for one's living in this sort of an environment rather than in another. We see things in their tem-

poral relationship which answer to the temporal organization which is found in the central nervous system. We see things as distant from us not only spatially but temporally, when we do this we can do that. Our world is definitely mapped out for us by the responses which are going to take place.[35]

It is a difficult matter to state just what we mean by dividing up a certain situation between the organism and its environment. Certain objects come to exist for us because of the character of the organism Take the case of food. If an animal that can digest grass, such as an ox, comes into the world, then grass becomes food That object did not exist before, that is, grass as food. The advent of the ox brings in a new object. In that sense, organisms are responsible for the appearance of whole sets of objects that did not exist before.[36] The distribution of meaning to the organism and the environment has its expression in the organism as well as in the thing, and that expression is not a matter of psychical or mental conditions. There is an expression of the reaction of the organized response of the organism to the environment, and that reaction is not simply a determination of the organism by the environment, since the organism determines the environment as fully as the environment determines the organs. The organic reaction is responsible for the appearance of a whole set of objects which did not exist before.

There is a definite and necessary structure or *gestalt* of sensitivity within the organism, which determines selectively and relatively the character of the external object it perceives. What we term consciousness needs to be brought inside just this relation between an organism and its environment. Our constructive selection of an environment—colors, emotional values, and the like—in terms of our physiological sensitivities, is essentially what we mean by consciousness This consciousness we have tended historically to locate in the mind or in the

[35] The structure of the environment is a mapping out of organic responses to nature, any environment, whether social or individual, is a mapping out of the logical structure of the act to which it answers, an act seeking overt expression

[36] It is objectionable to speak of the food-process in the animal as constituting the food-object. They are certainly relative to each other (MS)

brain. The eye and related processes endow objects with color in exactly the same sense that an ox endows grass with the character of food, that is, not in the sense of projecting sensations into objects, but rather of putting itself into a relation with the object which makes the appearance and existence of the color possible, as a quality of the object Colors inhere in objects only by virtue of their relations to given percipient organisms The physiological or sensory structure of the percipient organism determines the experienced content of the object.

The organism, then, is in a sense responsible for its environment. And since organism and environment determine each other and are mutually dependent for their existence, it follows that the life-process, to be adequately understood, must be considered in terms of their interrelations

The social environment is endowed with meanings in terms of the process of social activity; it is an organization of objective relations which arises in relation to a group of organisms engaged in such activity, in processes of social experience and behavior. Certain characters of the external world are possessed by it only with reference to or in relation to an interacting social group of individual organisms; just as other characters of it are possessed by it only with reference to or in relation to individual organisms themselves. The relation of the social process of behavior—or the relation of the social organism—to the social environment is analogous to the relation of the processes of individual biological activity—or the relation of the individual organism—to the physical-biological environment [37]

The parallelism I have been referring to is the parallelism of the set of the organism and the objects answering to it. In the ox there is hunger, and also the sight and odor which bring in the food. The whole process is not found simply in the stomach, but in all the activities of grazing, chewing the cud, and so on.

[37] A social organism—that is, a social group of individual organisms—constitutes or creates its own special environment of objects just as, and in the same sense as, an individual organism constitutes or creates its own special environment of objects (which, however, is much more rudimentary than the environment constructed by a social organism).

This process is one which is intimately related to the so-called food which exists out there. The organism sets up a bacteriological laboratory, such as the ox carries around to take care of the grass which then becomes food. Within that parallelism what we term the meaning of the object is found, specifically, in the organized attitude of response on the part of the organism to the characters and the things. The meanings are there, and the mind is occupied with these meanings The organized stimuli answer to the organized responses.

It is the organization of the different responses to each other in their relationship to the stimuli they are setting free that is the peculiar subject matter of psychology in dealing with what we term "mind." We generally confine the term "mental," and so "mind," to the human organism, because there we find that body of symbols that enables us to isolate these characters, these meanings. We try to distinguish the meaning of a house from the stone, the cement, the bricks that make it up as a physical object, and in doing so we are referring to the use of it. That is what makes the house a mental affair.[18] We are isolating, if you like, the building materials from the standpoint of the physicist and the architect. There are various standpoints from which one can look at a house. The burrow in which some animal lives is in one sense the house of the animal, but when the human being lives in a house it takes on what we term a mental character for him which it presumably has not for the mole that lives in the burrow. The human individual has the ability to pick out the elements in a house which answer to his responses so that he can control them. He reads the advertisement of a new

[18] Nature—the external world—is objectively there, in opposition to our experience of it, or in opposition to the individual thinker himself. Although external objects are there independent of the experiencing individual, nevertheless they possess certain characteristics by virtue of their relations to his experiencing or to his mind, which they would not possess otherwise or apart from those relations These characteristics are their meanings for him, or in general, for us The distinction between physical objects or physical reality and the mental or self-conscious experience of those objects or that reality—the distinction between external and internal experience—lies in the fact that the latter is concerned with or constituted by meanings. Experienced objects have definite meanings for the individuals thinking about them.

form of a boiler and can then have more warmth, have a more comfortable dressing-room than before. Man is able to control the process from the standpoint of his own responses. He gets meanings and so controls his responses His ability to pick those out is what makes the house a mental affair. The mole, too, has to find his food, meet his enemies, and avoid them, but we do not assume that the mole is able to indicate to himself the peculiar advantages of his burrow over against another one His house has no mental characteristics Mentality resides in the ability of the organism to indicate that in the environment which answers to his responses, so that he can control those responses in various ways. That, from the point of view of behavioristic psychology, is what mentality consists in. There are in the mole and other animals complex elements of behavior related to the environment, but the human animal is able to indicate to itself and to others what the characters are in the environment which call out these complex, highly organized responses, and by such indication is able to control the responses The human animal has the ability over and above the adjustment which belongs to the lower animal to pick out and isolate the stimulus. The biologist recognizes that food has certain values, and while the human animal responds to these values as other animals do, it can also indicate certain characters in the food which mean certain things in his digestive responses to these foods. Mentality consists in indicating these values to others and to one's self so that one can control one's responses.

Mentality on our approach simply comes in when the organism is able to point out meanings to others and to himself This is the point at which mind appears, or if you like, emerges. What we need to recognize is that we are dealing with the relationship of the organism to the environment selected by its own sensitivity The psychologist is interested in the mechanism which the human species has evolved to get control over these relationships. The relationships have been there before the indications are made, but the organism has not in its own conduct controlled that relationship. It originally has no mechanism by

means of which it can control it. The human animal, however, has worked out a mechanism of language communication by means of which it can get this control Now, it is evident that much of that mechanism does not lie in the central nervous system, but in the relation of things to the organism. The ability to pick these meanings out and to indicate them to others and to the organism is an ability which gives peculiar power to the human individual. The control has been made possible by language. It is that mechanism of control over meaning in this sense which has, I say, constituted what we term "mind" The mental processes do not, however, lie in words any more than the intelligence of the organism lies in the elements of the central nervous system. Both are part of a process that is going on between organism and environment. The symbols serve their part in this process, and it is that which makes communication so important. Out of language emerges the field of mind.

It is absurd to look at the mind simply from the standpoint of the individual human organism, for, although it has its focus there, it is essentially a social phenomenon; even its biological functions are primarily social The subjective experience of the individual must be brought into relation with the natural, sociobiological activities of the brain in order to render an acceptable account of mind possible at all; and this can be done only if the social nature of mind is recognized. The meagerness of individual experience in isolation from the processes of social experience—in isolation from its social environment—should, moreover, be apparent. We must regard mind, then, as arising and developing within the social process, within the empirical matrix of social interactions. We must, that is, get an inner individual experience from the standpoint of social acts which include the experiences of separate individuals in a social context wherein those individuals interact The processes of experience which the human brain makes possible are made possible only for a group of interacting individuals: only for individual organisms which are members of a society; not for the individual organism in isolation from other individual organisms

Mind arises in the social process only when that process as a whole enters into, or is present in, the experience of any one of the given individuals involved in that process. When this occurs the individual becomes self-conscious and has a mind, he becomes aware of his relations to that process as a whole, and to the other individuals participating in it with him; he becomes aware of that process as modified by the reactions and interactions of the individuals—including himself—who are carrying it on. The evolutionary appearance of mind or intelligence takes place when the whole social process of experience and behavior is brought within the experience of any one of the separate individuals implicated therein, and when the individual's adjustment to the process is modified and refined by the awareness or consciousness which he thus has of it It is by means of reflexiveness—the turning-back of the experience of the individual upon himself—that the whole social process is thus brought into the experience of the individuals involved in it, it is by such means, which enable the individual to take the attitude of the other toward himself, that the individual is able consciously to adjust himself to that process, and to modify the resultant of that process in any given social act in terms of his adjustment to it Reflexiveness, then, is the essential condition, within the social process, for the development of mind.

# *Part Five*

## SELF

### THE SELF AND THE ORGANISM

In our statement of the development of intelligence we have already suggested that the language process is essential for the development of the self The self has a character which is different from that of the physiological organism proper. The self is something which has a development; it is not initially there, at birth, but arises in the process of social experience and activity, that is, develops in the given individual as a result of his relations to that process as a whole and to other individuals within that process. The intelligence of the lower forms of animal life, like a great deal of human intelligence, does not involve a self. In our habitual actions, for example, in our moving about in a world that is simply there and to which we are so adjusted that no thinking is involved, there is a certain amount of sensuous experience such as persons have when they are just waking up, a bare thereness of the world. Such characters about us may exist in experience without taking their place in relationship to the self. One must, of course, under those conditions, distinguish between the experience that immediately takes place and our own organization of it into the experience of the self. One says upon analysis that a certain item had its place in his experience, in the experience of his self We do inevitably tend at a certain level of sophistication to organize all experience into that of a self We do so intimately identify our experiences, especially our affective experiences, with the self that it takes a moment's abstraction to realize that pain and pleasure can be there without being the experience of the self. Similarly, we normally organize our memories upon the string of our self. If we date things we always date them from the point of view of our past experiences. We frequently have memories that we

cannot date, that we cannot place. A picture comes before us suddenly and we are at a loss to explain when that experience originally took place. We remember perfectly distinctly the picture, but we do not have it definitely placed, and until we can place it in terms of our past experience we are not satisfied. Nevertheless, I think it is obvious when one comes to consider it that the self is not necessarily involved in the life of the organism, nor involved in what we term our sensuous experience, that is, experience in a world about us for which we have habitual reactions

We can distinguish very definitely between the self and the body. The body can be there and can operate in a very intelligent fashion without there being a self involved in the experience The self has the characteristic that it is an object to itself, and that characteristic distinguishes it from other objects and from the body. It is perfectly true that the eye can see the foot, but it does not see the body as a whole. We cannot see our backs; we can feel certain portions of them, if we are agile, but we cannot get an experience of our whole body There are, of course, experiences which are somewhat vague and difficult of location, but the bodily experiences are for us organized about a self. The foot and hand belong to the self We can see our feet, especially if we look at them from the wrong end of an opera glass, as strange things which we have difficulty in recognizing as our own. The parts of the body are quite distinguishable from the self We can lose parts of the body without any serious invasion of the self. The mere ability to experience different parts of the body is not different from the experience of a table. The table presents a different feel from what the hand does when one hand feels another, but it is an experience of something with which we come definitely into contact The body does not experience itself as a whole, in the sense in which the self in some way enters into the experience of the self.

It is the characteristic of the self as an object to itself that I want to bring out. This characteristic is represented in the word "self," which is a reflexive, and indicates that which can

be both subject and object. This type of object is essentially different from other objects, and in the past it has been distinguished as conscious, a term which indicates an experience with, an experience of, one's self. It was assumed that consciousness in some way carried this capacity of being an object to itself. In giving a behavioristic statement of consciousness we have to look for some sort of experience in which the physical organism can become an object to itself.[1]

When one is running to get away from someone who is chasing him, he is entirely occupied in this action, and his experience may be swallowed up in the objects about him, so that he has, at the time being, no consciousness of self at all. We must be, of course, very completely occupied to have that take place, but we can, I think, recognize that sort of a possible experience in which the self does not enter. We can, perhaps, get some light on that situation through those experiences in which in very intense action there appear in the experience of the individual, back of this intense action, memories and anticipations Tolstoi as an officer in the war gives an account of having pictures of his past experience in the midst of his most intense action There are also the pictures that flash into a person's mind when he is drowning. In such instances there is a contrast between an experience that is absolutely wound up in outside activity in which the self as an object does not enter, and an activity of memory and imagination in which the self is the principal object. The self is then entirely distinguishable from an organism that is surrounded by things and acts with reference to things, including parts of its own body. These latter may be objects like other objects, but they are just objects out there in the field, and they do not involve a self that is an object to the organism. This is, I think, frequently overlooked. It is that

[1] Man's behavior is such in his social group that he is able to become an object to himself, a fact which constitutes him a more advanced product of evolutionary development than are the lower animals. Fundamentally it is this social fact—and not his alleged possession of a soul or mind with which he, as an individual, has been mysteriously and supernaturally endowed, and with which the lower animals have not been endowed—that differentiates him from them

fact which makes our anthropomorphic reconstructions of animal life so fallacious. How can an individual get outside himself (experientially) in such a way as to become an object to himself? This is the essential psychological problem of selfhood or of self-consciousness; and its solution is to be found by referring to the process of social conduct or activity in which the given person or individual is implicated The apparatus of reason would not be complete unless it swept itself into its own analysis of the field of experience; or unless the individual brought himself into the same experiential field as that of the other individual selves in relation to whom he acts in any given social situation. Reason cannot become impersonal unless it takes an objective, non-affective attitude toward itself; otherwise we have just consciousness, not *self*-consciousness. And it is necessary to rational conduct that the individual should thus take an objective, impersonal attitude toward himself, that he should become an object to himself. For the individual organism is obviously an essential and important fact or constituent element of the empirical situation in which it acts; and without taking objective account of itself as such, it cannot act intelligently, or rationally.

The individual experiences himself as such, not directly, but only indirectly, from the particular standpoints of other individual members of the same social group, or from the generalized standpoint of the social group as a whole to which he belongs. For he enters his own experience as a self or individual, not directly or immediately, not by becoming a subject to himself, but only in so far as he first becomes an object to himself just as other individuals are objects to him or in his experience; and he becomes an object to himself only by taking the attitudes of other individuals toward himself within a social environment or context of experience and behavior in which both he and they are involved.

The importance of what we term "communication" lies in the fact that it provides a form of behavior in which the organism or the individual may become an object to himself. It is

that sort of communication which we have been discussing—not communication in the sense of the cluck of the hen to the chickens, or the bark of a wolf to the pack, or the lowing of a cow, but communication in the sense of significant symbols, communication which is directed not only to others but also to the individual himself. So far as that type of communication is a part of behavior it at least introduces a self Of course, one may hear without listening; one may see things that he does not realize; do things that he is not really aware of. But it is where one does respond to that which he addresses to another and where that response of his own becomes a part of his conduct, where he not only hears himself but responds to himself, talks and replies to himself as truly as the other person replies to him, that we have behavior in which the individuals become objects to themselves.

Such a self is not, I would say, primarily the physiological organism. The physiological organism is essential to it,[2] but we

[2] *a*) All social interrelations and interactions are rooted in a certain common socio-physiological endowment of every individual involved in them These physiological bases of social behavior—which have their ultimate seat or locus in the lower part of the individual's central nervous system—are the bases of such behavior, precisely because they in themselves are also social, that is, because they consist in drives or instincts or behavior tendencies, on the part of the given individual, which he cannot carry out or give overt expression and satisfaction to without the co-operative aid of one or more other individuals The physiological processes of behavior of which they are the mechanisms are processes which necessarily involve more than one individual, processes in which other individuals besides the given individual are perforce implicated Examples of the fundamental social relations to which these physiological bases of social behavior give rise are those between the sexes (expressing the reproductive instinct), between parent and child (expressing the parental instinct), and between neighbors (expressing the gregarious instinct) These relatively simple and rudimentary physiological mechanisms or tendencies of individual human behavior, besides constituting the physiological bases of all human social behavior, are also the fundamental biological materials of human nature, so that when we refer to human nature, we are referring to something which is essentially social

*b*) Sexually and parentally, as well as in its attacks and defenses, the activities of the physiological organism are social in that the acts begun within the organism require their completion in the actions of others . But while the pattern of the individual act may be said to be in these cases social, it is only so in so far as the organism seeks for the stimuli in the attitudes and characters of other forms for the completion of its own responses, and by its behavior tends to maintain the other as a part of its own environment The actual behavior of the other or the others is not initiated in the individual form as a part of its own pattern of behavior (MS).

are at least able to think of a self without it. Persons who believe in immortality, or believe in ghosts, or in the possibility of the self leaving the body, assume a self which is quite distinguishable from the body. How successfully they can hold these conceptions is an open question, but we do, as a fact, separate the self and the organism It is fair to say that the beginning of the self as an object, so far as we can see, is to be found in the experiences of people that lead to the conception of a "double" Primitive people assume that there is a double, located presumably in the diaphragm, that leaves the body temporarily in sleep and completely in death. It can be enticed out of the body of one's enemy and perhaps killed. It is represented in infancy by the imaginary playmates which children set up, and through which they come to control their experiences in their play

The self, as that which can be an object to itself, is essentially a social structure, and it arises in social experience After a self has arisen, it in a certain sense provides for itself its social experiences, and so we can conceive of an absolutely solitary self But it is impossible to conceive of a self arising outside of social experience When it has arisen we can think of a person in solitary confinement for the rest of his life, but who still has himself as a companion, and is able to think and to converse with himself as he had communicated with others. That process to which I have just referred, of responding to one's self as another responds to it, taking part in one's own conversation with others, being aware of what one is saying and using that awareness of what one is saying to determine what one is going to say thereafter—that is a process with which we are all familiar We are continually following up our own address to other persons by an understanding of what we are saying, and using that understanding in the direction of our continued speech We are finding out what we are going to say, what we are going to do, by saying and doing, and in the process we are continually controlling the process itself. In the conversation of gestures what we say calls out a certain response in another and that in turn

changes our own action, so that we shift from what we started to do because of the reply the other makes. The conversation of gestures is the beginning of communication. The individual comes to carry on a conversation of gestures with himself. He says something, and that calls out a certain reply in himself which makes him change what he was going to say. One starts to say something, we will presume an unpleasant something, but when he starts to say it he realizes it is cruel. The effect on himself of what he is saying checks him; there is here a conversation of gestures between the individual and himself. We mean by significant speech that the action is one that affects the individual himself, and that the effect upon the individual himself is part of the intelligent carrying-out of the conversation with others Now we, so to speak, amputate that social phase and dispense with it for the time being, so that one is talking to one's self as one would talk to another person.[3]

This process of abstraction cannot be carried on indefinitely. One inevitably seeks an audience, has to pour himself out to somebody. In reflective intelligence one thinks to act, and to act solely so that this action remains a part of a social process. Thinking becomes preparatory to social action The very process of thinking is, of course, simply an inner conversation that goes on, but it is a conversation of gestures which in its completion implies the expression of that which one thinks to

[3] It is generally recognized that the specifically social expressions of intelligence, or the exercise of what is often called "social intelligence," depend upon the given individual's ability to take the rôles of, or "put himself in the place of," the other individuals implicated with him in given social situations, and upon his consequent sensitivity to their attitudes toward himself and toward one another. These specifically social expressions of intelligence, of course, acquire unique significance in terms of our view that the whole nature of intelligence is social to the very core—that this putting of one's self in the places of others, this taking by one's self of their rôles or attitudes, is not merely one of the various aspects or expressions of intelligence or of intelligent behavior, but is the very essence of its character Spearman's "X factor" in intelligence—the unknown factor which, according to him, intelligence contains—is simply (if our social theory of intelligence is correct) this ability of the intelligent individual to take the attitude of the other, or the attitudes of others, thus realizing the significations or grasping the meanings of the symbols or gestures in terms of which thinking proceeds, and thus being able to carry on with himself the internal conversation with these symbols or gestures which thinking involves

an audience One separates the significance of what he is saying to others from the actual speech and gets it ready before saying it He thinks it out, and perhaps writes it in the form of a book; but it is still a part of social intercourse in which one is addressing other persons and at the same time addressing one's self, and in which one controls the address to other persons by the response made to one's own gesture. That the person should be responding to himself is necessary to the self, and it is this sort of social conduct which provides behavior within which that self appears. I know of no other form of behavior than the linguistic in which the individual is an object to himself, and, so far as I can see, the individual is not a self in the reflexive sense unless he is an object to himself. It is this fact that gives a critical importance to communication, since this is a type of behavior in which the individual does so respond to himself

We realize in everyday conduct and experience that an individual does not mean a great deal of what he is doing and saying We frequently say that such an individual is not himself. We come away from an interview with a realization that we have left out important things, that there are parts of the self that did not get into what was said What determines the amount of the self that gets into communication is the social experience itself Of course, a good deal of the self does not need to get expression. We carry on a whole series of different relationships to different people. We are one thing to one man and another thing to another. There are parts of the self which exist only for the self in relationship to itself. We divide ourselves up in all sorts of different selves with reference to our acquaintances. We discuss politics with one and religion with another There are all sorts of different selves answering to all sorts of different social reactions. It is the social process itself that is responsible for the appearance of the self, it is not there as a self apart from this type of experience.

A multiple personality is in a certain sense normal, as I have just pointed out There is usually an organization of the whole self with reference to the community to which we belong, and

the situation in which we find ourselves. What the society is, whether we are living with people of the present, people of our own imaginations, people of the past, varies, of course, with different individuals Normally, within the sort of community as a whole to which we belong, there is a unified self, but that may be broken up. To a person who is somewhat unstable nervously and in whom there is a line of cleavage, certain activities become impossible, and that set of activities may separate and evolve another self. Two separate "me's" and "I's," two different selves, result, and that is the condition under which there is a tendency to break up the personality. There is an account of a professor of education who disappeared, was lost to the community, and later turned up in a logging camp in the West. He freed himself of his occupation and turned to the woods where he felt, if you like, more at home. The pathological side of it was the forgetting, the leaving out of the rest of the self. This result involved getting rid of certain bodily memories which would identify the individual to himself. We often recognize the lines of cleavage that run through us We would be glad to forget certain things, get rid of things the self is bound up with in past experiences What we have here is a situation in which there can be different selves, and it is dependent upon the set of social reactions that is involved as to which self we are going to be. If we can forget everything involved in one set of activities, obviously we relinquish that part of the self Take a person who is unstable, get him occupied by speech, and at the same time get his eye on something you are writing so that he is carrying on two separate lines of communication, and if you go about it in the right way you can get those two currents going so that they do not run into each other. You can get two entirely different sets of activities going on You can bring about in that way the dissociation of a person's self. It is a process of setting up two sorts of communication which separate the behavior of the individual. For one individual it is this thing said and heard, and for the other individual there exists only that which he sees written. You must, of course, keep one experience

out of the field of the other Dissociations are apt to take place when an event leads to emotional upheavals. That which is separated goes on in its own way

The unity and structure of the complete self reflects the unity and structure of the social process as a whole, and each of the elementary selves of which it is composed reflects the unity and structure of one of the various aspects of that process in which the individual is implicated. In other words, the various elementary selves which constitute, or are organized into, a complete self are the various aspects of the structure of that complete self answering to the various aspects of the structure of the social process as a whole, the structure of the complete self is thus a reflection of the complete social process The organization and unification of a social group is identical with the organization and unification of any one of the selves arising within the social process in which that group is engaged, or which it is carrying on.[4]

The phenomenon of dissociation of personality is caused by a breaking up of the complete, unitary self into the component selves of which it is composed, and which respectively correspond to different aspects of the social process in which the person is involved, and within which his complete or unitary self has arisen; these aspects being the different social groups to which he belongs within that process

## THE BACKGROUND OF THE GENESIS OF THE SELF

The problem now presents itself as to how, in detail, a self arises. We have to note something of the background of its genesis. First of all there is the conversation of gestures between animals involving some sort of co-operative activity. There the beginning of the act of one is a stimulus to the other to respond

[4] The unity of the mind is not identical with the unity of the self The unity of the self is constituted by the unity of the entire relational pattern of social behavior and experience in which the individual is implicated, and which is reflected in the structure of the self, but many of the aspects or features of this entire pattern do not enter into consciousness, so that the unity of the mind is in a sense an abstraction from the more inclusive unity of the self.

in a certain way, while the beginning of this response becomes again a stimulus to the first to adjust his action to the oncoming response. Such is the preparation for the completed act, and ultimately it leads up to the conduct which is the outcome of this preparation. The conversation of gestures, however, does not carry with it the reference of the individual, the animal, the organism, to itself. It is not acting in a fashion which calls for a response from the form itself, although it is conduct with reference to the conduct of others. We have seen, however, that there are certain gestures that do affect the organism as they affect other organisms and may, therefore, arouse in the organism responses of the same character as aroused in the other Here, then, we have a situation in which the individual may at least arouse responses in himself and reply to these responses, the condition being that the social stimuli have an effect on the individual which is like that which they have on the other. That, for example, is what is implied in language, otherwise language as significant symbol would disappear, since the individual would not get the meaning of that which he says.

The peculiar character possessed by our human social environment belongs to it by virtue of the peculiar character of human social activity; and that character, as we have seen, is to be found in the process of communication, and more particularly in the triadic relation on which the existence of meaning is based: the relation of the gesture of one organism to the adjustive response made to it by another organism, in its indicative capacity as pointing to the completion or resultant of the act it initiates (the meaning of the gesture being thus the response of the second organism to it as such, or as a gesture) What, as it were, takes the gesture out of the social act and isolates it as such—what makes it something more than just an early phase of an individual act—is the response of another organism, or of other organisms, to it. Such a response is its meaning, or gives it its meaning. The social situation and process of behavior are here presupposed by the acts of the individual organisms implicated therein The gesture arises as a separable element in

the social act, by virtue of the fact that it is selected out by the sensitivities of other organisms to it; it does not exist as a gesture merely in the experience of the single individual. The meaning of a gesture by one organism, to repeat, is found in the response of another organism to what would be the completion of the act of the first organism which that gesture initiates and indicates.

We sometimes speak as if a person could build up an entire argument in his mind, and then put it into words to convey it to someone else. Actually, our thinking always takes place by means of some sort of symbols. It is possible that one could have the meaning of "chair" in his experience without there being a symbol, but we would not be thinking about it in that case We may sit down in a chair without thinking about what we are doing, that is, the approach to the chair is presumably already aroused in our experience, so that the meaning is there. But if one is thinking about the chair he must have some sort of a symbol for it. It may be the form of the chair, it may be the attitude that somebody else takes in sitting down, but it is more apt to be some language symbol that arouses this response. In a thought process there has to be some sort of a symbol that can refer to this meaning, that is, tend to call out this response, and also serve this purpose for other persons as well. It would not be a thought process if that were not the case.

Our symbols are all universal.[5] You cannot say anything that is absolutely particular, anything you say that has any meaning at all is universal You are saying something that calls out a specific response in anybody else provided that the symbol

[5] Thinking proceeds in terms of or by means of universals A universal may be interpreted behavioristically as simply the social act as a whole, involving the organization and interrelation of the attitudes of all the individuals implicated in the act, as controlling their overt responses This organization of the different individual attitudes and interactions in a given social act, with reference to their interrelations as realized by the individuals themselves, is what we mean by a universal; and it determines what the actual overt responses of the individuals involved in the given social act will be, whether that act be concerned with a concrete project of some sort (such as the relation of physical and social means to ends desired) or with some purely abstract discussion, say the theory of relativity or the Platonic ideas.

exists for him in his experience as it does for you. There is the language of speech and the language of hands, and there may be the language of the expression of the countenance. One can register grief or joy and call out certain responses. There are primitive people who can carry on elaborate conversations just by expressions of the countenance. Even in these cases the person who communicates is affected by that expression just as he expects somebody else to be affected Thinking always implies a symbol which will call out the same response in another that it calls out in the thinker. Such a symbol is a universal of discourse; it is universal in its character. We always assume that the symbol we use is one which will call out in the other person the same response, provided it is a part of his mechanism of conduct. A person who is saying something is saying to himself what he says to others; otherwise he does not know what he is talking about.

There is, of course, a great deal in one's conversation with others that does not arouse in one's self the same response it arouses in others. That is particularly true in the case of emotional attitudes. One tries to bully somebody else; he is not trying to bully himself. There is, further, a whole set of values given in speech which are not of a symbolic character. The actor is conscious of these values; that is, if he assumes a certain attitude he is, as we say, aware that this attitude represents grief. If it does he is able to respond to his own gesture in some sense as his audience does. It is not a natural situation; one is not an actor all of the time. We do at times act and consider just what the effect of our attitude is going to be, and we may deliberately use a certain tone of voice to bring about a certain result Such a tone arouses the same response in ourselves that we want to arouse in somebody else. But a very large part of what goes on in speech has not this symbolic status.

It is the task not only of the actor but of the artist as well to find the sort of expression that will arouse in others what is going on in himself. The lyric poet has an experience of beauty with an emotional thrill to it, and as an artist using words he is

seeking for those words which will answer to his emotional attitude, and which will call out in others the attitude he himself has. He can only test his results in himself by seeing whether these words do call out in him the response he wants to call out in others. He is in somewhat the same position as that of the actor. The first direct and immediate experience is not in the form of communication. We have an interesting light on this from such a poet as Wordsworth, who was very much interested in the technique of the poet's expression, and he has told us in his prefaces and also in his own poetry how his poems, as poems, arose—and uniformly the experience itself was not the immediate stimulus to the poetic expression. A period of ten years might lie between the original experience and the expression of it. This process of finding the expression in language which will call out the emotion once had is more easily accomplished when one is dealing with the memory of it than when one is in the midst of the trance-like experiences through which Wordsworth passed in his contact with nature One has to experiment and see how the expression that is given does answer to the responses which are now had in the fainter memories of experience Someone once said that he had very great difficulty in writing poetry, he had plenty of ideas but could not get the language he needed. He was rightly told that poetry was written in words, not in ideas.

A great deal of our speech is not of this genuinely aesthetic character; in most of it we do not deliberately feel the emotions which we arouse We do not normally use language stimuli to call out in ourselves the emotional response which we are calling out in others One does, of course, have sympathy in emotional situations; but what one is seeking for there is something which is, after all, that in the other which supports the individual in his own experience. In the case of the poet and actor, the stimulus calls out in the artist that which it calls out in the other, but this is not the natural function of language, we do not assume that the person who is angry is calling out the fear in himself that he is calling out in someone else. The emotional part of our

act does not directly call out in us the response it calls out in the other. If a person is hostile the attitude of the other that he is interested in, an attitude which flows naturally from his angered tones, is not one that he definitely recognizes in himself. We are not frightened by a tone which we may use to frighten somebody else. On the emotional side, which is a very large part of the vocal gesture, we do not call out in ourselves in any such degree the response we call out in others as we do in the case of significant speech. Here we should call out in ourselves the type of response we are calling out in others, we must know what we are saying, and the attitude of the other which we arouse in ourselves should control what we do say. Rationality means that the type of the response which we call out in others should be so called out in ourselves, and that this response should in turn take its place in determining what further thing we are going to say and do.

What is essential to communication is that the symbol should arouse in one's self what it arouses in the other individual. It must have that sort of universality to any person who finds himself in the same situation. There is a possibility of language whenever a stimulus can affect the individual as it affects the other. With a blind person such as Helen Keller, it is a contact experience that could be given to another as it is given to herself. It is out of that sort of language that the mind of Helen Keller was built up. As she has recognized, it was not until she could get into communication with other persons through symbols which could arouse in herself the responses they arouse in other people that she could get what we term a mental content, or a self.

Another set of background factors in the genesis of the self is represented in the activities of play and the game.

Among primitive people, as I have said, the necessity of distinguishing the self and the organism was recognized in what we term the "double": the individual has a thing-like self that is affected by the individual as it affects other people and which is distinguished from the immediate organism in that it can leave

the body and come back to it. This is the basis for the concept of the soul as a separate entity.

We find in children something that answers to this double, namely, the invisible, imaginary companions which a good many children produce in their own experience. They organize in this way the responses which they call out in other persons and call out also in themselves. Of course, this playing with an imaginary companion is only a peculiarly interesting phase of ordinary play. Play in this sense, especially the stage which precedes the organized games, is a play at something. A child plays at being a mother, at being a teacher, at being a policeman; that is, it is taking different rôles, as we say. We have something that suggests this in what we call the play of animals: a cat will play with her kittens, and dogs play with each other. Two dogs playing with each other will attack and defend, in a process which if carried through would amount to an actual fight. There is a combination of responses which checks the depth of the bite. But we do not have in such a situation the dogs taking a definite rôle in the sense that a child deliberately takes the rôle of another. This tendency on the part of the children is what we are working with in the kindergarten where the rôles which the children assume are made the basis for training. When a child does assume a rôle he has in himself the stimuli which call out that particular response or group of responses. He may, of course, run away when he is chased, as the dog does, or he may turn around and strike back just as the dog does in his play. But that is not the same as playing at something. Children get together to "play Indian." This means that the child has a certain set of stimuli which call out in itself the responses that they would call out in others, and which answer to an Indian. In the play period the child utilizes his own responses to these stimuli which he makes use of in building a self. The response which he has a tendency to make to these stimuli organizes them. He plays that he is, for instance, offering himself something, and he buys it, he gives a letter to himself and takes it away; he addresses himself as a parent, as a teacher; he

arrests himself as a policeman He has a set of stimuli which call out in himself the sort of responses they call out in others. He takes this group of responses and organizes them into a certain whole Such is the simplest form of being another to one's self. It involves a temporal situation. The child says something in one character and responds in another character, and then his responding in another character is a stimulus to himself in the first character, and so the conversation goes on A certain organized structure arises in him and in his other which replies to it, and these carry on the conversation of gestures between themselves

If we contrast play with the situation in an organized game, we note the essential difference that the child who plays in a game must be ready to take the attitude of everyone else involved in that game, and that these different rôles must have a definite relationship to each other. Taking a very simple game such as hide-and-seek, everyone with the exception of the one who is hiding is a person who is hunting. A child does not require more than the person who is hunted and the one who is hunting. If a child is playing in the first sense he just goes on playing, but there is no basic organization gained In that early stage he passes from one rôle to another just as a whim takes him. But in a game where a number of individuals are involved, then the child taking one rôle must be ready to take the rôle of everyone else. If he gets in a ball nine he must have the responses of each position involved in his own position He must know what everyone else is going to do in order to carry out his own play. He has to take all of these rôles They do not all have to be present in consciousness at the same time, but at some moments he has to have three or four individuals present in his own attitude, such as the one who is going to throw the ball, the one who is going to catch it, and so on. These responses must be, in some degree, present in his own make-up. In the game, then, there is a set of responses of such others so organized that the attitude of one calls out the appropriate attitudes of the other.

This organization is put in the form of the rules of the game. Children take a great interest in rules. They make rules on the spot in order to help themselves out of difficulties. Part of the enjoyment of the game is to get these rules Now, the rules are the set of responses which a particular attitude calls out. You can demand a certain response in others if you take a certain attitude. These responses are all in yourself as well. There you get an organized set of such responses as that to which I have referred, which is something more elaborate than the rôles found in play. Here there is just a set of responses that follow on each other indefinitely At such a stage we speak of a child as not yet having a fully developed self The child responds in a fairly intelligent fashion to the immediate stimuli that come to him, but they are not organized. He does not organize his life as we would like to have him do, namely, as a whole There is just a set of responses of the type of play. The child reacts to a certain stimulus, and the reaction is in himself that is called out in others, but he is not a whole self. In his game he has to have an organization of these rôles, otherwise he cannot play the game. The game represents the passage in the life of the child from taking the rôle of others in play to the organized part that is essential to self-consciousness in the full sense of the term.

## PLAY, THE GAME, AND THE GENERALIZED OTHER

We were speaking of the social conditions under which the self arises as an object. In addition to language we found two illustrations, one in play and the other in the game, and I wish to summarize and expand my account on these points I have spoken of these from the point of view of children. We can, of course, refer also to the attitudes of more primitive people out of which our civilization has arisen. A striking illustration of play as distinct from the game is found in the myths and various of the plays which primitive people carry out, especially in religious pageants. The pure play attitude which we find in the case of little children may not be found here, since the participants are adults, and undoubtedly the relationship of these play

processes to that which they interpret is more or less in the minds of even the most primitive people. In the process of interpretation of such rituals, there is an organization of play which perhaps might be compared to that which is taking place in the kindergarten in dealing with the plays of little children, where these are made into a set that will have a definite structure or relationship. At least something of the same sort is found in the play of primitive people. This type of activity belongs, of course, not to the everyday life of the people in their dealing with the objects about them—there we have a more or less definitely developed self-consciousness—but in their attitudes toward the forces about them, the nature upon which they depend; in their attitude toward this nature which is vague and uncertain, there we have a much more primitive response; and that response finds its expression in taking the rôle of the other, playing at the expression of their gods and their heroes, going through certain rites which are the representation of what these individuals are supposed to be doing. The process is one which develops, to be sure, into a more or less definite technique and is controlled, and yet we can say that it has arisen out of situations similar to those in which little children play at being a parent, at being a teacher—vague personalities that are about them and which affect them and on which they depend. These are personalities which they take, rôles they play, and in so far control the development of their own personality. This outcome is just what the kindergarten works toward. It takes the characters of these various vague beings and gets them into such an organized social relationship to each other that they build up the character of the little child.[6] The very introduction of organization from outside supposes a lack of organization at this period in the child's experience. Over against such a situation of the little child and primitive people, we have the game as such.

The fundamental difference between the game and play is

[6] ["The Relation of Play to Education," *University of Chicago Record*, I (1896–97), 140 ff.]

that in the latter the child must have the attitude of all the others involved in that game The attitudes of the other players which the participant assumes organize into a sort of unit, and it is that organization which controls the response of the individual. The illustration used was of a person playing baseball. Each one of his own acts is determined by his assumption of the action of the others who are playing the game. What he does is controlled by his being everyone else on that team, at least in so far as those attitudes affect his own particular response. We get then an "other" which is an organization of the attitudes of those involved in the same process.

The organized community or social group which gives to the individual his unity of self may be called "the generalized other." The attitude of the generalized other is the attitude of the whole community.[7] Thus, for example, in the case of such a social group as a ball team, the team is the generalized other in so far as it enters—as an organized process or social activity—into the experience of any one of the individual members of it.

If the given human individual is to develop a self in the fullest sense, it is not sufficient for him merely to take the attitudes of other human individuals toward himself and toward one another within the human social process, and to bring that social process as a whole into his individual experience merely in these terms: he must also, in the same way that he takes the attitudes of other individuals toward himself and toward one another,

[7] It is possible for inanimate objects, no less than for other human organisms, to form parts of the generalized and organized—the completely socialized—other for any given human individual, in so far as he responds to such objects socially or in a social fashion (by means of the mechanism of thought, the internalized conversation of gestures). Any thing—any object or set of objects, whether animate or inanimate, human or animal, or merely physical—toward which he acts, or to which he responds, socially, is an element in what for him is the generalized other, by taking the attitudes of which toward himself he becomes conscious of himself as an object or individual, and thus develops a self or personality. Thus, for example, the cult, in its primitive form, is merely the social embodiment of the relation between the given social group or community and its physical environment—an organized social means, adopted by the individual members of that group or community, of entering into social relations with that environment, or (in a sense) of carrying on conversations with it, and in this way that environment becomes part of the total generalized other for each of the individual members of the given social group or community

take their attitudes toward the various phases or aspects of the common social activity or set of social undertakings in which, as members of an organized society or social group, they are all engaged, and he must then, by generalizing these individual attitudes of that organized society or social group itself, as a whole, act toward different social projects which at any given time it is carrying out, or toward the various larger phases of the general social process which constitutes its life and of which these projects are specific manifestations. This getting of the broad activities of any given social whole or organized society as such within the experiential field of any one of the individuals involved or included in that whole is, in other words, the essential basis and prerequisite of the fullest development of that individual's self: only in so far as he takes the attitudes of the organized social group to which he belongs toward the organized, co-operative social activity or set of such activities in which that group as such is engaged, does he develop a complete self or possess the sort of complete self he has developed. And on the other hand, the complex co-operative processes and activities and institutional functionings of organized human society are also possible only in so far as every individual involved in them or belonging to that society can take the general attitudes of all other such individuals with reference to these processes and activities and institutional functionings, and to the organized social whole of experiential relations and interactions thereby constituted—and can direct his own behavior accordingly

It is in the form of the generalized other that the social process influences the behavior of the individuals involved in it and carrying it on, i.e., that the community exercises control over the conduct of its individual members; for it is in this form that the social process or community enters as a determining factor into the individual's thinking. In abstract thought the individual takes the attitude of the generalized other[8]

[8] We have said that the internal conversation of the individual with himself in terms of words or significant gestures—the conversation which constitutes the process or activity of thinking—is carried on by the individual from the standpoint of the "generalized other" And the more abstract that conversation is, the more abstract thinking happens

toward himself, without reference to its expression in any particular other individuals, and in concrete thought he takes that attitude in so far as it is expressed in the attitudes toward his behavior of those other individuals with whom he is involved in the given social situation or act. But only by taking the attitude of the generalized other toward himself, in one or another of these ways, can he think at all, for only thus can thinking—or the internalized conversation of gestures which constitutes thinking—occur. And only through the taking by individuals of the attitude or attitudes of the generalized other toward themselves is the existence of a universe of discourse, as that system of common or social meanings which thinking presupposes at its context, rendered possible.

The self-conscious human individual, then, takes or assumes the organized social attitudes of the given social group or community (or of some one section thereof) to which he belongs, toward the social problems of various kinds which confront that group or community at any given time, and which arise in connection with the correspondingly different social projects or organized co-operative enterprises in which that group or community as such is engaged, and as an individual participant in these social projects or co-operative enterprises, he governs his own conduct accordingly. In politics, for example, the individual identifies himself with an entire political party and takes the organized attitudes of that entire party toward the rest of the given social community and toward the problems which confront the party within the given social situation, and he consequently reacts or responds in terms of the organized attitudes of the party as a whole. He thus enters into a special set of

---

to be, the further removed is the generalized other from any connection with particular individuals. It is especially in abstract thinking, that is to say, that the conversation involved is carried on by the individual with the generalized other, rather than with any particular individuals. Thus it is, for example, that abstract concepts are concepts stated in terms of the attitudes of the entire social group or community; they are stated on the basis of the individual's consciousness of the attitudes of the generalized other toward them, as a result of his taking these attitudes of the generalized other and then responding to them. And thus it is also that abstract propositions are stated in a form which anyone—any other intelligent individual—will accept.

social relations with all the other individuals who belong to that political party; and in the same way he enters into various other special sets of social relations, with various other classes of individuals respectively, the individuals of each of these classes being the other members of some one of the particular organized subgroups (determined in socially functional terms) of which he himself is a member within the entire given society or social community. In the most highly developed, organized, and complicated human social communities—those evolved by civilized man—these various socially functional classes or subgroups of individuals to which any given individual belongs (and with the other individual members of which he thus enters into a special set of social relations) are of two kinds Some of them are concrete social classes or subgroups, such as political parties, clubs, corporations, which are all actually functional social units, in terms of which their individual members are directly related to one another. The others are abstract social classes or subgroups, such as the class of debtors and the class of creditors, in terms of which their individual members are related to one another only more or less indirectly, and which only more or less indirectly function as social units, but which afford or represent unlimited possibilities for the widening and ramifying and enriching of the social relations among all the individual members of the given society as an organized and unified whole. The given individual's membership in several of these abstract social classes or subgroups makes possible his entrance into definite social relations (however indirect) with an almost infinite number of other individuals who also belong to or are included within one or another of these abstract social classes or subgroups cutting across functional lines of demarcation which divide different human social communities from one another, and including individual members from several (in some cases from all) such communities Of these abstract social classes or subgroups of human individuals the one which is most inclusive and extensive is, of course, the one defined by the logical universe of discourse (or system of universally signifi-

cant symbols) determined by the participation and communicative interaction of individuals; for of all such classes or subgroups, it is the one which claims the largest number of individual members, and which enables the largest conceivable number of human individuals to enter into some sort of social relation, however indirect or abstract it may be, with one another—a relation arising from the universal functioning of gestures as significant symbols in the general human social process of communication.

I have pointed out, then, that there are two general stages in the full development of the self. At the first of these stages, the individual's self is constituted simply by an organization of the particular attitudes of other individuals toward himself and toward one another in the specific social acts in which he participates with them. But at the second stage in the full development of the individual's self that self is constituted not only by an organization of these particular individual attitudes, but also by an organization of the social attitudes of the generalized other or the social group as a whole to which he belongs. These social or group attitudes are brought within the individual's field of direct experience, and are included as elements in the structure or constitution of his self, in the same way that the attitudes of particular other individuals are; and the individual arrives at them, or succeeds in taking them, by means of further organizing, and then generalizing, the attitudes of particular other individuals in terms of their organized social bearings and implications So the self reaches its full development by organizing these individual attitudes of others into the organized social or group attitudes, and by thus becoming an individual reflection of the general systematic pattern of social or group behavior in which it and the others are all involved—a pattern which enters as a whole into the individual's experience in terms of these organized group attitudes which, through the mechanism of his central nervous system, he takes toward himself, just as he takes the individual attitudes of others.

The game has a logic, so that such an organization of the self

is rendered possible: there is a definite end to be obtained, the actions of the different individuals are all related to each other with reference to that end so that they do not conflict, one is not in conflict with himself in the attitude of another man on the team. If one has the attitude of the person throwing the ball he can also have the response of catching the ball The two are related so that they further the purpose of the game itself They are interrelated in a unitary, organic fashion. There is a definite unity, then, which is introduced into the organization of other selves when we reach such a stage as that of the game, as over against the situation of play where there is a simple succession of one rôle after another, a situation which is, of course, characteristic of the child's own personality The child is one thing at one time and another at another, and what he is at one moment does not determine what he is at another. That is both the charm of childhood as well as its inadequacy. You cannot count on the child; you cannot assume that all the things he does are going to determine what he will do at any moment. He is not organized into a whole The child has no definite character, no definite personality.

The game is then an illustration of the situation out of which an organized personality arises. In so far as the child does take the attitude of the other and allows that attitude of the other to determine the thing he is going to do with reference to a common end, he is becoming an organic member of society. He is taking over the morale of that society and is becoming an essential member of it. He belongs to it in so far as he does allow the attitude of the other that he takes to control his own immediate expression. What is involved here is some sort of an organized process. That which is expressed in terms of the game is, of course, being continually expressed in the social life of the child, but this wider process goes beyond the immediate experience of the child himself. The importance of the game is that it lies entirely inside of the child's own experience, and the importance of our modern type of education is that it is brought as far as possible within this realm. The different attitudes that a child

assumes are so organized that they exercise a definite control over his response, as the attitudes in a game control his own immediate response. In the game we get an organized other, a generalized other, which is found in the nature of the child itself, and finds its expression in the immediate experience of the child. And it is that organized activity in the child's own nature controlling the particular response which gives unity, and which builds up his own self

What goes on in the game goes on in the life of the child all the time. He is continually taking the attitudes of those about him, especially the rôles of those who in some sense control him and on whom he depends. He gets the function of the process in an abstract sort of a way at first It goes over from the play into the game in a real sense. He has to play the game. The morale of the game takes hold of the child more than the larger morale of the whole community. The child passes into the game and the game expresses a social situation in which he can completely enter; its morale may have a greater hold on him than that of the family to which he belongs or the community in which he lives There are all sorts of social organizations, some of which are fairly lasting, some temporary, into which the child is entering, and he is playing a sort of social game in them. It is a period in which he likes "to belong," and he gets into organizations which come into existence and pass out of existence. He becomes a something which can function in the organized whole, and thus tends to determine himself in his relationship with the group to which he belongs That process is one which is a striking stage in the development of the child's morale. It constitutes him a self-conscious member of the community to which he belongs.

Such is the process by which a personality arises I have spoken of this as a process in which a child takes the rôle of the other, and said that it takes place essentially through the use of language Language is predominantly based on the vocal gesture by means of which co-operative activities in a community are carried out. Language in its significant sense is that vocal

gesture which tends to arouse in the individual the attitude which it arouses in others, and it is this perfecting of the self by the gesture which mediates the social activities that gives rise to the process of taking the rôle of the other. The latter phrase is a little unfortunate because it suggests an actor's attitude which is actually more sophisticated than that which is involved in our own experience To this degree it does not correctly describe that which I have in mind. We see the process most definitely in a primitive form in those situations where the child's play takes different rôles Here the very fact that he is ready to pay out money, for instance, arouses the attitude of the person who receives money; the very process is calling out in him the corresponding activities of the other person involved. The individual stimulates himself to the response which he is calling out in the other person, and then acts in some degree in response to that situation. In play the child does definitely act out the rôle which he himself has aroused in himself It is that which gives, as I have said, a definite content in the individual which answers to the stimulus that affects him as it affects somebody else. The content of the other that enters into one personality is the response in the individual which his gesture calls out in the other

We may illustrate our basic concept by a reference to the notion of property. If we say "This is my property, I shall control it," that affirmation calls out a certain set of responses which must be the same in any community in which property exists. It involves an organized attitude with reference to property which is common to all the members of the community. One must have a definite attitude of control of his own property and respect for the property of others Those attitudes (as organized sets of responses) must be there on the part of all, so that when one says such a thing he calls out in himself the response of the others. He is calling out the response of what I have called a generalized other That which makes society possible is such common responses, such organized attitudes, with reference to what we term property, the cults of religion, the process of education, and the relations of the family. Of course, the

wider the society the more definitely universal these objects must be. In any case there must be a definite set of responses, which we may speak of as abstract, and which can belong to a very large group Property is in itself a very abstract concept. It is that which the individual himself can control and nobody else can control. The attitude is different from that of a dog toward a bone. A dog will fight any other dog trying to take the bone. The dog is not taking the attitude of the other dog. A man who says "This is my property" is taking an attitude of the other person. The man is appealing to his rights because he is able to take the attitude which everybody else in the group has with reference to property, thus arousing in himself the attitude of others.

What goes to make up the organized self is the organization of the attitudes which are common to the group. A person is a personality because he belongs to a community, because he takes over the institutions of that community into his own conduct. He takes its language as a medium by which he gets his personality, and then through a process of taking the different rôles that all the others furnish he comes to get the attitude of the members of the community. Such, in a certain sense, is the structure of a man's personality. There are certain common responses which each individual has toward certain common things, and in so far as those common responses are awakened in the individual when he is affecting other persons he arouses his own self. The structure, then, on which the self is built is this response which is common to all, for one has to be a member of a community to be a self. Such responses are abstract attitudes, but they constitute just what we term a man's character. They give him what we term his principles, the acknowledged attitudes of all members of the community toward what are the values of that community. He is putting himself in the place of the generalized other, which represents the organized responses of all the members of the group. It is that which guides conduct controlled by principles, and a person who has

such an organized group of responses is a man whom we say has character, in the moral sense

It is a structure of attitudes, then, which goes to make up a self, as distinct from a group of habits. We all of us have, for example, certain groups of habits, such as the particular intonations which a person uses in his speech. This is a set of habits of vocal expression which one has but which one does not know about. The sets of habits which we have of that sort mean nothing to us; we do not hear the intonations of our speech that others hear unless we are paying particular attention to them. The habits of emotional expression which belong to our speech are of the same sort. We may know that we have expressed ourselves in a joyous fashion but the detailed process is one which does not come back to our conscious selves. There are whole bundles of such habits which do not enter into a conscious self, but which help to make up what is termed the unconscious self.

After all, what we mean by self-consciousness is an awakening in ourselves of the group of attitudes which we are arousing in others, especially when it is an important set of responses which go to make up the members of the community. It is unfortunate to fuse or mix up consciousness, as we ordinarily use that term, and self-consciousness Consciousness, as frequently used, simply has reference to the field of experience, but self-consciousness refers to the ability to call out in ourselves a set of definite responses which belong to the others of the group. Consciousness and self-consciousness are not on the same level A man alone has, fortunately or unfortunately, access to his own toothache, but that is not what we mean by self-consciousness

I have so far emphasized what I have called the structures upon which the self is constructed, the framework of the self, as it were. Of course we are not only what is common to all: each one of the selves is different from everyone else; but there has to be such a common structure as I have sketched in order that we may be members of a community at all. We cannot be ourselves unless we are also members in whom there is a com-

munity of attitudes which control the attitudes of all. We cannot have rights unless we have common attitudes. That which we have acquired as self-conscious persons makes us such members of society and gives us selves. Selves can only exist in definite relationships to other selves. No hard-and-fast line can be drawn between our own selves and the selves of others, since our own selves exist and enter as such into our experience only in so far as the selves of others exist and enter as such into our experience also The individual possesses a self only in relation to the selves of the other members of his social group; and the structure of his self expresses or reflects the general behavior pattern of this social group to which he belongs, just as does the structure of the self of every other individual belonging to this social group.

THE SELF AND THE SUBJECTIVE

Emphasis should be laid on the central position of thinking when considering the nature of the self. Self-consciousness, rather than affective experience with its motor accompaniments, provides the core and primary structure of the self, which is thus essentially a cognitive rather than an emotional phenomenon The thinking or intellectual process—the internalization and inner dramatization, by the individual, of the external conversation of significant gestures which constitutes his chief mode of interaction with other individuals belonging to the same society—is the earliest experiential phase in the genesis and development of the self Cooley and James, it is true, endeavor to find the basis of the self in reflexive affective experiences, i e , experiences involving "self-feeling", but the theory that the nature of the self is to be found in such experiences does not account for the origin of the self, or of the self-feeling which is supposed to characterize such experiences The individual need not take the attitudes of others toward himself in these experiences, since these experiences merely in themselves do not necessitate his doing so, and unless he does so, he cannot develop a self, and he will not do so in these experiences unless his self has already originated otherwise, namely, in the way we have been describ-

ing. The essence of the self, as we have said, is cognitive: it lies in the internalized conversation of gestures which constitutes thinking, or in terms of which thought or reflection proceeds. And hence the origin and foundations of the self, like those of thinking, are social.

## THE "I" AND THE "ME"

We have discussed at length the social foundations of the self, and hinted that the self does not consist simply in the bare organization of social attitudes We may now explicitly raise the question as to the nature of the "I" which is aware of the social "me" I do not mean to raise the metaphysical question of how a person can be both "I" and "me," but to ask for the significance of this distinction from the point of view of conduct itself Where in conduct does the "I" come in as over against the "me"? If one determines what his position is in society and feels himself as having a certain function and privilege, these are all defined with reference to an "I," but the "I" is not a "me" and cannot become a "me" We may have a better self and a worse self, but that again is not the "I" as over against the "me," because they are both selves. We approve of one and disapprove of the other, but when we bring up one or the other they are there for such approval as "me's" The "I" does not get into the limelight; we talk to ourselves, but do not see ourselves The "I" reacts to the self which arises through the taking of the attitudes of others. Through taking those attitudes we have introduced the "me" and we react to it as an "I."

The simplest way of handling the problem would be in terms of memory I talk to myself, and I remember what I said and perhaps the emotional content that went with it. The "I" of this moment is present in the "me" of the next moment. There again I cannot turn around quick enough to catch myself. I become a "me" in so far as I remember what I said. The "I" can be given, however, this functional relationship. It is because of the "I" that we say that we are never fully aware of what we are, that we surprise ourselves by our own action. It is as we act that

we are aware of ourselves It is in memory that the "I" is constantly present in experience. We can go back directly a few moments in our experience, and then we are dependent upon memory images for the rest. So that the "I" in memory is there as the spokesman of the self of the second, or minute, or day ago. As given, it is a "me," but it is a "me" which was the "I" at the earlier time If you ask, then, where directly in your own experience the "I" comes in, the answer is that it comes in as a historical figure It is what you were a second ago that is the "I" of the "me" It is another "me" that has to take that rôle You cannot get the immediate response of the "I" in the process.[9] The "I" is in a certain sense that with which we do identify ourselves. The getting of it into experience constitutes one of the problems of most of our conscious experience, it is not directly given in experience.

The "I" is the response of the organism to the attitudes of the others, the "me" is the organized set of attitudes of others which one himself assumes The attitudes of the others constitute the organized "me," and then one reacts toward that as an "I." I now wish to examine these concepts in greater detail.

There is neither "I" nor "me" in the conversation of gestures; the whole act is not yet carried out, but the preparation takes place in this field of gesture. Now, in so far as the individual arouses in himself the attitudes of the others, there arises an organized group of responses And it is due to the individual's ability to take the attitudes of these others in so far as they can be organized that he gets self-consciousness The taking of all of those organized sets of attitudes gives him his "me", that is the self he is aware of. He can throw the ball to some other member because of the demand made upon him from other members of

[9] The sensitivity of the organism brings parts of itself into the environment It does not, however, bring the life-process itself into the environment, and the complete imaginative presentation of the organism is unable to present the living of the organism It can conceivably present the conditions under which living takes place but not the unitary life-process The physical organism in the environment always remains a thing (MS).

the team. That is the self that immediately exists for him in his consciousness He has their attitudes, knows what they want and what the consequence of any act of his will be, and he has assumed responsibility for the situation Now, it is the presence of those organized sets of attitudes that constitutes that "me" to which he as an "I" is responding. But what that response will be he does not know and nobody else knows. Perhaps he will make a brilliant play or an error The response to that situation as it appears in his immediate experience is uncertain, and it is that which constitutes the "I."

The "I" is his action over against that social situation within his own conduct, and it gets into his experience only after he has carried out the act. Then he is aware of it. He had to do such a thing and he did it. He fulfils his duty and he may look with pride at the throw which he made. The "me" arises to do that duty—that is the way in which it arises in his experience. He had in him all the attitudes of others, calling for a certain response, that was the "me" of that situation, and his response is the "I"

I want to call attention particularly to the fact that this response of the "I" is something that is more or less uncertain. The attitudes of others which one assumes as affecting his own conduct constitute the "me," and that is something that is there, but the response to it is as yet not given. When one sits down to think anything out, he has certain data that are there. Suppose that it is a social situation which he has to straighten out He sees himself from the point of view of one individual or another in the group. These individuals, related all together, give him a certain self. Well, what is he going to do? He does not know and nobody else knows. He can get the situation into his experience because he can assume the attitudes of the various individuals involved in it. He knows how they feel about it by the assumption of their attitudes. He says, in effect, "I have done certain things that seem to commit me to a certain course of conduct" Perhaps if he does so act it will place him in a false position with another group. The "I" as a re-

sponse to this situation, in contrast to the "me" which is involved in the attitudes which he takes, is uncertain. And when the response takes place, then it appears in the field of experience largely as a memory image.

Our specious present as such is very short. We do, however, experience passing events; part of the process of the passage of events is directly there in our experience, including some of the past and some of the future We see a ball falling as it passes, and as it does pass part of the ball is covered and part is being uncovered. We remember where the ball was a moment ago and we anticipate where it will be beyond what is given in our experience So of ourselves; we are doing something, but to look back and see what we are doing involves getting memory images. So the "I" really appears experientially as a part of a "me." But on the basis of this experience we distinguish that individual who is doing something from the "me" who puts the problem up to him. The response enters into his experience only when it takes place. If he says he knows what he is going to do, even there he may be mistaken He starts out to do something and something happens to interfere. The resulting action is always a little different from anything which he could anticipate This is true even if he is simply carrying out the process of walking. The very taking of his expected steps puts him in a certain situation which has a slightly different aspect from what is expected, which is in a certain sense novel That movement into the future is the step, so to speak, of the ego, of the "I." It is something that is not given in the "me"

Take the situation of a scientist solving a problem, where he has certain data which call for certain responses Some of this set of data call for his applying such and such a law, while others call for another law Data are there with their implications He knows what such and such coloration means, and when he has these data before him they stand for certain responses on his part; but now they are in conflict with each other If he makes one response he cannot make another. What he is going to do he does not know, nor does anybody else The action of the self is

in response to these conflicting sets of data in the form of a problem, with conflicting demands upon him as a scientist. He has to look at it in different ways. That action of the "I" is something the nature of which we cannot tell in advance.

The "I," then, in this relation of the "I" and the "me," is something that is, so to speak, responding to a social situation which is within the experience of the individual. It is the answer which the individual makes to the attitude which others take toward him when he assumes an attitude toward them. Now, the attitudes he is taking toward them are present in his own experience, but his response to them will contain a novel element. The "I" gives the sense of freedom, of initiative The situation is there for us to act in a self-conscious fashion. We are aware of ourselves, and of what the situation is, but exactly how we will act never gets into experience until after the action takes place.

Such is the basis for the fact that the "I" does not appear in the same sense in experience as does the "me." The "me" represents a definite organization of the community there in our own attitudes, and calling for a response, but the response that takes place is something that just happens. There is no certainty in regard to it. There is a moral necessity but no mechanical necessity for the act. When it does take place then we find what has been done The above account gives us, I think, the relative position of the "I" and "me" in the situation, and the grounds for the separation of the two in behavior. The two are separated in the process but they belong together in the sense of being parts of a whole. They are separated and yet they belong together. The separation of the "I" and the "me" is not fictitious. They are not identical, for, as I have said, the "I" is something that is never entirely calculable. The "me" does call for a certain sort of an "I" in so far as we meet the obligations that are given in conduct itself, but the "I" is always something different from what the situation itself calls for. So there is always that distinction, if you like, between the "I" and the "me." The "I" both calls out the "me" and responds to it. Taken together

they constitute a personality as it appears in social experience. The self is essentially a social process going on with these two distinguishable phases. If it did not have these two phases there could not be conscious responsibility, and there would be nothing novel in experience.

### THE REALIZATION OF THE SELF IN THE SOCIAL SITUATION

There is still one phase in the development of the self that needs to be presented in more detail. the realization of the self in the social situation in which it arises.

I have argued that the self appears in experience essentially as a "me" with the organization of the community to which it belongs. This organization is, of course, expressed in the particular endowment and particular social situation of the individual. He is a member of the community, but he is a particular part of the community, with a particular heredity and position which distinguishes him from anybody else. He is what he is in so far as he is a member of this community, and the raw materials out of which this particular individual is born would not be a self but for his relationship to others in the community of which he is a part Thus is he aware of himself as such, and this not only in political citizenship, or in membership in groups of which he is a part, but also from the point of view of reflective thought. He is a member of the community of the thinkers whose literature he reads and to which he may contribute by his own published thought. He belongs to a society of all rational beings, and the rationality that he identifies with himself involves a continued social interchange The widest community in which the individual finds himself, that which is everywhere, through and for everybody, is the thought world as such He is a member of such a community and he is what he is as such a member.

The fact that all selves are constituted by or in terms of the social process, and are individual reflections of it—or rather of this organized behavior pattern which it exhibits, and which

they prehend in their respective structures—is not in the least incompatible with, or destructive of, the fact that every individual self has its own peculiar individuality, its own unique pattern, because each individual self within that process, while it reflects in its organized structure the behavior pattern of that process as a whole, does so from its own particular and unique standpoint within that process, and thus reflects in its organized structure a different aspect or perspective of this whole social behavior pattern from that which is reflected in the organized structure of any other individual self within that process (just as every monad in the Leibnizian universe mirrors that universe from a different point of view, and thus mirrors a different aspect or perspective of that universe). In other words, the organized structure of every individual self within the human social process of experience and behavior reflects, and is constituted by, the organized relational pattern of that process as a whole, but each individual self-structure reflects, and is constituted by, a different aspect or perspective of this relational pattern, because each reflects this relational pattern from its own unique standpoint, so that the common social origin and constitution of individual selves and their structures does not preclude wide individual differences and variations among them, or contradict the peculiar and more or less distinctive individuality which each of them in fact possesses. Every individual self within a given society or social community reflects in its organized structure the whole relational pattern of organized social behavior which that society or community exhibits or is carrying on, and its organized structure is constituted by this pattern, but since each of these individual selves reflects a uniquely different aspect or perspective of this pattern in its structure, from its own particular and unique place or standpoint within the whole process of organized social behavior which exhibits this pattern—since, that is, each is differently or uniquely related to that whole process, and occupies its own essentially unique focus of relations therein—the structure of each is differently constituted by this pattern from the way in which the structure of any other is so constituted.

The individual, as we have seen, is continually reacting back against this society. Every adjustment involves some sort of change in the community to which the individual adjusts himself. And this change, of course, may be very important. Take even the widest community which we can present, the rational community that is represented in the so-called universal discourse Up to a comparatively recent time the form of this was that of an Aristotelian world. But men in America, England, Italy, Germany, France, have very considerably changed the structure of that world, introducing a logic of multiple relations in place of the Aristotelian relation of substance and attribute. Another fundamental change has taken place in the form of the world through the reaction of an individual—Einstein Great figures in history bring about very fundamental changes. These profound changes which take place through the action of individual minds are only the extreme expression of the sort of changes that take place steadily through reactions which are not simply those of a "me" but of an "I." These changes are changes that take place gradually and more or less imperceptibly We know that as we pass from one historical period to another there have been fundamental changes, and we know these changes are due to the reactions of different individuals. It is only the ultimate effect that we can recognize, but the differences are due to the gestures of these countless individuals actually changing the situation in which they find themselves, although the specific changes are too minute for us to identify As I have pointed out, the ego or "I" that is responsible for changes of that sort appears in experience only after its reaction has taken place. It is only after we have said the word we are saying that we recognize ourselves as the person that has said it, as this particular self that says this particular thing; it is only after we have done the thing that we are going to do that we are aware of what we are doing. However carefully we plan the future it always is different from that which we can previse, and this something that we are continually bringing in and adding to is what we identify with the self that comes into the level of our experience only in the completion of the act

In some respects, of course, we can determine what that self is going to do We can accept certain responsibilities in advance. One makes contracts and promises, and one is bound by them. The situation may change, the act may be different from that which the individual himself expected to carry out, but he is held to the contract which he has made. He must do certain things in order to remain a member of the community. In the duties of what we call rational conduct, in adjusting ourselves to a world in which the laws of nature and of economics and of political systems obtain, we can state what is going to happen and take over the responsibility for the thing we are going to do, and yet the real self that appears in that act awaits the completion of the act itself. Now, it is this living act which never gets directly into reflective experience. It is only after the act has taken place that we can catch it in our memory and place it in terms of that which we have done. It is that "I" which we may be said to be continually trying to realize, and to realize through the actual conduct itself. One does not ever get it fully before himself Sometimes somebody else can tell him something about himself that he is not aware of. He is never sure about himself, and he astonishes himself by his conduct as much as he astonishes other people.

The possibilities in our nature, those sorts of energy which William James took so much pleasure in indicating, are possibilities of the self that lie beyond our own immediate presentation. We do not know just what they are. They are in a certain sense the most fascinating contents that we can contemplate, so far as we can get hold of them. We get a great deal of our enjoyment of romance, of moving pictures, of art, in setting free, at least in imagination, capacities which belong to ourselves, or which we want to belong to ourselves. Inferiority complexes arise from those wants of a self which we should like to carry out but which we cannot—we adjust ourselves to these by the so-called inferiority complexes. The possibilities of the "I" belong to that which is actually going on, taking place, and it is in some sense the most fascinating part of our experience.

It is there that novelty arises and it is there that our most important values are located. It is the realization in some sense of this self that we are continually seeking.

## THE CONTRIBUTIONS OF THE "ME" AND THE "I"

I have been undertaking to distinguish between the "I" and the "me" as different phases of the self, the "me" answering to the organized attitudes of the others which we definitely assume and which determine consequently our own conduct so far as it is of a self-conscious character Now the "me" may be regarded as giving the form of the "I." The novelty comes in the action of the "I," but the structure, the form of the self is one which is conventional

This conventional form may be reduced to a minimum. In the artist's attitude, where there is artistic creation, the emphasis upon the element of novelty is carried to the limit. This demand for the unconventional is especially noticeable in modern art Here the artist is supposed to break away from convention, a part of his artistic expression is thought to be in the breakdown of convention. That attitude is, of course, not essential to the artistic function, and it probably never occurs in the extreme form in which it is often proclaimed Take certain of the artists of the past. In the Greek world the artists were, in a certain sense, the supreme artisans. What they were to do was more or less set by the community, and accepted by themselves, as the expression of heroic figures, certain deities, the erection of temples Definite rules were accepted as essential to the expression. And yet the artist introduced an originality into it which distinguishes one artist from another. In the case of the artist the emphasis upon that which is unconventional, that which is not in the structure of the "me," is carried as far, perhaps, as it can be carried.

This same emphasis also appears in certain types of conduct which are impulsive Impulsive conduct is uncontrolled conduct. The structure of the "me" does not there determine the expression of the "I." If we use a Freudian expression, the

"me" is in a certain sense a censor. It determines the sort of expression which can take place, sets the stage, and gives the cue. In the case of impulsive conduct this structure of the "me" involved in the situation does not furnish to any such degree this control Take the situation of self-assertion where the self simply asserts itself over against others, and suppose that the emotional stress is such that the forms of polite society in the performance of legitimate conduct are overthrown, so that the person expresses himself violently There the "me" is determined by the situation. There are certain recognized fields within which an individual can assert himself, certain rights which he has within these limits. But let the stress become too great, these limits are not observed, and an individual asserts himself in perhaps a violent fashion. Then the "I" is the dominant element over against the "me." Under what we consider normal conditions the way in which an individual acts is determined by his taking the attitude of the others in the group, but if the individual is not given the opportunity to come up against people, as a child is not who is held out of intercourse with other people, then there results a situation in which the reaction is uncontrolled.

Social control[10] is the expression of the "me" over against the expression of the "I." It sets the limits, it gives the determination that enables the "I," so to speak, to use the "me" as the means of carrying out what is the undertaking that all are interested in. Where persons are held outside or beyond that sort of organized expression there arises a situation in which social control is absent In the more or less fantastic psychology of the Freudian group, thinkers are dealing with the sexual life and with self-assertion in its violent form. The normal situation, however, is one which involves a reaction of the individual in a situation which is socially determined, but to which he brings

[10] [On the topic of social control see "The Genesis of the Self and Social Control," *International Journal of Ethics*, XXXV (1924–25), 251 ff, "The Working Hypothesis in Social Reform," *American Journal of Sociology*, V (1899–1900), 367 ff, "The Psychology of Punitive Justice," *ibid*, XXIII (1917–18), 577 ff]

his own responses as an "I." The response is, in the experience of the individual, an expression with which the self is identified. It is such a response which raises him above the institutionalized individual

As I have said before, an institution is, after all, nothing but an organization of attitudes which we all carry in us, the organized attitudes of the others that control and determine conduct Now, this institutionalized individual is, or should be, the means by which the individual expresses himself in his own way, for such individual expression is that which is identified with the self in those values which are essential to the self, and which arise from the self To speak of them as arising from the self does not attach to them the character of the selfish egoist, for under the normal conditions to which we were referring the individual is making his contribution to a common undertaking. The baseball player who makes a brilliant play is making the play called for by the nine to which he belongs He is playing for his side. A man may, of course, play the gallery, be more interested in making a brilliant play than in helping the nine to win, just as a surgeon may carry out a brilliant operation and sacrifice the patient. But under normal conditions the contribution of the individual gets its expression in the social processes that are involved in the act, so that the attachment of the values to the self does not involve egoism or selfishness. The other situation in which the self in its expression does in some sense exploit the group or society to which it belongs is one which sets up, so to speak, a narrow self which takes advantage of the whole group in satisfying itself. Even such a self is still a social affair. We distinguish very definitely between the selfish man and the impulsive man. The man who may lose his temper and knock another down may be a very unselfish man. He is not necessarily a person who would utilize a certain situation for the sake of his own interests The latter case involves the narrow self that does not relate itself to the whole social group of which it is a part.

Values do definitely attach to this expression of the self which

is peculiar to the self; and what is peculiar to the self is what it calls its own. And yet this value lies in the social situation, and would not be apart from that social situation. It is the contribution of the individual to the situation, even though it is only in the social situation that the value obtains

We seek certainly for that sort of expression which is self-expression. When an individual feels himself hedged in he recognizes the necessity of getting a situation in which there shall be an opportunity for him to make his addition to the undertaking, and not simply to be the conventionalized "me." In a person who carries out the routine job, it leads to the reaction against the machine, and to the demand that that type of routine work shall fall into its place in the whole social process There is, of course, a certain amount of real mental and physical health, a very essential part of one's life, that is involved in doing routine work. One can very well just carry out certain processes in which his contribution is very slight, in a more or less mechanical fashion, and find himself in a better position because of it. Such men as John Stuart Mill have been able to carry on routine occupations during a certain part of the day, and then give themselves to original work for the rest of the day. A person who cannot do a certain amount of stereotyped work is not a healthy individual. Both the health of the individual and the stability of society call for a very considerable amount of such work The reaction to machine industry simply calls for the restriction of the amount of time given to it, but it does not involve its total abolition Nevertheless, and granting this point, there must be some way in which the individual can express himself. It is the situations in which it is possible to get this sort of expression that seem to be particularly precious, namely, those situations in which the individual is able to do something on his own, where he can take over responsibility and carry out things in his own way, with an opportunity to think his own thoughts. Those social situations in which the structure of the "me" for the time being is one in which the individual gets an opportunity for that sort of expression of the

self bring some of the most exciting and gratifying experiences.

These experiences may take place in a form which involves degradation, or in a form which involves the emergence of higher values. The mob furnishes a situation in which the "me" is one which simply supports and emphasizes the more violent sort of impulsive expression This tendency is deeply imbedded in human nature. It is astonishing what part of the "I" of the sick is constituted by murder stories. Of course, in the story itself, it is the tracking-down of the murderer that is the focal point of interest; but that tracking-down of the murderer takes one back to the vengeance attitude of the primitive community. In the murder story one gets a real villain, runs him down, and brings him to justice. Such expressions may involve degradation of the self. In situations involving the defense of the country a mob attitude or a very high moral attitude may prevail, depending upon the individual. The situation in which one can let himself go, in which the very structure of the "me" opens the door for the "I," is favorable to self-expression I have referred to the situation in which a person can sit down with a friend and say just what he is thinking about someone else. There is a satisfaction in letting one's self go in this way The sort of thing that under other circumstances you would not say and would not even let yourself think is now naturally uttered. If you get in a group which thinks as you do then one can go to lengths which may surprise the person himself. The "me" in the above situations is definitely constituted by the social relations. Now if this situation is such that it opens the door to impulsive expression one gets a peculiar satisfaction, high or low, the source of which is the value that attaches to the expression of the "I" in the social process.

## A CONTRAST OF INDIVIDUALISTIC AND SOCIAL THEORIES OF THE SELF

The differences between the type of social psychology which derives the selves of individuals from the social process in which they are implicated and in which they empirically inter-

act with one another, and the type of social psychology which instead derives that process from the selves of the individuals involved in it, are clear The first type assumes a social process or social order as the logical and biological precondition of the appearance of the selves of the individual organisms involved in that process or belonging to that order. The other type, on the contrary, assumes individual selves as the presuppositions, logically and biologically, of the social process or order within which they interact

The difference between the social and the individual theories of the development of mind, self, and the social process of experience or behavior is analogous to the difference between the evolutionary and the contract theories of the state as held in the past by both rationalists and empiricists.[11] The latter theory takes individuals and their individual experiencing—individual minds and selves—as logically prior to the social process in which they are involved, and explains the existence of that social process in terms of them; whereas the former takes the social process of experience or behavior as logically prior to the individuals and their individual experiencing which are involved in it, and explains their existence in terms of that social process. But the latter type of theory cannot explain that which is taken as logically prior at all, cannot explain the existence of minds and selves, whereas the former type of theory can explain that which it takes as logically prior, namely, the existence of the social process of behavior, in terms of such fundamental biological or physiological relations and interactions as reproduction, or the co-operation of individuals for mutual protection or for the securing of food.

Our contention is that mind can never find expression, and

[11] Historically, both the rationalist and the empiricist are committed to the interpretation of experience in terms of the individual (1931)

Other people are there as much as we are there, to be a self requires other selves (1924)

In our experience the thing is there as much as we are here Our experience is in the thing as much as it is in us (MS)

could never have come into existence at all, except in terms of a social environment, that an organized set or pattern of social relations and interactions (especially those of communication by means of gestures functioning as significant symbols and thus creating a universe of discourse) is necessarily presupposed by it and involved in its nature. And this entirely social theory or interpretation of mind[12]—this contention that mind develops and has its being only in and by virtue of the social process of experience and activity, which it hence presupposes, and that in no other way can it develop and have its being—must be clearly distinguished from the partially (but only partially) social view of mind. On this view, though mind can get expression only within or in terms of the environment of an organized social group, yet it is nevertheless in some sense a native endowment—a congenital or hereditary biological attribute—of the individual organism, and could not otherwise exist or manifest itself in the social process at all; so that it is not itself essentially a social phenomenon, but rather is biological both in its nature and in its origin, and is social only in its characteristic manifestations or expressions. According to this latter view, moreover, the social process presupposes, and in a sense is a product of, mind; in direct contrast is our opposite view that mind presupposes, and is a product of, the social process. The advantage of our view is that it enables us to give a detailed account and actually to explain the genesis and development of mind; whereas the view that mind is a congenital biological endowment of the individual organism does not really enable us to explain its

[12] In defending a social theory of mind we are defending a functional, as opposed to any form of substantive or entitive, view as to its nature. And in particular, we are opposing all intracranial or intra-epidermal views as to its character and locus. For it follows from our social theory of mind that the field of mind must be co-extensive with, and include all the components of, the field of the social process of experience and behavior, i.e., the matrix of social relations and interactions among individuals, which is presupposed by it, and out of which it arises or comes into being. If mind is socially constituted, then the field or locus of any given individual mind must extend as far as the social activity or apparatus of social relations which constitutes it extends, and hence that field cannot be bounded by the skin of the individual organism to which it belongs.

nature and origin at all: neither what sort of biological endowment it is, nor how organisms at a certain level of evolutionary progress come to possess it[13] Furthermore, the supposition that the social process presupposes, and is in some sense a product of, mind seems to be contradicted by the existence of the social communities of certain of the lower animals, especially the highly complex social organizations of bees and ants, which apparently operate on a purely instinctive or reflex basis, and do not in the least involve the existence of mind or consciousness in the individual organisms which form or constitute them. And even if this contradiction is avoided by the admission that only at its higher levels—only at the levels represented by the social relations and interactions of human beings—does the social process of experience and behavior presuppose the existence of mind or become necessarily a product of mind, still it is hardly plausible to suppose that this already ongoing and developing process should suddenly, at a particular stage in its evolution, become dependent for its further continuance upon an entirely extraneous factor, introduced into it, so to speak, from without

The individual enters as such into his own experience only as an object, not as a subject; and he can enter as an object only on the basis of social relations and interactions, only by means of his experiential transactions with other individuals in an organized social environment. It is true that certain contents of experience (particularly kinaesthetic) are accessible only to the

[13] According to the traditional assumption of psychology, the content of experience is entirely individual and not in any measure to be primarily accounted for in social terms, even though its setting or context is a social one. And for a social psychology like Cooley's—which is founded on precisely this same assumption—all social interactions depend upon the imaginations of the individuals involved, and take place in terms of their direct conscious influences upon one another in the processes of social experience Cooley's social psychology, as found in his *Human Nature and the Social Order*, is hence inevitably introspective, and his psychological method carries with it the implication of complete solipsism society really has no existence except in the individual's mind, and the concept of the self as in any sense intrinsically social is a product of imagination Even for Cooley the self presupposes experience, and experience is a process within which selves arise, but since that process is for him primarily internal and individual rather than external and social, he is committed in his psychology to a subjectivistic and idealistic, rather than an objectivistic and naturalistic, metaphysical position

given individual organism and not to any others, and that these private or "subjective," as opposed to public or "objective," contents of experience are usually regarded as being peculiarly and intimately connected with the individual's self, or as being in a special sense self-experiences. But this accessibility solely to the given individual organism of certain contents of its experience does not affect, nor in any way conflict with, the theory as to the social nature and origin of the self that we are presenting, the existence of private or "subjective" contents of experience does not alter the fact that self-consciousness involves the individual's becoming an object to himself by taking the attitudes of other individuals toward himself within an organized setting of social relationships, and that unless the individual had thus become an object to himself he would not be self-conscious or have a self at all. Apart from his social interactions with other individuals, he would not relate the private or "subjective" contents of his experience to himself, and he could not become aware of himself as such, that is, as an individual, a person, merely by means or in terms of these contents of his experience; for in order to become aware of himself as such he must, to repeat, become an object to himself, or enter his own experience as an object, and only by social means—only by taking the attitudes of others toward himself—is he able to become an object to himself [14]

It is true, of course, that once mind has arisen in the social process it makes possible the development of that process into much more complex forms of social interaction among the component individuals than was possible before it had arisen. But there is nothing odd about a product of a given process contributing to, or becoming an essential factor in, the further development of that process. The social process, then, does not

[14] The human being's physiological capacity for developing mind or intelligence is a product of the process of biological evolution, just as is his whole organism, but the actual development of his mind or intelligence itself, given that capacity, must proceed in terms of the social situations wherein it gets its expression and import, and hence it itself is a product of the process of social evolution, the process of social experience and behavior

depend for its origin or initial existence upon the existence and interactions of selves; though it does depend upon the latter for the higher stages of complexity and organization which it reaches after selves have arisen within it.

# Part Six

## SOCIETY

### THE COMMUNITY AND THE INSTITUTION[1]

There are what I have termed "generalized social attitudes" which make an organized self possible. In the community there are certain ways of acting under situations which are essentially identical, and these ways of acting on the part of anyone are those which we excite in others when we take certain steps. If we assert our rights, we are calling for a definite response just because they are rights that are universal—a response which everyone should, and perhaps will, give. Now that response is present in our own nature; in some degree we are ready to take that same attitude toward somebody else if he makes the appeal. When we call out that response in others, we can take the attitude of the other and then adjust our own conduct to it There are, then, whole series of such common responses in the community in which we live, and such responses are what we term "institutions " The institution represents a common response on the part of all members of the community to a particular situation This common response is one which, of course, varies with the character of the individual. In the case of theft the response of the sheriff is different from that of the attorney-general, from that of the judge and the jurors, and so forth, and yet they all are responses which maintain property, which involve the recognition of the property right in others There is a common response in varied forms. And these variations, as illustrated in the different officials, have an organization which gives unity to the variety of the responses One appeals to the policeman for assistance, one expects the state's attorney to act,

[1] [See "Natural Rights and the Theory of the Political Institution," *Journal of Philosophy*, XII (1915), 141 ff]

expects the court and its various functionaries to carry out the process of the trial of the criminal. One does take the attitude of all of these different officials as involved in the very maintenance of property; all of them as an organized process are in some sense found in our own natures When we arouse such attitudes, we are taking the attitude of what I have termed a "generalized other" Such organized sets of response are related to each other; if one calls out one such set of responses, he is implicitly calling out others as well.

Thus the institutions of society are organized forms of group or social activity—forms so organized that the individual members of society can act adequately and socially by taking the attitudes of others toward these activities. Oppressive, stereotyped, and ultra-conservative social institutions—like the church—which by their more or less rigid and inflexible unprogressiveness crush or blot out individuality, or discourage any distinctive or original expressions of thought and behavior in the individual selves or personalities implicated in and subjected to them, are undesirable but not necessary outcomes of the general social process of experience and behavior There is no necessary or inevitable reason why social institutions should be oppressive or rigidly conservative, or why they should not rather be, as many are, flexible and progressive, fostering individuality rather than discouraging it In any case, without social institutions of some sort, without the organized social attitudes and activities by which social institutions are constituted, there could be no fully mature individual selves or personalities at all; for the individuals involved in the general social life-process of which social institutions are organized manifestations can develop and possess fully mature selves or personalities only in so far as each one of them reflects or prehends in his individual experience these organized social attitudes and activities which social institutions embody or represent. Social institutions, like individual selves, are developments within, or particular and formalized manifestations of, the social life-process at its human evolutionary level. As such they are not necessarily

subversive of individuality in the individual members; and they do not necessarily represent or uphold narrow definitions of certain fixed and specific patterns of acting which in any given circumstances should characterize the behavior of all intelligent and socially responsible individuals (in opposition to such unintelligent and socially irresponsible individuals as morons and imbeciles), as members of the given community or social group. On the contrary, they need to define the social, or socially responsible, patterns of individual conduct in only a very broad and general sense, affording plenty of scope for originality, flexibility, and variety of such conduct, and as the main formalized functional aspects or phases of the whole organized structure of the social life-process at its human level they properly partake of the dynamic and progressive character of that process [2]

There are a great number of institutionalized responses which are, we often say, arbitrary, such as the manners of a particular community Manners in their best sense, of course, cannot be distinguished from morals, and are nothing but the expression of the courtesy of an individual toward people about him. They ought to express the natural courtesy of everyone to everyone else. There should be such an expression, but of course a great many habits for the expression of courtesy are quite arbitrary. The ways to greet people are different in different communities; what is appropriate in one may be an offense in another. The question arises whether a certain manner which expresses a courteous attitude may be what we term "conventional." In answer to this we propose to distinguish between manners and conventions. Conventions are isolated social responses which

[2] Human society, we have insisted, does not merely stamp the pattern of its organized social behavior upon any one of its individual members, so that this pattern becomes likewise the pattern of the individual's self, it also, at the same time, gives him a mind, as the means or ability of consciously conversing with himself in terms of the social attitudes which constitute the structure of his self and which embody the pattern of human society's organized behavior as reflected in that structure And his mind enables him in turn to stamp the pattern of his further developing self (further developing through his mental activity) upon the structure or organization of human society, and thus in a degree to reconstruct and modify in terms of his self the general pattern of social or group behavior in terms of which his self was originally constituted

would not come into, or go to make up, the nature of the community in its essential character as this expresses itself in the social reactions. A source of confusion would lie in identifying manners and morals with conventions, since the former are not arbitrary in the sense that conventions are. Thus conservatives identify what is a pure convention with the essence of a social situation; nothing must be changed. But the very distinction to which I have referred is one which implies that these various institutions, as social responses to situations in which individuals are carrying out social acts, are organically related to each other in a way which conventions are not.

Such interrelation is one of the points which is brought out, for example, in the economic interpretation of history. It was first presented more or less as a party doctrine by the Marxian socialists, implying a particular economic interpretation. It has now passed over into the historian's technique with a recognition that if he can get hold of the real economic situation, which is, of course, more accessible than most social expressions, he can work out from that to the other expressions and institutions of the community. Medieval economic institutions enable one to interpret the other institutions of the period One can get at the economic situation directly and, following that out, can find what the other institutions were, or must have been. Institutions, manners, or words, present in a certain sense the life-habits of the community as such; and when an individual acts toward others in, say, economic terms, he is calling out not simply a single response but a whole group of related responses.

The same situation prevails in a physiological organism. If the balance of a person who is standing is disturbed, this calls for a readjustment which is possible only in so far as the affected parts of the nervous system lead to certain definite and interconnected responses The different parts of the reaction can be isolated, but the organism has to act as a whole. Now it is true that an individual living in society lives in a certain sort of organism which reacts toward him as a whole, and he calls out by his action this more or less organized response There is per-

haps under his attention only some very minor fraction of this organized response—he considers, say, only the passage of a certain amount of money But that exchange could not take place without the entire economic organization, and that in turn involves all the other phases of the group life. The individual can go any time from one phase to the others, since he has in his own nature the type of response which his action calls for. In taking any institutionalized attitude he organizes in some degree the whole social process, in proportion as he is a complete self

The getting of this social response into the individual constitutes the process of education which takes over the cultural media of the community in a more or less abstract way.[3] Education is definitely the process of taking over a certain organized set of responses to one's own stimulation; and until one can respond to himself as the community responds to him, he does not genuinely belong to the community He may belong to a small community, as the small boy belongs to a gang rather than to the city in which he lives We all belong to small cliques, and we may remain simply inside of them The "organized other" present in ourselves is then a community of a narrow diameter. We are struggling now to get a certain amount of international-mindedness. We are realizing ourselves as members of a larger community. The vivid nationalism of the present period should, in the end, call out an international attitude of the larger community. The situation is analogous to that of the boy and the gang, the boy gets a larger self in proportion as he enters into this larger community. In general, the self has answered definitely to that organization of the social response which constitutes the community as such, the degree to which the self is

3 [Among some eighteen notes, editorials, and articles on education attention may be called to the following "The Relation of Play to Education," *University of Chicago Record*, I (1896), 140 ff , "The Teaching of Science in College," *Science*, XXIV (1906), 390 ff , "Psychology of Social Consciousness Implied in Instruction," *ibid* , XXXI (1910), 688 ff , "Industrial Education and Trade Schools," *Elementary School Teacher*, VIII (1908), 402 ff , "Industrial Education and the Working Man and the School," *ibid* , IX (1909), 369 ff , "On the Problem of History in the Elementary School," *ibid* , 433, "Moral Training in the Schools," *ibid* , 327 ff , "Science in the High School," *School Review*, XIV (1906), 237 ff ]

developed depends upon the community, upon the degree to which the individual calls out that institutionalized group of responses in himself The criminal as such is the individual who lives in a very small group, and then makes depredations upon the larger community of which he is not a member. He is taking the property that belongs to others, but he himself does not belong to the community that recognizes and preserves the rights of property

There is a certain sort of organized response to our acts which represents the way in which people react toward us in certain situations. Such responses are in our nature because we act as members of the community toward others, and what I am emphasizing now is that the organization of these responses makes the community possible.

We are apt to assume that our estimate of the value of the community should depend upon its size. The American worships bigness as over against qualitative social content A little community such as that of Athens produced some of the greatest spiritual products which the world has ever seen; contrast its achievements with those of the United States, and there is no need to ask whether the mere bigness of the one has any relationship to the qualitative contents of the achievements of the other I wish to bring out the implicit universality of the highly developed, highly organized community. Now, Athens as the home of Socrates, Plato, and Aristotle, the seat of a great metaphysical development in the same period, the birthplace of political theorists and great dramatists, actually belongs to the whole world. These qualitative achievements which we ascribe to a little community belong to it only in so far as it has the organization that makes it universal The Athenian community rested upon slave labor and upon a political situation which was narrow and contracted, and that part of its social organization was not universal and could not be made the basis for a large community The Roman Empire disintegrated very largely because its whole economic structure was laid on the basis of slave labor It was not organized on a universal basis. From the legal

standpoint and administrative organization it was universal, and just as Greek philosophy has come down to us so has Roman law To the degree that any achievement of organization of a community is successful it is universal, and makes possible a bigger community. In one sense there cannot be a community which is larger than that represented by rationality, and the Greek brought rationality to its self-conscious expression [4] In that same sense the gospel of Jesus brought definitely to expression the attitude of neighborliness to which anyone could appeal, and provided the soil out of which could arise a universal religion. That which is fine and admirable is universal —although it may be true that the actual society in which the universality can get its expression has not arisen.

Politically, America has, in a certain sense, given universality to what we term "self-government" The social organization of the Middle Ages existed under feudalism and craft guilds. The immediate social organizations in which there was self-government were all particular provisional guilds or particular communities What has happened in America is that we have generalized the principle of self-government so that it is the essential agency of political control of the whole community If that type of control is made possible there is theoretically no limit to the size of the community. In that sense alone would

[4] Plato held that the city-state was the best—if not, indeed, the only practicable or feasible—type of state or social organization, and Aristotle agreed According to Plato, moreover, the complete social isolation of any one city-state from the rest of the world was desirable Aristotle, on the other hand, did recognize the necessity for social interrelations among different city-states, or between any one city-state and the rest of the civilized world, but he could not discover a general principle in terms of which those interrelations could be determined without disastrously damaging or vitiating the political and social structure of the city-state itself, and this structure he wished, as did Plato, to preserve That is to say, he was unable to get hold of a fundamental principle in terms of which the social and political organization of the Greek city-state could be generalized to apply to the interrelations between several such states within a single social whole, like the Alexandrian empire, in which they were all included as units, or to apply to that social whole or empire itself, and especially to apply to such a social whole or empire even if it did not contain city-states as its units If we are right, this fundamental principle which he was unable to discover was simply the principle of social integration and organization in terms of rational selves, and of their reflection, in their respective organized structures, of the patterns of organized social behavior in which they are involved and to which they owe their existence

political bigness become an expression of the achievement of the community itself.

### DEMOCRACY AND UNIVERSALITY IN SOCIETY

There is in human society a universality that expresses itself very early in two different ways—one on the religious side and the other on the economic side These processes as social processes are universal. They provide ends which any form that makes use of the same medium of communication can enter upon. If a gorilla could bring cocoanuts and exchange them in some sort of market for something he might conceivably want, he would enter into the economic social organization in its widest phase. All that is necessary is that the animal should be able to utilize that method of communication which involves, as we have seen, the existence of a self. On the other hand, any individual that can regard himself as a member of a society in which he is—to use a familiar phrase—a neighbor of the other, also belongs to such a universal group. These religious and economic expressions of universality we find developing in one form or another in the Roman Empire, in India, and in China. In the outgrowth of the Empire into Christianity we find a form of propaganda issuing in the deliberate attempt to organize this sort of universal society.

If evolution is to take place in such a society, it would take place between the different organizations, so to speak, within this larger organism. There would not simply be a competition of different societies with each other, but competition would lie in the relationship of this or that society to the organization of a universal society. In the case of the universal religions we have such forms as that of the Mohammedan, which undertook by the force of the sword to wipe out all other forms of society, and so found itself in opposition to other communities which it undertook either to annihilate or to subordinate to itself. On the other hand, we have the propaganda represented by Christianity and Buddhism, which merely undertook to bring the various individuals into a certain spiritual group in which they would

recognize themselves as members of one society. This undertaking inevitably bound itself up with the political structure, especially in the case of Christianity, and back of that lies the assumption, which found its expression in missionary undertakings, that this social principle, this recognition of the brotherhood of men, is the basis for a universal society.

If we look at the economic proceedings, there is no such propaganda as this, no assumption of a single economic society that is undertaking to establish itself An economic society defines itself in so far as one individual may trade with others, and then the very processes themselves go on integrating, bringing a closer and closer relationship between communities which may be definitely opposed to each other politically The more complete economic texture appears in the development of trading itself and the development of a financial medium by means of which such trading is carried on, and there is an inevitable adjustment of the production in one community to the needs of the international economic community. There is a development which starts with the lowest sort of universal society and in which the original abstractness gives way to a more and more concrete social organization. From both of these standpoints there is a universal society that includes the whole human race, and into which all can so far enter into relationship with others through the medium of communication. They can recognize others as members, and as brothers.

Such communities are inevitably universal in their character. The processes expressed in the universal religion inevitably carry with them that of the logical community represented by the universe of discourse, a community based simply on the ability of all individuals to converse with each other through use of the same significant symbols. Language provides a universal community which is something like the economic community. It is there in so far as there are common symbols that can be utilized We see such symbols in the bare signs by means of which savage tribes who do not speak the same language can communicate. They find some common language in the use of

the fingers, or in symbolic drawings. They attain some sort of ability to communicate, and such a process of communication has the tendency to bring the different individuals into closer relationship with each other. The linguistic process is in one sense more abstract than the economic process. The economic process, starting off with bare exchange, turns over the surplus of one individual in return for the surplus of another individual. Such processes reflect back at once to the process of production and more or less inevitably stimulate that sort of production which leads to profitable exchange. When we come to bare intercourse on the basis of significant symbols, the process by itself perhaps does not tend to such an integration, but this process of communication will carry or tend to carry with it the very processes in which it has served as a medium.

A person learns a new language and, as we say, gets a new soul. He puts himself into the attitude of those that make use of that language He cannot read its literature, cannot converse with those that belong to that community, without taking on its peculiar attitudes. He becomes in that sense a different individual. You cannot convey a language as a pure abstraction; you inevitably in some degree convey also the life that lies behind it. And this result builds itself into relationship with the organized attitudes of the individual who gets this language and inevitably brings about a readjustment of views. A community of the Western world with its different nationalities and different languages is a community in which there will be a continued interplay of these different groups with each other. One nation cannot be taken simply by itself, but only in its relationship to the other groups which belong to the larger whole.

The universe of discourse which deals simply with the highest abstractions opens the door for the interrelationship of the different groups in their different characters. The universe of discourse within which people can express themselves makes possible the bringing-together of those organized attitudes which represent the life of these different communities into such rela-

tionship that they can lead to a higher organization. The very universality of the processes which belong to human society, whether looked at from the point of view of religion or trading or logical thinking, at least opens the door to a universal society, and, in fact, these tendencies all express themselves where the social development has gone far enough to make it possible.

The political expression of this growth of universality in society is signalized in the dominance of one group over other groups. The earliest expression of this is in the empires of the valleys of the Nile, the Tigris, and the Euphrates. Different communities came in competition with each other, and in such competition is found a condition for the development of the empire There is not simply the conflict of one tribe with another which undertakes to wipe out the other, but rather that sort of conflict which leads to the dominance of one group over another by the maintenance of the other group. It is of importance to notice this difference when it signalizes the expression of self-consciousness reached through a realization of one's self in others. In a moment of hostility or fierce anger the individual or the community may seek simply to wipe out its enemies But the dominant expression in terms of the self has been, even on the part of a militaristic society, rather that of subjection, of a realization of the self in its superiority to and exploitation of the other. This attitude of mind is an entirely different attitude from that of the mere wiping-out of one's enemies. There is, from this point of view at least, a definite achievement on the part of the individual of a higher self in his overcoming of the other and holding the other in subjection

The sense of national prestige is an expression of that self-respect which we tend to preserve in the maintenance of superiority over other people. One does get the sense of one's self by a certain feeling of superiority to others, and that this is fundamental in the development of the self was recognized by Wundt. It is an attitude which passes over, under what we consider higher conditions, into the just recognition of the capacity of

the individual in his own fields The superiority which the person now has is not a superiority over the other, but is grounded in that which he can do in relation to the functions and capacity of others. The development of the expert who is superior in the performance of his functions is of a quite different character from the superiority of the bully who simply realizes himself in his ability to subordinate somebody to himself The person who is competent in any particular field has a superiority which belongs to that which he himself can do and which perhaps someone else cannot do It gives him a definite position in which he can realize himself in the community. He does not realize himself in his simple superiority to someone else, but in the function which he can carry out, and in so far as he can carry it out better than anyone else he gets a sense of prestige which we recognize as legitimate, as over against the other form of self-assertion which from the standpoint of our highest sense of social standards is felt to be illegitimate.

Communities may stand in this same kind of relation to each other There is the sense of pride of the Roman in his administrative capacity as well as in his martial power, in his capacity to subjugate all the people around the Mediterranean world and to administer them. The first attitude was that of subjugation, and then came the administrative attitude which was more of the type to which I have already referred as that of functional superiority. It was that which Virgil expressed in his demand that the Roman should realize that in his ruling he was possessed with the capacity for administration. This capacity made the Roman Empire entirely different from the earlier empires, which carried nothing but brute strength behind them The passage in that case is from a sense of political superiority and prestige expressed in a power to crush, over into a power to direct a social undertaking in which there is a larger co-operative activity. The political expression starts off with a bare self-assertion, coupled with a military attitude, which leads to the wiping-out of the other, but which leads on, or may lead on, to the development of a higher community, where dominance takes

the form of administration. Conceivably, there may appear a larger international community than the empire, organized in terms of function rather than of force

The bringing-together of the attitude of universal religion on the one hand and the widening political development on the other has been given its widest expression in democracy. There is, of course, a democracy such as that of the Greek cities in which the control is simply the control of the masses in their opposition to certain economically and politically powerful classes. There are, in fact, various forms of democratic government; but democracy, in the sense here relevant, is an attitude which depends upon the type of self which goes with the universal relations of brotherhood, however that be reached. It received its expression in the French Revolution in the conception of fraternity and union. Every individual was to stand on the same level with every other This conception is one which received its first expression in the universal religions If carried over into the field of politics, it can get its expression only in such a form as that of democracy, and the doctrine that lies behind it is very largely Rousseau's conception, as found in the *Social Contract*

The assumption there is of a society in which the individual maintains himself as a citizen only to the degree that he recognizes the rights of everyone else to belong to the same community With such a universality, such a uniformity of interests, it would be possible for the masses of the community to take the attitude of the sovereign while he also took the attitude of the subjects. If the will of each one was the will of all, then the relationship of subject and sovereign could be embodied in all the different individuals. We get what Rousseau referred to as the "general will of the community" only when as a man is able to realize himself by recognizing others as belonging to the same political organization as himself.[5]

[5] If you can make your demand universal, if your right is one that carries with it a corresponding obligation, then you recognize the same right in everyone else, and you can give a law, so to speak, in the terms of all the community So there can be a general will in terms of the individual because everyone else is expressing the same thing There then arises a community in which everyone can be both sovereign and subject, sovereign

That conception of democracy is in itself as universal as religion, and the appearance of this political movement was essentially religious in so far as it had the gospel of Rousseau behind it. It proceeded also with a sense of propaganda. It undertook to overthrow the old organization of society and substitute its own form of society in its place In that sense these two factors—one the dominance of the individual or group over other groups, the other the sense of brotherhood and identity of different individuals in the same group—came together in the democratic movement, and together they inevitably imply a universal society, not only in a religious sense, but ultimately in a political sense as well. This gets an expression in the League of Nations, where every community recognizes every other community in the very process of asserting itself. The smallest community is in a position to express itself just because it recognizes the right of every other nation to do the same.

What is involved in the development of a universal society is just such a functional organization as we find in economic development. The economic development is one which starts off on the basis of the exchange. You offer what you do not want in exchange for something which another does not want. That is abstract. But after you find you can produce something you do not want and exchange it for something you want, you stimulate by that action a functional development. You are stimulating one group to produce this and another to produce that; and you are also controlling the economic process, because one will not continue to produce more than can be offered in exchange on the market. The sort of thing ultimately produced will be that which answers to the demand of the customer. In the resulting functional organization one develops an economic personality of a certain sort which has its own sense of superiority but which is used in the carrying-out of its particular function in relation to the others in the group. There can be a self-

---

in so far as he asserts his own rights and recognizes them in others, and subject in that he obeys the laws which he himself makes (1927).

consciousness based on the ability to manufacture something better than anybody else; but it can maintain its sense of superiority only when it adjusts itself to the community that needs the products in this process of interchange In such a situation there is a tendency toward functional development, a functional development which may take place even in the political domain.

It might seem that the functional aspect is contradictory to the ends of democracy in so far as it considers the individual in relation to a whole and in that way ignores the individual, and that, accordingly, real democracy must express itself more in the tone of the religious attitude and in making secondary the functional aspect. If we go back to the ideal of democracy as presented in the French Revolution, we do reach just such a sort of conflict There you have recognition of quality, you demand in yourself what you recognize in others, and that does provide the basis for a social structure But when you consider the functional expression of that time there is not the same sort of equality. However, equality in a functional sense is possible, and I do not see any reason why it should not carry with it as deep a sense of the realization of the other in one's self as the religious attitude. A physician who through his superior skill can save the life of an individual can realize himself in regard to the person he has benefited. I see no reason why this functional attitude should not express itself in the realization of one's self in the other. The basis of spiritual expression is the ability to realize one's self in the many, and that certainly is reached in the social organization. It seems to me that the apparent conflict under consideration refers to the abstract and preliminary development of the functional organization. Until that functional organization is fully carried out, there is the opportunity for exploitation of the individual; but with the full development of such organization we should get a higher spiritual expression in which the individual realizes himself in others through that which he does as peculiar to himself.[6]

[6] [For a discussion of pragmatism in relation to the American scene see "The Philosophies of Royce, James, and Dewey in their American Setting," *International Jour-*

## CONFLICT AND INTEGRATION

I have been emphasizing the continued integration of the social process, and the psychology of the self which underlies and makes possible this process. A word now as to the factors of conflict and disintegration. In the baseball game there are competing individuals who want to get into the limelight, but this can only be attained by playing the game Those conditions do make a certain sort of action necessary, but inside of them there can be all sorts of jealously competing individuals who may wreck the team There seems to be abundant opportunity for disorganization in the organization essential to the team. This is so to a much larger degree in the economic process. There has to be distribution, markets, mediums of exchange; but within that field all kinds of competition and disorganizations are possible, since there is an "I" as well as a "me" in every case

Historical conflicts start, as a rule, with a community which is socially pretty highly organized. Such conflicts have to arise between different groups where there is an attitude of hostility to others involved. But even here a wider social organization is usually the result, there is, for instance, an appearance of the tribe over against the clan. It is a larger, vaguer organization, but still it is there. This is the sort of situation we have at the present time, over against the potential hostility of nations to each other, they recognize themselves as forming some sort of community, as in the League of Nations.

The fundamental socio-physiological impulses or behavior tendencies which are common to all human individuals, which lead those individuals collectively to enter or form themselves into organized societies or social communities, and which constitute the ultimate basis of those societies or social communities, fall, from the social point of view, into two main classes: those which lead to social co-operation, and those which lead to

---

*nal of Ethics*, XL (1930), 211 ff , for historical genesis of pragmatism, see *Movements of Thought in the Nineteenth Century* ]

social antagonism among individuals; those which give rise to friendly attitudes and relations, and those which give rise to hostile attitudes and relations, among the human individuals implicated in the social situations. We have used the term "social" in its broadest and strictest sense, but in that quite common narrower sense, in which it bears an ethical connotation, only the fundamental physiological human impulses or behavior tendencies of the former class (those which are friendly, or which make for friendliness and co-operation among the individuals motivated by them) are "social" or lead to "social" conduct; whereas those impulses or behavior tendencies of the latter class (those which are hostile, or which make for hostility and antagonism among the individuals motivated by them) are "anti-social" or lead to "anti-social" conduct. Now it is true that the latter class of fundamental impulses or behavior tendencies in human beings are "anti-social" in so far as they would, by themselves, be destructive of all human social organization, or could not, alone, constitute the basis of any organized human society; yet in the broadest and strictest non-ethical sense they are obviously no less social than are the former class of such impulses or behavior tendencies. They are equally common to, or universal among, all human individuals, and, if anything, are more easily and immediately aroused by the appropriate social stimuli; and as combined or fused with, and in a sense controlled by, the former impulses or behavior tendencies, they are just as basic to all human social organization as are the former, and play a hardly less necessary and significant part in that social organization itself and in the determination of its general character Consider, for example, from among these "hostile" human impulses or attitudes, the functioning or expression or operation of those of self-protection and self-preservation in the organization and organized activities of any given human society or social community, let us say, of a modern state or nation. Human individuals realize or become aware of themselves as such, almost more easily and readily in terms of the social attitudes connected or associated with these two "hostile" im-

pulses (or in terms of these two impulses as expressed in these attitudes) than they do in terms of any other social attitudes or behavior tendencies as expressed by those attitudes. Within the social organization of a state or nation the "anti-social" effects of these two impulses are curbed and kept under control by the legal system which is one aspect of that organization; these two impulses are made to constitute the fundamental principles in terms of which the economic system, which is another aspect of that organization, operates; as combined and fused with, and organized by means of the "friendly" human impulses—the impulses leading to social co-operation among the individuals involved in that organization—they are prevented from giving rise to the friction and enmity among those individuals which would otherwise be their natural consequence, and which would be fatally detrimental to the existence and well-being of that organization; and having thus been made to enter as integral elements into the foundations of that organization, they are utilized by that organization as fundamental impulsive forces in its own further development, or they serve as a basis for social progress within its relational framework. Ordinarily, their most obvious and concrete expression or manifestation in that organization lies in the attitudes of rivalry and competition which they generate inside the state or nation as a whole, among different socially functional subgroups of individuals—subgroups determined (and especially economically determined) by that organization; and these attitudes serve definite social ends or purposes presupposed by that organization, and constitute the motives of functionally necessary social activities within that organization. But self-protective and self-preservational human impulses also express or manifest themselves indirectly in that organization, by giving rise through their association in that organization with the "friendly" human impulses, to one of the primary constitutive ideals or principles or motives of that organization—namely, the affording of social protection, and the lending of social assistance, to the individual by the state in the conduct of his life, and by enhancing the efficacy,

for the purposes of that organization, of the "friendly" human impulses with a sense or realization of the possibility and desirability of such organized social protection and assistance to the individual. Moreover, in any special circumstances in which the state or nation is, as a whole, confronted by some danger common to all its individual members, they become fused with the "friendly" human impulses in those individuals, in such a way as to strengthen and intensify in those individuals the sense of organized social union and co-operative social interrelationship among them in terms of the state; in such circumstances, so far from constituting forces of disintegration or destruction within the social organization of the state or nation, they become, indirectly, the principles of increased social unity, coherence, and co-ordination within that organization. In time of war, for example, the self-protective impulse in all the individual members of the state is unitedly directed against their common enemy and ceases, for the time being, to be directed among themselves, the attitudes of rivalry and competition which that impulse ordinarily generates between the different smaller, socially functional groups of those individuals within the state are temporarily broken down; the usual social barriers between these groups are likewise removed, and the state presents a united front to the given common danger, or is fused into a single unity in terms of the common end shared by, or reflected in, the respective consciousnesses of all its individual members. It is upon these war-time expressions of the self-protective impulse in all the individual members of the state or nation that the general efficacy of national appeals to patriotism is chiefly based.

Further, in those social situations in which the individual self feels dependent for his continuation or continued existence upon the rest of the members of the given social group to which he belongs, it is true that no feeling of superiority on his part toward those other members of that group is necessary to his continuation or continued existence. But in those social situations in which he cannot, for the time being, integrate his social

relations with other individual selves into a common, unitary pattern (i.e., into the behavior pattern of the organized society or social community to which he belongs, the social behavior pattern that he reflects in his self-structure and that constitutes this structure), there ensues, temporarily (i.e., until he can so integrate his social relations with other individual selves), an attitude of hostility, of "latent opposition," on his part toward the organized society or social community of which he is a member; and during that time the given individual self must "call in" or rely upon the feeling of superiority toward that society or social community, or toward its other individual members, in order to buoy himself up and "keep himself going" as such. We always present ourselves to ourselves in the most favorable light possible; but since we all have the job of keeping ourselves going, it is quite necessary that if we are to keep ourselves going we should thus present ourselves to ourselves.

A highly developed and organized human society is one in which the individual members are interrelated in a multiplicity of different intricate and complicated ways whereby they all share a number of common social interests,—interests in, or for the betterment of, the society—and yet, on the other hand, are more or less in conflict relative to numerous other interests which they possess only individually, or else share with one another only in small and limited groups. Conflicts among individuals in a highly developed and organized human society are not mere conflicts among their respective primitive impulses but are conflicts among their respective selves or personalities, each with its definite social structure—highly complex and organized and unified—and each with a number of different social facets or aspects, a number of different sets of social attitudes constituting it. Thus, within such a society, conflicts arise between different aspects or phases of the same individual self (conflicts leading to cases of split personality when they are extreme or violent enough to be psychopathological), as well as between different individual selves. And both these types of in-

dividual conflict are settled or terminated by reconstructions of the particular social situations, and modifications of the given framework of social relationships, wherein they arise or occur in the general human social life-process—these reconstructions and modifications being performed, as we have said, by the minds of the individuals in whose experience or between whose selves these conflicts take place

Mind, as constructive or reflective or problem-solving thinking, is the socially acquired means or mechanism or apparatus whereby the human individual solves the various problems of environmental adjustment which arise to confront him in the course of his experience, and which prevent his conduct from proceeding harmoniously on its way, until they have thus been dealt with. And mind or thinking is also—as possessed by the individual members of human society—the means or mechanism or apparatus whereby social reconstruction is effected or accomplished by these individuals For it is their possession of minds or powers of thinking which enables human individuals to turn back critically, as it were, upon the organized social structure of the society to which they belong (and from their relations to which their minds are in the first instance derived), and to reorganize or reconstruct or modify that social structure to a greater or less degree, as the exigencies of social evolution from time to time require. Any such social reconstruction, if it is to be at all far-reaching, presupposes a basis of common social interests shared by all the individual members of the given human society in which that reconstruction occurs; shared, that is, by all the individuals whose minds must participate in, or whose minds bring about, that reconstruction. And the way in which any such social reconstruction is actually effected by the minds of the individuals involved is by a more or less abstract intellectual extension of the boundaries of the given society to which these individuals all belong, and which is undergoing the reconstruction—an extension resulting in a larger social whole in terms of which the social conflicts that necessitate the reconstruction of the given society are harmonized or reconciled, and

by reference to which, accordingly, these conflicts can be solved or eliminated.[7]

The changes that we make in the social order in which we are implicated necessarily involve our also making changes in ourselves The social conflicts among the individual members of a given organized human society, which, for their removal, necessitate conscious or intelligent reconstructions and modifications of that society by those individuals, also and equally necessitate such reconstructions or modifications by those individuals of their own selves or personalities Thus the relations between social reconstruction and self or personality reconstruction are reciprocal and internal or organic, social reconstruction by the individual members of any organized human society entails self or personality reconstruction in some degree or other by each of these individuals, and vice versa, for, since their selves or personalities are constituted by their organized social relations to one another, they cannot reconstruct those selves or personalities without also reconstructing, to some extent, the given social order, which is, of course, likewise constituted by their organized social relations to one another. In both types of reconstruction the same fundamental material of organized social relations among human individuals is involved, and is simply treated in different ways, or from different angles or points of view, in the two cases, respectively, or in short, social reconstruction and self or personality reconstruction are the two sides of a single process—the process of human social evolution. Human social progress involves the use by human individuals of their socially derived mechanism of self-consciousness, both in the effecting of such progressive social changes, and also in the development

[7] The reflexive character of self-consciousness enables the individual to contemplate himself as a whole, his ability to take the social attitudes of other individuals and also of the generalized other toward himself, within the given organized society of which he is a member, makes possible his bringing himself, as an objective whole, within his own experiential purview, and thus he can consciously integrate and unify the various aspects of his self, to form a single consistent and coherent and organized personality Moreover, by the same means, he can undertake and effect intelligent reconstructions of that self or personality in terms of its relations to the given social order, whenever the exigencies of adaptation to his social environment demand such reconstructions

of their individual selves or personalities in such a way as adaptively to keep pace with such social reconstruction.

Ultimately and fundamentally societies develop in complexity of organization only by means of the progressive achievement of greater and greater degrees of functional, behavioristic differentiation among the individuals who constitute them, these functional, behavioristic differentiations among the individual members implying or presupposing initial oppositions among them of individual needs and ends, oppositions which in terms of social organization, however, are or have been transformed into these differentiations, or into mere specializations of socially functional individual behavior.

The human social ideal—the ideal or ultimate goal of human social progress—is the attainment of a universal human society in which all human individuals would possess a perfected social intelligence, such that all social meanings would each be similarly reflected in their respective individual consciousnesses—such that the meanings of any one individual's acts or gestures (as realized by him and expressed in the structure of his self, through his ability to take the social attitudes of other individuals toward himself and toward their common social ends or purposes) would be the same for any other individual whatever who responded to them.

The interlocking interdependence of human individuals upon one another within the given organized social life-process in which they are all involved is becoming more and more intricate and closely knit and highly organized as human social evolution proceeds on its course. The wide difference, for example, between the feudal civilization of medieval times, with its relatively loose and disintegrated social organization, and the national civilization of modern times, with its relatively tight and integrated social organization (together with its trend of development toward some form of international civilization), exhibits the constant evolution of human social organization in the direction of greater and greater relational unity and complexity, more and more closely knit interlocking and inte-

grated unifying of all the social relations of interdependence which constitute it and which hold among the individuals involved in it.

### OBSTACLES AND PROMISES IN THE DEVELOPMENT OF THE IDEAL SOCIETY

We have presented the self from the side of experience; it arises through co-operative activity; it is made possible through the identical reactions of the self and others. In so far as the individual can call out in his own nature these organized responses and so take the attitude of the other toward himself, he can develop self-consciousness, a reaction of the organism to itself. On the other hand, we have seen that an essential moment in this process is the response of the individual to this reaction which does contain the organized group, that which is common to all, that which is called the "me" If individuals are so distinguished from each other that they cannot identify themselves with each other, if there is not a common basis, then there cannot be a whole self present on either side.

Such a distinction, for example, does lie between the infant and the human society in which he enters. He cannot have the whole self-consciousness of the adult; and the adult finds it difficult, to say the least, to put himself into the attitude of the child. That is not, however, an impossible thing, and our development of modern education rests on this possibility of the adult finding a common basis between himself and the child Go back into the literature in which children are introduced in the sixteenth, seventeenth, and even eighteenth centuries, and you find children treated as little adults; the whole attitude toward them from the point of view of morals, as well as training, was that they were adults who were somewhat deficient and needed to be disciplined in order to get them into the proper attitude. That which they were to learn was to be brought to them in the form in which an adult makes use of the knowledge. It was not until the last century that there was a definite undertaking on the part of those interested in the education of children to enter

into the experience of the child and to regard it with any respect.

Even in the society erected on the basis of castes there are some common attitudes, but they are very restricted in number, and as they are restricted they cut down the possibility of the full development of the self. What is necessary under those circumstances to get such a self is a withdrawal from that caste order. The medieval period in which there was a definite caste organization of society, with serfs, overlords, and ecclesiastical distinctions, presents a situation in which the attainment of membership in the spiritual community required the withdrawal of the individual from the society as ordered in the caste fashion. Such is at least a partial explanation of the cloistered life, and of asceticism. The same thing is revealed in the development of saints in other communities who withdraw from the social order, and get back to some sort of a society in which these castes as such are mediated or absent. The development of the democratic community implies the removal of castes as essential to the personality of the individual; the individual is not to be what he is in his specific caste or group set over against other groups, but his distinctions are to be distinctions of functional difference which put him in relationship with others instead of separating him [8]

The caste distinction of the early warrior class was one which separated its members from the community. Their characters as soldiers differentiated them from the other members of the community; they were what they were because they were es-

[8] In so far as specialization is normal and helpful, it increases concrete social relations Differences in occupation do not themselves build up castes The caste has arisen through the importation of the outsider into the group, just as the animal is brought in, when through the conception of property he can be made useful The element of hostility toward the person outside the group is essential to the development of the caste Caste in India arose out of conquest It always involves the group enemy, when that has been imported into the group, so that I should not myself agree with Cooley that hereditary transmission of differentiated occupation produces castes

The caste system breaks down as the human relations become more concrete . . Slaves pass over into serfs, peasants, artisans, citizens In all these stages you have an increase of relations In the ideal condition separation from the point of view of caste will become social function from the point of view of the group. . . Democratic consciousness is generated by differences of functions (1912).

sentially different from others. Their activity separated them from the community. They even preyed upon the community which they were supposed to be defending, and would do so inevitably because their activity was essentially a fighting activity. With the development of the national army which took place at the beginning of the nineteenth century, there was the possibility of everyone's being a warrior, so that the man who was a fighting man was still a person who could identify himself with the other members of the community; he had their attitudes and they had the attitude of the fighting man. Thus the normal relationship between the fighting man and the rest of the community was one which bound people together, integrated the army and the body of the state, instead of separating them. The same progression is found in the other castes, such as the governing as over against the governed, an essential difference which made it impossible for the individual of that particular group to identify himself with the others, or the others to identify themselves with him The democratic order undertakes to wipe that difference out and to make everyone a sovereign and everyone a subject One is to be a subject to the degree that he is a sovereign. He is to undertake to administer rights and maintain them only in so far as he recognizes those rights in others. And so one might go on through other caste divisions.

Ethical ideas, within any given human society, arise in the consciousness of the individual members of that society from the fact of the common social dependence of all these individuals upon one another (or from the fact of the common social dependence of each one of them upon that society as a whole or upon all the rest of them), and from their awareness or sensing or conscious realization of this fact. But ethical problems arise for individual members of any given human society whenever they are individually confronted with a social situation to which they cannot readily adjust and adapt themselves, or in which they cannot easily realize themselves, or with which they cannot immediately integrate their own behavior, and the feeling in them which is concomitant with their facing and solution of

such problems (which are essentially problems of social adjustment and adaptation to the interests and conduct of other individuals) is that of self-superiority and temporary opposition to other individuals. In the case of ethical problems, our social relationships with other individual members of the given human society to which we belong depend upon our opposition to them, rather than, as in the case of the development or formulation of ethical ideals, upon our unity, co-operation, and identification with them. Every human individual must, to behave ethically, integrate himself with the pattern of organized social behavior which, as reflected or prehended in the structure of his self, makes him a self-conscious personality Wrong, evil, or sinful conduct on the part of the individual runs counter to this pattern of organized social behavior which makes him, as a self, what he is, just as right, good, or virtuous behavior accords with this pattern; and this fact is the basis of the profound ethical feeling of conscience—of "ought" and "ought not"—which we all have, in varying degrees, respecting our conduct in given social situations. The sense which the individual self has of his dependence upon the organized society or social community to which he belongs is the basis and origin, in short, of his sense of duty (and in general of his ethical consciousness); and ethical and unethical behavior can be defined essentially in social terms: the former as behavior which is socially beneficial or conducive to the well-being of society, the latter as behavior which is socially harmful or conducive to the disruption of society. From another point of view, ethical ideals and ethical problems may be considered in terms of the conflict between the social and the asocial (the impersonal and the personal) sides or aspects of the individual self. The social or impersonal aspect of the self integrates it with the social group to which it belongs and to which it owes its existence; and this side of the self is characterized by the individual's feeling of co-operation and equality with the other members of that social group. The asocial or personal aspect of the self (which, nevertheless, is also and equally social, fundamentally in the sense of

being socially derived or originated and of existentially involving social relations with other individuals, as much as the impersonal aspect of the self is and does), on the other hand, differentiates it from, or sets it in distinctive and unique opposition to, the other members of the social group to which it belongs, and this side of the self is characterized by the individual's feeling of superiority toward the other members of that group. The "social" aspect of human society—which is simply the social aspect of the selves of all individual members taken collectively—with its concomitant feelings on the parts of all these individuals of co-operation and social interdependence, is the basis for the development and existence of ethical ideals in that society, whereas the "asocial" aspect of human society—which is simply the asocial aspect of the selves of all individual members taken collectively—with its concomitant feelings on the parts of all these individuals of individuality, self-superiority to other individual selves, and social independence, is responsible for the rise of ethical problems in that society. These two basic aspects of each single individual self are, of course, responsible in the same way or at the same time for the development of ethical ideals and the rise of ethical problems in the individual's own experience as opposed to the experience of human society as a whole, which is obviously nothing but the sum-total of the social experiences of all its individual members.

Those social situations in which the individual finds it easiest to integrate his own behavior with the behavior of the other individual selves are those in which all the individual participants are members of some one of the numerous socially functional groups of individuals (groups organized, respectively, for various special social ends and purposes) within the given human society as a whole; and in which he and they are acting in their respective capacities as members of this particular group. (Every individual member of any given human society, of course, belongs to a large number of such different functional groups.) On the other hand, those social situations in which the individual finds it most difficult to integrate his own be-

havior with the behavior of others are those in which he and they are acting as members, respectively, of two or more different socially functional groups: groups whose respective social purposes or interests are antagonistic or conflicting or widely separated. In social situations of the former general type each individual's attitude toward the other individuals is essentially social; and the combination of all these social attitudes toward one another of the individuals represents, or tends to realize more or less completely, the ideal of any social situation respecting organization, unification, co-operation, and integration of the behavior of the several individuals involved. In any social situation of this general type the individual realizes himself as such in his relation to all the other members of the given socially functional group and realizes his own particular social function in its relations to the respective functions of all other individuals. He takes or assumes the social attitudes of all these other individuals toward himself and toward one another, and integrates himself with that situation or group by controlling his own behavior or conduct accordingly; so that there is nothing in the least competitive or hostile in his relations with these other individuals. In social situations of the latter general type on the other hand, each individual's attitude toward the other individuals is essentially asocial or hostile (though these attitudes are of course social in the fundamental non-ethical sense, and are socially derived); such situations are so complex that the various individuals involved in any one of them either cannot be brought into common social relations with one another at all or else can be brought into such relations only with great difficulty, after long and tortuous processes of mutual social adjustment; for any such situation lacks a common group or social interest shared by all the individuals—it has no one common social end or purpose characterizing it and serving to unite and co-ordinate and harmoniously interrelate the actions of all those individuals; instead, those individuals are motivated, in that situation, by several different and more or less conflicting social interests or purposes. Examples of social

situations of this general type are those involving interactions or relations between capital and labor, i.e., those in which some of the individuals are acting in their socially functional capacity as members of the capitalistic class, which is one economic aspect of modern human social organization; whereas the other individuals are acting in their socially functional capacity as members of the laboring class, which is another (and in social interests directly opposed) economic aspect of that social organization. Other examples of social situations of this general type are those in which the individuals involved stand in the economic relations to each other of producers and consumers, or buyers and sellers, and are acting in their respective socially functional capacities as such. But even the social situations of this general type (involving complex social antagonisms and diversities of social interests among the individuals implicated in any one of them, and respectively lacking the co-ordinating, integrating, unifying influence of common social ends and motives shared by those individuals), even these social situations, as occurring within the general human social process of experience and behavior, are definite aspects of or ingredients in the general relational pattern of that process as a whole.

What is essential to the order of society in its fullest expression on the basis of the theory of the self that we have been discussing is, then, an organization of common attitudes which shall be found in all individuals. It might be supposed that such an organization of attitudes would refer only to that abstract human being which could be found as identical in all members of society, and that that which is peculiar to the personality of the individual would disappear. The term "personality" implies that the individual has certain common rights and values obtained in him and through him; but over and above that sort of social endowment of the individual, there is that which distinguishes him from anybody else, makes him what he is. It is the most precious part of the individual. The question is whether that can be carried over into the social self or whether the social self shall simply embody those reactions

which can be common to him in a great community On the account we have given we are not forced to accept the latter alternative.

When one realizes himself, in that he distinguishes himself, he asserts himself over others in some peculiar situation which justifies him in maintaining himself over against them If he could not bring that peculiarity of himself into the common community, if it could not be recognized, if others could not take his attitude in some sense, he could not have appreciation in emotional terms, he could not be the very self he is trying to be. The author, the artist, must have his audience; it may be an audience that belongs to posterity, but there must be an audience. One has to find one's self in his own individual creation as appreciated by others; what the individual accomplishes must be something that is in itself social. So far as he is a self, he must be an organic part of the life of the community, and his contribution has to be something that is social It may be an ideal which he has discovered, but it has its value in the fact that it belongs to society. One may be somewhat ahead of his time, but that which he brings forward must belong to the life of the community to which he belongs. There is, then, a functional difference, but it must be a functional difference which can be entered into in some real sense by the rest of the community Of course, there are contributions which some make that others cannot make, and there may be contributions which people cannot enter into; but those that go to make up the self are only those which can be shared. To do justice to the recognition of the uniqueness of an individual in social terms, there must be not only the differentiation which we do have in a highly organized society but a differentiation in which the attitudes involved can be taken by other members of the group.

Take, for example, the labor movement. It is essential that the other members of the community shall be able to enter into the attitude of the laborer in his functions. It is the caste organization, of course, which makes it impossible; and the development of the modern labor movement not only brought the

situation actually involved before the community but inevitably helped to break down the caste organization itself. The caste organization tended to separate in the selves the essential functions of the individuals so that one could not enter into the other. This does not, of course, shut out the possibility of some sort of social relationship; but any such relationship involves the possibility of the individual's taking the attitude of the other individuals, and functional differentiation does not make that impossible. A member of the community is not necessarily like other individuals because he is able to identify himself with them. He may be different. There can be a common content, common experience, without there being an identity of function. A difference of functions does not preclude a common experience; it is possible for the individual to put himself in the place of the other although his function is different from the other. It is that sort of functionally differentiated personality that I wanted to refer to as over against that which is simply common to all members of a community.

There is, of course, a certain common set of reactions which belong to all, which are not differentiated on the social side but which get their expression in rights, uniformities, the common methods of action which characterize members of different communities, manners of speech, and so on. Distinguishable from those is the identity which is compatible with the difference of social functions of the individuals, illustrated by the capacity of the individual to take the part of the others whom he is affecting, the warrior putting himself in the place of those whom he is proceeding against, the teacher putting himself in the position of the child whom he is undertaking to instruct. That capacity allows for exhibiting one's own peculiarities, and at the same time taking the attitude of the others whom he is himself affecting. It is possible for the individual to develop his own peculiarities, that which individualizes him, and still be a member of a community, provided that he is able to take the attitude of those whom he affects. Of course, the degree to which that takes place varies tremendously, but a certain amount of it is essential to citizenship in the community.

One may say that the attainment of that functional differentiation and social participation in the full degree is a sort of ideal which lies before the human community. The present stage of it is presented in the ideal of democracy. It is often assumed that democracy is an order of society in which those personalities which are sharply differentiated will be eliminated, that everything will be ironed down to a situation where everyone will be, as far as possible, like everyone else But of course that is not the implication of democracy: the implication of democracy is rather that the individual can be as highly developed as lies within the possibilities of his own inheritance, and still can enter into the attitudes of the others whom he affects. There can still be leaders, and the community can rejoice in their attitudes just in so far as these superior individuals can themselves enter into the attitudes of the community which they undertake to lead.

How far individuals can take the rôles of other individuals in the community is dependent upon a number of factors. The community may in its size transcend the social organization, may go beyond the social organization which makes such identification possible The most striking illustration of that is the economic community. This includes everybody with whom one can trade in any circumstances, but it represents a whole in which it would be next to impossible for all to enter into the attitudes of the others. The ideal communities of the universal religions are communities which to some extent may be said to exist, but they imply a degree of identification which the actual organization of the community cannot realize We often find the existence of castes in a community which make it impossible for persons to enter into the attitude of other people although they are actually affecting and are affected by these other people The ideal of human society is one which does bring people so closely together in their interrelationships, so fully develops the necessary system of communication, that the individuals who exercise their own peculiar functions can take the attitude of those whom they affect. The development of communication

is not simply a matter of abstract ideas, but is a process of putting one's self in the place of the other person's attitude, communicating through significant symbols Remember that what is essential to a significant symbol is that the gesture which affects others should affect the individual himself in the same way. It is only when the stimulus which one gives another arouses in himself the same or like response that the symbol is a significant symbol Human communication takes place through such significant symbols, and the problem is one of organizing a community which makes this possible. If that system of communication could be made theoretically perfect, the individual would affect himself as he affects others in every way That would be the ideal of communication, an ideal attained in logical discourse wherever it is understood. The meaning of that which is said is here the same to one as it is to everybody else. Universal discourse is then the formal ideal of communication. If communication can be carried through and made perfect, then there would exist the kind of democracy to which we have referred, in which each individual would carry just the response in himself that he knows he calls out in the community That is what makes communication in the significant sense the organizing process in the community. It is not simply a process of transferring abstract symbols, it is always a gesture in a social act which calls out in the individual himself the tendency to the same act that is called out in others.

What we call the ideal of a human society is approached in some sense by the economic society on the one side and by the universal religions on the other side, but it is not by any means fully realized Those abstractions can be put together in a single community of the democratic type. As democracy now exists, there is not this development of communication so that individuals can put themselves into the attitudes of those whom they affect. There is a consequent leveling-down, and an undue recognition of that which is not only common but identical. The ideal of human society cannot exist as long as it is impossible for individuals to enter into the attitudes of those whom they are affecting in the performance of their own peculiar functions.

# Index


Act
without consciousness, 145
delayed, 192–93
nature of, 76–79, 93–96
stages in, 97–119
Adjustment, lack of, 100–102
Aristotle, 249, 266
Athens, 266

Baldwin, J., viii
Behaviorism, 128–35, 137–40, 165–77, 209
social, viii
Berkeley, G., 70, 112, 117
Brain, human, 149, 159–60

Caste, 285–86
Christianity, 268–69
Communication, 215–20, 270, 293–94
Comte, A., vii, 30, 120–27
Conduct, 79–84
Consciousness, ambiguity of, 154–60, 206
Control, of environment, 29, 34, 80, 166
Convention, 263–64
Cooley, C., viii, 241
Copy theory, 49
Correspondence, between symbols and things, 49–50
Crime, 21, 25–28

Darwin, C., vii–viii, 2, 5–14, 142, 196
Democracy, 273–75, 293–94
Dewey, J., v, 181
Durkheim, E., vii

Entropy, 3–4
Environment, 205–11

Evolution
of mind, 40–42, 211
nature of, viii–ix, 8–16, 121–23
and science, iv, 16
of society, 35, 282–84

French philosophy, in nineteenth century, *see* Comte

Game, children's, 231–37
Generalized other, xiv, 86, 232
Gesture
in Mead's social psychology, xii–xiii
significance of, 140–45
as social act, 169–77, 182–91, 222–23, 294
vocal, 38, 87–88

Habits, 240
Hegel, G., 2, 24–25, 122
History
experimental method of, 60–68
uses of, 61–62
Hume, D., 70, 112

"I," of the personality, 242–47, 251–55
Individual
experience of, 59–60, 214–15, 248–49
interest in, 31–34
Inferiority complex, 250
Institutions, 262–68
Intelligence, ix, 186–94, 211
Introspection, in psychology, 129

James, W., 129–30, 155, 241, 250
Journalism, 99–100

Kant, I., 1–5
Keller, H., 226

Language, 190, 201, 210, 237–39, 270
League of Nations, 276
Locke, J, 111

Malthus, T, 9
Manipulation, stimulus of, 118
Manners, 263–64
"Me," of the personality, 242–47, 251–55
Mead, G, v
Meaning, logical structure of, 182–84, 208
Mechanism, in predicting the future, 88–96, 209
Mill, J S, vii, 122, 126, 254

Nervous system, 205
Newspaper, *see* Journalism
Newton, I, 2–3
Novelty, in predicting the future, 88–96

Parallelism, in psychology, 145–77, 207
Perception, 45–46, 60, 92, 102–4, 106–17
Philosophy, French, *see* Comte
Plato, 43, 266
Play, children's, 227–33
Poet, experience of, 224–25
Pragmatism, reputation of, 66
Psychology
  Freudian, vi, 252
  Gestalt, 164–65
  physiological, 70, 147, 154
  social, 128–35

Romantic Idealists, 11
Rousseau, J, 273
Routine, 254

Science
  attitude of, 43–47
  nature of, ix–x, 245–46
Self, x, 81–84, 212–60, 287–92
Society
  control of, 18
  nature of, 261–94
  as process, 134, 179, 211
  reaction of individuals to, 249
  and self, 217, 234–35
Sociology, 124
Symbol
  in human intelligence, 197–202, 294
  objective, 180–81
  universality of, 223–26, 235

Tarde, G, viii

Utilitarianism, 126

Watson, J, 129–30, 198
Whitehead, A, 76
Wundt, W, 168–77, 271

PRINTED IN U.S.A

# *Phoenix Books*

TITLES IN PRINT

P 1

Ernst Cassirer, Paul Oskar Kristeller, *and* John Herman Randall, Jr , *editors*

*The Renaissance Philosophy of Man*

(selections in translation from the writings of Petrarca, Valla, Ficino, Pico, Pomponazzi, and Vives)

P 2

Edward Chiera

*They Wrote on Clay  The Babylonian Tablets Speak Today*

P 3

John Dewey

*The Child and the Curriculum* and *The School and Society*

(in one volume, with an Introduction by Leonard Carmichael)

P 4

Friedrich A  Hayek

*The Road to Serfdom*

(with a new Foreword by the author)

P 5

Jacques Maritain

*Man and the State*

P 6

*The Social Psychology of George Herbert Mead*

(edited and with an Introduction by Anselm Strauss)

THE UNIVERSITY OF CHICAGO PRESS